UNIVERSAL LIBRARY

OU_180805
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H891.21 Accession No. PG H1158

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

१२ # हिन्दी महाभारत १७

Post Graduate Library
College of Arts & Commerce, O. U.

11891.91 ४१७११

आवश्यक सूचनायें

(१) हमने प्रथम खण्ड की समाप्ति पर उसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। उसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

(२) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, उन्नाव, काशी (रामनगर), कलकत्ता, ग़ाज़ीपुर, बरेली, मथुरा (वृन्दावन), जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है। अब तक ग्राहकों के पास यहीं से सीधे डाक-द्वारा प्रतिमास अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना खर्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा। इस अवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप में मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्टरी तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जायँगे। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा। यथेष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा। आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र ही अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे। और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचे तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न उठाना पड़े। यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधानुसार एजेंट के पास से जाकर अङ्क ले आने की कृपा किया करें।

(३) हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए। सिर्फ़ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
एक सौ पचास अध्याय	
हनूमान का अपना पूर्वरूप प्रकट करना और भीमसेन के उपदेश करना ...	९९९
एक सौ इक्यावन अध्याय	
हनूमान और भीमसेन की बातचीत	१००१
एक सौ बावन अध्याय	
भीमसेन का सौगन्धिक वन में जाना	१००२
एक सौ तिरपन अध्याय	
कुवेरसरोवर का वर्णन ...	१००३
एक सौ चौवन अध्याय	
भीमसेन का राक्षसो के साथ युद्ध	१००४
एक सौ पचपन अध्याय	
भीमसेन के न पहुँचने से युधिष्ठिर का घबराना और भीमसेन का मिलना ..	१००६
एक सौ छप्पन अध्याय	
युधिष्ठिर का आकाशवाणी सुनकर फिर बदरिकाश्रम को लौट जाना	१००८
एक सौ सत्तावन अध्याय	
जटासुर-वध	१००८
एक सौ अट्ठावन अध्याय	
पाण्डवों का गन्धमादन पर्वत पर जाना	१०१३
एक सौ उनसठ अध्याय	
राजर्षि आर्ष्टिषेण से बातचीत	१०१७
एक सौ साठ अध्याय	
यक्षों से युद्ध। भीमसेन का मणिमान् राक्षस को मारना। कुबेर का वहाँ पर आना ...	१०१९
एक सौ इकसठ अध्याय	
कुवेर का आना ...	१०२२
एक सौ बासठ अध्याय	
पाण्डवों को कुवेर का उपदेश देना	१०२५
एक सौ तिरसठ अध्याय	
सुमेरु पर्वत के दर्शन करना	१०२७
एक सौ चौंसठ अध्याय	
अर्जुन के लिए पाण्डवों का चिन्ता करना	१०२९
एक सौ पैंसठ अध्याय	
अर्जुन का स्वर्गलोक से लौटकर आना	१०३०
एक सौ छाछठ अध्याय	
इन्द्र से युधिष्ठिर आदि की भेंट का वृत्तान्त ...	१०३१
एक सौ सड़सठ अध्याय	
अर्जुन का अपने पाशुपत अस्त्र पाने का वृत्तान्त कहना	१०३२
एक सौ अड़सठ अध्याय	
लोकपालों के आने, स्वर्ग जाने, इन्द्र से बातचीत होने, निवातकवच दानवों के मारने के उद्योग का वर्णन	१०३५

विषय	पृष्ठ
एक सौ उनहत्तर अध्याय	
अर्जुन का निवातकवच दानवों के स्थान पर पहुँचना	१०३८
एक सौ सत्तर अध्याय	
निवातकवच दानवों के साथ अर्जुन का युद्ध	१०३९
एक सौ इकहत्तर अध्याय	
दानवों के माया-युद्ध का वर्णन	१०४१
एक सौ बहत्तर अध्याय	
निवातकवच दानवों का वध	१०४२
एक सौ तिहत्तर अध्याय	
पौलोम और कालकेय दैत्यों का वध ... • ...	१०४४
एक सौ चौहत्तर अध्याय	
युधिष्ठिर और अर्जुन के संवाद की समाप्ति	१०४७
एक सौ पचहत्तर अध्याय	
नारद का आना और अर्जुन को अस्त्र दिखाने से रोकना	१०४६
एक सौ छिहत्तर अध्याय	
पाण्डवों का गन्धमादन पर्वत को छोड़ना	१०५०
एक सौ सतहत्तर अध्याय	
पाण्डवों का अनेक स्थानों में ठहरना	१०५२
एक सौ अठहत्तर अध्याय	
अजगर के उपाख्यान का आरम्भ	१०५३
एक सौ उन्नासी अध्याय	
युधिष्ठिर का घबराकर वहाँ जाना और भीमसेन की दशा देखना	१०५५
एक सौ अस्सी अध्याय	
युधिष्ठिर और अजगर का संवाद	१०५८
एक सौ इक्यासी अध्याय	
युधिष्ठिर का नहुष से उपदेश लेना	१०६१
एक सौ बयासी अध्याय	
पाण्डवों का काम्यक वन को जाना	१०६४
एक सौ तिरासी अध्याय	
श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर के पास आना। श्रीकृष्ण के कहने से मार्कण्डेय का पुराण कथा कहना	१०६५
एक सौ चौरासी अध्याय	
अरिष्टनेमा और हैहयवंशी राजाओं के संवाद का वर्णन	१०७१
एक सौ पचासी अध्याय	
अत्रि ऋषि का उपाख्यान	१०७३
एक सौ छियासी अध्याय	
सरस्वती और तार्क्ष्य का संवाद	१०७५
एक सौ सत्तासी अध्याय	
वैवस्वत मनु और मत्स्यावतार का उपाख्यान ...	१०७८
एक सौ अट्ठासी अध्याय	
सत्ययुग आदि चारों युगों के धर्म का वर्णन। प्रलय का वर्णन	१०८१

विषय	पृष्ठ
एक सौ नवासी अध्याय	
बालमुकुन्द का मार्कण्डेय को उनके प्रश्नों का उत्तर देना	१०८७
एक सौ नब्बे अध्याय	
कलियुग के कृत्यों का वर्णन	१०६०
एक सौ इक्यानबे अध्याय	
युधिष्ठिर को मार्कण्डेय का धर्मोपदेश	१०९४
एक सौ बानबे अध्याय	
वामदेवचरित का वर्णन ...	१०९६

रङ्गीन चित्रों की सूची।

विषय	पृष्ठ
१ भीमसेन का हनूमान का पर्वताकार भीषण रूप देखकर हर्षित और विस्मित होना ...	६६६
२ सबने देखा महात्मा भीमसेन दण्ड हाथ में लिये यमराज के समान खड़े हैं	१००७
३ युधिष्ठिर भीमसेन को यों उपदेश देके उस सरोवर में जल-विहार करने लगे	१००७
४ गरुड़ ने आकर अकस्मात् महानाग को पकड़ लिया	१०२०
५ अब मातलि मुझे देवताओं के भवन दिखाने लगा...	१०३६
६ तार्क्ष्य-सरस्वती-संवाद ...	१०७६
७ मनु ने उसे गङ्गा से निकाल कर समुद्र में डाल दिया	१०७९
८ राजा ने उससे पूछा—हे भद्रे! तुम कौन हो ...	१०९७
९ मण्डूकराज ने कहा—सुन सुशोभना! महाराज की सेवा करती रहना ...	१०९९
१० दल के उस बाण ने पुत्र श्येनजित् को मार डाला	११०२

Post Graduate Library
College of Arts & Commerce, O. U.

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
एक सौ तिरानबे अध्याय	
बक और दाल्भ्य का वृत्तान्त	११०३
एक सौ चौरानबे अध्याय	
राजा शिवि का माहात्म्य	११०५
एक सौ पञ्चानबे अध्याय	
राजा ययाति का माहात्म्य ..	११०६
एक सौ छियानबे अध्याय	
राजा सेदुक और वृषदर्भ की कथा	११०७
एक सौ सत्तानबे अध्याय	
राजा शिवि की कथा ...	११०८
एक सौ अट्ठानबे अध्याय	
राजा शिवि के माहात्म्य का वर्णन	१११०
एक सौ निन्नानबे अध्याय	
राजर्षि इन्द्रद्युम्न की कथा ..	१११३
दो सौ अध्याय	
अनेक प्रकार के धर्मों का वर्णन	१११५
दो सौ एक अध्याय	
राजर्षि धुन्धुमार के उपाख्यान का आरम्भ	११२२
दो सौ दो अध्याय	
उतङ्क का राजा बृहदश्व के पास जाकर धुन्धु दैत्य को मारने की प्रार्थना करना ...	११२४
दो सौ तीन अध्याय	
मधु-कैटभ का वृत्तान्त ..	११२५
दो सौ चार अध्याय	
धुन्धु दैत्य का वध ...	११२७
दो सौ पाँच अध्याय	
पतिव्रता-माहात्म्य के सम्बन्ध में युधिष्ठिर का प्रश्न	११२९
दो सौ छः अध्याय	
कौशिक और पतिव्रता का उपाख्यान	११३०
दो सौ सात अध्याय	
कौशिक और धर्मव्याध का संवाद	११३३
दो सौ आठ अध्याय	
हिंसा के बारे में धर्मव्याध का उपदेश	११३९
दो सौ नव अध्याय	
धर्म के माहात्म्य का वर्णन .	११४१
दो सौ दस अध्याय	
इन्द्रियनिग्रह और ब्रह्मविद्या का वर्णन	११४४
दो सौ ग्यारह अध्याय	
पञ्चमहाभूतों के गुणों का वर्णन	११४६
दो सौ बारह अध्याय	
माया के तीनों गुणों का वर्णन	११४७

विषय	पृष्ठ
दो सौ तेरह अध्याय	
आत्मा के तत्त्व का वर्णन ...	११४८
दो सौ चौदह अध्याय	
माता-पिता की सेवा और माहात्म्य का वर्णन ...	११५१
दो सौ पन्द्रह अध्याय	
धर्मव्याध के पूर्व जन्म का वृत्तान्त	११५२
दो सौ सोलह अध्याय	
कौशिक का व्याध से विदा होकर घर जाना	११५४
दो सौ सत्रह अध्याय	
आङ्गिरस और अग्नि का संवाद	११५७
दो सौ अठारह अध्याय	
आङ्गिरा के वंश का वर्णन...	११५८
दो सौ उन्नीस अध्याय	
बृहस्पति के वंश का वर्णन...	११५९
दो सौ बीस अध्याय	
पाञ्चजन्य की उत्पत्ति का वर्णन	११६०
दो सौ इक्कीस अध्याय	
विविध अग्नियों का वर्णन ...	११६१
दो सौ बाईस अध्याय	
सह अग्नि और अथर्वाग्नि का वर्णन	११६३
दो सौ तेईस अध्याय	
कार्त्तिकेय का उपाख्यान ...	११६५
दो सौ चौबीस अध्याय	
देवसेना और इन्द्र का, इन्द्र और ब्रह्मा का संवाद। अग्नि का वनगमन ...	११६६
दो सौ पचीस अध्याय	
स्कन्द की उत्पत्ति। क्रौञ्च-विदारण	११६८
दो सौ छब्बीस अध्याय	
सप्तर्षियों का लोकापवाद के डर से अपनी स्त्रियों को छोड़ देना	११७१
दो सौ सत्ताईस अध्याय	
स्कन्द से देवताओं का हार जाना	११७३
दो सौ अट्ठाईस अध्याय	
स्कन्द के पारिषदों का विवरण	११७४
दो सौ उनतीस अध्याय	
स्कन्द और इन्द्र का संवाद...	११७५
दो सौ तीस अध्याय	
ग्रहों के वृत्तान्त का वर्णन ...	११७८
दो सौ इकतीस अध्याय	
देवासुर-संग्राम का वर्णन ...	११८१

विषय — पृष्ठ

दो सौ बत्तीस अध्याय

स्कन्द के नामों का वर्णन ... ११८७

द्रौपदी-सत्यभामा-संवाद

दो सौ तेंतीस अध्याय

द्रौपदी और सत्यभामा की बातचीत ११८८

दो सौ चौंतीस अध्याय

स्वामी की सेवा के सम्बन्ध में द्रौपदी का उपदेश ... ११९२

दो सौ पैंतीस अध्याय

सत्यभामासहित श्रीकृष्ण का द्वारका को जाना .. ११९३

घोषयात्रा-पर्व

दो सौ छत्तीस अध्याय

धृतराष्ट्र का विलाप और चिन्ता ११९४

दो सौ सैंतीस अध्याय

दुर्योधन से कर्ण और शकुनि की बातचीत ११९७

रंगीन चित्रों की सूची

विषय	पृष्ठ
१ राजा शिवि ने हड्डी उठाकर ज्यों ही खाना चाहा वैसे ही ब्राह्मण ने उनका हाथ पकड़ लिया ...	११११२
२ शेषशायी विष्णु ...	११२४
३ इसी समय राजा कुवलाश्व सेनासहित उत्तङ्क ऋषि को मारने पहुँचे .	११२७
४ विष्णु ने मधु-कैटभ को अपनी जाँघों पर रखकर पैने चक्र से काट डाला .	११२७
५ पति को देव-तुल्य माननेवाली पतिव्रतायें धन्य हैं...	११२८
६ कौशिक व्याध के घर के भीतर गये तो देखा कि व्याध के माता-पिता अच्छे आसन पर बैठे हुए हैं ...	११५१
७ प्रथम अग्नि-सह अङ्गिरा को देखकर कहा—हे वीर ! मैं बहुत ही दुर्बल होगया हूँ...	११६३
८ इन्द्रद्वारा केशी राक्षस से देव सेना का उद्धार ..	११६६
९ मुनि-पत्नियों को देखकर अग्नि-देव काम से पीड़ित हो गये	११६८
१० शिवजी पार्वती के साथ श्वेतसिंहयुक्त लोहितवर्ण रथ पर सवार होकर भद्र-वट को चले ...	११८३

विषय-सूची ।

विषय	पृष्ठ
दो सौ अड़तीस अध्याय	
दुर्योधन का उत्तर	११९९
दो सौ उन्तालीस अध्याय	
घोषयात्रा के लिए धृतराष्ट्र का अनुमति देना	१२००
दो सौ चालीस अध्याय	
दुर्योधन के आदमियों से और गन्धर्वों से विवाद	१२०२
दो सौ इकतालीस अध्याय	
गन्धर्वों के साथ कौरव-सेना का युद्ध	१२०३
दो सौ बयालीस अध्याय	
दुर्योधन का पकड़ा जाना ...	१२०५
दो सौ तेंतालीस अध्याय	
दुर्योधन को छुड़ाने के लिए युधिष्ठिर की आज्ञा	१२०७
दो सौ चवालीस अध्याय	
गन्धर्वों के साथ अर्जुन का युद्ध	१२०८
दो सौ पैंतालीस अध्याय	
अर्जुन से चित्रसेन की भेंट और युद्ध की समाप्ति	१२०९
दो सौ छियालीस अध्याय	
दुर्योधन आदि का छुटकारा ...	१२११
दो सौ सैंतालीस अध्याय	
भागे हुए कर्ण से दुर्योधन की भेंट और कर्ण का दुर्योधन को गन्धर्वों पर विजय पानेवाला जानकर उसकी बड़ाई करना ...	१२१३
दो सौ अड़तालीस अध्याय	
दुर्योधन का कर्ण को उत्तर ...	१२१४
दो सौ उनचास अध्याय	
दुर्योधन का प्रायोपवेशन का निश्चय करना	१२१५
दो सौ पचास अध्याय	
कर्ण का दुर्योधन को समझाना	१२१८
दो सौ इक्यावन अध्याय	
दुर्योधन का दानवलोक-गमन ...	१२१९
दो सौ बावन अध्याय	
दानवों का दुर्योधन को समझाना	१२२०
दो सौ तिरपन अध्याय	
भीष्मकृत कर्ण की निन्दा ...	१२२३
दो सौ चौवन अध्याय	
दिग्विजय करके कर्ण का लौट आना	१२२५
दो सौ पचपन अध्याय	
दुर्योधन की यज्ञ करने की तैयारी	१२२७
दो सौ छप्पन अध्याय	
पाण्डवों के पास यज्ञ का निमन्त्रण भेजना	१२२८
दो सौ सत्तावन अध्याय	
कर्ण का अर्जुन-वध की प्रतिज्ञा करना	१२२९

विषय-सूची।

विषय — पृष्ठ

मृगस्वप्नोद्भव पर्व

दो सौ अट्ठावन अध्याय

युधिष्ठिर का स्वप्न देखकर द्वैतवन को छोड़ जाना १२३१

व्रीहिद्रौणिक पर्व

दो सौ उनसठ अध्याय

वेदव्यास और युधिष्ठिर का संवाद १२३२

दो सौ साठ अध्याय

मुद्गल ऋषि का उपाख्यान ... १२३४

दो सौ इकसठ अध्याय

मुद्गल का देवदूत से स्वर्ग के गुण-दोषों का विवरण सुनकर, उसे सुखमय न समझ, वहाँ जाना अस्वीकार करना और विष्णु पद पाने का प्रयत्न करना ... १२३७

द्रौपदी-हरण पर्व

दो सौ बासठ अध्याय

दुर्वासा मुनि का दुर्योधन के यहाँ जाना १२४०

दो सौ तिरसठ अध्याय

श्रीकृष्ण की कृपा से दुर्वासा ऋषि की तृप्ति १२४२

दो सौ चौंसठ अध्याय

जयद्रथ का द्रौपदी को देखना और पता लगाने के लिए कोटिक को भेजना १२४५

दो सौ पैंसठ अध्याय

कोटिक का द्रौपदी से प्रश्न ... १२४६

दो सौ छाछठ अध्याय

द्रौपदी का कोटिकास्य को उत्तर २४७

दो सौ सड़सठ अध्याय

जयद्रथ का द्रौपदी के पास ाना २४७

दो सौ अड़सठ अध्या

द्रौपदी ा जयद्र का फटकाना १२४९

दो सौ उनहत्तर अध्याय

पाण्डवों का लौट क आश्रम में आना १२५

दो सौ सत्तर अध्याय

द्रौपदी का यद्रथ को पाण्डवा का परिचय देना २५४

दो सौ इकहत्तर अध्याय

जयद्रथ की सेना से पाण्डवों का युद्ध १२५५

जयद्रथ-विमोक्षण पर्व

दो सौ बहत्तर अध्याय

युधिष्ठिर के अनुरोध से जयद्रथ का छुटकारा १२५६

रामोपाख्यान पर्व

दो सौ तिहत्तर अध्याय

मार्कण्डेय से युधिष्ठिर का प्रश्न १२६४

दो सौ चौहत्तर अध्याय

रामचन्द्र के उपाख्यान का आरम्भ १२६४

विषय	पृष्ठ
दो सौ पचहत्तर अध्याय	
रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण की उत्पत्ति	१२६५
दो सौ छिहत्तर अध्याय	
ब्रह्मा की आज्ञा से सब देवताओं का वानर-योनि में उत्पन्न होना	१२६८
दो सौ सतहत्तर अध्याय	
राम-लक्ष्मण के वनवास की कथा	१२६६
दो सौ अठहत्तर अध्याय	
सीता-हरण की कथा ...	१२७२
दो सौ उन्नासी अध्याय	
कबन्ध-वध	१२७४
दो सौ अस्सी अध्याय	
बाली का बध और सुग्रीव से रामचन्द्र की मित्रता ...	१२७७
दो सौ इक्यासी अध्याय	
रावण और सीता का संवाद ...	१२८१
दो सौ बयासी अध्याय	
हनुमान् का सीता की ख़बर लेकर रामचन्द्र के पास जाना ...	१२८३
दो सौ तिरासी अध्याय	
रामचन्द्र का समुद्र में पुल बाँध कर उस पार जाना और लङ्का-पुरी को घेरना	१२८७
दो सौ चौरासी अध्याय	
अंगद का दूत-कार्य ...	१२६०
दो सौ पचासी अध्याय	
रावण आदि का द्वन्द्व युद्ध ...	१२६२
दो सौ छियासी अध्याय	
रावण का कुम्भकर्ण को जगाकर युद्ध के लिए भेजना ...	१२६३

रङ्गीन चित्रों की सूची।

विषय	पृष्ठ
१ दुर्योधन को रथ से हीन और पृथ्वी पर गिरा हुआ देखकर चित्रसेन झपट कर पकड़ने चला	१२०५
२ उस थाली के किनारे एक कण भर साग लगा हुआ था ...	१२४३
३ जयद्रथ फिर उठकर वेग के साथ द्रौपदी को पकड़ने लगा ...	१२५१
४ जयद्रथ की यह दुर्दशा देख युधिष्ठिर हँस पड़े और भीमसेन से कहने लगे अब इसे छोड़ दो	१२६०
५ हिरण्यकशिपु क्रोध से लाल लाल आँखें करके, त्रिशूल तान कर मेघ के समान गरजता हुआ नृसिंह की ओर दौड़ा ...	१२६२
६ राजा बलि प्रसन्न होकर उनकी प्रार्थना पूरी करने को तैयार हो गये	१२६३
७ महाराज दशरथ केकयी के मुँह से इस दारुण वरदान की बात सुनकर चुप रह गये ...	१२७०
८ अब जटायु अपने तीक्ष्ण नखों और पंखों से रावण पर प्रहार करने लगा	१२७४
९ सुग्रीव को चिह्नित देखकर रामचन्द्रजी ने धनुष चढ़ाया	१२७९
१० रावण शक्ति, शूल, खड्ग आदि से रामचन्द्र पर प्रहार करने लगा और वे भी तीक्ष्ण बाणों से रावण को घायल करने लगे	१२९२

विषय-सूची ।

विषय	पृष्ठ
दो सौ सत्तासी अध्याय	
कुम्भकर्णवध ...	१२६५
दो सौ अट्ठासी अध्याय	
इन्द्रजित् का युद्ध ...	१२६६
दो सौ नवासी अध्याय	
इन्द्रजित् का वध ...	१२६७
दो सौ नव्बे अध्याय	
रावण का मारा जाना ...	१२६६
दो सौ इक्यानबे अध्याय	
रामचन्द्र का अयोध्या में लौटकर जाना और राज-गद्दी पर बैठना	१३००
दो सौ बानबे अध्याय	
मार्कण्डेय का युधिष्ठिर को धीरज बँधाना ...	१३०४
(पतिव्रता-माहात्म्य पर्व)	
दो सौ तिरानबे अध्याय	
महाराज अश्वपति की कन्या सावित्री का उपाख्यान ...	१३०५
दो सौ चौरानबे अध्याय	
राजा अश्वपति और नारदमुनि का संवाद ...	१३०७
दो सौ पञ्चानबे अध्याय	
सावित्री और सत्यवान् का व्याह	१३१०
दो सौ छियानबे अध्याय	
सावित्री का सत्यवान् के साथ आश्रम से वन जाना ...	१३११
दो सौ सत्तानबे अध्याय	
सावित्री का सत्यवान् को यमराज के हाथ से छुड़ाना और अनेक वरदान प्राप्त करना...	१३१३
दो सौ अट्ठानबे अध्याय	
समय पर आश्रम में बहू-बेटे के न आने से द्युमत्सेन और उनकी पत्नी का घबराना। सावित्री और सत्यवान् का आश्रम में पहुँचना ...	१३२१
दो सौ निन्नानबे अध्याय	
राजा द्युमत्सेन को राज्य मिलना और उनके शत्रु का मारा जाना	१३२३
तीन सौ अध्याय	
सूर्य का स्वप्न में कर्ण को दर्शन देना और कवच-कुण्डलों का दान देने से रोकना ...	१३२५
(कुण्डलाहरण पर्व)	
तीन सौ एक अध्याय	
कवच-कुण्डल न देने के लिए सूर्य का कर्ण से फिर आग्रह करना ...	१३२७
तीन सौ दो अध्याय	
सूर्य का कर्ण को इन्द्र से शत्रु-घातिनी शक्ति माँग लेने के लिए उपदेश देना ...	१३२७
तीन सौ तीन अध्याय	
कर्ण के जन्म का वृत्तान्त। दुर्वासा का राजा कुन्तिभोज के यहाँ जाकर टिकना और कुन्तिभोज का कुन्ती को उनकी सेवा का काम सौंपना ...	१३२८

विषय — पृष्ठ

तीन सौ चार अध्याय

कुन्ती का सावधानी से सेवा करके दुर्वासा ऋषि को प्रसन्न करना १३३०

तीन सौ पाँच अध्याय

दुर्वासा मुनि का कुन्ती को वरदान देना १३३२

तीन सौ छः अध्याय

कुन्ती का मन्त्र-बल की परीक्षा के लिए सूर्य का आवाहन करना १३३३

तीन सौ सात अध्याय

कुन्ती में सूर्य का गर्भाधान करना १३३५

तीन सौ आठ अध्याय

कुन्ती के गर्भ से कर्ण का जन्म होना और नदी में बहाया जाना १३३६

तीन सौ नव अध्याय

कर्ण का सूत अधिरथ के यहाँ पालन-पोषण होना। ब्राह्मण के वेष से इन्द्र का कर्ण के पास जाना १३३८

तीन सौ दस अध्याय

कर्ण का इन्द्र को कवच-कुण्डल देना १३३९

(आरणेय पर्व)

तीन सौ ग्यारह अध्याय

मृग का ब्राह्मण की "अरणी" लेकर भाग जाना ... १३४२

विषय — पृष्ठ

तीन सौ बारह अध्याय

पाण्डवों से यक्ष का संवाद। चारों भाइयों का सरोवर के तट पर निर्जीव हो गिर पड़ना ... १३४३

तीन सौ तेरह अध्याय

धर्मराज युधिष्ठिर से प्रश्न और उत्तर १३४६

तीन सौ चौदह अध्याय

यक्ष के अनुग्रह से चारों पाण्डवों का जी उठना १३५४

तीन सौ पन्द्रह अध्याय

पाण्डवों का अज्ञातवास के लिए उद्योग १३५६

विराट पर्व

(पाण्डव-प्रवेश पर्व)

पहला अध्याय

अज्ञातवास के लिए युधिष्ठिर का भाइयों से सलाह करना ... १३५९

दूसरा अध्याय

भीमसेन और अर्जुन की सलाह १३६१

तीसरा अध्याय

नकुल, सहदेव और द्रौपदी की सलाह १३६२

चौथा अध्याय

धौम्य पुरोहित का पाण्डवों को उपदेश देना १३६४

पाँचवाँ अध्याय

पाण्डवों का विराट नगर के पास पहुँचना १३६७

विषय	पृष्ठ
छठा अध्याय	
धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा देवी की स्तुति	१३७०
सातवाँ अध्याय	
छद्मवेषधारी युधिष्ठिर का विराट की सभा में जाना	१३७२
आठवाँ अध्याय	
भीमसेन का राजा विराट के यहाँ जाना	१३७३
नवाँ अध्याय	
द्रौपदी का विराट के रनिवास में जाना	१३७५
दसवाँ अध्याय	
सहदेव का राजा विराट के यहाँ उपस्थित होना	१३७७
ग्यारहवाँ अध्याय	
अर्जुन का राजा विराट के यहाँ जाना	१३७८
बारहवाँ अध्याय	
नकुल का राजा विराट के यहाँ जाना	१३८०
(समय-पालन पर्व)	
तेरहवाँ अध्याय	
भीमसेन के हाथ से जीमूत पहलवान का वध	१३८१
(कीचक-वध पर्व)	
चौदहवाँ अध्याय	
कीचक का द्रौपदी पर मोहित होना	१३८३
पन्द्रहवाँ अध्याय	
रानी सुदेष्णा का द्रौपदी को कीचक के घर भेजना ...	१३८७
सोलहवाँ अध्याय	
राजा विराट की सभा मे द्रौपदी का भाग कर जाना और वहीं पर कीचक का उनको लात मारना	१३८८
सत्रहवाँ अध्याय	
द्रौपदी का छिपकर भीमसेन के पास जाना	१३९१
अठारहवाँ अध्याय	
द्रौपदी का भीमसेन से अपना दुःख कहना	१३९३
उन्नीसवाँ अध्याय	
द्रौपदी का फिर खेद प्रकट करना	१३९४
बीसवाँ अध्याय	
द्रौपदी का और भी अपने दुःख कहना	१३९७

रङ्गीन चित्रों की सूची *।

१ यम-सावित्री-संवाद ... १३१६

२ धर्मराज युधिष्ठिर ने उनके पास पहुँच कर कहा—महाराज मैं ब्राह्मण हूँ १३७२

३ रानी ने कहा—हे सुन्दरी, तुमने जो कहा वह तुम ऐसी स्त्री के योग्य कभी नहीं हो सकता १३७५

४ अर्जुन रनिवास में रहकर राजकुमारी उत्तरा को नाचने और गाने-बजाने की शिक्षा देने लगे १५७६

५ महाबाहु भीमसेन ने सैकड़ों बार घुमाकर उसे पृथ्वी पर पटक दिया १३८३

६ सुदेष्णा ने कहा तुम शीघ्र कीचक के घर जाकर पीने योग्य उत्तम मदिरा ले आओ ... १३८७

७ कीचक ने झोंटा पकड़ कर द्रौपदी को धरती पर गिरा दिया और लात मारी ... १३८६

* इस अङ्क में एक चित्र रङ्गीन, दो चित्र सादे, कम प्रकाशित हो रहे हैं। इसकी कमी अगले अङ्क (पन्द्रह) में पूरी कर दी जायगी।

—प्रकाशक

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ

इक्कीसवाँ अध्याय
भीमसेन और द्रौपदी की बातचीत १३६६

बाइसवाँ अध्याय
द्रौपदी से भीमसेन की सलाह। कीचक का मारा जाना .. १४०२

तेईसवाँ अध्याय
मरघट में उपकीचकों का मारा जाना १४०६

चौबीसवाँ अध्याय
रानी सुदेष्णा, द्रौपदी और बृहन्नला का संवाद १४०८

(गोहरणपर्व)

पचीसवाँ अध्याय
दुर्योधन के पास जाकर उसके जासूसों का कीचक-वध का वृत्तान्त कहना १४१०

छब्बीसवाँ अध्याय
पाण्डवों का पता लगाने के बारे में दुर्योधन आदि का सलाह करना १४११

सत्ताईसवाँ अध्याय
द्रोणाचार्य की सलाह ... १४१२

अट्ठाइसवाँ अध्याय
भीष्म पितामह की सलाह ... १४१२

उनतीसवाँ अध्याय
कृपाचार्य की सलाह ... १४१४

तीसवाँ अध्याय
विराट नगर के लिए सुशर्मा आदि की युद्ध-यात्रा १४१५

इकतीसवाँ अध्याय
युद्ध के लिए राजा विराट की तैयारी १४१६

बत्तीसवाँ अध्याय
सुशर्मा और राजा विराट का युद्ध १४१७

तैंतीसवाँ अध्याय
विराट का हारना, छुटकारा; और फिर सुशर्मा का परास्त होना ... १४१६

चौंतीसवाँ अध्याय
विराटकृत पाण्डवों का सम्मान १४२१

पैंतीसवाँ अध्याय
कौरवों का मत्स्यराज की राजधानी में पहुँचकर गायें छीन ले जाना १४२२

छत्तीसवाँ अध्याय
उत्तर कुमार और द्रौपदी की बातचीत १४२४

सैंतीसवाँ अध्याय
राजकुमारी उत्तरा और बृहन्नला का संवाद १४२५

अड़तीसवाँ अध्याय
उत्तर का डरना और अर्जुन का ढाढ़स बँधाना १४२७

उनतालीसवाँ अध्याय
कौरवों का अर्जुन के सम्बन्ध में बातचीत करना १४३०

चालीसवाँ अध्याय
अर्जुन का उत्तर से शमीवृक्ष पर चढ़कर अस्त्र-शस्त्र उतारने के लिए कहना १४३१

विषय	पृष्ठ
इकतालीसवाँ अध्याय	
उत्तर का वृक्ष पर चढ़कर शस्त्रों को देखना	१४३२
बयालीसवाँ अध्याय	
उत्तर का अस्त्रों के बारे में पूछना	१४३२
तैंतालीसवाँ अध्याय	
अर्जुन का दिया हुआ अस्त्रों का परिचय	१४३३
चवालीसवाँ अध्याय	
अर्जुन का दिया हुआ अपना और अपने भाइयों का परिचय	१४३४
पैंतालीसवाँ अध्याय	
युद्ध करने के लिए अर्जुन की तैयारी	१४३६
छियालीसवाँ अध्याय	
अर्जुन की तैयारी और द्रोणाचार्य का कौरवों से होनेवाले असगुनों का वर्णन करना ...	१४३८
सैंतालीसवाँ अध्याय	
दुर्योधन का उत्तर और युद्ध का निश्चय	१४४०
अड़तालीसवाँ अध्याय	
कर्ण की उक्ति। अर्जुन को मारने की उमङ्ग	१४४२
उनचासवाँ अध्याय	
कृपाचार्य की सम्मति ...	१४४३
पचासवाँ अध्याय	
अश्वत्थामा के वचन ...	१४४४
इक्यावनवाँ अध्याय	
पितामह भीष्म की सलाह ...	१४४६
बावनवाँ अध्याय	
पितामह भीष्म की सम्मति ...	१४४७
तिरपनवाँ अध्याय	
कौरव-दल पर अर्जुन का आक्रमण	१४४८
चौवनवाँ अध्याय	
कर्ण का हारकर युद्ध-क्षेत्र से भागना	१४५०
पचपनवाँ अध्याय	
अर्जुन का अन्य वीरों के साथ युद्ध करने जाना	१४५२
छप्पनवाँ अध्याय	
युद्ध से पहले	१४५५
सत्तावनवाँ अध्याय	
कृपाचार्य और अर्जुन का युद्ध	१४५६
अट्ठावनवाँ अध्याय	
द्रोणाचार्य और अर्जुन का युद्ध	१४५८
उनसठवाँ अध्याय	
अश्वत्थामा से अर्जुन का युद्ध	१४६१
साठवाँ अध्याय	
कर्ण का हार कर भागना ...	१४६२
इकसठवाँ अध्याय	
दुःशासन आदि योद्धाओं का हारना	१४६३
बासठवाँ अध्याय	
सब महारथियों का मिल कर अर्जुन से लड़ना	१४६६
तिरसठवाँ अध्याय	
सब महारथियों का अर्जुन से हार कर भागना	१४६७

विषय	पृष्ठ
चौंसठवाँ अध्याय	
भीष्म पितामह का अर्जुन से हारना	१४६८
पैंसठवाँ अध्याय	
दुर्योधन से अर्जुन का युद्ध ...	१४७०
छाछठवाँ अध्याय	
युद्ध का अन्त। अर्जुन की विजय	१४७१
सड़सठवाँ अध्याय	
उत्तर और अर्जुन का नगर में जाना	१४७४
अड़सठवाँ अध्याय	
विराटका युधिष्ठिर को पाँसे खींच कर मारना	१४७५
उनहत्तरवाँ अध्याय	
उत्तर का उत्तर	१४८०
(वैवाहिक पर्व)	
सत्तरवाँ अध्याय	
पाण्डवों का प्रकट होना ..	१४८१
इकहत्तरवाँ अध्याय	
पाण्डवों से विराट की बातचीत और परिचय	१४८२
बहत्तरवाँ अध्याय	
उत्तरा का ब्याह	१४८४
उद्योगपर्व	
[सेनोद्योगपर्व]	
पहला अध्याय	
श्रीकृष्ण की सलाह	१४८७
दूसरा अध्याय	
बलदेवजी की सलाह ...	१४८६
तीसरा अध्याय	
सात्यकि की सम्मति	१४६०
चौथा अध्याय	
द्रुपद की मन्त्रणा	१४६२
पाँचवाँ अध्याय	
श्रीकृष्ण का प्रस्थान, दूतों का भेजा जाना और राजाओं का आना	१४६३
छठा अध्याय	
राजा द्रुपद का अपने पुरोहित को दूत-कार्य का उपदेश देना ...	१४६५
सातवाँ अध्याय	
रण-निमन्त्रण देने के लिए श्रीकृष्ण के पास दुर्योधन और अर्जुन का जाना	१४६६
आठवाँ अध्याय	
शल्य का आना, रास्ते में उनका सत्कार और दुर्योधन तथा युधिष्ठिर को उनका वचन देना ...	१४६८
नवाँ अध्याय	
वृत्रासुर की कथा	१५०१
दसवाँ अध्याय	
इन्द्र और वृत्रासुर का मेल ...	१५०५
ग्यारहवाँ अध्याय	
राजा नहुष को इन्द्र-पद मिलना और उनका इन्द्राणी को अपने घर बुलाना	१५०८
बारहवाँ अध्याय	
इन्द्राणी का नहुष के पास जाना	१५०६

रङ्गीन चित्रों की सूची

विषय	पृष्ठ
१ कीचक ने द्रौपदी के धोखे भीमसेन के शरीर पर हाथ रक्खा	१४०४
२ कीचक की छाती पर चढ़ कर भीमसेन उसे बार बार ज़ोर से रगड़ने लगे	१४०५
३ भीमसेन ने हाथों से कीचक की छाती की हड्डियाँ और पसलियाँ तोड़ दीं	१४०५
४ उपकीचकों का कीचक के शव को देखना	१४०६
५ द्रौपदी का बन्धविमोचन	१४०८
६ सुशर्मा का परास्त होना ..	१४१६
७ अर्जुन ने पीछे से जाकर उत्तर के केश पकड़ लिये .	१४२६
८ "शत्रु-नाशन अर्जुन शत्रुओं के रोंगटे खड़े कर देनेवाला शङ्ख बजाने लगे" ...	१४३८
९ यों डपट कर विराट ने अपने हाथ के पाँसे धर्मराज के मुँह पर खींच कर मारे......द्रौपदी ने सोने के कटोरे में पानी से वह रक्त धो दिया ...	१४७८
१० मत्स्यनरेश के परिवार की स्त्रियाँ सुशोभित उत्तरा को साथ लेकर विवाह-मण्डप में आईं ...	१४८६
११ शल्य का प्रसन्न होकर कर्मचारियों से पूछना	१४९९
१२ मामा शल्य को आये देखकर युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ कर शल्य से कहा	१५००
१३ इन्द्र का अप्सराओं को त्रिशिरा का तप भङ्ग करने को भेजना	१५०२
१४ देवता और ऋषियों का नहुष के पास आना	१५०८

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ		अशुद्ध		शुद्ध
१४०६	...	कीचक-वध	...	उपकीचकों का कीचक के शव को देखना।—पृ० १४०६
१४०९	...	सुशर्मा-वध		सुशर्मा का परास्त होना।—पृष्ठ १४१६
१४९९	...	उद्योगपर्व—१ वाँ अध्याय।—पृ० ५५	...	शल्य का प्रसन्न होकर कर्मचारियों से पूछना।—पृष्ठ १४९९
१५०२	...	उद्योगपर्व—८ वाँ अध्याय।—पृष्ठ ५६		इन्द्र का अप्सराओं को त्रिशिरा का तपभङ्ग करने को भेजना।—पृष्ठ १५०२

भीमसेन का हनुमान का पर्वताकार भीषण रूप देखकर हर्षित और विस्मित होना ।—पृ० १९९

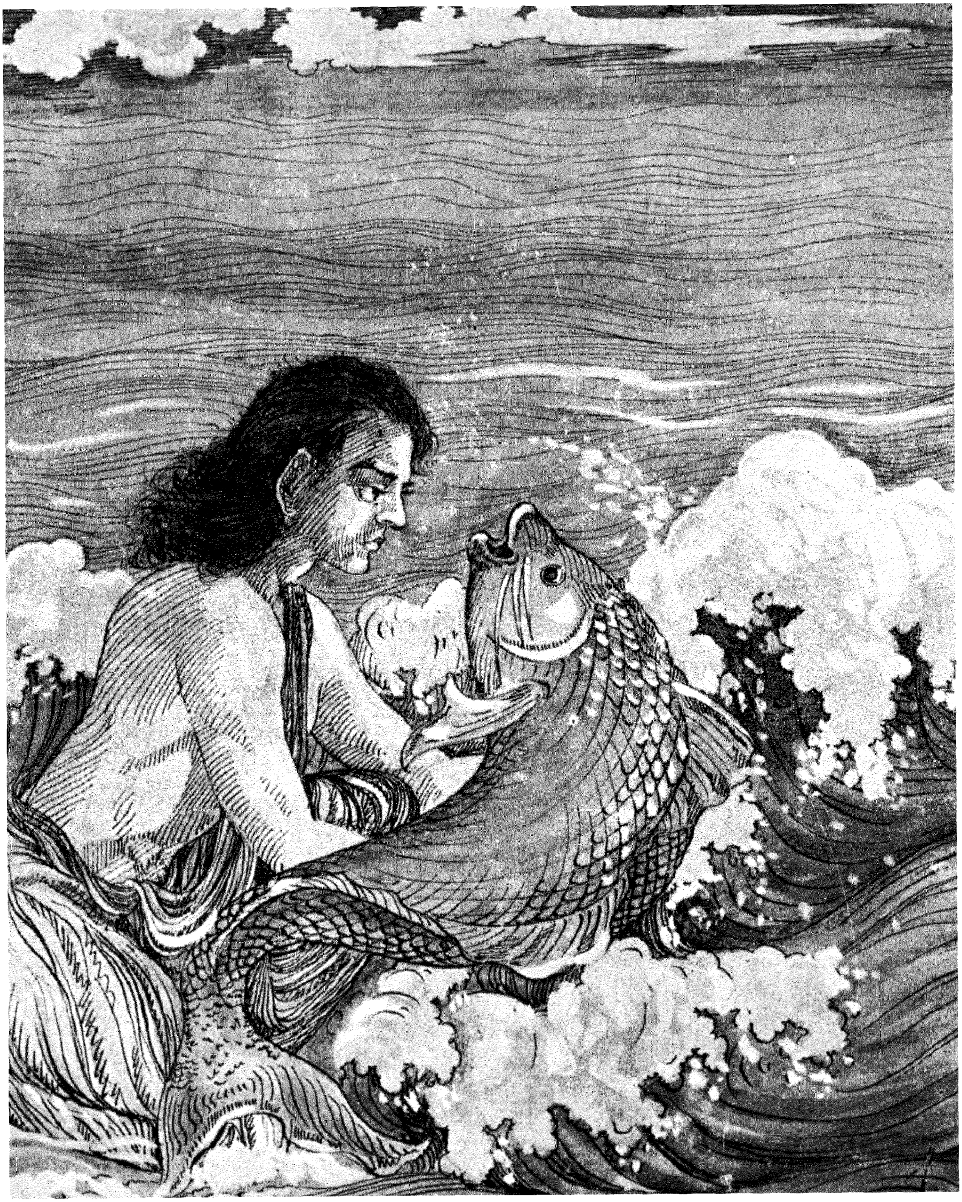

मनु ने उसे गङ्गा से निकाल कर समुद्र में डाल दिया। —पृ० १०७९

एक सौ पचास अध्याय

हनुमान् का अपना पूर्वरूप प्रकट करना और भीमसेन को उपदेश करना

भीमसेन ने कहा—हे महाभाग, मैं आपका पूर्वरूप देखे बिना किसी तरह यहाँ से न जाऊँगा। इसलिए यदि आप मुझ पर कृपा करते हैं तो अपना पहला रूप दिखाइए। तब हनुमान् ने हँसकर अपने भाई का प्रिय करने के लिए वही विशाल भयानक रूप धारण किया जो समुद्र लाँघने के समय धारण किया था। उन्होंने अपने शरीर को ऐसा बढ़ाया कि उसने अपनी लम्बाई-चौड़ाई से सारे कदली-वन को ढक लिया। उनका वह बड़ा शरीर दूसरे पर्वत के समान जान पड़ने लगा। उनकी आँखें लाल, दाढ़ें तीक्ष्ण, मुखमण्डल टेढ़ी भौंहों से भयानक और पूँछ लम्बी थी। भीमसेन को उनका वह भयानक रूप देखने से बार-बार हर्ष और आश्चर्य हुआ। हनुमान् को सूर्य के समान तेजस्वी और सुमेरु तथा आकाश के समान चमकदार देखकर भीमसेन ने आँखें मूँद लीं। यह देखकर हनुमान् ने मुसकराकर कहा—भीम, मैं जितना चाहूँ उतना बढ़ सकता हूँ। किन्तु तुम केवल मेरा ऐसा रूप ही देख सकते हो। हे निष्पाप, मैं शत्रुओं के बीच में इससे बहुत अधिक बढ़ सकता हूँ।

हनुमान् की वह विन्ध्याचल के समान अत्यन्त अद्भुत भयानक मूर्त्ति देखकर भीमसेन ने
हाथ जोड़े। उनको रोमाञ्च हो आया। उन्होंने घबराकर कहा—विभो, मैंने आपका विशाल १०
शरीर देख लिया। अब इसे छोटा कर लीजिए। उदय हुए सूर्य और उठे हुए मैनाक पर्वत के समान आपके इस अप्रमेय, अधर्षणीय शरीर को मैं अब नहीं देख सकता। मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि जब आप रामचन्द्रजी के पास मौजूद थे तब उन्होंने ख़ुद रावण को क्यों मारा! क्योंकि आप तो अकेले ही, अपने बाहुबल से योद्धा और वाहन आदि सहित रावण की लङ्कापुरी को नष्ट कर सकते थे। हे पवन-पुत्र, आपके लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। अपनी सेना समेत रावण आपका सामना नहीं कर सकता था।

यह सुनकर हनुमान् ने स्नेहपूर्ण गम्भीर स्वर से कहा—भाई, तुम जो कहते हो, सो सच है। वह राक्षसाधम रावण किसी तरह मेरा सामना नहीं कर सकता था; किन्तु जो मैं उस लोक-कण्टक रावण को मारता तो श्रीरामचन्द्र की कीर्त्ति में बट्टा लग जाता; इसी से मैंने अपने हाथ से उसे नहीं मारा। रघुवीर ने ख़ुद उस राक्षसाधम को, उसके भाई-बन्धुओं सहित, मार
डाला और अपनी पत्नी को वे अयोध्यापुरी में ले आये। इसी से संसार में उनकी इतनी कीर्त्ति २०
है। भीम, मैं तुमको बहुत प्यार करता हूँ; मैं तुम्हारा सदा हितैषी हूँ। अब तुम निर्विघ्न मार्ग से लौट जाओ। राह में तुम्हारा कुछ अनिष्ट न होगा। वायुदेव तुम्हारी रक्षा करेंगे। हे वीर, इस राह से जाने से सौगन्धिक वन मिलता है। इधर जाने से तुमको कुबेर का बाग़ देखने को मिलेगा। यक्ष और राक्षस उसकी रक्षा किया करते हैं। वहाँ के फूल बलपूर्वक न तोड़ना।

मनुष्यों के लिए देवगण सदा सर्वथा माननीय हैं। वे बलि-पूजा, होम, नमस्कार, मन्त्र और भक्ति से प्रसन्न हुआ करते हैं। भाई, साहस के काम छोड़कर अपने धर्म का पालन करो। अपने धर्म में दृढ़ रहकर उसी को श्रेष्ठ समझो और करते रहो। बृहस्पति के समान चतुर व्यक्ति भी धर्म के ज्ञान और बड़े-बूढ़ों की सेवा के बिना धर्म और अर्थ के मर्म को नहीं जान सकते। जिस जगह अधर्म तो धर्म और धर्म अधर्म कहा जाता हो वहाँ विचारपूर्वक धर्म का निर्णय करना चाहिए। मूढ़ लोग ऐसी जगह पर धोखा खा जाते हैं। आचार से धर्म की उत्पत्ति हुई है। धर्म में ही सब वेद प्रतिष्ठित हैं। सब यज्ञ वेदों से प्रकट हुए हैं। देवताओं की स्थिति यज्ञों से ही है। वेदोक्त आचार और विधियुक्त यज्ञ देवताओं के आधार हैं। बृहस्पति और भृगु की कही नीति के आधार पर मनुष्य चलते हैं। सेवा, बनिज, खेती, गाय आदि पशुओं का पालन, यही सब मनुष्यों की जीविका के उपाय हैं। इन्हीं जीविकाओं से अपना पालन
३० करते हुए द्विजाति के लोग धर्म का पालन करते हैं। ब्राह्मण की याजन-अध्यापन आदि त्रयी विद्या, क्षत्रिय की दण्डनीति और वैश्य की सौदागरी, खेती आदि ये तीन प्रकार की विद्याएँ हैं। इन्हीं को जानकर तीनों वर्णों के लोग इन्हीं के द्वारा अपना निर्वाह करते हैं। धर्म के बिना त्रयी विद्या का होना असम्भव है। जो दण्डनीति न होती तो संसार नियमहीन होने से मर्यादाहीन हो जाता। वैश्यों की व्यापारनीति धर्मसंगत न होती तो प्रजा का नाश हो जाता। तात्पर्य यह कि ये तीनों धर्म यथोचित रूप से पाले जाते हैं तो प्रजा की भलाई और अभ्युदय होता है।

अमृतज्ञान अर्थात् तत्त्वज्ञान ब्राह्मणों का एकमात्र धर्म है; उस पर अन्य वर्ण का अधिकार नहीं है। दान, अध्ययन और यज्ञ करना, ये धर्म तीनों वर्णों के साधारण धर्म हैं। यज्ञ कराना, पढ़ाना और दान लेना, ये भी ब्राह्मणों के ही धर्म हैं। पालन क्षत्रियों का धर्म है। पोषण वैश्यों का धर्म है। ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों की सेवा ही शूद्रों का धर्म है। गुरु अर्थात् त्रिवर्ण के बीच रहनेवाले शूद्रों को भिक्षा (दान लेने) माँगने का, हवन करने का और ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का अधिकार नहीं है। हे भीम, रक्षा करना ही क्षत्रिय का एकमात्र धर्म है। इसलिए उसका पालन तुम्हें भी करना चाहिए। विनयपूर्ण और जितेन्द्रिय होकर तुम अपने धर्म को ग्रहण करो। मनुष्य बुद्धिमान् होता है तो वह शास्त्र के ज्ञाता, सज्जन और वृद्ध पुरुषों से सलाह लेकर, लोगों का कृपापात्र बनकर, दण्ड के द्वारा शासन करता है। जो किसी व्यसन में लिप्त होता है उसका अपमान होता है। राजा अगर अच्छी तरह अपने कर्त्तव्य का ध्यान रखकर दण्ड देता और कृपा करता है तो लोक में धर्म की मर्यादा ठीक बनी रहती है। इसलिए राजा को चाहिए कि वह अपने जासूसों के द्वारा सदा अपने देश और दुर्ग का तथा शत्रु के देश
४० और दुर्ग का हाल जानता रहे। मित्रों के भी बल को जानता रहे। जो प्राप्त हो चुका है उसकी रक्षा का ध्यान रक्खे। शत्रु-मित्र की वृद्धि और क्षय पर भी दृष्टि रक्खे। जासूस,

बुद्धि, सलाह, पराक्रम, दण्ड और कृपा, ये राजाओं के उपाय हैं। और, निपुणता से ही कार्य सिद्ध होते हैं। साम, दान, भेद, दण्ड और उपेक्षा, ये नीतियाँ एक-एक करके या सब मिलकर राजाओं के कार्यों को सिद्ध करती हैं। हे भरतश्रेष्ठ! नीति और जासूस, इन दोनों की जड़ 'सलाह' है। अच्छी तरह सलाह करके जो कार्य करना होगा उसके बारे में ब्राह्मणों के साथ एकान्त में सलाह करनी चाहिए। स्त्री, मूढ़, बालक, लोभी, नीच या पागल के साथ कभी किसी गुप्त विषय के सम्बन्ध में सलाह न करनी चाहिए। विद्वान् के साथ सलाह, होशियार के द्वारा कार्य सिद्ध कराना और हितैषी पुरुष के साथ नीति की चर्चा करना अच्छा होता है। मूर्खों से सब जगह सदा बचता रहे। धार्मिकों को धर्म-कार्य में, पण्डितों को धन के कार्य में, हिजड़ों को रनिवास में और क्रूरों को क्रूर कर्मों में नियुक्त करना चाहिए। सदा अपने और पराये लोगों से मिलकर कार्य-अकार्य के बारे में निश्चय करना अच्छा है। शत्रुओं के बलाबल को भी सदा जानते रहना योग्य है। विचारपूर्वक शरणागत सज्जन पर कृपा करना और मर्यादा-हीन उद्दण्ड व्यक्ति को दण्ड देना चाहिए। इस प्रकार राजा यदि अच्छी तरह सोच-विचारकर दण्ड देने और कृपा करने में प्रवृत्त होता है तो संसार की मर्यादा बनी रहती है। हे भीम, मैंने यह तुमसे कठिन राजधर्म कह दिया। अब तुम विनयधारणपूर्वक अपनी जाति के धर्म का पालन
करो। ब्राह्मण लोग जैसे तप, धर्म, दम और यज्ञ के द्वारा स्वर्ग को जाते हैं और वैश्य जैसे ५०
दान, अतिथिसेवा आदि धर्मों का पालन करके सद्गति को प्राप्त होते हैं वैसे ही क्षत्रिय लोग भी काम, द्वेष, लोभ, क्रोध आदि को छोड़कर यथार्थ रूप से दण्ड का प्रयोग करके, निग्रह और
प्रजा-पालन करते हुए, स्वर्ग और साधु पुरुषों के लोकों को प्राप्त होते हैं। ५२

एक सौ इक्यावन अध्याय

हनुमान् और भीमसेन की बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, तब हनुमान् ने अपनी इच्छा से बढ़ाये हुए शरीर को छोटा कर लिया और दोनों हाथ फैलाकर भीमसेन को गले से लगा लिया। भीमसेन की सारी थकन दूर हो गई। सब बातें अनुकूल हो गईं। तब उन्होंने अपने को महाबली और अद्वितीय प्रतापी समझा। हनुमान्‌जी स्नेहवश आनन्द के आसू बहाते हुए गद्गद स्वर से बोले—भाई भीमसेन, तुम अब अपने निवासस्थान को जाओ। जब कभी यह चर्चा चले तब मुझे स्मरण करना, और मेरे यहाँ रहने का हाल किसी के आगे मत कहना। गन्धर्वों की स्त्रियाँ कुबेर के भवन से यहाँ पर आया करती हैं। उनके आने का समय हो गया है। इसलिए तुम शीघ्र यहाँ से चल दो। हे वीर, तुमको देखकर मैं अपने नेत्रों को सफल समझता हूँ। तुम्हारे मनुष्य शरीर का स्पर्श करने से मुझे उन्हीं सीता के मुख-कमल के भ्रमर, रावणरूपी अन्धकार को

नष्ट करनेवाले रघुकुल-सूर्य, लोक-हृदयानन्दन रामरूपी विष्णु का स्मरण हो आया है। मैं
आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी यह मुझसे भेंट निष्फल न हो। तुम भाई के स्नेह का विचार
करके मुझसे वरदान माँगो। यदि अभी हस्तिनापुर में जाकर दुष्ट धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारने
और शिलावृष्टि से सारे नगर को चूर्ण करने के लिए तुम कहो तो मैं वह करने को तैयार हूँ।
१० कहो तो दुर्योधन को बाँधकर अभी तुम्हारे पास ले आऊँ?

यह सुनकर भीमसेन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—हे वानरश्रेष्ठ, आप मेरा सब काम
कर चुके। आपका मङ्गल हो। मैं आपसे यही प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझ पर प्रसन्न हों।
हे महाबाहो, आज पाण्डव लोग आपकी सहायता पाकर सनाथ हुए। इसमें सन्देह नहीं कि
हम आपके तेज के प्रभाव से ही अपने सब शत्रुओं को जीत लेंगे। भीम के ये वचन सुनकर हनु-
मान् ने कहा—हे वीर, मैं भ्रातृस्नेह और सौहार्द के कारण तुम्हारा यह प्रिय करूँगा कि तुम शत्रुओं
की सेना में घुसकर जब सिंहनाद करोगे तब मैं अपने शब्द से तुम्हारे उस शब्द को बढ़ा दूँगा।
और, अर्जुन की ध्वजा के ऊपर रहकर युद्ध-भूमि में मैं ऐसा भयङ्कर शब्द करूँगा कि उसी शब्द
से शत्रुओं के प्राण निकल जायँगे। फिर तुम लोग सहज ही उन्हें मार लोगे। इस प्रकार
१९ भीमसेन से बातचीत करके और राह बताकर वानरराज हनुमान् वहाँ पर अन्तर्द्धान हो गये।

एक सौ बावन अध्याय

भीमसेन का सौगन्धिक वन में जाना

वैशम्पायन कहते हैं—महावीर हनुमान् के चले जाने पर भीमसेन, उनकी बताई राह से, गन्धमादन पर्वत पर आगे बढ़े। हनुमान् के विशाल शरीर, निरुपम शोभा और रामचन्द्र के माहात्म्य-बल-विक्रम आदि को वे राह में स्मरण करते जाते थे। इस प्रकार सौगन्धिक वन की खोज करते-करते भीमसेन ने देखा कि एक स्थान पर रमणीय वन और उपवन अनेक प्रकार के विचित्र फूलों से शोभित हो रहे हैं। वहाँ किसी जगह पर फूले हुए वृक्षों से शोभित सरोवर मन को हर रहे हैं। किसी स्थान पर वैसी ही शोभायमान नद और नदियाँ बह रही हैं। कहीं पर कीचड़ से सने हुए मस्त हाथी मेघमाला के समान इधर-उधर विचर रहे हैं। किसी जगह चञ्चल दृष्टिवाले मृग घास के कौर मुँह में दबाये हुए मृगियों के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। कहीं पर वराह, भैंसे, सिंह आदि के झुण्ड विचर रहे हैं। यह सब देखते हुए भीमसेन अपनी वीरता और विक्रम के भरोसे बेखटके पर्वत के भीतरी भाग में घुसे। वहाँ अनेक प्रकार के प्रफुल्लित सुगन्धपूर्ण वृक्ष, हवा से हिलकर, अपने लाल-लाल नव पल्लवों को हाथ की तरह फैलाकर मानों भीमसेन को अपनी ओर बुला रहे थे। उन्होंने देखा, राह में मस्त भौंरे जिन पर मँडरा रहे हैं वे कमल के वृक्ष मुकुलित पद्मपुष्परूप हाथ जोड़े खड़े हैं। द्रौपदी की प्रेरणा से जाते हुए भीम-

सेन फूले हुए वृक्षों से शोभित शिखरों पर के वृक्षों को देखते और प्रसन्न होते हुए फ़ुर्ती से आगे
बढ़ने लगे। दूसरे दिन सवेरे महाबली भीमसेन उस मृगों से पूर्ण वन में विचरते-विचरते ऐसे १०
स्थान पर पहुँचे, जहाँ एक बड़ी भारी नदी देख पड़ी। उसमें सुनहरे कमल के वृक्ष लगे हुए थे।
हंस, कारण्डव, चक्रवाक आदि विविध जलचर पक्षी उस नदी में थे। वह नदी पर्वत के गले में
पड़ी हुई कमलों की माला के समान जँचती थी। भीमसेन ने खोजते-खोजते उसी के जल में प्रातः-
काल के सूर्य के समान प्रभावाला प्रीतिप्रद सौगन्धिक वन देखा। देखते ही मनोरथ सिद्ध होने
से मन ही मन उन्होंने वनवास के क्लेशों को सहती हुई अपनी प्यारी द्रौपदी को स्मरण किया। १४

एक सौ तिरपन अध्याय

कुबेरसरोवर का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, इस प्रकार जाते-जाते भीमसेन कुबेर-सरोवर के पास पहुँचे। कैलासशिखर पर, कुबेर के भवन के पास, पहाड़ी झरनों से यह सरोवर बना है। उसकी रक्षा राक्षस किया करते हैं। उसमें हरे और सुनहरे कमल छाये हुए हैं। घनी छायावाली लताएँ और अनेक प्रकार के पक्षी उस स्थान की शोभा बढ़ा रहे हैं। उसके किनारे के स्थान बड़े ही मनोरम हैं। उसमें कीचड़ का नाम नहीं है। वह सरोवर पर्वतशिखर पर है। उसमें निर्मल जल भरा हुआ है। वह अद्भुत और सुहावना है। उसका जल शीतल, हलका और अमृत के समान स्वादिष्ठ है। भीमसेन ने वहाँ पहुँचकर उसका निर्मल जल ख़ूब पिया। फिर देखा कि वैदूर्य की डंडी और सोने के पत्तेवाले बहुत से विचित्र मनोहर सुगन्धित कमल उसमें खिल रहे हैं। हंस, कारण्डव आदि पक्षियों

के इधर-उधर विचरने से कमलों का विमल सुगन्धित पराग बराबर उड़ा करता है। महात्मा कुबेर उसमें जलविहार किया करते हैं। देवता, गन्धर्व, अप्सरा, ऋषि, यक्ष, किन्नर, किम्पुरुष, राक्षस

आदि वहाँ रहते हैं। उस सरोवर और सौगन्धिक वन को देखते ही भीमसेन बहुत प्रसन्न
१० हुए। महाराज कुबेर की आज्ञा से हज़ारों क्रोधवश नाम के राक्षस विचित्र शस्त्र लिये, विचित्र
पहनावा पहने, उस स्थान की रक्षा किया करते हैं। वे सोने के गहने और मृगचर्म पहने, शस्त्र
धारण किये, खड्ग लिये, कमलों के फूल लेने को बेखटके चले आ रहे भीमसेन को देखकर
परस्पर कहने लगे—ये मृगचर्मधारी सशस्त्र पुरुषसिंह क्या करने के लिए यहाँ आये हैं, इनसे
अवश्य पूछना चाहिए। अब उस सरोवर के रक्षक लोग भीमसेन के पास आकर पूछने लगे—
हे तेजस्वी पुरुष, तुम कौन हो? तुम्हारा वेष मुनियों का सा होने पर भी तुम क्षत्रियों की तरह
१६ शस्त्र बाँधे हुए देख पड़ते हो। बतलाओ, तुम किसलिए यहाँ आये हो।

एक सौ चौवन अध्याय

भीमसेन का राक्षसों के साथ युद्ध

भीमसेन ने कहा—हे राक्षसो, मैं महात्मा पाण्डु का पुत्र और युधिष्ठिर का छोटा भाई हूँ। मेरा नाम भीमसेन है। मैं भाइयों के साथ यहाँ विशाल बदरिकाश्रम में आया हूँ। एक समय हमारी धर्मपत्नी द्रौपदी ने वहाँ पर एक बहुत ही उत्तम सुगन्धित कमल का फूल देखा। जान पड़ता है, वह यहीं से हवा में उड़कर वहाँ गया होगा। द्रौपदी ने उस तरह के बहुत से फूलों की इच्छा प्रकट की। उन्हीं के लिए फूल लेने को मैं यहाँ आया हूँ।

राक्षसों ने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ, यह स्थान यक्षराज कुबेर की प्यारी क्रीड़ाभूमि है। मरणशील मनुष्य इस स्थान पर नहीं आ सकते। हे भीम! देवता, देवर्षि, यक्ष, अप्सराएँ और गन्धर्व यक्षराज कुबेर से पूछकर इस सरोवर का जल पीते और यहाँ विचरते हैं। जो कोई ढिठाई के मारे यक्षराज का अनादर करके यहाँ आना चाहता है वह अन्यायी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। तुम यक्षराज का अनादर करके बलपूर्वक कमल के फूल ले जाना चाहते हो; फिर भी अपने को धर्मराज युधिष्ठिर का भाई बता रहे हो! पहले कुबेरजी से पूछ आओ; फिर यहा जल पियो और फूल ले जाओ। नहीं तो कमलों के फूल ले जाना तो दूर की बात है, इधर तुम आंख उठाकर देख भी नहीं सकते।

भीमसेन ने कहा—हे राक्षसो, इस समय धनपति कुबेर मुझे यहा देख नहीं पड़ते। जो
वे देख भी पड़ें तो मैं उनके आगे मागने की दीनता नहीं प्रकट कर सकता। क्योंकि सदा से प्रच-
लित सनातन धर्म के अनुसार राजा लोग कभी किसी के आगे हाथ नहीं पसारते। मैं किसी
१० तरह अपनी क्षत्रिय जाति के धर्म को नहीं छोड़ सकता। यह सरोवर भी पहाड़ी झरने से
उत्पन्न हुआ है—कुबेर के भवन में नहीं है। इस कारण इस पर कुबेर का जैसा अधिकार है
वैसा ही अधिकार सब प्राणियों का है। ऐसी दशा में कौन किससे माँगे?

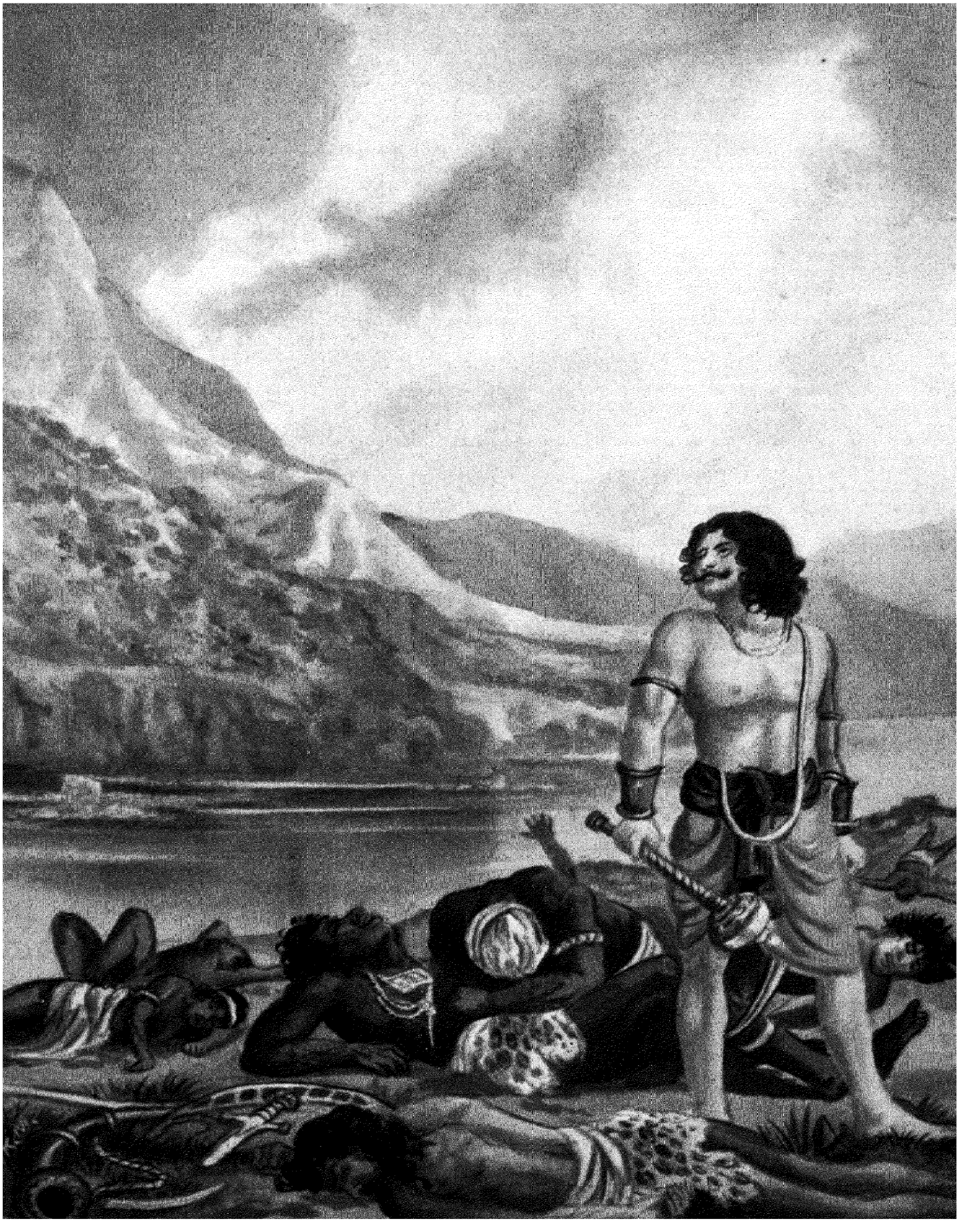

सबने देखा महात्मा भीमसेन दण्ड हाथ में लिये यमराज के समान खड़े हैं। पृ० १००७

महाबली भीमसेन, राक्षसों से यों कहकर, उस सरोवर के भीतर घुस पड़े। तब वे रक्षक राक्षस चारों ओर से मना करते चिल्लाते हुए उनकी ओर दौड़ पड़े। भीमसेन ने जब उनके चिल्लाने और मना करने पर ध्यान नहीं दिया तब राक्षस कुपित होकर "पकड़ो, मारो, काटो, पकावो, खा डालो" कहते, शस्त्र उठाये, लाल-लाल आँखें निकाले भीमसेन पर आक्रमण करने के लिए झपटे। तब सुवर्ण-मण्डित, यमदण्ड सी भारी गदा उठाकर ठहरो! ठहरो! कहते हुए भीमसेन ने भी बड़े वेग से शत्रु-दल पर आक्रमण किया। क्रोध के मारे किटकिटाये
हुए वे राक्षस भीमसेन को मारने के
लिए चारों ओर से घेरकर उन पर
तोमर, पट्टिश, त्रिशूल आदि अस्त्र-
शस्त्रों की वर्षा करने लगे। भीमसेन
कुन्ती के गर्भ से वायु के अंश से
उत्पन्न, शूर, तपस्वी, बली, शत्रुनाशन,
सत्यवादी और धर्मात्मा थे। इसी
कारण शत्रु उनका कुछ नहीं बिगाड़
सके। वे रणभूमि में शत्रुओं का
नाश करते हुए इधर-उधर विचरने
लगे। रखवालों के अस्त्र-शस्त्रों को
सहज ही नष्ट करते हुए भीमसेन ने
बात की बात में सैकड़ों राक्षसों को
यमपुरी भेज दिया। उन राक्षसों ने २०
महाबली भीमसेन का बाहुबल, विद्या
और वीरता देखकर एकाएक युद्ध रोक
दिया। वे भीमसेन के भीम वेग को नहीं सह सके। भीमसेन के प्रचण्ड प्रहार से पीड़ित और परास्त होकर वे राक्षस आकाशमार्ग से भागकर कैलास पर्वत के शिखर पर पहुँचे। इन्द्र जैसे पराक्रमपूर्वक दानवों का संहार करें वैसे ही शत्रुओं का संहार करके भीमसेन ने सरोवर के भीतर जाकर मनमाने कमल के फूल तोड़े और उसका अमृत तुल्य जल पिया। फिर हरे होकर भीमसेन सौगन्धिक वन के कमलों को फिर भी तोड़ने लगे।

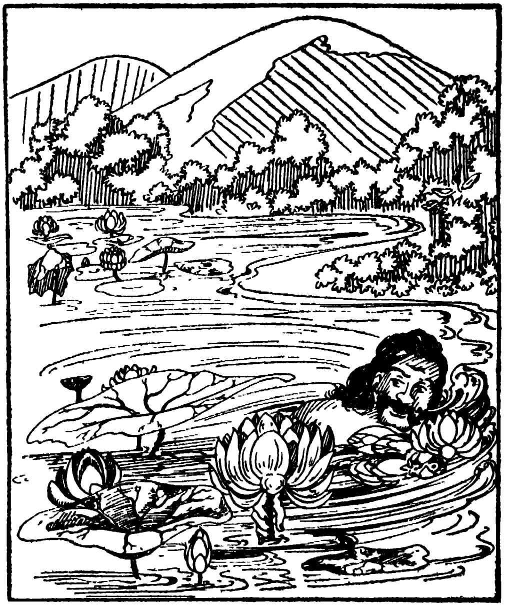

उधर भीमसेन के मारे-पीटे, खिसियाये हुए राक्षस डरकर कुबेर के पास पहुँचे। उन्होंने कुबेर से सब हाल कहा और भीमसेन के बल का वर्णन किया। उनके वचन सुनकर यक्षराज हँसे। उन्होंने कहा—हे राक्षसो, वहाँ कमल लेने के लिए भीमसेन के आने की बात मुझे पहले से ही

मालूम है। वे द्रौपदी को प्रसन्न करने के लिए यह काम करने आये हैं। इसलिए उन्हें इच्छानुसार कमल के फूल चुन लेने दो। तब कुबेर की अनुमति पाकर वे राक्षस शान्त भाव से भीमसेन के
२७ पास लौट आये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि भीमसेन उसी सरोवर में क्रीड़ा कर रहे हैं।

एक सौ पचपन अध्याय

भीमसेन के न पहुँचने से युधिष्ठिर का घबराना और भीमसेन का मिलना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय! भीमसेन ने मूल्यवान्, बहुरूप, विचित्र कमल के फूल तोड़कर जमा किये। इधर बदरिकाश्रम में, जहाँ युधिष्ठिर थे, संग्राम-सूचक कठिन स्पर्श-वाला पवन, धूल बरसाता हुआ, वेग से चलने लगा। उल्कापात और बिजली की कड़क से चारों ओर सब लोग डर से व्याकुल हो उठे। सूर्य फीके पड़कर अँधेरे में छिप गये। भूकम्प और धूल की वर्षा होने लगी। दिशाओं में लाली छा गई। मृग और पक्षी कर्कश शब्द करते हुए दिखाई पड़ने लगे। सब ओर अँधेरा ही अँधेरा छा गया। कुछ भी सूझ या समझ नहीं पड़ता था। इसके सिवा और भी अनेक भयानक उत्पात दिखाई पड़ने लगे। इन अद्भुत घटनाओं को देखकर धर्मराज युधिष्ठिर ने नकुल-सहदेव से कहा—भाइयो, जान पड़ता है, कोई हमें परास्त करने का या हम पर आक्रमण करने का विचार कर रहा है। इसलिए तुम भी तैयार हो जाओ। तुम्हारा भला हो। मुझे ऐसा देख पड़ता है कि हमारे पराक्रम प्रकट करने का यह ठीक समय आ पहुँचा है। अब युधिष्ठिर ने इधर-उधर देखा, और जब कहीं भीमसेन को न देख
१० पाया तब द्रौपदी से कहा—हे पाञ्चाली, भीमसेन कहाँ हैं? वे क्या कोई काम करने गये हैं? जान पड़ता है, साहस-प्रिय भीम ने ही कोई साहस का काम किया है। इसी से यह महायुद्ध की सूचना देनेवाली भयानक उत्पातपरम्परा अकस्मात् चारों ओर दिखाई देने लगी है।

तब द्रौपदी ने राजा को अपनी मन्द मुसकान से प्रसन्न करके कहा—राजन्, वह जो विचित्र सुगन्धवाला सुवर्णकमल हवा से उड़कर यहाँ आ गया था उसे मैंने भीमसेन को दिखा-कर कहा था कि जो तुम इस तरह के बहुत से फूल यहाँ कहीं पर पा जाओ तो वे सब मेरे लिए तोड़ लाओ। जान पड़ता है, वे मेरा प्रिय करने के लिए उसी काम से पूर्व-उत्तर कोने को गये हैं। यह सुनकर युधिष्ठिर ने नकुल-सहदेव से कहा—चलो, भीमसेन जिस तरफ़ गये हैं उधर ही चलें। राक्षस लोग इन थके हुए और दुर्बल ब्राह्मणों को लादकर ले चलें। हे देव-तुल्य पुत्र घटोत्कच, तुम द्रौपदी को ले चलो। भीमसेन हवा के समान फुर्तीले और पृथ्वी को लाँघने में गरुड़ के समान वेगशाली हैं। वे सहज ही आकाश में जा सकते हैं, यथेष्ट भ्रमण कर सकते हैं। उन्हें जब इतनी देर हुई तब स्पष्ट ही जान पड़ता है कि वे किसी ओर बहुत दूर

युधिष्ठिर भीमसेन को यों उपदेश करके उस सरोवर म जल-विहार करने लगे।—पृ० १००७

चले गये हैं। हे निशाचरो, वे ब्रह्मवादी सिद्धों का कोई अपराध न करने पावें; उससे पहले ही
हम लोग तुम्हारे प्रभाव से उनके पास पहुँच जायँ। २०

घटोत्कच आदि निशाचर उस कुवेरसरोवर के समीप के स्थान को जानते थे। इसी लिए प्रसन्नतापूर्वक पाण्डवों और सब ब्राह्मणों को लादकर लोमशजी के साथ जल्दी से उसी सौगन्धिक कमलों से शोभित, सुन्दर वनोंवाले परम रमणीय कुवेरसरोवर में पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर सबने देखा महात्मा भीमसेन, प्रलयकाल के समय दण्ड हाथ में लिये खड़े यमराज के समान, क्रोध से होंठ चबाते, भीषण गदा लिये सरोवर के किनारे खड़े हैं। सैकड़ों यक्ष और राक्षस मरे हुए पड़े हैं। किसी का शरीर छिन्न-भिन्न हो गया है, किसी का हाथ टूट गया है, किसी की आँखें निकल पड़ी हैं, किसी की जाँघ टूट गई है, किसी की गर्दन दो टुकड़े हो गई है। यह देखते ही धर्मराज ने जल्दी से जाकर भीमसेन को गले से लगा लिया। फिर मधुर स्वर से कहा—भाई, यह तुमने क्या किया? ख़ैर, जो हुआ सो हुआ, अब फिर ऐसा साहस और देवताओं का अप्रिय कभी न करना; नहीं तो मैं तुमसे बहुत अप्रसन्न होऊँगा। भीमसेन को यों उपदेश करके देवतुल्य पाण्डव उस सरो-

वर के वे फूल लेकर वहीं जलविहार करने लगे। इसी बीच में वहाँ के रक्षक, शस्त्र हाथ में
लिये, कुबेर के पास से लौटकर वहाँ आये। वहाँ धर्मराज युधिष्ठिर, महर्षि लोमश, नकुल, ३०
सहदेव, और अन्यान्य ब्राह्मणों को देखकर नम्रता के साथ उन्होंने प्रणाम किया। धर्मराज ने
सान्त्वना देकर उनको भी प्रसन्न कर दिया। फिर वे पाण्डव, कुबेर की आज्ञा लेकर, अर्जुन के
आने की राह देखते हुए कुछ दिन तक उसी गन्धमादन के शिखर पर ठहर गये। ३४

एक सौ छप्पन अध्याय

युधिष्ठिर का आकाशवाणी सुनकर फिर बदरिकाश्रम को लौट जाना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, एक दिन युधिष्ठिर ने द्रौपदी से, ब्राह्मणों से और भाइयों से कहा—देवता और ऋषि जहाँ की यात्रा कर चुके हैं उन रमणीय वनों और पवित्र मङ्गलमय तीर्थों को हम देख चुके; ऋषियों और राजर्षियों के अनेक मनोहर उपाख्यान भी हम सुन चुके। उन तीर्थों और आश्रमों में जाकर ब्राह्मणों के साथ हमने स्नान किया, जल-पुष्प आदि सामग्री से देवताओं की पूजा की, फल-मूल आदि से पितरों का तर्पण-श्राद्ध और अतिथियों का यथाशक्ति सत्कार किया। हमने महात्मा ब्राह्मणों के साथ रमणीय पर्वत, सरोवर, समुद्र, इला, सरस्वती, सिन्धु, यमुना, नर्मदा आदि पवित्र तीर्थों में स्नान दान आदि पुण्यकर्म किये हैं। हरिद्वार को लाँघकर अनेक प्रकार के रमणीय पर्वत, विविध पक्षियों से पूर्ण हिमालय, नर-नारायण का आश्रम
१० विशाल बदरीवन और सिद्ध-देवर्षि-पूजित सब दिव्य सरोवर भी हम देख चुके। हे ब्राह्मणो, इस प्रकार महात्मा लोमश ने हमको क्रमपूर्वक सब पुण्यस्थानों के दर्शन करा दिये हैं। अब हम इस सिद्ध-सेवित पवित्र कुबेर के भवन को किस तरह जाकर देखें, इसका कोई उपाय सोचिए।

धर्मराज यों कह रहे थे कि एकाएक यह आकाशवाणी सुन पड़ी—"राजन्, जिस राह से कुबेर के भवन को जाना होता है वह बहुत ही दुर्गम है। उधर तुम न जा सकोगे। इसलिए जिस राह से आये हो उसी से बदरिकाश्रम को लौट जाओ। हे युधिष्ठिर, वहाँ से सिद्ध-चारण-सेवित फूलों और फलों से पूर्ण रमणीय वृषपर्वा के आश्रम को जाना। वहाँ से आर्ष्टिषेण के आश्रम में जाकर रहना"। इसी समय दिव्य गन्ध से मनोहर सुखदायक शीतल शुद्ध पवन फूलों की वर्षा करने लगा। ऋषि, विप्र और राजा युधिष्ठिर उस आकाशवाणी को सुनकर बहुत चकराये। धौम्य ने कहा—हे युधिष्ठिर, अब हम उत्तर दिशा में यहाँ से आगे नहीं जा सकते; आओ लौट चलें। धौम्य का कहा मानकर भीमसेन आदि भाइयों और लोमश आदि ब्राह्मणों के साथ द्रौपदी को लेकर महाराज युधिष्ठिर लौट पड़े और बदरिकाश्रम में
२१ आकर सुखपूर्वक रहने लगे।

जटासुरवधपर्व

एक सौ सत्तावन अध्याय

जटासुर-वध

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, फिर भीमसेन के पुत्र घटोत्कच और अन्यान्य राक्षस युधिष्ठिर से बिदा होकर वहाँ से चल दिये। पाण्डव लोग अर्जुन के आने की राह देखते हुए

उन ब्राह्मणों के साथ बेखटके बदरिकाश्रम के पास पर्वतराज पर रहने लगे। एक समय, जब भीमसेन नहीं थे, एक राक्षस आया और पाण्डवों-सहित द्रौपदी को उठाकर वहा से ले जाने के लिए तैयार हुआ। अपने को अच्छा सलाहकार और अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञाता ब्राह्मण बताकर वह जटासुर वहाँ, पाण्डवों के पास, पहले से ही रहता था और पाण्डवों के तरकस, धनुष तथा द्रौपदी को हर ले जाने की घात में था। उस दुष्ट पापी राक्षस को युधिष्ठिर ने अपने पास रक्खा और उसका पालन किया था। वे नहीं जानते थे कि यह राख में छिपी हुई आग है। जब भीमसेन शिकार करने चले गये और घटोत्कच अपने अनुचरों-सहित दूर निकल गया तथा लोमश

आदि तपस्वी महर्षि भी नहाने-धोने
और फूल समिधा आदि लेने के लिए
आश्रम से दूर चले गये तब, मौक़ा
पाकर, उस कपटवेषधारी राक्षस ने अपना
अत्यन्त भयानक असली रूप धारण
कर लिया। फिर वह सब शस्त्रों,
तीनों पाण्डवों और द्रौपदी को लेकर
वहाँ से चल दिया। सहदेव ने यत्न
करके अपने को उस दुष्ट के हाथ से
छुड़ा लिया और अपना कौशिक नाम १०
का खड्ग भी उससे छीन लिया। फिर
वे उस खड्ग को घुमाते हुए उस राह पर
चले जिधर भीमसेन गये थे। सहदेव
बारम्बार भीमसेन को पुकारने लगे।

युधिष्ठिर को राक्षस हरे लिये जा रहा था। युधिष्ठिर ने उससे कहा—अरे मूढ़, तेरा धर्म नष्ट हो रहा है, तू उसे नहीं देखता। मनुष्य, पशु-पक्षी आदि, विशेषकर राक्षस, सभी धर्म की रक्षा करते हैं। धर्म का मूल राक्षस हैं, वे उत्तम रीति से धर्म को जानते हैं। यह सब विचारकर धर्म का पालन करते हुए तुझको हमारे पास रहना चाहिए। हे राक्षस! देवता, पितर, ऋषि, गन्धर्व, नाग, राक्षस, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, चींटी आदि अन्यान्य प्राणी मनुष्यों के आश्रय से अपनी जीविका चलाते हैं। वैसे ही हमारे पास रहने से तेरी भी जीविका चलती थी। मनुष्यों की समृद्धि से ही तुम लोगों की वृद्धि होती है। मनुष्य ही हव्य-कव्य आदि के द्वारा देवताओं की पूजा करते हैं और उसी से देवताओं की वृद्धि होती है। मनुष्य जब शोका-

कुल होते हैं तब देवताओं को भी शोक होता है। हे राक्षस, हम लोग राष्ट्र (देश) का पालन और रक्षा करते हैं। जिस राष्ट्र की रक्षा नहीं होती वहाँ सुख-सम्पत्ति कहाँ! बिना किसी अपराध के राजा का अपमान करना कदापि राक्षसों का कर्त्तव्य नहीं है। हे मनुष्याहारी राक्षस, हमने कभी किसी का अपकार नहीं किया। हम तो यथाशक्ति देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करके उनके खाने से बचा हुआ अन्न खाते हैं; गुरुओं और ब्राह्मणों को सदा नमस्कार करते हैं। मित्र के साथ, जो अपने ऊपर विश्वास रखता हो उसके साथ, जिसका अन्न खाय और जिसके आश्रय में रहे उसके साथ, कभी विश्वासघात या विद्रोह न करना चाहिए। हे राक्षस, तू हमारे पास सुख और सम्मान के साथ रहा, हमारा अन्न तूने खाया; अब हमें हरकर ले जाना चाहता है! हे दुर्बुद्धि दानव, तेरे इस कुकर्म से कभी तेरा भला नहीं हो सकता। ऐसा कर्म करनेवाले का आचार, बुद्धि और बड़प्पन सब वृथा होता है। तू मरने के ही योग्य है। तू अपनी करतूत की बदौलत अब वृथा मारा जायगा। और जो तेरी बुद्धि ऐसी ही दुष्ट है तो हमारे अस्त्र-शस्त्र हमको देकर युद्ध कर; युद्ध में हमको हराकर द्रौपदी को ले जा। और जो तू अज्ञानवश होकर यह काम करने पर उतारू है तो केवल अधर्म और संसार में अयश ही तेरे हाथ लगेगा। हे राक्षस, तूने द्रौपदी को छूकर आज वैसा ही काम किया है जैसे कोई घड़े में विष घोलकर उसे पिये।

अब युधिष्ठिर ने अपने शरीर को बहुत भारी कर लिया। बोझ से दब जाने के कारण वह राक्षस पहले की तरह तेज़ी से चलने में असमर्थ हो गया। तब युधिष्ठिर ने नकुल, सहदेव और द्रौपदी से कहा—तुम अब डरो मत; मैंने इस अधम राक्षस की तेज़ भागने की शक्ति को हर लिया है और पवनपुत्र भीमसेन भी समीप आ गये हैं। वे अभी आते होंगे; उनके आते ही यह दुष्ट जीता न बचेगा। महाबली सहदेव ने उस राक्षस को मोहाभिभूत देखकर युधिष्ठिर से कहा—महाराज, क्षत्रिय के लिए युद्ध से बढ़कर अच्छा काम और क्या होगा? उसे चाहिए कि सामने युद्ध में लड़कर शत्रु को जीते अथवा अपने प्राण दे दे। राजन्, यह समय और देश युद्ध के लिए उपयुक्त है; यह हमें मार डालेगा या हम इसे मार डालेंगे। हे सत्यपराक्रमी! क्षत्रिय-धर्म प्रकट करने का यह उपयुक्त अवसर हमें मिला है। इसलिए हम युद्ध करके या तो मर जायँगे और या विजयी होंगे। हम दोनों तरह से सद्गति पावेंगे। महाराज, राक्षस जीता रहा और सूर्य अस्त हो गये तो फिर मैं अपने को क्षत्रिय न कहूँगा—यह प्रतिज्ञा करता हूँ। अरे राक्षस, ठहर जा; मैं पाण्डु का पुत्र सहदेव हूँ। या तो तू हमें मारकर द्रौपदी को ले जायगा या हमारे हाथों से मारा जायगा।

सहदेव इस तरह उस राक्षस से कह रहे थे, इसी समय महाबाहु भीमसेन वज्रपाणि इन्द्र की तरह गदा हाथ में लिये टहलते हुए वहाँ पहुँच गये। उन्होंने देखा कि एक राक्षस द्रौपदी,

युधिष्ठिर और नकुल को हर ले जाने के लिए तैयार है। किन्तु कालवश होने के कारण दैव की प्रेरणा से वह सबको लिये वहीं पर चक्कर लगा रहा है, जाता नहीं है; और सहदेव उसे डाँट-फटकार रहे हैं। यह देखकर क्रोधित भीमसेन ने जटासुर से कहा—अरे पापबुद्धि राक्षस, तुझे पहले ही शस्त्रों की परीक्षा करने की चेष्टा करते देखकर जान लिया था कि तू कोई छिपा हुआ
राक्षस है। तुझे घास-फूस की तरह तुच्छ जानकर ही मैंने उस समय नहीं मारा। उस समय ४०
तू ब्राह्मण का वेष धारण किये, प्रियवादी और प्रिय कार्य किया करता था। तूने कभी हमारा अप्रिय नहीं किया। ख़ासकर उस समय तू ब्राह्मणवेषधारी निरपराध अतिथि था। इसी से मैंने तुझे नहीं मारा। उस दशा में राक्षस जानकर भी तेरी हत्या करने से मुझे नरकगामी होना पड़ता। इसके सिवा जब तक काल नहीं आता तब तक कोई किसी को मार नहीं सकता। अब तेरा काल आ गया है। जो ऐसा न होता तो तू द्रौपदी को हर ले जाने की दुर्बुद्धि के वश में न हो जाता। जल में विचरनेवाली मछली की तरह काल-सूत्र में लगे हुए द्रौपदीरूप काँटे को तू निगल गया है। फिर अब किस तरह जीता रह सकता है? तू जहाँ जाना चाहता था वहाँ तेरा मन ही जा सका है, तू न जा सकेगा। तू उसी राह को जायगा जिस पर बकासुर और हिडिम्बासुर गये हैं।

काल-प्रेरित वह राक्षस भीमसेन के यों कहने पर डर के मारे पाण्डवों को और द्रौपदी को छोड़कर युद्ध के लिए तैयार हुआ। क्रोध के मारे उसके ओठ फड़कने लगे। उसने भीमसेन से कहा—हे पापी, मुझे दिग्भ्रम नहीं हुआ। मैं तेरी ही बाट जोहता था। मैंने सुना है, तूने अनेक राक्षसों को मारा है। तूने अब तक जितने राक्षसों को मारा है उनके सन्तोष के लिए आज तेरे रक्त से मैं उनका तर्पण करूँगा। जटासुर के यों कहने पर भीमसेन क्रोध से ओठ चबाते हुए बाहु-युद्ध करने के लिए यमराज के समान उसकी ओर झपटे। राक्षस भी क्रोधित होकर बारम्बार ओठ चबाता हुआ, मुँह फैलाकर, बलि असुर जैसे इन्द्र पर झपटा था वैसे, युद्ध
की इच्छा से भीमसेन पर झपटा। ५०

अब दोनों घोर बाहुयुद्ध करने लगे। नकुल और सहदेव भी अत्यन्त क्रोधित होकर जटासुर की ओर दौड़े। तब हँसकर भीमसेन ने उनको रोक दिया और कहा—देखो, मैं अकेला ही इस राक्षस के लिए काफ़ी हूँ; तुम खड़े-खड़े तमाशा देखो। फिर युधिष्ठिर से भीमसेन ने कहा—राजन्! मैं अपनी, भाइयों की, धर्म की, सत्य की, कर्म की, इष्ट वस्तुओं की सौगन्द खाता हूँ, इस राक्षस को मारे बिना मैं नहीं रहूँगा।

इस प्रकार परस्पर कहकर भीमसेन और जटासुर लाग-डाँट दिखाते हुए कुश्ती लड़ने लगे। दोनों ही क्रोध के मारे एक दूसरे की बातों को न सह सके और परस्पर प्रहार करने लगे। बड़े-बड़े वृक्षों को तोड़कर बादलों की तरह गरजते हुए वे एक दूसरे पर चोट करने लगे। वे बड़े

बलवान् दोनों वीर एक दूसरे को मारने के लिए घुटनों की चोट से पेड़ों को तोड़ डालते थे। पूर्व
समय में स्त्री के लिए बाली और सुग्रीव का जैसा युद्ध हुआ था वैसा ही वृक्षों को उजाड़नेवाला
६० महाभयानक यह युद्ध भी हुआ। दोनों

बार-बार गरजते हुए वृक्षों को घुमा-
घुमाकर परस्पर चलाते थे। राजन्, इस
प्रकार जब सब वृक्ष उजड़ गये तब उन
वीरों ने घड़ी भर शिलाओं से युद्ध किया।
उस समय वे मेघमाला से ढके हुए
पर्वतों के समान जान पड़ते थे। क्रोध-
वश होकर बड़े वेग से वे एक दूसरे पर
शिलाओं के प्रहार कर रहे थे। उनका
शब्द वज्र गिरने के समान भयङ्कर होता
था। बल के घमण्ड में भरे हुए वे
दोनों वीर फिर हाथों से हाथ भिड़ाकर
दो गजराजों के समान भिड़ गये। दोनों
परस्पर अपनी अपनी ओर खींचकर
महाघोर घूँसे चलाने लगे। दोनों के
घूँसों की चटचटाहट चारों ओर दूर-
दूर तक सुन पड़ने लगी। पाँच सिरवाले साँप के समान पाँचों उँगलियोंवाला एक घूँसा भीम-
सेन ने बड़े ज़ोर से राक्षस की गर्दन पर मारा। वह घूँसा लगने से उसकी आँखों के आगे
अँधेरा सा छा गया। भीमसेन ने देख लिया कि शत्रु थक गया है। चट लपककर उन्होंने
उसे उठाकर दे मारा और ख़ूब रगड़ा। घूँसों की मार से उसकी हड्डी-हड्डी चूर करके भीमसेन
७० ने [पशु की तरह उमेठकर] उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। उसका भयानक मुख, होंठ
चबाये हुए था और आँखें बाहर निकली हुई थीं। रक्त से भीगा हुआ वह सिर किसी वृक्ष से
टपके हुए पके फल की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा। महाबली भीमसेन इस तरह जटासुर को
मारकर युधिष्ठिर के पास आ गये। तब मरुद्गण जैसे इन्द्र की स्तुति करते हैं वैसे ही ब्राह्मण
७२ लोग भीमसेन की प्रशंसा करने लगे।

यक्षयुद्धपर्व

एक सौ अट्ठावन अध्याय

पाण्डवों का गन्धमादन पर्वत पर जाना

वैशम्पायन कहते हैं कि जटासुर के मारे जाने पर महाराज युधिष्ठिर फिर नर-नारायण के आश्रम बदरीवन में आकर रहने लगे। यहाँ एक समय उन्हें अर्जुन का स्मरण हो आया। उन्होंने भाइयों को और द्रौपदी को अपने पास बुलाकर कहा—हम चार वर्ष के लगभग कुशल-पूर्वक वनों में विचरते रहे। अर्जुन कह गये थे कि पाँचवाँ वर्ष बीतने पर—जहाँ देवता और असुर रहते हैं; नीले कमल, और तरह-तरह के कमल खिले हुए हैं; बाघ, वराह, भैंसे, गवय, हरिण, रुरु, साँप आदि जीव-जन्तु घूमा करते हैं; चातक, मोर, कोयल, भौंरे आदि शब्द किया करते हैं; फूले और फले वृक्ष चारों ओर देख पड़ते हैं; उस—पर्वतराज श्वेतगिरि पर मैं तुमसे मिलूँगा। उस पवित्र पहाड़ पर सदा उत्सव सा हुआ करता है। उनसे मिलने के लिए ही हम लोग यहाँ आये हैं। महातेजस्वी अर्जुन यह भी कह गये थे कि मैं विद्या सीखने के लिए पाँच वर्ष तक [इन्द्रलोक में] रहूँगा। हम लोग इसी पर्वत पर देवलोक से अस्त्रविद्या सीखकर आये हुए शत्रु-दमन गाण्डीवधन्वा अर्जुन को देखेंगे। राजा युधिष्ठिर ने द्रौपदी और भाइयों से यों कहकर
ब्राह्मणों को अपने पास बुलाया और उनकी पूजा करके सब वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। "हे १०
पाण्डव, तुम्हारा कल्याण हो", यह कहकर ब्राह्मणों ने उनके कथन का अनुमोदन किया। लोमश आदि ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर से कहा—हे कुरुश्रेष्ठ, आप शीघ्र ही क्षात्रधर्म के प्रभाव से वर्तमान क्लेश से छुटकारा पाकर सुखी होंगे और पृथ्वी का पालन करेंगे।

राजा युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों के अभिनन्दन को सादर ग्रहण किया। महर्षि लोमश के द्वारा सुरक्षित राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ वहाँ से चल दिये। घटोत्कच आदि राक्षस भी सहायकरूप से उनके साथ चले। महातेजस्वी युधिष्ठिर किसी जगह पैदल चलते थे और कहीं पर राक्षसों के कन्धे पर बैठकर चलना होता था। राजा युधिष्ठिर इस प्रकार अपने पिछले क्लेशों का स्मरण करते हुए सिंह, बाघ, गजराज आदि से पूर्ण उत्तर ओर ही आगे बढ़े। कैलास, गन्धमादन के आस-पास के सब पर्वत, श्वेतगिरि और अन्य पर्वतों के ऊपर पवित्र नदियों के दर्शन करते हुए पाण्डव सत्रह दिन में पवित्र हिमालय पर पहुँचे। राजन्, पाण्डवों ने वहाँ जाकर, गन्धमादन के पास ही, अनेक वृक्षों और लताओं से पूर्ण पवित्र हिमालय पर वृषपर्वा का पवित्र आश्रम देखा। वह आश्रम फूले-फले अनेक पेड़ों से छाया हुआ सा था। उसमें बहुत
से जलाशय थे। अपनी थकन मिटाकर विश्राम कर चुकने पर सब लोग धर्मात्मा राजर्षि वृष- २०
पर्वा के पास गये। प्रणाम ग्रहण करके उन्होंने भी पुत्र का सा स्नेह प्रकट करके सबका अभि-

नन्दन किया। पाण्डव आदर से सन्तुष्ट होकर सात दिन वहाँ रहे। आठवें दिन युधिष्ठिर ने
वृषपर्वा से अपना वहाँ से चलने का विचार प्रकट किया। फिर अपने साथ रहकर बहुत दिनों
से भाई-बन्धुओं का सा सत्कार पानेवाले अनेक ब्राह्मणों को वृषपर्वा के पास, कुछ समय के लिए,
छोड़ दिया। यज्ञपात्र, रत्न, आभूषण, [रथ, वाहन] आदि जो कुछ अपने साथ साज-सामान
था, सब उन्होंने वृषपर्वा के आश्रम में रख दिया। इसके बाद भूत और भविष्य के बारे में पूरा
ज्ञान रखनेवाले और सब धर्मों के ज्ञाता वृषपर्वा ने पुत्रों की तरह पाण्डवों को आवश्यक बातों का
उपदेश किया। फिर महात्मा पाण्डव उनसे अनुमति लेकर उत्तर दिशा को चले। राजर्षि
वृषपर्वा भी कुछ दूर तक उनको पहुँचाने के लिए उनके साथ गये। फिर आशीर्वाद देकर,
अभिनन्दन करके, लोमश-धौम्य आदि के हाथ में पाण्डवों को सौंपकर वृषपर्वा लौट गये।

भाइयों के साथ सत्यपराक्रमी महाराज युधिष्ठिर उसी राह से पैदल जाने लगे जिसमें
३० मृग आदि बहुत से जङ्गली पशु विचर रहे थे। वृक्षों के कुञ्जों से पूर्ण पहाड़ी चोटियों
[घाटियों] पर बसते हुए पाण्डव चौथे दिन श्वेतपर्वत पर पहुँचे। उस पर्वत पर जलाशय
भरे हुए थे। वे दूर से जल भरे बादलों की घटाओं के समान जान पड़ते थे। उस पर्वत के
शिखर मणियों के, सोने के, चाँदी के और सफ़ेद शिलाओं के थे। उसको भी लाँघकर अनेक
प्रकार के छोटे-बड़े पर्वतों की श्रेणियाँ देखते हुए पाण्डव वृषपर्वा के बताये हुए मार्ग पर ही लगातार
चले जा रहे थे। पर्वत के ऊपर बनी हुई दुर्गम गुफाओं और गढ़ों को ये लोग सहज में ही
लाँघ जाते थे। पुरोहित धौम्य, महर्षि लोमश, द्रौपदी और पाण्डव, सब साथ साथ चले जा
रहे थे। कोई उदास या थका हुआ नहीं जान पड़ता था। इसी प्रकार चलते-चलते पाण्डव
पर्वतराज माल्यवान् के ऊपर पहुँचे। वहाँ कहीं पर मृगों के झुण्ड इधर-उधर चौकड़ियाँ भर
रहे थे; कहीं पर पक्षी मनोहर बोलियाँ बोल रहे थे; कहीं पर पद्मपुष्पपूर्ण सरोवर थे और वृक्ष-
लता-शोभित, वानर आदि जीव-जन्तुओं के रहने के स्थान महावन दूर-दूर तक फैले हुए थे।

आगे चलकर इन लोगों ने गन्धमादन पर्वत को देखा जहाँ सिद्ध और चारण विचरते थे
तथा किंपुरुष आदि देवयोनियाँ विहार करती थीं। उस पर्वत को देखते ही सबको प्रसन्नता
हुई। वीर पुरुष पाण्डव द्रौपदी को अपने साथ लिये महात्मा ब्राह्मणों के साथ धीरे-धीरे उस
नन्दनवन सदृश परमानन्दजनक गन्धमादन पर्वत [के भीतरी भाग] में घुसने लगे जिसमें जगह-
जगह पर विद्याधर और विद्याधरियाँ, किन्नर और किन्नरियाँ चारों ओर विचरते रहते हैं—सिंह,
४० व्याघ्र, शरभ, मृग आदि जीव-जन्तु चारों ओर तरह तरह के शब्द किया करते हैं। सुनते ही
हृदय को हरनेवाले, सुखदायक, मनोरम पक्षियों के मधुर शब्द चारों ओर गूँज से रहे थे। उस
पर्वत पर अनेक प्रकार के रङ्गीन फूलों से शोभित और फलों के बोझ से झुके हुए आम, आम्रा-
तक, नारियल, तिन्दुक, मूँज, अंजीर, अनार, कटहल, लकुच, केला, खजूर अमिलतास, पारा-

वत, चम्पक, कदम्ब, बेल, कैथ, जामुन, कुंकुम, बैर, पकरिया, गूलर, बरगद, पीपल, दूधी, भल्ला-
तक, आँवला, हड़, बहेड़ा, इंगुदी, करमर्द और अन्य अनेक प्रकार के वृक्ष थे। ऐसे भी वृक्ष थे,
जिनके फलों का स्वाद अमृत के समान था। इसी तरह चम्पा, अशोक, केतकी, मौलसिरी,
पुन्नाग, सप्तपर्ण, कनैर, पाटल, कुटज, मन्दार, इन्दीवर, हरसिंगार, कचनार, देवदार, शाल, ताल, ५०
तमाल, पीपल, हींग, सेमर, ढाक, इमली आदि के भी वृक्ष देख पड़ रहे थे। चकोर, शतपत्र,
भौंरे, तोते, कोकिला, कलविंक, हरियल, जीवंजीवक, प्रियक, चातक और अन्य अनेक पक्षी वृक्षों
की डालियों पर बैठे मनोहर शब्द सुना रहे थे। कहीं पर कुमुद, पुण्डरीक, लाल कमल आदि
असंख्य फूल फूले हुए थे। कहीं पर हंस, कारण्डव, चक्रवाक, कुरर, जलकुक्कुट, प्लव, बगले
आदि जलचर जीव इधर-उधर चल-फिरकर जलाशयों की शोभा बढ़ा रहे थे। कमल के मधु
को पीकर मस्त, कमल के पराग से सनकर पीले बने हुए भौंरे फूलों पर घूम-घूमकर गुनगुना
रहे थे। आनन्द से मस्त धीमी चाल से चलनेवाले मोर, मोरनियों के साथ, टहल रहे थे। वे ६०
मेघों का गरजना सुनकर कामदेव से व्याकुल हो, अपनी विचित्र पूँछें फैलाकर, मधुर शब्द करते
हुए नाच रहे थे। कुछ मोर, मोरनियों के साथ, लता-कुञ्जों में घूम रहे थे। कुछ मोर कुटज-
वृक्षों की डालियों पर बैठे हुए थे। उनके माथे पर पूँछ का घेरा मुकुट के समान जान पड़ता था।
वृक्षों के भीतर के बड़े-बड़े छेदों में कुछ मोर बैठे हुए थे।

पर्वत के शिखर पर सुनहरे रङ्ग के फूलों से शोभित सिन्धुवार (एक प्रकार के कमल) के वृक्ष
कामदेव के तोमर-शस्त्र के समान जान पड़ते थे। कहीं पर फूले हुए कनैर करनफूलों के समान
देख पड़ रहे थे। कहीं पर फूले हुए कुरबक के वृक्ष कामदेव के बाणों के समान कामियों के हृदय
में विषम वेदना उत्पन्न कर रहे थे। कहीं पर तिलक के वृक्षों की क़तारें देखकर जान पड़ता था
कि महावन के मस्तक पर तिलक लगा है। भौंरे जिन पर गूँज रहे हैं ऐसे मञ्जरी-मण्डित आम
के पेड़ों की पंक्तियाँ भी कामदेव के बाणों के समान जान पड़ती थीं। वृक्षों में कहीं पर सुनहरे
रङ्ग के, कहीं पर जलती हुई आग के रङ्ग के, कहीं पर अञ्जन के रङ्ग के और कहीं पर वैडूर्य मणि के
रङ्ग के फूल खिल रहे थे। शाल, ताल, तमाल, पाटल और बकुल आदि के फूले हुए वृक्ष माला ७०
की तरह उस पर्वतशिखर की शोभा बढ़ा रहे थे। कहीं पर बिल्लौर के समान निर्मल जलवाले,
कमलपुष्प-पूर्ण सरोवर देख पड़ते थे; उनमें सारस, कलहंस आदि पक्षी मनोहर शब्द कर रहे थे।
कमल, उत्पल, कल्हार, पुण्डरीक आदि अनेक प्रकार के फूलों की सुगन्ध सूँघते हुए पाण्डव क्रमशः
आगे बढ़ते जाते थे। वे आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से चारों ओर, सुगन्धित फूलों और स्वादिष्ठ फलों से
भरे-पुरे, मनोहर वृक्षों और सुन्दर सरोवर आदि की सैर करते हुए उस वन के भीतर घुसे।

तब युधिष्ठिर ने प्रिय भाई भीमसेन से मधुर स्वर में कहा—हे भीम, देखो, यह गन्धमादन
पर्वत का वन कैसा विचित्र है! इसमें मनोहर जङ्गली वृक्ष फूले और फले हुए हैं। इधर-उधर

कोयल आदि पक्षी भरे पड़े हैं। इसके भीतर कँटीला या बिना फूलों का कोई वृक्ष नहीं देख
८० पड़ता। इस पहाड़ की चोटियों पर वृक्षों के पत्ते चिकने-चिकने हैं। वह देखो, हाथियों के झुण्ड
हथिनियों के साथ भ्रमर-परिपूर्ण कमलवन के भीतर घुसकर उसे मथ रहे हैं। वह देखो, कमल-उत्पल आदि फूलों की माला सी पहने साक्षात् लक्ष्मी के समान एक और सरोवर शोभायमान हो रहा है। इस महावन के सुगन्ध-पूर्ण पुष्पयुक्त वृक्षों पर भौंरों के झुण्ड गुनगुना रहे हैं। हे भीम, वह देखो, देवताओं के विहार करने के शुभ स्थान देख पड़ते हैं। हम यहाँ आकर अमानुषी गति को (अर्थात् देवभाव को) प्राप्त हो गये; हम सिद्ध हो गये। हे पार्थ, मनोहर पुष्पपूर्ण वृक्षों की चोटियों पर छाई हुई प्रफुल्लित लताओं से गन्धमादन पर्वत के इन शिखरों की कैसी शोभा हो रही है। सुनो, पहाड़ के कुञ्जों में मोरनियों के साथ ये मोर कैसे प्रसन्न होकर बोल रहे हैं! वह देखो, चकोर, शतपत्र, कोकिला, मैना आदि पक्षी कैसे फूले हुए वृक्षों की एक डाली से दूसरी डाली पर उड़कर जाते हैं। लाल, पीले और गुलाबी रङ्ग के जीवंजीवक पक्षी परस्पर निहार रहे हैं। पहाड़ी झरनों और हरे रङ्ग की नई घास से सुहावने मैदानों के पास सारस पक्षी देख पड़ते हैं। भृङ्गराज, उपचक्र और लोहपृष्ठ आदि पक्षी मधुर ध्वनि सुनाकर मन को प्रसन्न कर रहे हैं। वैडूर्य मणि के रङ्ग के जल से पूर्ण बड़े बड़े सरोवरों के भीतर घुसकर ये चार दाँतोंवाले सफ़ेद हाथी हथिनियों के साथ जल क्रीड़ा कर रहे
९० हैं। पहाड़ी झरनों का जल ताड़ के पेड़ के बराबर ऊँचा होकर शिलाओं पर वेग से गिर रहा है। वह देखो, सूर्य के रङ्ग की और शरद ऋतु के बादलों के रङ्ग की सुनहरी, रुपहली धातुएँ पर्वत पर चमक रही हैं। कहीं पर मैनसिल की बनी कन्दराएँ देख पड़ती हैं। कहीं पर काले रङ्ग की, कहीं पर सोने के रङ्ग की, कहीं पर हरताल के रङ्ग की, कहीं पर हींग के रङ्ग की, कहीं लोध्रवृक्ष के काठ के रङ्ग की, कहीं गेरू के रङ्ग की, कहीं काले-सफ़ेद मेघों के रङ्ग की, कहीं प्रातःकाल के बाल-सूर्य के रङ्ग की चमकीली धातुएँ पर्वतराज की शोभा को दर्श-

नीय बना रही हैं। हे पार्थ, महात्मा वृषपर्वा ने हमको जो बताया था वही हम यहाँ देख रहे हैं। वह देखो, गन्धर्व और किम्पुरुष अपनी-अपनी प्रियाओं के साथ पर्वत के ऊँचे शिखरों पर दिखाई दे रहे हैं। यहाँ पर तान-लय में शुद्ध मनोहर सङ्गीत और पवित्र साम-गान सुन पड़ रहा है। हे भीम, ऋषि और किन्नर जिसके किनारों पर रहते हैं और हंस विचरते हैं उस परमपवित्र महानदी गंगा के दर्शन करो। हे शत्रुदमन! इस पर्वतराज पर धातु, नदी, किन्नर, मृग, पशु-पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा और अनेक प्रकार के कीड़े-मकोड़ों की कमी नहीं है। यह अपने वनों की विशेष
शोभा से बड़ा ही दर्शनीय है। १००

वैशम्पायन कहते हैं—परमतपस्वी, शूर-वीर, पाण्डव द्रौपदी और महात्मा ऋषियों के साथ उस स्थान पर पहुँचकर, श्रेष्ठ गति पाकर, बहुत ही आनन्दित हुए। पर्वतराज गन्धमादन की शोभा देखकर उनके नेत्रों को किसी प्रकार तृप्ति ही न होती थी। चलते-चलते वे पुष्पों और वृक्षों से शोभित राजर्षि आर्ष्टिषेण के आश्रम में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर सब लोग तपस्वी, दुर्बल-
शरीर, धर्मशास्त्र के बड़े भारी विद्वान् महर्षि आर्ष्टिषेण के पास गये। १०३

एक सौ उनसठ अध्याय

राजर्षि आर्ष्टिषेण से बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं—तप की आग में जिनके सब मल जल चुके हैं उन महर्षिश्रेष्ठ आर्ष्टिषेण के पास जाकर युधिष्ठिर ने अपना नाम लिया और सिर झुकाकर उनको प्रणाम किया। फिर द्रौपदी, भीम, नकुल और सहदेव भी उनको प्रणाम करके युधिष्ठिर के पास खड़े हो गये। पाण्डवों के पुरोहित धर्मज्ञ धौम्य ऋषि ने भी पास जाकर आर्ष्टिषेण को अभिवादन किया। दिव्य दृष्टि से पाण्डवों का हाल जानकर महर्षि आर्ष्टिषेण ने आदर के साथ युधिष्ठिर से बैठने के लिए कहा। राजा युधिष्ठिर जब बैठ गये तब द्रौपदी और अन्य पाण्डव भी बैठे। अतिथि-सत्कार की रीति से युधिष्ठिर की पूजा करके महर्षि ने उनसे उनकी कुशल पूछी।

ऋषि ने कहा—हे पार्थ, तुम अपने मन को झूठ की ओर तो नहीं ले जाते हो? धर्म-पालन में तुम्हारा ध्यान लगा हुआ है न? माता-पिता की भक्ति तो उचित रूप से करते हो? गुरु, वृद्धजन और वेदज्ञ पण्डित तो सदा तुम्हारे यहाँ पूजा पाते रहते हैं? हे धर्मराज, पापकर्मों में तो तुम्हारी मति नहीं है? तुम न्याय के मार्ग पर चलकर पुण्य में प्रवृत्त और पाप से अलग रहते हो न? पाप-पुण्य में गड़बड़झाला तो नहीं होने देते? तुमसे यथोचित सम्मान पाकर सज्जन लोग तो सदा सन्तुष्ट रहते हैं? तुम वनवास में भी अपने धर्म का पालन कर रहे हो न?

१० हे पार्थ, तुम्हारे आचार-व्यवहार से पुरोहित धौम्य को तो किसी तरह की असुविधा नहीं होती ? तुम अपने बाप-दादों की तरह दान, धर्म, तप, शौच और सरलता आदि को ग्रहण किये हुए हो न ? तुम उसी राह पर चलते हो, जिस पर श्रेष्ठ राजर्षि लोग चलते रहे हैं ? हे पार्थ, पितर पितृलोक में रहते हैं। वे अपने कुल में पुत्र या पौत्र उत्पन्न होने पर हँसते और शोक भी करते हैं। वे मन में कहते हैं कि या तो यह अपने अच्छे कामों से हमारा नाम चलावेगा और उससे हमारे कुल का शुभ होगा; और या बुरे आचरणों से हमारा नाम डुबावेगा और उससे हमारे कुल का अशुभ होगा। हे युधिष्ठिर, जो पुरुष माता, पिता, गुरु, अग्नि और अपने आत्मा की पूजा या प्रतिष्ठा (इज़्ज़त) करता है उसके दोनों (पिता के और माता के) कुलों की कीर्त्ति बढ़ती है।

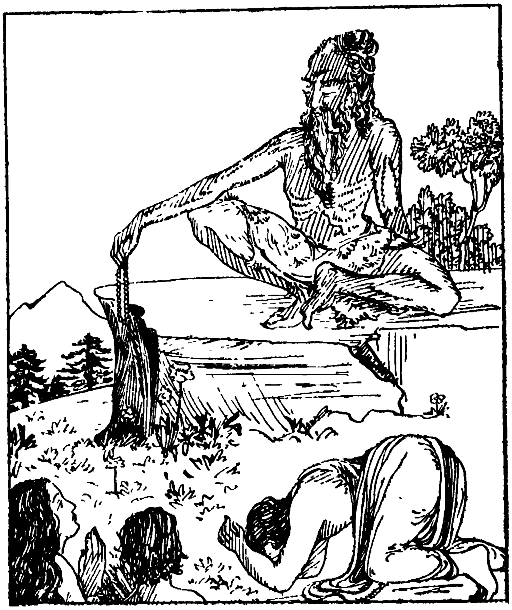

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, आपने मुझसे जिन धर्म के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में प्रश्न किये उन सबका निर्वाह मैं अपनी शक्ति भर करता रहता हूँ। फिर प्रसन्न होकर आर्ष्टिषेण ऋषि ने कहा—राजन्, केवल जल पीकर या हवा ही खाकर तपस्या करनेवाले ऋषि लोग पर्व आदि के अवसर पर, आकाश-मार्ग से, इस पर्वतराज पर आते हैं। इसके शिखरों पर अपनी प्यारी स्त्रियों के साथ किंपुरुष आदि देवगण कामभोग करने आते हैं। बढ़िया रेशमी कपड़े पहने गन्धर्वों और अप्सराओं के झुण्ड यहाँ दिखाई दिया करते हैं। माला पहने, सुन्दर रूपवाले विद्याधर, नाग, सुपर्ण, चारण आदि भी इस पर विचरा करते हैं। पर्व-उत्सव आदि के अवसर
२० पर इस पहाड़ के ऊपर नगाड़े, झाँझ, शङ्ख, मृदङ्ग आदि बाजों का शब्द सुन पड़ता है। हे कुरुश्रेष्ठ, तुम लोग इसी स्थान पर रहकर इन बातों को देख-सुन सकते हो। आगे जाने का विचार कभी मत करना। इसके आगे देवताओं की विहार-भूमि है। वहाँ मनुष्य की गति नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ, यहाँ जो कोई कुछ भी चञ्चलता या ऊधम करता है उसका यहाँ के सब प्राणी अनिष्ट करते हैं; उसे राक्षस सताते हैं। हे युधिष्ठिर, इस कैलास पर्वत का शिखर

लाँघने पर सिद्धों और देवर्षियों की गति मिलती है। यदि कोई कैलास-शिखर को लाँघकर
उस मार्ग में जाता है तो राक्षस उसे लोहे के शूल आदि से मार डालते हैं। हे धर्मराज, पर्व के
अवसर पर समृद्धिशाली महाराज कुबेर पालकी पर चढ़कर अप्सराओं के साथ इस स्थान पर
आते हैं। यहाँ के सब प्राणी पर्वत-शिखर पर बैठे उदित सूर्य के समान तेजस्वी कुबेर के
दर्शन करते हैं। हे पार्थ, यह पहाड़ का शिखर देव, दानव, सिद्ध आदि का और कुबेर का
उद्यान (बाग़) है। पर्व आदि के अवसर पर तुम्बुरु गन्धर्व आकर यहाँ कुबेर को गाना सुनाता
है। [उस समय उसका सामगान सुन पड़ता है।] तात्पर्य यह कि हर एक पर्व के अवसर
पर इस पर्वत के ऊपर अनेक अद्भुत घटनाएँ और विचित्र दृश्य देख पड़ते हैं। हे पाण्डवो, जब ३०
तक तुमसे अर्जुन की भेंट न हो तब तक तुम मुनियों के आहार फल-मूल आदि खाकर यहीं रहो।
पुत्रो, इस जगह किसी तरह की ढिठाई मत करना। यहाँ इच्छानुसार रहो और श्रद्धापूर्वक
यहाँ की सैर करो। अन्त को तुम शस्त्र-बल से पृथ्वी को जीतकर राज्यपालन करोगे। ३२

एक सौ साठ अध्याय

यक्षों से युद्ध। भीमसेन का मणिमान् राक्षस को
मारना। कुबेर का वहाँ पर आना

जनमेजय ने पूछा—भगवन्, मेरे पूर्व-पितामह दिव्य बल और पराक्रम रखनेवाले महात्मा पाण्डव उस गन्धमादन पर्वत पर [आर्ष्टिषेण मुनि के आश्रम में] कितने दिनों तक रहे? उन परम तेजस्वी वीरों ने वहाँ रहकर क्या-क्या काम किये? वहाँ वे क्या खाते-पीते थे? उस हिमवान् पर्वत पर रहकर भीमसेन ने जो पुरुषार्थ के काम किये हों उनका वर्णन कीजिए। मैं इस कथा को विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ। हे वैशम्पायन, वहाँ यक्षों के साथ भीमसेन का युद्ध तो नहीं हुआ? आर्ष्टिषेण ने कहा था कि पर्व समय पर कुबेर वहाँ आते हैं। उनसे क्या पाण्डवों की भेंट हुई थी? हे तपोधन, मैं यह सब वृत्तान्त विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ। महात्मा पाण्डवों के चरित्र सुनकर मेरा जी नहीं भरता; और भी सुनने को जी चाहता है।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, कुरुवंश में श्रेष्ठ पाण्डव अपने हितकारी परम तेजस्वी महर्षि
आर्ष्टिषेण के मङ्गलमय उपदेश को सुनकर वहीं रहकर तपस्या करने लगे। वहाँ रहकर वे
मुनियों के आहार, रसीले फल और सादे बाणों से मारे गये मृगों का मांस खाते थे; अनेक प्रकार
के स्वच्छ मधु (शहद) पीते थे और लोमश आदि मुनियों के मुँह से पवित्र विचित्र कथाएँ सुनते
थे। इस प्रकार वे हिमालय पर रहने लगे। वहाँ रहकर उन्होंने पाँचवाँ वर्ष भी बिता दिया। १०
यहीं पर घटोत्कच यह कहकर चला गया कि काम पड़ने पर [मुझे याद करना;] मैं आ
जाऊँगा। पाण्डव लोग आर्ष्टिषेण के आश्रम में अनेक अद्भुत दृश्यों और घटनाओं को देखते

हुए बहुत दिनों तक रहे। इसके उपरान्त विशुद्धचित्त मुनि, चारण और सिद्धगण उनसे मिलने के लिए वहाँ पर आये। पाण्डव भी उनसे मिलकर परम प्रसन्न हुए और उनसे बातचीत करने लगे।

इस प्रकार कुछ समय बीतने पर एक दिन वहाँ पर गरुड़ ने आकर अकस्मात् एक बड़े भारी कुण्ड में रहनेवाले महानाग को पकड़ लिया। गरुड़ के वेग से वह पहाड़ काँप उठा और बड़े-बड़े वृक्ष टूटकर गिर पड़े। पाण्डवों और अन्य प्राणियों ने उस विचित्र घटना को आश्चर्य के साथ देखा। उस समय पर्वतराज की चोटियों पर से पाण्डवों के ऊपर वायु के द्वारा फूलों की वर्षा होने लगी। मित्रों-सहित पाण्डवों ने और यशस्विनी द्रौपदी ने पाँच रङ्ग के सुगन्धित दिव्य फूलों को देखा। तब द्रौपदी ने पर्वत के ऊपर निर्जन स्थान में अकेले सुखपूर्वक बैठे हुए भीमसेन से जाकर कहा—हे भरतकुल-तिलक, गरुड़ के परों की हवा से और भी प्रबल होकर यह हवा इन पँचरङ्गे फूलों को बरसा रही है। तुम्हारे भाई सत्यप्रतिज्ञ महात्मा अर्जुन ने खाण्डव वन में सब लोगों के आगे, अश्वरथा नदी के पास गन्धर्व, नाग, राक्षस और साक्षात् इन्द्र को भी परास्त करके मायावी उग्र प्राणियों का नाश किया था। वहीं उन्हें गाण्डीव धनुष मिला था। तुम्हारा भी बाहुबल और तेज अपार है। तुम इन्द्र के समान बलवान् हो। तुम्हारे बाहुबल के वेग को कोई सह नहीं सकता। इसलिए हे भीमसेन, [तुम ऐसा करो कि] तुम्हारे बाहुबल से डरकर सब राक्षस इस पहाड़ को छोड़कर इधर-उधर भाग जायँ, और तुम्हारे मित्र निडर होकर इस विचित्र और कल्याणमय माल्यवान् शिखर को देखें। हे भीम, मैं भी तुम्हारे बाहुबल से रक्षित होकर शैलशिखर को देखना चाहती हूँ।

शान्तस्वभाव गजराज जैसे [अंकुश के] प्रहार को नहीं सह सकता, वैसे ही द्रौपदी के वचनों से उत्तेजित भीमसेन ने उसे एक प्रकार की भर्त्सना समझा—वह उन्हें सहन नहीं हुई। तब सिंह के समान चलनेवाले, सोने के समान गौर वर्ण, मस्त हाथी के समान पराक्रमी, चौड़े कन्धोंवाले, ताड़ के समान ऊँचे महाबाहु भीमसेन ने धनुष, तलवार और बाणों से भरे हुए तरकस लिये। अब वे सिंह के समान प्रचण्ड भाव से, मस्त हाथी की तरह निडर होकर, उस पर्वत के शिखर की तरफ़ चले। वहाँ के प्राणियों ने धनुष-बाण धारण किये वीर पुरुष भीमसेन को सिंह और मस्त हाथी की तरह आते देखा। गदाधारी पाण्डुपुत्र भीमसेन, द्रौपदी को प्रसन्न करते हुए, बेखटके पर्वत पर पहुँचे। उस समय उनके चित्त में किसी प्रकार की थकन, डर या ईर्ष्या नहीं थी। फिर वे केवल एक आदमी के जाने भर की पहाड़ की तङ्ग घाटी से उस, अगम्य और वृक्ष-लता-मण्डित, बहुत ऊँचे पर्वत-शिखर पर चढ़ने लगे। किन्नर, महानाग, मुनि, गन्धर्व, राक्षस आदि को प्रसन्न करते हुए महाबली भीमसेन पर्वत की चोटी पर चढ़ गये। वहाँ से उन्हें सोने और बिल्लौर के बने महलों से भूषित और चारों ओर सोने की चहारदीवारी से घिरी हुई कुबेर की दिव्य अलका पुरी देख पड़ी। उसमें चहारदीवारी के द्वार और बड़े-बड़े फाटक लगे

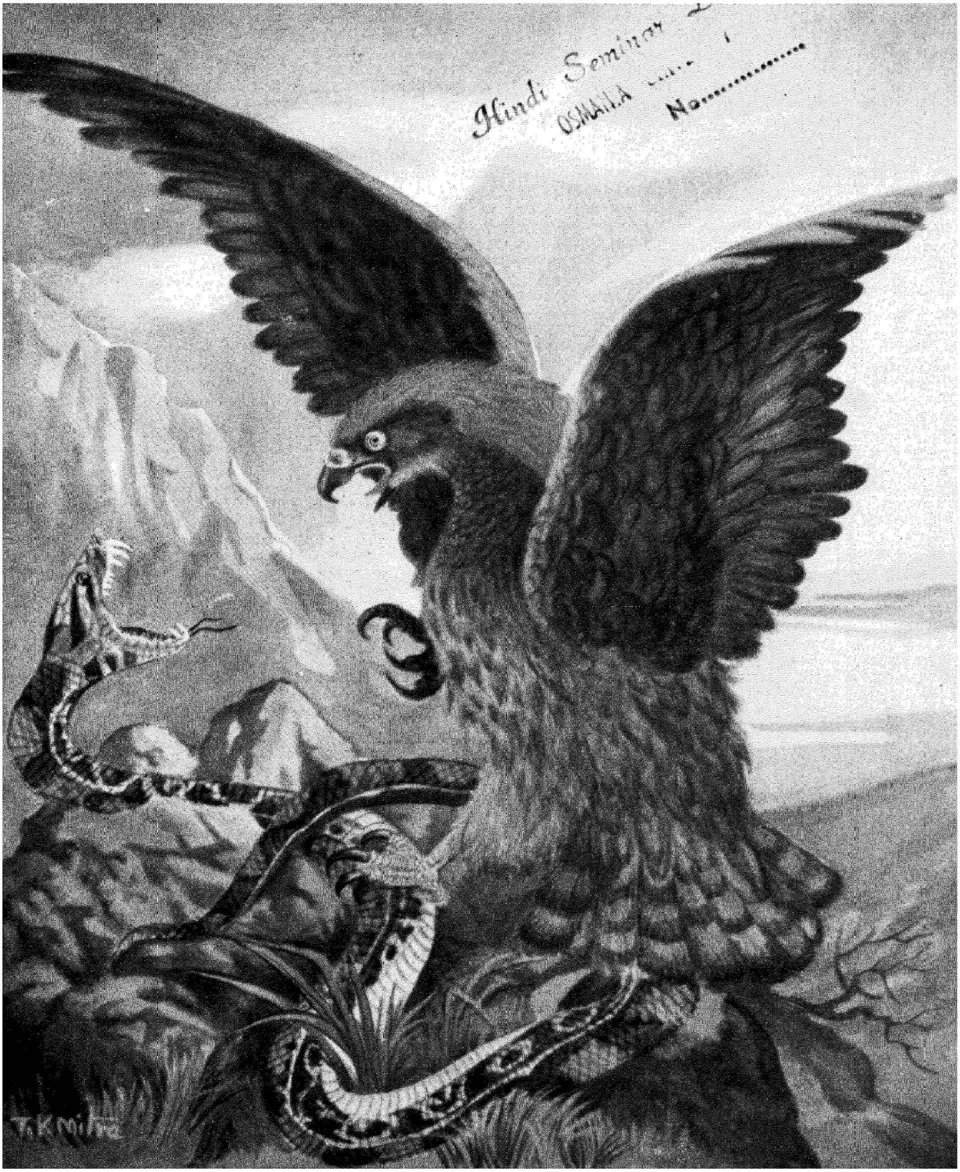

Hindi Seminar
OSMANIA
No.

गरुड़ ने आकर अकस्मात् महानाग को पकड़ लिया।—पृ० १०२०

हुए थे। उसमें चारों ओर जड़े हुए रत्न जगमगा रहे थे। स्थान-स्थान पर बाग़ थे। वह पुरी पर्वत से भी अधिक ऊँची थी। उसमें जगह-जगह पर वेश्याएँ नाच रही थीं और बड़ी-बड़ी पताकाएँ हवा में फहरा रही थीं। ४०

भीमसेन हाथ टेढ़ा करके, धनुष का सहारा लेकर, खेद के साथ उस कुबेर की पुरी को निहारने लगे। उन्होंने देखा, गन्धमादन पर्वत का सुगन्धित पवन वहाँ के निवासियों को प्रसन्न करता हुआ डोल रहा है; विविध विचित्र मञ्जरियों से लदे हुए वृक्षों की अनिर्वचनीय शोभा हो रही है। महाबाहु भीमसेन यक्ष-राक्षसाधिपति कुबेर के भवन को गदा, खड्ग, धनुष आदि शस्त्र लिये बड़ी देर तक पर्वत की तरह अटल भाव से खड़े देखते रहे। उस भवन में रत्न जड़े हुए थे; और स्थान-स्थान पर विचित्र पुष्पमालाएँ टँगी हुई थीं। फिर उन्होंने शत्रुओं के शरीर में रोमाञ्च उत्पन्न कर देनेवाला शङ्ख बजाया। साथ ही धनुष की डोरी का शब्द बार-बार करके सब प्राणियों को अचेत कर दिया। यक्ष, राक्षस, गन्धर्व आदि के शरीरों में रोंगटे खड़े हो गये। वे उसी शब्द पर लक्ष्य रखकर भीमसेन के पास दौड़ते हुए आये। उनके हाथों में गदा, निस्त्रिंश, त्रिशूल, परशु आदि शस्त्र चमक रहे थे।

अब भीमसेन के साथ उन यक्ष-राक्षस आदि का युद्ध होने लगा। भीमसेन ने भयङ्कर
भल्ल बाणों से उनके फेंके शूल, शक्ति आदि सब शस्त्रों को देखते ही देखते काट डाला। फिर ५०
वे अपने बाणों से आकाशगामी और पृथ्वी पर खड़े होकर गरजते हुए राक्षसों को घायल करने लगे। शस्त्रधारी यक्ष-राक्षसों के घायल शरीरों से रक्त के फुहारे छूटने लगे। रक्त से भीमसेन तर हो गये। ज़ोर से चलाये हुए भीमसेन के शस्त्रों के लगने से यक्षों और राक्षसों के मस्तक और अन्यान्य अङ्ग कट-कटकर गिरने लगे। चारों ओर यक्ष-राक्षसों से घिरे हुए भीमसेन बादलों में छिपे हुए सूर्य की तरह जान पड़ने लगे। जैसे सूर्य नारायण अपनी किरणें फैलाकर सारे जगत् को छा लेते हैं, वैसे ही तीक्ष्ण धारवाले बाणों से भीमसेन ने शत्रु-सेना को छा लिया। राक्षसों के डपटने और गरजने से भीमसेन को तनिक भी मोह नहीं हुआ। उनसे डरे हुए, घायल यक्ष और राक्षस अस्त्र-शस्त्र छोड़कर बुरी तरह कराहने लगे। वे दृढ़धनुषधारी भीमसेन के डर से गदा, शूल, खड्ग, शक्ति, परशु आदि फेंककर दक्षिण दिशा को भागे। विशाल वक्षःस्थल-वाला, वीर, कुबेर का मित्र मणिमान् नाम का राक्षस गदा और शूल हाथ में लिये सामने खड़ा रहा। वह नहीं भागा। वह अपना प्रभुत्व दिखाता हुआ, युद्ध से भागते हुए यक्षों से
मुसकुराता हुआ, कहने लगा—यह बात तुम लोग कुबेर के भवन में जाकर कैसे उनसे कहोगे ६०
कि एक मनुष्य ने अनेक यक्षों और राक्षसों को मार भगाया? अब वह शक्ति, शूल, गदा आदि शस्त्र लेकर भीम की ओर झपटा। मत्त गजराज की तरह उसको अपनी ओर आते देखकर भीमसेन ने उसकी कोखों में तीन वत्सदन्त नाम के पैने बाण मारे। महाबली क्रुद्ध

मणिमान् ने भी अपनी भारी गदा घुमाकर भीमसेन पर चलाई। बिजली के समान चमकती हुई उस गदा को आते देखकर भीमसेन ने पैने बाणों से आकाश में ही रोकने की चेष्टा की; परन्तु वे सब बाण गदा से टकराकर टूट गये। तब गदायुद्ध-विशारद भीमसेन झुककर उस गदा के प्रहार को बचा गये। जब गदा व्यर्थ हो गई तब बुद्धिमान् मणिमान् ने सोने के दण्डवाली लोहे की बड़ी भयङ्कर शक्ति उठाकर भीमसेन पर चलाई। अग्नि की ज्वालाएँ जिससे निकल रही थीं वह भयानक शब्द करनेवाली घोर शक्ति भीमसेन के दाहने हाथ पर लगकर पृथ्वी पर गिर गई। महापराक्रमी भीमसेन शक्ति के लगने से घायल हो गये। तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्होंने सोने
७० के पत्तरों से जड़ी हुई शत्रुओं को डरानेवाली अपनी महागदा उठाई और फिर गरजते हुए वेग से
महाबली मणिमान् के ऊपर प्रहार करने के लिए झपट पड़े। मणिमान् ने भी चमचमाता हुआ महाशूल लेकर गरजकर भीमसेन के ऊपर बड़े वेग से फेंका। गदायुद्ध-विशारद भीमसेन ने गदा के अग्रभाग से उस शूल को तोड़ डाला। गरुड़ जैसे साँप को पकड़ने के लिए झपटते हैं वैसे ही भीमसेन मणिमान् के मारने को दौड़े। फिर ऊपर उछलकर एकाएक वह गदा घुमाकर भीमसेन ने उसके मस्तक पर मारी। इन्द्र के चलाये वज्र के समान वह गदा वायुवेग से आकर राक्षस को लगी। तुरंत ही मणिमान् मरकर गिर पड़ा। राक्षस को मारकर, प्राणियों का नाश करनेवाली 'कृत्या' के समान वह गदा नीचे गिर पड़ी। सिंह जैसे साँड़ को पछाड़ता है वैसे ही भीमसेन ने मणिमान्को मार डाला। यह देखकर बचे हुए यक्ष-राक्षस भयंकर
७१ आर्त्तनाद करते हुए पूर्व दिशा को भागे।

एक सौ इकसठ अध्याय

कुबेर का आना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्! इधर अजातशत्रु युधिष्ठिर, नकुल-सहदेव, द्रौपदी, धौम्य, विप्रगण और सब सुहृद् पर्वत कन्दरा में बहुत प्रकार के शब्दों की प्रतिध्वनि सुनकर और भीमसेन को न देखकर बहुत ही घबराये। तब महाधनुर्द्धर महारथी पाण्डव लोग, द्रौपदी को आर्ष्टिषेण के पास छोड़कर, शस्त्र लेकर, पर्वत पर चढ़े। पर्वत की चोटी पर चढ़कर पाण्डवों ने भीमसेन को देखा। उन्होंने देखा कि महाकाय बलवान् यक्ष-राक्षसों में से कोई पृथ्वी पर पड़ा तड़प रहा है, कोई मरा पड़ा है। महाबली इन्द्र जैसे दानवों को मारकर शोभायमान हों वैसे ही बलवान् राक्षसों को मारकर गदा, खड्ग, धनुष आदि लिये भीमसेन खड़े हैं। महात्मा पाण्डवों ने भाई भीमसेन को देखकर प्रसन्नतापूर्वक गले से लगा लिया। अब सब लोग वहीं पर बैठ गये। देवताओं सहित लोकपालों के बैठने से देवलोक की जैसे शोभा होती है वैसे ही पाण्डवों से उस पर्वत-शिखर की शोभा हुई। फिर राजा युधिष्ठिर ने वहाँ से कुबेरभवन को और मरे

हुए यक्ष-राक्षसों को देखकर भीमसेन से कहा—हे भीम ! चाहे साहस से हो, चाहे मोहवश,
मुनियों के झूठ बोलने के समान, यह यक्षों का वध तुमने बहुत ही अनुचित किया। धर्मात्मा १०
लोगों का कहना है कि राजा से द्वेष नहीं करना चाहिए। तुमने 'राजराज' देवता कुबेर का यह अप्रिय किया, सो अच्छा नहीं किया। जो कोई धर्म और अर्थ का अनादर करके पाप कर्म में मन लगाता है, उसे उसका फल भोगना ही पड़ता है। जो तुम मुझे प्रसन्न रखना चाहते हो तो फिर कभी ऐसा काम मत करना।

वैशम्पायन कहते हैं—धर्मात्मा युधिष्ठिर भीमसेन को यों उपदेश देकर थोड़ी देर तक चुपचाप सोचते रहे। उधर मरने से बचे हुए यक्ष लोग जल्दी से कुबेर-भवन में जाकर हाय-हाय करने लगे। वे अस्त्र-शस्त्र फेंक आये थे, थके हुए थे, रक्त से तर हो रहे थे; उनके बाल खुले और उलझे हुए थे। उन्होंने कुबेर से कहा—हे देव! जो लोग गदा, परिघ, तोमर आदि शस्त्रों से युद्ध करते थे, जो यक्षों और राक्षसों में प्रधान समझे जाते थे, उन्हीं आपके वीर योद्धाओं को समर में एक मनुष्य ने मार गिराया है। आपका मित्र
मणिमान् भी मारा गया। केवल हम २०
बचकर आपके पास भाग आये हैं। अब जो उचित समझिए सो कीजिए।

यक्षराज कुबेर उनके मुँह से यह सुनकर बहुत ही क्रोधित हुए। उनकी आँखें लाल हो आईं। उन्होंने उनसे इस युद्ध का कारण पूछा। भीमसेन का ही अपराध सुनकर उन्हें और भी क्रोध चढ़ आया। उन्होंने तुरन्त रथ तैयार करने की आज्ञा दी। नौकरों ने उसी दम किंकिणीजालमण्डित, सोने की मालाओं से भूषित घोड़ोंवाला, मेघों के से रङ्ग का, पर्वतशिखर के समान ऊँचा रथ लाकर खड़ा कर दिया। अनेक रत्नों से भूषित, सब गुणों से युक्त, उज्ज्वल नेत्रोंवाले, पराक्रमी, तेज़ घोड़े रथ में जुते हुए थे। वे विजयसूचक हिनहिनाहट करने लगे। राजराज कुबेर उस श्रेष्ठ रथ पर चढ़कर चले। देव-गन्धर्व राह में आगे आगे उनकी स्तुति करते चल रहे थे। महात्मा कुबेर को जाते देखकर लाल नेत्रोंवाले, स्वर्णवर्ण, महाकाय, महाबली एक हज़ार से अधिक यक्ष अनेक अस्त्र-शस्त्र

लिये हुए उनके पीछे चले। कुबेर के घोड़े बड़े वेग से आकाश-मार्ग में जा रहे थे। वे मानों आकाश को ही अपनी ओर खींचते हुए जल्दी से गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे। यक्षराज-पालित उन घोड़ों को और यक्ष-राक्षसों-सहित प्रियदर्शन कुबेर को देखकर पाण्डवों के शरीर में रोमाञ्च हो आया। देवकार्य करने की इच्छा रखनेवाले कुबेर भी खड्ग-धनुष आदि धारण किये हुए महात्मा पाण्डवों को देखकर मन ही मन प्रसन्न हुए।

आगे-आगे कुबेर और पीछे-पीछे यक्ष पक्षियों के समान आकाशमार्ग से, बड़े वेग से, पाण्डवों के पासवाले पर्वत के शिखर पर उतरे। कुबेर को पाण्डवों पर प्रसन्न देखकर वे शान्त भाव से खड़े हो गये। तब धार्मिकश्रेष्ठ युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने कुबेर को प्रणाम किया। वे सब अपने को अपराधी समझकर, हाथ जोड़कर, यक्षराज के आस-पास खड़े हो गये। विश्वकर्मा के बनाये विचित्र पुष्पक रथ (विमान) पर यक्षराज कुबेर बैठे थे। उस विमान पर पलँग-आसन आदि सब सामान था। महाकाय, फुर्तीले, शंकुकर्ण हज़ारों यक्ष, राक्षस, गन्धर्व और अप्सराएँ उनको घेरे हुए थीं। वे देवगण से घिरे हुए इन्द्र के समान जान पड़ते थे। गले में सुवर्ण की माला पहने और हाथों में पाश, खड्ग, धनुष आदि लिये हुए भीमसेन खड़े-खड़े कुबेरजी को देखने लगे। राक्षसों के प्रहारों से यद्यपि वे घायल हो गये थे तो भी यक्षमण्डली-सहित कुबेर को देखकर उनके मन में किसी प्रकार की पीड़ा नहीं हुई।

तीक्ष्ण शस्त्र लिये भीमसेन को युद्ध की इच्छा से खड़े देखकर कुबेर ने युधिष्ठिर से कहा—हे पाण्डव, सभी प्राणी तुमको सब जीवों का हितैषी समझते हैं। तुम अपने भाइयों के साथ बे-खटके इस पर्वत के शिखर पर रहो। तुम भीमसेन के ऊपर क्रोध मत करना। ये यक्ष-राक्षस, काल के हाथों, पहले ही मर चुके थे। तुम्हारे भाई तो इनके मरण का केवल निमित्त हैं। इसलिए इनके मरने से तुम अपने को अपराधी समझकर लज्जित मत होना। यक्षों और राक्षसों का यह नाश होना देवताओं को पहले से ही मालूम था। इसलिए भीमसेन पर मुझको रत्ती भर भी क्रोध नहीं है। मैं तो उन पर सन्तुष्ट हूँ।

वैशम्पायन कहते हैं कि यक्षराज ने युधिष्ठिर से यों कहकर भीमसेन से कहा—हे कुरु-श्रेष्ठ, तुमने द्रौपदी को प्रसन्न करने के लिए मेरा और देवताओं का अनादर करके बाहुबल से यक्षों तथा राक्षसों को मारा और साहस का काम किया, इससे मैं तुम पर बहुत ही प्रसन्न हूँ। हे भीम, आज तुम्हारे कारण भयङ्कर शाप से मेरा छुटकारा हो गया। महात्मा अगस्त्य ने किसी अपराध पर कुपित होकर मुझे शाप दिया था। उसके कारण मुझको अनेक कष्ट भोगने पड़े हैं। हे पाण्डव, इसमें तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है।

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, महात्मा अगस्त्य ने आपको किसलिए शाप दिया था? वह वृत्तान्त सुनने की मुझे बड़ी इच्छा है। आप अपने अनुचरों सहित उन महर्षि के क्रोधाग्नि

में पड़कर भस्म होने से बच गये, यही मुझे आश्चर्य जान पड़ता है। कुबेर ने कहा—महाराज, एक समय कुशावती नगरी में सब देवताओं ने मिलकर सलाह की थी। मैं भी निमन्त्रित होकर अनेक शस्त्र लिये भयङ्कर यक्षों के साथ वहीं जा रहा था। राह में मैंने देखा कि पक्षियों और फूले हुए वृक्षों से शोभित यमुनातट पर महर्षि अगस्त्य सूर्य के सामने, ऊपर को हाथ उठाये, खड़े खड़े कठोर तपस्या कर रहे हैं। जान पड़ता था, मानों कुण्ड में आग जल रही है। उसी समय मेरा मित्र मणिमान् मेरे साथ आकाशमार्ग होकर उधर से ही जा रहा था। उसने मूर्खता और अभिमान के वश होकर अगस्त्य महर्षि के सिर पर थूक दिया। तब उन्होंने अत्यन्त क्रोधित होकर मुझसे कहा—कुबेर, तुम्हारे सखा ने बिना अपराध के, तुम्हारे सामने, मेरा
अपमान किया; इसलिए यह दुष्ट तुम्हारी इस सारी सेना के साथ मनुष्य के हाथों मारा ६०
जायगा। तुम्हें इस सेना के और अपने मित्र के मरने से अत्यन्त कष्ट होगा। अन्त में उस मारनेवाले मनुष्य को देखकर इस पाप और शाप से तुम्हारा छुटकारा हो जायगा। तुम्हारी सेना के सब यक्ष भी फिर जीकर पुत्र-पौत्र आदि के साथ चिरकाल तक तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे। हे युधिष्ठिर, पूर्व समय में महर्षि अगस्त्य ने इस तरह यह शाप मुझको दिया था।
इस समय तुम्हारे छोटे भाई भीमसेन ने मुझे उससे छुड़ा दिया। ६३

एक सौ बासठ अध्याय

पाण्डवों को कुबेर का उपदेश देना

कुबेर ने कहा—हे युधिष्ठिर, संसार में निर्वाह करने के लिए धैर्य, चतुराई, देश, काल और पराक्रम, ये पाँच विधियाँ हैं। सत्ययुग में सब मनुष्य अपने-अपने कार्य में धैर्य, चातुरी और पराक्रम प्रकट करते थे। क्षत्रिय लोग धैर्यशाली, सब धर्मों की विधि के ज्ञाता, देश और काल के जाननेवाले होकर सदा से इस पृथ्वी का शासन करते आते हैं। महाराज, जो मनुष्य इस तरह सब काम करता है वह इस लोक में यश और परलोक में सद्गति पाता है। देश-काल के ज्ञाता इन्द्र ने वसुओं के साथ पराक्रम करके स्वर्ग का राज्य प्राप्त किया है। जो व्यक्ति क्रोध के वश में होकर अपने ऊपर आनेवाले अनिष्ट पर ध्यान नहीं देता वह पापमति केवल पापकार्यों में लगा रहता है। वह कार्य के विभागों से अनभिज्ञ, काल का ज्ञान न रखनेवाला, मन्दबुद्धि, वृथा कार्यारम्भ करनेवाला होकर इस लोक और परलोक में क्लेश ही भोगा करता है। जो लोग साहस करते हैं, छल करते हैं, दुष्ट हैं और [दुष्टता के लिए] सब सामर्थ्य की इच्छा रखते हैं वे मनुष्य पाप के ही भागी होते हैं। महाराज! तुम्हें इन गर्वित, क्रोधी, निर्भय और धर्म का ज्ञान न रखनेवाले भीमसेन को समझाकर दबाव में रखना चाहिए। अब तुम

शोक और डर छोड़कर आर्ष्टिषेण के आश्रम को लौट जाओ। यह कृष्णपक्ष वहीं बिताओ। मैं ब्राह्मणों की और तुम्हारी रक्षा के लिए अलकापुरी में रहनेवाले गन्धर्वों, किन्नरों और पर्वत-निवासी राक्षसों को तैनात कर दूँगा। भीमसेन एकाएक उलझ पड़ते हैं। इन्हें तुम ऐसे साहस के काम करने से रोको। अब से सब वन के रहनेवाले प्राणी सदा तुमसे मिलते और तुम्हारी रक्षा करते रहेंगे। हे पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवो, मेरे अनुचर भी सदा तुमको स्वादिष्ठ आहार और जल आदि पहुँचाया करेंगे। हे युधिष्ठिर! जैसे इन्द्र के अर्जुन, पवन के भीम, धर्म के तुम और अश्विनीकुमारों के नकुल तथा सहदेव रक्षा के योग्य हैं, वैसे ही तुम सब पुत्र की तरह मेरे भी रक्षणीय हो। अर्थ-तत्व-चतुर अर्जुन देवलोक में कुशल से हैं। स्वर्ग के सब वैभव जन्म से ही सर्व-लोक-पूजनीय, भीमसेन के छोटे भाई, अर्जुन को प्राप्त हैं। हे कुरुवंशभूषण, दम, दान, बल, बुद्धि, लोकलज्जा, धैर्य, तेज आदि सब श्रेष्ठ गुण महाभाग परम तेजस्वी अर्जुन में हैं। अर्जुन मोहवश होकर कभी निन्दित कर्म नहीं करते। उन्होंने कभी किसी से झूठ नहीं बोला। हे कुरु-कुलवर्द्धन! अर्जुन इस समय देवता, पितर, गन्धर्व आदि से आदर पाकर स्वर्ग में अस्त्र-विद्या सीख रहे हैं। धर्म के अनुसार सब राजाओं को जीतकर दिग्विजय करनेवाले तुम्हारे देवलोकवासी महातेजस्वी प्रपितामह महाराज शान्तनु कुलदीपक अर्जुन पर प्रसन्न हैं। जिन महातपस्वी शान्तनु ने पितरों, देवताओं, ऋषियों और ब्राह्मणों की पूजा करके यमुना-तट पर सात अश्वमेध यज्ञ किये थे, वे स्वर्ग-विजयी महाराज इन्द्रलोक में अर्जुन से तुम्हारे कुशल-समाचार पूछा करते हैं।

वैशम्पायन कहते हैं—कुबेर के ये वचन सुनकर पाण्डव बहुत ही प्रसन्न हुए। शक्ति, गदा, खड्ग आदि शस्त्र हाथ में लिये भीमसेन ने धनुष की डोरी उतार-कर कुबेर को प्रणाम किया। भीमसेन को शरणागत देखकर कुबेर ने कहा—हे भीम, तुम शत्रुओं के अभिमान को चूर्ण करते हुए मित्रों की समृद्धि बढ़ाओ। तुम लोग जब अपने घर जाकर रहोगे तब यक्ष तुम्हारी सब इच्छाएँ पूरी करते रहेंगे। अर्जुन अस्त्र-शिक्षा में पारदर्शी होकर, इन्द्र से विदा होकर, जल्दी लौट आवेंगे।

यक्षराज कुबेर पाण्डवों को यों उपदेश देकर अपने घर की ओर लौट पड़े। विचित्र कम्बलों से शोभित, अनेक रत्नों से भूषित, सवारियों पर चढ़कर हज़ारों यक्ष और राक्षस उनके पीछे चले। आकाशमार्ग में पक्षी जैसे कोलाहल करते हैं वैसे ही घोड़ों की हिनहिनाहट से कुबेर-भवन का मार्ग व्याप्त हो गया। मानों वायु भक्षण करते और मेघजाल को खींचते से कुबेर के घोड़े आकाश-मार्ग में फुर्ती से चले जा रहे थे। कुबेर की आज्ञा से यक्षों ने उस पर्वत के शिखर पर से मरे हुए यक्षों की लाशें हटाकर उस स्थान को साफ़ कर दिया। महाराज, महर्षि अगस्त्य ने यक्षों और राक्षसों को यही शाप दिया था। भीमसेन के हाथों मरकर वे भी शाप से छुटकारा पा गये। यक्ष-राक्षस आदि से यों आदर-सत्कार पाकर पाण्डव कई रातों तक वहीं पर रहे। ३८

एक सौ तिरसठ अध्याय

सुमेरु पर्वत के दर्शन करना

वैशम्पायन कहते हैं—हे शत्रुदमन, अब सूर्योदय होने पर महर्षि धौम्य नित्यकर्म करके महर्षि आर्ष्टिषेण के साथ पाण्डवों के पास आये। पाण्डवों ने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर उनके चरणों में प्रणाम और अन्य ब्राह्मणों का पूजन किया। फिर महर्षि धौम्य ने धर्मराज युधिष्ठिर का दाहना हाथ पकड़कर पूर्व की ओर देखकर कहा—हे धर्मराज, यह जो तुम परम रमणीय पर्वतराज मन्दराचल देख रहे हो वह समुद्र तक पृथ्वी पर फैला हुआ है। हे पाण्डव, इन्द्र और कुबेरजी पर्वतमालाशोभित, वनपूर्ण इस दिशा की रक्षा करते हैं। सब धर्मों के ज्ञाता विचार-शील मुनि लोग इस पर्वत को महेन्द्र और कुबेर का निवास-स्थान कहते हैं। ब्राह्मण, सिद्ध, साध्यगण, देवगण इसी दिशा में उगते हुए सूर्य की उपासना करते हैं।

सब जीवों के प्रभु धर्मराज यम इस दक्षिण दिशा के स्वामी हैं। इस दिशा में मरे हुए लोग (पितर) रहते हैं। वह देखो, प्रेतराज की परम समृद्धिशालिनी अत्यन्त अद्भुत संयमनीपुरी देख पड़ती है। सब भुवनों को प्रकाशित करनेवाले भगवान् सूर्य नियमित रूप से उदित होकर पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए, सत्य नियम के अनुगामी होकर, जिस पर्वत पर विश्राम करते हैं
वह यही अस्ताचल है। राजा वरुण इस पर्वत पर और महासागर में रहकर सब प्राणियों १०
की रक्षा करते हैं। हे महाभाग, वह ब्रह्मज्ञानियों का परम गति-स्वरूप, परम मंगलदायक, महा-मेरु उत्तर दिशा में चमक रहा है। यहाँ जगत् की सृष्टि करनेवाले प्रजापति ब्रह्माजी रहते हैं। दक्ष आदि उनके मानस पुत्र भी यहीं पर बे-खटके रहते हैं। वशिष्ठ आदि सप्तर्षि यहीं पर उदित होकर फिर अस्त होते हैं। वह रजोगुण से रहित रमणीय सुमेरु का शिखर देखो। इसी स्थान पर पूर्णकाम देवताओं के साथ पितामह ब्रह्माजी रहते हैं। पञ्चभूतमयी प्रकृति के कारण-स्वरूप,

अनादि, अनन्त, सब प्राणियों के ईश्वर नारायण का निवासस्थान इस सुमेरु के पूर्व भाग में ब्रह्मलोक
से भी श्रेष्ठ है। यह परम तेजस्वी सूर्य और अग्नि से भी बढ़कर दीप्तिशाली है। इसकी प्रभा को
देवता और दानव भी अच्छी तरह नहीं देख सकते। यहाँ पर भूतभावन ब्रह्मा सब जगत् को
२० प्रकाशित करते हुए विराजमान हैं। हे कुरुश्रेष्ठ, यहाँ जाने का अधिकार ब्रह्मर्षियों को भी
नहीं है; फिर महर्षि लोग किस तरह जा सकते हैं? हे पाण्डव, इस स्थान में किसी प्रकार
के तेजस्वी पदार्थ का प्रकाश नहीं है। वही सबसे श्रेष्ठ भगवान् ज्योतिर्मय रूप से प्रकाशमान
हैं। जो तपस्वी यति, अचल भक्ति के साथ, नारायण के दर्शन को जाते हैं उन्हें फिर मनुष्यलोक
में नहीं आना पड़ता। यह ईश्वर का सनातन अक्षय स्थान है। तुम इसे प्रणाम करो। हे
कुरुनन्दन, सूर्य और चन्द्रमा नित्य इस सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं और सब ज्योतिष्क-
मण्डल भगवान् भास्कर के आकर्षण से सुमेरु के चारों ओर फिरता रहता है। सब प्राणियों के
३० हितैषी भगवान् सूर्य अस्त होकर सन्ध्या के बाद उत्तर दिशा को जाते हैं। फिर उसकी शेष
सीमा तक जाकर पूर्व दिशा को जाते हैं। सूर्यनारायण इस प्रकार सुमेरु की प्रदक्षिणा करके
पर्वसन्धि और काल के विभाग से बारह महीनों का विभाग करते हैं। वे सारे जगत् में
प्रकाश फैलाकर फिर मन्दर पर्वत को जाते हैं। सब प्राणियों के जीवनरूप चन्द्रमा भी नक्षत्र-
मण्डली के साथ सुमेरु की प्रदक्षिणा करते हैं। अन्धकार को मिटानेवाले भगवान् सूर्यदेव
जगत् भर में अपनी किरणें फैलाते हुए इसी बाधाहीन मार्ग में सदा घूमते रहते हैं। फिर जब
सब चीज़ों को शीतल (तापहीन) करना चाहते हैं तब बर्फ़ पैदा करने के लिए दक्षिणायन में
चले जाते हैं; तभी जाड़े की ऋतु होती है।

फिर सूर्यनारायण दक्षिण दिशा से लौटकर अपने तेज के प्रभाव से सब चराचर वस्तुओं
के तेज को खींच लेते हैं। उस समय गर्मी होती है। तब सब जीव बहुत ही मुरझा जाते हैं,
शरीर से पसीना बह चलता है, आलस और नींद सताती है। प्राणी सदा नींद के वश रहते
हैं। भगवान् सूर्य इस प्रकार अन्तरिक्ष में घूमकर संसार की सुख-समृद्धि को बढ़ाते हुए फिर
वर्षा ऋतु को प्रकट करते हैं। भगवान् सूर्य अमृततुल्य जल बरसाते, मन्द-मन्द हवा चलाते और
सुखदायक धूप फैलाते हुए हरएक ऋतु में चराचर जगत् को पालते हैं—उसकी बढ़ती करते हैं।
४० उनकी गति कभी नहीं रुकती। जड़ पदार्थ की तरह वे कभी एक जगह पर स्थिर नहीं रहते।
वे सबके तेजवाले अंश को लेकर फिर उसे फेर देते हैं। वे सबकी आयु का निर्देश और कार्यों
के समय का विभाग करते हैं। दिन, रात, कला, काष्ठा आदि समय के अंगों का ज्ञान भी
४२ उनकी गति से ही होता है।

एक सौ चौंसठ अध्याय

अर्जुन के लिए पाण्डवों का चिन्ता करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज ! सत्यव्रतपरायण महात्मा पाण्डव लोग, अर्जुन से मिलने की इच्छा से, प्रसन्नतापूर्वक उस पर्वत पर बाट जोहने लगे। बहुत से गन्धर्व और महर्षि बड़ी प्रसन्नता से उन वीर्यशाली धीर महात्मा पाण्डवों के पास आते और उनसे मिलते थे। जैसे स्वर्ग को पाकर मरुद्गण प्रसन्न होते हैं वैसे ही फूले हुए वृक्षों से शोभित उस पर्वतराज के ऊपर पहुँचकर महारथी पाण्डवों को आनन्द हुआ। वे उस पर्वतराज की ऊँची चोटी पर चढ़कर मोर, हंस आदि के मनोहर शब्द सुनते और तरह-तरह के रङ्गीन फूलों-फलों से पूर्ण शिखरों को देखते और बड़ा ही आनन्द पाते थे। उन्होंने वहाँ पर स्वयं कुबेर के बनवाये अनेक सुन्दर सरोवर देखे। उनमें हंस-कारण्डव-चक्रवाक आदि जलचर पक्षी थे और अनेक प्रकार के कमल खिले हुए थे। वहाँ के क्रीड़ा-कुञ्ज विविध पुष्पमालाओं और अनेक रत्नों से शोभायमान थे। वे ऐसे सुन्दर थे मानों कुबेर के हों। सुगन्ध और कुसुमों से शोभित, अनेक प्रकार के वृक्षों से पूर्ण, उस शिखर पर मुनि लोग स्वच्छन्द होकर विचरते रहते हैं। उस शिखर पर बादल छाये रहते हैं।

हे पुरुषश्रेष्ठ, एक तो वह पहाड़ ही बहुत चमकीला है और फिर उस पर की दिव्य ओषधियाँ जगमगाती रहती हैं। इस कारण वहाँ पता ही नहीं चलता कि दिन है या रात। जिनके तेज की सहायता से रात को अग्निदेव सारे जगत् को प्रकाशित करते रहते हैं उन्हीं जगत् के अधिष्ठाता सूर्य का उदय और अस्त वहाँ से पाण्डव लोग नित्य देखा करते थे। सूर्य की किरणों से सब जगत् को प्रकाशित होते देखकर वे लोग भी सूर्य की आराधना, स्वाध्यायपाठ
आदि करते थे। पवित्र और ब्रह्मचारी रहकर वे लोग वहाँ सत्यवादी अर्जुन के आने की बाट १०
जोह रहे थे। "हम सब शीघ्र ही अस्त्र-विद्या सीखकर लौटे हुए अर्जुन को देखकर आनन्द प्राप्त करें", इस प्रकार की बातचीत करते हुए युधिष्ठिर आदि पाण्डव वहाँ रहकर तपस्या और योगाभ्यास करने लगे। उस पर्वत के विचित्र वनों [और अद्भुत दृश्यों] को देखने पर भी सदा अर्जुन की चिन्ता बनी रहने के कारण एक दिन और एक रात एक वर्ष से भी बढ़कर बीतती थी। जब महात्मा धौम्य की अनुमति से जटा धारण करके अर्जुन अस्त्र प्राप्त करने के लिए गये थे तभी पाण्डवों का मन उदास हो गया था। उन सबका चित्त अर्जुन में ही लगा रहता था। इस कारण उस दिव्य स्थान में रहने पर भी उनको चैन न था। मतवाले गजराज की सी चालवाले अर्जुन जब से काम्यक वन से बड़े भाई की आज्ञा लेकर [इन्द्र-भवन को] गये तभी से उनके वियोग का शोक पाण्डवों को विह्वल बनाये हुए था। उन्होंने एक महीना, उस पर्वत पर रहकर, अर्जुन की चिन्ता में बड़े कष्ट से बिताया।

उधर अर्जुन ने भी इन्द्रलोक में पांच वर्ष बिताकर, अग्नि, वरुण, चन्द्र, वायु, विष्णु, इन्द्र, परमेष्ठी ब्रह्मा, पशुपति, यम, धाता, सविता, त्वष्टा, कुबेर आदि देवताओं के सब दुर्धर्ष अस्त्र प्राप्त कर, अपने भाइयों से जाकर मिलने की इच्छा प्रकट की। इन्द्र की प्रदक्षिणा करके, उनसे अनुमति लेकर, प्रसन्नता के साथ अर्जुन वहाँ से चल दिये और शीघ्र ही गन्धमादन पर्वत
२० पर आ पहुँचे।

निवातकवच-युद्धपर्व

एक सौ पैंसठ अध्याय

अर्जुन का स्वर्गलोक से लौटकर आना

वैशम्पायन कहते हैं—पाण्डव लोग इस तरह अर्जुन के लिए चिन्ता कर ही रहे थे कि बिजली के समान प्रभापूर्ण, मातलि के हाथों हाँका जाता हुआ इन्द्र का रथ, मेघों के बीच जाती हुई बड़ी उल्का की तरह, जलती हुई आग की लौ की तरह, आकाश को प्रकाशित करता वहाँ पर आ गया। किरीट, माला और अनेक नये गहने पहने हुए, इन्द्र के समान प्रभावशाली, वीर अर्जुन उस रथ पर बैठे हुए वहाँ आ पहुँचे। उस पर्वत पर अर्जुन को उपस्थित देखकर पाण्डवों को बड़ा आनन्द हुआ। अर्जुन ने रथ से उतरकर पहले धौम्य के, फिर युधिष्ठिर और भीमसेन के, पैर छुए। नकुल और सहदेव ने उनके पैर छुए। फिर अर्जुन द्रौपदी से मिलकर, दिलासा देकर, नम्र भाव से युधिष्ठिर के पास खड़े हो गये। अतुल बलवान् अर्जुन से मिलकर सब लोगों को ऐसा आनन्द हुआ जिसका वर्णन नहीं हो सकता। सबसे मिलकर और राजा युधिष्ठिर के दर्शन करके अर्जुन को भी अपार आनन्द हुआ। नमुचि दैत्य को मारनेवाले इन्द्र ने जिस पर चढ़कर दैत्यों के सात दलों को

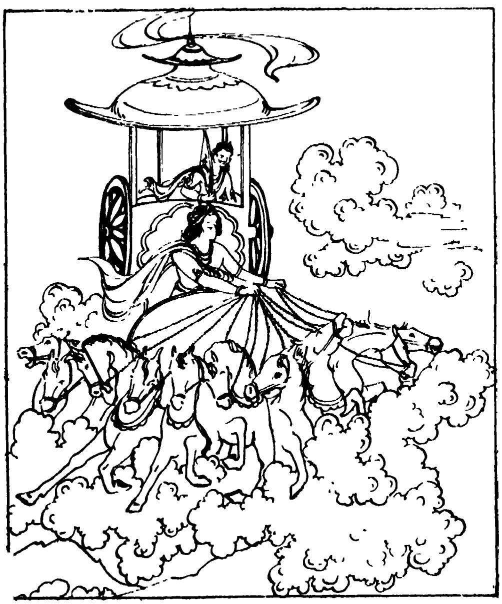

नष्ट किया था उस रथ के समीप जाकर पाण्डवों ने उसकी प्रदक्षिणा की। फिर बड़ी प्रसन्नता से
इन्द्र के सारथी मातलि का यथोचित सत्कार किया और देवताओं के सम्बन्ध में उससे अनेक
प्रकार के कुशल-प्रश्न पूछे। पिता
जैसे पुत्र को उपदेश करता है वैसे ही
मातलि ने पाण्डवों को अच्छी बातों
का उपदेश किया। फिर पाण्डवों का
अभिनन्दन करके, परम प्रभापूर्ण दिव्य
रथ पर चढ़कर, मातलि सारथी इन्द्र के
पास लौट गया।

मातलि के चले जाने पर, इन्द्र
के शत्रुओं के काल, नरश्रेष्ठ अर्जुन ने
प्रियतमा द्रौपदी को इन्द्र के दिये हुए
सूर्य के समान चमकीले महामूल्य
रत्न-आभूषण दिये। फिर जिस तरह १०
साक्षात् महादेव, इन्द्र और वायु से उन्हें
अस्त्र मिले, जिस तरह स्वर्ग में जाकर
सदाचारी रहकर एकाग्रता के साथ
उन्होंने इन्द्र आदि देवताओं को
सन्तुष्ट किया, सो सब वृत्तान्त सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी ब्राह्मणों और पाण्डवों के आगे
बैठकर, संक्षेप में उन्होंने कह सुनाया। फिर नकुल और सहदेव के साथ एक जगह रहकर
उन्होंने वह रात बिताई। १४

एक सौ छाछठ अध्याय

इन्द्र से युधिष्ठिर आदि की भेंट का वृत्तान्त

वैशम्पायन कहते हैं—प्रातःकाल होने पर अर्जुन ने भाइयों के साथ उठकर युधिष्ठिर के चरणों में प्रणाम किया। इसी समय अन्तरिक्ष में देवताओं का बड़ा कोलाहल सुन पड़ने लगा। इसके बाद अनेक प्रकार के वाहनों के शब्द, रथों के पहियों की घरघराहट और अनेक प्रकार के बाजों के शब्द अलग-अलग सुन पड़ने लगे। सूर्य-सदृश विमानों पर विराजमान गन्धर्वों और अप्सराओं के झुण्ड इन्द्र के पीछे-पीछे आ रहे थे। उसी सुवर्णरत्न-मण्डित प्रभाशाली रथ पर

चढ़े हुए इन्द्रदेव पाण्डवों के पास आकर उतर पड़े। उन्हें देखते ही भाइयों सहित युधिष्ठिर ने आगे बढ़कर उनकी अगवानी की। फिर विधि से उनकी पूजा की। महातेजस्वी अर्जुन भी प्रणाम करके, बहुत ही नम्र अनुचर की तरह, उनके पास खड़े हो गये। तपस्वी पापहीन अर्जुन को देखकर युधिष्ठिर पहले से ही अत्यन्त आनन्दित हो रहे थे। इस समय उन्हें इन्द्र के आगे
१० विनीत भाव से खड़े देखकर वे और भी अधिक प्रसन्न हुए।

इन्द्र ने कहा—हे धर्मराज, तुम निःसन्देह इस सारी पृथ्वी का राज्य करोगे। इस समय निर्विघ्न भाव से उसी काम्यक वन में जाओ। अर्जुन ने मुझसे सब दिव्य अस्त्र सीख लिये हैं। इन्होंने मेरा प्रिय कार्य करके मुझे बहुत प्रसन्न किया है। इस कारण मैं वर देता हूँ कि त्रिलोक में कोई भी इनको न जीत सकेगा। युधिष्ठिर से यों कहकर, मुनियों के मुँह से अपनी स्तुति सुनते हुए, इन्द्र स्वर्ग को चले गये। महाराज, जो कोई पुरुष एक वर्ष तक ब्रह्मचारी, नियमधारी, व्रतकारी होकर एकाग्र भाव से पाण्डवों के साथ इन्द्र की इस भेंट का वृत्तान्त पढ़ेगा उसे कभी
१७ विघ्नों का सामना न करना पड़ेगा। वह बड़े सुख के साथ सौ वर्ष की आयु बितावेगा।

एक सौ सड़सठ अध्याय

अर्जुन का अपने पाशुपत अस्त्र पाने का वृत्तान्त कहना

वैशम्पायन कहते हैं—इन्द्र जब अपने लोक को चले गये तब अर्जुन ने युधिष्ठिर और अन्य भाइयों को तथा द्रौपदी को सन्तुष्ट किया। एक बार अर्जुन ने आकर युधिष्ठिर को भक्ति के साथ प्रणाम किया। युधिष्ठिर ने स्नेह से उनका माथा सूँघा। फिर हर्ष-गद्गद स्वर से वे कहने लगे—हे अर्जुन, तुमने किस तरह इतना समय स्वर्ग में बिताया? किस तरह ये सब दिव्य अस्त्र प्राप्त किये और किस तरह इन्द्र को सन्तुष्ट किया? तुमने क्या सोलहों आने सब अस्त्र सीख लिये हैं? इन्द्र और रुद्र ने क्या प्रसन्न होकर ये अस्त्र तुमको दिये हैं? इन्द्र और शङ्कर ने किस प्रकार तुमको दर्शन दिये? किस प्रकार तुमने उनसे अस्त्र पाये? किस तरह तुमने आराधना करके उन्हें सन्तुष्ट किया, यह सब वृत्तान्त हमसे कहो। तुमने इन्द्र का कौनसा काम कर दिया है जिसके लिए वे तुमको यहाँ प्रियकारी कह गये हैं?

अर्जुन ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—हे शत्रुदमन! जिस उपाय से मैंने इन्द्र और रुद्र के दर्शन पाये हैं, सो कहता हूँ, सुनिए। मैं आपसे वह विद्या पाकर आपकी आज्ञा से तप करने को चल
१० दिया था। मैं भृगुतुङ्ग पर्वत पर जाकर तप करने लगा। वहाँ एक रात रहने पर राह में एक ब्राह्मण से भेंट हुई। उन्होंने पूछा—हे पार्थ, तुम कहाँ जाओगे? मैंने सब वृत्तान्त उनसे कह दिया। उन्होंने आदरपूर्वक प्रसन्नता प्रकट करते हुए मुझसे कहा—हे अर्जुन, तुम तप करो।

शीघ्र ही इन्द्र से तुम्हारी भेट होगी। उनके कहने से मैं हिमालय पर जाकर तप करने लगा। एक महीने तो फल-मूल खाये, दूसरे महीने केवल जल पोकर रहा, तीसरे महीने निराहार ही रहा और चौथे महीने हाथ को ऊपर उठाकर रहने लगा। इस तरह मैंने घोर तप किया। आश्चर्य है कि इतने पर भी मेरे प्राण नहीं निकले।

इसके बाद पाँचवाँ महीना लगने पर पहले ही दिन एक बड़ा भारी वराह अपने थूथन और पैरों से पृथ्वी को खोदता और चक्कर खाता घुरघुराता मेरे पास आया। उसके पीछे ही किरातरूपी और एक महापुरुष धनुष, बाण, खड्ग आदि शस्त्र लिये चले आ रहे थे। उनके साथ स्त्रियाँ भी थीं। मैंने अपने अक्षय तरकसों से बाण निकालकर धनुष पर चढ़ाकर उस २०
वराह पर चलाये। किरातरूपी उक्त महापुरुष ने भी मेरे साथ ही धनुष पर बाण चढ़ाकर उसको ऐसे ज़ोर से मारा कि मेरा दिल दहल सा गया। फिर उन महापुरुष ने मुझसे कहा—तुमने शिकार के धर्म को छोड़कर मेरे पहले से ही तके हुए इस शिकार पर बाण क्यों चलाया? ठहर जाओ, मैं पैने बाणों से अभी तुम्हारे घमण्ड को चूर कर दूँगा। अब वे महाकाय पुरुष मेरी ओर झपटे। उन्होंने अपने बाणों की वर्षा से वैसे ही मुझे ढक दिया जैसे पर्वत को बरसात की बूँदें छा लेती हैं। मैंने भी उसी तरह उन्हें बाणों से छिपा दिया। पर्वत पर वज्र-पात की तरह मेरे अभिमन्त्रित तथा प्रज्वलित बाण उनके शरीर पर गिरने लगे। देखते ही देखते उन्होंने सैकड़ों-हज़ारों रूप धारण कर लिये। मैंने उनके सभी रूपों को अपने बाणों से घायल किया। तब फिर सब रूप लुप्त हो गये, एक ही रूप रह गया। वे कभी बहुत ही सूक्ष्म, कभी स्थूल, कभी बड़ा और कभी छोटा, कभी एक और कभी अनेक रूप रखकर मेरे साथ युद्ध करने लगे। महाराज, मैं जब बारम्बार बाण मारकर भी उन्हे परास्त नहीं कर सका तब मैंने धनुष पर अभिमन्त्रित करके वायव्य अस्त्र चढ़ाया; पर वह भी उनका कुछ नहीं कर ३०
सका। यह देखकर मुझे बड़ा अचरज हुआ। फिर मैंने स्थूणाकर्ण, वारुण, शालभ आदि भीषण बाणों की वर्षा और शिला-वर्षा से उन्हें पाट दिया परन्तु उनका कुछ नहीं हुआ। सब अस्त्र उनके ऊपर निष्फल हो गये। तब मैंने ब्रह्मास्त्र चलाया। उससे अनन्त अग्नि-तुल्य अनेक बाण निकलकर चारों ओर फैल गये। वे (किरात) अस्त्र के तेज से और भी बढ़ गये। मेरे अस्त्र के तेज से उस समय सारा संसार तप गया, आकाश और सब दिशाएँ जलने लगीं। उन महातेजस्वी पुरुष ने उस समय मेरे अमोघ ब्रह्मास्त्र को भी तुरन्त काट गिराया। ब्रह्मास्त्र के भी नष्ट होने पर मैं बहुत ही डर गया। तब अपने अक्षय तरकस और धनुष लेकर मैंने उन पर प्रहार किया। उन सबको भी उन्होंने बेकाम कर दिया। इस प्रकार सब अस्त्र-शस्त्र उनके पास चले जाने पर मैं उनसे भिड़कर कुश्ती लड़ने लगा। फिर हम दोनों घूँसों और थप्पड़ों से लड़ने लगे। जब मैं किसी तरह उन्हें परास्त नहीं कर सका, तब बेदम होकर

४० पृथ्वी पर बैठ गया। अब हँसते हुए किरात-रूप-धारी महेश्वर मुझे अचम्भे में डालकर स्त्रियों के
साथ उसी जगह अन्तर्द्धान हो गये। उसी क्षण वे महापुरुष किरात का वेष छोड़कर मेरे सामने
आ गये। मैंने देखा, विचित्र कपड़े पहने भगवान् शङ्कर भगवती के साथ सामने खड़े हैं।
उनके अङ्गों में आभूषणों की जगह पर साँप शोभायमान हैं। मैं उस समय भी युद्ध करने के लिए

सामने खड़ा था। शङ्कर ने पास आकर
मुझे मेरे तरकस, धनुष और सब अस्त्र-
शस्त्र दे दिये। फिर उन्होंने कहा—
हे अर्जुन, मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ।
कहो, मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ?
अमर होने के सिवा और जो कुछ
तुम्हें माँगना हो, माँग लो। मैं वही
तुमको दूँगा। अपनी इच्छा पूरी होने
का अवसर देखकर मैंने हाथ जोड़े
और कहा—भगवन्, मुझे देवताओं के
सब दिव्य अस्त्र प्राप्त करने की बड़ी
इच्छा है। इसलिए जो आप मुझ पर
प्रसन्न हैं तो मुझे यही वर दीजिए।

शङ्कर ने कहा—मैंने तुमको
५० देवताओं के सब दिव्य अस्त्र दिये।
मेरा रौद्र पाशुपत अस्त्र भी सदा तुम्हारे
पास रहेगा। अब उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपना वह पाशुपत अस्त्र मुझको दिया। फिर उन्होंने
कहा—वत्स, यह अस्त्र मनुष्य के ऊपर कभी न चलाना; क्योंकि किसी शक्तिहीन पर चलाने
से यह सारे संसार को भस्म कर देगा। यदि कोई अमानुष व्यक्ति सतावे अथवा किसी शत्रु
ने कोई अस्त्र छोड़ा हो तो उसे नष्ट करने के लिए ही इसको काम में लाना।

देवाधिदेव महादेव के यों कहने पर सब अस्त्रों को रोकनेवाले, शत्रुओं को चौपट करने-
वाले, शत्रुओं की सेना को काटनेवाले और जिनके तेज को देवता, दानव, राक्षस आदि कोई भी
नहीं सह सकते, वे अप्रतिहत दिव्य अस्त्र सदेह आकर मेरे पास खड़े हो गये। महादेवजी की
५७ आज्ञा से मैं वहीं रहा। महादेवजी मेरे सामने ही अन्तर्द्धान हो गये।

एक सौ अड़सठ अध्याय

लोकपालों के आने, स्वर्ग जाने, इन्द्र से बातचीत होने और निवातकवच दानवों को मारने के उद्योग का वर्णन

अर्जुन कहते हैं—इस प्रकार महादेवजी की प्रसन्नता पाकर मैं बहुत आनन्दित हुआ और वह रात वहीं बिताई। दूसरे दिन सवेरे प्रातःकृत्य आदि करके मैं बैठा था, कि उन्हीं पूर्व-परिचित ब्राह्मण के दर्शन हुए। मैंने उनको महादेवजी से भेंट होने का हाल कह सुनाया। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—अर्जुन, तुम्हारे समान इस तरह आज तक किसी मनुष्य ने महादेवजी के दर्शन नहीं पाये। तुम्हें यमराज आदि सब लोकपालों के साथ इन्द्र के भी दर्शन शीघ्र ही मिलेंगे। उनसे तुम्हें सब अस्त्र प्राप्त होंगे। इतना कहकर बारंबार मुझे गले से लगाकर वे तेजस्वी ब्राह्मण देवता वहाँ से चले गये।

उसी दिन, तीसरे पहर, सब लोगों में नई स्फूर्ति लानेवाली हवा हिमालय के आसपास चलने लगी। दिव्य सुगन्ध चारों ओर फैल गई और साथ ही आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। चारों ओर इन्द्र की स्तुति और बाजों का शब्द सुन पड़ने लगा। इन्द्र के आगे गन्धर्व गा रहे थे और अप्सराएँ नाच रही थीं। इन्द्र के सेवक, अन्यान्य सारथी, सभी दिव्य विमानों पर चढ़कर आने लगे। इन सबके साथ इन्द्र भी, इन्द्राणी को लिये, देवताओं के साथ वहाँ पर आये। उनके रथ में हरे रङ्ग के घोड़े जुते हुए थे।

इसी बीच में दिव्य श्री-युक्त नरवाहन कुबेर, यम और वरुण भी वहीं आ गये। वे अपनी-अपनी दिशा में यथास्थान स्थित थे। उन सबने मुझे सान्त्वना देकर कहा—हे अर्जुन! देखो, हम लोकपाल हैं। भगवान् शङ्कर ने, देव-कार्य सिद्ध करने के लिए, तुमको दर्शन दिये हैं। हम लोगों से भी ये सब दिव्य अस्त्र लो। राजन! तब मैंने पवित्र होकर, सबको प्रणाम कर, विधिपूर्वक वे अस्त्र ग्रहण किये। फिर सब देवता अपने-अपने स्थान को चले गये। देवराज इन्द्र दर्शनीय रथ पर बैठे हुए थे। उन्होंने मुझसे कहा—हे अर्जुन, तुमको स्वर्ग चलना होगा। यहाँ तुम्हारे आने के पहले से मैं तुम्हें जानता हूँ; भेंट तो पीछे हुई है। हे भरत-श्रेष्ठ, तुम पूर्वजन्मों में अनेक बार तीर्थस्नान कर चुके हो और अब भी तुमने यह कठिन तप किया है। इसी से तुम स्वर्ग जाओगे। तुम्हें फिर तप करना होगा। तुम निस्सन्देह स्वर्ग जाओगे। मेरी आज्ञा से मातलि सारथी तुम्हें स्वर्ग ले जायगा। देवताओं, महात्माओं और मुनियों में तुम प्रसिद्ध हो।

मैंने कहा—भगवन्, मैं अस्त्र सीखने के लिए आपको आचार्य मानता हूँ। आप प्रसन्नता से यह प्रार्थना स्वीकार कीजिए। इन्द्र ने कहा—हे पार्थ, तुम अस्त्र सीख लेने पर क्रूरकर्मा हो जाओगे। जिस काम के लिए तुम अस्त्र सीखना चाहते हो वह तुम्हारा मतलब अच्छी तरह पूरा

होगा। मैंने कहा—भगवन्, मैं शत्रु के अस्त्रों को नष्ट करने के समय ही उन दिव्य अस्त्रों का
प्रयोग करूँगा; अन्य समय पर नहीं। मुझे दिव्य अस्त्र दीजिए। मैं उनके प्रभाव से सबको
परास्त कर अपने अधिकार में कर लूँगा। इन्द्र ने कहा—अर्जुन, तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए
ही मैं ऐसा कहता था। तुम मेरे ही पुत्र हो। इस कारण तुम्हारा मुझे अपना आचार्य बनाना
ठीक ही है। हे अर्जुन! तुम मेरे लोक में जाओगे तब अग्नि, वायु, वसु, वरुण, मरुद्गण, साध्य-
३० गण, पितामह, गन्धर्व, नाग, राक्षस सब तुमको अपने-अपने दिव्य अस्त्र देंगे। वैष्णवास्त्र, नैर्ऋ-
तास्त्र और मेरे पास के सब दिव्य अस्त्र भी तुमको मिल जायँगे। यह कहकर इन्द्र वहीं पर
अन्तर्द्धान हो गये।

सब लोकपाल भी चले गये। इसके बाद दिव्य घोड़ों से जुते, मायामय, पवित्र, इन्द्र के
रथ को लिये मातलि सारथी वहाँ आया। उसने कहा—हे महातेजस्वी, इन्द्र तुमको देखना
चाहते हैं इसलिए कर्तव्य कार्य करके चलने के लिए जल्दी तैयार हो जाओ। अभी सदेह स्वर्ग
को चलकर तुम पुण्यात्माओं के दर्शन करना। इन्द्र ने तुमको बुलाया है।

मातलि के यह कहने पर मैं हिमालय से बिदा होकर और उसकी प्रदक्षिणा करके उस
दिव्य रथ पर सवार हुआ। अश्वविद्या के पूरे ज्ञाता मातलि ने मन और हवा के समान तेज़
घोड़ों को हाँक दिया। रथ चलने लगा। तब मातलि ने मेरे मुँह की ओर देखकर अचरज
के साथ कहा—आज मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ; क्योंकि घोड़े जब इस रथ को लेकर भागने
लगते हैं तब इन्द्र भी अपने आसन से कुछ डिग जाते हैं; परन्तु तुम इस रथ पर उस समय
४० भी दृढ़ आसन से बैठे रहे; तनिक भी हिले-डुले नहीं। मुझे तुम सब बातों में इन्द्र से भी
बढ़कर जान पड़ते हो।

अब मातलि आकाश-मार्ग में पहुँचकर मुझे देवताओं के भवन और विमान दिखाने
लगा। वह रथ ऊपर उठता जाता था और [राह के लोकों में मिलनेवाले] देवता और
ऋषिगण पूजा कर रहे थे। फिर मैंने देवर्षियों के लोक देखे। गन्धर्वों और अप्सराओं का
प्रभाव भी मैंने देखा। इन्द्र के सारथी मातलि ने देवताओं के नन्दन आदि वन और
उपवन भी मुझे दिखाये।

फिर इन्द्र की अमरावती पुरी मुझे देख पड़ी। सब ऋतुओं में फूलने-फलनेवाले वृक्ष और
रत्न उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वहाँ न तो जाड़ा है, न गर्मी और न सूर्य का उत्ताप। वहाँ बुढ़ापे
का नाम भी नहीं। शोक, दुःख, दीनता, दुर्बलता, सुस्ती, क्रोध, लोभ अथवा रजोगुण के और
विकार या पीड़ाएँ भी वहाँ नहीं हैं। देवलोक के रहनेवाले प्राणी सदा सन्तुष्ट रहते हैं।
वहाँ के वृक्ष नित्य फूले-फले रहते हैं। उनमें सदा हरे-हरे पत्ते लगे रहते हैं। वहाँ के सरोवरों
५० में अनेक प्रकार के सुगन्धित कमल लगे हुए हैं। वहाँ शुभ शीतल सुगन्धित हवा चला करती है।

Hindi [illegible] Library
OSMANIA [illegible]
No.

वहाँ की भूमि रत्नमयी और विचित्र है। उस पर फूल बिखरे पड़े रहते हैं। मधुर
स्वरवाले पक्षी और मृग इधर-उधर बिचरते देख पड़ते हैं। आकाश में विमानों पर सैर करने-
वाले बहुत से देवता देख पड़ते हैं। फिर मैंने वहाँ आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुद्गण और
अश्विनीकुमारों को देखकर उनका पूजन और सत्कार किया। उन्होंने यह कहकर मुझे आशी-
र्वाद दिया कि वीर्य, यश, तेज, अस्त्र और युद्ध में विजय प्राप्त हो।

फिर मैं उस देवगन्धर्व-पूजित दिव्य नगरी में गया। हाथ जोड़े हुए मैं इन्द्र के पास
पहुँचा। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक मुझे अपने ही आसन पर बिठा लिया और मेरे शरीर पर हाथ फेर-
कर मुझे बहुत मान दिया। महाराज, फिर मैं अस्त्र-शिक्षा प्राप्त करता हुआ वहाँ उन देवताओं
और गन्धर्वों के साथ रहने लगा जिन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ करके उस लोक को प्राप्त
किया है। विश्वावसु के पुत्र चित्रसेन गन्धर्व के साथ मेरी गहरी मित्रता हो गई। उन्होंने मुझे
गन्धर्वों की सब विद्या बता दी। राजन्! अस्त्र पाकर, कृतकृत्य होकर, बड़े सुख से मैं इन्द्रलोक में
रहा। वहाँ सब लोग मेरा बड़ा आदर करते थे। वहाँ मैं कभी तरह-तरह के गाने और
बजाने का आनन्द लूटता था और कभी अप्सराओं का बढ़िया नाच देखता था। यद्यपि मैं वहाँ
की सभी बातों को सादर देखता-सुनता था तो भी अपनी ही धुन में मस्त रहकर बड़ी लगन से
अस्त्र-शिक्षा को ही अपना मुख्य उद्देश्य समझे हुए था। मेरी इस तत्परता को देखकर देवराज ६०
मुझसे बहुत प्रसन्न रहते थे। राजन्, इस तरह मैंने इतना समय स्वर्ग में बिताया है।

अस्त्र-विद्या सीखकर जब मैं अत्यन्त विश्वासपात्र हो गया तब एक दिन इन्द्र ने स्नेह-
पूर्वक मेरे सिर पर हाथ फेरकर कहा—तुम युद्ध में अद्वितीय हो चुके हो। तुम्हारा कोई बाल
भी बाँका नहीं कर सकता। तुम्हारे बल का पार नहीं है। मनुष्य-लोक में रहनेवाले दुर्बल
मनुष्यों की कौन कहे, देवता भी तुमको युद्ध में नहीं जीत सकते। हे वीर, अस्त्र-युद्ध में कोई
तुम्हारी बराबरी या सामना न कर सकेगा। तुम सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सदा सावधान, सब बातों
में निपुण, ब्राह्मणों के भक्त, शूर और अस्त्र-विद्या में पारंगत हो। तुमने पाँच प्रकार के प्रयोगों के
साथ पन्द्रह अस्त्रों की शिक्षा प्राप्त की है। तुम्हारे साथ किसी की तुलना नहीं हो सकती। तुम
प्रयोग, उपसंहार, बारंबार प्रयोगोपसंहार, प्रायश्चित्त (अस्त्र की आग से जले हुए निरपराध
मनुष्यों को जिला देना) और प्रतिघात (पराये अस्त्र से अभिभूत अपने अस्त्र को फिर उद्दीप्त
करना) आदि को अच्छी तरह जान गये हो। अब यह गुरुदक्षिणा देने का समय है। पहले
तुम उसे देने का वादा करो, तब मैं तुमसे कहूँगा कि तुमको क्या करना होगा।

मैंने कहा—जो काम मेरी शक्ति से हो सकता है उसे मेरे द्वारा किया हुआ ही समझिए।
इन्द्र ने हँसकर कहा—हे निष्पाप, इस समय त्रिभुवन में ऐसा कोई काम नहीं जिसे तुम न ७०
कर सको। मेरे शत्रु निवातकवच नाम के तीन करोड़ दानव समुद्र-दुर्ग में रहते हैं। वे सब रूप,

बल और कान्ति में एक से हैं। मैं तुमसे यही गुरु-दक्षिणा माँगता हूँ कि तुम समुद्र-दुर्ग में जाकर उन सबका नाश करो।

फिर इन्द्र ने मुझे मनोहर शोभावाला रथ दिया। उसमें मोर के रङ्ग के घोड़े जुते हुए थे; मातलि सारथी उसे हाँकता था। उसकी चमक आँखों में चकाचौंध पैदा कर रही थी। इन्द्र ने मेरे माथे पर अपने हाथ से यह सुन्दर किरीट बाँध दिया। अपने ही ऐसे दिव्य गहने भी दिये। यह सब अङ्गों को सुख पहुँचानेवाला अभेद्य कवच दिया। गाण्डीव धनुष पर चढ़ाने के लिए यह दिव्य डोरी भी दी। यह डोरी किसी के काटे नहीं कट सकती। इन्द्र ने जिस पर बैठकर विरोचन के पुत्र बलि को जीता था उसी रथ पर बैठकर मैं वहाँ से चला। उस रथ के शब्द को सुनकर देवता लोग मुझे, इन्द्र समझकर, देखने के लिए जमा होने लगे। मुझे देखकर उन्होंने कहा—अर्जुन, तुम क्या करने जा रहे हो? मैंने कहा—हे देवताओ, मैं इन्द्र के वैरी निवातकवच दानवों को मारने जा रहा हूँ। आप लोग मुझे शुभ आशीर्वाद दीजिए।

८० तब सब देवता सन्तुष्ट होकर इन्द्र की तरह मेरी भी स्तुति करते हुए कहने लगे—हे निष्पाप! इस रथ पर बैठकर इन्द्र ने युद्ध में शंबर, नमुचि, बल, वृत्र, प्रह्लाद, नरकासुर आदि हज़ारों-लाखों-करोड़ों दैत्यों को मारा और जीता है। तुम भी इस रथ के प्रभाव से, उन्हीं इन्द्र की तरह, युद्ध में अपना पराक्रम दिखाकर निवातकवच दानवों को मारोगे। हम तुमको यह शङ्ख देते हैं। इस शङ्ख के प्रभाव से इन्द्र ने त्रिलोकी का प्रभुत्व पाया है। तुम भी इस शङ्ख के प्रभाव से सब दानवों को जीत लोगे। बस, वह शङ्ख देकर वे लोग मेरी जय की इच्छा प्रकट करने और आशीर्वाद देने लगे। देवताओं के दिये (देवदत्त) उस शङ्ख को लेकर, कवच-
८६ धनुष-बाण आदि से भूषित, मैं युद्ध की इच्छा से उन दानवों के दुर्ग की ओर चला।

एक सौ उनहत्तर अध्याय

अर्जुन का निवातकवच दानवों के स्थान पर पहुँचना

अर्जुन कहते हैं—रास्ते में अनेक स्थान मिले। वहाँ महर्षियों ने सत्कार और स्तुति से मुझे सन्तुष्ट किया। फिर मैंने भयानक अपार महासागर के दर्शन किये। उसमें फेना फैला हुआ था। उसकी लहरें कभी इधर-उधर बिखर जाती थीं, कभी आपस में टकराती थीं और कभी ऊपर को उठने से चलते हुए ऊँचे पहाड़ के समान जान पड़ती थीं। रत्नों से भरी हुई हज़ारों नावें (जहाज़) उसके भीतर [घूम रही] थीं। तिमिङ्गिल, कच्छप, तिमि-तिमिङ्गिल और मगर आदि जीव जल में डूबे हुए पहाड़ों के समान देख पड़ते थे। जल में डूबे हुए हज़ारों शङ्ख हलके बादलों से ढके हुए तारागण के समान जान पड़ते थे। और भी अनेक रत्न

उसके ऊपर तैर रहे थे। वहाँ हवा बड़े ज़ोर से चल रही थी। समुद्र का वह दृश्य मुझे बड़ा
अद्भुत मालूम हुआ।
अथाह समुद्र की शोभा देखते-देखते मैं अनेक दानवों से पूर्ण दैत्यपुरी के पास पहुँच गया।
रथ चलाने की विद्या में निपुण मातलि उसी दम रथ लेकर पाताल में पहुँचा। रथ के शब्द को
सुनकर उस पुरी के निवासी डर गये। आकाश में मेघगर्जन के समान उस रथ की घरघराहट
को सुनकर दानवों ने मुझे इन्द्र समझा। इससे वे बहुत घबराये। फिर धनुष, बाण, खड्ग, शूल,
परशु, गदा, मूसल आदि शस्त्र लिये द्वारों को रोककर, भीतर जाने की राह रोके हुए, वे पुरी की
रक्षा करने लगे। मुझे वहाँ अपने सामने कोई नहीं देख पड़ा। तब मैं उस 'देवदत्त' शङ्ख को ११
हाथ में लेकर बजाने लगा। उस शङ्ख का शब्द स्वर्ग तक गूँज उठा। आसपास चारों ओर
उसकी प्रतिध्वनि छा गई। बड़े-बड़े बलवान् प्राणी भी डरकर इधर-उधर छिपने लगे। इसी
बीच में, सुन्दर गहने और कवच पहने, लोहे के महाशूल, गदा, मूसल, पट्टिश, करवाल, रथचक्र,
शतघ्नी (तोप), भुशुण्डी (बन्दूक़) और जड़ाऊ विचित्र खड्ग आदि शस्त्र लिये हुए हज़ारों
निवातकवच दानव मुझे सामने आते देख पड़े।
तब मातलि सारथी बड़ी सावधानी के साथ घोड़ों को चलाने लगा। वे घोड़े इतने वेग
से जा रहे थे कि मेरी दृष्टि किसी पदार्थ पर नहीं ठहरती थी। इससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ।
उधर दानव भी विकृत स्वर और रूपवाले तरह-तरह के मारू बाजे बजाने लगे। उन बाजों के
और दैत्यों के घोर शब्द को सुनकर पहाड़ ऐसे डील-डौलवाले सैकड़ों हज़ारों मच्छ आदि जल-
जन्तु बहुत घबराये और इधर-उधर भागने लगे। २०
अब वे दानव सैकड़ों-हज़ारों तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए मेरी ओर दौड़े। मैं भी निवात-
कवचों को नष्ट करने के विचार से उनके साथ घोर युद्ध करने लगा। उस महायुद्ध को देखने
के लिए देवर्षि, ब्रह्मर्षि, दानवर्षि और सिद्धगण वहाँ पर आ गये। बृहस्पति की भार्या तारा को
हर लेने पर जब उसके कारण दारुण सङ्ग्राम हुआ तब इन्द्र की जैसे स्तुति की गई थी, वैसे ही
मेरी जय की इच्छा से मुनि लोग मधुर वचनों से स्तुति करने लगे। २४

एक सौ सत्तर अध्याय

निवातकवच दानवों के साथ अर्जुन का युद्ध

अर्जुन कहते हैं—हे धर्मराज! तब सब दानव एकत्र हो, शस्त्र लेकर, वेग से मेरी ओर दौड़े। वे चिल्लाने लगे। उन्होंने मुझे चारों ओर से घेर लिया। मेरे रथ की राह रोककर वे मुझ पर घोर बाण बरसाने लगे। कुछ महाबली दानव शूल, पट्टिश, भुशुण्डि आदि शस्त्र

बरसाने लगे। गदा, शक्ति, शूल आदि हज़ारों शस्त्र मेरे रथ के ऊपर लगातार गिरने लगे।
पैने शस्त्र-अस्त्र हाथ में लिये, प्रहार करते हुए, कालरूप, घोर निवातकवच दानवों को अपने

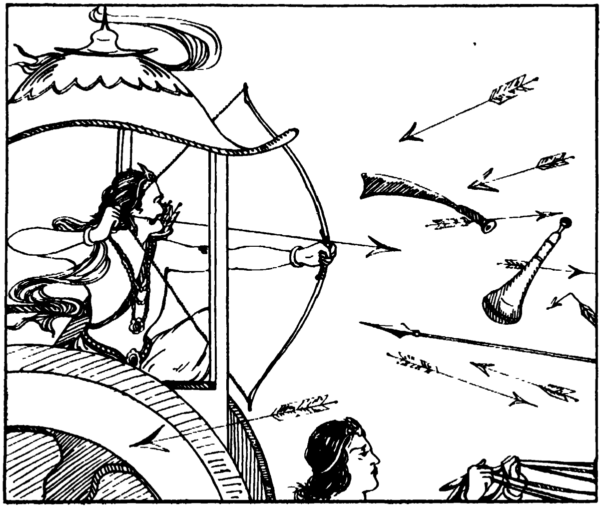

ऊपर झपटते देखकर मैं भी गाण्डीव धनुष चढ़ाकर एक-एक शत्रु को दस-दस बाणों से घायल करने लगा। मेरे पैने बाणों की चोट न सह सकने के कारण उनमें से बहु-तेरे युद्ध से भाग खड़े हुए।

फिर घोड़ों को हाँककर मातलि तरह-तरह के कौशल दिखाने लगा। वे घोड़े भी युद्ध-भूमि में अपनी टापों से दानव-सेना को मथते हुए अनेक मण्डलों और गतियों से चारों
ओर विचरने लगे। इन्द्र के रथ में दस हज़ार घोड़े जुते हुए थे। मातलि ऐसे कौशल से उनको
हाँक रहा था कि वे बहुत होने पर भी थोड़े से जान पड़ते थे। घोड़ों की टापों और पहियों के
१० नीचे कुचलकर तथा मेरे बाणों से मरकर अनेक असुर नष्ट होने लगे। किसी-किसी असुर का
सारथी मारा गया और वह स्वयं भी मर गया; घोड़े उसके रथ को इधर-उधर घसीटने लगे। तब
फिर वे दानव चारों ओर से घेरकर मुझ पर शस्त्रों की वर्षा और आक्रमण करने लगे। उनके प्रबल
आक्रमण से [दम भर के लिए] मैं भी व्यथित हो गया। उस समय मैंने मातलि का अद्-
भुत पराक्रम और कौशल देखा। उसने बड़े वेग से जाते हुए घोड़ों को सहज ही अपने क़ाबू में
रखकर रथ को चलाया। मैं भी फ़ुर्ती के साथ जानेवाले विचित्र अस्त्रों से उन दानवों के चलाये
अस्त्र-शस्त्रों को काटकर उन्हें भी एक साथ सैकड़ों-हज़ारों की संख्या में मारने लगा। इन्द्र का
सारथी मातलि मुझे इस प्रकार शत्रुओं के संहार में सब तरह तत्पर देखकर बहुत सन्तुष्ट हुआ।

कुछ असुरों को घोड़ों ने अपने पैरों से रौंद डाला; कुछ असुर उस महान् रथ के पहियों के नीचे दबकर मर गये; कुछ को मैंने मार डाला और कुछ अपनी जान लेकर भाग खड़े हुए। फिर और निवातकवच आ गये और वे होड़ सी लगाकर बाणों की वर्षा करके मुझे सताने लगे। मैं भी ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित बाण चलाकर दैत्यों को मारने लगा। मेरे बाणों से पीड़ित वे दानव भी क्रुद्ध होकर, मिलकर, मुझ पर शूल, शक्ति, खड्ग आदि की वर्षा करने और पीड़ा पहुँ-

चाने लगे। तब मैंने इन्द्र के परम प्रिय गान्धर्व नाम के अस्त्र का प्रयोग किया। यह अस्त्र मधु
दैत्य को मारने के लिए बनाया गया था। इस अस्त्र की सहायता से मैंने दैत्यों के चलाये हुए २०
असंख्य खड्ग, त्रिशूल, तोमर आदि शस्त्रों के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इस प्रकार उनके शस्त्रों को
काटने के बाद मैंने कुपित होकर उनमें से हर एक को दस-दस बाण मारे। उस समय गाण्डीव
धनुष से भौंरों की पाँति के समान तीक्ष्ण बाण निकलने लगे। मातलि ने यह फुर्ती देखकर मेरी
बड़ाई की। [निवातकवच करोड़ों थे, इसलिए टिड्डी-दल की तरह] उनके भी बाण मेरे ऊपर
आने लगे। मैंने उनके बाणों को काट डाला। मैं निवातकवचों को अपने बाणों और दिव्य
अस्त्रों से मार रहा था। वे बारम्बार आक्रमण करते हुए मुझ पर चारों ओर से बाणों की वर्षा
कर रहे थे। मैं भी शत्रु के अस्त्रों को नष्ट करनेवाले अस्त्रों की सहायता से उनके बाणों को
निष्फल कर रहा था। अत्यन्त कुपित होकर मैं आग के समान जलते हुए बाणों से उन दानवों
को घायल करने लगा। वर्षाकाल में जैसे पर्वत के शिखरों से जलधारा बहती है वैसे ही अङ्ग
कट जाने से उनके शरीरों से रक्त बहने लगा। वेग के कारण सीधे जानेवाले, वज्रतुल्य मेरे
बाणों की चोट खाकर वे दानव बहुत घबराये। दानव जब बहुत घायल हो गये, उनके शस्त्र चुक
गये और शक्ति भी क्षीण हो गई, तब वे मुझसे माया-युद्ध करने लगे। २९

एक सौ इकहत्तर अध्याय

दानवों के माया-युद्ध का वर्णन

अर्जुन कहते हैं—महाराज, इसके बाद चारों ओर से मुझ पर पत्थरों की वर्षा होने लगी।
उन पर्वताकार बड़ी-बड़ी शिलाओं से पीड़ित होने पर मैंने इन्द्रास्त्र का सहारा लिया। वज्र-सदृश
दृढ़ बाण मेरे धनुष से छूटकर एक-एक शिला के सौ-सौ टुकड़े करने लगे। इस प्रकार पत्थरों
के टुकड़े-टुकड़े होकर रगड़ खाने से एकाएक आग जल उठी। आग की चिनगारियाँ जिससे
निकल रही थीं ऐसा पत्थर का चूरा बरसने लगा। उस उपद्रव को भी जब मैंने अस्त्र की सहा-
यता से मिटा दिया तब, रथ के धुरे के समान मोटी, मूसलाधार वर्षा होने लगी। आकाश से
गिरनेवाली ऐसी जलधाराओं से दिशा, उपदिशा और अन्तरिक्ष व्याप्त हो गया। धाराओं
के गिरने, आँधी के चलने और बादलों तथा दैत्यों के गरजने से ऐसा हो गया कि कुछ भी
नहीं जान पड़ता था। उस लगातार घोर जलवर्षा ने आकाश और पृथ्वी को छा लिया;
इससे मैं मोहित सा हो गया। तब मैंने इन्द्र के बताये विशोषण अस्त्र का प्रयोग करके उस
जलराशि को सुखा दिया।

अब दैत्यों ने मायाबल का सहारा लेकर आग और हवा पैदा कर दी। मैंने भी वारुण
अस्त्र से अग्नि को और पर्वतास्त्र से वायु के वेग को शान्त कर दिया। तब युद्ध करने में मतवाले १०

दानव एक साथ बहुत सी माया प्रकट करके घोर, रोमाञ्चकारी अनेक अस्त्रों की, अग्नि की, वायु की और पत्थरों की वर्षा करने लगे। चारों ओर घना अँधेरा छा जाने से घोड़े चल न सके और मातलि भी विचलित हो उठा। उसके हाथ से सुवर्णमय चाबुक गिर पड़ा। वह डरकर बार-म्बार मुझसे कहने लगा कि अर्जुन, तुम कहाँ हो? मैं भी उस समय घोर माया के प्रभाव से पीड़ित हो रहा था। मातलि की यह दशा देखकर मैं डर गया। अचेत की तरह मातलि ने मुझे डरा और घबराया हुआ देखकर कहा—हे भरतश्रेष्ठ, पहले अमृत के लिए देवताओं और दानवों का जो भयङ्कर संग्राम हुआ था वह मैं देख चुका हूँ। शम्बरासुर को मारने के समय जो संग्राम हुआ था, उसमें भी मैं इन्द्र का सारथी था। वृत्रासुर-वध के युद्ध में भी मैंने ही इन्द्र के रथ को हाँका था। राजा बलि और इन्द्र का दारुण युद्ध भी मैंने देखा है। मतलब यह कि मैं सभी घोर युद्धों में था; परन्तु मैं कभी इस तरह अचेत नहीं हुआ। जान पड़ता है, विधाता जगत् को चौपट करने के लिए तैयार हैं। प्रलयकाल के सिवा ऐसा युद्ध होना असम्भव है।

मातलि के ये वचन सुनकर और उसे डरा हुआ देखकर मैं सँभल गया। फिर दैत्यों के माया-बल को मिटाकर उन्हें मोहित करने की इच्छा से मैंने कहा—मातलि, डरो नहीं; मेरे बाहुबल को, अस्त्रों के और गाण्डीव धनुष के प्रभाव को देखो। मैं अभी अपने अस्त्रों की माया से दानवों की इस दारुण माया को और घने अँधेरे को मिटाये देता हूँ। तुम स्थिर होकर अपने आसन पर बैठो। अब मैंने देवताओं के हित की इच्छा से सब प्राणियों को मोहित करनेवाली अस्त्र-माया प्रकट कर दी। उसके प्रभाव से पहले की मायाओं को नष्ट होते देखकर वे पराक्रमी दानव फिर तरह-तरह की माया प्रकट करने लगे। कभी उजाला हो जाता था और कभी घना अँधेरा छा जाता था। कभी कुछ न देख पड़ता था और कभी सब स्थान जल में डूबा हुआ देख पड़ता था। उजाला होते ही मातलि ने घोड़ों को हाँका। वह रथ को चारों ओर फिराने लगा। तब फिर उग्र निवातकवच दानवों ने सामने आकर मुझ पर घोर आक्रमण किया। मैं भी मौक़ा पाकर उन्हें मार-मारकर यमलोक भेजने लगा। इस प्रकार घोर युद्ध करके जब मैं निवातकवचों का नाश करने लगा तब वे माया के बल से एकाएक अदृश्य हो गये।

एक सौ बहत्तर अध्याय

निवातकवच दानवों का वध

अर्जुन ने कहा—दैत्य लोग माया के प्रभाव से अदृश्य होकर युद्ध करने लगे। तब मैं भी अदृश्य अस्त्रों की सहायता से युद्ध में प्रवृत्त हुआ। मेरे गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाण उनके सिरों को काट-काटकर इधर-उधर गिराने लगे। अस्त्र के प्रभाव से मेरे बाण ठीक उसी जगह पर

पहुँचते थे, जहाँ से छिपकर वे युद्ध कर रहे थे। इस प्रकार जब मैं संहार करने लगा तब सब निवातकवच माया छोड़कर एकाएक अपने नगर में चले गये।

दैत्य जब चले गये और माया नष्ट हो गई तब मैंने देखा कि सैकड़ों-हज़ारों दैत्य मरे पड़े हैं। उनके शस्त्र, गहने, कवच और अङ्ग-प्रत्यङ्ग ढेर के ढेर कटे-फटे और पिसे हुए पड़े हैं। उनके मारे घोड़ों के लिए चलने की राह नहीं थी। तब मेरे रथ के घोड़े आकाश-मार्ग में चलने लगे। असंख्य निवातकवच दानव फिर आकाश में आकर अदृश्य भाव से मेरे ऊपर पत्थर बरसाने लगे। कुछ दानवों ने पृथ्वी के भीतर से मेरे रथ के पहियों को और घोड़ों के पैरों को पकड़ लिया। इस प्रकार रथ और घोड़ों को रोककर चारों ओर से वे मुझ पर और मेरे रथ पर पहाड़ गिराने लगे। उन्होंने इतने पर्वत बरसाये कि उनके जमा होने से वह स्थान, जहाँ पर मैं था, एक गुफा के समान जान पड़ने लगा। लगातार पर्वतों की वर्षा होने से और रथ की गति रुक जाने से मैं बहुत पीड़ित और भयभीत हुआ। मुझे डरा हुआ देखकर मातलि ने कहा—अर्जुन, डरो नहीं; वज्रास्त्र का प्रयोग करो। मातलि के वचन सुनकर मैं सँभल गया। फिर गाण्डीव धनुष हाथ में लेकर, उसमें वज्रास्त्र को अभिमन्त्रित करके, मैं भयानक तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगा। वे लोहे के बने वज्र-सदृश बाण धनुष से निकलकर दैत्यों की सेना में जाने लगे। अस्त्र के प्रभाव से दैत्यों की माया नष्ट हो गई। वज्र के प्रहार से मरकर पहाड़ ऐसे दानव एक दूसरे से लिपटे हुए पृथ्वी पर गिरने लगे। पृथ्वी के भीतर घुसकर जिन दानवों ने घोड़ों को और रथ के पहियों को पकड़ लिया था उन्हें भी, उन बाणों ने वहाँ जाकर, उसी दम मार डाला। फटकर गिरे हुए पहाड़ ऐसे, मरे हुए, निवातकवच दानवों की लाशों से वह स्थान पट गया। महाराज, यह एक विचित्र बात देख पड़ी कि उस युद्ध में मुझे, मातलि को, रथ को या घोड़ों को कुछ भी हानि नहीं पहुँची।

अब मातलि ने हँसकर मुझसे कहा—हे अर्जुन, देवताओं में भी तुम्हारे समान वीर योद्धा कोई नहीं देख पड़ता। देखो, तुम्हारे प्रभाव से असुर मर गये। शरद् ऋतु के बादलों के गरजने के समान नगर में चारों ओर दैत्यों की स्त्रियों के रोने का शब्द सुन पड़ रहा है। महाराज, फिर मैं रथ के पहियों की घरघराहट से निवातकवचों की स्त्रियों को डराता हुआ मातलि के साथ उस दानवपुरी के भीतर गया। मोर के रङ्गवाले दस हज़ार घोड़ों से युक्त उस सूर्य-सदृश रथ को देखकर दानवों की स्त्रियाँ इकट्ठी होकर भागने लगीं। भागते समय उन स्त्रियों के गहनों का शब्द सुनने से ऐसा जान पड़ता था, जैसे पर्वत के ऊपर शिलाओं की वर्षा हो रही है। डरकर भागी हुई वे स्त्रियाँ अपने-अपने घरों में घुस गईं। उनके घर सोने और रत्नों से शोभित थे।

मुझे वह दानवपुरी देवनगरी अमरावती से भी बढ़कर अद्भुत देख पड़ी। मैंने विस्मित होकर मातलि से पूछा—हे सूत, यह असुर-नगरी मुझे शोभा और संपत्ति में अमरावती से भी

बढ़कर जान पड़ती है। तो देवता इसमें क्यों नहीं रहते? मातलि ने कहा—हे अर्जुन, पहले यह नगरी इन्द्र के ही अधिकार में थी। उसके बाद इन बली निवातकवचों ने हराकर देवताओं को यहाँ से निकाल दिया। इन निवातकवच दानवों ने तप करके ब्रह्मा को प्रसन्न किया और उनसे रहने के लिए यह नगरी तथा युद्ध में देवताओं से अभय माँग लिया। यह देखकर इन्द्र ने अपने हित की इच्छा से ब्रह्माजी से कहा कि भगवन्, आप इन दुष्ट दैत्यों के नाश का कोई उपाय कीजिए। ब्रह्मा ने कहा—हे इन्द्र, दैव के विधान के अनुसार तुम्हीं दूसरा शरीर धारण करके इन दैत्यों को मारोगे। इनका नाश तुम्हारे ही हाथ से बदा है। [हे अर्जुन, तुम इन्द्र के पुत्र हो। इसी कारण] इन्हीं दैत्यों के नाश के लिए देवराज ने तुमको दिव्य अस्त्र दिये हैं। तुमने जिन दैत्यों को मारा है उन्हें देवता भी नहीं मार सकते थे। हे भरतश्रेष्ठ, इन दैत्यों का अन्तकाल आ गया था, इसी से काल-रूप होकर तुम यहाँ आये। अब तुम अपना कर्तव्य पूरा कर चुके। इन्द्रदेव ने केवल इन असुरों को मारने के लिए ही तुमको दिव्य अस्त्रों की शिक्षा दी थी।

अर्जुन कहते हैं—महाराज, इस प्रकार निवातकवच दानवों को मारकर, और उनकी अद्भुत पुरी में शान्ति स्थापित करके, मैं फिर मातलि के साथ इन्द्र-लोक को चल दिया।

एक सौ तिहत्तर अध्याय

पौलोम और कालकेय दैत्यों का वध

अर्जुन कहते हैं—हे धर्मराज, वहाँ से लौटते समय मैंने और एक सोने का बना हुआ नगर देखा। वह नगर सूर्य और अग्नि के समान जगमगा रहा था। वह नगर कामचारी, अर्थात् जहाँ चाहो वहाँ जा सकता, था। वहाँ बहुत से फूल-फलवाले रत्नमय वृक्ष, नगरद्वार, अटारी और मधुर बोली बोलनेवाले पक्षी थे। पौलोम और कालकेय नाम के दानव प्रसन्नतापूर्वक उस नगर में सदा रहते थे। अनेक प्रकार के रत्नों का संग्रह होने के कारण वह नगर देखने में बहुत ही भला मालूम होता था। शूल, खड्ग, मूसल, धनुष-बाण और मुद्गर आदि अनेक शस्त्र हाथ में लिये घोर असुर चारों ओर उसकी रक्षा कर रहे थे। उसके चारों फाटक सुरक्षित और शत्रुओं के लिए अगम्य थे। दैत्यों के उस विचित्र और श्रेष्ठ नगर को देखकर अचरज के साथ मैंने मातलि से पूछा—हे मातलि, यह क्या देख पड़ रहा है? यह किसका नगर है?

मातलि ने कहा—अर्जुन, दिति की पुलोमा और कालका नाम की दो कन्याएँ थीं। उन दोनों श्रेष्ठ दानवियों ने दिव्य हज़ार वर्ष तक बहुत ही कठोर तप किया। तप से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी उनके पास आये और वर देने को तैयार हुए। उन दोनों राक्षसियों ने यह वर माँगा कि हमारे पुत्रों को बहुत कम दुःख भोगना पड़े; और उन्हें देवता, राक्षस, नाग आदि कोई न

मार सकें। ब्रह्मा ने उनको यथेष्ट वरदान के साथ ही यह अत्यन्त रमणीय, आकाशचारी,
प्रभायुक्त, सब रत्नों से पूर्ण नगर भी दिया। देवता, महर्षि, यक्ष, गन्धर्व, नाग, असुर, राक्षस
आदि कोई भी इस नगर पर आक्रमण नहीं कर सकते। सब प्रार्थनीय गुणों से युक्त यह नगर १०
ब्रह्मा के भवन से भी श्रेष्ठ है। इसको हिरण्यपुर कहते हैं। इसके भीतर देवता भी नहीं जा
सकते। केवल पौलोम और कालकेय दानव ही इसमें रहते हैं; वे ही इसके रक्षक हैं। हे
पार्थ, यह नगर आकाश-मार्ग में फिरता रहता है। इसमें रहनेवाले असुरों को देवता भी नहीं
मार सकते; इसी से वे बेखटके आनन्द के साथ इसमें रहते हैं। ब्रह्मा ने इनकी मृत्यु मनुष्य
के ही हाथ से लिखी है। तुम इन महाबली असुरों को भी वज्रास्त्र से मार डालो।

उस नगर में रहनेवाले दानवों को, देवताओं और दैत्यों के हाथ से अवध्य जानकर,
प्रसन्नतापूर्वक मैंने मातलि से कहा—तुम झटपट इस नगर के भीतर चलो। इन इन्द्र के शत्रु
दानवों को भी मैं मारूँगा। जिसे मैं न मार सकूँ ऐसा देवताओं का शत्रु तीनों लोकों में
दुर्लभ है। हे धर्मराज, इसके बाद मातलि उस दिव्य रथ-सहित मुझे हिरण्यपुर के पास ले
गया। वे दैत्य मुझे देखते ही युद्ध की तैयारी करने लगे। विचित्र कपड़े, गहने और कवच
पहनकर, रथों पर चढ़कर, बड़े वेग से वे लोग मेरे सामने आये और क्रुद्ध होकर भयानक
पराक्रम प्रकट करते हुए नालीक, नाराच, भल्ल आदि बाण और शक्ति, ऋष्टि, तोमर आदि
शस्त्र बरसाने लगे। मैं भी अस्त्र-विद्या के बल से बाण-वर्षा करके उनके शस्त्रों को रोकने २०
लगा। उस दिव्य रथ पर बैठा हुआ मैं युद्धभूमि में चारों ओर फिरकर अपने पराक्रम और
अस्त्र-बल से उन्हें मोहित करने लगा। मेरे अस्त्र से मोहित होकर वे आपस में ही मारकाट
और आक्रमण करने लग गये।

मैं भी उसी अवसर में प्रज्वलित बाणों के द्वारा उनके सिर काट-काटकर गिराने लगा।
इस प्रकार मेरे हाथ से अपना नाश होते देखकर वे अपने नगर के भीतर चले गये और फिर
दानवी माया का सहारा लेकर नगर-सहित आकाश में भाग गये। मैंने असंख्य बाणों की वर्षा
करके उनकी राह और उनकी गति रोक दी। पर ब्रह्मा के वरदान के प्रभाव से वे लोग उस
सूर्य-सदृश, दिव्य, आकाशचारी, यथेष्ट स्थान में जा सकनेवाले नगर को सहज ही रोके रहे।
वह नगर कभी पृथ्वी पर आ जाता था, कभी आकाश में चला जाता था, कभी इधर-उधर तिरछे
चला जाता था और कभी पानी के भीतर डूब जाता था। हे शत्रुदमन, तब मैं दिव्य अस्त्र का
प्रयोग करके लोहे के बने हुए अनेक प्रकार के बाण चलाने लगा। उन बाणों से छिन्न-भिन्न
होकर वह अमरावती सदृश कामचारी नगर उन असुरों-सहित पृथ्वी पर गिर पड़ा। वज्र के ३०
समान वेग से छूटे हुए बाणों की चोट खाकर, काल के वश में पड़े हुए, वे दानव भी चक्कर
खा-खाकर धरती पर गिरने लगे।

मातलि भी आकाश से उतरकर पृथ्वी पर रथ को ले आया। तब क्रुद्ध होकर युद्ध की इच्छा से साठ हज़ार, रथों पर सवार, असुरों ने आकर मुझे घेर लिया। मैंने भी गृद्धपक्षवाले तीक्ष्ण बाण चलाकर उस रथों के घेरे को तोड़-फोड़ डाला। वे असुर समुद्र की लहरों के समान बारम्बार मुझ पर चढ़ाई करने लगे। तब मैंने सोचा कि मनुष्य-युद्ध से मैं इन्हें परास्त न कर सकूँगा। इससे मैं दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करने लगा। पर वे दानव भी विचित्र युद्ध में निपुण थे। रथों पर सवार उन दानवों ने मेरे दिव्य अस्त्रों को निष्फल कर दिया। वे महाबली दानव विचित्र गतियों से रथ चलाते हुए चारों ओर देख पड़ने लगे। विचित्र मुकुट, कवच, भूषण और विचित्र ध्वजावाले रथों से शोभित उन दानवों को देखकर मुझे बड़ा उत्साह और प्रसन्नता हुई। वे अस्त्रविद्या के जानकार और चतुर थे। मैं अस्त्रों से अभिमन्त्रित बाण चलाकर उन्हें पीड़ा नहीं पहुँचा सका, बल्कि वे ही मुझे पीड़ा पहुँचाने लगे।

उस महायुद्ध में पीड़ित और भय से व्याकुल होकर मैंने उस समय पवित्र और एकाग्र
४० हृदय से महादेव का ध्यान किया और फिर 'सब प्राणियों का भला हो' कह करके सब शत्रुओं
का संहार करनेवाले महादेव के घोर पाशुपत अस्त्र को धनुष पर चढ़ाया। उसी समय तीन सिर, तीन मुँह, नव आँखें और छः भुजाओं से शोभित एक उग्र पुरुष मेरे आगे प्रकट हुआ। उसके केश सूर्य और अग्नि के समान चमकीले थे और मस्तक पर जीभ लपलपाते हुए बड़े-बड़े नाग देख पड़ रहे थे। मैंने उस प्रत्यक्ष अस्त्र को देखकर देवदेव महादेव को प्रणाम किया और फिर दुष्ट दानवों के संहार की इच्छा से वह अस्त्र छोड़ दिया। छोड़ते ही उस अस्त्र ने—मृग, सिंह, बाघ, रीछ, भैंसे, नाग, गाय, शरभ, हाथी, वानर, ऋषभ, वराह, बिलाव, भेड़िये, प्रेत, भुरुंड, गिद्ध, गरुड़, चमरी, देव, ऋषि, गन्धर्व, पिशाच, यक्ष, असुर, गुह्यक, नैऋत, गजमुख मत्स्य, उलूक, गदा, मुद्गर, खड्ग आदि अनेक शस्त्र लिये, घोड़े और मछली के आकार के—
५२ राक्षस आदि झुण्ड के झुण्ड अनेक प्रकार के प्राणियों के रूप धारण करके सारे जगत् को छा
लिया। तीन मस्तक, चार दाँत, चार मुख और चार भुजावाले, विचित्र, बहुरूप, मांस-मेदा-हड्डी-चर्बी आदि से युक्त अनेक प्राणी भी उस अस्त्र से प्रकट हुए। वे दानव उन प्राणियों के आक्रमण से मरकर यमपुर जाने लगे। मैं भी सूर्य और अग्नि के समान प्रज्वलित, वज्रतुल्य, पर्वतखण्ड सदृश भारी बाणों के प्रहार से उन दानवों को मारने लगा।

गाण्डीव धनुष के प्रभाव से उन दानवों को मरकर पृथ्वी पर गिरते देख मैंने फिर सब जगत् के विधाता महेश्वर को प्रणाम किया। देव-सारथि मातलि भी उन दिव्य भूषणों से भूषित दानवों को पाशुपत अस्त्र के प्रभाव से विनष्ट हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और मेरी बड़ाई करने लगा। उसने प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़कर मुझसे कहा—हे वीर, आज तुमने वह काम किया है जिसे सब देवता, इन्द्र और दैत्य भी नहीं कर सकते थे। यह आकाश में विचरनेवाली

नगरी ब्रह्मा के वरदान के कारण देव-दानव आदि के हाथों से नष्ट नहीं हो सकती थी; पर तुमने अपने पराक्रम और तप के प्रभाव से इसे नष्ट कर दिया। ६०

महाराज, इस प्रकार उस आकाशचारी पुर और दानवों के नष्ट हो जाने पर उनकी स्त्रियाँ बहुत ही दुःखित और व्यथित होकर कुररी पक्षी की तरह चिल्लाकर रोने लगीं। वे बाल खोले हुए नगर के बाहर निकल आईं। पिता, पुत्र, भाई आदि को याद करके, शोक से विह्वल होकर, वे पृथ्वी पर गिरकर छाती पीटने लगीं। उनकी मालाएँ, कपड़े और गहने इधर-उधर गिर पड़े। गन्धर्वनगर के समान रमणीय उस हिरण्यपुर में शोक, दुःख और उदासी छा गई। नाग से ख़ाली कुण्ड की तरह, सूखे हुए वृक्षोंवाले वन की तरह, उस नाथ-हीन नगर की शोभा जाती रही।

अपना काम सिद्ध करके मैं बहुत ही आनन्दित हुआ। मातलि मुझे लेकर अमरावती में पहुँचा। इन्द्र के पास आकर उसने हिरण्यपुर के नाश, मायाओं के रोकने, महाबली निवातकवच दानवों के वध आदि सब कामों का आदि से अन्त तक वर्णन किया। मातलि के मुँह से मेरे सब कामों का परिचय पाकर इन्द्रदेव सन्तुष्ट हुए। देवताओं-सहित उन्होंने बड़ाई करके मेरा बहुत सम्मान किया। देवताओं ने और स्वयं इन्द्र ने बारम्बार मधुर वचनों से मेरी ७०
बड़ाई की। इन्द्र ने कहा—हे पार्थ, युद्ध-भूमि में तुमने जो काम किया है उसे देवता या दैत्य कोई नहीं कर सकते थे। मेरे घोर शत्रुओं को मारकर तुमने यथोचित गुरु-दक्षिणा मुझे दे दी। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम युद्ध के मैदान में कभी विचलित न होगे; व्याकुलता से बचकर मेरे बताये हुए सब अस्त्रों का ठीक-ठीक प्रयोग और संधान कर सकोगे। युद्ध में तुम्हारे वेग को देवता, दानव, राक्षस, यक्ष, असुर, गन्धर्व, पक्षी और नाग आदि कोई भी न रोक सकेंगे। धर्मपुत्र युधिष्ठिर तुम्हारे बाहुबल से सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल को जीतकर उसका पालन करेंगे। ७५

एक सौ चौहत्तर अध्याय

युधिष्ठिर और अर्जुन के संवाद की समाप्ति

अर्जुन कहते हैं—महाराज, [इस तरह शत्रुओं का नाश करने से] देवराज का मैं बहुत ही विश्वासपात्र बन गया। एक दिन मेरे शरीर के सब घाव अच्छे हो जाने पर उन्होंने अभिनन्दन करके मुझसे कहा—हे वीर, सब दिव्य अस्त्र तुम्हारे अधिकार में हैं। अब मनुष्य-लोक में कोई मनुष्य तुमको हरा नहीं सकेगा। युद्ध में भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, शकुनि और अन्य सब महारथी राजा तुम्हारी तुलना में सोलह आने में एक आने भर भी न ठहरेंगे। फिर उन्होंने मुझे अभेद्य दिव्य कवच, सोने की माला और महा शब्द करनेवाला देवदत्त नाम

का शङ्ख दिया। उन्होंने अपने हाथ से यह सुन्दर दिव्य किरीट मेरे सिर पर बाँध दिया। ये सुन्दर दिव्य वस्त्र और गहने भी उन्होंने दिये। मैं उसी तरह बड़े सुख और आनन्द के साथ इन्द्रभवन में रहने लगा। गन्धर्वों के लड़के मेरे साथी थे।

महाराज, [कुछ समय और बीतने पर एक दिन] देवमण्डली के बीच विराजमान इन्द्र ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए मुझसे कहा—पुत्र अर्जुन, तुम्हारे भाई तुमको याद कर रहे हैं। अब तुम्हारे जाने का समय आ गया। हे भरतश्रेष्ठ, मैं इस तरह पाँच वर्ष तक इन्द्रलोक में रहा हूँ, पर वह जुए का झगड़ा एक दिन भी, घड़ी भर के लिए भी, मुझको नहीं भूला। महाराज, इसके बाद इन्द्रलोक से चलकर मैं इस गन्धमादन पर्वत पर आया। यहाँ मैंने आपको भीमसेन, नकुल और
१० सहदेव के साथ देखा।

युधिष्ठिर ने कहा—हे अर्जुन, बड़े भाग्य की बात है कि देवताओं के राजा इन्द्र की आराधना करके तुमने सब दिव्य अस्त्र प्राप्त कर लिये। यह भी बड़े भाग्य की बात है कि युद्ध में सन्तुष्ट करके तुमने देवादिदेव महादेव और पार्वती देवी के दर्शन कर लिये। तुम्हारा भाग्य ही इसका कारण है, जो सब लोकपाल तुम्हें प्रत्यक्ष देख पड़े। कृतकृत्य होकर लौटकर तुम हमसे मिले, इसे भी मैं सौभाग्य की बात समझता हूँ। मैं इस समय यही समझ रहा हूँ कि नगरों-सहित सारी पृथ्वी पर मेरा अधिकार हो गया और धृतराष्ट्र के पुत्र भी मेरे अधीन हो गये। भाई अर्जुन, तुमने जिन दिव्य अस्त्रों की सहायता से महाबली निवातकवच आदि दानवों को मारा है, उन अस्त्रों के देखने को मेरा बहुत जी चाहता है।

अर्जुन ने कहा—राजन्, भयङ्कर निवातकवच दानवों को जिन अस्त्रों की सहायता से मैंने मारा है, उन्हें मैं आपको कल दिखाऊँगा। वैशम्पायन कहते हैं कि इस तरह स्वर्ग में जाने, रहने और वहाँ से आने का वृत्तान्त कहकर अर्जुन ने वह रात अपने भाइयों
१७ के साथ वहीं बिताई।

एक सौ पचहत्तर अध्याय

नारद का आना और अर्जुन को अस्त्र दिखाने से रोकना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय! रात बीतने पर भाइयों-सहित धर्मराज ने उठकर, स्नान-सन्ध्या आदि कामों से छुट्टी पाकर, अर्जुन को उन असुर-नाशक दिव्य अस्त्रों के दिखाने की आज्ञा दी। तब अर्जुन पहले सब प्रकार से शुद्ध हुए; फिर उन्होंने दिव्य कवच पहना। इसके बाद देवदत्त शंख और गाण्डीव धनुष लिया। फिर वे पृथ्वीरूप रथ पर सवार हुए। पर्वत ही उस रथ का धुरा थे; पैर ही उसके पहिये थे; सुन्दर बाँस के वृक्ष ही उसका त्रिवेणु (रथ का एक अङ्ग) थे। महाबाहु अर्जुन इस तरह सुसज्जित होकर जब उन अस्त्रों का प्रयोग दिखाने को तैयार हुए तब उनके पैरों के दबाव से पृथ्वी काँप उठी; नदियों-समेत महासागर चंचल हो गया; सब पर्वत मानों फटने लगे। वायु का चलना बंद हो गया; सूर्य की प्रभा फीकी पड़ गई; आग बुझ सी

गई; ब्राह्मणों को वेद भूल से गये। हे जनमेजय, पृथ्वी के नीचे रहनेवाले सब प्राणी
पीड़ित होकर बाहर निकल आये। अस्त्रों के तेज से जलते हुए वे प्राणी, चारों ओर से अर्जुन १०
को घेरकर, हाथ जोड़कर, उनसे प्रार्थना करने लगे। डर के मारे वे काँप रहे थे। उनके चेहरों पर मुर्दनी सी छाई हुई थी। पल भर में देवर्षि, महर्षि, ब्रह्मर्षि, सिद्ध, देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पक्षी और पृथ्वी तथा आकाश में विचरनेवाले अन्य प्राणी अर्जुन के पास आ गये। पितामह ब्रह्मा, सब लोकपाल और अपने गणों के साथ भगवान् शंकर वहाँ आकर उपस्थित हुए। महाराज, तब हवा अर्जुन के ऊपर विचित्र पुष्प-माला आदि की वृष्टि करने लगी। देवताओं की प्रेरणा से गन्धर्व लोग गाथाएँ गाने लगे। झुण्ड की झुण्ड अप्सराएँ नाचने लगीं।

इसी समय देवर्षि नारद वहाँ पर आ गये। उन्होंने, देवताओं की प्रेरणा से, अर्जुन से ये मधुर वचन कहे—हे पाण्डव, तुम इस तरह अकारण इन दिव्य अस्त्रों का प्रयोग मत करो।

बिना किसी लक्ष्य (निशाने) के इनका प्रयोग नहीं किया जाता। यदि लक्ष्य भी हो तो अपने ऊपर बिना कोई संकट आये, या यों कहो कि किसी के द्वारा बिना सताये गये, इन अस्त्रों का प्रयोग करना ठीक नहीं। क्योंकि जब तक अपने ऊपर कोई संकट न आ पड़े तब तक अकारण इनका प्रयोग करने से बड़ा दोष होता है। अर्जुन, ये अस्त्र विधिपूर्वक रक्षित रहने से क्रमशः प्रबल और समय पर सुख देनेवाले होंगे। और, यदि तुम अकारण इनका प्रयोग करोगे तो इनके तेज से सारा जगत् चौपट हो सकता है। इसलिए कभी इस तरह इनके प्रयोग का इरादा न करना। हे युधिष्ठिर, तुम इस समय इन अस्त्रों का चमत्कार देखने का विचार छोड़ दो। समय पड़ने पर जब अर्जुन शत्रुओं को मारने के लिए युद्ध में अस्त्रों का प्रयोग करेंगे तब तुम इनका रूप और प्रभाव देख लेना।

वैशम्पायन कहते हैं—इस तरह अर्जुन के रुक जाने पर सब देवता अपने-अपने लोक को चले गये। पाण्डव लोग भी द्रौपदी के साथ प्रसन्नतापूर्वक उसी वन में रहने लगे।

आजगरपर्व

एक सौ छिहत्तर अध्याय

पाण्डवों का गन्धमादन पर्वत को छोड़ना

जनमेजय ने वैशम्पायन से कहा—भगवन्, महारथी वीर अर्जुन इस प्रकार इन्द्रलोक से अस्त्र-विद्या सीखकर जब लौट आये, तब पाण्डवों ने और क्या-क्या काम किये? कृपा करके कहिए। वैशम्पायन ने कहा—राजन्, युधिष्ठिर आदि महावीर पाण्डव इन्द्र-तुल्य पराक्रमी अर्जुन के साथ रमणीय गन्धमादन पर्वत पर यक्षराज कुबेर की क्रीड़ा-भूमि में विचरने लगे। धनुषधारी अस्त्रज्ञ अर्जुन वहाँ के उत्तम भवन और विविध वृक्षों से शोभित क्रीड़ाकुञ्ज देखते हुए विचरा करते थे। कुबेर की कृपा से प्राप्त उस स्थान में रहनेवाले पाण्डवों को मनुष्यलोक का ऐश्वर्य और सुख तुच्छ जान पड़ता था। वह समय उनके लिए परम सुखदायक हुआ। अर्जुन के साथ रहने से युधिष्ठिर आदि पाण्डवों को बड़ा सुख मिलता था। वे लोग वहाँ चार वर्ष तक रहे; पर उन्हें उतना समय एक दिन के समान जान पड़ा। पहले छः वर्ष बीत चुके थे, चार वर्ष फिर बीते; [सब मिलाकर] दस वर्ष हो गये। ये दसों वर्ष उन्होंने वनवास में बड़े सुख से बिताये।

एक दिन महाराज युधिष्ठिर के पास भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव, ये चारों भाई बैठे हुए थे। वे युधिष्ठिर से प्रिय और हित के वचन कहने लगे कि हे धर्मराज, हम आपका

प्रिय करने के विचार से, आपको प्रतिज्ञा-पाश से छुड़ाने के लिए, दुर्योधन को उसके साथियों-सहित मारने नहीं जाते। [नहीं तो जो हम चाहें तो आज इस वन से जाकर सहज ही शत्रुओं को उनकी करनी का मज़ा चखा सकते हैं।] हम लोग वास्तव में सुख भोगने के योग्य हैं; पर सुयोधन ने हमारे सब सुख छीन लिये हैं। इस दशा में रहते हमें दस वर्ष बीत गये, यह ग्यारहवाँ वर्ष है। राजन्, आपकी आज्ञा से अपने मान का विचार छोड़कर हम बेखटके वन-वन घूमते फिरते हैं। अब उस अधम बुद्धि और स्वभाववाले दुर्योधन को धोखा देकर हम एक वर्ष अज्ञातवास करेंगे; उसके बाद सुख प्राप्त करेंगे। अब तक हम उससे थोड़ी ही दूर पर रहे हैं, इसलिए वह धोखे में है। एकाएक हम कहीं दूर जाकर अज्ञातवास करेंगे तो फिर दुर्योधन हमारा पता नहीं लगा सकेगा। इस प्रकार अज्ञातवास का वर्ष बिता चुकने पर हम उससे उस वैर का बदला लेंगे [जो उसने हमारे साथ ठान रक्खा है]। उस नराधम को
साथियों-समेत मारकर आप सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल का राज्य प्राप्त कीजिएगा। हे नरदेव, इस १०
समय हम लोग इस स्वर्ग-तुल्य रमणीय स्थान में रहते हैं; यहाँ हम वनवास के दुःख और शोक को सहज ही भुला सकते हैं। पर यदि हम यहाँ के सुख में पड़कर शत्रु से बदला लेना भूल जायँ तो आपकी पवित्र और उज्ज्वल कीर्ति पृथ्वीमण्डल से लुप्त हो जायगी। इसी कारण हमारा यह कहना है कि आप शत्रुओं को मारकर कौरवों के राज्य पर अपना अधिकार स्थापित करें। इससे आपका यश बढ़ेगा, और आप यज्ञ आदि महत् कर्म कीजिएगा। हे नरेन्द्र, यह जो कुबेर से आपको मिल रहा है इसे तो आप सदा पा सकेंगे। हे भरतश्रेष्ठ, इसलिए आप अपराधी शत्रुओं को मारने का निश्चय कर लीजिए। यदि भाई समझकर आप उन्हें जान से मार डालना न चाहें तो क़ैद ही कर लीजिए। आपसे युद्ध ठानकर साक्षात् इन्द्र भी पार नहीं पा सकते—आपके उग्र तेज को नहीं सह सकते। आपको चिन्ता किस बात की है? गरुड़ध्वज श्रीकृष्ण और महाबली सात्यकि आपका काम सिद्ध करने को सदा तत्पर रहते हैं। ये दोनों वीर अद्वितीय बलवान् हैं। ये दोनों आपके लिए देवताओं से भी युद्ध करने में पीछे हटने के नहीं। यादवों के साथ जैसे श्रीकृष्ण आपका कार्य सिद्ध करने में लगे हुए हैं, वैसे ही हम भीमसेन, अर्जुन और अस्त्रों के प्रयोग में निपुण नकुल तथा सहदेव भी आपके अधीन हैं। महाराज, इस प्रकार हम सब मिलकर आपकी कार्य-सिद्धि, धनलाभ और राज्य-विभव की वृद्धि के लिए या तो शत्रुओं का नाश करेंगे या समझौता कर लेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं—राजा युधिष्ठिर ने भाइयों की इन बातों का अनुमोदन किया। अब युधिष्ठिर ने गन्धमादन पर्वत से जाने का विचार करके राजराजेश्वर कुबेर के स्थान की प्रदक्षिणा की। फिर वहाँ के भवन, नदी, सरोवर और उस पर्वत की रक्षा करनेवाले राक्षसों से युधिष्ठिर ने विदा माँगी। जिस राह से पर्वत पर आये थे उधर, और उस पर्वत की ओर बारंबार

निहारकर युधिष्ठिर ने कहा—हे पर्वतराज, मैं अपने मित्रों के साथ जाकर, शत्रुओं को मारूँगा
२० और राज्य पाकर फिर तप करने के लिए आकर तुम्हारे दर्शन करूँगा।
अब महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों और साथ रहनेवाले ब्राह्मणों के साथ उसी मार्ग से
नीचे उतरे जिससे कि पर्वत पर चढ़े थे। जहाँ पर पहाड़ी झरने और दुर्गम स्थान थे वहाँ पर
घटोत्कच आकर उन सबको लाद लेता था। पुत्र-तुल्य पाण्डवों को वहाँ से जाते देखकर महर्षि
लोमश ने पिता की तरह अनेक अच्छे उपदेश किये। फिर वे पाण्डवों से विदा होकर पवित्र
देवलोक को चले गये। आर्ष्टिषेण और लोमश के उपदेशों को शिरोधार्य करके रमणीय तीर्थ,
२३ तपोवन और बड़े-बड़े स्वच्छ सरोवर आदि की सैर करते हुए पाण्डव वहाँ से चल दिये।

एक सौ सतहत्तर अध्याय

पाण्डवों का अनेक स्थानों में ठहरना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! अनेक झरने, दिग्गज, किन्नर और विचित्र पक्षियों से पूर्ण, सुखमय निवासभूमि गन्धमादन पर्वत को छोड़कर जाने में पाण्डवों को बड़ा कष्ट हुआ। आगे चलकर कुबेर के प्रिय कैलास पर्वत को देखकर वे फिर प्रसन्न हुए। वह पर्वत देखने में सफ़ेद मेघ के समान जान पड़ रहा था। धनुष और खड्ग आदि शस्त्र धारण किये हुए पुरुषश्रेष्ठ पाण्डव पृथ्वी के ऊँचे-नीचे भाग, सिंहों के रहने की गुफाएँ, गिरि-सेतु (पहाड़ी पुल), झरने, नीची जगहें, मृग और पक्षियों के रहने के स्थान महावन आदि की सैर करते और प्रसन्न होते हुए आगे बढ़ने लगे। रात हो जाने पर रमणीय वन, नदी, सरोवर, पर्वत-कंदरा आदि स्थानों में टिक भी रहते थे। इस तरह बहुत से दुर्गम प्रदेशों में ठहरते हुए पाण्डव क्रमशः कैलास पर्वत को लाँघकर वृषपर्वा के अत्यन्त रमणीय आश्रम में पहुँचे। महर्षि ने उन्हें देखकर उनका यथोचित स्वागत किया। पाण्डवों ने वहाँ ठहरकर अपनी थकन मिटाई और महर्षि को गन्धमादन पर रहने का सारा हाल विस्तार के साथ कह सुनाया।

उस पवित्र आश्रम में देवता और ऋषि रहते थे। उसमें एक रात सुख से रहकर
पाण्डव लोग नारायण भगवान् के निवासस्थान बदरिकाश्रम में फिर पहुँचकर रहने लगे।
देवता और सिद्धगण जहाँ आते-जाते रहते हैं उस कुबेर के प्रिय सरोवर के दर्शन से शोक-रहित
१० होकर उस स्थान पर वे उसी तरह रहने लगे जिस तरह नन्दन वन में देवता विहार करते हैं।
एक महीने बदरीवन में बड़े सुख से रहकर फिर वे पूर्व-परिचित मार्ग से किरातराज
सुबाहु के राज्य की ओर गये। धीरे-धीरे चीन, तुषार, दरद और अनेक रत्नों से पूर्ण कुलिन्द

देश तथा हिमालय के दुर्गम स्थान लाँघने पर सुबाहु का नगर उन्हें देख पड़ा। सुबाहु ने महाबाहु पाण्डवों के आने का समाचार पाकर प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़कर उन्हें लिया और अभिनन्दन किया। सुबाहु से मिलकर और एक रात उनके यहाँ टिककर पाण्डव आगे बढ़े। वहाँ से उन्होंने घटोत्कच को बिदा कर दिया। फिर विशोक, इन्द्रसेन आदि सेवकों तथा रसोइयों को और डेरे आदि लेकर आगे चलनेवाले नौकर-चाकरों को लिये हुए पाण्डव रथों पर बैठकर यमुना नदी के समीपवर्ती पर्वतराज की ओर चले। उस प्रस्रवण पर्वत पर पहुँचकर पाण्डवों ने देखा कि तरह-तरह के झरने झर रहे हैं; ऐसा जान पड़ता है कि पीले और लाल रङ्ग के शिखर बर्फ़ के कपड़े पहने हुए हैं। फिर विशाखयूप नाम से प्रसिद्ध स्थान पर पाण्डवों ने कुछ दिन तक निवास किया। वहाँ कुबेर के चैत्ररथ वन के तुल्य महावन में—सुखपूर्वक वराह, मृग आदि का शिकार करते हुए—वे एक साल तक ठहरे। उस वन में विचरते विचरते एक दिन भीमसेन ने पर्वतकन्दरा में पड़े हुए, मृत्यु के समान उग्ररूप, महाबली और भूखे विशाल अजगर को देखा। वह अजगर भीमसेन की देह में लिपट गया। उसके आक्रमण से भीमसेन खेद और मोह के वश होकर बहुत पीड़ित हुए। पीछे धर्मराज युधिष्ठिर ने आकर उन्हें उसके मुँह से छुड़ाया।

इस तरह विचरते-विचरते बारहवाँ वर्ष जब लगा तब दिव्यशोभायुक्त धनुर्वेद के ज्ञाता पाण्डव उस चैत्ररथवन-सदृश वन से चलकर क्रमशः मरुभूमि और सरस्वती नदी के तट पर
पहुँचे। वहाँ से द्वैतवन में रहने के लिए आगे बढ़े। सरस्वती के किनारे का वन पकरिया, २१
रुद्राक्ष, बेत, बेर, खैर, मौलसिरी, बेल, इंगुदी, पीलु, शमी और करीर आदि के वृक्षों से परम रमणीय देख पड़ता था। पाण्डवों को वहाँ पर आये देखकर तपस्वी, जितेन्द्रिय, आचार-परायण, समाधिनिष्ठ, आसन और कमण्डलु लिये, अनेक ऋषि-मुनि उनके पास आने लगे। उन ऋषियों के दाँत बुढ़ापे के मारे गिर गये थे, इससे वे पत्थर से कूटकर कन्द-मूल-फल खाते थे। पाण्डवगण द्वैतवन में पहुँचकर बहुत प्रसन्न हुए। देवता, यक्ष, गन्धर्व, महर्षिगण के प्रिय निवासस्थान
सरस्वती-तट पर पहुँचकर पाँचों पाण्डव बड़े आनन्द से रहने और विचरने लगे। २४

एक सौ अठहत्तर अध्याय

अजगर के उपाख्यान का आरम्भ

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, परम पराक्रमी भीमसेन में दस हज़ार हाथियों का बल था; तब फिर उस अजगर से उनके डरने का कारण क्या था? जिन्होंने बाहु-बल के अभिमान से

उत्साहित होकर पुलस्त्य के पुत्र कुबेर को भी युद्ध के लिए ललकारा, जिन्होंने यक्ष-राक्षस आदि रक्षकों को मारकर सौगन्धिक कमलों से पूर्ण दिव्य सरोवर को मथ डाला, उन्हीं भीमसेन के बारे में आप कहते हैं कि वे अजगर की विपत्ति में पड़कर डर से व्याकुल हो गये ! इसलिए यह वृत्तान्त विस्तार से सुनने के लिए मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है ।

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, सुनिए । उग्र धनुष धारण करनेवाले महात्मा पाण्डव वृषपर्वा ऋषि के आश्रम से चलकर उस वन में आये और रहने लगे । उस वन में अनेक विचित्र पदार्थ, देखनेवाले को, आश्चर्य से चकित कर देते थे । एक दिन कमर में तलवार लगाकर, धनुष-बाण हाथ में लेकर, भीमसेन उस वन की सैर करने निकले । वे अकेले ही टहलते-टहलते हिमालय के मनोहर वनों के भीतर घुस पड़े । उन्होंने देखा कि उस हिमालय के ऊपर अनेक स्थानों में देवता, ऋषि, सिद्ध, अप्सरा आदि विचर रहे हैं । चकोर, उपचक्र, जीवंजीवक, कोकिल, भृङ्गराज आदि पक्षी जगह-जगह पर अपनी बोलियाँ सुना रहे हैं । नित्य फूलने-फलनेवाले, घनी छायावाले, बर्फ़ की ठण्डक से हरे-भरे अनेक वृक्ष मन और नेत्रों के आनन्द को बढ़ा रहे हैं । पहाड़ी झरनों के, वैडूर्यमणि के समान, स्वच्छ ठण्डे पानी में हंस तथा कारण्डव पक्षी तैर रहे हैं । हरिचन्दन, कालागुरु और देवदारु के वृक्षों के वन दूर से बादलों की घटा के समान जान पड़ते हैं । इस प्रकार पर्वत की अपूर्व शोभा देखते हुए भीमसेन शिकार की खोज में आगे बढ़ते चले जा रहे थे । वे बाण चलाकर अनेक मृगों का शिकार करते हुए मरुभूमि के समतल स्थान में पहुँचे और वहाँ घूमने लगे । भीमसेन में दस हज़ार हाथियों का बल था । वे सैकड़ों बली मनुष्यों को मारनेवाले, सिंह और शार्दूल के समान पराक्रमी तथा बलवान् माने जाते थे । इस समय महाबली भीम [सिंह, वराह, मृग, भैंसे आदि जानवरों को मारने के लिए पीछा करते समय] कभी वृक्षों को वेग से उखाड़कर—तोड़कर—इधर-उधर गिरा देते थे; कभी पहाड़ों के शिखरों की शिलाओं को पैरों से रौंदकर चूर-चूर कर डालते थे; कभी ताल ठोंककर, गरजकर अपने सिंहनाद से उस निर्जन वन को और आसपास के स्थानों को प्रतिध्वनित करते फिरते थे । [वे इधर से उधर कूदते-फाँदते फिरते थे ।] महाबली सिंह और हाथी भीमसेन के भयङ्कर शब्द से घबरा उठे । वे डर के मारे पर्वत की कन्दराओं से निकलकर इधर-उधर भागने लगे । वनचर मृगों की खोज में पैदल चलते-चलते भीमसेन कभी खड़े हो जाते थे, कभी बैठ जाते थे और कभी फिर दौड़ पड़ते थे । फिर उन्होंने भयानक सिंहनाद किया । उस अद्भुत शब्द को सुनकर वन के सब प्राणी डर गये । गुफाओं में पड़े हुए बड़े-बड़े अजगर और विषैले साँप भी निकलकर भागने लगे । भीमसेन भी मृगों का पीछा करने लगे ।

देवतुल्य महाबली भीमसेन ने कुछ दूर आगे जाकर देखा कि एक बहुत बड़ा भयङ्कर अजगर एक दुर्गम पहाड़ी स्थान में पड़ा हुआ है । उसका शरीर इतना बड़ा और मोटा है कि

सारी गुफा उससे भरी हुई है। उसका शरीर पहाड़ ऐसा है; अङ्ग चित्र-विचित्र हैं। रङ्ग हल्दी का सा है। मुँह गुफा के समान है। उसमें चार दाँत हैं। दोनों आँखें चमकीली और लाल हैं। वह अजगर भयानक फुफकार से मानों सब जीवों को डराता हुआ यमराज की तरह जीभ लपलपा रहा है। उसे देखकर कोई भी ऐसा नहीं जो डर न जाय। वह भूखा अजगर भीमसेन को देखते ही उन पर झपट पड़ा। उसने बलपूर्वक भीमसेन के दोनों हाथ लपेट लिये। वरदान के कारण, उस अजगर ने ज्योंही भीमसेन को छुआ त्योंही वे अचेत से हो गये। दस हज़ार हाथियों का बल रखनेवाले भीमसेन के हाथों की शक्ति जाती सी रही। तेजस्वी भीमसेन उस अजगर के वश में होकर अपने को उसके बन्धन से नहीं छुड़ा सके। महाबाहु, सिंह के ऐसे ऊँचे ३०

और दृढ़ कन्धोंवाले भीमसेन, बलहीन और मोहित से हो गये। इधर-उधर फड़ककर उन्होंने छूटने की बहुत चेष्टा की, पर सब व्यर्थ हुई। ३२

एक सौ उन्नासी अध्याय

युधिष्ठिर का घबराकर वहाँ जाना और भीमसेन की दशा देखना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, तेजस्वी भीमसेन को जब अजगर ने पकड़ लिया तब उसके अद्भुत बल को देखकर वे बहुत चकराये। भीमसेन ने उससे कहा—हे अजगर, हे श्रेष्ठ नाग, तुम कौन हो? मुझे पकड़कर क्या करोगे? मैं धर्मराज का छोटा भाई, पाण्डु का पुत्र, भीमसेन हूँ। मुझमें दस हज़ार हाथियों का बल स्वाभाविक है। मैंने बड़े-बड़े बली सिंह, बाघ, हाथी, भैंसे आदि प्राणियों को मार डाला है। महाबली नाग, राक्षस और निशाचर मेरे वेग और बाहुबल को नहीं सह सकते। आश्चर्य है कि तुमने मुझे किस तरह अपने वश में कर

लिया। मैं बार-बार चेष्टा करता हूँ, परन्तु तुम्हारे हाथ से नहीं छूट पाता। क्या तुममें किसी विद्या या वरदान का बल है? मुझे मालूम हो गया, मनुष्य का बल असत्य और निकम्मा है; क्योंकि तुमने मेरे प्रचण्ड बल को सहज ही नीचा दिखा दिया।

भीम-पराक्रमी भीमसेन के यों कहने पर उस अजगर ने उनके दोनों हाथ छोड़कर उनके सारे शरीर को जकड़ लिया। अब वह कहने लगा—हे महाबाहु, मैं बहुत दिन से भूखा था; बड़ी बात हुई जो मेरे आहार के लिए देवताओं ने तुमको यहाँ भेज दिया। क्योंकि प्राणियों को अपने जीवन पर बड़ी ममता होती है; वे बिना दैव की प्रेरणा के आपसे काल के मुँह में नहीं जाते। हे शत्रुदमन, मुझे जिस तरह यह साँप की योनि मिली है सो सुन लेना तुम्हारे लिए बहुत आवश्यक है। वह सब हाल कहता हूँ, सुनो। एक महर्षि के कोप से मेरी यह दशा हुई है। उस शाप का अन्त होने की इच्छा से मैं अपना सब हाल कहता हूँ। तुमने प्रसिद्ध राजर्षि नहुष का नाम तो अवश्य सुना होगा। मैं ही वह तुम्हारे पूर्वपुरुष आयु का पुत्र नहुष हूँ। होनहार के कारण ब्राह्मणों का अपमान करने से, महर्षि अगस्त्य के शाप से, मुझे यह नीच योनि मिली है। तुम बहुत ही प्रियदर्शन और मेरे वंश के लड़के हो, परन्तु मैं तुम्हें भक्षण करूँगा; दैव का विधान ही ऐसा है। मेरा यह नियम है कि दिन के छठे हिस्से में हाथी, भैंसा आदि जो प्राणी मिल जाता है उसे मैं नहीं छोड़ता, खा जाता हूँ। मैंने केवल अपने बल से तुमको नहीं पकड़ा है, तुम तो वरदान के प्रभाव से ही मेरे हाथ में आ गये हो। मैं [अपने अपराध के कारण] शाप पाकर जब इन्द्र के आसन से भ्रष्ट होकर स्वर्ग के विमान से नीचे गिरने लगा तब मैंने शाप से अपने छुटकारे के लिए महर्षि अगस्त्य से प्रार्थना की। महा-तेजस्वी अगस्त्य को मुझ पर दया आ गई। उन्होंने मुझसे कहा—राजन्, कुछ समय बीतने पर शाप से तुम्हारा छुटकारा हो जायगा। मुनि के यों कह चुकने पर मैं मनुष्य-लोक में गिर पड़ा, पर मेरी स्मरण-शक्ति नष्ट नहीं हुई। इसी कारण मैं अपने पुराने इतिहास को अभी तक नहीं भूला। महर्षि ने कहा था कि जो कोई प्राणी, धर्म और अधर्म का निर्णय करके, तुम्हारे प्रश्नों का ठीक उत्तर दे सकेगा वही तुमको शाप से छुड़ावेगा। इसके सिवा असाधारण बलवान् प्राणी को भी जो तुम पकड़ लोगे तो उसी घड़ी उसका सारा बल जाता रहेगा। प्रीति और करुणा के कारण इतना कहकर वे मुनिवर चले गये। भीमसेन, मैं बड़ा ही पापी हूँ। तब से सर्प योनि पाकर, शाप से छूटने के समय की राह देखता हुआ, इस अपवित्र नरक में पड़ा हुआ हूँ।

तब भीमसेन ने कहा—हे महासर्प, मैं न तो तुम पर रोष करता हूँ और न मुझे [यहाँ आने की अपनी मूर्खता का ही] पछतावा है; क्योंकि मनुष्य को जो सुख या दुःख मिलनेवाला होता है, वह टाले नहीं टल सकता। इसलिए दुःख मिलने पर या सुख नष्ट होने पर खेद न

करना चाहिए। दैव (होनहार) के आगे पौरुष काम नहीं दे सकता, मैं दैव को ही श्रेष्ठ सम-
झता हूँ; पौरुष व्यर्थ है। देखो, इस प्रकार मेरा बाहुबल नष्ट होने का और अकारण इस
शोचनीय अवस्था में मेरे पड़ने का कारण दैव ही है। मैं अपने नष्ट होने के लिए शोक नहीं
करता। मुझे तो दुःख इस बात का है कि राज्य से भ्रष्ट भाइयों को मैं वन में छोड़ आया हूँ।
यह हिमवान् पर्वत अत्यन्त दुर्गम है और इसमें बड़े भयानक यक्ष तथा राक्षस भरे पड़े हैं। मेरे
भाई मेरी बाट जोहते-जोहते बहुत ही विकल हो जायँगे। वे मेरा पता लगाने के लिए चारों ओर
दौड़ते फिरेंगे और जब मेरे मरने की ख़बर पावेंगे तब दुःखित होकर राज्य पाने की आशा और ३०
उद्योग छोड़ देंगे। वे सब धर्मात्मा हैं; मैंने ही उन्हें राज्य पाने का उद्योग करने के लिए अब
तक उत्साहित कर रक्खा था। या अर्जुन मेरे मरने से खेद न करेंगे; क्योंकि वे बुद्धिमान् और
सब अस्त्रों के ज्ञाता हैं। सब देवता, गन्धर्व, और राक्षस मिलकर भी उनको परास्त नहीं कर
सकते। वे महाबली महाबाहु इन्द्र को भी सहज ही उनके राज्य से भ्रष्ट कर सकते हैं।
कपटी, सब लोगों के द्वेषी, दंभ और मोह के वशीभूत दुर्योधन को राज्य-भ्रष्ट कर देना तो उनके
लिए कोई बड़ी बात नहीं; पर मुझे सबसे बढ़कर चिन्ता माता कुन्ती की है। वे सदा की
दुखिया हैं। पुत्रों में ही उनके प्राण धरे हुए होंगे। वे सदा चाहती हैं कि हम लोग औरों
(दुर्योधन आदि) से अधिक महत्व प्राप्त करें। हे सर्प, उन अनाथ कुन्ती के वे मनोरथ मेरे न
रहने पर कैसे पूरे होंगे? उनके सिवा छोटे भाई नकुल और सहदेव का भी मुझे बड़ा ख़याल
है। वे बड़े भाइयों के आज्ञाकारी हैं। मेरे बाहुबल से रक्षित होने के कारण वे भी पौरुष के
कामों में उत्साह दिखाया करते हैं। मेरे न रहने से वे भी उत्साह, वीर्य और पराक्रम से हीन
हो जायँगे। हे जनमेजय, भीमसेन इस प्रकार विलाप करने लगे।

सर्प ने भीमसेन को इतना जकड़ लिया था कि वे हिल-डुल नहीं सकते थे। उधर महा-
राज युधिष्ठिर अनेक अमङ्गलसूचक घोर उत्पातों को देखकर बहुत ही व्याकुल हुए। उन्होंने ४०
देखा, दिशाओं में आग सी लग रही है। डरी हुई सियारी, उनके आश्रम के पास दाहनी तरफ़,
रो रही है। एक पंख, एक नेत्र और एक चरणवाली, घोर रूपवाली वर्त्तक सूर्य की ओर
देखकर मुँह से ख़ून उगल रही है। रूखी, प्रचण्ड, कंकड़ उड़ाती हुई हवा ज़ोर से चल रही
है। दाहनी ओर अशुभसूचक मृग और पक्षी विकट शब्द कर रहे हैं। पीछे की ओर काले
रंग का कौआ 'जाओ जाओ' कहता हुआ काँव-काँव कर रहा है। बीच-बीच में शुभसूचक
दाहना हाथ भी फड़कता जाता है। दिल धड़कता है और बायाँ पैर काँपता सा है। अनिष्ट-
सूचक बाईं आँख का फड़कना भी देख पड़ता है।

बुद्धिमान् धर्मराज इन भयसूचक लक्षणों को देखकर घबरा गये। उन्होंने द्रौपदी से
पूछा—पाञ्चाली, भीमसेन कहाँ हैं? द्रौपदी ने कहा—भीमसेन को गये तो बड़ी देर हुई।

द्रौपदी के ये वचन सुनकर युधिष्ठिर ने अर्जुन को द्रौपदी की रक्षा का भार सौंपा, और नकुल
तथा सहदेव को ब्राह्मणों की रक्षा करते रहने की आज्ञा दी। फिर वे भीमसेन को खोजने के

लिए पुरोहित धौम्य के साथ चले।
उस आश्रम से भीमसेन के पैरों के
निशान देखते-देखते, उन्हीं के सहारे,
वे घोर वन के भीतर पहुँचे और वहाँ
भीमसेन को ढूँढ़ने लगे। पूर्व ओर
जाने पर उन्होंने बहुत से हाथियों को
देखा। वहाँ सैकड़ों सिंह और हज़ारों
मृग मरे पड़े थे। वहीं पर भीमसेन
५० के पैरों के चिह्न देख पड़े। युधिष्ठिर
उधर ही आगे बढ़े। शिकार खेलते
समय भीमसेन के दौड़ने से टूटे हुए
पेड़ राह में इधर-उधर पड़े थे। इन्हीं
चिह्नों से पता चलाते हुए युधिष्ठिर उस
गुफा में पहुँच गये। वह स्थान बहुत
ही विकट था। वहाँ रूखी और गर्म
हवा चल रही थी। वहाँ के वृक्ष
पत्तों से ख़ाली सूखे ठूँठ थे। वह ऊसर और निर्जन स्थान कँटीले वृक्षों से भरा हुआ था और
पत्थरों तथा बिना शाखाओं के छोटे वृक्षों से दुर्गम था। युधिष्ठिर ने देखा, भीमसेन के शरीर
५४ में एक बड़ा अजगर लिपटा हुआ है जिसके मारे वे हिल-डुल नहीं सकते।

एक सौ अस्सी अध्याय

युधिष्ठिर और अजगर का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, बुद्धिमान् धर्मराज अपने प्यारे भाई भीमसेन को इस दशा में देखकर कहने लगे—हे भीमसेन, तुम इस विपत्ति में कैसे पड़ गये? और, पहाड़ ऐसे डील-डौलवाला यह अजगर कौन है?

बड़े भाई युधिष्ठिर को देखकर भीमसेन ने आदि से अन्त तक अपने बन्धन का वृत्तान्त कह सुनाया। भीमसेन ने कहा—हे आर्य, इस महासर्प ने मुझे खा डालने के लिए पकड़ा है। ये महाप्रतापी राजर्षि नहुष हैं।

तब युधिष्ठिर ने [सर्परूपधारी नहुष से] कहा—हे बड़ी आयुवाले, तुम हमारे इन पराक्रमी भाई को छोड़ दो। हम तुम्हारी भूख मिटाने के लिए और तरह का आहार देंगे।

साँप ने कहा—हे धर्मराज, जङ्गल के भीतर आये हुए आहार के रूप में मैंने इस राजकुमार को पाया है। इसलिए तुम यहाँ न ठहरो, चले जाओ; नहीं तो कल तुमको भी खा जाऊँगा। मेरा नियम यही है कि जो मेरे अधिकार के इस देश में आवेगा, उसे मैं खा जाऊँगा। तुम भी मेरे अधिकृत स्थान में आने के कारण मेरा आहार हो चुके हो। बहुत दिनों के बाद खाने के लिए मैंने तुम्हारे भाई को पाया है, इस कारण मैं इसको नहीं छोड़ सकता। और, अन्य आहार के लिए भी मेरी रुचि नहीं है।

युधिष्ठिर ने कहा—हे साँप, मैं तुमसे पूछता हूँ; सच कहो, तुम देवता, दैत्य या साँप, कौन हो? तुम मेरे भाई को निगल जाने के लिए क्यों तैयार हो? क्या लाकर देने से या क्या जानने से तुम सन्तुष्ट हो सकते हो? मैं तुमको क्या आहार दूँ? किस तरह
तुम भीमसेन को छोड़ सकते हो? १०

साँप ने कहा—हे निष्पाप, मैं तुम्हारा पूर्वपुरुष राजा नहुष हूँ। मैं चन्द्रमा से पाँचवीं पीढ़ी में पैदा हुआ था। मेरे पिता का नाम आयु था। यज्ञ, तप, स्वाध्याय, इन्द्रियदमन और पराक्रम के प्रभाव से मुझे त्रिलोकी का ऐश्वर्य अर्थात् इन्द्रपद प्राप्त हुआ था। उस ऐश्वर्य को पाने से मुझे ऐसा घमण्ड हो गया कि मैं एक हज़ार ब्राह्मणों के कन्धे पर पालकी में बैठकर चलने लगा। मैं ऐश्वर्यमद में ऐसा अन्धा हो गया कि ब्राह्मणों का अनादर करने लगा। फल यह हुआ कि महर्षि अगस्त्य ने क्रोध करके मेरी यह दशा कर दी। मुझे उसका स्मरण अभी तक बना हुआ है। उन्हीं महात्मा अगस्त्य की कृपा से अभी तक मुझे अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त याद है। उन्हीं अगस्त्य के अनुग्रह से मैंने दिन के छठे भाग में तुम्हारे भाई को आहार के रूप में पाया है। मैं इसे नहीं छोड़ूँगा। इसके बदले मैं और आहार भी नहीं चाहता। हाँ, मैं तुमसे कुछ प्रश्न करता हूँ; जो तुम उनका ठीक उत्तर दे सकोगे तो मैं तुम्हारे भाई भीमसेन को छोड़ दूँगा।

युधिष्ठिर ने कहा—हे अजगर, तुम जो चाहे प्रश्न करो। मैं उत्तर दूँगा। सम्भव है, मैं उन उत्तरों से तुमको प्रसन्न कर सकूँ; किन्तु पहले यह बताओ कि ब्राह्मण के लिए जिसे जानना ज़रूरी है उस केवल अद्वितीय पुरुष को तुम जानते हो या नहीं? तुम्हारा उत्तर सुनकर मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूँगा।

अजगर ने कहा—बातों से तो तुम अलौकिक बुद्धिमान् जान पड़ते हो। इसलिए पहले
२० यह बताओ कि ब्राह्मण कौन है और उसके लिए जानना क्या ज़रूरी है? युधिष्ठिर ने उत्तर
दिया—सत्य, दान, क्षमा, शील, आनृशंस्य, तप और दया आदि सद्गुण जिसमें देख पड़ें, वही
ब्राह्मण (ब्रह्मविद्) है। और, हे सर्प, जिसे जान लेने से मनुष्य शोकशून्य हो जाता है, वह
सुख-दुःख-रहित परब्रह्म ही जानने की वस्तु है। अब तुम अपने प्रश्न कहो। सर्प ने कहा—हे
धर्मराज, अभ्रान्त वेद चारों वर्णों का हित करता है। वह वेद जिनका प्रतिपादन करता है ऐसे
सत्य, दान, क्षमा, आनृशंस्य, अहिंसा, दया आदि सद्गुण शूद्र में भी देख पड़ते हैं। तो फिर
ब्राह्मण और शूद्र में विशेषता क्या रही? और, तुमने कहा है कि सुख-दुःख-रहित पदार्थ जानने
की वस्तु है किन्तु सुख-दुःख से रहित तो कोई पदार्थ देख ही नहीं पड़ता।

युधिष्ठिर ने कहा—हे सर्प, जिस शूद्र में पहले कहे गये सत्य आदि गुण हैं, वह शूद्र शूद्र नहीं है। और जिस ब्राह्मण में वे गुण नहीं हैं, वह ब्राह्मण ब्राह्मण ही नहीं। मतलब यह कि केवल वंश से जाति का निश्चय नहीं होता। हे सर्प, सत्य आदि वेदोक्त लक्षण जिस ब्राह्मण में नहीं हैं वह यथार्थ में शूद्र है। और जिस शूद्र में वे लक्षण देख पड़ें वह यथार्थ में ब्राह्मण है। तुमने यह कहा कि सुख-दुःख से रहित कोई वस्तु नहीं है, क्योंकि सुख और दुःख सर्वत्र देख पड़ते हैं। किन्तु जैसे शीत (जल) के भीतर गर्मी और उष्ण (अग्नि) के भीतर ठण्डक नहीं होती, वैसे ही सुख और दुःख से हीन वस्तु भी, जिसका अनुभव साधारणतः नहीं होता, कहीं है। तुम चाहे जो समझते हो, पर मेरी समझ तो यही है कि जैसे ठण्डक और गर्मी-रहित, अनुभव से परे, किसी पदार्थ की सत्ता स्वीकार की जाती है, वैसे ही सुख-दुःख-शून्य ज्ञेय पदार्थ का होना भी स्वीकार करना पड़ेगा।

सर्प ने कहा—हे आयुष्मन्, यदि वेदोक्त आचार से ही ब्राह्मणत्व सिद्ध होता है, तो
३० फिर जब तक मनुष्य में उस आचार के पालन की शक्ति नहीं आती, तब तक जातिविभाग वृथा है।

युधिष्ठिर ने कहा—हे बुद्धिमान् सर्प! जन्म, मरण, भाषा और मैथुन आदि में सब मनुष्य समान हैं। सभी सब स्त्रियों में सदा सन्तान उत्पन्न किया करते हैं। इस कारण, मेरे मत में, सब वर्णों का इस प्रकार का संकर (मिश्रण) होने के कारण जाति की परीक्षा होनी अत्यन्त कठिन है। ऋषियों का कहना है कि यज्ञ करनेवाले ही ब्राह्मण हैं। इसी कारण तत्त्वदर्शी लोगों ने चरित्र को ही प्रधान यज्ञ माना है। 'नाल' काटने के पहले पुरुष का जातकर्म संस्कार

कर दिया जाता है। उस समय उस बालक की माता सावित्री और पिता आचार्य कहा जाता है। इस जातिसम्बन्धी सन्देह के समय के लिए ही स्वायंभुव मनु ने व्यवस्था दी है कि पुरुष जब तक वेद नहीं पढ़ता—गायत्री का उपदेश नहीं पाता—तब तक शूद्र के समान रहता है। हे सर्प, यदि विधिपूर्वक यज्ञोपवीत आदि संस्कार हो जाने पर भी मनुष्य वेद में कहे गये आचार का पालन नहीं करता तो उसमें वर्णसङ्कर के भाव को ही प्रबल मानना चाहिए। इसी से मैं पहले कह चुका हूँ कि जो वेदोक्त आचार का पालन करता है—जिसका चरित्र पूर्ण रूप से शुद्ध है—वही ब्राह्मण है।

सर्प ने कहा—हे युधिष्ठिर, मैंने तुम्हारा कथन सुन लिया। मैं जान गया कि जो कुछ जानना चाहिए उसे तुम अच्छी तरह जानते हो। इसलिए [प्रसन्न होकर, प्रतिज्ञा के अनुसार,]
मैं तुम्हारे भाई को छोड़े देता हूँ। ३८

एक सौ इक्यासी अध्याय

युधिष्ठिर का नहुष से उपदेश लेना

युधिष्ठिर ने कहा—हे सर्प, सब वेदों और वेदाङ्गों को तुम बहुत अच्छी तरह जानते हो। इसलिए बताओ, कौन सा कर्म करने से अच्छी गति मिलती है?

सर्प ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, मेरी समझ से तो जो मनुष्य सुपात्र को दान करता है, सत्य और प्रिय वचन बोलता है और चाहे अपने प्राण चले जायँ पर जीवहिंसा नहीं करता, वही स्वर्ग को जाता है।

युधिष्ठिर ने पूछा—हे सर्प, दान और सत्य इन दोनों में कौन मुख्य है? अहिंसा और प्रिय बोलने में किसका दर्जा बड़ा है?

सर्प ने कहा—हे आयुष्मन्! कार्य देखकर ही दान, सत्य, अहिंसा, प्रिय वचन बोलना आदि तत्त्व विषयों का गौरव या लाघव बताया जा सकता है। कहीं पर दान की अपेक्षा सत्य की, और कहीं सत्य की अपेक्षा दान की महिमा पाई जाती है। कहीं प्रिय वाक्य बोलने की अपेक्षा अहिंसा का और कहीं अहिंसा की अपेक्षा प्रियवादी होने का महत्त्व देखा जाता है। इस प्रकार कार्य के अनुसार ही इन सद्गुणों की प्रधानता निर्दिष्ट की जाती है। राजन्, तुम्हें यदि और कुछ पूछना हो तो पूछो, मैं उत्तर देने के लिए तैयार हूँ।

युधिष्ठिर ने कहा—हे सर्प, यह देह छूट जाने पर मनुष्य स्वर्ग में जाकर किस तरह अपने कर्म से मिली हुई बुरी या भली योनि में जाता है? शब्द आदि विषयों का उपभोग ही किस तरह करता है?

सर्प ने कहा—हे युधिष्ठिर, अपने कर्मों के फल से मनुष्ययोनि, स्वर्गवास अथवा पशु-पक्षी-कीड़े आदि की योनि, ये तीन गतियाँ मिलती हैं। जो कोई हिंसा और आलस्य छोड़कर दान आदि सत्कार्य करता है उसे स्वर्गलोक मिलता है। यदि मनुष्य के पुण्य और पाप बराबर होते हैं तो उसे मनुष्ययोनि मिलती है और पाप अधिक होते हैं तो कीट-पतङ्ग आदि की तिर्य्यग्योनि। इसमें विशेषता यह है कि जो सदा काम-क्रोध-हिंसा-लोभ आदि बुरी प्रवृत्तियों के वशीभूत रहता है वह मनुष्यत्व से भ्रष्ट होकर तिर्य्यग्योनि में जन्म लेता है। बहुत जीव तिर्य्यग्योनि से छुटकारा पाकर मनुष्ययोनि में जन्म लेते हैं। कुछ गाय, घोड़े आदि जीव पशु-योनि से एकदम देवयोनि भी पा जाते हैं। धर्मराज, यह जीव कर्मानुसार अपने को ऊपर पहुँचाता है और नीचे भी ढकेल देता है। देहाभिमानी आत्मा फल की इच्छा से बारबार जन्म लेता है और देह के साथ फल भोगता है। किन्तु जो ज्ञानी पुरुष हैं वे विषयवासना से बचकर एकमात्र नित्य परमेश्वर में ही आत्मा को स्थापित करते हैं; अर्थात् मुक्ति चाहते हैं।

युधिष्ठिर ने पूछा—हे सर्प, आत्मा किस तरह शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का अलग-अलग भोग करता है? तुम क्या एक साथ सब विषयों का उपभोग नहीं करते?

सर्प ने कहा—हे युधिष्ठिर, यह आत्मा स्थूल और सूक्ष्म शरीरों का आश्रय लेने पर इन्द्रियों से युक्त होकर, ईश्वरीय विधान के अनुसार, विषय-भोग करने में समर्थ होता है। ज्ञान, बुद्धि, मन, ये ही तीन आत्मा के भोगसाधन का सामान 'करण' अर्थात् अन्तःकरण हैं [इन्हीं को सूक्ष्म शरीर भी कहते हैं]। जीवात्मा अपने आश्रयस्थान 'हृदय' से निकलकर, इन्द्रियासक्त मन की सहायता से, इन सब विषयों को ग्रहण करता है। विषयों का ग्रहण करने के लिए मन को नियुक्त करना बुद्धि का काम है। इसी कारण एक साथ सब विषयों का उपभोग किसी तरह सम्भव नहीं है। बुद्धि भी स्वाधीन नहीं है। जीवात्मा दोनों भौंहों के बीच की जगह में रहकर विविध विषयों में श्रेष्ठ और निकृष्ट बुद्धि को लगाता है; तथापि बुद्धि के साथ जीवात्मा का कोई संबंध नहीं है। दोनों अलग-अलग हैं; क्योंकि युक्ति और अनुभव के द्वारा किसी विषय को समझने के बाद ही जिस ज्ञान का उदय होता है, उसी से जीवात्मा का अस्तित्व अलग प्रमाणित होता है।

युधिष्ठिर ने कहा—हे नागराज, आपकी बातें सुनने से जान पड़ता है कि आप मन और बुद्धि का निरूपण करना अध्यात्म-विद्या के ज्ञाताओं का मुख्य काम समझते हैं। इसलिए बताइए कि मन और बुद्धि क्या हैं?

सर्प ने कहा—बुद्धि तो आत्मा की नितान्त अनुगत और आश्रित है। आत्मचेतना से युक्त होकर बुद्धि, कार्य द्वारा, आत्मा के वश में हो जाती है*। विषय और इन्द्रिय जब परस्पर

* जीवात्मा पर जब माया अपना प्रभाव डालती है तब वह बुद्धि का आश्रय लेता है।

संयुक्त होते हैं तब वे अच्छी या बुरी बुद्धि पैदा करते हैं। किन्तु इस तरह मन की सृष्टि करनेवाला कोई नहीं है। बुद्धि में सुख या दुःख पैदा करने की कोई सामर्थ्य नहीं है; यह सामर्थ्य तो मन में ही है। इस प्रकार मन में और बुद्धि में जो अन्तर है वह स्पष्ट समझ में आ जाता है। धर्मराज, तुम भी बुद्धिमान् हो। बताओ, इस विषय में तुम्हारी सम्मति क्या है?

युधिष्ठिर ने कहा—सर्प, तुम्हारा ज्ञान और बुद्धि सब मनुष्यों की अपेक्षा उन्नत है; इसी कारण जानने योग्य विषयों में तुम्हें यथेष्ट जानकारी भी है। फिर मुझसे इस विषय में सम्मति क्यों लेते हो? मुझे एक बड़ा ही आश्चर्य मालूम पड़ता है। वह यह कि सर्वज्ञ और स्वर्गवासी होने पर भी तुमसे यह भूल कैसे हो गई? [मुझे विश्वास नहीं होता कि तुमने ब्राह्मणों का अनादर किया होगा। ऐसा अनुचित कर्म तुमसे कैसे बन पड़ा?]

साँप ने कहा—हे धर्मराज, मैं समझता हूँ कि अत्यन्त शूर और बुद्धिमान् पुरुष भी ऐश्वर्य के मद में अन्धे हो जाते हैं। ख़ासकर विषय-सुख के वशीभूत हो जाने पर हर एक व्यक्ति
को भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहता। इसलिए धन और ऐश्वर्य के मद में उन्मत्त होकर मेरा ऐसा ३०
काम कर बैठना कुछ विचित्र नहीं। इस समय ऐश्वर्य से भ्रष्ट होने पर मुझे ज्ञान हुआ है; इसलिए मैं तुमको भी सावधान किये देता हूँ कि ऐश्वर्य पाकर सदा सावधान रहना। हे युधिष्ठिर, [तुम्हारा चरित्र बहुत ही अच्छा है।] आज मुझे इस दारुण शाप से छुड़ाकर तुमने मेरा बड़ा भारी उपकार किया। मैं पूर्वजन्म में, विमान पर चढ़कर, स्वर्ग में विचरा करता था। ऐसा ऐश्वर्य पाकर मैं मदान्ध हो उठा। मैंने किसी की परवा नहीं की। देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग, ब्रह्मर्षि आदि त्रैलोक्य की सब प्रजा मुझे 'कर' देती थी। मैं असाधारण दृष्टिशक्ति के प्रभाव से देखते ही सब प्राणियों के तेज को हर लेता था। हज़ारों ब्रह्मर्षि मेरी पालकी उठाते थे। उसी दुर्नीति के कारण मैं इस तरह श्री-भ्रष्ट हो गया हूँ।

एक समय महर्षि अगस्त्य मेरी पालकी में लगे हुए थे। मैंने उनको लात मार दी, तब उन्होंने क्रोध करके मुझे शाप दे दिया। कहा, तू शीघ्र श्री से भ्रष्ट होकर अजगर हो जा। मैं उसी दम श्री-भ्रष्ट होकर विमान से नीचे गिर पड़ा। गिरते समय मुझे सर्पयोनि मिली, तब मुझे होश आया। मैं महर्षि से गिड़गिड़ाकर कहने लगा—भगवन्, बुद्धि भ्रष्ट हो जाने के कारण मुझसे यह अपराध हो गया है। इसलिए क्षमा करके मुझे शाप से छुड़ा दीजिए। दयालु मुनि ने कहा—धर्मराज युधिष्ठिर तुमको शाप से छुड़ावेंगे। राजन्, तुम्हारे घोर अभिमान पाप का
४० प्रायश्चित्त होने पर शाप से छुटकारा होगा और तुम फिर स्वर्ग में आ जाओगे।

उस समय उनका तपोबल देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ा था। इसी कारण मैंने तुमसे ब्रह्म और ब्राह्मण के बारे में पहले प्रश्न किया था। राजन्! मनुष्य सत्य, इन्द्रिय-दमन, तपस्या, दान, अहिंसा और नित्य धर्म का आचरण करने से ही अपने अभीष्ट को सिद्ध कर सकता है; जाति या कुल से कुछ नहीं होता। अब मैं स्वर्ग को जाता हूँ। तुम्हारा और भीमसेन का भला हो।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, अब राजर्षि नहुष ने वह अजगर का शरीर छोड़ दिया। वे दिव्य शरीर धारण करके स्वर्गलोक को चल दिये। धर्मराज युधिष्ठिर भी भीमसेन और धौम्य पुरोहित के साथ अपने आश्रम को लौट गये। उन्होंने वहाँ जाकर सब भाइयों और ब्राह्मणों के आगे सब हाल कहा। अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी और सब ब्राह्मण यह हाल सुनकर बहुत लज्जित हुए। पाण्डवों के हित की इच्छा रखनेवाले ब्राह्मणों ने भीमसेन के इस दुस्साहस की निन्दा करके कहा—अब कभी ऐसा मत करना। विपत्ति से छूटे हुए भीमसेन को पाकर सब
४९ पाण्डव प्रसन्न हुए और उनके साथ वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे।

मार्कण्डेयसमास्यापर्व

एक सौ बयासी अध्याय

पाण्डवों का काम्यक वन को जाना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, ग्रीष्म ऋतु बीतने पर सब प्राणियों को सुख पहुँचानेवाली वर्षा ऋतु आ गई। तम्बुओं की तरह शोभायमान वर्षा के काले मेघ आकाश और दिशाओं को घेरकर ज़ोर से गरजते हुए दिन-रात पानी बरसाने लगे। सूर्य का प्रकाश छिप गया; इधर-उधर बादलों में बिजली चमकने लगी। पानी से भीगी हुई पृथ्वी हरी-हरी नई घास से छा गई। डाँस, मच्छड़ और कीड़ों-पतंगों का उपद्रव बढ़ गया। पृथ्वी पर इतना पानी भर गया कि बराबर, ऊँचा और ख़ाली, नदी और स्थल, कुछ स्पष्ट रूप से नहीं जान पड़ता था। शीघ्रगामी बाण की तरह बहती हुई नदियों के प्रवाह से किनारे के वनों की भूमि शोभित हो गई। सुअर,

मृग, पक्षी आदि जीव पानी की बौछार में भीगकर वनों में तरह तरह की बोलियों से आनन्द प्रकट करने लगे। पपीहा, मोर, कोयल आदि पक्षी मस्त होकर उड़ने लगे। मेंढक भी ऐंठ के मारे गढ़ों में 'टरटर' करने लगे। पाण्डवों ने वहाँ बड़े सुख से वर्षा का समय बिताया।

इसके बाद रमणीय शरद ऋतु आ गई। क्रौंच, हंस आदि जलचर पक्षी प्रसन्न होकर इधर-उधर विचरने लगे। जङ्गलों में और पहाड़ों पर घास निकली हुई थी। नदियों का जल स्वच्छ
हो गया। आकाश निर्मल रहने से 10
चन्द्रमा और नक्षत्रों का प्रकाश भी उज्ज्वल हो उठा। शरद ऋतु पाण्डवों के लिए सुखदायक हुई। धूल का नाम न था; बादल कहीं देखने को न थे। ग्रहों और नक्षत्रों सहित चन्द्रमा का उदय होने से रातें बहुत मनोहर मालूम होने लगीं। शीतल जल से भरी हुई नदियों में कुमुद, सफ़ेद कमल आदि के फूल खिलने लगे। वेतस-लताओं से पूर्ण और नीलरेखा के रूप में दीखते हुए किनारों से मनोहर, आकाश के समान शोभायमान सरस्वती नदी देखनेवालों के हृदय में हर्ष का सञ्चार करने लगी। शरद की सुन्दर शोभा देखकर पाण्डव प्रसन्न हुए।

हे जनमेजय, पाण्डव लोग नारायण के आश्रम में ही थे कि कार्त्तिक की पूर्णिमा आ गई। तब वे वहाँ से चलने का उद्योग करने लगे। पुण्यात्मा महाबली पाण्डव महर्षि धौम्य, सूत,
अनुचरों आदि के साथ काम्यक वन को चले। 18

एक सौ तिरासी अध्याय

श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर के पास आना। श्रीकृष्ण के कहने से मार्कण्डेय का पुराण-कथा कहना

वैशम्पायन कहते हैं—युधिष्ठिर आदि पाण्डव काम्यक वन में पहुँच गये। ऋषियों ने उनका अतिथिसत्कार किया। द्रौपदी-सहित पाँचों पाण्डव जब सुखपूर्वक वहाँ बैठे तब वे

ब्राह्मण भी उन्हें घेरकर बैठ गये। एक ब्राह्मण ने कहा—हे पाण्डवो ! अर्जुन के प्रिय सखा, महाबाहु, उदारबुद्धि श्रीकृष्ण सदा तुम लोगों की भलाई चाहते हैं। उन्हें सदा तुमसे मिलने की और तुम्हें देखने की चाह रहती है। उन्हें तुम्हारे यहाँ आने की ख़बर मिल गई है, और वे शीघ्र यहाँ तुमसे मिलने आवेंगे। बड़ी आयुवाले, तप और स्वाध्याय में तत्पर, महात्मा मार्कण्डेय ऋषि भी तुम्हारे पास आवेंगे।

उस ब्राह्मण की बात पूरी भी न होने पाई थी कि शैब्य, सुग्रीव नाम के श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त रथ पर बैठे हुए कृष्ण भगवान् वहाँ पर आ गये। इन्द्र के साथ इन्द्राणी के समान उनके साथ सत्यभामा भी थीं। पाण्डवों को देखने के लिए आये हुए श्रीकृष्ण ने रथ से उतरकर धर्म-राज, भीमसेन और पुरोहित धौम्य के पैर छुए। नकुल और सहदेव ने कृष्ण को प्रणाम किया।

फिर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को
१० बारबार गले से लगाकर द्रौपदी
को मधुर वचनों से ढाढ़स बँधाया। श्रीकृष्ण की प्यारी रानी सत्यभामा ने भी पाण्डवों की पटरानी द्रौपदी को गले से लगाया। पूजा-सत्कार करने के उपरान्त द्रौपदी, पुरोहित धौम्य और पाँचों पाण्डव श्रीकृष्ण के चारों ओर बैठ गये। कृष्ण भगवान् अर्जुन से मिलकर कार्त्तिकेय-सहित भगवान् शङ्कर के समान शोभित हुए। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से वन में और स्वर्ग में रहने का सब हाल कहकर सुभद्रा और अभिमन्यु के कुशलसमाचार पूछे।

अर्जुन, द्रौपदी और पुरोहित धौम्य का सत्कार करके युधिष्ठिर की बड़ाई करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा—राजन्, राज्य पाने की अपेक्षा धर्म श्रेष्ठ है। धर्म के लिए तप किया जाता है। आपने सत्य और सरलता के साथ अपने धर्म का पालन करके इस लोक और परलोक दोनों को जीत लिया। आपने ब्रह्मचर्य के समय सब धनुर्वेद सीखा, फिर क्षत्रियधर्म के अनुसार धन कमाया। उसके बाद विधिपूर्वक प्राचीन महायज्ञ भी किये। हे नरेन्द्र, आप विषय-भोग में उचित से अधिक आसक्त नहीं हैं। किसी कार्य को आप इच्छा के वशीभूत होकर नहीं करते;

अर्थसिद्धि के लोभ से कभी धर्म को नहीं छोड़ते। इसी से आपको पृथ्वी पर सब लोग धर्मराज
कहते हैं। हे पार्थ! आप राज्य, धन और अनेक प्रकार की उपभोग की सामग्री पाकर भी दान,
तप, सत्य, श्रद्धा, बुद्धि, क्षमा, धैर्य आदि पर सदा प्रेम रखते हैं। आपके शत्रुओं ने सभा के
बीच, कुरुजाङ्गल और अन्य अनेक देशों के लोगों के सामने, द्रौपदी को लाकर नङ्गी करना चाहा
था। उनके उस धर्मविरुद्ध निन्दित काम को आपके सिवा और कौन सह सकता था? अब २०
आपका मनोरथ शीघ्र ही पूरा हो जायगा और आप धर्म से प्रजा का पालन करेंगे। धर्मराज,
यदि आपकी प्रतिज्ञा की अवधि पूरी हो गई हो तो कहिए, मैं अभी दुष्ट दुर्योधन-सहित कुरुवंश
का नाश कर डालूँ। अब धौम्य आदि की ओर देखकर श्रीकृष्ण ने कहा—महावीर अर्जुन
आप लोगों के भाग्य से ही अस्त्रविद्या प्राप्त करके प्रसन्नतापूर्वक देवलोक से लौट आये हैं।

फिर अपने इष्टमित्रों-सहित यदुनाथ श्रीकृष्ण ने द्रौपदी से कहा—पाञ्चाली, तुम्हारा
सौभाग्य है कि अर्जुन लौटकर आ गये। द्वारका में रहनेवाले तुम्हारे सुशील पुत्र इस समय
बड़ी लगन से धनुर्वेद सीख रहे हैं। वे सदा सत्सङ्ग में रहने के कारण सज्जनों के योग्य सदाचार
की बातें भी सीख गये हैं। हे द्रौपदी, तुम्हारे पिता और भाइयों ने उनको कई बार बुला भेजा,
और राज्य आदि का भी लालच दिया; पर उन्हें नाना या मामा के पास रहना नहीं भाता।
वे द्वारकापुरी में यादवों के पास बड़े सुख से रहते हैं और युद्धविद्या सीखते हैं। वे द्वारका को
छोड़कर देवताओं के पास रहना भी पसन्द नहीं करते। आर्या कुन्ती और तुम जिस तरह
उन्हें सच्चरित्रता सिखातीं [और उनके लालन-पालन में स्नेह दिखातीं,] उसी तरह सुभद्रा
उन्हें सदाचार सिखाती और स्नेह करती है। अनिरुद्ध, अभिमन्यु, सुनीथ और भानु का जिस
प्रकार प्रद्युम्न शिक्षक और रक्षक है उसी प्रकार वह तुम्हारे पुत्रों का भी है। शिक्षा देने में
चतुर, आलस्यहीन कुमार अभिमन्यु तुम्हारे पुत्रों को गदायुद्ध, ढाल-तलवार का युद्ध, अनेक
अस्त्रों का प्रयोग और रथ चलाना सिखाते रहते हैं। अनेक अस्त्र-शस्त्र देकर और अच्छी तरह
उनका प्रयोग सिखाकर प्रद्युम्न ने उन्हें होशियार कर दिया है। वह तुम्हारे पुत्रों के और अभि-
मन्यु के पराक्रम को देखकर बहुत प्रसन्न होता है। हे पाञ्चाली, तुम्हारे बालक जब शिकार ३०
वग़ैरह खेलने जाते हैं तब उनकी सवारी के साथ हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना जाती है।

अब श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—हे धर्मराज! कुक्कुर, अन्धक आदि वंशों के वीर
यादव, जहाँ आप कहें वहाँ जाकर, आपकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हैं। हे नरेन्द्र,
बलदेव जिसके सेनापति होंगे वह मथुरानिवासी यादवों की चतुरङ्गिणी सेना धनुष-बाण आदि
अस्त्र-शस्त्र लेकर आपकी सहायता करने को तैयार है। हे पाण्डुपुत्र, आप महापापी दुर्योधन
को उसके सहायकों और इष्टमित्रों के साथ वहीं भेज दीजिए जहाँ भौमासुर और शाल्व आदि
गये हैं। सभा में आप जो प्रतिज्ञा कर चुके हैं उसके पूर्ण होने की अवधि तक ठहरे रहिए।

यादववंश के योद्धा उसके बाद शत्रुपक्ष का नाश करेंगे और हस्तिनापुर का सिंहासन आप पावेंगे। अभी क्रोध और पाप से बचकर आप चाहे जहाँ रहिए, और प्रतिज्ञा पूरी होने की राह देखिए। समय बीतने पर आप शोक छोड़कर समृद्धियुक्त और साम्राज्य-सहित सिंहासन के अधिकारी होकर हस्तिनापुर में जाइएगा।

पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की सलाह जानकर युधिष्ठिर ने उनकी बड़ाई की और फिर हाथ जोड़कर कहा—हे केशव, इसमें सन्देह नहीं कि आप ही पाण्डवों की एकमात्र गति हैं; पाण्डव आपके ही शरणागत हैं। प्रतिज्ञा की अवधि बीतने पर जब समय आवेगा तब अवश्य आप अपने इस कथन के अनुसार सब काम करेंगे। केशव, प्रतिज्ञा के अनुसार वन में रहकर हम बारह साल बिता चुके हैं। इसके बाद अज्ञातवास का एक वर्ष बिताकर हम लोग आपका ही आश्रय लेंगे। श्रीकृष्ण, आपके आश्रय में रहनेवाले हम पाण्डवों की ऐसी ही बुद्धि बनी रहे; हम सत्य और धर्म को कभी न छोड़ें। हम सत्पथ पर चलनेवाले, दान और धर्म में तत्पर
४० रहकर स्त्री-पुत्र-बान्धव आदि सहित आपकी ही शरण में रहें।

वैशम्पायन कहते हैं—हे भरतश्रेष्ठ, श्रीकृष्ण और धर्मराज यह बातचीत कर ही रहे थे कि श्रेष्ठ रूप और गुणों से शोभित, धार्मिकश्रेष्ठ, महातपस्वी मार्कण्डेय मुनि वहाँ देख पड़े। वे चिरजीवी हैं। इतने प्राचीन होने पर भी देखने में पचीस वर्ष के जवान जान पड़ते हैं। सब ब्राह्मणों, पाण्डवों और श्रीकृष्ण ने विधिपूर्वक उनका पूजन और सत्कार किया। पूजा ग्रहण करके आसन पर बैठकर जब ऋषि कुछ विश्राम कर चुके तब पाण्डवों और ब्राह्मणों की इच्छा के अनुसार श्रीकृष्ण ने कहा—हे मार्कण्डेयजी, आप वयोवृद्ध हैं; इस कारण ये ब्राह्मण, पाण्डव, द्रौपदी, सत्यभामा और मैं, सभी आपके मुँह से पुरावृत्त, पुण्यकथा, राजा-रानी और ऋषियों के सदाचार सुनना चाहते हैं। आप कृपा करके हमारी इच्छा पूरी कीजिए।

महाराज, श्रीकृष्ण के यह कह चुकने पर विशुद्ध-हृदय देवर्षि नारद भी पाण्डवों से मिलने के लिए वहाँ आ गये। पाण्डवों ने पाद्य, अर्घ्य, आसन आदि देकर उनकी पूजा की।

वहाँ के सब लोगों को मार्कण्डेय के मुँह से इतिहास-कथा सुनने के लिए उत्सुक देखकर नारदजी
ने उसका अनुमोदन किया। तब समय का ज्ञान रखनेवाले श्रीकृष्ण ने मार्कण्डेय से कहा—हे
ब्रह्मर्षिवर, आप पाण्डवों को जो सुनाना चाहते हैं सो सुनाइए। ५०

मार्कण्डेय ने कहा—यह कथा बड़ी लम्बी-चौड़ी है; इस कारण उसे सुनाने का एक
समय निश्चित कर लो। तब पाण्डवों ने दोपहर का समय ठीक किया। वैशम्पायन कहते
हैं कि धर्मराज ने मुनिवर को कथा का प्रारम्भ करने के लिए तैयार देखकर कहा—भगवन्!
आप देवता, दैत्य, महात्मा ऋषि, राजर्षि आदि के चरित्रों को अच्छी तरह जानते हैं। आपकी
और श्रीकृष्ण की सेवा और उपासना करना हमारा कर्त्तव्य है, क्योंकि दोनों ही हमें प्रिय हैं।
मेरा सौभाग्य है कि आप लोग यहाँ मुझे दर्शन देने आये हैं। मैं इस समय अपने को दुःख
सहते और दुराचारी दुष्ट सुयोधन को दिन-दिन अधिक समृद्धिशाली होते देखकर यह सोचता
हूँ कि पुरुष किस तरह शुभाशुभ कामों का कर्त्ता होकर उनका फल भोगता है? न्यायी ईश्वर
को क्या उस शुभाशुभ फल का देनेवाला स्वीकार कर लिया जाय? मनुष्य के सुख-दुःख का
कारण क्या है? मनुष्य उन कर्मों का फल इस लोक में भोगता है या परलोक में? शुभा-
शुभ कर्मों का फल इस लोक या परलोक में किसके सहारे रहता है? ६०

मार्कण्डेय ने कहा—हे युधिष्ठिर, तुमने यह प्रश्न बहुत ठीक किया। सब जानने योग्य
विषयों को तुम जानते हो। इस समय केवल लोकाचार की रक्षा और अन्य लोगों की जान-
कारी के लिए तुम यह प्रश्न कर रहे हो। मनुष्य इस लोक या परलोक में जिस तरह सुख-दुःख
भोगता है सो मैं कहता हूँ, एकाग्र होकर सुनो। हे कुरुश्रेष्ठ, प्रजापति ब्रह्मा ने शरीरधारियों का
शरीर निर्मल, पवित्र और धर्मतन्त्र बनाया था। पहले के मनुष्य सुव्रत (सच्चरित्र), सत्य-
वादी, ब्रह्मनिष्ठ और सफल संकल्पवाले होते थे। वे सहज ही देवताओं के साथ आकाश में जा
सकते और वहाँ से पृथ्वी पर आ सकते थे। वे स्वच्छन्द गतिवाले मनुष्य निर्भय और निरुपद्रव
थे। जब चाहते थे तब उनकी मृत्यु होती थी। उनके कामों के सिद्ध होने में कोई रुका-
वट न पड़ती थी। वे देवताओं और ऋषियों से भेंट कर सकते थे। सब धर्मों को वे प्रत्यक्ष
सा देख लेते थे। वे जितेन्द्रिय थे, उनमें मत्सर या ईर्ष्या न थी। उनकी आयु हज़ार वर्ष
की होती थी और पुत्र भी हज़ारों उत्पन्न होते थे।

इसके बाद समय बीतने पर पृथ्वी पर रहते-रहते उनके हृदय में काम-क्रोध आदि के
भाव उत्पन्न हुए, और वे कपट के व्यवहार से अपनी जीविका चलाने लगे। तब उस पहले के
शरीर की अपेक्षा हीन शरीर पाकर वे निन्दनीय कर्म करने लगे; साथ ही पापग्रस्त होकर
तिर्यग्योनियों और नरकों में जाने लगे। फल यह हुआ कि वे संसार में बारम्बार जन्म-मरण
का दुःख भोगने लगे। उनके मानसिक संकल्प और ज्ञान विफल होने लगे। प्रायः सभी लोग ७०

निन्दनीय काम और आचरण करने लगे। वे लोग बुरे घरानों में उत्पन्न होकर रोगग्रस्त, दुरात्मा, प्रभावहीन, पापी, अल्पायु, कामभोग में लिप्त, भिन्नरुचि और कच्ची समझवाले तथा नास्तिक होने लगे। हे युधिष्ठिर, इस संसार के सब जीव मरने के बाद अपने कर्मों का फल भोगते हैं। अब यह सुनो कि ज्ञानी और अज्ञानी पुरुषों के कर्मफल कहाँ रहते हैं और वे जीव कहाँ रहकर अच्छे और बुरे कामों के फल भोगते हैं ?

ईश्वर के सिरजे हुए आदिशरीर के द्वारा मनुष्य, शुभ और अशुभ, काम करता है। आयु समाप्त होने पर उस क्षीणप्राय शरीर को छोड़कर उसी घड़ी वह अन्य स्थूल शरीर पा जाता है और दूसरी योनि में जन्म लेता है। जीव क्षण भर भी देह के बिना नहीं रहता। इस समय अपने किये कर्मों से बना हुआ अदृष्ट (भाग्य) छाया की तरह उसके साथ रहता है। उसी से जीव सुख-दुःखमय फल भोगने का अधिकारी होता है। ज्ञानी पुरुषों ने कहा है कि काल के अधीन जीव अपने शुभाशुभ करने से उत्पन्न सुख या दुःख को टाल नहीं सकता। हे युधिष्ठिर,
८० अज्ञानी पुरुषों की जो गति होती है सो मैं कह चुका; अब ज्ञानियों की श्रेष्ठ गति का हाल सुनो।

ज्ञानी पुरुष प्रायः दूसरे जन्म में तप और स्वाध्याय में तत्पर, सच्चरित्र, सत्यपरायण, गुरुसेवक, सुशील, योगाभ्यासी, तेजस्वी, क्षमाशील, जितेन्द्रिय और श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होते हैं। वे जितेन्द्रिय होने के कारण स्वाधीन, पवित्र रहने के कारण नीरोग और दुःख-भय न रहने के कारण उपद्रव से बचे रहते हैं। वे अपनी और दूसरों की उन सब बातों को ज्ञान-दृष्टि से जानते हैं, जो हो चुकी हैं, जो हो रही हैं और जो होनेवाली हैं। वे प्रत्यक्षदर्शी महात्मा ही ऋषि कहाते हैं। वे इस कर्मभूमि में आकर फिर स्वर्गलोक को चले जाते हैं। राजन्, मनुष्य कुछ फल दैववश, कुछ फल अचानक और कुछ अपने कर्मों के कारण पाते हैं। इसलिए इस बारे में तुम और तरह का कुछ विचार मत करो।

हे युधिष्ठिर, मैं इस विषय का एक उदाहरण सुनाता हूँ। मनुष्य जिसे परम श्रेय (भलाई) समझते हैं वह किसी को इस लोक में मिलता है, परलोक में नहीं मिलता; किसी को परलोक में मिलता है, यहाँ नहीं मिलता; किसी को इस लोक और परलोक दोनों में मिलता है; और किसी को इस लोक या परलोक, किसी लोक में नहीं मिलता। जो लोग बड़े ऐश्वर्य-वान् होकर, उत्तम वेश-भूषा—ठाट-बाट—से रहकर मौज किया करते हैं, वे इस लोक में सुख भोगते हैं; किन्तु परलोक में उन्हें सुख नहीं मिलता। जो लोग तप और स्वाध्याय में लगे रहते हैं, इन्द्रियों को वश में रखते हैं, प्राणियों की हिंसा नहीं करते, मन मारकर या तप के कष्ट सह-
९० कर देह को जीर्ण करते हैं, वे इस लोक में नहीं, परलोक में सुख भोगते हैं। जो लोग पहले ब्रह्मचर्य, वेदपाठ आदि से धर्म उपार्जन करते हैं, फिर धर्म की राह से धन का उपार्जन और यथा-समय ब्याह करके गृहस्थाश्रम में आते हैं तथा यज्ञ आदि करके देवताओं की आराधना करते हैं

वे इस लोक और परलोक, दोनों में सुख भोगते हैं। जो मूढ़ पुरुष विद्याभ्यास, तप, दान आदि भी नहीं करते और पुत्र उत्पन्न करने का यत्न या सुखभोग की इच्छा भी नहीं करते, उनके लोक परलोक, दोनों मिट जाते हैं। हे युधिष्ठिर! तुम लोग बड़े बली, पराक्रमी, तेजस्वी, सुदृढ़ शरीरवाले, शूर और सब विद्याओं में विशारद हो; तपस्वी, जितेन्द्रिय और सदाचारी सच्चरित्र भी हो। तुमने सब श्रेष्ठ और बड़े-बड़े यज्ञ आदि कार्य करके पितरों, देवताओं और ऋषियों को सन्तुष्ट कर दिया है। तुम अपने कर्मों के फल से स्वर्ग पाओगे, जहाँ पुण्यात्मा महापुरुष रहते हैं। हे कौरवेन्द्र, तुम वर्त्तमान क्लेश को देखकर छड़को मत। देवताओं का काम सँभालने के लिए तुम लोग पृथ्वी पर आये हो। यह दुःख तुम्हें आगे मिलनेवाले सुख का कारण है। ९५

एक सौ चौरासी अध्याय

अरिष्टनेमा और हैहयवंशी राजाओं के संवाद का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्! महर्षि मार्कण्डेय से युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने कहा कि हे ऋषिवर, आप हमें श्रेष्ठ ब्राह्मणों का माहात्म्य सुनाइए। सब शास्त्रों के ज्ञाता, महातेजस्वी, मार्कण्डेय मुनि कहने लगे—राजन्, हैहयवंश में एक परपुरञ्जय नाम के बड़े रूपवान् राजकुमार थे। एक समय वे शिकार खेलने के लिए वृक्ष-लता और घास से भरे एक वन में गये। काले मृग की खाल ओढ़े हुए एक मुनि को कृष्णसार मृग के धोखे मे उक्त राजकुमार ने बाण चलाकर मार डाला। पास जाने से जब उन्हें ब्रह्महत्या का हाल मालूम पड़ा तब बहुत ही शोक से व्यथित और दुःखित होकर वे हैहयवंश के राजाओं के पास गये। वहाँ उन्होंने सब हाल कह सुनाया। मुनिवर की मृत्यु

का वृत्तान्त सुनकर हैहयवंश के राजा वन में गये और वहाँ उनकी लाश पाकर बहुत ही दुःखित हुए। तब वे पता लगाने के लिए चारों ओर फिरने लगे कि मृत महापुरुष किसके पुत्र हैं।

खोजते-खोजते वे काश्यप के पुत्र अरिष्टनेमा के आश्रम में पहुँचे। उन महात्मा मुनि को प्रणाम करके वे सामने खड़े हो गये। महर्षि ने उनका आदर-सत्कार किया। तब उन्होंने कहा—मुनिवर, हम ब्रह्महत्या कर चुके हैं इसलिए आपसे सत्कार पाने के योग्य नहीं हैं।

अरिष्टनेमा ने कहा—आपने किस तरह ब्रह्महत्या कर डाली? वह मृत ब्राह्मण कहाँ है? मैं इसी समय आप लोगों को अपना तपोबल दिखाता हूँ। उन राजाओं ने ब्रह्महत्या का वृत्तान्त आदि से अन्त तक कह सुनाया; फिर वे उन्हें उस जगह ले गये जहाँ ब्राह्मण की लाश छोड़ आये थे; परन्तु उस स्थान पर उन्हें वह लाश नहीं देख पड़ी। उन्हें यह सब सपना सा जान पड़ने लगा। वे अपनी असावधानी के लिए लज्जित और अचेत से हो गये। तब महर्षि ने उनसे कहा—हे राजाओ! देखो, यह वही ब्राह्मण है जिसे तुमने मार डाला था।

यह तपस्वी मेरा ही पुत्र है। जब मुनि ने उस मृत ब्राह्मण को जीवित अवस्था में दिखा दिया तब वे राजा "कैसा आश्चर्य है!" कहकर बड़े अचम्भे में पड़ गये। उन्होंने अरिष्टनेमा से कहा—भगवन्, ये मृत महर्षि कैसे फिर जीकर यहाँ आ गये? ये क्या तप के प्रभाव से फिर जी उठे? हे विप्र, हम इन प्रश्नों का उत्तर सुनना चाहते हैं। यदि हमारे सुनने योग्य बात हो तो कृपा करके कहिए।

अरिष्टनेमा ने कहा—राजन्, मृत्यु हम तपस्वियों के आगे अपना प्रभाव नहीं प्रकट कर सकती। आपसे संक्षेप में हम इसका कारण कहते हैं। हम ब्राह्मण केवल सत्य के ही वशवर्त्ती हैं; हमारा मन कभी मिथ्या की ओर नहीं जाता। हम सदा अपने धर्म के अनुकूल आचरण किया करते हैं, इसी कारण हमें मृत्यु का डर नहीं है। हम ब्राह्मणों की भली बातें ही प्रकट करते हैं, उनके बुरे कामों को हम प्रकट नहीं करते, इसलिए हमें मौत का डर नहीं है। हम लोग पहले खाने-पीने की सामग्री से अतिथियों का सत्कार करते हैं, फिर जिनके भरण-पोषण का भार हमारे सिर पर है उन्हें तृप्त और सन्तुष्ट करके अन्त में स्वयं भोजन करते हैं; इसी से हमें मृत्यु का डर नहीं है। हम शान्त, जितेन्द्रिय और

क्षमाशील हैं; हम तीर्थयात्रा और दान करते हैं तथा पवित्र देश में रहते हैं; इसलिए हमें मृत्यु का डर नहीं है। हम तेजस्वी पुरुषों के पास रहते हैं, इस कारण हमें मृत्यु का खटका नहीं है। यह अपने मृत्यु-भयहीन होने का कारण हमने संक्षेप में कह दिया। अब आप लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने घर को जाइए; ब्रह्महत्या के पाप का डर न कीजिए। मुनि की आज्ञा मानकर राजा लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थान को चले गये। २३

एक सौ पचासी अध्याय

अत्रि ऋषि का उपाख्यान

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन् ! ब्राह्मणों की और भी महिमा सुनाता हूँ, सुनो। हमने सुना है कि एक समय वेन के पुत्र राजर्षि पृथु ने अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली। अत्रि ऋषि ने धन माँगने की इच्छा से उनके पास जाने का विचार किया; किन्तु उन्होंने ब्राह्मण के धर्म—सन्तोष—की रक्षा करने के विचार से उस विचार को छोड़ दिया। अन्त को विशेष रूप से विचार करके उन्होंने वन जाने का ही निश्चय किया। तब अपनी धर्मपत्नी और पुत्रों को बुलाकर कहा—चलो, हम सब चलकर वन में रहें। वहाँ हमें अत्यन्त श्रेष्ठ, बाधाहीन फल (तप) प्राप्त होगा। इसलिए तुम वन में चलना पसन्द कर लो। उनकी स्त्री ने धर्म पर ध्यान देकर कहा—आप महानुभाव राजा पृथु के पास जाकर उनसे बहुत सा धन माँगिए। वे राजर्षि यज्ञ कर रहे हैं; अवश्य ही आपको बहुत सी

सम्पत्ति देंगे। वहाँ से धन लाकर, पुत्रों को और जिनके भरण-पोषण का भार आपके सिर पर है उनको बाँटकर आप चाहे जहाँ जाइए। यह आपका कर्त्तव्य है। धार्मिक पुरुषों ने यही धर्म बताया है।

अत्रि ने अपनी पत्नी से कहा—हे सुन्दरी, महात्मा गौतम से मुझे मालूम हुआ है कि राजा पृथु धर्मार्थ-परायण और सत्यव्रत हैं; किन्तु उनकी सभा में कुछ ऐसे ब्राह्मण भी हैं जो मुझसे शत्रुता रखते हैं। गौतम की इस बात के कारण वहाँ जाने को मेरा जी नहीं चाहता। वहाँ मेरे विद्वेषी ब्राह्मण मेरे कहे धर्मार्थयुक्त वचनों को निरर्थक बतावेंगे, कुछ का कुछ कहेंगे; परन्तु तुम्हारे कहने से अब मैं अवश्य उनके यहाँ जाऊँगा। राजा पृथु प्रसन्न होकर मुझे गायें और बहुत सा धन अवश्य देंगे।

महात्मा अत्रि शीघ्र ही पृथु की सभा में पहुँचे। उचित सत्कार करके मङ्गलमय वचनों से वे राजा की स्तुति करने लगे—हे पृथु! आप धन्य, ईश्वर (समर्थ) और पृथ्वी के सबसे पहले राजा हैं। मुनि लोग भी इसी से आपकी स्तुति, अर्थात् आपके गुणों का बखान, करते हैं। आपसे बढ़कर धर्मज्ञ कोई नहीं है। इस प्रकार अत्रि के स्तुति करने पर महर्षि गौतम ने क्रोधित होकर उनसे कहा—हे अत्रि, तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं जान पड़ती। अब ऐसे वचन कभी मत कहना। महेन्द्र और प्रजापति चन्द्र हमारे प्रथम राजा तथा पालन करनेवाले हैं।

तब अत्रि ने कहा—हे गौतम! महाराज पृथु विधाता, इन्द्र और प्रजापति सब कुछ हैं। गौतम, तुम प्रज्ञाहीन और मोहवश होने के कारण ऐसी बात कह रहे हो। गौतम ने कहा—मैं भली भाँति जानता हूँ कि मुझे मोह ने नहीं दबा रक्खा है; मोह में तो तुम्हीं स्वार्थवश पड़े हुए हो। राजा से भेंट करने को मोहवश सभा के बीच ऐसी ख़ुशामद कर रहे हो। न तो तुम श्रेष्ठ धर्म को जानते हो, और न तुम्हें उससे कुछ प्रयोजन ही है। अवस्था में वृद्ध होने पर भी तुम मूढ़ हो, तुम्हारी बुद्धि बालकों की सी है।

मार्कण्डेय कहते हैं कि दोनों मुनियों को इस प्रकार परस्पर लड़ते-झगड़ते देखकर राजा के यज्ञ में दीक्षा लिये हुए अन्य महर्षियों ने कहा - ये यहाँ क्यों आये हैं? राजा पृथु की यज्ञ-सभा में इन्हें भीतर किसने आने दिया? ये यहाँ इस तरह क्यों चिल्ला रहे हैं? तब सब धर्मों के ज्ञाता महर्षि काश्यप ने दोनों मुनियों के पास जाकर उनके उस झगड़े का कारण पूछा।

महर्षि गौतम ने सब सदस्यों से कहा—हे मुनिवरो, हमारे झगड़े (बातचीत) का कारण सुनो। ये अत्रि राजा पृथु को विधाता कहते हैं, पर मैं नहीं मानता; मुझे इसके ठीक होने में सन्देह है।

गौतम के ये वचन सुनकर सब मुनि इस सन्देह को दूर करने के लिए महात्मा सनत्कुमार के पास गये। उक्त महात्मा उनके मुँह से सब हाल सुनकर इस प्रकार धर्मसङ्गत वचन कहने लगे—जैसे आग को हवा की सहायता मिलने से बड़ा भारी वन भस्म हो जाता है वैसे ही ब्रह्मतेज के साथ क्षत्रिय का तेज मिलने से वह सब शत्रुओं का नाश कर सकता है। राजा धर्म को स्थापित करनेवाला, नीतिमार्ग को दिखानेवाला और प्रजा का प्रतिपालक होता है। इसी कारण राजा शक्र, बृहस्पति और विधाता का रूप है क्योंकि वह रक्षक, नीतिज्ञ, पिता के तुल्य और हित का उपदेश करनेवाला है। प्रजापति, सम्राट्, विराट्, क्षत्रिय, भूपति आदि शब्दों से जिसकी स्तुति की जाती है, उसकी पूजा कौन नहीं करेगा? राजा धर्म और स्वर्ग की राह दिखाता है। वह लोक-रक्षा का प्रधान कारण है। वह संग्राम में विजय पाता है, सत्य का प्रचार करता है, और ईश्वर तथा विष्णु का रूप है। वह स्वयं निर्भय होकर सबकी रक्षा करता है। पहले अधर्म के भय से डरे हुए महर्षियों ने क्षत्रियों को बहुत बलवान् बनाया है। सूर्य जैसे अपनी किरणें
फैलाकर स्वर्ग में देवताओं के अँधेरे को दूर करते हैं, वैसे ही राजा पृथ्वीमण्डल के सब लोगों के
अधर्म को मिटाता रहता है। इस कारण शास्त्र का प्रमाण देखने से राजा की ही प्रधानता ३०
माननी पड़ती है। जिन मुनि ने राजा को श्रेष्ठ और प्रधान कहा है उन्हीं का कहना ठीक है।

मार्कण्डेय कहते हैं कि तब महात्मा पृथु ने इस सिद्धान्त को सुनकर, सन्तुष्ट होकर, स्तुति करनेवाले अत्रि से कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! आपने मुझे देवता-सदृश और मनुष्यों में श्रेष्ठ कहा है, इस कारण मैं आपको बहुत सा धन, कपड़े, गहने, हज़ार दासियाँ, दस करोड़ सुवर्णमुद्रा और चाँदी के ढेर देता हूँ, लीजिए। हे ब्रह्मर्षिश्रेष्ठ, आप सब कुछ जानते हैं। आप मुझे मान्य हैं।

इस प्रकार राजा से सत्कार और सम्पत्ति पाकर, धन और गोधन लेकर, महर्षि अत्रि
प्रसन्नतापूर्वक अपने घर आये। उन्होंने वह सम्पत्ति पुत्रों को बाँट दी और फिर आप तप करने
के लिए वन को चले गये। ३७

एक सौ छियासी अध्याय

सरस्वती और तार्क्ष्य का संवाद

मार्कण्डेय ने कहा कि हे युधिष्ठिर, तार्क्ष्य अर्थात् काश्यप ऋषि के यही प्रश्न करने पर सरस्वती ने जो उत्तर दिया है सो सुनो। एक समय तार्क्ष्य ने सरस्वती से पूछा—भद्रे, इस लोक में मनुष्य का श्रेय (ध्येय) क्या है? कैसा आचरण करने से मनुष्य धर्म-भ्रष्ट नहीं होता? मैं किस समय, किस प्रकार अग्निहोत्र और देवपूजा करूँ? क्या करने से धर्म का

नाश अर्थात् अधर्म नहीं होता ? हे सुभगे, यह सब कहो। वह उपदेश करो जिससे मैं रजोगुण के प्रभाव से बचकर पवित्र लोकों में जाऊँ। मार्कण्डेय कहते हैं कि हे युधिष्ठिर, उत्तम बुद्धिवाले प्रसन्नचित्त ब्रह्मर्षि के यों प्रश्न करने पर सरस्वती ने कहा—जो कोई पवित्र, सावधान, स्वाध्याययुक्त होकर गुरु के उपदेशानुसार परब्रह्म को जानता है, वही देवलोक को जाता है और वहाँ देवताओं के साथ रहकर प्रसन्न होता है'। देवलोक में बहुत चौड़े, रमणीय, पवित्र, फूले हुए कमलों से शोभित सरोवर हैं। मछलियाँ और सोने के सहस्रदल कमल उन सरोवरों में हैं। उनमें कीचड़ नाम लेने को भी नहीं है। पुण्यात्मा महापुरुष उनके किनारे पवित्र सुगन्ध, अलङ्कार और सुनहरे रङ्ग से शोभित अप्सराओं के साथ बैठते और विहार करते हैं। गोदान करनेवाले पुरुषों को उत्तम लोक मिलते हैं। वृषभ-दान करनेवाले सूर्य-लोक को जाते हैं। कपड़े का दान करनेवाले चन्द्रलोक में आनन्द भोगते हैं और सुवर्णदान करने से देवयोनि मिलती है। सीधी, दुधार, अच्छे रङ्ग की, बच्चेवाली गाय देनेवाला मनुष्य उतने ही असंख्य वर्षों तक देव-लोक में रहता है, जितने रोएँ उस गाय के शरीर में होते हैं। जवान, हल चलाने में समर्थ,
१० बली, धुरा (जुआ) धारण करनेवाला एक बैल देने से दस गाय देने का फल होता है। जो कोई धन, दक्षिणा, कपड़ा और काँसे की दोहनी के साथ कपिला गऊ दान करता है वह जब स्वर्ग में जाता है तब पूर्वोक्त गुणोंवाली गाय, कामधेनु के रूप से, उसके पास आ जाती है। उस पुरुष के पुत्र, पोते, सारा कुल और पहले की सात पीढ़ियाँ गोदान के पुण्य से तर जाती हैं। उस गाय के जितने रोएँ होते हैं उतना अनन्त फल (पुण्य) मनुष्य को मिलता है। ऐसे ही जो पुरुष दक्षिणा, काँसे की दोहनी, द्रव्य, कपड़ा आदि सामग्री के साथ सोने के सींगों सहित तिल की धेनु देते हैं उन्हें वसुलोक की गति सुलभ होती है। काम, क्रोध आदि असुरों के अधीन होकर जो मनुष्य बुरे काम करता है और मरकर उन्हीं बुरे कामों के कारण अन्धकार-मय घोर नरक में गिरने लगता है उसे परलोक में गाय वैसे ही उबार लेती है जैसे समुद्र में डूबते हुए मनुष्य को जहाज़ उबार लेता है। जो ब्राह्म-विधि से कन्यादान करता है, ब्राह्मण को विधिपूर्वक भूमिदान और अन्य दान करता है उसे इन्द्रलोक मिलता है। हे तार्क्ष्य, जो कोई सदाचारी सज्जन सात वर्ष तक नियम से अग्निहोत्र करता है वह अपने पुण्य के बल से सात पहले की और सात पीछे की पीढ़ियों को तार देता है।

तार्क्ष्य ने कहा—भगवती, वेदोक्त अग्निहोत्र व्रत की विधि क्या है ? कृपा करके कहिए। आपके उपदेश से अग्निहोत्र के सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त कर मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।

सरस्वती ने कहा—हे तार्क्ष्य ! अशुद्ध, हाथ न धोये हुए, ब्रह्मविद्या से अनभिज्ञ, अविद्वान् व्यक्ति को अग्निहोत्र का अधिकार नहीं है; क्योंकि अन्तर्यामी देवता शुद्धि चाहते हैं; वे श्रद्धा-हीन अशुद्ध पुरुष के दिये हुए हव्य को ग्रहण नहीं करते। जो श्रोत्रिय अर्थात् वेदपाठी नहीं है,

तार्क्ष्य-सरस्वती-संवाद ।—पृ० १०७६

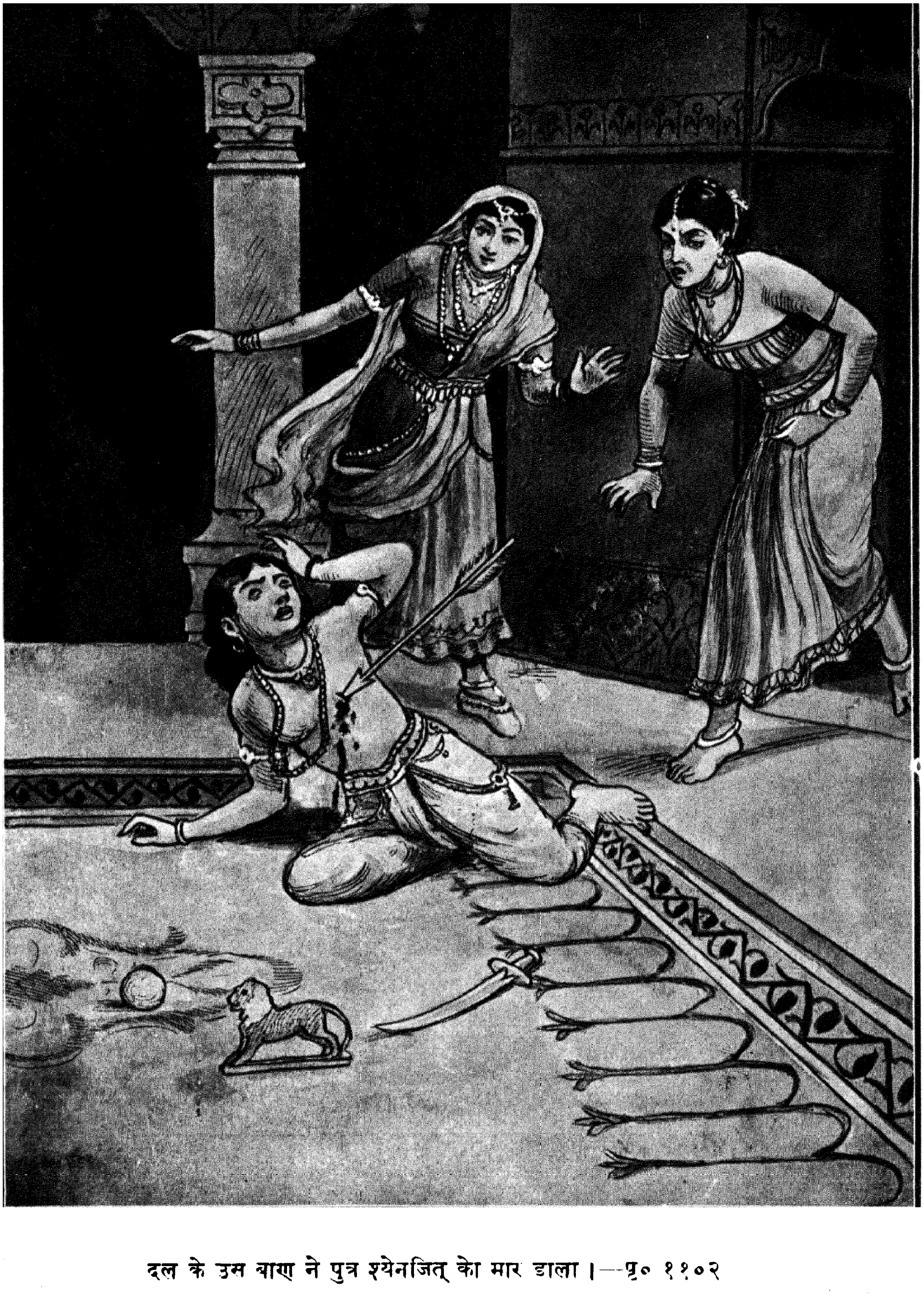

दल के उस बाण ने पुत्र श्येनजित् को मार डाला।—पृ० ११०२

उसे देवहव्य के कार्य में नियुक्त न करना चाहिए। उसका किया हुआ हवन व्यर्थ होता है। अश्रोत्रिय ब्राह्मण अधूरा माना गया है; इसी से उसको अग्निहोत्र का अधिकार नहीं है। जो लोग श्रद्धापूर्वक, सत्य-व्रत धारण करके, अग्निहोत्र करते हैं और उससे बची हुई सामग्री से अपना निर्वाह करते हैं वे सत्यस्वरूप परम देव विष्णु के दर्शन पाते हैं और गोलोक को जाते हैं। २८

तार्क्ष्य ने फिर पूछा—हे देवि, आप परलोक के भावों को क्षेत्रज्ञ आत्मा की तरह जानती हैं और बुद्धि के समान कर्मकाण्ड के मर्म को भली भाँति जानती हैं। हे सुभगे, मेरे विचार से आप प्रज्ञा हैं। अब मैं आपसे पूछता हूँ कि आप कौन और क्या हैं।

सरस्वती ने कहा—ब्रह्मर्षियों के सन्देह दूर करने के लिए मैं अग्निहोत्र से आई हूँ। तुमको मैंने यह यथार्थ बात बता दी।

तार्क्ष्य ने कहा—हे देवि, आपके समान कोई नहीं है। आप साक्षात् लक्ष्मी के समान दिव्य शोभावाली हैं। आपका रूप दिव्य और कान्ति अनन्त है। हे सुभगे, आप ही प्रज्ञा देवी को धारण करती हैं। सरस्वती ने कहा—हे द्विजेन्द्र! ऋत्विक् लोग यज्ञ में जिन लकड़ी, लोहे और मिट्टी के पात्रों का उपयोग करते हैं और जिन श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादन करते हैं, उन्हीं से रूपवती होकर मैं बढ़ती हूँ। हे विद्वन्, मेरे उस दिव्य रूप और प्रज्ञा से ही सिद्धि मिलती है।

तार्क्ष्य ने कहा—श्रद्धालु मुनि लोग जिस मोक्ष को सबसे बढ़कर मानते और जिसकी प्राप्ति के लिए इन्द्रिय-दमन आदि कठोर व्रत करते हैं, उस शोक-रहित मोक्ष का स्वरूप मुझे बताइए। सांख्ययोगशास्त्र के ज्ञाता जिसे पुरातन और श्रेष्ठ समझते हैं उस परमात्मा को भी मैं अच्छी तरह नहीं जानता। इसलिए इस विषय को भी बताइए। इस प्रश्न के उत्तर में सरस्वती ने कहा—हे तार्क्ष्य! स्वाध्यायनिरत वेदार्थ के ज्ञाता लोग शोक और विषयवासना छोड़कर व्रत, पुण्य कर्म और योगाभ्यास के द्वारा जिस पुरातन परम पुरुष को प्राप्त करते हैं वही परब्रह्म है। उस परम पुरुष के भीतर सहस्र-शाखाशोभित, पुण्य गन्धवाली, विशाल वेतसलता है।[1] उसके मूल से मधुर पानी के बहाववाली पवित्र नदियाँ बहती हैं।[2] उसकी हर एक शाखा में सिकताशययुक्त, धानापूपविशिष्ट, मांसशाकवती, पायसकर्दमपरिपूर्ण महानदियाँ जाती हैं।[3] जहाँ अग्नि, इन्द्र, मरुद्गण आदि देवताओं ने श्रेष्ठ यज्ञ किये हैं वही परम पद है। हे तार्क्ष्य, मेरी स्थिति का स्थान भी वही है। मैं विद्यारूपिणी सरस्वती हूँ। ३०

(१) शाखा = भोगस्थान। पुण्य गन्ध = शब्द आदि विषय। वेतसलता = ब्रह्माण्ड।

(२) मूल = अविद्या। मधुर पानी के बहाव = तृप्तिजनक भोग। नदियाँ = भोग-वासनाएँ।

(३) सिकताशय = बालू के कणों की तरह परस्पर विच्छिन्न। धाना = भुने जव, जिनमें अंकुर उत्पन्न करने की शक्ति नहीं रहती। अपूप = बहुत से छेदोंवाला खाने का पदार्थ, पुआ। मांस = हिंसा से प्राप्त। शाक = निःसार। पायस = पहले देखने में सुन्दर पर अन्त में गरिष्ठ। कर्दम = कलुषमयी। महानदी = पुत्र-धन आदि की इच्छा।

एक सौ सत्तासी अध्याय

वैवस्वत मनु और मत्स्यावतार का उपाख्यान

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, इसके बाद राजा युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय से कहा—ब्रह्मन्, अब आप वैवस्वत मनु का चरित्र कहिए। मार्कण्डेय ने कहा—महाराज ! विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र, मनु के नाम से प्रसिद्ध, एक बड़े ही प्रतापी महर्षि थे। वे प्रजापति के समान तेजस्वी थे। बल, तेज, कान्ति, दीप्ति और तप में वे अपने पिता सूर्य और पितामह कश्यप से भी बढ़कर थे। उन्होंने बदरिकाश्रम में दस हज़ार वर्ष तक ऊर्द्ध्वबाहु होकर एक पैर से खड़े रहकर घोर तप किया। इस दशा में वे नीचे सिर किये रहते और आँखों की पलकें न गिरने देते थे।

वे एक दिन चीरिणी नदी में नहा करके तप कर रहे थे। उनके कपड़े और सिर की जटाएँ गीली थीं। इसी समय एक छोटी सी मछली ने आकर उनसे कहा—भगवन्, बड़े और बली मच्छ दुर्बल, छोटी मछलियों को खा जाते हैं। यही पुराना नियम है। मैं दुर्बल छोटी मछली हूँ, बड़े मच्छों से मुझे डर लगता है। उनके भय से आप मेरी रक्षा कीजिए। मैं भय के महासागर में डूब रही हूँ; आप कृपा करके मुझे उससे उबार लीजिए। आप मेरा यह उपकार करेंगे तो मैं भी बदले में आपका उपकार करूँगी।

१०

महात्मा वैवस्वत मनु को मछली के वचन सुनकर उस पर दया आ गई। उन्होंने अपने हाथ में उसे ले लिया। उस मछली को निकालकर उन्होंने चन्द्रमा के समान सफ़ेद रङ्गवाले अलिञ्जर (मिट्टी के घड़े) में डाल दिया। वह मछली मनु की देख-रेख में रहकर उस बर्तन में बढ़ने लगी। मनु उस पर अपने पुत्र का सा स्नेह रखने लगे। कुछ समय के बाद वह मछली इतनी बढ़ी कि उस छोटे बर्तन में उसका रहना कठिन हो गया। तब उसने फिर मनु से कहा—भगवन्, मेरे लिए और कोई जगह ठीक कीजिए। मनु ने उस जीव को अलिञ्जर से निकालकर दो योजन लम्बे और एक योजन चौड़े एक जलाशय

(बावली) में रख दिया। वह मछली बहुत वर्षों तक उस जलाशय में बढ़ती रही। फिर वह बढ़-
कर एक बड़ा भारी मच्छ हो गई और उस जलाशय में भी समा न सकी। एक दिन फिर उस
मच्छ ने मनु से कहा—भगवन्, मुझे इसमें बड़ा कष्ट है। मुझे हिलने-डुलने के लिए भी इसमें
जगह नहीं। इस कारण समुद्र की पत्नी गङ्गा में ले जाकर मुझे छोड़ दीजिए अथवा आप जो
उचित समझिए सो कीजिए। मैं कुछ भी बुरा न मानकर आपकी आज्ञा का पालन करता रहूँगा;
क्योंकि आपकी ही कृपा से मैं इतना बड़ा हुआ हूँ। मच्छ के ये वचन सुनकर मनु उसे गङ्गाजी २०
में डाल आये। हे शत्रुदमन, कुछ दिन गङ्गा में रहकर फिर वह मच्छ इतना बढ़ गया कि वहाँ
रहना भी असम्भव हो गया। मनु जब उसे देखने गये तब उस मच्छ ने उनसे कहा—प्रभो,
मेरा शरीर इतना बढ़ गया है कि मैं गङ्गा में स्वच्छन्दता के साथ चल-फिर नहीं सकता। मुझ
पर प्रसन्न हूजिए और मुझे समुद्र में ले चलिए। मनु उसे गङ्गा से निकालकर पूर्वसमुद्र में ले
गये। इतना बड़ा होने पर भी मनु के उठाने पर वह मच्छ ऐसा हलका हो जाता था कि वे उसे
मज़े में उठा ले जाते थे; इसके सिवा उसकी गन्ध और स्पर्श भी सुखदायक था।

मनु ने उसे ज्योंही समुद्र के भीतर छोड़ा त्योंही उसने मुसकाकर कहा—भगवन्, आपने
सब तरह कृपा करके मेरी रक्षा की है। समय आने पर मैं जो आपका उपकार करूँगा सो
मुझसे सुनिए। हे महाभाग, यह पृथ्वी और चराचर जगत् शीघ्र ही, प्रलय होने से, नष्ट
हो जायगा। यह समय सब पदार्थों के नाश का आ गया है। इसी लिए मैं आपको हित
की बात बता रहा हूँ। आप एक दृढ़ नाव बनवा लीजिए और उसमें मज़बूत रस्सी भी रख
लीजिए। प्रलय के समय सप्तऋषियों के साथ आप उस नाव पर सवार हो जाइएगा। पहले ३०
आपको जिस तरह द्विजों ने बताया है उसी तरह पृथ्वी भर के सब विभाग के बीजों को रख
लीजिएगा और उनकी सब तरह रक्षा कीजिएगा। हे ऋषिश्रेष्ठ, उसी नाव पर बैठकर आप मेरे
आने की राह देखना। मैं उस समय आपकी सहायता करने आऊँगा। मेरे मस्तक पर एक
सींग होगा। यही मेरी पहचान रहेगी। जो मैंने कहा है, उसे उसी तरह कीजिएगा। अब मैं
जाता हूँ। याद रहे, मेरी सहायता के बिना आप इस घोर आपत्ति से बच नहीं सकते। हे तापस,
आप मेरे इन वचनों में तनिक भी सन्देह न कीजिएगा। वैवस्वत मनु ने कहा—अच्छा, मैं वही
करूँगा। मीन और मनु दोनों परस्पर इस तरह कहकर इच्छा के अनुसार चल दिये।

महाराज! अब प्रलयकाल उपस्थित होने पर, मच्छ के कहने के अनुसार, सब बीज उस
नाव पर रखकर मनुजी उस भयानक महासमुद्र में उसी मच्छ के आने की राह देखने लगे।
समुद्र में पहाड़ की सी बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थीं। राजन्, मनु को अपने आगमन के लिए
चिन्तित और उत्कण्ठित जानकर वह मच्छ उसी समय उनके पास आ गया। समुद्र के जल में
सींगवाले उस पर्वताकार मच्छ को देखकर मनु प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी रस्सी से मच्छ के सींग

४० में वह नाव बाँध दी। वह मच्छ अपने सींग में बँधी हुई नाव को खींचता हुआ बड़े वेग से उस खारी समुद्र में चलने लगा। समुद्र का दृश्य बड़ा ही भयानक था। लहरों के देखने से जान पड़ता था मानों वह नाच रहा है; लहरों का शब्द सुनकर जान पड़ता था मानों वह डाँट बताता हुआ गरज रहा है। आँधी के झोकों और लहरों की टक्करों से वह नाव मदोन्मत्त चञ्चल स्त्री की तरह लटपटाने और घूमने लगी। उस समय पृथ्वी, दिशा, उपदिशा, आकाश आदि कुछ भी नहीं देख पड़ता था; सब तरफ़ जल ही जल था। उस जलमय दृश्य में केवल मनु, सप्तर्षिगण, नाव और मच्छ, यही देख पड़ रहे थे।

वह मच्छ लगातार बहुत वर्षों तक उस जल के भीतर नाव को खींचता फिरता रहा। आलस्य या थकन का नाम भी न था। कुछ दिन बाद पर्वतराज हिमालय की सबसे ऊँची चोटी देख पड़ी। वह विचित्र मच्छ नाव को उसी ओर खींच ले गया। फिर उसने मुसकाकर नाव पर बैठे हुए मनु और ऋषियों से कहा—आप लोग झटपट नाव को इस पर्वत के शिखर में बाँध दें। हे युधिष्ठिर, उस मच्छ के कहने से उन्होंने उसी बरेत (रस्सी) से हिमालय की
५० चोटी में नाव बाँध दी। ऋषियों ने हिमालय के जिस शिखर से नाव बाँधी थी, वह अब तक 'नौबन्धन' के नाम से प्रसिद्ध है।

इसके बाद उस अद्भुत मच्छ ने कहा—मैं प्रजापति ब्रह्मा हूँ। तुम्हें इस डर से बचाने के लिए ही मैंने यह मत्स्यरूप धारण किया है। मैं ही इस ब्रह्माण्ड में सबसे श्रेष्ठ हूँ; मेरे सिवा और कोई नहीं। हे मनु! तुम देवता, मनुष्य, असुर आदि सब चराचर जीवों की सृष्टि करो। तीव्र तप के बल से तुम्हें सृष्टि-रचना की प्रतिभा प्राप्त होगी। मेरी कृपा से सृष्टि-रचना में तुमको न तो मोह होगा और न तुमसे भूल होगी; तुम यथार्थ रूप से सृष्टि-रचना कर सकोगे। इतना कहकर मत्स्यरूपधारी भगवान् ब्रह्मा अदृश्य हो गये।

महाराज, तब वैवस्वत मनु ने प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा की; परन्तु वे यह निश्चय न कर सके कि उसे किस ढङ्ग से किस रूप में करें। बुद्धि के मोहित होने पर मनस्वी मनु ने

अत्यन्त घोर तप किया। हे भरतश्रेष्ठ! उसमें सिद्धि पाकर, तपोबलयुक्त होकर, मनु ने ठीक
तौर से सृष्टि का आरम्भ किया। राजन्, सब पापों को दूर करनेवाली यह कथा मैंने तुमको
सुना दी। यह उपाख्यान मत्स्यपुराण के नाम से प्रसिद्ध है। जो कोई इस मनु के चरित्र को
नित्य आदि से अन्त तक सुनता है, उसके सब मनोरथ पूरे होते हैं; वह सुखी होकर सब लोकों
में जाने की शक्ति पाता है। ५८

एक सौ अट्ठासी अध्याय

सत्ययुग आदि चारों युगों के धर्म का वर्णन। प्रलय का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, युधिष्ठिर ने यशस्वी मार्कण्डेय से विनयपूर्वक
कहा—हे मुनिवर, आप हज़ारों युगों का अन्त देख चुके हैं। महात्मा ब्रह्मा के सिवा और
कोई प्राणी इस जगत् में आपकी इतनी आयु का नहीं देख पड़ता। प्रलयकाल में, जब इस
लोक में और अन्तरिक्ष में कोई देवता, मनुष्य या दानव आदि प्राणी नहीं रह जाते तब आप
ही प्रजापति ब्रह्मा की आराधना करते हैं। प्रलय समाप्त होने पर, पितामह जागकर जब दिशाओं
को वायुरूप बनाकर और समुद्र के जल को यथास्थान हटाकर—जरायुज (मनुष्य), अण्डज
(पक्षी), स्वेदज (जूँ-लीख आदि) और उद्भिज (वृक्ष)—चार प्रकार के प्राणियों की सृष्टि
करते हैं, तब आप उस सृष्टि-रचना को देखते हैं। हे द्विजवर, आपने समाधि लगाकर लोकगुरु
ब्रह्मा की आराधना की है। आप अद्वितीय तप करके मरीचि आदि प्रजापतियों से भी बढ़
गये हैं। आप शेषशायी नारायण के समीपवर्ती भक्त हैं, इसलिए लोग आपकी विशेष बड़ाई
और स्तुति करते हैं। आपने योगबल से हृदयकमल को खोलकर, योग और वैराग्य की आँखों
से, हृदय में स्थित, कामरूपी, विश्व के स्रष्टा, स्वयंभू ब्रह्मा के दर्शन अनेक बार किये हैं। ब्रह्मन्! १०
उन्हीं कमलयोनि ब्रह्मा की कृपा से, शरीर को नष्ट करनेवाला, बुढ़ापा आप पर अपना प्रभाव नहीं
डाल सकता और न काल या मृत्यु ही आपके शरीर को नष्ट कर सकती है। जिस समय सूर्य,
चन्द्र, अग्नि, वायु, स्वर्ग, पृथ्वी, देवता, दानव, नाग आदि सहित सब चराचर जगत् नष्ट हो जाता
है, चारों ओर जल ही जल देख पड़ता है, उस समय एक आप ही पद्म पर सोते हुए सब प्राणियों
के ईश्वर ब्रह्मा की आराधना करते हैं। हे द्विजोत्तम, सृष्टि और प्रलय की सब बातें आपने
प्रत्यक्ष देखी हैं [त्रिभुवन में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे आप न जानते हों] इसी लिए मैं
आपसे यह सब कथा सुनना चाहता हूँ।

मार्कण्डेय ने कहा—राजन्! मैं उन्हीं पुराण-पुरुष, अनादि, अविनाशी, अव्यक्त, अत्यन्त
सूक्ष्म, निर्गुण और गुणमय जगदीश्वर को प्रणाम करके यह सब वृत्तान्त कहता हूँ। ये जो
तुम्हारे पास पीताम्बरधारी कमलनयन जनार्दन कृष्ण बैठे हैं, यही कर्त्ता, विधाता, सब प्राणियों

में व्याप्त और उनका निर्माण करनेवाले हैं। ये अचिन्त्य, महान् आश्चर्य और पवित्र हैं। ये आदि और अन्त से रहित, विश्वरूप, अव्यय और अक्षय हैं। ये सबका कारण हैं, इनका कारण कोई नहीं है। यही सबके पौरुष का कारण हैं। वेद और देवता भी जिन परमपुरुष को नहीं जानते उन्हें, अर्थात् ब्रह्म को, ये जानते हैं।

हे पुरुषसिंह, प्रलयकाल में सबका संहार हो जाता है। फिर सृष्टि का समय आने पर यह आश्चर्यमय सब जगत् उन्हीं आदि-पुरुष से प्रकट होता है। सृष्टि के उपरान्त सत्ययुग का आरम्भ होता है। सत्ययुग का परिमाण चार हज़ार वर्ष का है। सत्ययुग की सन्ध्या और सन्ध्यांश दोनों का परिमाण चार-चार सौ वर्ष का है। त्रेतायुग की आयु तीन हज़ार वर्ष है। उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश भी तीन-तीन सौ वर्ष के हैं। द्वापरयुग का परिमाण दो हज़ार वर्ष का है। उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश भी दो दो सौ वर्ष के हैं। कलियुग की आयु एक हज़ार वर्ष की है। उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश सौ-सौ वर्ष के हैं। ये वर्ष दिव्य अर्थात् देवताओं की आयु के समझने चाहिएँ। [मनुष्य की आयु का एक वर्ष देवताओं की आयु का एक दिन-रात है।] महाराज, कलियुग का क्षय होने पर फिर सत्ययुग आता है। चारों युगों की आयु का परिमाण बारह हज़ार वर्ष है। इस तरह की एक हज़ार चौयुगी बीतने पर ब्रह्मा का एक दिन पूरा होता है। उसे कल्प भी कहते हैं। हरएक कल्प में लोकों का प्रलय हो जाता है।

हे भरतश्रेष्ठ, हज़ार वर्ष की आयुवाले कलियुग का कुछ अंश जब बाक़ी रह जाता है तब सब मनुष्य प्रायः मिथ्यावादी हो जाते हैं। उस समय यज्ञ, दान और व्रत कोई नहीं कर सकता, इसलिए उनके स्थान पर प्रतिनिधि-कर्म प्रचलित हो जाते हैं। उस युगान्त के समय ब्राह्मण लोग शूद्रों के काम करने लगते हैं और शूद्र लोग क्षत्रियों की वृत्ति से अथवा वैश्यों की वृत्ति से धन पैदा करने लगते हैं। कलियुग में ब्राह्मण लोग तप और स्वाध्याय छोड़कर, दण्ड-मृगचर्म आदि को त्यागकर सर्वभक्षी हो जायँगे। ब्राह्मण लोग जप आदि अपने कर्म छोड़ देंगे और शूद्र लोग जप आदि कर्म करने लगेंगे। पृथ्वी पर इस तरह जब विपरीत भाव देख पड़ने लगे तब उसे प्रलय की पूर्व सूचना समझना चाहिए। *राजन्, कलियुग के अन्त समय में आन्ध्र, शक, पुलिन्द, यवन, काम्बोज, बाह्लीक, शूर और आभीर आदि म्लेच्छ जातियों के राजा राज्य करेंगे। वे मिथ्यावादी, पापी होकर अधर्म से राज्य का शासन करेंगे। उस समय कोई भी ब्राह्मण अपने धर्म का पालन नहीं करेगा। क्षत्रिय और वैश्य भी अपने कर्मों को छोड़कर धर्म-विरुद्ध काम करने लगेंगे। मनुष्यों की आयु, बल, वीर्य, पराक्रम, सारांश और शरीर आदि घट जायँगे। वे सत्य बहुत कम बोलेंगे। बस्तियाँ सूनी हो जायँगी। दिशाओं में मृग और साँप आदि हिंसक जीव अधिकता से देख पड़ेंगे। अनुभव न होने के कारण मनुष्य वृथा ब्रह्मवाद का ढोंग रचेंगे। शूद्र लोग ब्राह्मणों को 'तुम' कहेंगे और ब्राह्मण लोग शूद्रों को 'आप' कहेंगे। हे पुरुष-

सिंह, चारों ओर मनुष्यों की कमी और जीव-जन्तुओं की बढ़ती देख पड़ेगी। सुगन्ध की वस्तुओं
में वैसी सुगन्ध नहीं रहेगी। रसीली चीज़ों में रस न रह जायगा। मनुष्यों के बाल-बच्चे बहुत ४०
अधिकता से होंगे। सबके शरीर छोटे हो जायँगे। सुशीलता और सदाचार मिट जायगा।
स्त्रियाँ मुख से भग-कार्य करेंगी। बस्तियों में अन्न का अभाव होगा। चौराहों पर वेश्याओं
और धूर्तों की भीड़ रहा करेगी। स्त्रियाँ निर्लज्ज हो जायँगी। गायों का दूध घट जायगा।
वृक्ष कम फूलें-फलेंगे और उन पर कौए आदि पक्षी अधिकता से बैठे देख पड़ेंगे। ब्राह्मण लोग
लोभ और मोह के वश में हो जायँगे, दिखावे के लिए धर्म के चिह्न धारण करके ढोंग रचेंगे।
ब्रह्महत्या आदि पापों के करनेवाले मिथ्यावादी राजाओं के पास जाकर ब्राह्मण लोग उनसे दान
लेंगे। भिक्षावृत्ति का सहारा लेकर ब्राह्मण लोग गली-गली मारे-मारे फिरेंगे। गृहस्थ लोग राजा
के लगाये कर (टैक्स) के बोझ से दबकर चोरी और बेईमानी पर उतारू हो जायँगे। ब्राह्मण
लोग मुनियों का वेष बनाकर छिपे-छिपे बनिज-बैपार करेंगे। धन के लोभ से झूठे ब्रह्मचारी बने हुए
ब्राह्मण नख और केश बढ़ावेंगे। चारों आश्रमों के लोग आचार का ढोंग रचेंगे। मद्यपान और
गुरुशय्यागमन का पाप बहुत बढ़ जायगा। लोग इस लोक के सुखों में लिप्त रहकर केवल रक्त और
मांस बढ़ाने की चेष्टा करेंगे। चारों आश्रमों के लोग तरह-तरह के पाखण्ड रचेंगे और पराया
अन्न खाकर उसके गुणों का बखान करेंगे। भगवान् इन्द्र वर्षाकाल में ठीक समय पर जल नहीं
बरसावेंगे और बीजों में उपजाऊ शक्ति नहीं रहेगी। धर्म का फल सर्वत्र हीन हो जायगा, ५०
अर्थात् धर्म का फल पूर्णरूप से होता न देख पड़ेगा। लोग अपवित्र और हिंसा पर विशेष रुचि
रखनेवाले देख पड़ेंगे। अधर्म करनेवालों का भला होते देख पड़ेगा।

हे नरेन्द्र, उस समय धार्मिक पुरुष अल्पायु होते देख पड़ेंगे; कोई धर्म न रह जायगा। सौदा बेचनेवाले लोग कम तौलेंगे और बेईमानी करेंगे। धोखेबाज़ी का चलन बहुत बढ़ जायगा। धर्म के बल की हानि और अधर्म के बल की वृद्धि होगी। इसी से धार्मिक लोग दुर्बल, अल्पायु, दरिद्र और हीनदशा से पीड़ित देख पड़ेंगे। अधर्मी पापी लोग दीर्घायु, समृद्धिशाली, प्रबल और बढ़ रहे देख पड़ेंगे। ये लोग व्यवहार में अधर्मयुक्त उपायों का आश्रय लेंगे। लोग थोड़ा ही धन पास होने पर धनाढ्यों की तरह मदान्ध हो उठेंगे। अगर कोई विश्वास करके किसी के पास धरोहर के तौर पर अपना धन रख देगा तो उसे धोखा दिया जायगा। पापाचारी लोग दूसरे की धरोहर हज़म करने में सङ्कोच नहीं करेंगे; जिसका धन होगा उससे निर्लज्ज होकर कहेंगे कि तूने हमारे पास धन रक्खा ही नहीं। नगरों के विहारस्थानों और देवस्थानों में भेड़िये, व्याघ्र, मांसभक्षी पक्षी और मृग सोवेंगे। राजन्, उस समय सात-आठ वर्ष की स्त्रियाँ गर्भवती
होंगी और दस-बारह वर्ष के पुरुष लड़के के बाप बन बैठेंगे। सोलह वर्ष की अवस्था में ही ६
पुरुषों के बाल पकने लगेंगे। इस तरह शीघ्र ही बुड्ढे होकर लोग यमपुर सिधार जायँगे। जवान

बुड्ढे से हो जायँगे और बुड्ढों का स्वभाव जवानों का सा बना रहेगा। स्त्रियाँ अपने धर्म के विपरीत पूज्य पतियों को धोखा देकर दासों और पशुओं तक के साथ कुकर्म करेंगी। साधारण स्त्रियाँ और वीरों की स्त्रियाँ भी जीते हुए पतियों को धोखा देकर परपुरुषों से प्रीति करेंगी।

महाराज, इस प्रकार हज़ार वर्ष की कलियुग की आयु समाप्त होने पर बहुत वर्षों तक पानी नहीं बरसेगा। अन्न आदि उत्पन्न न होने के कारण कलियुग के सारहीन प्राणी भूख से मरने लगेंगे। इस प्रकार अधिकांश प्राणियों का संहार हो जाने पर सात प्रचण्ड सूर्य एक साथ तपकर समुद्र, नदी आदि का सब जल सोख लेंगे। तब सूखी और गीली घास तथा लकड़ियाँ जल उठेंगी और भस्म हो जायँगी। फिर संवर्तक नाम का अग्नि, प्रचण्ड वायु की सहायता से, बढ़कर सूर्य के सुखाये हुए सब भुवनों को भस्म करने लगेगा। वह पृथ्वी को जलाकर पृथ्वी के नीचे रसातल तक पहुँच जायगा; जिसे देखकर वहाँ के निवासी देवता, दानव, यक्ष
७० आदि डर के मारे घबरा जायँगे। वह अग्नि नीचे पाताल लोक तक जलाता हुआ पृथ्वी के सब पदार्थों को क्षण भर में भस्म कर डालेगा। उस अग्नि के द्वारा बीस हज़ार सौ योजन तक का स्थान राख का ढेर बन जायगा। अशुभ कठोर हवा की सहायता से वह संवर्त्तक अग्नि देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग आदि प्राणियों सहित सब जगत् को एक साथ भस्म कर डालेगा।

इसके बाद हाथियों के झुण्ड के समान विचित्र आकारवाले महामेघ आकाशमण्डल में छा जायँगे। उनमें विकट बिजलियाँ चमकने लगेंगी। कुछ नीले कमल के रङ्ग के, कुछ कोकाबेली के फूल के रङ्ग के, कुछ कमल-केसर के रङ्ग के, कुछ केसरिया रङ्ग के, कुछ पीले रङ्ग के, कुछ कौए के अण्डे के रङ्ग के, कुछ कमल के पत्ते के रङ्ग के, कुछ हींग के रङ्ग के, कुछ अञ्जन के रङ्ग के, कुछ हाथियों के आकार के, कुछ पुर के आकार के और कुछ मगर के आकार के मेघ चारों ओर छा जायँगे। अनेक बिजलियों से जगमगाते हुए घोर मेघ भयङ्कर शब्द से गरजने लगेंगे। विधाता की प्रेरणा से वे मेघ जल बरसाकर पर्वत, वन, खान आदि सहित पृथ्वीमण्डल को डुबा
८० देंगे। बड़े बड़े पर्वत भी उस जलराशि में बह जायँगे। वे बादल बेहद पानी बरसाकर उस प्रलयकाल के अमङ्गलरूप अग्नि को बुझा देंगे।

महाराज, इस तरह वे बादल लगातार बारह वर्ष तक मूसलाधार पानी बरसाते रहेंगे; तब समुद्र अपनी मर्यादा छोड़कर उमड़ पड़ेगा। पर्वत फट जायँगे और पृथ्वी भी फटकर रसातल में डूब जायगी। फिर वे बादल एकाएक आकाश में चक्कर लगाकर वायु के वेग से फटकर नष्ट हो जायँगे। तब आदिदेव भगवान् ब्रह्मा उस पवन को पीकर जल में शयन करेंगे।

राजन्! उस घोर प्रलय के समय देवता, यक्ष, राक्षस, असुर, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, अन्तरिक्ष आदि में से कुछ भी नहीं बच रहेगा। चारों ओर जल ही जल देख पड़ेगा। मैं अकेला उस अपार जलराशि में विचरता हुआ जल के सिवा और कुछ न देख पाऊँगा। नीचे से

ऊपर तक जल ही जल देखकर मैं बहुत ही व्याकुल होऊँगा। महाराज, मैं ऐसे ही एक बीते हुए प्रलय का हाल कहता हूँ; सुनिए। मैं बहुत समय तक इसी तरह मारा मारा फिरता रहा। मुझे विश्राम करने के लिए कहीं कुछ आधार नहीं मिला। इतने में पानी में बहते-बहते एकाएक उसी जलराशि के बीच मैंने एक विशाल बर्गद का पेड़ देखा। ९०
उस वृक्ष की एक बड़ी भारी शाखा पर, एक पलँग पर, सुन्दर साफ़ और कोमल बिछौने बिछे हुए थे। उस पलँग के ऊपर मुझे कमल जैसे नयन और पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाला मनोहर बालक देख पड़ा। उसे देखकर मुझे बड़ा अचरज हुआ। मैं मन में कहने लगा—अहो कैसा आश्चर्य है! सब लोक नष्ट हो गये हैं, फिर यह सुन्दर बालक कैसे यहाँ पर विराजमान है! महाराज, तीनों काल का जाननेवाला होकर भी, बार-

बार ध्यान के द्वारा विचारकर भी, मैं जान न सका कि वह बालक कौन है और कैसे प्रलय के नाश से बच रहा है। उस बालक का रंग अलसी के फूल का सा श्याम था। श्रीवत्स-चिह्न उसकी शोभा बढ़ा रहा था। वह साक्षात् लक्ष्मी अर्थात् शोभा और ऐश्वर्य की खान जान पड़ता था।

उस कमलनयन, तेजस्वी, श्रीवत्स-चिह्नधारी बालक ने कानों को सुख देनेवाले मधुर स्वर से मुझसे कहा—"हे मार्कण्डेय, मैं तुमको जानता हूँ। तुम थककर विश्राम के लिए मेरे पास आये हो। इसलिए मेरे शरीर के भीतर प्रवेश करके जब तक जी चाहे, विश्राम करो। हे मुनिश्रेष्ठ, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ।" हे युधिष्ठिर, उस बालक के ये वचन सुनकर मुझे अपने मनुष्य और चिरजीवन होने के बारे में ग्लानि मालूम पड़ी। इसके बाद उस बालक ने अपना मुँह फैलाया और मैं विवश सा होकर उसके मुँह के भीतर चला गया। १००

महाराज, उस विचित्र बालक के पेट में जाकर मैंने राज्यों और नगरों सहित समूचा पृथ्वीमण्डल देखा। उसके भीतर गङ्गा, शतद्रु, सीता, यमुना, कौशिकी, चर्मण्वती, वेत्रवती, चन्द्रभागा, सरस्वती, सिन्धु, विपाशा, गोदावरी, वस्वोकसारा, नलिनी, नर्मदा, ताम्रा, वेणा, पुण्यतोया, शुभावहा, सुवेणा, कृष्णावेणा, महानदी, इरामा, वितस्ता, कावेरी, शोण, विशल्या,

किंपुना और पृथ्वीमण्डल की अन्य अनेक नदियाँ मैंने देखीं। भीतर फिरते-फिरते मैंने जल-जन्तुओं से पूर्ण रत्नाकर समुद्र को देखा। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारागणसहित प्रकाशमान आकाशमण्डल भी मैंने वहाँ देखा। विविध वनों, पर्वतों और द्वीपों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी-मण्डल भी दृष्टिगोचर हुआ। उस अद्भुत बालक के पेट के भीतर ही मैंने देखा कि ब्राह्मण लोग विविध यज्ञ कर रहे हैं; क्षत्रियगण सब वर्णों का पालन कर रहे हैं; वैश्य लोग खेती और बनिज आदि अपनी वृत्तियों में लगे हुए हैं और शूद्र लोग तीनों वर्णों की सेवा कर रहे हैं। इधर-उधर विचरकर उसी के भीतर मैंने हिमालय, हेमकूट, निषध, चाँदी का सफ़ेद पहाड़, गन्धमादन, मन्दराचल, नील पर्वत, सुवर्णमय मेरु पर्वत, महेन्द्र, विन्ध्याचल, मलयगिरि और पारियात्र आदि सभी रत्नपूर्ण पर्वत देखे। पृथ्वी पर सिंह, बाघ, वराह आदि जितने प्राणी पाये जाते हैं वे सब

मुझे उस बालक के पेट में विचरते हुए देख पड़े। इन्द्र आदि सब देवता, साध्यगण, रुद्रगण, आदित्यगण, गुह्यक, पितृगण, सांप, नाग, सुपर्ण, वसुगण, अश्विनीकुमार, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, ऋषिगण, देवताओं के वैरी दैत्य, दानव, नाग, असुर आदि सब त्रिलोक के निवासी मुझे उस बालक के पेट के भीतर देख पड़े। [अधिक कहाँ तक कहूँ,] पृथ्वी पर जो कुछ चर और अचर पदार्थ मैंने देखे थे वे सब वहाँ मुझे देखने को मिले। केवल फलाहार करता हुआ मैं उस बालक के पेट में कुछ अधिक सौ वर्ष तक फिरता रहा, किन्तु मुझे उसके असीम शरीर की सीमा न मिली। तब मैं सर्वश्रेष्ठ वरदायक परमेश्वर का ध्यान और स्तुति करता हुआ उसी परम-पुरुष की शरण में गया।

राजन्, फिर जम्हाई लेकर उस बालक ने मुँह खोला और मैं उसके पेट के बाहर आ गया। बाहर आकर मैंने देखा कि वे महातेजस्वी, श्रीवत्सधारी, पीताम्बर-शोभित बाल-मुकुन्द सब जगत् को अपने में लीन किये हुए उसी बर्गद की शाखा पर वैसे ही विराजमान हैं। तब प्रसन्नतापूर्वक मुसकाते हुए मेरी ओर देखकर बालरूपी हरि ने कहा—हे मुनिवर मार्कण्डेय, तुम

क्या मेरे इस शरीर के भीतर रहकर और घूमकर थक गये हो? बालमुकुन्द के यों पूछने पर मुझे १३०
नई दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई। मैं ईश्वरी माया के फेर से छुटकारा पाकर मानों होश में आ गया।

तब बालमुकुन्द के अच्छी तरह रक्खे हुए चरणों पर सिर रखकर मैंने प्रणाम किया। उन पैरों के तलवे लाल थे। कोमल, लाल, सुडौल उँगलियाँ उनकी शोभा बढ़ा रही थीं। उन बालमुकुन्द के अपरिमेय प्रभाव को देखकर, पास जाकर, नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर मैंने अपने को धन्य समझा। फिर मैंने प्रणाम करके, हाथ जोड़कर, उनसे कहा—हे देव, मैं आपको और आपकी अद्‌भुत माया को जानना चाहता हूँ। आपके मुख से शरीर के भीतर जाकर वहाँ मैंने सब लोकों को और देव, दानव, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, नाग आदि सब प्राणियों को—चराचर जगत् को—देखा है। आपके शरीर के भीतर शीघ्रता से घूमने पर भी मेरी स्मृतिशक्ति बनी रही। प्रभो, अपनी अभिलाषा न रहने पर भी आपकी इच्छा से मैं बाहर निकल आया हूँ। हे कमलनयन, आपको अच्छी तरह जानने के लिए मैं फिर यत्न करूँगा। भगवन्, कृपा करके यह बताइए कि सब ब्रह्माण्ड को अपने में लीन करके इस बालक के रूप से आप यहाँ पर क्यों
विराजमान हैं? चराचर जगत् को आपने अपने शरीर के भीतर क्यों लीन कर रक्खा है? ४०
आप इस रूप से इस तरह यहाँ पर कब तक रहेंगे? नाथ, यह सब मैं विस्तार के साथ आपके श्रीमुख से सुनना चाहता हूँ; क्योंकि ब्राह्मण वही है जिसे आपका और आपकी माया का ज्ञान हो। मैं इस ज्ञान को प्राप्त कर ब्राह्मण बनना चाहता हूँ। ईश्वर, यह जो कुछ मैंने देखा है वह बहुत बड़ा और गूढ़ विषय है। हे युधिष्ठिर, मेरे यों कहने पर वे परम तेजस्वी,
श्रीमान्, देवदेव, भगवान् सान्त्वना देते हुए मुझसे यों कहने लगे। १४३

एक सौ नवासी अध्याय

बालमुकुन्द का मार्कण्डेय को उनके प्रश्नों का उत्तर देना

बालमुकुन्द ने कहा—हे विप्र, जानने की इच्छा रखने पर भी देवगण मेरे यथार्थ तत्व को नहीं जान पाते। किन्तु तुम पर मैं बहुत प्रसन्न हूँ, इस कारण तुम्हारे सन्तोष के लिए मैं तुमको वह क्रम सुनाता हूँ जिस क्रम से मैं इस सृष्टि की रचना करता हूँ। हे मुनिवर, तुम पिता के भक्त और मेरे शरणागत हो। साथ ही बहुत समय तक तुमने ब्रह्मचर्य धारण किया है। इसी कारण तुमको मेरे साक्षात् दर्शन प्राप्त हुए हैं। मैंने पहले जल को 'नार' नाम दिया था। वह नार अर्थात् जल मेरा आश्रय है, इसी से मैं लोक में नारायण के नाम से प्रसिद्ध हूँ। मैं सबका अनादि कारण और अविनाशी हूँ। हे द्विज, मैं सब प्राणियों का विधाता और संहारकर्ता हूँ। विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, राजा कुबेर, प्रेतराज यम, शिव, चन्द्र, प्रजापति कश्यप, धाता, विधाता और यज्ञ आदि सब मैं ही हूँ। अग्नि मेरा मुख है, पृथ्वी मेरे पैर है, चन्द्र और सूर्य मेरे नेत्र हैं।

आकाश सिर है। दिशाएँ कान हैं। जल पसीना है। महादिशाएँ और महाकाश मेरा शरीर है और वायु मेरा मन है। मैंने बहुत बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ देकर कई सौ महायज्ञ किये हैं। वेद का अर्थ जानने की इच्छा रखनेवाले ब्राह्मण, देवलोक की इच्छा रखनेवाले क्षत्रिय और वैश्य यज्ञ आदि से मेरी ही आराधना करते हैं। मैं ही शेषनाग का रूप रखकर सुमेरु, मन्दराचल आदि पर्वतों-सहित चार समुद्रों से भूषित पृथ्वीमण्डल को धारण किये हुए हूँ। मैंने ही पहले युग में वराह अवतार लेकर, अपने पराक्रम के प्रभाव से, प्रलयसागर के जल में डूबी हुई पृथ्वी का उद्धार किया है। हे द्विज, मैं वड़वामुख अग्नि के रूप से सम्पूर्ण जल को सोखकर फिर बरसाता हूँ। ब्राह्मण मेरा मुख हैं, क्षत्रिय मेरी भुजाएँ हैं, वैश्य मेरी जाँघें और शूद्र मेरे पैर हैं। ऋक्, यजुः, साम और अथर्व, ये चारों वेद मुझसे उत्पन्न होते और मुझमें ही लीन हो जाते हैं। शान्तिपरायण, काम-क्रोध आदि से रहित, निर्भय, पापशून्य, अहङ्काररहीन, अध्यात्म विद्या में निपुण, जितेन्द्रिय, मोक्ष की इच्छा रखनेवाले ब्राह्मण ध्यानयोग से मेरी ही उपासना करते हैं। मैं ही प्रलय करनेवाला अग्नि हूँ; मैं ही प्रलय करनेवाला यम हूँ; मैं ही प्रलय करनेवाला सूर्य हूँ और मैं ही प्रलय करनेवाला वायु हूँ। आकाश में देख पड़नेवाले तारागण मेरे रोमछिद्र हैं। रत्नाकर समुद्र और दिशाएँ मेरे वस्त्र, शयन और निलय (निवासस्थान) हैं। देवताओं के कार्य और प्रयोजन की सिद्धि के लिए मैंने ही इनको अलग-अलग स्थापित किया है। काम, क्रोध, मोह, डर, हर्ष, मनुष्यों के मङ्गल का साधन सत्य, दान, उग्र तप, प्राणियों से अहिंसा का व्यवहार आदि सब भाव मेरे रोम हैं और मेरे ही शरीर में स्थित हैं। मेरे ही विधान के अनुसार सब प्राणी इन भावों का आश्रय ग्रहण करते हैं, अपनी स्वतन्त्र इच्छा से नहीं। अच्छी तरह वेद का अध्ययन और उसके अर्थ का अनुशीलन करनेवाले, अनेक यज्ञ करनेवाले, शान्तहृदय और क्रोध को जीतनेवाले ब्राह्मण ही मुझे पा सकते हैं। कुकर्म करनेवाले (दुराचारी), लोभी, अनार्य, कृपण और अपने मन को वश में न रख सकनेवाले लोग मुझे नहीं पा सकते। योगी लोग जिसको ग्रहण करते हैं वह मेरा मार्ग मूढ़ अज्ञ जनों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है। उसी मार्ग पर चलनेवाले को महाफल (मुक्ति) मिलता है।

हे मुनिवर, जब-जब अधर्म बढ़ने से धर्म घटने लगता है तब-तब मैं अपने को प्रकट करता हूँ। जब देवताओं के लिए अवध्य राक्षस और दैत्य उत्पन्न होकर पृथ्वी पर हिंसा आदि भयङ्कर कर्म करते हैं तब मैं मनुष्यरूप से पुण्यात्माओं के घर जन्म लेता हूँ और दैत्यों को मारकर उनका उपद्रव शान्त करता हूँ। मैं अपनी माया के प्रभाव से देवता, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस आदि सब चराचर प्राणियों को उत्पन्न करके यथासमय उनका संहार करता हूँ। लोक में धर्म की मर्यादा स्थापित करने के लिए या देवताओं के काम करने की आवश्यकता से मैं मनुष्य-शरीर धारण करता हूँ।

मेरा सत्ययुग में श्वेत वर्ण, त्रेतायुग में पीत वर्ण, द्वापर में रक्त वर्ण और कलियुग में कृष्ण वर्ण है। कलियुग में अधर्म के तीन भाग होते हैं। पहले में अधर्म की उत्पत्ति, दूसरे में वृद्धि

और तीसरे में अत्यन्त वृद्धि होती है। जब कलियुग का अन्तसमय होता है तब अत्यन्त
दारुण काल का रूप रखकर अकेला मैं ही इस चराचर जगत् का नाश करता हूँ। मैं त्रिवर्त्मा
हूँ अर्थात् मेरे तीन मार्ग हैं। मैं विश्वरूप, सब प्राणियों को सुख देनेवाला, सर्वव्यापी, अजित,
अनन्त, हृषीकेश, कालचक्र को चलानेवाला और रूपरहित हूँ। मैं सृष्टि-स्थिति-संहार आदि
के समयों में सदा अपना काम करने के लिए तैयार रहता हूँ।

हे मुनिवर, इस प्रकार अपनी माया से ही छिपा हुआ मैं सब प्राणियों के हृदय में
आत्मा-रूप से स्थित हूँ; पर मुझे कोई नहीं जान सकता। सब लोकों में जो मेरे भक्त हैं वे मेरी
पूजा और आराधना किया करते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ, तुमने मेरे पेट के भीतर जो कुछ कष्ट पाया
है उसको तुम अपने सुख के उदय और भावी कल्याण का कारण समझो। इस लोक में जो
कुछ चर और अचर पदार्थ तुमने देखे हैं उन सबको तुम मेरा ही रूप समझो। देखो, सब लोकों
के पितामह ब्रह्मा मेरे शरीर का आधा भाग हैं। मैं शङ्ख-चक्र-गदा-धारी नारायण हूँ। एक हज़ार
युग तक मैं सब लोकों के पितामह ब्रह्मा के रूप से, सब प्राणियों को मोहित करके, शयन करता
हूँ। जब तक ब्रह्मा नहीं जागते तब तक मैं, पुरातन पुरुष होकर भी, इसी बालरूप से यहाँ रहता ४०
हूँ। सृष्टि के समय प्रकट होनेवाला सब चराचर जगत् तब तक मेरे पेट में लीन रहता है।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, मैंने प्रसन्न होकर ब्रह्मा के रूप से कई बार तुमको श्रेष्ठ वर दिये हैं।
जलमय, एकाकार, प्रलय-सागर में चराचर जगत् को डूबा हुआ देखकर तुम व्याकुल हो
उठे थे। यह जानकर मैंने तुमको अपने पेट के भीतर सब जगत् दिखा दिया। मेरे पेट के
भीतर पहुँचकर जब तुमने सब जगत् को देखा था तब आश्चर्य के मारे तुम कुछ भी नहीं समझ
सके थे। इसी से मैंने तुमको अपने मुख के द्वारा पेट के भीतर से झटपट बाहर निकाल दिया।
देवता और दैत्य भी मेरे जिस तत्त्व को नहीं जान सकते, वही अपने रूप का तत्त्व मैंने तुमको सुना
दिया। अब जब तक भगवान् कमलयोनि ब्रह्मा योगनिद्रा से नहीं उठते तब तक तुम यहीं सुख-
पूर्वक बेखटके विचरते रहो। ब्रह्मा के उठने पर उनमें लीन होकर मैं अकेला आकाश, पृथ्वी,
अग्नि, वायु, जल और अन्य चराचर प्राणियों को उत्पन्न करूँगा।

मार्कण्डेय कहते हैं—हे धर्मात्मा पुरुषों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर, वह परम अद्भुत रूप धारण
करनेवाले देव मुझसे यों कहकर वहीं पर अन्तर्द्धान हो गये। उसके बाद सब विचित्र प्रजा की
सृष्टि हुई और उसे मैंने देखा। इस प्रकार मैंने प्रलय के समय अद्भुत दृश्य देखा है। मैंने उस ५०
समय जिन कमलनयन नारायण को देखा था वही ये तुम्हारे सम्बन्धी जनार्दन कृष्ण हैं। हे
कुन्ती के पुत्र, इन्हीं के वरदान से उस प्रलयकाल की याद मुझे बनी हुई है। बड़ी आयु और
स्वच्छन्द मृत्यु भी मुझे इन्हीं के वरदान से मिली है। ये जो वृष्णिवंशी महापुरुष मनुष्यलोक
में प्रकट होकर लीलाएँ कर रहे हैं सो वही अचिन्त्यरूप हरि और पुराणपुरुष विभु हैं। ये

धाता, विधाता, संहार करनेवाले, सनातन, श्रीवत्सचिह्नधारी, गोविन्द, ब्रह्मा आदि प्रजापतियों के स्वामी, प्रभु, आदिदेव और जन्म-रहित हैं। इन कृष्णचन्द्र को देखकर ही मुझे यह पूर्वजन्म की याद आ गई है। ये पीताम्बरधारी पुरुष ही जिष्णु, विष्णु, आदिदेव, सब प्राणियों के पिता (उत्पन्न करनेवाले) और माता (पालन करनेवाले) हैं। हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ पाण्डवो, इन्हीं शरणागतवत्सल श्रीकृष्ण का आश्रय ग्रहण करो।

वैशम्पायन कहते हैं—मार्कण्डेय के मुँह से यह कथा सुनकर द्रौपदी-सहित पाण्डवों ने श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। हे पुरुषसिंह, माननीय कृष्णचन्द्र ने भी उनके सम्मान को स्वीकार
५९ करके मधुर वचनों से उन्हें आश्वासन दिया।

एक सौ नब्बे अध्याय

कलियुग के कृत्यों का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, जगत् की आगे की गति जानने के लिए युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय से पूछा—भगवन्, आपके मुँह से मैंने युग के आरम्भ के समय का, उत्पत्ति और विनाश के सम्बन्ध का, अत्यन्त अद्भुत वृत्तान्त सुना। अब कलियुग का हाल सुनने के लिए मेरा बहुत जी चाहता है। इसलिए आप अब कलियुग की करनी का बखान कीजिए। इस कलि-काल में सब धर्मों के पीड़ित होने पर अन्त को क्या होगा? कलियुग में मनुष्यों का बल, वीर्य, आहार, विहार, आयु और पहनावा कैसा होगा? फिर किस समय सत्ययुग का आरम्भ होगा?

महाराज युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय से जब यह प्रश्न किया तब यदुकुलतिलक श्रीकृष्ण और पाण्डवों की प्रसन्नता के लिए उन्होंने कहा—महाराज, मैंने जो पहले प्रलयकाल में देखा था वह तो सब आप सुन चुके। अब मैं कलियुग का वह भविष्य वृत्तान्त कहता हूँ जिसका अनुभव अभी से श्रीकृष्ण की कृपा के कारण मुझे प्राप्त हो गया है। राजन्! सत्ययुग में कपट, लोभ आदि न होने के कारण धर्म चारों चरणों से मनुष्यों में स्थित था। धर्म के, बैल की तरह, चार चरण थे, इसी से उसका एक नाम वृष भी है। त्रेतायुग में धर्म के तीन चरण रह गये। एक
१० चरण को अधर्म ने कमज़ोर बना दिया। द्वापर में धर्म के दो ही चरण रह गये। [उसके दो चरणों को अधर्म ने हीन कर दिया।] कलियुग में धर्म का एक ही चरण रह गया। [अधर्म के तीन चरण मनुष्यों में प्रबल हो उठे।] कलियुग में मनुष्यों में तीन भाग अधर्म और एक भाग धर्म रह जाता है। ज्यों-ज्यों धर्म घटता जाता है त्यों-त्यों हर युग में मनुष्यों की आयु, वीर्य, बुद्धि, बल और तेज घटता रहता है। कलियुग में ये बातें बहुत ही कम हो जाती हैं। उस युग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र दिखावे के लिए धर्म करेंगे; धर्म का जाल फैलाकर लोगों को ठगेंगे। पण्डित होने का अभिमान रखनेवाले मनुष्य सत्य का संहार करेंगे। सत्य की हानि होने के कारण मनुष्य अल्पायु होंगे। अल्पायु होने के कारण वे अच्छी तरह विद्या-

भ्यास करने में समर्थ न होंगे। विद्या की कमी होने से लोभ, लोभ से क्रोध और क्रोध से मोह की उत्पत्ति होगी। इस प्रकार सब मनुष्य काम, क्रोध, लोभ और मोह के अधीन होकर वैरभाव उत्पन्न कर लेंगे और परस्पर एक दूसरे को मार डालने की चेष्टा में लगे रहेंगे।

युग के अंत का समय जब आवेगा तब ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के आचरण शूद्रों के
से हो जायँगे। वे तप और सत्य को छोड़ देंगे। अन्त्यज जातियाँ अपने को क्षत्रिय बता-
कर उन्हीं का सा व्यवहार करने पर उतारू होंगी। सन के कपड़े और 'कोदों' अन्न उत्तम वस्त्र
और आहार समझे जायँगे। पुरुष स्त्रियों के भक्त होकर उन्हीं को अपना सबसे बड़ा मित्र
समझेंगे। गायों का नाश हो जाने से बड़े बड़े व्रतधारी भी बकरियों और भेड़ों का दूध पियेंगे। २०
लोग मछलियाँ खाने में कुछ संकोच न करेंगे। सब मनुष्य लोभी होकर परस्पर एक
दूसरे को ठगेंगे; चोरी और हिंसा करने में भी नहीं हिचकेंगे। लोग जप-तप नहीं करेंगे; चोर
और नास्तिक बन जायँगे। नदी-तट पर कुदाल से खोदकर ओषधियाँ (अन्न) बोई जायँगी,
और उनमें भी फल (फ़सल) कम होंगे। श्राद्ध आदि पितृकर्म और पूजा-पाठ में लगे हुए
मनुष्य भी लोभ के वशीभूत होकर एक दूसरे का धन छीन लेंगे। पिता पुत्र के धन को और
पुत्र पिता के धन को हर लेने की चेष्टा करेगा। खाद्य-अखाद्य का कुछ विचार नहीं किया जायगा।
ब्राह्मण लोग चरित्र और आचार-विचार से हीन होकर वेद-विद्वेषी होंगे और वृथा की बहस में
मोहित होकर यज्ञ, होम आदि शुभ कर्मों पर श्रद्धा नहीं रक्खेंगे—नीच और हीन कामों को
पसन्द करेंगे और उन्हीं में अपनी उन्नति समझेंगे। नीची जगहों में खेती करेंगे; गायों से और
एक साल के बछड़ों से भी बोझ ढोने का काम लेंगे। पिता को पुत्र की हत्या और पुत्र को
पिता की हत्या करने में कुछ हिचकिचाहट न होगी। इस प्रकार की हत्या करनेवाले भी
बढ़-बढ़कर बातें करेंगे; उनकी कोई निन्दा नहीं करेगा। सब लोगों के आचरण म्लेच्छों की
तरह हो जायँगे। वे कर्मकाण्ड के काम और दान आदि नहीं करेंगे। कहीं आनन्द और
उत्सव का नाम नहीं रहेगा। दीन-ग़रीब, इष्टमित्र, नातेदार और विधवा अनाथ आदि का धन
हर लेने से भी लोग न चूकेंगे। सब आदमी थोड़े बल-वीर्यवाले, जड़, लोभ और मोह के ३०
अधीन, और ऐसे ही लोगों के कहे पर चलनेवाले होकर छल-कपट का व्यवहार करेंगे।

हे युधिष्ठिर, उस समय के पापी राजा लोग भी मूर्ख और अपने को पण्डित माननेवाले होंगे। वे लोककण्टक क्षत्रिय एक दूसरे के गले पर छुरी चलावेंगे। वे लोभी, अभिमान और अहंकार से भरे हुए, केवल दण्ड देने की ही रुचि रक्खेंगे; किसी की रक्षा नहीं करेंगे। निर्दय राजा लोग सज्जनों को सतावेंगे; उनकी सम्पत्ति और स्त्रियों को छीनकर अपने काम में लावेंगे। सज्जनों को रोते-कलपते देखकर भी उन्हें तरस न आवेगा। न तो कोई किसी से विवाह के लिए कन्या माँगेगा और न कोई कन्यादान ही करेगा। कन्याएँ आप मर्द ढूँढ़ लेंगी।

मूढ़ बुद्धिवाले राजा सन्तोष छोड़कर तरह-तरह के उपायों से प्रजा का धन हरने लगेंगे। सब
जगत् म्लेच्छ हो जायगा। सगा भाई भाई को धोखा देगा, या यों कहिए कि अपना ही एक
हाथ दूसरे हाथ से दग़ा करेगा। अपने को पण्डित माननेवाले लोग सत्य की हत्या करेंगे।
वृद्धों की बुद्धि बालकों की सी हो जायगी। बालक अपनी समझ को वृद्धों से बढ़कर समझेंगे।
कायर लोग अपने को वीर कहकर डींग हाँकेंगे और शूरों को कायर बन जाना पड़ेगा। कोई
४० किसी का विश्वास नहीं करेगा। खान-पान का भेद-भाव न रहेगा। लोभ मोह के प्रभाव से
अधर्म की बढ़ती होगी और धर्म का क्षय होगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ये तीनों वर्ण मिटकर
सब एकवर्ण अर्थात् शूद्र हो जायँगे। पिता पुत्र को और पुत्र पिता को क्षमा नहीं करेगा। स्त्री
अपने पति की सेवा नहीं करेगी। जव-गेहूँ आदि अन्न जहाँ पैदा होते होंगे, उन्हीं देशों का
आश्रय सब लोग ग्रहण करेंगे। स्त्री और पुरुष मनमाने खान-पान और आचरण को पसन्द
करेंगे। कोई किसी का शासन सहने के लिए तैयार न होगा। हे युधिष्ठिर, कोई पितरों के लिए
श्राद्ध-तर्पण और देवताओं के लिए पूजा-पाठ नहीं करेगा। कोई किसी की बात नहीं सुनेगा।
कोई किसी को गुरु नहीं मानेगा। सब लोग अज्ञान के अँधेरे में रहेंगे। लोगों की आयु
सोलह वर्ष से अधिक न होगी। सोलह वर्ष के बाद वृद्ध होकर लोग मरने लगेंगे। पाँच या
छः वर्ष की बालिका बच्चे जनेगी; सात या आठ वर्ष का बालक बच्चों का बाप बन जायगा।

राजन्, उस युगान्त के समय में स्त्री को स्वामी से और स्वामी को स्त्री से सन्तोष न
५० होगा। धनहीन लोग धनियों का सा ठाठ दिखावेंगे। हिंसा और डाह बहुत बढ़ जायगी।
कोई किसी को कुछ देना न चाहेगा। दान-पुण्य एकदम उठ जायगा। नगरों और गाँवों में
अन्न का अकाल होगा। चौराहों पर कुलटाओं और धूर्तों का जमाव रहेगा। स्त्रियाँ धन के
लिए अपना सतीत्व बेचेंगी। महाराज, कलियुग के पिछले समय में लोग म्लेच्छाचारी, सर्व-
भक्षी और दारुण कर्म करनेवाले होंगे। लोभ के दास लोग बेचने-ख़रीदने में ठगविद्या से काम
लेंगे। जिसके सम्बन्ध में कुछ ज्ञान नहीं है उन कामों को भी लोग बेधड़क करने लगेंगे। सब
लोग स्वेच्छाचारी हो जायँगे। स्वभाव से ही लोगों की रुचि क्रूर कर्मों की ओर होगी। सब
एक दूसरे की निन्दा करेंगे। हरे-भरे वृक्षों को और बाग़ों को भी निष्ठुर लोग काट डालेंगे।
लोगों को सदा जीवन के लिए खटका लगा रहेगा। लोभी राजा धन के लिए ब्रह्महत्या तक कर
डालेंगे। ब्राह्मण लोग शूद्रों से सताये जाकर हाहाकार करते हुए इस पृथ्वी पर मारे-मारे फिरेंगे;
उन्हें कोई रक्षा करनेवाला नहीं मिलेगा। जब लोग क्रूर और हत्या करनेवाले अधिकता से देख
६० पड़ेंगे, दया का नाम न रह जायगा, तब कलियुग का अन्त होगा। ब्राह्मण आदि द्विजवर्ण के
लोग डर के मारे भागकर नदियों, पर्वतों और भयङ्कर स्थानों में आश्रय लेंगे। दस्यु लोग
सतावेंगे और धर्मविरुद्ध आचरण करनेवाले राजा लोग 'कर' के बोझ से पीड़ा पहुँचावेंगे। तब,

उस दारुण समय में, धैर्य को छोड़कर ब्राह्मण लोग काकवृत्ति का आश्रय लेंगे, अपना धर्म छोड़कर शूद्रों की सेवा करेंगे। शूद्र धर्म का उपदेश करेंगे और ब्राह्मण उसे सुनेंगे, उनकी ख़ुशामद करेंगे और उनकी बात को 'प्रमाण' मानेंगे। सब जगह सब बातें उलटी देख पड़ेंगी। उच्च जाति के लोग नीच और नीच जाति के लोग उच्च बन जायँगे। लोग देवताओं की पूजा छोड़कर क़बरों की पूजा करेंगे। ब्राह्मण सेवक और शूद्र प्रभु बनेंगे। पृथ्वी पर देवमन्दिर नहीं देख पड़ेंगे। महर्षियों के आश्रमों में, ब्राह्मणों की बस्तियों में, देवस्थानों में, चैत्य और नागों के भवनों में हड्डी से चिह्नित स्थान देख पड़ेंगे। ये सब युगान्त के लक्षण हैं। जब लोग भयानक स्वभाववाले, धर्मभाव से हीन, मांसभोजी और मद्यपान में आसक्त होंगे, तब कलियुग का अन्त होगा। जब फूल पर फूल और फल पर फल पैदा होगा, तब कलियुग का अन्त होगा। उस
समय मेघ असमय वर्षा करेंगे। मनुष्यों के काम क्रम से नहीं होंगे। शूद्र लोग ब्राह्मणों से ७०
विरोध करेंगे। पृथ्वी शीघ्र ही म्लेच्छों से भर जायगी। प्रजा 'कर' के बोझ से घबराकर इधर-उधर भागी-भागी फिरेगी। सब लोगों के आचार और पहनावे एक से हो जायँगे। बेगार के डर से लोग जङ्गलों में जाकर बसेंगे और वहाँ फल-मूल खाकर अपना गुज़र करेंगे। इस प्रकार सब लोगों के व्याकुल होने पर किसी बात की कोई मर्यादा न रह जायगी। शिष्य लोग गुरु के उपदेश को न मानेंगे और अप्रिय आचरण करेंगे। धनहीन आचार्य धन के लिए शिष्यों को डाँट बतावेंगे। मित्र, नातेदार और भाई आदि सब धन के साथी होंगे।

उस युगान्त के समय सभी प्राणियों का नाश देख पड़ेगा। सब दिशाओं में आग सी लगी हुई देख पड़ेगी। नक्षत्रों की प्रभा फीकी पड़ जायगी। सब ज्योतियाँ धुँधली देख पड़ेंगी। हवा रूखी और आँधी सी चलेगी। महाभय की सूचना देनेवाले उल्कापात अधिकता से होंगे। छः और सूर्यों के साथ प्रचण्ड रूप धारण करके सूर्य तपेंगे। दिग्दाह देख पड़ेगा। बिना मेघ के आकाश में बिजली की कड़क सुन पड़ेगी। उदय और अस्त के समय सूर्य को राहु छिपा लेगा। इन्द्र भगवान् कुसमय में जल बरसावेंगे। बोने पर भी अन्न नहीं उगेगा। स्त्रियाँ कठोर
और क्रूर वचन कहेंगी, बात बात पर रोने लगेंगी और अपने स्वामी का कहा न मानेंगी। पुत्र अपने ८०
मा-बापों को और स्त्रियाँ अपने पतियों तथा पुत्रों को मार डालने में नहीं हिचकेंगी। अमावस के सिवा और दिन भी सूर्य को राहु ग्रसेगा। सब तरफ़ आग लगने का उत्पात ज़ोर पकड़ेगा। बटोही प्यास से व्याकुल होकर गृहस्थ के द्वार पर जाकर पानी माँगेंगे तो उन्हें पानी या भोजन कुछ नहीं मिलेगा। किसी के द्वार पर टिकने के लिए जगह न पाकर बटोही राह में पड़े रहेंगे। कौए, साँप, पक्षी और मृग आदि कठोर शब्द सुनावेंगे। पेट भर खाने को न मिलने से लोग अपने मित्र, नातेदार, भाई-बन्धु आदि को छोड़कर दूर के देशों, नगरों और गाँवों को चले जायँगे। हाय पिता! हाय पुत्र! आदि दारुण शोकजनक वाक्य कहते-चिल्लाते लोग पृथ्वी पर सब जगह देख पड़ेंगे।

हे युधिष्ठिर, इस प्रकार दारुण दृश्य उपस्थित होने पर कलियुग का अन्त हो जायगा
और फिर क्रमशः ब्राह्मण आदि वर्णों की स्थापना होगी। कालान्तर में फिर दैव अनुकूल होगा,
फिर सत्ययुग का आरम्भ होने से लोगों का अभ्युदय होने लगेगा। चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति
९० ये तीनों ग्रह जब पुष्य नक्षत्र में आकर एक राशि में स्थित होंगे तब सत्ययुग का आरम्भ होगा।
सत्ययुग में ठीक समय पर मेघ बरसेंगे, नक्षत्र शुभ फलदायक होंगे। ग्रहों की गति अनुकूल हो
जायगी। सर्वत्र क्षेम, सुभिक्ष और आरोग्य देख पड़ेगा।

कालान्तर में कलियुग के नाश और सत्ययुग के सञ्चार के लिए विष्णु का कल्की अव-
तार होगा। सम्भल ग्राम में विष्णुयश ब्राह्मण के घर महाबल-पराक्रम-बुद्धि आदि से युक्त
कल्की भगवान् अवतार लेकर ज्योंही स्मरण करेंगे त्योंही उनके विविध अस्त्र-शस्त्र, कवच, वाहन
आदि आकर उपस्थित हो जायँगे। वे धर्म को विजय दिलानेवाले भगवान् अधर्म से पीड़ित पृथ्वी
पर शान्ति की स्थापना करके स्वयं सम्राट् होंगे। ब्राह्मणवंश में उत्पन्न, तेजस्वी कल्की भगवान्
९७ अपने पराक्रम से सब म्लेच्छों को मारेंगे और ब्राह्मणों में उनके धर्म की स्थापना करेंगे।

एक सौ इक्यानबे अध्याय

युधिष्ठिर को मार्कण्डेय का धर्मोपदेश

मार्कण्डेय कहते हैं—हे युधिष्ठिर, पवित्र यशवाले कल्की भगवान् सनातनधर्म के विरोधी, चोर-वृत्तिवाले, म्लेच्छ राजाओं का संहार करके महायज्ञ अश्वमेध करेंगे। यज्ञ की दक्षिणा में वे सब पृथ्वी ब्राह्मणों को दे देंगे। इस प्रकार ब्रह्माजी की बनाई धर्म की मर्यादा को स्थापित करके भगवान् कल्की तप करने के लिए वन को चले जायँगे। पृथ्वी पर के सब लोग उन्हीं के चरित्र के अनुगामी होकर पुण्य-कार्य करेंगे और कल्याण को प्राप्त होंगे। ब्राह्मण वंश में उत्पन्न कल्की भगवान् ब्राह्मणों के भले के लिए जब चोर-म्लेच्छों का संहार कर डालेंगे तब सर्वत्र कुशल और शान्ति का राज्य हो जायगा। ब्राह्मणश्रेष्ठ कल्की भगवान् जीते हुए देशों में काली मृगछाला आदि ब्राह्मण के चिह्नों की और शक्ति, त्रिशूल आदि क्षत्रिय के चिह्नों की स्थापना करते हुए पृथ्वी-मण्डल पर घूमेंगे। अर्थात् जहाँ-जहाँ वे अधर्मी शत्रुओं को मारेंगे वहाँ-वहाँ ब्राह्मण और क्षत्रिय के धर्मों की स्थापना करेंगे। जहाँ-जहाँ वे जायँगे वहाँ-वहाँ ब्राह्मण लोग उनकी स्तुति और पूजा करेंगे। दस्यु राजा लोग हाय पिता! हाय माता! हाय पुत्र! कहकर ऊँचे स्वर से रोते-चिल्लाते हुए कल्की भगवान् के तीक्ष्ण, भयानक निष्ठुर खड्ग के प्रहार से कट-कटकर गिरते जायँगे।

हे धर्मराज, फिर सत्ययुग होने पर धर्म की वृद्धि और अधर्म का नाश होगा। सब लोग क्रियावान् और कर्त्तव्यनिष्ठ होंगे। अनेक स्थानों में बाग़, चैत्य, तालाब, धर्मशाला, सरोवर, देवमन्दिर आदि बनेंगे। लोग अनेक यज्ञ और पुण्य कर्म करेंगे। पृथ्वी पर सच्चे ब्राह्मणों,

साधुओं और मुनियों की अधिकता हो जायगी। पहले के पाखण्डियों के आश्रमों में सत्यवादी,
धर्मात्मा लोग रहने लगेंगे। लोगों के हृदयों से पुराने कुसंस्कारों की जड़ उखड़ जायगी। राजन्, १०
सब ऋतुओं में सब अन्न उत्पन्न होंगे। सब मनुष्य दान और व्रत आदि करेंगे तथा चरित्र की
रक्षा में तत्पर होंगे। ब्राह्मण लोग जप, यज्ञ, धर्म में निरत होकर अपने छः कर्म करेंगे और
सन्तोषी होंगे। क्षत्रिय लोग पराक्रमी होंगे। राजा लोग धर्म से पृथ्वी का पालन करेंगे।
वैश्य भी अपने कर्मों में श्रद्धा दिखावेंगे। शूद्र लोग तीनों वर्णों की सेवा करेंगे।

महाराज! सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में धर्म की जो दशा होती है उसका वर्णन कर दिया
गया। कलियुग का धर्म और सब लोगों का जाना हुआ युगों का परिमाण पहले ही कह चुका
हूँ। हे पाण्डव, ऋषियों द्वारा प्रशंसित वायुपुराण के अनुसार यह सब भूतकाल और भविष्यकाल
का हाल मैंने तुम्हारे आगे वर्णन किया है। राजन्, मैं चिरञ्जीवी हूँ; इसलिए संसार की दशा
का यह परिवर्तन अनेक बार देख चुका हूँ। धर्म-सम्बन्धी संशय मिटाने के लिए अब और भी
कुछ कहता हूँ; भाइयों के साथ एकाग्र होकर सुनो। हे धार्मिकश्रेष्ठ, सदा धर्म में अपना मन
लगाना; क्योंकि धर्मात्मा पुरुष दोनों लोकों में परम सुख पाते हैं। हे निष्पाप, ब्राह्मण का अना-
दर भूलकर भी न करना। ब्राह्मण कुपित होने पर सहज ही सब लोकों को भस्म कर सकते हैं। २०

वैशम्पायन कहते हैं कि कुरुकुलश्रेष्ठ बुद्धिमान् युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय के वचन सुनकर
पूछा—मुनिवर, मैं किस धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करूँ? कैसा व्यवहार करने से मैं
अपने धर्म से भ्रष्ट न होऊँगा?

मार्कण्डेय ने कहा—राजन्! तुम सब प्राणियों का हित करनेवाले, दयालु, प्रजा पर अनु-
राग रखनेवाले, ईर्ष्या से रहित, सत्यवादी, कोमल स्वभाववाले, शान्त, प्रजा-पालन में तत्पर होकर,
अधर्म से बचकर, धर्म का आचरण करो। देवताओं और पितरों की पूजा और आराधना करो।
यदि भूल से कोई बुरा काम बन पड़े तो दान आदि सत्कर्मों से उसकी शान्ति कर डालो;
अभिमान छोड़कर सदा सबसे नम्रता का व्यवहार करो। इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने
वश में करके सुख भोगो। राजन्! मैंने यह तुम्हारे आगे, बीते हुए और आनेवाले, समय के
धर्मों का वर्णन कर दिया। तुम स्वयं भी भूत और भविष्यकाल के सब धर्मों को जानते हो।
इसलिए पुत्र, तुम इस वर्त्तमान क्लेश को क्लेश मत समझो। विज्ञ पुरुष समय के द्वारा पीड़ित
होकर भी घबराते नहीं हैं। हे महाबाहु, देवताओं पर भी ऐसा क्लेशदायक समय पड़ता रहता
है। साधारण प्रजा, समय के द्वारा सताई जाकर, खेद और मोह को प्राप्त होती है; तुम ऐसे
बुद्धिमान् और असाधारण पुरुष नहीं होते। हे निष्पाप, मैंने जो तुमको उपदेश किया है उसमें
सन्देह न करना। मेरी बातों पर सन्देह करने से तुम्हारा धर्म नष्ट होगा। हे भरतश्रेष्ठ,
तुमने प्रसिद्ध कुरुवंश में जन्म लिया है; इस कारण मन-वाणी-काया से मेरे उपदेश का पालन करो। ३०

युधिष्ठिर ने कहा—हे मुनिवर, आपने मनोहर वचनों से जो उपदेश मुझे दिया है उसके अनुसार मैं यथाशक्ति कार्य करूँगा। हे विप्रेन्द्र! लोभ, मोह या ईर्ष्या के भाव मेरे हृदय में नहीं हैं। आपने मुझे जो आज्ञा दी है, उसका पालन मैं अवश्य करूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—श्रीकृष्ण, पाण्डव और आये हुए सब ब्राह्मण बुद्धिमान् महर्षि
३५ मार्कण्डेय के मुख से यह मङ्गलदायिनी पुण्य-कथा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

एक सौ बानबे अध्याय

वामदेवचरित का वर्णन

जनमेजय ने कहा—हे वैशम्पायन! महातपस्वी, महर्षि मार्कण्डेय ने पाण्डवों के आगे जो ब्राह्मणों की महिमा कही, उसे आप दुबारा कहिए।

वैशम्पायन ने कहा कि राजन्, धर्मराज ने भी फिर मार्कण्डेय से ब्राह्मणों की महिमा वर्णन करने के लिए कहा। तब मार्कण्डेयजी बोले—हे धार्मिकश्रेष्ठ युधिष्ठिर! सुनो, मैं तुम्हारे आगे अत्यन्त अद्भुत ब्राह्मण-माहात्म्य कहता हूँ। अयोध्या के राजा, इक्ष्वाकुवंश के यश को बढ़ानेवाले, महाराज परीक्षित् एक समय शिकार खेलने के लिए वन को गये। घोड़े पर चढ़े हुए राजा एक मृग का पीछा करते-करते वन में बहुत दूर निकल गये। राह चलने से थके और भूख-प्यास से व्याकुल राजा को सामने नीले रङ्ग का और भी गहन वन मिला। राजा ने उस वन के भीतर जाकर एक सुन्दर सरोवर देखा। वे घोड़े पर बैठे ही बैठे उस सरोवर के जल में घुस गये। स्नान और जलपान से तबियत ठिकाने होने पर वे घोड़े पर से उतर पड़े। घोड़े के आगे खाने के लिए कमल की जड़ें डालकर वे किनारे पर विश्राम करने लगे। इसी बीच में उन्हें किसी का गाना सुन पड़ा।

उस महावन में एकाएक मधुर गीत सुनकर राजा सोचने लगे कि इस स्थान पर किसी मनुष्य की गति नहीं देख पड़ती, फिर यह गाने का मधुर शब्द किसका है?

राजा ने उससे पूछा—हे भद्रे ! तुम कौन हो ।—पृ० १०६७

वे यों सोच ही रहे थे, इसी समय उन्होंने देखा कि एक परम सुन्दरी कन्या फूल चुनती हुई गाती जा रही है। नयनों को आनन्द देनेवाली वह ललना धीरे-धीरे राजा के पास पहुँच गई। तब राजा ने उससे पूछा—भद्रे, तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? उस कन्या ने कहा—राजन्, मैं कन्या हूँ; अभी मेरा विवाह नहीं हुआ। राजा ने कहा—हे सुन्दरी, तो तुम मुझे अपना पति बना लो। १८
कन्या ने कहा—यदि आप एक प्रतिज्ञा कर सकें तो मैं आपके साथ ब्याह कर सकती हूँ। राजा ने पूछा—वह प्रतिज्ञा क्या है? कन्या ने कहा—आप मुझे जल मत दिखाइएगा। राजा ने यह शर्त मान ली। उसके साथ ब्याह करके राजा वहीं आनन्द से विहार करने लगे। इसी समय पीछे छूटी हुई राजा की सेना वहाँ आ गई। राजा को पाकर उनके अनुचर और सैनिक बहुत प्रसन्न हुए।

अब राजा उस सुन्दरी को पालकी पर चढ़ाकर सेना सहित अपनी राजधानी में आये। घर आकर वे एकान्त में उसी सुन्दरी के साथ आनन्द से क्रीड़ा करने लगे। राजा उसपर ऐसे लट्टू हो गये कि रनिवास से बाहर निकलना उनके लिए कठिन हो गया। मन्त्री, पुरोहित आदि कर्मचारियों को उनके दर्शन दुर्लभ हो गये। एक दिन प्रधान मन्त्री ने राजा के पास रहनेवाली रानी की सहेलियों से पूछा—यहाँ तुम लोग क्या काम करती हो? उन्होंने कहा—यहाँ एक विचित्र बात हमें देख पड़ती है। महाराज के निवास-भवन में जल ले जाने की मनाही है। हम इसी बात की चौकसी रखती हैं कि कोई जल लेकर भीतर न जाने पावे।

उनके ये वचन सुनकर मन्त्री ने एक बाग़ लगवाया जिसमें अनेक वृक्ष और फूल-फल थे। बाग़ के भीतर, ऊपर से बन्द, एक बावली बनवाई। उसमें भीतर अमृत-सदृश मीठा पानी भरा था। वह ऊपर से मोतियों से ढकी हुई थी। अब मन्त्री ने एकान्त में राजा के पास जाकर कहा—महाराज, यह उपवन बड़ा ही सुन्दर है; इसमें पानी का नाम भी नहीं है। आप इसी में नई रानी के साथ कुछ दिन रहिए और सैर कीजिए। राजा ने मन्त्री की प्रार्थना स्वीकार कर ली। वे उस स्त्री के साथ उसी बाग़ में जाकर रहने और रमण करने लगे। एक दिन विहार करते-करते राजा को भूख

और प्यास लगी। इधर-उधर देखने पर उन्हें पास ही एक माधवी लता का कुञ्ज देख पड़ा।
२० रानी के साथ उस कुञ्ज के भीतर जाने पर राजा को वहीं निर्मल जल से भरी बावली देख पड़ी।
उसे देखकर राजा अपनी प्रतिज्ञा को भूल गये और उसी बावली के किनारे गये। राजा ने रानी से कहा—देवी, आओ इस बावली में घुसकर जल-विहार करें; बड़ी गर्मी और प्यास मालूम पड़ती है। राजा के कहने से रानी उसके भीतर घुस गई; पर गोता लगाकर वह छिप गई। रानी को, उसके बाहर निकलते न देखकर, राजा ने बहुत ढूँढ़ा किन्तु कुछ पता न चला। वह बावली भी फिर नहीं देख पड़ी। उसी स्थान पर, एक छेद के मोहरे पर, केवल एक मेढक देख पड़ा। राजा ने अपनी रानी के नाश का कारण उस मेढक को समझकर सब मेढकों की हत्या करने की आज्ञा दे दी। राजा ने कह दिया कि जो कोई मुझसे प्रार्थना करने आवे वह एक मरा हुआ मेढक भेंट करे; उसकी इच्छा पूरी की जायगी।

इस प्रकार चारों ओर मेढकों को मार डालने की आज्ञा फैल जाने पर मेढक बहुत डरे। उन्होंने अपने राजा मण्डूकराज के पास जाकर आदि से अन्त तक अपनी विपत्ति का हाल कहा। सब सुनकर, तपस्वी ब्राह्मण का रूप रखकर, मण्डूकराज राजा के पास गया। उसने कहा—

महाराज, आप क्रोध छोड़कर शान्तभाव धारण कीजिए। निरपराध मेढकों की हत्या कराना आपके योग्य काम नहीं है। यह आपका कर्त्तव्य भी नहीं है। मेरी बात मानिए, क्रोध शान्त करके मेढकों की हत्या बन्द करा दीजिए। मेढकों की हत्या करने से धन घटता है। आप निश्चय जानिए, मेढकों की हत्या कराने से आप अपनी प्रियतमा के वियोग-शोक को भूल नहीं सकते। व्यर्थ मेढकों की हत्या करने से, पाप बटोरने के सिवा, आपके हाथ और क्या लगेगा?

प्रियतमा के शोक से पीड़ित राजा परीक्षित् ने मण्डूकराज के वचन सुनकर कहा—मैं मेढकों को कभी क्षमा न करूँगा। मेढक ही मेरी प्रियतमा को खा गये हैं। इस कारण मैं पृथ्वी पर एक भी मेढक को
३० न रहने दूँगा। हे द्विजश्रेष्ठ, आप इस बीच में पड़कर मुझसे कुछ न कहिए। राजा के वचन

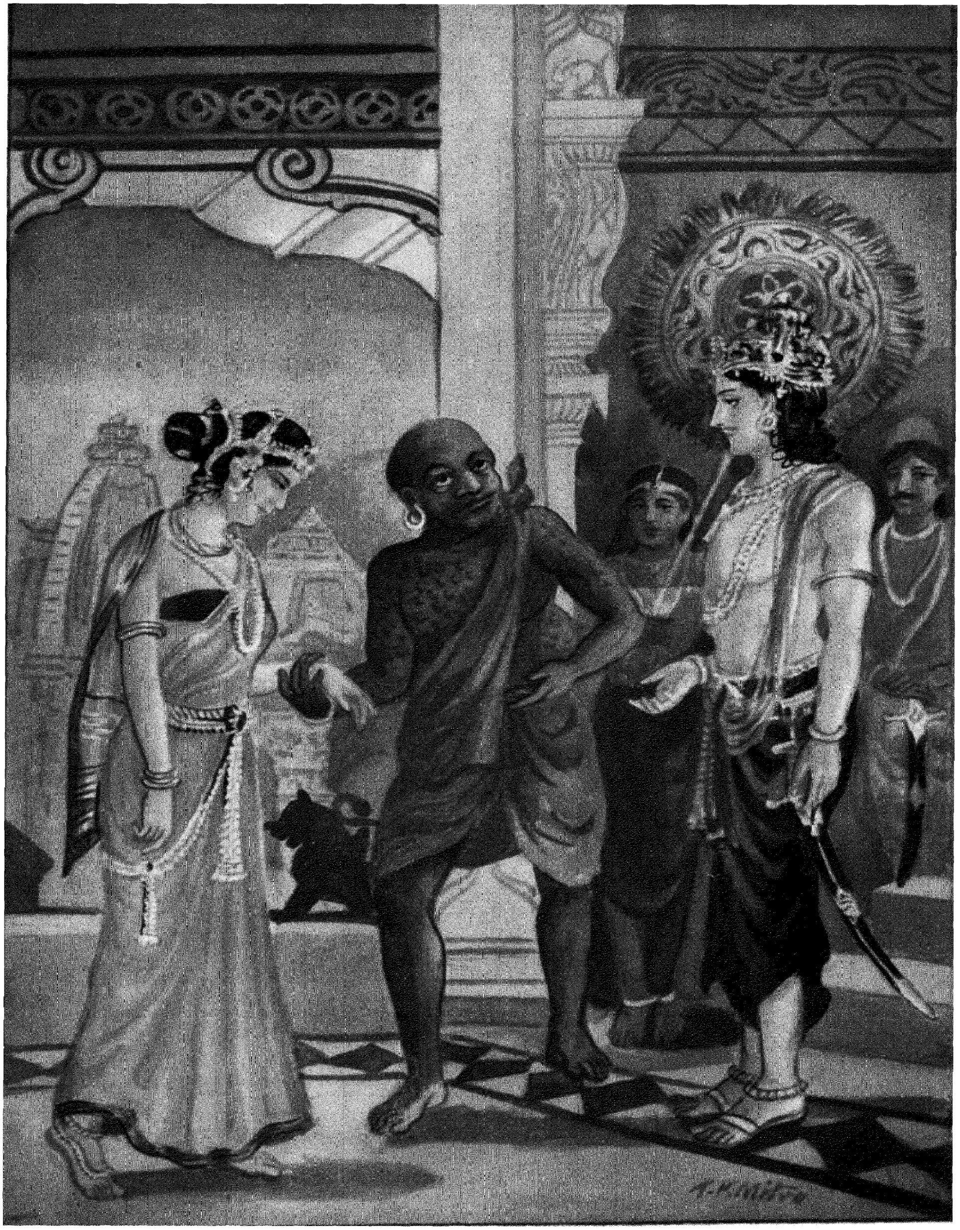

मण्डूकराज ने कहा—सुन सुशोभना ! महाराज की सेवा करती रहना । पृ० १०९९

सुनकर व्यथितहृदय मण्डूकपति ने फिर कहा— राजन्, शान्त और प्रसन्न हूजिए। मैं मेढकों का राजा हूँ; मेरा नाम आयु है। आपकी प्यारी रानी मेरी ही बेटी है। उसका नाम सुशोभना है। बुरा स्वभाव होने के कारण, आपसे पहले भी, वह इसी तरह कई राजाओं को धोखा दे चुकी है। यह सुनकर राजा ने कहा—मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ, वह अपनी कन्या मुझे दे दो।

राजा की प्रार्थना स्वीकार करके मण्डूकराज ने वह अपनी कन्या उन्हें दे दी और कह दिया—"सुन सुशोभना, महाराज की सेवा करती रहना।" इसके बाद कुपित मण्डूकराज ने उसे यह शाप भी दिया—तेरा स्वभाव दुष्ट है और तूने अनेक राजाओं को धोखा दिया है, इस कारण तेरे जो पुत्र होंगे वे ब्राह्मणों को न मानेंगे।

सुशोभना की रतिकला पर रीझे हुए राजा उसे पाकर ऐसे प्रसन्न हुए मानों उन्हें तीनों लोकों का राज्य मिल गया हो। मण्डूकराज को प्रणाम-सत्कार आदि से सन्तुष्ट करते हुए उन्होंने गद्गद वाणी से कहा—आपने मुझ पर बड़ी कृपा की। कन्या से बिदा होकर मण्डूकराज अपने स्थान को चल दिया।

कुछ दिन के बाद सुशोभना के गर्भ से राजा के शल, दल और बल नाम के तीन पुत्र पैदा हुए। बुढ़ापे की अवाई देखकर राजा ने बड़े पुत्र शल को राज्य दे दिया। शल को राजा बनाकर वे तप करने के विचार से वन को चले गये।

इधर महाराज शल एक दिन रथ पर चढ़कर शिकार खेलने के लिए वन को गये। वहाँ उन्होंने एक मृग का पीछा किया और सारथी से कहा—जल्दी रथ चलाओ। सारथी ने कहा—इस मृग को पकड़ने के लिए आपका इतना आग्रह व्यर्थ है। आप इसे नहीं पकड़ सकते। यदि आपके रथ में दोनों वाम्य घोड़े जुते होते तो आप इस मृग को पकड़ सकते थे। राजा ने पूछा—वाम्य घोड़े

५०

कौन और कहाँ हैं? अब तो सारथी बहुत डरा। यदि नहीं बताता है तो राजा से भय है, और बताये देता है तो वामदेव ऋषि से शाप का डर है। अन्त में उसने राजा को बता दिया

कि वाम्य अर्थात् वामदेव ऋषि के रथ के घोड़े बहुत बढ़िया हैं और वे हवा तथा मन की तरह तेज़ चलते हैं। तब राजा ने उससे कहा—अच्छा, तो वामदेव के आश्रम में मुझे ले चलो। सारथी शल को वामदेव के पास ले गया। शल ने जाकर मुनि से कहा—भगवन्, एक मृग मेरे बाण से घायल होकर भी भागा जा रहा है। कृपा करके अपने दोनों घोड़े मुझे दे दीजिए, मेरे इन घोड़ों में इतनी चाल नहीं है कि उसका पीछा कर सकें। महर्षि ने कहा—मैं तुमको अपने दोनों घोड़े इस शर्त पर दिये देता हूँ कि काम हो जाते ही मुझे लौटा देना। ऋषि की इस शर्त पर राज़ी होकर, उन घोड़ों को अपने रथ में जुतवाकर, राजा ने फिर उस मृग का पीछा किया। राह में राजा अपने सारथी से कहने लगे कि सारथी, ये दोनों घोड़े तो सचमुच अमूल्य रत्न हैं; किन्तु ये हम राजाओं के योग्य हैं, न कि वनवासी वामदेव के। इसलिए मैं ये घोड़े लौटाकर न दूँगा। उस घायल मृग का शिकार करके राजा अपनी राजधानी को चले आये। उन दोनों घोड़ों को उन्होंने अस्तबल में बँधवा दिया।

उधर वामदेव ऋषि मन में कहने लगे कि हा, कैसे कष्ट की बात है! वह नौजवान राजपुत्र मेरे बढ़िया घोड़ों को अपने यहाँ रखकर उनसे काम ले रहा है। अपने वादे का ख़याल न रखकर उसने अभी तक मेरे घोड़े नहीं लौटाये। एक महीना पूरा हो जाने पर वामदेव ने अपने शिष्य आत्रेय से कहा—पुत्र, तुम राजा शल के पास जाकर उनसे कहो कि जो उनका काम हो चुका हो तो मेरे दोनों घोड़े फेर दें। आत्रेय ने अपने आचार्य की आज्ञा के अनुसार राजा के पास जाकर दोनों घोड़े फेर देने के लिए कहा। राजा ने उत्तर दिया—ऐसे बढ़िया घोड़ों की ब्राह्मणों को क्या ज़रूरत? वे घोड़े तो राजाओं के ही योग्य हैं। आप लौट जाइए और अपने गुरु से यही कह दीजिए।

[राजा के ये वचन सुनकर आत्रेय वामदेव के पास लौट गये और सब हाल उनको कह सुनाया। राजा की बेईमानी देखकर] वामदेव को क्रोध आ गया। उन्होंने राजा के पास जाकर अपने घोड़े फेर देने के लिए कहा। राजा ने उनको भी वैसा ही उत्तर दिया और घोड़े न देने का विचार प्रकट किया। वामदेव ने कहा—राजन्! देखो, तुम्हारा काम हो चुका, अब मेरे दोनों घोड़े फेर दो। इसी में कुशल है। ऐसा न करो कि वरुणदेव घोर पाशों में बाँधकर तुम्हें मार डालें। ब्राह्मण और क्षत्रिय के अन्तर को मत भूलो।

राजा ने कहा—वामदेव, मैं तुम्हें ये सीधे शिक्षित बली बैल देता हूँ। ब्राह्मण के योग्य यही सवारी है। इनको रथ में जोतकर जहाँ जी चाहे जाओ। हे ऋषिवर, आप ऐसे ऋषियों के लिए वेदों में ऐसे ही वाहन की व्यवस्था है; उस व्यवस्था को तुम मेट नहीं सकते। वामदेव ने कहा—राजन्, हम ब्राह्मण लोग वेदविधान के अनुसार परलोक में बैल की सवारी पर जाते
५० हैं। किन्तु इस लोक में, हम ऐसे ब्राह्मणों की और क्षत्रियों की भी सवारी घोड़े ही हैं। राजा ने कहा—तो तुम अपने रथ में चार गधे, या हवा की तरह तेज़ चलनेवाले बढ़िया खच्चर अथवा

और घोड़े ही अपनी सवारी के लिए पसन्द कर लो। वे तुम्हारे रथ को लेकर चलेंगे। ये घोड़े क्षत्रियों की सवारी के ही योग्य हैं। इसलिए इनको अब अपनी चीज़ न समझकर मेरी समझो। वामदेव ने कहा—राजन्! तुम ब्राह्मण के धन को हर लेना चाहते हो, यह तुम्हारा काम बुरा है, अर्थात् इसका फल अच्छा नहीं हो सकता। जो तुम मेरे घोड़े न लौटाओगे तो मेरी आज्ञा से चार भयङ्कर राक्षस तीक्ष्ण लोहे के शूलों से तुम्हारे शरीर के चार टुकड़े कर डालेंगे। राजा शल ने कहा—तुम मुझे मारने की बात कह रहे हो; किन्तु उससे पहले मेरे ही आदमी, मेरी आज्ञा पाकर, पैनी तलवारों और शूलों से तुमको और तुम्हारे शिष्यों को मार डालेंगे। मन-वाणी-काया से मेरी आज्ञा का पालन करनेवाले लोग ब्राह्मण जानकर तुम्हें छोड़ न देंगे।

वामदेव ने कहा—राजन्, तुमने मुझसे घोड़े लेते समय उन्हें फेर देने की प्रतिज्ञा की थी। इसलिए यदि जीवित रहना चाहते हो तो मेरे दोनों घोड़े फेर दो। राजा ने कहा—हे ब्राह्मण, [ये दोनों घोड़े शिकारियों के लायक़ हैं और] ब्राह्मण लोग शिकार नहीं करते। इसी से मैं दोनों घोड़े तुमको नहीं देता। [इन घोड़ों के लिए हठ न करो।] मैं तुम्हारे कहे कठोर और मिथ्या वचनों को क्षमा करता हूँ। इसके सिवा और जो कुछ आज्ञाएँ तुम करो उन्हें, पुण्य लोक पाने की इच्छा से, मानने को मैं तैयार हूँ। वामदेव ने कहा—राजन्! मन, वाणी या काया से सम्बन्ध रखनेवाला कोई भी दण्ड ब्राह्मण को नहीं दिया जा सकता। इसके सिवा जो कोई तप करके ब्राह्मण जाति के महत्त्व को जानता है वही श्रेष्ठ विद्वान् है; ब्राह्मण की सेवा करनेवाला वही पुरुष जीवित रहता है।

मार्कण्डेय कहते हैं—महर्षि वामदेव के यों कहते ही त्रिशूल हाथ में लिये घोररूप चार राक्षस वहाँ पर प्रकट हो गये। वे जब मारने को तैयार हुए तब राजा ने ज़ोर से चिल्लाकर कहा—सब इक्ष्वाकुवंश के लोग, मेरा छोटा भाई और अन्य सब मेरे आज्ञाकारी लोग चाहे मुझे छोड़ दें, पर मैं वामदेव को घोड़े न दूँगा, क्योंकि ऐसे लोग धर्मात्मा कभी नहीं होते। राजा शल के यों कहते ही उन राक्षसों ने उन्हें मार डाला। राजा पृथ्वी पर गिर पड़े। तब इक्ष्वाकुवंश के लोगों ने राजा के मरने की ख़बर पाकर उनके भाई दल को राज्यासन पर बिठाया। अब वामदेव ऋषि

ने दल के पास जाकर कहा—राजन्! तुम जानते हो कि ब्राह्मण को देना राजा का सर्वथा कर्त्तव्य है,
६० यह बात शास्त्रों में लिखी है। इसलिए जो तुमको अधर्म का डर है तो मेरे घोड़े मुझे लौटा दो।

वामदेव के वचनों से अत्यन्त क्रुद्ध होकर दल ने अपने सारथी से कहा—सूत, एक विचित्र ज़हरीला बाण तो ले आ। मैं उससे वामदेव को मार डालूँगा। इनको कुत्ते नोच-नोचकर खायँगे। वामदेव ने कहा—राजन्! मैं जानता हूँ, तुम्हारी रानी के गर्भ से उत्पन्न, श्येनजित् नाम का, एक दस वर्ष का बालक है। तुम जो बाण मुझ पर चलाना चाहते हो वह तुम्हारे उसी बालक को लगेगा। मार्कण्डेय कहते हैं—हे धर्मराज, महर्षि के यों कहते ही दल के उस बाण ने रनिवास में जाकर उनके पुत्र को मार डाला। यह हाल सुनकर दल ने कहा—हे इक्ष्वाकुवंश के लोगो, एक और तेज़ बाण लाओ; मैं उससे इस ब्राह्मण को मारकर तुम्हारा प्रिय करूँगा। तुम मेरा पराक्रम देखो। इस पर वामदेव ने कहा—तुम जो ज़हरीला बाण मुझे मारने के लिए धनुष पर चढ़ाते हो उसे न तो तुम धनुष पर चढ़ा सकोगे और न छोड़ ही सकोगे। [वामदेव के वचनों के प्रभाव से ऐसा हो गया कि राजा बाण छोड़ ही नहीं सके।] बाण चलाने में असमर्थ होकर राजा ने कहा—इक्ष्वाकुवंशियो! देखो, यह हाथ में लिया हुआ बाण मैं वामदेव पर चला नहीं सकता। अब मैं वामदेव को मारना

नहीं चाहता। ये आयुष्मान् वामदेव जीवित रहें। वामदेव ने कहा—महाराज, इस बाण को रानी के शरीर में छुआ दो तो इस ब्रह्म-हत्या के पाप से छुटकारा पा जाओगे।

महाराज दल ने मुनि की आज्ञा से जाकर, रानी के शरीर में वह बाण छुआया। तब रानी ने वामदेव से कहा—ब्रह्मन्, मैं नित्य इस कठोर प्रकृति के स्वामी को शुभ उपदेश देकर ब्राह्मणों की बड़ाई करती हुई उनके अनुकूल बनाने की धुन में लगी रहती हूँ; इसके फल से मैं पवित्र लोक को जाऊँ। वामदेव ने
कहा—हे कमलनयनी, तुमने इस राजकुल को ब्रह्मकोप से बचा लिया। तुम मुझसे अपनी इच्छा
७० के अनुसार वर माँगो; मैं तुमको वही वर दूँगा। तुम इक्ष्वाकुवंश और राज्य का शासन करो।

रानी ने कहा—भगवन्, जो आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं आपसे यह वर माँगती हूँ कि मेरे स्वामी पाप से छुटकारा पा जायँ। अपने पुत्र और भाई-बन्धुओं के साथ मैं सकुशल जीवित रहूँ। मार्कण्डेय कहते हैं—हे धर्मराज, रानी के यों कहने पर वामदेव ने उसे ये दोनों वर दे दिये। पाप से
७२ छुटकारा पाकर महाराज दल ने मुनि को प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक वे दोनों घोड़े दे दिये।

एक सौ तिरानबे अध्याय

बक और दाल्भ्य का वृत्तान्त

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, तब ऋषियों और ब्राह्मणों सहित युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय ऋषि से पूछा—हे ऋषिवर तपस्वी बक क्यों चिरजीवी हुए ? मार्कण्डेय ने कहा—राजन्, महर्षि बक के दीर्घायु होने में कोई सन्देह नहीं है। इस पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं।

धर्मराज युधिष्ठिर ने महर्षि के ये वचन सुनकर कहा—हे ऋषिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी, मैंने सुना है कि बक और दाल्भ्य नाम के दो चिरजीवी ऋषि इन्द्र के सखा थे। त्रिभुवन में सब लोग उनका पूजन और सत्कार करते थे। आप सुख-दुःख की बातों से युक्त महर्षि बक और इन्द्र की मित्रता का हाल कहिए।

मार्कण्डेय ऋषि ने कहा—राजन्, भयानक देवासुर-संग्राम समाप्त हो जाने पर इन्द्र तीनों लोकों के राजा हुए। तब इन्द्र के राज्य में मेघ अच्छी तरह जल बरसाने लगे अन्न भी सर्वत्र अधिकता से उत्पन्न होने लगा। सब प्रजा नीरोग, हृष्टपुष्ट, प्रसन्न और अपने-अपने धर्म के पालन में तत्पर देख पड़ने लगी। अपनी प्रजा को सुखी जानकर इन्द्र को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे ऐरावत
हाथी पर सवार होकर अपनी प्रजा की दशा
देखने के लिए घूमने लगे। विविध विचित्र
आश्रम, पवित्र नदी, समृद्धिशाली नगर, खेट
(एक प्रकार के गाँव) और जनपद, उदपान
(जलाशय), ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणों से सेवित सरोवर
आदि की सैर करने और प्रजापालन में चतुर
धर्मात्मा राजाओं के देखने के लिए इन्द्रदेव पृथ्वी
पर आये। राजन्, यों विचरते हुए इन्द्र ने पूर्व ११
दिशा में समुद्र के पास जाकर अनेक प्रकार के
वृक्षों से शोभित और मृगों तथा पक्षियों से
पूर्ण एक रमणीय आश्रम देखा। उस आश्रम
में इन्द्र ने बक मुनि को देखा। महात्मा बक
ने भी इन्द्र को देखकर, प्रसन्न हो पाद्य, अर्घ्य,
आसन, फल-मूल आदि से उनका सत्कार
किया। वर देनेवाले इन्द्र ने आराम से बैठकर तपस्वी बक मुनि से कहा—मुनिवर, आपकी आयु लाखों वर्ष की हुई है। इसलिए आप यह बताइए कि चिरजीवी लोगों को क्या-क्या दुःख सहने पड़ते हैं ?

वक ने कहा—हे इन्द्र, चिरजीवन होने से दुष्ट लोगों के साथ रहना और उनसे व्यवहार करना पड़ता है, प्रिय लोगों का वियोग होता है। पुत्र, स्त्री, सजातीय और मित्रों का मरना देखकर शोक से व्याकुल होना पड़ता है। दूसरों के अधीन होना पड़ता है। इसलिए इससे बढ़कर दुःख और क्या हो सकता है? लोग निर्धन चिरजीवी पुरुष का तिरस्कार सहज ही कर
२० बैठते हैं। इसलिए चिरजीवन से बढ़कर दुःख मेरी समझ में है ही नहीं। कुलहीन लोग कुलीन बन जाते हैं, कुलीन लोग नीच हो जाते हैं; इन बातों को और लोगों के संयोग तथा वियोग को चिरजीवी लोग देखते हैं। ये बातें देखकर चिरजीवी को अत्यन्त क्लेश होता है। हे देव, यह तो आप प्रत्यक्ष देखते ही हैं कि कुलहीन होने पर भी धनी लोग कैसे कुलीन बन बैठते हैं। देवता, दानव, गन्धर्व, मनुष्य, नाग और राक्षस आदि सब विपरीत भावों को धारण करते हैं। इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या होगी? सत्कुल में उत्पन्न पुरुष नीच कुलवालों के वश में होकर अत्यन्त क्लेश भोगते हैं और धनाढ्य लोग ग़रीबों का अनादर करते हैं। इससे बढ़कर और क्या दुःख होगा? अज्ञानी पुरुष सुख पाते हैं और ज्ञानी बुद्धिमान् लोग दुःख भोगते हैं। इस लोक में मनुष्य-जन्म के बीच तरह-तरह के उलट-फेर देखे जाते हैं।

इन्द्र ने कहा—हे महाभाग, देवता और ऋषि भी आपकी पूजा करते हैं। अब मुझसे आप यह कहिए कि चिरजीवी लोगों को कौन सा सुख मिलता है।

वक ने कहा—हे देवराज, जो कोई कुमित्रों का आश्रय छोड़कर अपने घर में दिन भर के बाद साग भी पकाकर खा लेता है वह बड़ा सुखी है। उसे कोई बहुत खानेवाला पेटू नहीं कहता। अपने पराक्रम से किसी के आश्रित न होकर, फल और साग भी अपने घर में खाना अच्छा है; क्योंकि उसमें किसी के आगे दीनता नहीं दिखानी पड़ती। नित्य अनादर सह-कर पराये घर में पकवान और मिठाई खाना भी अच्छा नहीं। साधु पुरुष इसी को अच्छा समझते हैं। जो दीन दुरात्मा कुत्ते की तरह पराया दिया अन्न खाने की इच्छा रखता है उसे
३० और उसके उस खाने को धिक्कार है। जो कोई अतिथि, सेवक, पितर आदि को पहले देकर पीछे बचा हुआ अन्न खाता है वह द्विजों में श्रेष्ठ है। उसके इस सुख से बढ़कर दूसरा सुख ही नहीं है। हे इन्द्र, अतिथि आदि के सत्कार से बचा हुआ अन्न बहुत पवित्र और उत्तम आहार है। अतिथि और ब्राह्मण लोग अन्न के जितने दाने खाते हैं उतने ही सहस्र गोदान का फल खिलानेवाले को मिलता है उसके जवानी के किये सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो कोई अपने घर आये हुए अभ्यागत या ब्राह्मण को भोजन कराकर दक्षिणा देता है और जल से हाथ धुलाता है वह उसी दम अपने सब पापों से छुटकारा पा जाता है।

महाराज, ये और ऐसी-ऐसी बहुत सी बातें हो चुकने पर इन्द्र वक ऋषि से बिदा
३६ होकर अपने लोक को चले गये।

एक सौ चौरानबे अध्याय

राजा शिवि का माहात्म्य

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, पाण्डवों ने फिर महर्षि मार्कण्डेय से कहा—ब्रह्मन्, हम आपसे महर्षि ब्राह्मणों की महिमा सुन चुके; अब आप राजर्षियों की महिमा का वर्णन कीजिए।

मार्कण्डेय ऋषि ने कहा—अच्छा, अब मैं तुम्हारे आगे राजाओं की महिमा का बखान करता हूँ, सुनो। कुरुवंशी महाराज सुहोत्र एक समय महर्षियों के लोक में उनसे मिलने गये थे। वहाँ से लौटते समय राह में उनको उशीनर के पुत्र महाराज शिवि मिल गये। दोनों ने परस्पर एक दूसरे का सत्कार किया; किन्तु दोनों अपने को अवस्था और गुणों में समान मानकर रास्ते से दबने के लिए तैयार नहीं हुए। आमने-सामने रथ किये डटे रहे। कोई किसी को रास्ता देने के लिए तैयार नहीं हुआ। इसी समय देवर्षि नारद विचरते हुए वहाँ पहुँच गये। नारदजी ने यह हाल देखकर उनसे पूछा—यह क्या! तुम दोनों एक दूसरे की राह रोके हुए क्यों खड़े हो?

दोनों ने कहा—प्राचीन धर्मशास्त्र की व्यवस्था देनेवालों ने कहा है कि जो अपने से किसी बात में विशेषता रखता हो या बली हो, उसी को दबकर राह दे देनी चाहिए। पर हम दोनों मित्र सब बातों में बराबर हैं। हमने विचारकर देखा है, हममें कुछ भी भेद नहीं है।

हे धर्मराज, तब नारदजी ने सुहोत्र से कहा—राजन्, जब क्रूर के साथ कोमल प्रकृतिवाले की और असाधु के साथ साधु की मित्रता देखी जाती है, तब साधु के साथ साधु का सुहृद्भाव क्यों न होना चाहिए? हे कौरव, अपने साथ किये गये बर्ताव से सौगुना अच्छा व्यवहार करना चाहिए। देवता भी सदाचार का

निर्णय नहीं कर सकते। मैं कहता हूँ कि तुम्हारी अपेक्षा महाराज शिवि का शील (चरित्र) अच्छा है। जो कोई कुछ देकर दुष्ट को, सत्य बोलकर असत्यवादी को, क्षमा करके क्रूर कर्म करनेवाले को और अच्छे व्यवहार से असाधु को अपने वश में कर लेता है वही साधु है। हे नरेश, तुम दोनों का स्वभाव उदार है। तुम दोनों में से एक को हटकर राह छोड़ देनी चाहिए। हे कौरव, तुममें से जो श्रेष्ठ हो वह दूसरे को राह दे दे; यही श्रेष्ठता और विशेषता का चिह्न है।

बस, नारदजी चुप हो गये। तब कुरुवंशी सुहोत्र ने शिवि की प्रदक्षिणा की और आप हटकर उनको राह दे दी। दोनों राजा एक दूसरे का सम्मान करके अपने-अपने स्थान को
८ गये। महाराज, देवर्षि नारद ने इस प्रकार राजा शिवि की महिमा का वर्णन किया है।

एक सौ पञ्चानवे अध्याय

राजा ययाति का माहात्म्य

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, अब नहुष के पुत्र राजा ययाति का वृत्तान्त सुनो। राजा ययाति एक समय राजसभा में बैठे थे और सब पुरवासी भी वहाँ पर थे। इसी समय गुरुदक्षिणा देने के लिए धन माँगने को एक ब्राह्मण उनके पास आया। राजा ने उससे पूछा—भगवन्, आपकी प्रतिज्ञा अर्थात् इच्छा क्या है? ब्राह्मण ने कहा—महाराज, संसार में सभी लोग याचक को द्वेष की दृष्टि से देखते हैं। इसी लिए मैं आपसे पहले यह पूछता हूँ कि आप मेरी इच्छा के अनुसार धन देने के लिए राज़ी होंगे?

राजा ने कहा—दान के योग्य याचक को द्वेष की दृष्टि से देखने की कौन कहे, मैं दान करके फिर किसी से उसकी चर्चा तक नहीं करता। किन्तु याचना न करनेवाले को मैं देना भी पसन्द नहीं करता। भगवन्, दान के योग्य सुपात्र व्यक्ति यदि याचना करने आता है तो मैं उसे अपना सर्वस्व देने से भी नहीं हिचकता। उसमें मुझे बुरा नहीं मालूम होता, बल्कि परम सुख होता है। याचना करनेवाला ब्राह्मण मुझे बहुत

प्रिय है। याचना करनेवाले पर मैं कभी कोप नहीं करता और दिये हुए धन के लिए पीछे पछतावा भी नहीं करता। इसलिए मैं आपको एक हज़ार श्रेष्ठ गायें देता हूँ।

राजा ने इतना कहकर उस ब्राह्मण को एक हज़ार उत्तम गायें दे दीं। वह ब्राह्मण भी उनको लेकर प्रसन्न होता हुआ चला गया। ६

एक सौ छियानवे अध्याय

राजा सेदुक और वृषदर्भ की कथा

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, फिर राजा युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय से कहा—हे महाभाग, आप कृपा करके और भी राजाओं की महिमा का वर्णन कीजिए। मार्कण्डेय ने कहा—राजन्, अस्त्र-शस्त्र-विशारद नीतिज्ञ सेदुक और वृषदर्भ नाम के दो राजा थे। वृषदर्भ बचपन से ही उपांशुव्रतधारी थे, अर्थात् गुप्तदान किया करते थे। उनका यह भी नियम था कि सोने-चाँदी के सिवा और कुछ नहीं देते थे। यह बात सेदुक को मालूम थी।

एक वेदपाठी तपस्वी ब्राह्मण ने सेदुक के पास जाकर, आशीर्वाद देकर, गुरुदक्षिणा देने के लिए उनसे एक हज़ार घोड़े माँगे। सेदुक ने कहा—मैं तुमको गुरुदक्षिणा के लिए कुछ भी नहीं दे सकता। तुम राजा वृषदर्भ के पास जाओ। वे बड़े ही धर्मात्मा हैं; तुम उनसे माँगो। वे अवश्य तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगे। उनका यह उपांशुव्रत है।

तब उस ब्राह्मण ने वृषदर्भ के पास जाकर हज़ार घोड़े माँगे। राजा वृषदर्भ ने उस ब्राह्मण को कोड़ों से पीटा। इस पर उस ब्राह्मण ने उनसे कहा—मैं निरपराध ब्राह्मण हूँ; मुझे क्यों मार रहे हो? यह कहकर जब वह ब्राह्मण शाप देने के लिए तैयार हुआ तब राजा ने कहा—ब्राह्मण, जो कोई तुम्हें दान देने में असमर्थ हो, या अपना धन न दे, उसे शाप देना क्या ठीक है? क्या यह शान्तिप्रिय ब्राह्मण का धर्म है? १०

ब्राह्मण ने कहा—हे राजाधिराज, राजा सेदुक ने मुझे आपके पास भिक्षा माँगने के लिए भेजा है। मैं उन्हीं के कहने से आपके पास भिक्षा माँगने आया हूँ।

राजा ने कहा—अच्छा, आज दोपहर तक जो धन मुझे राज्य से प्राप्त होगा वह सब मैं तुमको दे दूँगा। जिसे कोड़ों से मारा है उसकी प्रार्थना कैसे निष्फल जा सकती है?

राजा ने उस दिन की सब आमदनी ब्राह्मण को दे दी। वह आमदनी हज़ार घोड़ों के मूल्य से भी अधिक थी। १३

एक सौ सत्तानबे अध्याय

राजा शिवि की कथा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—हे धर्मराज, अब दानी शिवि राजा का चरित्र सुनो। एक समय देवताओं में यह बातचीत हुई कि हमें पृथ्वी पर जाकर उशीनर के पुत्र महाराज शिवि की [साधुता और उदारता की] परीक्षा करनी चाहिए। अग्नि और इन्द्र शिवि की परीक्षा लेने के लिए तैयार हुए और पृथ्वी पर आये। अग्नि ने कबूतर का रूप रक्खा और इन्द्र ने बाज़ का। कबूतर भागता हुआ सभा में बढ़िया सिंहासन पर बैठे हुए राजा शिवि की गोद में जाकर गिर पड़ा। शिकारी बाज़ भी मांस के लिए उसका पीछा करता हुआ वहाँ पहुँचा।

यह दृश्य देखकर पुरोहित ने राजा से कहा—राजन्, यह कबूतर बाज़ के डर से जान बचाने के लिए आपकी शरण में आया है। किन्तु पण्डितों ने कहा है कि इस तरह कबूतर का आकर गिरना घोर अनिष्ट का कारण होता है। आप चक्रवर्ती राजा हैं इसलिए ब्राह्मणों को धन आदि देकर इस उत्पात की शान्ति कर डालिए।

उधर कबूतर ने राजा से कहा—राजन्, मैं बाज़ के डर से प्राण बचाने के लिए आपकी शरण में आया हूँ। मैं असल में कबूतर नहीं, एक स्वाध्यायनिरत तपस्वी ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय पाप-रहित मुनि हूँ। मैंने कभी अपने गुरु के विरुद्ध कुछ नहीं कहा है। मुझे छन्द और वेदों का पूरा ज्ञान है। मैंने वेदों को पढ़ा है और मैं उनका पाठ करता हूँ। मैं श्रोत्रिय ब्राह्मण हूँ; मुझे आप बाज़ के मुँह में न दे दीजिएगा। आप मेरे प्राणों की रक्षा करनेवाले होने के कारण मेरे प्राणतुल्य हैं। जो आप मुझे बाज़ के मुँह में दे देंगे तो अच्छा न होगा।

इस पर बाज़ ने राजा से कहा—राजन्, यह जीव अनेक योनियों में घूमा करता है। जान पड़ता है, आप पहले इसी कबूतर से पैदा हुए होंगे; तभी तो इस कबूतर की रक्षा कर रहे
१० हैं। किन्तु मैं आपसे कहता हूँ कि मेरे आहार में विघ्न न डालिए।

राजा ने कहा—पक्षियों को ऐसी स्पष्ट मनुष्यभाषा में बातचीत करते कभी किसी ने देखा-सुना न होगा। इस कबूतर और बाज़ की बातें सुनकर मैं बड़े असमञ्जस में पड़ गया हूँ। क्या करूँ, जिसमें अच्छाई और धर्म हो। शास्त्रों में लिखा है कि जो डरे हुए और शरणागत की रक्षा न करके उसे उसके शत्रु के हवाले कर देता है उसके राज्य में समय पर वर्षा नहीं होती और समय पर बोया हुआ बीज नहीं उगता। विपत्ति पड़ने पर उसे कहीं आश्रय नहीं मिलता। उसकी प्रजा नाटी और अल्पायु होती है। उसके पितर स्वर्ग में नहीं रहने पाते। देवता उसका दिया हुआ हव्य नहीं ग्रहण करते। वह ओछे विचार और दुर्बल हृदयवाला पुरुष तुरन्त स्वर्गलोक से भ्रष्ट हो जाता है। देवगण सहित इन्द्र उसको वज्र मारते हैं। उसका खाना-पीना सब निष्फल है। इसलिए हे श्येन, तुम इस कबूतर को छोड़ दो। मैं इसके बदले में

तुमको भात और बैल का मांस पकवाकर दूँगा। जहाँ रहना तुमको बहुत पसन्द हो वहाँ जाकर तुम रहो; वहाँ मेरी आज्ञा से शिविवंश के लोग तुम्हारे भोजन के लिए मांस पहुँचावेंगे।

बाज़ ने कहा—राजन्, मैं इस कबूतर के सिवा बैल आदि किसी का मांस नहीं खाना चाहता। देवताओं ने खाने के लिए आज मुझे यह कबूतर ही दिया है। यही मेरा आहार है। इसी को मैं लूँगा; आप मुझे यही दे दीजिए।

राजा ने कहा—हे बाज़, मैं अपने सब आदमियों के सामने तुमको खाने के लिए समूचा बैल या बाँझ गाय देता हूँ। तुम इस डरे हुए शरणागत कबूतर को मत मारो। मैं अपने प्राण चाहे दे दूँ, पर इस शरणागत कबूतर को नहीं छोड़ सकता। तुम इसके लिए वृथा क्लेश न करो; मैं इसे तुम्हारे हाथ में न सौंपूँगा। देखो, जो काम करने से मेरी प्रजा प्रसन्न होकर वाह-वाह करे और तुम्हारा भी प्रिय हो, वह काम करने के लिए मुझसे कहो; मैं अवश्य उसे करूँगा।

इस पर बाज़ ने कहा—राजन्, अच्छा तो आप अपनी दाहिनी जाँघ से इस कबूतर के बराबर तुला हुआ मांस, अपने हाथ से, काटकर मुझे खाने के लिए दीजिए। ऐसा करने से मेरा प्रिय कार्य होगा, शरणागत कबूतर की जान बचेगी और पुरवासी भी आपकी बड़ाई करेंगे। २०

तब महाराज शिवि ने तराज़ू मँगाकर एक ओर कबूतर को बिठाया और दूसरी ओर अपनी दाहिनी जाँघ से मांस काटकर रक्खा; पर वह उतना मांस कबूतर के बराबर न हुआ। राजा ने फिर मांस काटकर रक्खा, तब भी कबूतर का पल्ला भारी रहा। इसी तरह शिवि ने सारे शरीर का मांस काट-काटकर चढ़ा दिया; किन्तु वह तौल में कबूतर के बराबर न हुआ। अन्त को राजा स्वयं तराज़ू पर बैठ गये। राजा ने प्रसन्नतापूर्वक अपना शरीर भी शरणागत की रक्षा के लिए दे दिया। यह देखकर वह श्येन "राजा के लिए असाध्य कुछ नहीं है" और "कबूतर की रक्षा हो गई" कहता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

बाज़ के अन्तर्धान हो जाने पर राजा ने कहा—हे कबूतर, ये पुरवासी तुमको कबूतर ही जानते हैं। मैं तुमसे पूछता हूँ कि यह बाज़ कौन था। यह कोई असाधारण जीव जान पड़ता है; क्योंकि जो असमर्थ है वह ऐसा काम नहीं कर सकता।

कबूतर ने कहा—राजन्, मैं तो अग्नि हूँ; और बाज़ का रूप रक्खे हुए साक्षात् इन्द्र थे। हम दोनों तुम्हारी परीक्षा लेने आये थे। सो हमने तुमको अपने धर्म में पक्का पाया। तुमने मेरी रक्षा के लिए खड्ग से जो अपनी जाँघ का मांस काटकर दिया है वह मेरे वरदान से तुम राजाओं का सुवर्ण-वर्ण, अत्यन्त पवित्र, सुगन्धयुक्त राजचिह्न होगा। राजन्, तुम्हारे इस दक्षिण पार्श्व से प्रजापालक, यशस्वी, देवताओं के आदर का पात्र एक पुत्र होगा। उसका नाम कपोतरोमा होगा। हे शिवि, तुम्हारे शिथिल शरीर से प्रकट होनेवाला वह पुत्र तुम्हारे कुल में प्रधान, शूर और यशस्वी होगा। वह महाबली पराक्रमी पुत्र तुम्हारे आनन्द को बढ़ावेगा। यह कहकर अग्निदेव भी अन्तर्द्धान हो गये। २८

एक सौ अट्ठानबे अध्याय

राजा शिवि के माहात्म्य का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, महाराज युधिष्ठिर ने फिर राजाओं के माहात्म्य का वर्णन करने के लिए कहा तब मार्कण्डेय ने कहा—हे धर्मराज, सुनो। विश्वामित्र के पुत्र अष्टक के अश्वमेध यज्ञ में सब राजा और प्रतर्दन, वसुमना, औशीनर शिवि नाम के उनके तीनों भाई आये थे। यज्ञ समाप्त होने पर एक दिन महाराज अष्टक अपने तीनों भाइयों के साथ रथ पर सवार होकर स्वर्ग को जा रहे थे। इसी समय रास्ते में उन्हें देवर्षि नारद मिले। उन्होंने नारदजी को प्रणाम करके उनसे रथ पर सवार होने के लिए प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना मान करके नारदजी रथ पर बैठ गये। तब उनमें से एक ने कहा—नारदजी, हम आपसे कुछ पूछना चाहते हैं। नारद ने कहा—पूछो। तब उनमें से एक ने कहा—हम सब अक्षय स्वर्ग को जायँगे। कृपा करके बताइए, हम चारों में से कौन पहले स्वर्ग से पृथ्वी पर आवेगा। नारद ने कहा—अष्टक आवेंगे।

तब उन्होंने पूछा—अष्टक क्यों सबसे पहले स्वर्ग से भ्रष्ट होंगे? नारदजी ने कहा—मैं एक दिन अष्टक के यहाँ अतिथि होकर रहा था। ये दूसरे दिन मुझे रथ पर बिठाकर जा रहे थे। मैंने मार्ग में रङ्ग-बिरङ्गी कई हज़ार गायों को चरते देखा। तब मैंने इनसे पूछा—ये गायें किसकी हैं? इन्होंने कहा—मैंने ही स्वर्ग पाने के लिए ये गायें ब्राह्मणों को दी हैं। इस प्रकार अपने मुँह से अपनी बड़ाई करने के कारण अष्टक को पहले स्वर्ग से भ्रष्ट होना होगा।

अब फिर उन लोगों ने नारदजी से कहा—हम तीन आदमी स्वर्गलोक को जायँगे तो हम तीनों में से पहले कौन पृथ्वी पर आवेगा? नारदजी ने कहा—प्रतर्दन को पहले आना पड़ेगा। इस पर फिर उनमें से एक ने पूछा—प्रतर्दन के पहले स्वर्ग से भ्रष्ट होने का क्या कारण है? नारदजी ने कहा—मैं एक दिन प्रतर्दन के घर भी रहा था। दूसरे दिन ये मुझे रथ पर बिठाकर ले चले। इसी समय मार्ग में एक ब्राह्मण ने इनसे आकर कहा—एक घोड़ा मुझे दीजिए।

इन्होंने उससे कहा—लौटकर दूँगा। उस ब्राह्मण ने कहा—नहीं, अभी दीजिए। तब इन्होंने रथ की दाहनी ओर का घोड़ा खोलकर उसे दे दिया। इतने में और एक ब्राह्मण ने आकर इनसे घोड़ा माँगा। इन्होंने उसको भी वही उत्तर दिया। फिर उसके भी उसी समय शीघ्र माँगने पर इन्होंने बाईं ओर का घोड़ा उसे दे दिया। फिर और एक ब्राह्मण ने आकर इनसे घोड़ा माँगा। इन्होंने लौटकर देने के लिए कहा। उसने कहा—नहीं, इसी समय दीजिए। तब इन्होंने तीसरा घोड़ा खोलकर दे दिया। उसके बाद और एक ब्राह्मण ने आकर घोड़ा माँगा। इन्होंने उससे भी पहले लौटकर देने के लिए कहा। उस ब्राह्मण ने कहा—नहीं, अभी दे दीजिए। तब इन्होंने चौथा घोड़ा भी खोलकर उसे दे दिया। उसके बाद ये रथ का धुरा पकड़कर आप रथ को ले चले और ब्राह्मणों से कहने लगे—अब मेरे पास कुछ नहीं रहा; मैंने सब दे डाला। नारद कहते हैं—जो कोई दान तो देता है, पर प्रसन्नता से नहीं देता, वह
कभी स्वर्ग पाने का अधिकारी नहीं होता। १०

इसके बाद बचे हुए दो भाइयों में से एक ने पूछा—नारदजी, हम दो भाई स्वर्गधाम को जायँगे तो हममें से कौन पहले पृथ्वी पर आवेगा? नारद ने कहा—वसुमना आवेंगे। उनमें से एक ने पूछा—वसुमना पहले पृथ्वी पर क्यों आवेंगे? नारद ने कहा—मैं एक समय घूमता हुआ वसुमना के घर गया था। उस समय राजा के सामने एक रथ मौजूद था। वह रथ पर्वत, आकाश, समुद्र आदि दुर्गम स्थानों में भी जा सकता था। ब्राह्मण लोग स्वस्तिपाठ कर रहे थे। मुझे भी ऐसे रथ की ज़रूरत थी। वह रथ ब्राह्मणों को दिखाया गया। मैंने भी उस रथ को देखकर उसकी बड़ाई की। राजा ने मेरी की हुई बड़ाई का अनुमोदन करते हुए कहा—आपने रथ की बड़ाई की सो ठीक ही है; यह रथ आपका ही है। इतना कहकर भी राजा ने वह रथ मुझे दिया नहीं।

मैं फिर एक समय वैसे ही पुष्परथ (पर्वत आदि दुर्गम स्थानों में जा सकनेवाले) की ज़रूरत से इनके यहाँ गया। उस समय भी मैंने रथ की बड़ाई की। राजा ने "यह आपका ही रथ है" कहकर मुझे टाल दिया; वह रथ नहीं दिया। तिबारा मैं फिर पुष्परथ की ज़रूरत से वसुमना के घर गया। उस समय भी स्वस्तिवाचन हो रहा था। मैंने फिर उस रथ की बड़ाई की। तब इन्होंने मेरी ओर देखकर उन ब्राह्मणों के सामने मुझसे कहा—भगवन्, आपने अपने आगमन से पुष्परथ के स्वस्त्ययन को सुसम्पन्न करके बड़ी कृपा की। इस प्रकार केवल स्तुति करके रथ न देने के कारण ये पहले स्वर्ग से भ्रष्ट होंगे।

तब उन चारों भाइयों ने कहा—यदि हममें से एक भाई (शिवि) और आप स्वर्ग को जायँगे तो पृथ्वी पर कौन पहले आवेगा? नारद ने कहा—मैं आऊँगा। इस पर उन्होंने इसका कारण पूछा। नारद ने कहा—मैं किसी तरह शिवि के समान नहीं हूँ। इसका कारण

सुनो। एक समय किसी ब्राह्मण ने महाराज शिवि के पास आकर कहा—राजन्, मैं भूखा हूँ। शिवि ने कहा—आज्ञा दीजिए, मैं क्या करूँ? उस ब्राह्मण ने कहा—आपके बृहद्गर्भ नाम का जो राजकुमार है उसे मारकर, उसका मांस पकाकर, मुझे खिलाइए तो मैं ठहरूँ।

राजा ने ब्राह्मण की इच्छा पूरी करना स्वीकार कर लिया। पुत्र को मारकर राजा ने उसका मांस पकाया और उसे बर्तन में रखकर वे अपने सिर पर लिये हुए उस ब्राह्मण के पास

गये। ब्राह्मण को उस स्थान पर न पाकर राजा इधर-उधर उसे खोजने लगे। इसी समय एक आदमी ने आकर कहा—राजन्, आप जिस ब्राह्मण को ढूँढ़ रहे हैं वह, देर होने से बहुत क्रोधित होकर, नगर के भीतर जाकर, आप के घर, कोषागार, शस्त्रशाला, रनिवास, घुड़साल, हस्तिशाला आदि सब स्थानों में आग लगा रहा है। यह असन्तोषजनक समाचार सुनकर भी न तो राजा के मुख पर कुछ विकार देख पड़ा और न उनके हृदय में किसी तरह का विकार उत्पन्न हुआ। राजा ने नगर में जा करके ब्राह्मण को देखकर कहा—भगवन्, आपके लिए भोजन तैयार है, लीजिए। राजा की ओर देखकर ब्राह्मण से कुछ कहते न बन पड़ा;
२० अचरज के मारे उसने सिर झुका लिया। यह देखकर राजा बारम्बार उस ब्राह्मण से भोजन करने के लिए प्रार्थना करने लगे। पल भर के बाद ब्राह्मण ने ऊपर आँख उठाकर देखा और शिवि से कहा—तुम्हीं इसे खाओ। शिवि ने तनिक भी उदास या क्रुद्ध न होकर ब्राह्मण की आज्ञा मान ली। बालक के सिर की हड्डी हटाकर ज्योंही राजा ने खाना चाहा त्योंही उस ब्राह्मण ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा—हे महाभाग, निस्सन्देह तुमने क्रोध को जीत लिया है। ऐसा कोई काम नहीं जिसे तुम ब्राह्मण के लिए नहीं कर सकते; ऐसी कोई चीज़ नहीं जो तुम ब्राह्मण को नहीं दे सकते।

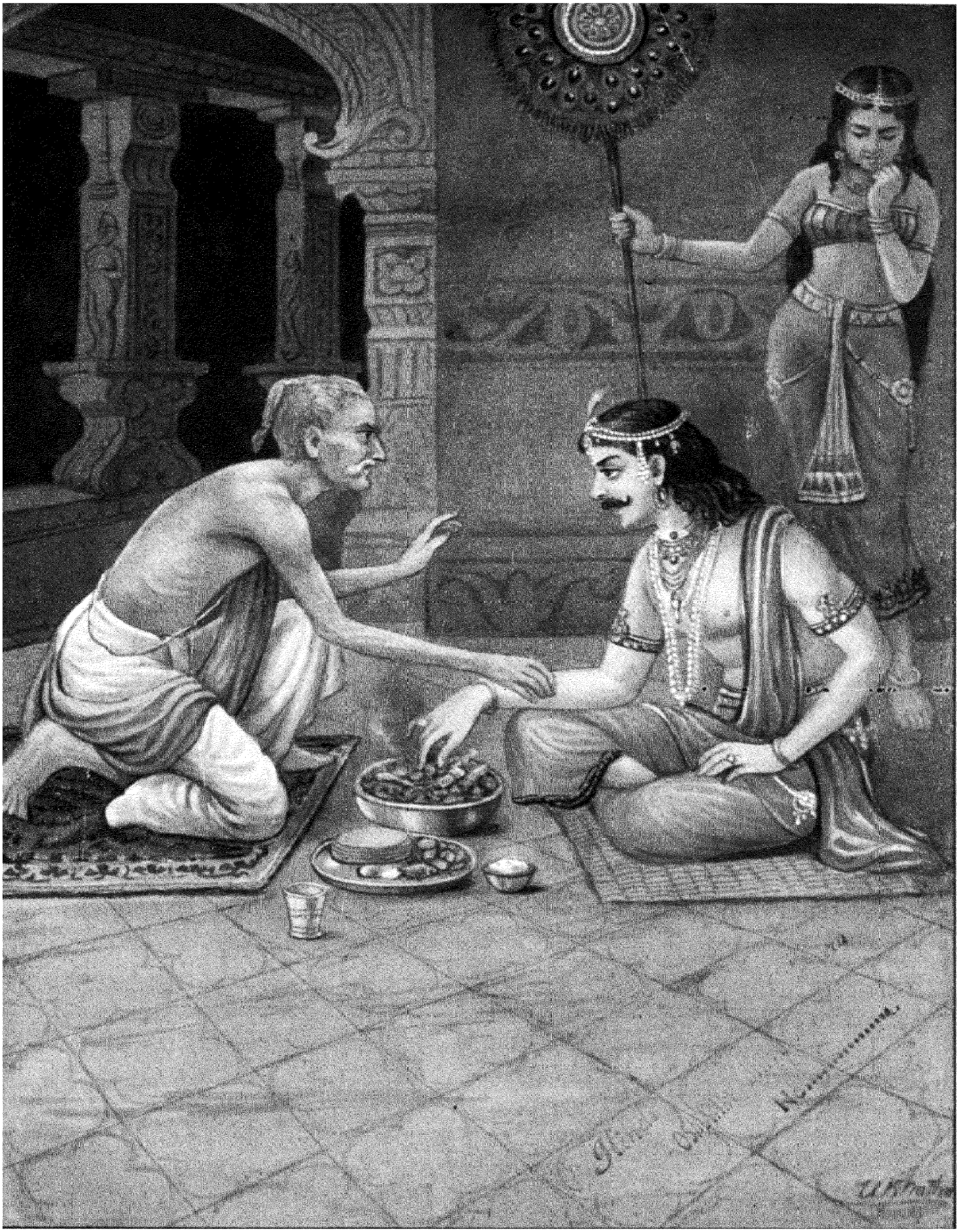

राजा शिवि ने हड्डी उठाकर ज्यों ही खाना चाहा वैसे ही ब्राह्मण ने उनका हाथ पकड़ लिया—पृ० १११२

उस ब्राह्मण ने राजा का बड़ा सत्कार किया। इसके बाद शिवि ने सामने देखा तो उन्हें पुण्यगन्धयुक्त, बढ़िया गहने और कपड़े आदि से शोभित वही बालक खड़ा देख पड़ा, जिसे वे ब्राह्मण के लिए मार चुके थे। इस प्रकार राजा को कृतार्थ करके वह ब्राह्मण वहीं अन्तर्द्धान हो गया। स्वयं विधाता, ब्राह्मण का रूप रखकर, राजा के धैर्य और धर्म की परीक्षा लेने आये थे।

ब्राह्मण के चले जाने पर मन्त्रियों ने राजा से कहा—राजन्, आप सब बातों को अच्छी तरह जानते हैं; फिर आपने यह काम क्या समझकर किया था? राजा ने कहा—मैंने यश के लिए, अर्थ के लिए या भोग की इच्छा से यह दान नहीं किया। यह मार्ग ऐसा है कि धर्मात्मा पुरुष के सिवा पापी इसमें पैर ही नहीं रख सकते। इसी लिए मैं ऐसे काम करता हूँ। सज्जन लोग सदा प्रशंसनीय काम किया करते हैं। इसी से सदा मेरी प्रवृत्ति प्रशंसनीय सत्कार्यों में ही होती है।

नारदजी ने कहा कि महाराज शिवि की इस महिमा को अच्छी तरह जानकर ही मैं कहता हूँ कि ये मुझसे भी श्रेष्ठ हैं*। २७

एक सौ निन्नानबे अध्याय

राजर्षि इन्द्रद्युम्न की कथा

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, मार्कण्डेयजी से पाण्डवों ने और ऋषियों ने पूछा—भगवन्, आपसे बढ़कर चिरजीवी कोई और है या नहीं? मार्कण्डेय ने कहा—हाँ, एक इन्द्रद्युम्न नाम के राजर्षि थे। वे पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से भ्रष्ट होकर मेरे पास आये। उन्होंने मुझसे कहा—महाभाग, इस समय मेरी सब कीर्ति लुप्त हो गई है। भला आप मुझको जानते हैं? मैंने उनसे कहा—मैं आपको नहीं जानता। हम लोग घूमते-घामते रहते हैं; ग्रामों में एक रात भर रहते हैं। लगातार तीर्थक्षेत्रों में घूमा करते हैं। पुण्यकार्यों में उलझे रहने के कारण हम लोग अपने ही सङ्कल्पों को भूल जाते हैं। यदि दैवयोग से स्मरण भी हुआ तो व्रत-उपवास आदि से होनेवाले शारीरिक क्लेश के कारण उन सङ्कल्पों का आरम्भ भी नहीं कर सकते। फिर आपको कैसे पहचान सकते हैं? मेरे यों कहने पर इन्द्रद्युम्न ने पूछा—हे महाभाग, आपसे बढ़कर और कोई चिरजीवी है या नहीं? मैंने कहा—हाँ, हिमाचल पर्वत पर प्रावारकर्ण नाम का एक उलूक

* इस अध्याय में दान के गुण-दोष दिखाये गये हैं। देकर अपनी बड़ाई करनेवाला, श्रद्धा के साथ न देनेवाला, माँगनेवाले की इच्छा जानकर भी कोरी बातों में याचक को टरका देनेवाला और श्रद्धा-क्षमा के साथ अकर्त्तव्य करके भी ब्राह्मण को उसकी माँगी वस्तु देनेवाला, दान के ये चार भेद दिखाये हैं। इनमें पहले से दूसरा, दूसरे से तीसरा और तीसरे से चौथा श्रेष्ठ है। अन्तिम प्रकार का दाता नारदजी से भी बढ़कर श्रेष्ठ है।

पक्षी है; वह मुझसे भी पुराना है। शायद वह आपको पहचान ले। आप चाहें तो उसके पास जा सकते हैं परन्तु हिमाचल यहाँ से बहुत दूर है।

मेरे यों कहने पर इन्द्रद्युम्न ने घोड़े का रूप रखकर मुझे अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। अब मुझे लिये हुए इन्द्रद्युम्न उस उलूक के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन राजर्षि ने उलूक से पूछा—तुम मुझको जानते हो? उलूक ने पलभर सोचकर कहा—महाशय, मैं आपको नहीं पहचानता। तब इन्द्रद्युम्न ने उससे पूछा—उलूक, तुमसे भी बढ़कर दीर्घजीवी कोई और है? उलूक ने कहा—हाँ, इन्द्रद्युम्न नामक सरोवर में नाड़ीजंघ नाम का एक बगला है। वह बगला मुझसे भी पुराना है। उससे जाकर पूछो। तब राजा इन्द्रद्युम्न मुझको और उलूक को लेकर उस बगले के पास गये।

इन्द्रद्युम्न सरोवर में जाकर हमने उस बगले पूछा—हे वक, तुम राजा इन्द्रद्युम्न को जानते हो? उसने दम भर सोचकर कहा—मैं राजा इन्द्रद्युम्न को नहीं जानता। तब हमने उससे पूछा—अच्छा बताओ, तुमसे बढ़कर प्राचीन और कोई है या नहीं? उस बगले ने कहा—हाँ, इसी सरोवर में अकूपार नाम का एक कछुवा रहता है, वह मुझसे भी दीर्घजीवी है। उससे पूछो। सम्भव है, वह इन्द्रद्युम्न को जानता हो।

अब वह बगला हम लोगों को लेकर उस कच्छप के पास पहुँचा। उस बगले ने कच्छप से कहा—हम तुमसे कुछ पूछने के लिए आये हैं; तुम हमारे पास आओ। यह सुनकर वह कच्छप हमारे पास आया। तब हमने उससे पूछा—हे अकूपार, तुम इन राजा इन्द्रद्युम्न को जानते हो? पलभर सोचने के बाद आँखों में आँसू भरकर, घबराकर, उसने काँपते-काँपते, हाथ जोड़कर कहा—हाँ, मैं इन राजर्षि को अच्छी तरह जानता हूँ। इन्होंने बड़े बड़े यज्ञ

करके हज़ारों बार पृथ्वी पर अग्निचयन कर्म में यज्ञयूप स्थापित किये हैं। इन्होंने जो असंख्य १०
गायें यज्ञों की दक्षिणा में दी थीं, उन्हीं के चलने-फिरने से खुदकर यह सरोवर बना है। मैं बहुत दिनों से इसमें रहता हूँ।

कच्छप के यों कहने पर उसी समय देवलोक से एक दिव्य रथ वहाँ पर आया। राजर्षि इन्द्रद्युम्न के लिए यह आकाशवाणी हुई कि महाराज, तुम्हारे लिए स्वर्ग का द्वार खुला है। तुम्हारी कीर्ति अभी पृथ्वी पर बनी है, इसलिए तुम बेखटके अपने योग्य स्थान में आकर रहो।

पुण्यात्मा मनुष्य की कीर्ति जब तक स्वर्ग में और पृथ्वी पर बनी रहती है तब तक वह स्वर्ग-सुख का अधिकारी रहता है। और, जिसकी अकीर्त्ति लोक में फैलती है वह, जब तक अकीर्त्ति रहती है तब तक, नरक में पड़ा रहता है। इसलिए मनुष्य को अनन्त स्वर्ग-सुख पाने के लिए सच्चरित और धर्मात्मा होकर पापकर्म से सदा बचते रहना चाहिए।

यह सुनकर धर्मात्मा राजर्षि ने कहा—जब तक मैं इन वृद्धों को इनके स्थान पर न छोड़ आऊँ तब तक ठहरो। अब वे उलूक को उसके स्थान पर और मुझे मेरे स्थान पर छोड़ आये। फिर उसी दिव्य रथ पर बैठकर वे स्वर्गलोक को गये। हे पाण्डवो, वे राजर्षि इन्द्रद्युम्न मुझसे भी प्राचीन हैं।

यह कथा सुनकर पाण्डवों ने मार्कण्डेय से कहा—भगवन्, आपने पुण्य क्षीण होने के कारण स्वर्ग से भ्रष्ट राजा इन्द्रद्युम्न को फिर स्वर्ग भेजकर बहुत ही अच्छा काम किया।

मार्कण्डेय ने कहा—पाण्डवो, इन श्रीकृष्ण ने भी गिरगिट की योनि में कष्ट भोगनेवाले
राजा नृग का उद्धार किया है; उन्हें फिर स्वर्गलोक को भेज दिया है। १८

दो सौ अध्याय

अनेक प्रकार के धर्मों का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, मार्कण्डेय के मुँह से इन्द्रद्युम्न के फिर स्वर्ग जाने का हाल सुनकर युधिष्ठिर ने पूछा—भगवन्, कैसी अवस्थाओं में दान देने से मनुष्य को स्वर्गलोक प्राप्त होता है? गृहस्थाश्रम में, बाल्यावस्था में, जवानी में या बुढ़ापे में दान देने से मनुष्य को क्या फल मिलता है?

मार्कण्डेय ने कहा—महाराज! पुत्रहीन का, धर्मभ्रष्ट का, पराया अन्न खानेवाले का और देवता-अतिथि-बालक आदि को न देकर केवल अपने ही लिए अन्न पकानेवाले का,—इन चार तरह के आदमियों का जन्म वृथा है। जो व्यक्ति जन्म भर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने की इच्छा प्रकट करके उससे पतित हो जाता है उसे दान देना व्यर्थ है। जो धन अन्याय से प्राप्त किया

जाय उसका दान भी निष्फल है। पतित, चोर, मिथ्यावादी गुरु, पापी, कृतघ्न, ग्रामयाजक (पुरोहित), वेद बेचनेवाला, शूद्र को यज्ञ करानेवाला, अपने आचरण और विद्या से रहित, शूद्र जाति की स्त्री का पति, इन ब्राह्मणों को दान देना व्यर्थ है। साँप को पकड़नेवाले और नौकरी करनेवाले को तथा स्त्री को दान देना अनुचित है। इस प्रकार इन सोलह दूषित दानों को शास्त्रकारों ने निष्फल बताया है। हे युधिष्ठिर, जो कोई मोहाभिभूत होकर डर से या क्रोध से दान करता है, वह गर्भस्थ होकर अपने दान के फल को भोगता है। अन्य दान का फल बुढ़ापे तक मिलता है। हे युधिष्ठिर, स्वर्ग-लोक जाने की इच्छा रखनेवाले पुरुष को सभी अवस्थाओं में ब्राह्मणों को दान देना चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहा—हे तपोधन, ब्राह्मण लोग चारों वर्णों का दान लेते हैं। फिर वे किस विशेषता के कारण औरों को तारते हैं और आप भी तरते हैं?

मार्कण्डेय ने कहा—ब्राह्मण लोग जप, मन्त्रपाठ, हवन और स्वाध्यायपाठ करके वेद की नाव बनाकर उसके द्वारा अपना और दूसरों का उद्धार करते हैं। जो कोई ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करता है उस पर सब देवता प्रसन्न होते हैं। ब्राह्मणों के वचन से ही लोग स्वर्गलोक पा सकते हैं। पितर-देवता आदि की आराधना और ब्राह्मणों की पूजा करने से मनुष्य अनन्त स्वर्गलोक पाता है। यदि मनुष्य मर रहा हो, गले में कफ का ज़ोर होने से घर्राटा लगा हो और होश न हो तो उस समय भी ब्राह्मणों की पूजा करने से उसे पवित्र स्वर्गलोक प्राप्त होता है। महाराज, पितृश्राद्ध के समय ऐसे ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए जो दूषित न हों। जिसका रङ्ग काला हो, जिसके नख काले और ख़राब हों, जो कोढ़ी, मायावी, कुण्ड और गोलक (पति के जीते रहने और मरने पर व्यभिचार से उत्पन्न) हो, जो धनुष-बाण धारण करता हो अर्थात् क्षत्रियवृत्ति से रहता हो, इन ब्राह्मणों को श्राद्ध में निमन्त्रण नहीं देना चाहिए। आग जैसे लकड़ी को जला देती है, वैसे ही ऐसे दूषित ब्राह्मणों को निमन्त्रण देने से दूषित हुआ श्राद्ध सब पुण्यों को नष्ट कर देता है। गूँगे, अन्धे और बहरे ब्राह्मणों को श्राद्ध में न्यौता देना मना है; परन्तु जो वे वेद-वेदाङ्ग के ज्ञाता विद्वान् हों तो उन्हें भी निमन्त्रण देना चाहिए। हे युधिष्ठिर, अब मैं तुमसे यह कहता हूँ कि कैसे ब्राह्मण को दान देना चाहिए और ऐसा ब्राह्मण कौन है जो अपने को और दाता को तार सकता है। महाराज, शास्त्रों का ज्ञान जिसने प्राप्त कर लिया है उसे ऐसे शक्तिशाली ब्राह्मण को दान देना चाहिए जिसमें अपने को और दाता को तारने की शक्ति हो। राजन्, अतिथि को भोजन कराने से अग्नि को जैसी तृप्ति होती है वैसी घृत का हवन करने से या फूल-चन्दन आदि चढ़ाने से नहीं होती। इसलिए हे पार्थ, तुम यत्नपूर्वक सदा अतिथि-भोजन का ध्यान रक्खा करो। जो लोग पैर धोकर, पैरों में घी मलकर, आरती करके, भोजन कराकर और आश्रय-स्थान देकर अतिथि-सेवा करते हैं वे यमराज के सामने नहीं

जाते। देवताओं के निर्माल्य को हटाना, ब्राह्मणों की जूठन उठाना, चन्दन-माला आदि अर्पण करना और उनके पैर दबाना, इनमें से हर एक काम का फल गोदान से बढ़कर है। हे युधिष्ठिर, ब्राह्मण को कपिला गऊ का दान करने से अवश्य मुक्ति मिलती है। इसलिए सब गहनों और सामग्रियों के साथ ब्राह्मण को कपिला गऊ देनी चाहिए। ग़रीब, गृहस्थ, अग्निहोत्री, पुत्र स्त्री आदि परिवार का पालन करने में अशक्त, वेदपाठी और जिसने अपना कोई उपकार न किया हो, ऐसे ब्राह्मण को गाय देनी चाहिए; मोटे असामी को नहीं। जो धनी है, जिसे ज़रूरत नहीं है, उसे देने से कोई लाभ नहीं है। एक ही ब्राह्मण को एक गाय देनी चाहिए। बहुतों को एक गाय देना ठीक नहीं। क्योंकि ऐसी दशा में वह गाय बिक जायगी। गाय बिकने पर, बेचनेवाले और देनेवाले दोनों की तीन-तीन पीढ़ियों को नरक में पहुँचा देती है। वह गाय न तो देनेवाले को तारती है और न उस ब्राह्मण को ही, जो उसे बेचता है। जो
पुरुष ब्राह्मण को बढ़िया सोना देता है, उसे उससे सौगुना सोना देने का फल मिलता है। जो ३०
कोई ब्राह्मण को बलवान् और बोझ ढोने में समर्थ बैल देता है, वह इस लोक में सब कष्टों से छुटकारा पाकर अन्त को स्वर्ग लोक में जाता है। जो कोई वेदज्ञ ब्राह्मण को पृथ्वी का दान करता है उसके सब मनोरथ पूरे होते हैं। राह की थकावट से विह्वल होकर जो अतिथि ब्राह्मण भोजन देनेवाले का घर पूछ रहे हों, जिनके पैरों पर धूल चढ़ी हुई हो, उनको जो कोई—स्वयं असमर्थ होने पर—अन्न देनेवाले का द्वार दिखा देता है वह परोपकारी पुरुष भी अन्नदाता के समान माना गया है। राजन्, इसलिए तुम और सब दानों को छोड़कर अधिकता के साथ अन्न का दान करो। इस लोक में अन्नदान के समान पुण्यकार्य दूसरा नहीं है। जो कोई शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को रसोई बनवाकर खिलाते हैं, वे उस पुण्य के बल से प्रजापति का लोक पाते हैं। अन्न ही सब पदार्थों से श्रेष्ठ है। अन्न ही प्रजापति है, अन्न ही संवत्सर है, अन्न ही यज्ञ है। संवत्सर-रूपी यज्ञ अर्थात् अन्न में ही सब जगत् स्थित है। अन्न से ही चराचर प्राणियों की उत्पत्ति है। इसी कारण अन्न सबसे श्रेष्ठ माना गया है। जो लोग गहरे जल से भरे तालाब, बावली, कुआँ, धर्मशाला आदि की स्थापना करते हैं, जो लोग मीठी वाणी
बोलते हैं और अन्नदान करते हैं उन्हें यमराज के वचन भी नहीं सुन पड़ते। जो लोग अपने ४०
परिश्रम से अन्न इकट्ठा करके सुशील ब्राह्मणों को वह अन्न देते हैं उन पर प्रसन्न होकर पृथ्वी देवी धन की वर्षा सी करती हैं। महाराज! अन्न देनेवाला, सत्यवादी और बिना माँगे प्रार्थी की इच्छा पूरी करनेवाला, ये तीनों एक ही लोक को जाते हैं। परन्तु अन्नदाता सबसे पहले, उसके बाद सत्यवादी और उसके बाद बिना माँगे देनेवाला जाता है।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, भाइयों सहित राजा युधिष्ठिर ने कौतूहलवश होकर महात्मा मार्कण्डेय मुनि से पूछा—भगवन्, मनुष्यलोक से यमलोक का मार्ग कितनी दूर है?

यमलोक कैसा है ? कितना बड़ा है ? किस उपाय से लोग वहाँ जाने से बच जाते हैं ? यह सब कहिए।

मार्कण्डेय ने कहा—हे युधिष्ठिर, तुम्हारा यह प्रश्न अत्यन्त गूढ़ है। यह पवित्र, ऋषियों द्वारा प्रशंसित और धर्मसम्मत है। विस्तार के साथ इसका उत्तर सुनो। राजन्, मनुष्यलोक से यमलोक छियासी हज़ार योजन पर है। वह आकाशमय, जलरहित, भयानक वन के तुल्य है। वहाँ उस राह से जानेवाले लोगों के विश्राम के लिए न तो वृक्ष की छाया है, न जलाशय हैं और न घर हैं। यमराज की आज्ञा का पालन करनेवाले दूत उसी राह से बलपूर्वक पृथ्वी पर के स्त्री-पुरुषों को अन्त समय ले जाते हैं। जिन लोगों ने यहाँ जो दान किये हैं वे उन्हीं दानों की सहायता से सुखपूर्वक उस राह को तय करते हैं। घोड़ा देनेवाले घोड़े पर चढ़कर और छतरी देनेवाले
५० छतरी लगाकर उस राह से जाते हैं [और राह की थकन तथा कड़ी धूप से बच जाते हैं]। अन्न देनेवाले तृप्त होकर और अन्नदान से विमुख लोग भूखे जाते हैं। कपड़े देनेवाले कपड़े पहनकर और वस्त्रदान न करनेवाले नङ्ग धड़ङ्ग ही जाते हैं। सोने का दान करनेवाले तरह-तरह के गहने पहनकर और भूमि-दान करनेवाले सब काम-भोग पाते हुए सुखपूर्वक जाते हैं। कच्चा अन्न देनेवाले सब क्लेशों से बचकर उस दुर्गम मार्ग के पार जाते हैं। घर का दान करनेवाले लोग विमान पर चढ़कर सुख भोगते हुए जाते हैं। जल-दान करनेवाले प्रसन्नचित्त होकर जाते हैं; उन्हें प्यास नहीं सताती। दीपदान करनेवाले उस मार्ग में उजेला फैलाते जाते हैं। गोदान करनेवाले सब पापों से छुटकारा पाकर सुख भोगते हुए जाते हैं। महीना भर उपवास करनेवाले हंसयुक्त विमान पर चढ़कर और छः दिन उपवास करनेवाले मयूरयुक्त विमान पर चढ़कर उस राह से जाते हैं। हे पाण्डव, जो लोग तीन दिन तक एक बार भोजन करते हैं, या एक दिन भोजन करते हैं और एक दिन उपवास करते हैं, वे नीरोग (आधिव्याधिरहित) लोकों को जाते हैं। इस प्रकार के नियमों का पालन करनेवाले पुण्यात्माओं को यमलोक में सुखदायक दिव्य गुणयुक्त जल पीने को मिलता है। वे वहाँ की पुष्पोदका नाम की नदी का ठण्डा अमृततुल्य पानी पीते हैं। वह नदी सब इच्छाओं की देनेवाली होने पर भी पापियों को पीब से भरी हुई देख पड़ती है—उन्हें उसमें पीब ही पीने को मिलती है।

हे राजेन्द्र, इसलिए तुम विधिपूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करो। जो राह चलने से थक गये हों, जिनके पैरों में धूल भरी हुई हो, जो अन्न देनेवाले का घर पूछते हों, अथवा अन्न पाने की
६१ आशा से द्वार पर आये हों, उनका सत्कार करो। वह अतिथि यदि ब्राह्मण न भी हो तो उसे ब्राह्मण समझना चाहिए। उसके साथ इन्द्र आदि सब देवता द्वार पर आते हैं। उसका सत्कार करने से सब देवता प्रसन्न होते हैं, और यदि वह निराश होकर लौट जाता है तो सब देवता भी हताश होकर फिर जाते हैं। राजन्, इससे तुम अतिथियों और ब्राह्मणों को भोजन

आदि देकर सदा उनका सत्कार करो। यह बात मैं तुमसे कई बार कह चुका हूँ। कहो,
अब क्या सुनना चाहते हो ?

युधिष्ठिर ने कहा—हे धर्मज्ञ, धर्मसङ्गत और सब पापों को हरनेवाली पुण्यकथा सुनने से
मेरा जी नहीं भरता। इसलिए धर्म के सम्बन्ध की बातें मैं और भी सुनना चाहता हूँ। मार्क-
ण्डेय ने कहा—महाराज, अब और धर्मों की बातें सुनो। वे बातें सब पापों को दूर करनेवाली
और पवित्र हैं। सब तीर्थों में श्रेष्ठ पुष्कर में कपिला गऊ देने से जो फल होता है वही फल
ब्राह्मण के पैर धोने से मिलता है। पृथ्वी जब तक ब्राह्मणों के चरण-जल से तर रहती है तब तक
पितर कमल के पत्तों से जल पीते हैं। अतिथि ब्राह्मण का स्वागत करने से अग्निदेव, आसन देने
से इन्द्र, पैर धोने से पितर और अन्न देने से प्रजापति तृप्त होते हैं। प्रसव के समय जब बछड़े
के पैर और सिर बाहर देख पड़ते हैं, किन्तु उसका पूरा शरीर गर्भ से बाहर नहीं निकलता, तब
वह गाय पृथ्वी के समान मानी गई है। उस समय पवित्रचित्त होकर वह आधी ब्याई हुई
गाय जो ब्राह्मण को देता है, उसे पृथ्वी-दान का फल मिलता है। उस बछड़े और गाय के ७०
शरीर में जितने रोएँ होते हैं उतने ही हज़ार युग तक दान करनेवाला स्वर्गसुख भोगता है।
सुवर्ण की नाक और खुरों से शोभित, अनेक अलङ्कारों और रत्नों से भूषित श्यामा गऊ को
उसके बराबर तिलों के साथ जो कोई किसी ब्राह्मण को देता है उसे अनन्त फल मिलता है।
और, उस गाय को, दान में लेनेवाला आदमी यदि अन्य किसी साधु पुरुष को दे देता है तो वह
पहले के दाता से अधिक फल का भागी होता है। उसे समुद्र, गुफा, पर्वत और वन आदि
सहित सम्पूर्ण पृथ्वी देने का फल प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण चुपचाप दोनों घुटनों के भीतर
हाथ करके उनसे भोजन का पात्र पकड़कर दूसरे के हाथ से भोजन करता है, जो जगत् में मदिरा-
पान आदि दोषों से बचा हुआ समझा जाता है और जो नित्य वेदसंहिता को पढ़ता है, इन
तीनों ब्राह्मणों में सदा औरों को उबारने की—तारने की—शक्ति है। हव्य और कव्य को
सदा वेदपाठी ग्रहण कर सकता है। प्रज्वलित अग्नि में होम करना और वेदपाठी ब्राह्मण को
भोजन कराना कभी निष्फल नहीं होता। ब्राह्मण शस्त्र के द्वारा प्रहार नहीं करते, उनका शस्त्र
क्रोध ही है। इन्द्र जैसे दानवों का संहार करते हैं वैसे ही ब्राह्मण भी क्रोध के द्वारा सर्वनाश
कर सकते हैं। हे निष्पाप, जिस पुण्यमयी कथा को सुनकर नैमिषारण्यवासी महर्षि शोक,
भय, क्रोध और पाप से बचकर प्रसन्न हुए थे, वह परम पवित्र पुण्यकथा मैंने तुमको सुना दी।
राजन्, यह कथा सुनने से मनुष्य को फिर यहाँ जन्म नहीं लेना पड़ता। ८०

युधिष्ठिर ने पूछा—हे धार्मिकश्रेष्ठ महाप्राज्ञ! वह शौच क्या है, जिससे ब्राह्मण सदा पवित्र
रहते हैं? यह मैं सुनना चाहता हूँ। मार्कण्डेय ने कहा—वाणी की पवित्रता, कर्मों की पवि-
त्रता और जल से होनेवाली पवित्रता, इन तीनों शौचों से युक्त ब्राह्मण निस्सन्देह स्वर्ग पाने का

अधिकारी है। जो ब्राह्मण साँझ-सबेरे, परम पुण्यदायिनी, वेदमाता गायत्री की उपासना और जप करता है, वह सन्ध्या-गायत्री का सेवक ब्राह्मण पापरहित रहता है। वह समुद्र-पर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी का दान लेकर भी तेजोहीन नहीं होता। सूर्य आदि पापग्रह आकाश में प्रतिकूल होने पर भी सदा उसके अनुकूल रहते हैं और उसका भला किया करते हैं। मांसभोजी दारुण राक्षस और अन्य घोर हिंसक प्राणी उस पर आक्रमण नहीं कर सकते। ऐसे ब्राह्मण जलती हुई आग के समान हैं। पढ़ाने, यज्ञ कराने अथवा अनुचित महादान लेने से भी उन्हें दोष नहीं छू सकता। राजन्, [सन्ध्या-गायत्री द्वारा उपासना करनेवाले] ब्राह्मण चाहे अच्छी तरह वेद को जानते हों चाहे न जानते हों, चाहे साधारण हों और चाहे संस्कारों से सुसंस्कृत हों, उनका अपमान कभी न करना चाहिए। वे राख से ढकी हुई आग के समान हैं। मसान की आग जैसे अपवित्र नहीं होती वैसे ही, विद्वान या अविद्वान, सब ब्राह्मण पूज्य देवता हैं। जिस नगर में ब्राह्मण नहीं हैं वह चहारदीवारी, फाटक और अनेक ऊँचे महलों से भरा रहने पर भी
९० भला नहीं देख पड़ता। नगर वही है जहाँ वेदपाठी, सच्चरित्र ज्ञानी और तपस्वी ब्राह्मण रहते हों। जहाँ बहुज्ञ ब्राह्मणों का निवास है, वह चाहे व्रज (गोशाला) हो और चाहे जङ्गल, वही नगर है—वही तीर्थ है। रक्षा करनेवाले राजा और तपस्वी ब्राह्मण की अभ्यर्थना तथा पूजा करने से मनुष्य के पाप तत्काल दूर हो जाते हैं। पण्डितों ने पवित्र तीर्थों में स्नान, पवित्र मन्त्रों का जप और सज्जनों से वार्तालाप, इन तीन बातों की प्रशंसा की है। सज्जन लोग साधु-समागम से पवित्र सुभाषितरूपी जल से सदा अपने को पवित्र मानते हैं। राजन्, यदि हृदय की शुद्धि नहीं हुई तो त्रिदण्ड-धारण, मौनव्रत, जटा रखाना या सिर मुड़ाये रहना, वल्कल-मृगछाला आदि पहनना, व्रत-नियम का आचरण, तीर्थस्नान, अग्निहोत्र, वन में रहना और पञ्चाग्नि आदि से शरीर को सुखाना आदि सब वृथा है। इन्द्रियगामी विषयों की शुद्धि के बिना उनका भोग सुकर है। भोग को विषयशुद्धि की आवश्यकता नहीं; क्योंकि वेश्या-सङ्ग आदि से भी भोग की सिद्धि हो सकती है। किन्तु भोग का त्याग उस विषयशुद्धि के बिना कठिन है; क्योंकि चक्षु आदि इन्द्रियों में विकार उत्पन्न करनेवाला मन अत्यन्त दुर्जय है। जो महात्मा मन, वाणी, कर्म और बुद्धि से पाप नहीं करते वे ही तपस्वी हैं; तरह-तरह से कष्ट देकर शरीर को सुखाना तप नहीं है। जिसे पुत्र आदि अपने पोषणीय परिवार पर दया नहीं है, जो उन्हें भूखों मरता छोड़-
१०० कर वन में जाकर शरीर को कष्ट देता है, उसका वह तप, तप नहीं, हिंसा है। केवल भूखों मरना और पञ्चाग्नि तापना तप नहीं कहलाता। जो घर में रहकर भी मुनियों की तरह पवित्र-हृदय और मनुष्योचित गुणों से युक्त होकर सब जीवों पर दया रखता है वह पापों से छुटकारा पाता है। भोजन न करने आदि से मनुष्य के पापकर्म नष्ट नहीं होते; केवल रक्त-मांसमय शरीर को कष्ट ही मिलता है। शास्त्र में जिनका उल्लेख नहीं है ऐसे स्वयं-कल्पित (तप्त शिला पर

बैठना आदि) कर्म करने से पाप नहीं दूर होता, निरा क्लेश ही हाथ लगता है। चित्तशुद्धि से हीन मनुष्य के कर्मों या उनके फलों को आग नहीं जला सकती। अपने पुण्यबल से ही मनुष्य की चित्तशुद्धि होती है। कन्द-मूल-फल या वायु का आहार करने, मौनव्रत धारण करने, सिर मुड़ाने, घर-द्वार छोड़ देने, जटा रखाने, खुले मैदान में पड़े रहने, नित्य उपवास करने, पञ्चाग्नि तापने, पानी के भीतर रहने या पृथ्वी पर सोने से मनुष्य को उत्तम गति नहीं मिलती। ज्ञान प्राप्त कर उसके अनुसार चित्तशुद्धि-पूर्वक आचरण करने से ही जरा-मरण-व्याधि आदि से छुटकारा होता और उत्तम गति मिलती है। जैसे आग में भुने हुए बीजों में फिर अंकुर नहीं निकलता, वैसे ही ज्ञान की आग से जल जाने पर अविद्याकृत क्लेश आत्मा को नहीं छू सकते। किन्तु आत्मज्ञान से हीन लकड़ी के घर ऐसे शरीर, महासागर में फेने के समान, सहज ही नष्ट हो जाते हैं। सब प्राणियों के हृदय में स्थित आत्मा का ज्ञान जिसने एक श्लोक या आधा श्लोक पढ़कर ही प्राप्त कर लिया है उसे फिर अनेक शास्त्र पढ़ने का
१० कोई प्रयोजन नहीं रहता। "तत्त्वम्" इन दो अक्षरों से लेकर श्लोक-पद-युक्त सैकड़ों हज़ारों शास्त्रों और उपनिषदों का मतलब केवल आत्मज्ञान है। "मैं ब्रह्म हूँ" यह विश्वास ही मोक्ष का लक्षण है। जो संशय में पड़ा है उसका यह लोक और परलोक कुछ भी नहीं बनता; उसे सुख नहीं मिलता। ज्ञानी वृद्धों का कहना है कि विश्वास ही मोक्ष का लक्षण है। जो मनुष्य वेदों के अर्थ और प्रयोजन को, अर्थात् आत्मज्ञान और चित्त-शुद्धि को, अच्छी तरह जानता है वह वैदिक कर्मकाण्ड से उसी तरह घबराता है जैसे दावानल से सब लोग भागते हैं। हे युधिष्ठिर, तुम रूखे तर्क को छोड़कर श्रुति और स्मृति का आश्रय लो। श्रुतियों द्वारा सिद्ध तर्कों से एकाक्षरतत्त्व (ॐ) जानने की इच्छा करो। परन्तु यह याद रक्खो कि चित्त-शान्ति, इन्द्रियदमन आदि साधनों में उलट-फेर होने पर तत्त्व-बुद्धि अच्छी तरह पक्की नहीं होती। इसलिए, यत्न के साथ, वेद का विषय जो परमात्म-तत्त्व है उसका ज्ञान प्राप्त करो। वेद ही उस तत्त्व का शरीर है। वेद ही तत्त्वज्ञान प्राप्त करने का प्रधान उपाय है। आत्मा नपुंसक के समान है। तत्त्वबुद्धि के बिना उसका ज्ञान नहीं होता। देवताओं की आयु और कर्मों का शुभाशुभ फल आदि बातें वेद में कही गई हैं। वह वेदोक्त देवताओं की आयु, कर्मों का फल और शरीरधारियों का प्रभाव हर युग में देखा जाता है। मनुष्य को चाहिए कि चित्त-शुद्धि-पूर्वक इन्द्रियों को शान्त करके कर्मों के सिलसिले को तोड़ने का यत्न करे। चित्त और इन्द्रियों को उनके विषयों से रोकना, अर्थात् वासनाओं का त्याग ही यथार्थ अनशन व्रत है; भूखे रहना नहीं। राजन्, सारांश यह है कि तप से स्वर्ग, दान से भोग और तत्त्वज्ञान से मोक्ष मिलता है। तीर्थस्नान करने से पापों का नाश होता है।

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, महायशस्वी युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय से कहा—भगवन्, विशेष दान-धर्म सुनने के लिए मेरा जी चाहता है, कृपा कर सुनाइए। मार्कण्डेय ने कहा—

२० राजेन्द्र, तुमने जो दान-धर्म का विषय मुझसे पूछा वह गौरवयुक्त और मुझे प्रिय है। श्रुति-स्मृति-कथित दानों का रहस्य सुनो। गुरुवार को जब अमावस होती है तब पीपल के पेड़ के नीचे, नदी के समीप, जो श्राद्ध आदि कर्म किये जाते हैं उनका फल एक लाख कल्प तक कम नहीं होता। जो कोई ब्राह्मण को भोजन के लिए गीला अन्न और द्रव्य देकर अपने यहाँ टिकाता है उसे सब यज्ञ करने का फल मिलता है। जहाँ नदी का उलटा प्रवाह हो (अर्थात् जिस नदी का प्रवाह पूर्वमुख है वह नदी जहाँ पश्चिमवाहिनी हो) वहाँ ब्राह्मण को विचित्र वाहन (उत्तम घोड़े) और अन्न देने से इन्द्र प्रसन्न होते हैं। जैसे नाव के द्वारा मनुष्य नदी के पार चला जाता है वैसे ही इन दानों से मनुष्य पापों से छुटकारा पाता है। तुला और मेष की संक्रान्ति में दही और तोड़ (दही का पानी) का दान देने से उसका फल अक्षय होता है। किसी पर्व के समय करने से हर एक दान का दूना फल होता है। ऐसे ही ऋतुकाल में दसगुना फल होता है। मिथुन, कन्या और मीन की संक्रान्ति के अवसर पर और 'ग्रहण' के समय दान का अक्षय फल होता है। जिसने भूमि-दान नहीं किया वह पृथ्वी का भोग नहीं कर सकता और जिसने सवारी का दान नहीं किया वह सवारी पर नहीं चढ़ सकता। इस जन्म में जो-जो पदार्थ ब्राह्मणों को दिये जाते हैं, उस जन्म में वे ही पदार्थ भोग के लिए मिलते हैं। सोना अग्नि का पुत्र है, पृथ्वी विष्णु की कन्या है और गाय सूर्य की बेटी है। इसलिए जो कोई इन तीनों वस्तुओं का दान करता है, उसे त्रिभुवन के दान का फल मिलता है। दान से बढ़कर अक्षय फलदायक और कोई कर्म नहीं है। दान से ही सबका भला होता है। इसी से बुद्धिमानों ने
१२९ दान को सब कर्मों में प्रधान कहा है।

दो सौ एक अध्याय

राजर्षि धुन्धुमार के उपख्यान का आरम्भ

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महर्षि मार्कण्डेय के मुँह से राजर्षि इन्द्रद्युम्न के स्वर्गलाभ का वृत्तान्त सुनकर राजा युधिष्ठिर ने उन धर्मात्मा दीर्घजीवी तपोवृद्ध मुनि से पूछा—हे महाभाग! आप देवता, दानव, राक्षस, मनुष्य, नाग, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, अप्सरा आदि की दिव्य कथाओं को और अनेक राजाओं तथा ऋषियों के वंशों को जानते हैं। मैं आपसे यह सुनना चाहता हूँ कि इक्ष्वाकुवंश के कुवलाश्व राजा का नाम धुन्धुमार कैसे पड़ा। कृपा करके यह वृत्तान्त मुझे सुनाइए।

राजा युधिष्ठिर के पूछने पर महर्षि मार्कण्डेय धुन्धुमार की कथा यों कहने लगे—हे युधिष्ठिर, मैं धुन्धुमार का पवित्र चरित्र तुमसे कहता हूँ। इक्ष्वाकुवंशी राजा कुवलाश्व का जिस
१० प्रकार धुन्धुमार नाम पड़ा सो सुनो। हे भरतश्रेष्ठ, उतङ्क नाम के एक सुप्रसिद्ध महर्षि थे। सुन्दर

मरुधन्व प्रदेश में उनका आश्रम था। उन्होंने विष्णु की आराधना करने के लिए हज़ारों वर्षों तक कठिन तपस्या की। उस तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उनके आगे प्रकट हुए। उन्हें देखते ही अत्यन्त विनीत भाव से महर्षि उतङ्क स्तुति करने लगे।

उन्होंने कहा—हे देव! तुमने देवता, दैत्य, मनुष्य आदि सब चराचर जगत् और वेदों को बनाया है। हे विभो, आकाश तुम्हारा सिर है। चन्द्रमा और सूर्य तुम्हारे नेत्र हैं। वायु तुम्हारी साँस है। हे अच्युत, अग्नि तुम्हारा तेज है। दिशाएँ तुम्हारी भुजा हैं। महासमुद्र तुम्हारी कोख है। हे देव, पर्वत तुम्हारे ऊरु हैं। हे मधुसूदन, अन्तरिक्ष तुम्हारी जङ्घा है। पृथ्वी तुम्हारे चरण हैं। सब ओषधियाँ तुम्हारे रोम हैं। इन्द्र, चन्द्र, अग्नि वरुण, देवता, असुर, नाग, महाशक्तिशाली योगी और महर्षिगण विनीत होकर स्तोत्रों से तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे जगदीश्वर, सब प्राणियों में तुम रमे हुए हो। तुम्हारे सन्तुष्ट होने पर सब जगत् प्रसन्न होता है और तुम्हारे रूठने पर सब

जगह डर ही डर है। हे पुरुषोत्तम, तुम्हीं एक सब तरह के डर को दूर करते हो। तुम्हीं २०
देवता, मनुष्य आदि सब प्राणियों को सुख देते हो। हे देव, तुमने तीन प्रकार के विक्रम से तीनों लोकों को धारण कर रक्खा है। समृद्धिशाली दानवों का नाश भी तुम्हीं ने किया है। देवताओं ने तुम्हारे ही प्रभाव से शान्ति पाई है। हे महातेजस्वी, तुम्हारे क्रुद्ध होने से ही बड़े-बड़े दैत्य परास्त हुए हैं। तुम्हीं सब प्राणियों की उत्पत्ति और संहार करते हो। तुम्हारी आराधना के प्रभाव से ही देवताओं का सुखपूर्वक अभ्युदय होता है।

महात्मा उतङ्क के यों स्तुति करने पर विष्णु भगवान् ने प्रसन्न होकर उनसे कहा—मैं तुम पर प्रसन्न हूँ; वरदान माँगो। उतङ्क ने कहा—मुझे यही यथेष्ट वर प्राप्त हो गया कि पुराणपुरुष,

हरि, जगत् की सृष्टि करनेवाले, प्रभु के दर्शन मिल गये। विष्णु ने कहा—तुम्हारी अटल भक्ति को देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ; इसलिए तुम अवश्य मुझसे कुछ वरदान माँगो।

हे युधिष्ठिर, वरदान देने के लिए विष्णु भगवान् का आग्रह देखकर उतङ्क ने, हाथ जोड़कर, कहा—हे कमलनयन, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वर दीजिए कि सत्य, धर्म और इन्द्रिय-दमन में लगातार मेरी बुद्धि स्थिर रहे। और, हे ईश्वर, मैं भक्तिपूर्वक सदा आपकी उपासना में लगा रहूँ।

भगवान् ने कहा—हे द्विज, मेरे प्रसाद से तुम्हारे ये सब मनोरथ पूरे होंगे। तुम
३० योगबल के प्रभाव से तीनों लोकों के उपकार का एक बड़ा भारी काम करोगे। त्रिभुवन को पीड़ित और नष्ट करने के लिए धुन्धु नाम का एक महाबली असुर घोर तप करेगा। उसे तुम्हारे शासन से और मेरे योगबल के प्रभाव से, इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न प्रबल प्रतापी महाराज बृहदश्व के पुत्र जितेन्द्रिय कुवलाश्व राजा मारेंगे। धुन्धु असुर को मारने के कारण उनका
३४ नाम धुन्धुमार होगा। भगवान् विष्णु इतना कहकर अन्तर्द्धान हो गये।

दो सौ दो अध्याय

उतङ्क का राजा बृहदश्व के पास जाकर धुन्धु दैत्य को मारने की प्रार्थना करना

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, महाराज इक्ष्वाकु का स्वर्गवास होने पर उनके पुत्र धर्मात्मा शशाद अयोध्या की राजगद्दी पर बैठे। शशाद के पुत्र पराक्रमी ककुत्स्थ हुए। ककुत्स्थ के पुत्र अनेना हुए। अनेना के पृथु हुए। पृथु के पुत्र विष्वगश्व हुए और विष्वगश्व के अद्रि और अद्रि के पुत्र युवनाश्व हुए। युवनाश्व के पुत्र श्रावस्त हुए जिन्होंने श्रावस्ती नगरी बसाई। श्रावस्त के पुत्र महाबली बृहदश्व हुए। बृहदश्व के पुत्र कुवलाश्व हुए। महाराज कुवलाश्व के इक्कीस हज़ार पुत्र हुए। वे सब बली और विद्वान् थे। कुवलाश्व अपने पिता बृहदश्व से भी बढ़कर गुणी हुए। बृहदश्व ने अपने पुत्र को परमधार्मिक और शूर देखकर यथासमय उनका राज्याभिषेक कर दिया। इस प्रकार पुत्र को राजलक्ष्मी सौंपकर बुद्धिमान राजा बृहदश्व तप करने के लिए वन को चल दिये।

उधर उतङ्क ऋषि ने जब सुना कि राजा बृहदश्व वानप्रस्थी होकर वन को जा रहे हैं तब वे उनके पास गये। राजधानी में पहुँचकर उतङ्क मुनि ने सब अस्त्रों को अच्छी तरह जाननेवाले
१० महाराज बृहदश्व को वन जाने से रोकते हुए कहा—महाराज, प्रजा की रक्षा करना आपका कर्त्तव्य है; उसी कर्त्तव्य का पालन कीजिए। हम लोग आपके प्रताप से बेखटके रहते हैं। आपके बाहुबल से रक्षित यह पृथ्वी सब तरह की आपत्तियों से बची हुई है; प्रजा सुखी है। इसलिए आप वन को न जाइए। राजन्, प्रजापालन करने से आपको बड़ा पुण्य होगा। वैसा

शेषशायी विष्णु—पृ० ११२४

धर्म वन में रहकर तप करने से नहीं हो सकता। इसलिए आप वन को जाने का विचार छोड़ दीजिए। हे नरदेव, पूर्व समय में जितने राजर्षि हो गये हैं उन सबने प्रजापालन के लिए ही बड़ी भारी चेष्टा की है। राजेन्द्र, क्षत्रिय के लिए ऐसा या इससे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है। शास्त्र कहता है, राजा को प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। इसलिए आप प्रजा की रक्षा कीजिए। सुनिए, मैं इस समय बेखटके होकर तप नहीं करने पाता। राजन्, मेरे आश्रम के समीप सम-तल मरुधन्व प्रदेश में कई योजन लम्बा और कई योजन चौड़ा बालुकापूर्ण समुद्र उज्जालक नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ पृथ्वी के नीचे मधु-कैटभ का पुत्र धुन्धु नाम का एक भयानक असुर रहता है। वह बड़ा पराक्रमी है। उस दैत्य को मारकर फिर आप वन जाने की तैयारी कीजिए। सब लोकों के पितामह ब्रह्मा को तप से प्रसन्न करके धुन्धु ने ऐसा वर माँग लिया है कि उसके
प्रभाव से देवता, दैत्य, राक्षस, नाग और गन्धर्व, कोई उसे नहीं मार सकता। वहाँ रहकर २१
वह सब देवताओं और लोकों के नाश का उपाय किया करता है। आप शीघ्र उसे मारने का निश्चय कर लीजिए। उस दुष्ट दानव को मारने से आपको ऐसी कीर्त्ति प्राप्त होगी जो युग-युगान्तर तक बनी रहेगी। वह क्रूर दानव बालू के भीतर पड़ा सोया करता है। जब वर्ष पूरा होता है, तब वह एक भयानक साँस छोड़ता है। उस साँस से बहुत धूल उड़ती है; वह धूल आकाश तक छा जाती है। यही नहीं, उससे दारुण भूकम्प भी होता है, जो सात दिन तक बराबर बना रहता है। वन-पर्वत-सहित पृथ्वी काँप उठती है; धुआँ, चिनगारियाँ और आग की ज्वालाएँ चारों ओर फैल जाती हैं। राजन्, उसके इस उपद्रव के समय मुझसे अपने आश्रम में नहीं ठहरा जाता। आप, मेरे और सब लोकों के हित के लिए, उस दुष्ट को मारिए। उस दैत्य के मारे जाने पर सब लोग स्वस्थ हो जायँगे। मैं समझता हूँ कि आप उसे मार सकते हैं। उसे मारने के लिए जब आप तैयार होंगे तब विष्णु भगवान् अपने तेज से आपके तेज को बढ़ा देंगे। विष्णु भगवान् मुझे यह वर दे चुके हैं कि जो कोई उस दैत्य को मारने के लिए तैयार होगा उसके तेज को मैं अपने तेज से अधिक दुर्द्धर्ष बना दूँगा। इसलिए हे राजेन्द्र, आप उस दुस्सह विष्णुतेज को पाकर मेरी आज्ञा से दारुण धुन्धु दैत्य का वध कीजिए। थोड़े
तेज और पराक्रमवाला पुरुष सौ वर्ष में भी उस दानव को नहीं मार सकता। ३१

दो सौ तीन अध्याय

मधु-कैटभ का वृत्तान्त

मार्कण्डेय कहते हैं कि हे राजर्षिश्रेष्ठ युधिष्ठिर, उतङ्क के यों कहने पर महाराज बृहदश्व ने हाथ जोड़कर उनसे कहा—ब्रह्मन्, आपका यहाँ तक आना व्यर्थ नहीं होगा। राजकुमार

कुवलाश्व धीर, वीर, अद्वितीय बलवान् और फुर्तीला है। वह अपने सब शूरवीर पुत्रों के साथ जाकर आपका प्रिय कार्य पूरा करा देगा। ब्रह्मन्, मैं इस समय शस्त्रों का त्याग कर चुका हूँ; इसलिए मुझे वन जाने की आज्ञा दीजिए। उतङ्क ने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली। राजा बृहदश्व अपने पुत्र कुवलाश्व से उतङ्क का प्रिय कार्य करने के लिए कहकर वन को चले गये।

युधिष्ठिर ने कहा—हे तपोधन, यह महाबलवान् असुर कौन था? किसका पुत्र और किसका पोता था? ऐसा महाबली दैत्य तो मैंने और कोई सुना नहीं। मैं यह सब हाल विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ।

मार्कण्डेय ने कहा—हे महाप्राज्ञ, मैं उस दैत्य का सब वृत्तान्त विस्तार के साथ कहता हूँ, सुनिए। प्रलय के समय सब चराचर जगत् पानी में डूब गया था। कोई प्राणी या प्रकाश नहीं रह गया था। चारों ओर जल ही जल था। उस समय सब लोकों के एकमात्र ईश्वर, अनादि, अनन्त नारायण भगवान् उस जल के ऊपर—शेष-शय्या पर—योगनिद्रा में लेटे हुए थे। यह पृथ्वीमण्डल शेषनाग के फन से तकिये की तरह लगा हुआ था। भगवान् विष्णु की नाभि से सूर्य के समान प्रकाशमान एक दिव्य कमल प्रकट हुआ। उस कमल से सूर्यसदृश तेजस्वी, लोक-गुरु, चतुर्वेदरूप, चतुर्वर्गमय, चतुर्मूर्ति, चतुरानन ब्रह्मा प्रकट हुए। वे महाबली और पराक्रमी थे। उनका तेज ऐसा था कि कोई उन पर हमला करने की हिम्मत नहीं कर सकता था।

कुछ समय के बाद वहाँ मधु और कैटभ नाम के दो महापराक्रमी दैत्य भी उपस्थित हुए। उन्होंने देखा कि कई योजन लम्बे और कई योजन चौड़े नाग की शय्या पर हज़ार सूर्यसदृश तेजस्वी, अद्भुतरूप, किरीट-कौस्तुभ-पीताम्बर आदि पहने नारायण लेटे हुए हैं और उनकी नाभि से निकले हुए कमल पर ब्रह्मा विराजमान हैं। तब वे पराक्रमी महाबली असुर ब्रह्मा को डरवाने लगे। उनके द्वारा बार-बार डराये जाने पर महायशस्वी ब्रह्मा ने डरकर उस कमल को हिलाया। तब योगनिद्रा में पड़े हुए नारायण जाग पड़े। उन्होंने योगनिद्रा से उठकर अपने सामने उन दोनों महाबली दानवों को देखा। विष्णु ने स्वागत-प्रश्न करके उन दानवों से कहा—हे महाबली दानवो, मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ, इसलिए तुम मुझसे कोई श्रेष्ठ वर माँगो। तब उन महाबली घमण्डी असुरों ने हँसकर नारायण से कहा—हे देव, हम दोनों स्वयं वरदान दे सकते हैं; इसलिए तुम कुछ सोच-विचार न करके जो चाहो सो वर हमसे माँग लो। भगवान् ने कहा—हे वीरो, तुम बड़े बलवान् हो; तुम्हारे समान कोई वीर पुरुष नहीं है। इस कारण लोकहित के लिए मैं तुमसे यही वर माँगता हूँ कि तुम दोनों मेरे हाथ से मारे जाओ।

मधु और कैटभ ने कहा—हे देवश्रेष्ठ, हमने हँसी में भी झूठ बात नहीं कही है। हम दोनों को सत्य और धर्म बड़ा प्रिय है। हम बल, रूप, तपस्या और चरित्र में अद्वितीय हैं। इसलिए हम कभी यह वर देना अस्वीकार न करेंगे। हे केशव, इस समय यह

इसी समय राजा कुवलाश्व सेनासहित उत्तङ्क ऋषि को मारने पहुँचे ।—पृ० ११२७

बड़ा अनर्थ उपस्थित हुआ है; किन्तु क्या किया जाय, काल को कोई टाल नहीं सकता। ३०
अब आप भी हमको अपने कहे के अनुसार वर दीजिए। हम आपसे यह वर माँगते हैं कि खुले स्थान में आप हमारा वध कीजिए और हम आपके पुत्र हों। देव, हम चाहते हैं कि हमारा माँगा हुआ यह वर मिथ्या न हो।

भगवान् ने कहा—यही होगा। जो वर तुमने माँगा है वह मैं तुमको देता हूँ। अब भगवान् सोचने लगे कि आकाश या पृथ्वी, सब स्थान जल से ढके हुए हैं। खुला स्थान कहीं नहीं देख पड़ता। तब उन्होंने अपनी जाँघों पर उन असुरों के सिर रखकर पैने चक्र से काट डाले; क्योंकि वह स्थान खुला हुआ था। ३५

दो सौ चार अध्याय

धुन्धु दैत्य का वध

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, महाबली पराक्रमी धुन्धु उन्हीं मधु और कैटभ का बेटा था। धुन्धु ने एक पैर से खड़े होकर बड़ा कठोर तप किया। तप करते-करते उसका शरीर ऐसा सूख गया कि नसें ही नसें रह गईं। ब्रह्मा जब प्रसन्न होकर उसे वर देने आये तब उसने कहा—भगवन्, मैं आपसे यही वर माँगता हूँ कि देवता, दैत्य, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस आदि किसी के हाथ से मेरी मृत्यु न हो। "ऐसा ही होगा; अब तुम जाओ" कहकर ब्रह्मा ने उसकी इच्छा पूरी कर दी। तब ब्रह्मा के चरणों में प्रणाम करके वह दैत्य वहाँ से चल दिया।

राजन्, महा-पराक्रमी धुन्धु को जब यह वर मिल गया तब पिता के वध से कुपित उस दानव ने विष्णु आदि सब देवताओं को हरा दिया। अब वह उन्हें और सब लोकों के रहने-वालों को सताने लगा। इसके बाद वह दुष्ट मरुधन्व प्रदेश के बालुकामय उज्जालक नामक स्थान में आकर बालू के नीचे रहने लगा। वहाँ रहकर वह उतङ्क ऋषि के तप में विघ्न करके उन्हें सताने लगा। वहाँ पर, संसार के नाश के लिए तपोबल का आश्रय लेकर, लेटे-लेटे वह अग्निशिखामय लम्बी साँसें छोड़ने लगा।

इसी समय राजा कुवलाश्व उतङ्क ऋषि को और अपने इक्कीस हज़ार पुत्रों को साथ
लेकर सेना सहित उसे मारने के लिए उसी स्थान पर पहुँचे। तब भगवान् विष्णु ने, उतङ्क को ११
दिये हुए वर के अनुसार, जगत् का हित करने के लिए, अपने तेज सहित कुवलाश्व के शरीर में प्रवेश किया। उस समय आकाश में देवताओं का यह शब्द सुन पड़ने लगा कि श्रीमान् कुवलाश्व का आज, धुन्धु दैत्य को मारने से, धुन्धुमार नाम हो जायगा। देवगण उन पर फूल बरसाने लगे। देवलोक के नगाड़े आप ही आप बजने लगे। शीतल हवा धीरे-धीरे चलने लगी।

इन्द्र ने जल बरसाकर पृथ्वी की धूल मिटा दी। देवता, महर्षि और यक्ष कौतूहलवश अपने-अपने विमानों पर बैठकर कुवलाश्व और धुन्धु का संग्राम देखने के लिए आकाश में आ गये।

हे कौरव, विष्णु के तेज से पूर्ण राजा कुवलाश्व ने वहाँ पहुँचकर अपने पुत्रों से उस स्थान को चारों ओर से खोदने के लिए कहा। वे सब मिलकर खोदने लगे। सात दिन तक लगातार खोदने पर उनको धुन्धु दैत्य देख पड़ा। हे भरतश्रेष्ठ, उस दैत्य का शरीर बड़ा भयानक और सूर्य के समान चमकीला था। उस समय कालानल के समान प्रभावाला दैत्य पश्चिम दिशा में लेटा हुआ था। कुवलाश्व के वीर पुत्र चारों ओर से घेरकर गदा, मूसल, तीक्ष्ण बाण आदि से उस पर प्रहार करने लगे। महाबली धुन्धु कुपित होकर उनके विविध अस्त्र-शस्त्रों को मुँह फैलाकर निगलने लगा। उस दैत्य के मुँह से प्रलयकाल की आग के समान भयानक ज्वालाएँ निकलने लगीं। कपिल के कोप की आग में जैसे सगर के साठ हज़ार पुत्र जल गये थे वैसे ही उस आग में कुवलाश्व के सब पुत्र भस्म हो गये।

हे भरतश्रेष्ठ, पुत्रों के जल जाने पर कुवलाश्व को क्रोध आ गया। सोकर जागे हुए दूसरे कुम्भकर्ण के समान भयानक दानव पर कुवलाश्व ने आक्रमण किया। तब धुन्धु के शरीर से बहुत सा जल निकलने लगा। राजा कुवलाश्व ने वह सब तेजोमय जल पी लिया। फिर उन्होंने योगबल से जल उत्पन्न करके उसके द्वारा दैत्य के मुख की वह भयङ्कर आग बुझा दी। इन्द्रतुल्य राजा ने ब्रह्मास्त्र के द्वारा उस पराक्रमी देवशत्रु क्रूर दानव को भस्म कर डाला। इस प्रकार धुन्धु असुर को मारने के कारण राजा कुवलाश्व का नाम उस समय से धुन्धुमार हो गया।

सब देवताओं और महर्षियों ने राजा के पास आकर, प्रसन्नता प्रकट करके, उनसे वरदान माँगने के लिए कहा। राजा ने हाथ जोड़कर कहा—मैं यही वरदान माँगता हूँ कि मैं ब्राह्मणों को धन देकर सन्तुष्ट कर सकूँ; शत्रु लोग मुझे परास्त न कर पावें; विष्णु भगवान् के साथ मेरी मित्रता हो; मैं किसी प्राणी से द्रोह न करूँ; धर्म पर मेरा अनुराग हो और अन्त को मैं स्वर्गलोक जाऊँ।

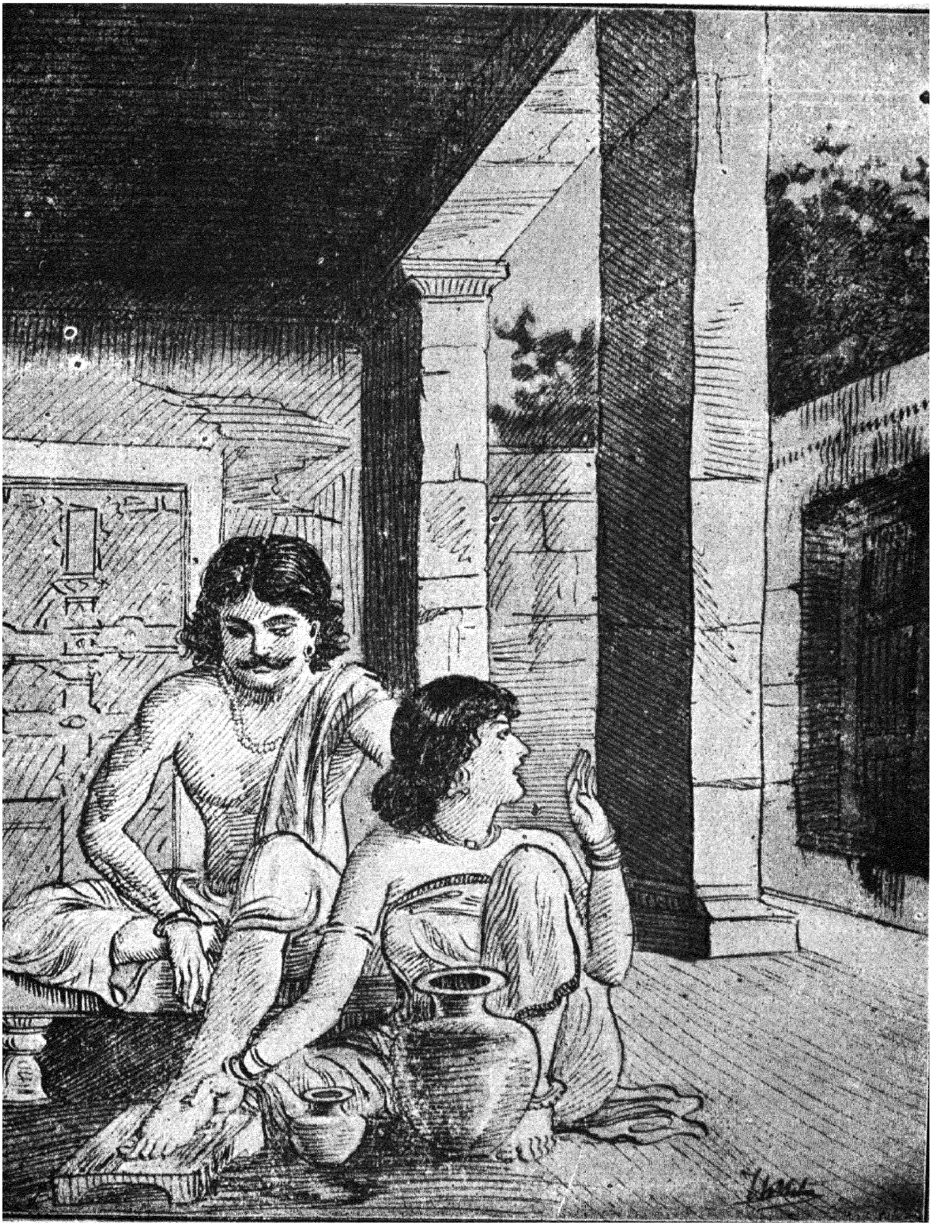

पति को देव-तुल्य माननेवाली पतिव्रताएँ धन्य हैं—पृ० ११२८

विष्णु ने मधु-कैटभ को अपनी जाँघों पर रखकर पैने चक्र से काट डाला—पृ० ११२७

देवताओं ने उनको, उनके माँगे हुए, सब वर दिये। उसके बाद महात्मा उतङ्क, ऋषि
और गन्धर्व अनेक आशीर्वाद देकर अपने-अपने स्थान को गये। हे युधिष्ठिर! कुवलाश्व के
दृढ़ाश्व, कपिलाश्व और चन्द्राश्व नाम के तीन पुत्र जलने से बच गये थे। उन्हीं के वंश से
इक्ष्वाकुवंश आगे चला और उसकी श्रीवृद्धि हुई। मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, मैंने धुन्धुमार का ४०
यह पवित्र उपाख्यान विस्तार के साथ तुमको सुना दिया। जो कोई इसे सुनता है वह धर्मात्मा
होता है और सन्तान पाता है। पर्व के समय यह कथा सुनने से मनुष्य ऐश्वर्यशाली और
दीर्घायु होता है। उसे किसी प्रकार की आधि या व्याधि का डर नहीं रहता। ४५

दो सौ पाँच अध्याय

पतिव्रता-माहात्म्य के सम्बन्ध में युधिष्ठिर का प्रश्न

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन् धर्म-सम्बन्धी प्रश्न करने की इच्छा से धर्मराज ने मार्कण्डेय
से कहा—भगवन्, मैं आपके मुँह से सुनना चाहता हूँ कि पतिव्रता स्त्रियों का माहात्म्य क्या
है। सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथ्वी, अग्नि, गाय, पिता-माता आदि गुरुजन, ये सब इस लोक में प्रत्यक्ष
देवता हैं। पतिव्रता स्त्रियाँ भी गुरु के तुल्य पूजा और सम्मान के योग्य हैं। पति की सेवा
करना पतिव्रताओं का अत्यन्त कठिन कार्य है। भगवन्, आप पतिव्रताओं का माहात्म्य मुझसे
कहिए। इन्द्रियों को जीतकर और मन को मारकर पति को देवतुल्य माननेवाली पतिव्रताएँ
धन्य हैं। पुत्र का पिता-माता की सेवा करना और स्त्री का पति की सेवा करना, दोनों कार्य
मुझे कठिन जान पड़ते हैं। पतिव्रता स्त्रियाँ श्रद्धा के साथ जिस धर्म का पालन करती हैं उससे
बढ़कर कठिन काम मुझे दूसरा नहीं देख पड़ता। माता, पतिव्रता और सत्यवादिनी, इन
तीनों का धर्म दुष्कर है। देखिए, पतिव्रता स्त्रियाँ यह क्या कम अद्भुत काम करती हैं कि
[पति के समागम से] गर्भ रहने पर उसे दस महीने तक धारण किये रहती हैं? फिर १०
प्रसव की कठोर वेदना सहकर, प्राण-सङ्कट की परवा न करके, बच्चों को जनती हैं और फिर
बड़े स्नेह से, आप कष्ट उठाकर भी, उन बच्चों को पालती हैं। जो स्त्रियाँ क्रूर पुरुषों की पत्नी
होकर, गाली-निन्दा आदि सहकर भी, अपने कर्त्तव्य का पालन करती रहती हैं वे धन्य हैं।
उनका कर्त्तव्यपालन मेरी समझ में अत्यन्त कठिन है। पतिव्रता-माहात्म्य के सिवा क्षत्रियों
के धर्म का तत्त्व भी मुझसे कहिए। हे भार्गवश्रेष्ठ, क्षत्रियों का स्वभाव या धर्म क्रूर कहा गया
है। मुझे संशय है कि क्रूर पुरुष कैसे धर्म कर सकता है। उसके लिए तो धर्म एक दुर्लभ
पदार्थ है। कृपा करके मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए।

मार्कण्डेय ने कहा—राजन्, मैं तुम्हारे इस कठिन प्रश्न का उत्तर देता हूँ; सुनो।
महाराज, कोई माता का दर्जा बड़ा समझते हैं और कोई पिता का महत्त्व अधिक मानते हैं।

माता तरह-तरह के क्लेश सहकर सन्तान का लालन-पालन करती है। उसका वह काम अवश्य ही कठिन है। पिता और माता दोनों, पुत्र के लिए तप, देवाराधना, देववन्दना, सहनशीलता और अन्य अनेक कठिन उपायों का आश्रय लेते हैं। इस प्रकार दारुण क्लेश सहकर यदि पुत्र पाते हैं तो उन्हें फिर यह चिन्ता लगी रहती है कि यह पुत्र कैसा होगा। सच्चरित्र होगा, या चरित्रहीन? हे युधिष्ठिर, पिता-माता सदा अपने पुत्र को यश, कीर्त्ति, ऐश्वर्य,
२० धर्म और तेज से युक्त देखना चाहते हैं। जो पुत्र उनकी आशा को सफल करता है वही धर्मात्मा है। माता-पिता जिस पर नित्य प्रसन्न रहते हैं उसे इस लोक में अनन्त कीर्त्ति और उस लोक में अक्षय धर्म प्राप्त होता है। राजन्! स्त्री के लिए यज्ञ, श्राद्ध, उपवास आदि का विशेष विधान नहीं है; वह केवल पति की सेवा से ही स्वर्गलोक को जीत लेती है। हे युधिष्ठिर, मैं इसी
२४ प्रसङ्ग में पतिव्रताओं के धर्म और माहात्म्य का वर्णन करता हूँ, सुनो।

दो सौ छः अध्याय

कौशिक और पतिव्रता का उपाख्यान

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्! एक वेदपाठी, तपस्वी, धर्मात्मा कौशिक नाम के ब्राह्मण थे। वे एक समय किसी वृक्ष के नीचे बैठे हुए वेद पढ़ रहे थे। इसी समय वृक्ष के ऊपर बैठे हुए बगले ने उनके शरीर पर बीट कर दी। ब्राह्मण ने क्रोध करके उसकी ओर देखा तो वह पक्षी मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसे मरकर पृथ्वी पर गिरते देख ब्राह्मण को दया आ गई और बड़ा पछतावा हुआ। वे कहने लगे—मैंने क्रोध के वश होकर बहुत बुरा काम कर डाला।

इस प्रकार बारम्बार खेद प्रकट करते हुए वे गाँव में भिक्षा के लिए गये। वहाँ पवित्र आचारवाले गृहस्थों के द्वार पर वे भिक्षा के लिए फिरने लगे। घूमते-घूमते वे एक ऐसे गृहस्थ के घर पर गये, जिसके यहाँ वे पहले कई बार भिक्षा पा चुके थे। द्वार पर पहुँचकर उन्होंने भिक्षा के लिए आवाज़ लगाई। गृहस्थ की स्त्री ने कहा—महाराज, मैं भिक्षा का पात्र माँज रही हूँ; दम भर

ठहर जाइए। इसी बीच में उस स्त्री का स्वामी भूख से व्याकुल होकर बाहर से घर में आया। तब वह पतिव्रता स्त्री आये हुए पति को देखकर पाद्य, अर्घ्य, आचमन, आसन, मधुर भक्ष्य-भोज्य वस्तुएँ अर्पण करके उसकी सेवा करने लगी। उसने उन ब्राह्मण देवता को भिक्षा देने का कुछ ११
विचार नहीं किया। वह स्त्री पतिव्रता, सदाचारिणी और कुटुम्ब का हित करनेवाली थी। वह पति को परम देवता समझकर अनन्य भाव से, मन-वाणी-काया से, पति की सेवा में तत्पर रहती थी। उसका सारा समय देवता, अतिथि, सेवक और सास-ससुर की सेवा में बीतता था। पति की सेवा करते-करते उस पतिव्रता को उन भिक्षा माँगनेवाले ब्राह्मण का ख़याल आ गया। तब वह बहुत लज्जित हुई और उसी समय पात्र में भिक्षा लेकर ब्राह्मण को देने गई। ब्राह्मण ने कहा—भद्रे, तुमने 'ठहरो' कहकर मुझे रोक क्यों लिया? फ़ुरसत नहीं है कहकर उसी समय बिदा क्यों नहीं कर दिया?

ब्राह्मण को क्रोध और तेज से अग्नि के समान प्रज्वलित देखकर उन्हें शान्त करती हुई वह पतिव्रता कहने लगी—विप्र, आप विद्वान् हैं इसलिए क्षमा कीजिए। स्वामी को मैं सबसे बढ़कर पूजनीय और परम देवता समझती हूँ। वे भूख-प्यास से थके-माँदे बाहर से आये थे; मैं उनकी सेवा में लगी हुई थी। २०

ब्राह्मण ने कहा—तुम ब्राह्मण को पूज्य नहीं मानती हो। तुम्हारी समझ में पति ही एकमात्र पूजनीय है। तुम गृहस्थ धर्म में रहकर ब्राह्मणों का अनादर करती हो। किन्तु मनुष्य की कौन कहे, इन्द्र भी ब्राह्मणों को देखकर प्रणाम करते हैं। हे गर्वभरी स्त्री, तुम क्या यह नहीं जानतीं कि ब्राह्मण अग्नि के समान होते हैं? तुमने क्या बड़े-बूढ़ों के मुँह से यह नहीं सुना कि ब्राह्मण कुपित होकर सम्पूर्ण पृथ्वी को भी भस्म कर सकते हैं?

उस स्त्री ने कहा—हे द्विजवर, मैं बगला नहीं हूँ; इसलिए क्रोध न कीजिए। आप क्रोध की दृष्टि से मेरा कुछ नहीं कर सकते। भगवन्, देवतुल्य ब्राह्मणों का अनादर मैं नहीं करती। इसलिए आप मेरे अपराध को क्षमा कीजिए। मैं बुद्धिमान् ब्राह्मणों के तेज और महत्त्व को

अच्छी तरह जानती हूँ। उन ब्राह्मणों ने ही क्रुद्ध होकर समुद्र का जल खारी करके उसे पीने
लायक़ नहीं रक्खा। ब्राह्मणों के क्रोध की आग अब तक दण्डकारण्य में सुलग रही है।
महात्मा ब्राह्मणों का तिरस्कार करने से ही क्रूर दुरात्मा असुर वातापि, महर्षि अगस्त्य के पेट में
जाकर, पच गया। मैंने ब्राह्मणों का प्रभाव बहुत कुछ सुना है। उनमें क्रोध भी बहुत है और
क्षमा भी अपार है। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि मेरे अपराध को क्षमा कीजिए।
हे द्विज, पति की सेवा को ही मैं सबसे बड़ा धर्म समझती हूँ। पति को ही मैं सब देवताओं
३० से बड़ा देवता मानती हूँ। इसी कारण सबसे पहले मैं पति की ही सेवा करती हूँ। ब्रह्मन्,
पति-सेवा का प्रभाव देखिए। आपने क्रोध करके वन में बगले को जलाया है, यह हाल मुझे
घर बैठे मालूम हो गया। हे द्विजश्रेष्ठ, क्रोध एक ऐसा शत्रु है जो मनुष्य के अपने ही शरीर में
रहता है। जो कोई क्रोध और मोह को छोड़ सकता है, उसे ही देवताओं ने ब्राह्मण कहा है।
जो इस लोक में प्राणसङ्कट आ पड़ने पर भी सच ही बोलता है, सदा गुरु को प्रसन्न रखता है,
किसी के द्वारा सताये जाने पर भी आप उसे पीड़ा नहीं पहुँचाता, उसी को देवताओं ने ब्राह्मण
कहा है। जो जितेन्द्रिय, धर्मनिष्ठ, स्वाध्यायनिरत, पवित्रहृदय होकर काम और क्रोध को अपने
वश में कर चुका है, उसे ही देवताओं ने ब्राह्मण कहा है। जो सब लोगों को अपने समान
जानता है, सब प्रकार के धर्म-कर्मों में प्रेम रखता है, उसी मनस्वी को देवताओं ने ब्राह्मण कहा
है। जो पढ़ता-पढ़ाता, यज्ञ करता-कराता और यथाशक्ति दान भी करता है, उसे ही देवताओं
ने ब्राह्मण कहा है। जिस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने ब्रह्मचारी रहकर सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन किया है
और जो सावधानी के साथ नित्य उनका स्वाध्याय करता है, उसे ही देवताओं ने ब्राह्मण कहा
है। ब्राह्मण लोग सदा शुभ और सत्य वाक्यों का प्रयोग करते हैं; उनका मन कभी मिथ्या
में नहीं रमता। हे द्विजवर! स्वाध्याय, क्रोधत्याग और इन्द्रियदमन ही ब्राह्मणों का धन माना
४० गया है। धर्मात्मा पुरुषों ने सत्य और सरलता को परम धर्म कहा है। भगवन्, सनातन
धर्म को जानना बहुत कठिन है किन्तु संक्षेप में इतना जान लेना ही बहुत है कि वह धर्म सत्य में
ही स्थित है। बड़े-बूढ़ों का उपदेश है कि श्रुति (वेद) ही धर्म के बारे में सर्वोपरि प्रमाण है।
उस श्रुति में धर्म का वर्णन बहुत प्रकार से किया गया है। इसी से कहते हैं कि धर्म की गति
अत्यन्त सूक्ष्म है। भगवन्! आप भी धर्मात्मा, स्वाध्यायनिरत और पवित्र अर्थात् राग-द्वेष से
बचे हुए हैं। परन्तु मैं तो यही कहूँगी कि धर्म के ठीक-ठीक तत्त्व का ज्ञान अभी आपको नहीं
हुआ। हे विप्र, जो आप श्रेष्ठ धर्म के तत्त्व को नहीं जानते तो मिथिलापुरी में जाकर धर्मव्याध
से पूछिए। वह आपको सब प्रकार के धर्म बता देगा। हे द्विज, आपका भला हो। जो
आप धर्म को जानना चाहते हैं तो उस सत्यवादी, जितेन्द्रिय, पिता-माता की सेवा में तत्पर व्याध
(बहेलिया) के पास जाइए। हे अनिन्दित, जो कुछ अनुचित या कड़ी बात मेरे मुँह से

निकल गई हो, उसके लिए मैं आपसे क्षमा चाहती हूँ। धर्मात्मा पुरुष स्त्रियों को अवध्य कह गये हैं, इस कारण आपको क्षमा करना चाहिए।

ब्राह्मण ने कहा—हे शुभरूपिणी, तुम्हारा भला हो। मेरा क्रोध जाता रहा। मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारे इन कड़े वचनों से मेरी बहुत भलाई हुई। हे शुभे, अब मैं अपना काम करने जाता हूँ।

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, वे कौशिक ऋषि अपनी निन्दा और उस पतिव्रता की बड़ाई करते-करते अपने घर को गये। ४८

दो सौ सात अध्याय

कौशिक और धर्मव्याध का संवाद

मार्कण्डेय ने कहा—राजन्, पतिव्रता के उस विचित्र कथन को सुनकर उस पर विचार करने से कौशिक ने अपने को ही अपराधी पाया। उन्होंने अपनी निन्दा की और धर्म की सूक्ष्म गति पर विचार करते-करते मन में सोचा कि उस पतिव्रता की बात पर श्रद्धा करके मिथिलापुरी में अवश्य जाना चाहिए। मैं अभी मिथिला में जाकर धर्मतत्त्व के ज्ञाता, पवित्रहृदय, धर्मव्याध से धर्म के सम्बन्ध में बातचीत करूँगा। हे युधिष्ठिर, उस पतिव्रता ने घर बैठे बगला मारने का हाल कह दिया था और उसके वचन भी धर्मयुक्त थे, इसी से ब्राह्मण को उसकी बातों पर श्रद्धा हो गई थी। मन में धर्मव्याध से उपदेश प्राप्त करने का निश्चय करके कौशिक मिथिलापुरी के लिए चल दिये। मार्ग में अनेक गाँव, नगर और वन लाँघते हुए वे राजा जनक की मिथिलापुरी में पहुँचे। ब्राह्मण ने जनक के द्वारा रक्षित मिथिलापुरी में जाकर देखा कि उसमें अनेक धर्म-सेतु, नगर के फाटक, अट्टालिका, सुन्दर सतखण्डे महल, चौड़ी सड़कें और बाज़ार बने हुए हैं। चारों ओर यज्ञों और उत्सवों की धूम मची हुई है। उसके चारों ओर सुन्दर चहारदीवारी है। चारों ओर हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों की भीड़ है। हाथी, घोड़े, रथ और योद्धाओं की वहाँ कमी नहीं है। बाज़ारों में बिक्री की चीज़ों के ढेर लगे हुए हैं।

उस नगरी में नित्य उत्सवों की धूम रहती थी। वहाँ जाकर कौशिक ने ब्राह्मणों से धर्मव्याध का पता पूछा। ब्राह्मणों से उसका पता पाकर वे उस स्थान में पहुँचे जहाँ पशुओं की हत्या होती थी। कौशिक ने वहाँ जाकर देखा कि धर्मव्याध मृग और भैंसे आदि का मांस १०
बेच रहा है और उसके आसपास गाहकों की भीड़ लगी हुई है। यह देखकर कौशिक एक किनारे खड़े हो गये। उनको आया हुआ जानकर व्याध जल्दी से उठ खड़ा हुआ। उसने उनके पास आकर प्रणाम करके कहा—भगवन्, आइए। आप सकुशल तो हैं? मैं आपको प्रणाम

करता हूँ। मैं ही धर्मव्याध हूँ। मुझे मालूम है, पतिव्रता ने आपसे मिथिला में आने के लिए कहा है। आप जिस लिए आये हैं वह भी मैं जानता हूँ।

यह सुनकर कौशिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे मन में कहने लगे कि यह दूसरी विचित्रता देखने को मिली। यह व्याध पहले से ही मेरे आने का हाल और मेरी इच्छा जानता है। फिर धर्मव्याध ने कहा—भगवन्, यह स्थान आपके ठहरने योग्य नहीं है, इसलिए आपको पसन्द हो तो मेरे घर पर चलिए।

मार्कण्डेय कहते हैं—कौशिक प्रसन्नतापूर्वक व्याध के घर जाने को तैयार हो गये। व्याध उनको अपने घर ले गया। ब्राह्मण ने उसके मनोहर भवन में जाकर उसके दिये हुए आसन, पाद्य, अर्घ्य आदि को ग्रहण किया। इस प्रकार पूजित होकर जब कौशिक सुख से आसन पर बैठे तब उन्होंने व्याध से कहा—यह मांस बेचने का काम मुझे तुम्हारे योग्य नहीं जान पड़ता। तुमको इस घोर कर्म में लगे हुए देखकर मुझे बड़ा खेद हो रहा है।

व्याध ने कहा—ब्रह्मन्, यह काम मेरे बाप-दादों से होता चला आ रहा है। मेरे कुल की यही जीविका है। मैं अपने कुलोचित धर्म का पालन कर रहा हूँ, इसलिए आप मुझ
२० पर क्रोध न करें। विधाता ने इस कुल में उत्पन्न करके जो कर्म मेरे लिए नियत कर दिया है उसे करता हुआ मैं अपने बूढ़े माता-पिता की सेवा मन लगाकर करता रहता हूँ। मैं यथाशक्ति दान भी करता हूँ और सत्य बोलता हूँ। भूलकर भी ईर्ष्या को हृदय में स्थान नहीं देता। देवता, अतिथि और सेवकों (जिनका भरण-पोषण करना है) को खिलाकर जो बचता है उसे खाता हूँ। किसी की बुराई या निन्दा नहीं करता। हे विप्र, पूर्वकृत कर्म के अनुसार कर्ता को उसका फल भोगना पड़ता है। खेती, गोपालन, बनिज और दण्डनीति, ये वृत्तियाँ इस लोक की हैं और त्रयी विद्या परलोक का साधन है। शूद्र का कर्म सेवा है। वैश्य का कर्म खेती है। क्षत्रिय का कर्म संग्राम है और ब्राह्मण का कर्म ब्रह्मचर्य, तप, मन्त्र-जप और सत्य है। राजा धर्मानुसार अपने कर्म में लगी हुई प्रजा का पालन करता है और जो प्रजा अपने कर्म को छोड़े हुए है उसे शासन के द्वारा अपने कामों में लगाता है। इसलिए राजाओं से सदा डरते

रहना चाहिए; क्योंकि वे प्रजा के स्वामी हैं। जो लोग अपने कर्म को छोड़ देते हैं उन्हें राजा लोग उसी तरह नष्ट कर देते हैं जैसे शिकारी लोग मृगों को बाणों से मार डालते हैं।

हे ब्राह्मण, महाराज जनक के राज्य में कोई ऐसा नहीं है जो अपना कुलोचित कर्म छोड़कर दूसरे वर्ण का काम करता हो। सभी वर्ण अपने-अपने काम करते हैं। दुराचारी और दण्ड-योग्य अपने पुत्र को भी राजर्षि जनक क्षमा नहीं करते; वैसे ही धर्मात्मा शत्रु को भी पीड़ा नहीं पहुँचने देते। राजा जनक चरों (जासूसों) के द्वारा सब ख़बर रखते हैं। वे लक्ष्मी (कोष), राज्य और दण्ड (राज्यशासन) में धर्म का व्यवहार रखते हैं—रत्ती भर भी अधर्म नहीं होने
देते; क्योंकि अपने धर्म का पालन करने से ही राजाओं की लक्ष्मी बढ़ती है। भगवन्, राजा ३०
सभी वर्णों की रक्षा करनेवाला होता है।

देखिए, मैं न तो कभी पशुओं की हत्या करता हूँ और न मांस खाता हूँ। मैं दूसरों के मारे हुए पशुओं का ही मांस बेचता हूँ। मैं शास्त्रानुसार ऋतुकाल में स्त्री-गमन करता हूँ। मैं सदा उपवास और रात्रि को नियत समय पर भोजन करता हूँ। दुश्चरित्र होने पर भी पुरुष सच्चरित्र हो सकता है। प्राणियों की हिंसा में तत्पर पुरुष भी धर्मात्मा हो सकता है।

भगवन्, राजा के अत्याचार से धर्म की हानि और अधर्म का प्रचार होता है जिससे प्रजा के विचार भी ओछे हो जाते हैं। राजा के अधर्म से प्रजा भी जब अधर्म करने लगती है तब राज्य में सब जगह कुबड़े, बौने, भयानक रूपवाले, अन्धे, बहरे, बेडौल सिरवाले, विकृत नेत्रोंवाले और नपुंसक पुरुष अधिक संख्या में उत्पन्न होते हैं। मतलब यह कि राजा के अधर्मी होने से ही प्रजा का अमङ्गल होता है। किन्तु इस राज्य में राजा जनक सदा धर्म के अनुसार स्वधर्मनिष्ठ प्रजा का पालन करते हैं और उस पर कृपा रखते हैं।

महाशय! मैं अपनी बड़ाई और निन्दा करनेवाले, दोनों प्रकार के लोगों को अच्छे कामों से, अच्छे व्यवहार से, सन्तुष्ट रखता हूँ। जो दानी और अभ्युदयशाली राजा अपने धर्म में लगे रहकर प्रजा का पालन करते हैं वे धन्य हैं। अपनी शक्ति के अनुसार अन्न देना, सहनशीलता अर्थात् क्षमा, सदा धर्म में विश्वास, योग्य पुरुषों का सत्कार और सब प्राणियों से दया
का व्यवहार आदि सब सद्गुण केवल त्यागगुण के आश्रित हैं। झूठ न बोलना चाहिए। ४१
किसी के कहे बिना ही उसका प्रिय करना चाहिए। काम, डर या द्वेष के कारण अपना धर्म न छोड़ना चाहिए। प्रिय होने पर अत्यन्त प्रसन्न होना और अप्रिय होने पर अत्यन्त सन्ताप करना ठीक नहीं। अर्थकष्ट हो जाने पर न तो घबरा जाना चाहिए और न अपने धर्म को ही छोड़ना चाहिए। यदि कभी कोई निन्दित कर्म हो जाय तो फिर उससे बचकर अच्छा काम ही करना चाहिए। जिसमें अपना भला समझ पड़े उसी में मन को लगाना चाहिए। यदि कोई पापी पुरुष अपने साथ बुरा व्यवहार करे तो उसके साथ आप भी बदी करने के

लिए तैयार न हो; उसके साथ भी नेकी ही करे। जो पाप या बदी करता है, वह अपने पाप से आप ही नष्ट हो जाता है। बदी करना नीच पुरुषों का काम है, सज्जनों का काम नहीं है। जो लोग "धर्म कोई चीज़ नहीं है" ऐसा मानकर सज्जनों को हँसते हैं और धर्म के ऊपर अश्रद्धा प्रकट करते हैं वे नष्ट हो जाते हैं। पापी लोग लुहार की धौंकनी के समान भीतर से असार होने पर भी बाहर से फूले देख पड़ते हैं। अहङ्कारी मूढ़ पुरुषों की हर बात निस्सार होती है। सूर्य जैसे दिन के रूप को प्रकट कर देते हैं, वैसे उनका अन्तरात्मा ही उनके यथार्थ रूप को प्रकट कर देता है। मूर्ख पुरुष लाख अपनी बड़ाई करे और ठाट से रहे, पर जगत् में उसका आदर नहीं होता। विद्वान् व्यक्ति ठाट से न रहने पर भी दस आदमियों के बीच छिपा नहीं रहता और सब लोग उसका आदर करते हैं। विद्वान् पुरुष न तो अपनी बड़ाई करते हैं और न किसी दूसरे की निन्दा ही। इस संसार में सब गुणों से युक्त होकर सबके बीच प्रतिष्ठा प्राप्त
५० करना सम्भव नहीं है। कुकर्म हो जाने पर उसके लिए पछतावा करने से उसका प्रायश्चित्त हो जाता है। "अब कभी ऐसा न करूँगा" यों सोचने से मनुष्य जिस कुकर्म को कर रहा हो उससे छुटकारा पा जाता है। ब्रह्मन्, धर्म के सम्बन्ध में जो श्रुतियाँ हैं उनमें यह विधान पाया जाता है कि इस प्रकार हो चुके कुकर्म के लिए पछतावा और हो रहे कुकर्म के लिए फिर वैसा न करने का सङ्कल्प करने पर जप, तप, तीर्थस्नान आदि कोई भी कर्म करके मनुष्य उस पाप से छुटकारा पा जाता है। महाशय, धर्मात्मा पुरुष से जो भ्रमवश कोई पाप-कर्म हो जाय तो वह उस पाप को नष्ट कर सकता है; क्योंकि धर्म ही भूल से होनेवाले पाप को नष्ट कर देता है। कोई पाप-कर्म यदि अपने से हो जाय तो "मैंने यह काम नहीं किया" यों कहना ठीक नहीं है; क्योंकि सब देवता और अपना आत्मा उसको देखता है। जो पुरुष श्रद्धापूर्वक ईर्ष्या छोड़कर औरों का भला करना चाहता है वह धन्य है। जो पापी अपने दोषों पर दृष्टि न डालकर सज्जनों के दोषों को—साधारण त्रुटियों को—बढ़ा-चढ़ाकर सबके आगे प्रकट करता है उसका परलोक नष्ट हो जाता है। भगवन्! जो कोई पाप हो जाने पर फिर धर्म का आचरण करता है वह, बादलों के बीच से चन्द्रमा के समान, पापों से छुटकारा पा जाता है। जैसे सूर्य का उदय होने पर सब अँधेरा मिट जाता है, वैसे ही धर्म का आचरण करने पर पहले के किये सब पाप नष्ट हो जाते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ, लोभ को सब पापों की जड़ समझो। इसलिए विद्वान् को इन दोनों से बचना चाहिए। जिन्होंने शास्त्र की बातों को अधिक नहीं सुना वे अधकचरे आदमी लोभ के फेर में पड़कर पापकर्म करने लगते हैं। घास-फूस से ढके हुए कुएँ के समान वे अधर्मी अपने को धर्म के ढोंग (पाखण्ड) से छिपाये रहते हैं। बाहर से देखने पर वे जितेन्द्रिय और पवित्र जान पड़ते हैं, और धर्म-सम्बन्धी बातें भी बहुत बघारा करते हैं, किन्तु उनके हृदय में और कामों में शिष्टाचार का लेश नहीं होता।

मार्कण्डेय कहते हैं कि बुद्धिमान् कौशिक ने धर्मव्याध से पूछा—हे पुरुषश्रेष्ठ, शिष्टाचार क्या है ? वह विषय मुझे अच्छी तरह समझाओ। ६१

व्याध ने कहा—हे द्विजवर ! यज्ञ, दान, तप, वेद और सत्य, ये पाँच शिष्टाचार के पवित्र साधन हैं। शिष्ट (श्रेष्ठ) पुरुषों की सम्मति में वही शिष्ट पुरुष हैं जो काम, क्रोध, दम्भ, लोभ और क्रूरता को छोड़कर अपने धर्म में ही सन्तुष्ट रहते हैं। यज्ञ और स्वाध्याय करनेवाले शिष्ट पुरुष दूसरा आचार नहीं मानते। आचार का पालन करना भी शिष्ट का एक लक्षण है। गुरुजन की सेवा, सत्य, क्रोध-हीनता और दान, इनकी भी गिनती शिष्टाचार में की जाती है। शिष्टाचार में मन लगाने से मनुष्य को जो सन्तोष मिलता है, वह और किसी तरह नहीं प्राप्त होता। वेद का सारांश सत्य है, सत्य का सारांश इन्द्रियों का दमन है, दमन का सारांश त्याग है। ये तीनों बातें शिष्टाचार में हैं। जो मनुष्य भ्रमवश धर्म को ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं उन कुमार्ग पर चलनेवालों का साथी भी कष्ट पाता है ; किन्तु जो लोग शिष्ट संयमी, वेदपाठी, त्यागी, धर्म के मार्ग पर चलनेवाले, सत्य धर्म के अनुरागी हैं, और आचार्य से धर्म का उपदेश पाकर लोकस्थिति से धर्म-अर्थ का निर्णय करनेवाले हैं उन्हीं सदाचारी महात्माओं को अपनी बुद्धि का नियामक समझना चाहिए अर्थात् उन्हीं के पीछे चलना चाहिए। ७०

हे कौशिक ! आप ज्ञानमार्ग का आश्रय लेकर नास्तिक, लोकमर्यादा को तोड़नेवाले, क्रूर और पापबुद्धिवाले पुरुषों का सङ्ग छोड़कर धर्मात्मा पुरुषों का सत्सङ्ग कीजिए। यह शरीर एक नदी है। इसमें काम, लोभ आदि मगर-मच्छ रहते हैं। जल के स्थान पर इसमें आँख आदि पाँचों इन्द्रियाँ हैं। जन्म का बारम्बार होना ही इसका दुर्गम स्थान है। आप धैर्य की नाव का सहारा लेकर इस नदी के पार जाइए। सफ़ेद कपड़ा जैसे रङ्ग चढ़ने पर अच्छा लगता है, वैसे शिष्टाचारवाले पुरुष पर बुद्धि-योग से युक्त धर्म का रङ्ग चढ़ने से उसकी प्रशंसा होती है। अहिंसा और सत्य बोलना, इन दोनों से प्राणियों का परम हित होता है। अहिंसा परम धर्म है। उसकी स्थिति सत्य में है। सब प्रवृत्तियाँ सत्य का आश्रय लेकर अपना-अपना काम करती हैं। शिष्टाचारयुक्त सत्य का ही सबसे बढ़कर गौरव है। सज्जनों का आचार ही धर्म है ; आचार ही सज्जनों का लक्षण है।

भगवन्, जिसका जैसा स्वभाव होता है वह उसी के अनुसार चलता है। इसी कारण इन्द्रियों के अधीन पापी पुरुष काम-क्रोध आदि दोषों को ग्रहण करते हैं। शिष्ट पुरुषों का कहना है कि न्यायसङ्गत कार्य ही धर्म है और आचार के विपरीत कार्य ही अधर्म है। जो लोग शिष्टाचार (गुरु और शास्त्र की आज्ञा) को मानते हैं वे क्रोध और ईर्ष्या से रहित, अहङ्कार और मत्सर से शून्य, सरल, शान्त, वेदविहित यज्ञ आदि कर्म करनेवाले, पवित्रहृदय, सच्चरित्र, उदार, जितेन्द्रिय और गुरुसेवा में तत्पर होते हैं। उनका हृदय दुर्बल नहीं होता। उनका आचार

और उनके कर्म औरों के लिए कठिन होते हैं। अपने किये कर्मों से ही वे सत्कार पाते हैं।
८० उनके हिंसा आदि घोर कर्मों के दोष आप ही नष्ट हो जाते हैं। ज्ञानी लोग न्याय के अनुसार
उस सदाचाररूपी अद्भुत, अनादि, अविनाशी, नित्यधर्म को देखकर, अर्थात् उसका आचरण कर,
स्वर्गलोक को जाते हैं। जो साधु पुरुष आस्तिक, अभिमान-शून्य, ब्राह्मणों का आदर करनेवाले,
शास्त्र के ज्ञाता और सच्चरित्र हैं उन्हीं को स्वर्ग में स्थान मिलता है। वेदोक्त (अग्निहोत्र आदि),
शास्त्रोक्त (अष्टका श्राद्ध आदि) और शिष्ट जनों द्वारा आचरित (होलकादि) ये तीन धर्म के लक्षण
हैं। शिष्ट पुरुष इन तीनों का पालन करके सन्तोष प्राप्त करते हैं। सब विद्याओं का अध्ययन,
सब तीर्थों में स्नान, क्षमा, सत्य, सरलता और शौच, ये शिष्टाचार के लक्षण हैं। मतलब यह
कि शिष्ट वही हैं जो अहिंसापरायण होकर सब प्राणियों पर दया रखते हैं; किसी से कठोर वचन
नहीं कहते; ब्राह्मणों का प्रिय करते हैं; शुभाशुभ कर्मों के फल-सञ्चय से सम्बन्ध रखनेवाले
परिणाम को विशेष रूप से जानते हैं और न्यायपरायण हैं। जो लोग सबके हितचिन्तक हैं,
श्रेष्ठ स्वभाववाले हैं, अपने कर्मों से स्वर्गलोक को जीत लेनेवाले हैं, सत्त्वगुणयुक्त हैं, सत्पथ पर
चलते हैं, दाता हैं, केवल अपना ही पेट भर लेने की प्रवृत्ति नहीं रखते, दीन जनों पर कृपा करते
हैं, सबके पूजनीय और तपस्वी हैं, तथा विद्या (ज्ञान) को ही धन मानते हैं, वे ही शिष्ट हैं।
जो शिष्ट पुरुष हैं वे सदा दान धर्म का अनुष्ठान करके इस लोक में सम्पत्ति और मृत्यु के बाद
सुखमय लोक पाते हैं। जो लोग स्त्री-पुत्र आदि पालनीय जनों की पीड़ा का भी विचार न
करके—अपनी शक्ति से बढ़कर भी—दान के द्वारा साधु जनों की प्रार्थना पूरी करते हैं और
९० लोकस्थिति, धर्म तथा अपने कल्याण का ख़याल रखते हैं वे ही साधु हैं; उन्हीं का सदा अभ्यु-
दय होता है। जो सज्जन हिंसा, द्वेष, निष्ठुरता, द्रोह, काम, अभिमान आदि दोषों से रहित
हैं, और सत्यवचन, सरलता, लोकलज्जा, क्षमा, शान्ति, दम, बुद्धि, धैर्य, जीवदया आदि गुणों
से युक्त हैं, उन्हीं का सर्वत्र सब लोग आदर और सत्कार करते हैं।

दान करना, सत्य बोलना और किसी से द्रोह न करना, यही तीन सज्जनों के साधारण
लक्षण हैं। जिन महात्माओं ने धर्म के सम्बन्ध में निश्चय कर लिया है वे सब पर दया रखते
हैं, करुणा से पूर्ण होते हैं, किसी का कष्ट नहीं देख सकते और शिष्टाचार के अनुयायी होकर
धर्म के मार्ग पर चलते हैं। ईर्ष्या न करना, क्षमा, शान्ति, सन्तोष, प्रिय वचन बोलना, काम
और क्रोध का त्याग, शिष्टाचार और शास्त्र के अनुकूल कर्म करना, ये साधुओं के स्वभावसिद्ध
गुण हैं। वे नित्य-धर्म का अनुसरण करते हुए शिष्टाचाररूपी श्रेष्ठ मार्ग पर चलते हैं, प्रज्ञारूपी
महल पर चढ़कर अनेक प्रकार के लोकचरित्रों को देखते हैं और इस प्रकार पाप-पुण्य का
विचार करके महाभय से छुटकारा पा जाते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ, मैंने जैसा सुना था और मुझे
९६ जैसा मालूम है, उसके अनुसार मैंने आपके आगे शिष्टाचार का वर्णन कर दिया।

दो सौ आठ अध्याय

हिंसा के बारे में धर्मव्याध का उपदेश

मार्कण्डेय कहते हैं कि युधिष्ठिर ! धर्मव्याध फिर कौशिक से कहने लगा—ब्रह्मन्, मेरा यह मांस बेचने का रोज़गार सचमुच घोर कर्म है परन्तु दैव बड़ा बली है। पूर्वजन्म के कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है, उसे कोई टाल नहीं सकता। पहले जन्म के किये पापकर्म का फल मैं भोग रहा हूँ; किन्तु मैं इस दोष को मिटाने के लिए बराबर यत्न कर रहा हूँ। और सच पूछो तो हम लोग इस कर्म के निमित्त मात्र हैं। विधाता ने जिसकी जब मौत लिख दी है तभी उसको घातक मारता है और मैं उसका मांस बेचता हूँ। हे विप्र, श्रुति में भी लिखा है कि ओषधि (अन्न), लता, पशु, पक्षी और मृग, ये सब अन्न के समान मनुष्य का आहार हैं। फिर हम लोग जिन पशुओं को मारकर उनका मांस बेचते हैं उन्हें भी—देवता, अतिथि, भृत्य और पितरों की पूजा और भोजन के काम में लगने से—धर्म का अंश मिलता है। देखो, उशीनर के पुत्र क्षमाशील शिवि ने अपना मांस देकर दुर्लभ स्वर्गलोक पाया है। पूर्व समय में राजा रन्तिदेव की पाकशाला के लिए नित्य दो हज़ार पशुओं की हत्या होती थी। रन्तिदेव मांस सहित अन्न अतिथियों और भूखों को खिलाते थे; इसी से उन्हें अक्षय कीर्त्ति मिली है। फिर चातुर्मास्य व्रत में साधारणतः नित्य पशुओं की हत्या की जाती है। श्रुति में अग्नि १०
को मांसकाम अर्थात् मांसाहारी लिखा है। ब्राह्मण लोग यज्ञों में जिन पशुओं को मारते हैं वे पशु भी मन्त्रबल से स्वर्गलोक में जाते हैं। हे ब्राह्मण, यदि यज्ञ-सम्पादक अग्निदेव मांसप्रिय न होते तो कोई भी मांस न खाता। इस स्थल पर ऋषियों ने भी इस तरह मांस-भक्षण का विधान दिया है कि जो मनुष्य श्रद्धा के साथ विधिपूर्वक देवताओं और पितरों को अर्पण करके मांस खाता है, उसे मांस खाने का पाप नहीं लगता। अधिक कहाँ तक कहूँ, श्रुति का प्रमाण मानने से तो कोई उसकी गिनती भी मांसाहारियों में नहीं कर सकता। जैसे ऋतुकाल में अपनी स्त्री का सेवन करने से ब्राह्मण का ब्रह्मचर्य खण्डित नहीं होता वैसे यहाँ पर भी वैध-अवैध का निर्णय करके यह व्यवस्था दी गई है कि यज्ञ में या अन्य समय देवता-पितरों को अर्पण करके बचा हुआ मांस खाना पाप नहीं है। राजा सौदास ने शाप से राक्षस होकर सैकड़ों मनुष्यों को खा डाला था। इसमें आपको क्या जान पड़ता है ? आप राजा को दोषी समझते हैं या निर्दोष ? हे द्विज-श्रेष्ठ, इस कार्य को अपना धर्म समझकर मैं नहीं छोड़ता ; पहले के कर्मों का फल जानकर इसी वृत्ति से अपनी जीविका चलाता हूँ। यह भी शास्त्रकारों का निश्चय है कि अपना पेशा छोड़ देने से अधर्म और उसे करते रहने से पुण्य होता है। अपने कुल में जो काम होता आया है उसे जीव नहीं छोड़ सकता। विधाता ने कर्म-निर्णय में इस प्रकार बहुत सी विधियाँ

बतलाई हैं। किन्तु जिसके कुल का काम क्रूर है उसे यह सोचना चाहिए कि कौन सा कर्म
२० करने से मेरा भला होगा और मैं इस निन्दित काम से छुटकारा पाऊँगा। इस प्रकार इस
क्रूर हिंसा कर्म के बारे में अनेक निर्णय किये जा सकते हैं। ब्रह्मन्, मैं यह क्रूर कर्म करने
पर भी अभिमान और अतिवाद (गाली आदि कुवचन) से बचकर सदा दान, सत्य वचन,
गुरुजन की सेवा और धर्म में लगा रहता हूँ।

देखिए, कुछ लोग खेती को अच्छा (श्रेष्ठ) काम समझते हैं किन्तु उसमें बड़ी भारी
हिंसा होती है। खेतों की जुताई के समय पृथ्वी में रहनेवाले असंख्य प्राणी मर जाते हैं। इस
बारे में आपकी क्या राय है? धान आदि अन्न के जितने बीज हैं उन सबमें जीव हैं। इस
बारे में आप क्या समझते हैं? लोग पशुओं पर हमला करके उन्हें मारते और खाते हैं [इसे
शिकार कहते हैं]। वृक्षों और अन्न आदि के पौधों को काटते हैं। वृक्षों में, फलों में और
जल में असंख्य जीव रहते हैं। उनकी जो हत्या होती है, उसके बारे में आपका क्या कहना
है? इस जगत् में ऐसे जीव भरे पड़े हैं, जो जीवों को खाकर ही जीवित हैं। इस बारे में आप
क्या समझते हैं? मछलियों को मछलियाँ खा जाती हैं। बहुधा देखा जाता है कि प्राणियों
को खाकर प्राणी जीते हैं। जगत् के सब प्राणी परस्पर एक दूसरे को खाने के लिए तैयार रहते
हैं। इस बारे में आपको क्या जान पड़ता है? हे द्विज, मनुष्य जब चलते-फिरते हैं तब
उनके पैरों के नीचे दबकर भी करोड़ों जीव मर जाते हैं। ज्ञान-विज्ञान के ज्ञाता विज्ञ पुरुष
३० भी सोते और जागते में बहुत से जीवों की हत्या कर डालते हैं। पृथ्वी और आकाश में
असंख्य जीव भरे पड़े हैं। ऐसी दशा में अज्ञान से भी असंख्य प्राणियों के नाश की सम्भावना
है। इस बारे में आप क्या समझते हैं?

हिंसा से ऊबकर प्राचीन लोग अहिंसा की बड़ाई कर गये हैं। किन्तु आप ही बताइए, इस संसार में हिंसा से कौन बचा हुआ है? विशेष रूप से विचार करने पर देख पड़ता है कि हिंसा न करनेवाला आदमी अत्यन्त दुर्लभ है। अहिंसा व्रत धारण करनेवाले योगी यति भी हिंसा करते हैं। परन्तु हाँ, वे सदा सावधान रहते हैं इस कारण अधिक हिंसा-दोष के भागी नहीं होते। अच्छे कुल में उत्पन्न महागुणी पुरुष बुरे से बुरे काम करके भी लज्जित नहीं होते। जैसे मित्र का मित्र और वैरी का वैरी अभिनन्दन करते नहीं देखे जाते, अपने समृद्धिशाली भाई-बन्धु से दरिद्र जाति-भाई कुढ़ते रहते हैं, वैसे ही अच्छी तरह अपने काम में लगे हुए लोग उसी तरह अपने कामों में अच्छी तरह लगे हुए लोगों को अच्छी दृष्टि से देखते नहीं देखे जाते। अपने को पण्डित मानकर अभिमान करनेवाले लोग बड़े-बूढ़े गुरुजन की भी निन्दा करते देखे जाते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ, जगत् में इस प्रकार अनेक उलटी बातें होने के कारण धर्म और अधर्म के बारे में भी गड़बड़ देख पड़ती है। इसके बारे में आपकी क्या राय है? धर्म और अधर्म के

कामों के बारे में और भी कई तरह की बातें कही जा सकती हैं। किन्तु मेरा मत यह है कि जो अपने कुलोचित काम के करने में लगा हुआ है वह श्रेष्ठ यश का भागी होता है। ३९

दो सौ नव अध्याय

धर्म के माहात्म्य का वर्णन

मार्कण्डेय कहते हैं कि राजन्, धर्मात्मा पुरुषों में श्रेष्ठ धर्मव्याध फिर उस ब्राह्मण से कहने लगा—हे कौशिक, बड़े-बूढ़ों ने धर्म के बारे में श्रुति (वेद) को प्रमाण माना है। धर्म की गति अत्यन्त सूक्ष्म है और उसकी अनन्त शाखाएँ (भेद) हैं। प्राण-सङ्कट और विवाह के समय झूठ बोलने से पाप नहीं होता। ऐसी जगह पर सच बोलने से झूठ का पाप लगता और झूठ बोलने से सत्य का पुण्य होता है। मतलब यह कि जिससे सर्वसाधारण का भला और उपकार हो वही सत्य है। देखिए, धर्म की कैसी सूक्ष्म गति है! अधर्म भी कहीं पर धर्म गिना जाता है।

हे द्विज! मनुष्य शुभ या अशुभ, चाहे जो काम करे उसका फल उसे अवश्य मिलता है। किन्तु मूर्ख लोग किसी अनिष्ट फल के आ पड़ने पर देवताओं की निन्दा करने लगते हैं; यह नहीं सोचते कि उन्हीं के कर्मों का दोष है। मूढ़, कपटी और चञ्चल पुरुष अपने को दोष न देकर देवताओं को ही दोषी ठहराते हैं। मनुष्य जब सुख-दुःख के फेर में पड़ जाता है तब समझदारी, गुरु की दी हुई शिक्षा या पौरुष, कोई भी उसकी रक्षा नहीं कर सकता; सब बेकार हो जाता है। यदि पौरुष का कर्म-फल स्वाधीन होता तो हर एक पुरुष अपने पौरुष से जैसा चाहता वैसा ही कर लेता। यही कारण है कि पूर्वकृत कर्म के अनुसार इस जन्म में संयमी, निपुण, बुद्धिमान् और विकारहीन पुरुषों को भी विपरीत फल प्राप्त होता है; उनके इस जन्म के शुभ कर्म निष्फल से प्रतीत होते हैं। ऐसे ही जो लोग सदा हिंसा करते हैं, लोगों को ठगते हैं, वे
सुखपूर्वक जीवन बिताते हैं। कोई पुरुष किसी प्रकार की चेष्टा न करने पर भी बैठे-बैठे लक्ष्मी पा १०
जाता है, और कोई आदमी बड़े-बड़े कष्ट उठाकर भी जिसके लिए यत्न करता है उसे नहीं पाता।

कितने ही मनुष्य पुत्र की इच्छा से देवताओं की आराधना और तपस्या करते हैं, माता दस महीने तक गर्भ धारण का कष्ट उठाती है, पर पुत्र जो होता है वह कुल के लिए कलङ्क-स्वरूप होता है। और कितने ही पुत्र वैसे ही माङ्गलिक अनुष्ठानों के करने से पैदा होकर पिता के जमा किये हुए धन को सहज ही पाते हैं और अनेक सुख भोगते हैं। मनुष्यों के शरीर में जो रोग होते हैं उनका भी कारण कर्म ही है। अजगर जैसे छोटे मृगों को लील लेता है, वैसे ही मनुष्यों को रोग सताते हैं। किन्तु व्याध जैसे मृगों को मारता है, वैसे ही चतुर और श्रेष्ठ दवाओं के जाननेवाले अनुभवी वैद्य रोगों को नष्ट कर देते हैं। कोई अच्छा हो जाता है और

कोई मर जाता है। देखिए, बहुतों के पास तरह-तरह के भोजन करने का ठिकाना है, पर उन्हें संग्रहणी का रोग सताये हुए है। पूर्व-कर्म के कारण वे खा-पी नहीं सकते। बहुत से लोग ऐसे हैं कि उनमें बाहुबल तो यथेष्ट है, पर वे क्लेश पाते हैं; बड़ी मुशकिल से उन्हें पेट भर खाने को मिलता है। हे द्विज, इस प्रकार शरीर की शङ्का से व्याकुल मनुष्य असहाय और विवश होकर प्रबल कर्म-प्रवाह में बहे-बहे फिरते हैं। वह कभी सुख की ओर पहुँचा देता है और कभी घसीटकर दुःख में डाल देता है। यदि मनुष्य स्वाधीन होता, दैव अर्थात् पहले के किये कर्मों के अधीन न होता, तो कोई मरता ही नहीं; किसी को बुढ़ापा आकर जीर्ण ही न करता, किसी को कुछ अप्रिय देखना ही न पड़ता; सब लोग अपनी सब इच्छाओं को पूर्ण कर लेते।

सभी लोग सबसे बढ़ जाने की इच्छा करते हैं और उसके लिए यथाशक्ति उपाय भी करते हैं, किन्तु प्रायः उसका फल वैसा होते नहीं देखा जाता। एक ही नक्षत्र में बहुतों का जन्म होता है; बहुत लोग अपने इष्ट की सिद्धि के लिए एक ही मङ्गलकार्य का अनुष्ठान करते हैं, किन्तु उनके कार्य की सिद्धि में बड़ा अन्तर देख पड़ता है; किसी का कार्य सिद्ध होता है और किसी का नहीं। जिसे हम अपने हाथ की बात समझते हैं उसे भी प्रायः नहीं कर सकते; इसका कारण पूर्वकृत कर्मों के सिवा और क्या हो सकता है? बिना यत्न के भी अनेक कार्य अच्छी तरह सिद्ध होते देखे जाते हैं। ब्रह्मन्, श्रुति में कहा गया है कि सब प्राणियों का शरीर अनित्य है, जीव ही नित्य है। इसी कारण शरीर का वध करने पर वह नष्ट हो जाता है; किन्तु जीव कर्म-बन्धन में बँधकर कर्मफल भोगने के लिए दूसरे शरीर में जाता है।

कौशिक ने कहा—हे धर्मज्ञ पुरुषों में श्रेष्ठ, मैं जानना चाहता हूँ कि जीव क्यों नित्य है। विस्तार के साथ मुझे समझाओ।

व्याध ने कहा—ब्रह्मन्, देह का नाश होने पर जीव का नाश नहीं होता। मूढ़ लोग 'मर गया' यह मिथ्या वचन कहते हैं। जीव एक शरीर को छोड़कर दूसरे में जाता है, यही उसका मरना है। किये हुए कर्म के फल को मनुष्यलोक में कर्त्ता के सिवा और कोई नहीं भोगता। कर्म का नाश नहीं होता। इसलिए एक देह से जो कुछ शुभ या अशुभ कर्म किया जाता है उसका फल दूसरे शरीर से अवश्य भोगना पड़ता है। जीव के कर्म उसके साथ-साथ रहते हैं। उन्हीं के कारण उसे फिर जन्म लेना पड़ता है। पुण्य कर्म करनेवाले यशस्वी और श्रेष्ठ होते हैं; पाप कर्म करनेवाले नीच नराधम होते हैं।

ब्राह्मण ने पूछा—हे श्रेष्ठ पुरुष, यह जीव पुण्ययोनि और पापयोनि में कैसे जाता है? अच्छी और बुरी जातियों में कैसे उत्पन्न होता है?

व्याध ने कहा—द्विजवर, पिण्डोत्पत्ति प्रकरण के ग्रन्थों में जन्म के सम्बन्ध की सब बातें विशेष रूप से कही गई हैं। मैं संक्षेप में गर्भाधान के सम्बन्ध की बातें तुमसे कहता हूँ। [यह

तो मैं कही चुका हूँ कि] संस्कार-रूपी पूर्वजन्म के कर्म-फल ही जन्म का कारण हैं। जीव उन कर्म-बीजों को साथ लेकर जन्म लेता है। पुण्य कर्म करनेवाला अच्छी योनि में और पाप कर्म करनेवाला ओछी योनि में पैदा होता है। शुभ कर्म करने से देवयोनि मिलती है। शुभ और अशुभ दोनों कर्म करने से मनुष्ययोनि मिलती है। केवल तमोगुणी कर्म करने से पशु-पक्षी आदि की निकृष्ट योनि मिलती है। घोर पाप करने से कीड़े आदि की नारकी योनि मिलती है। मनुष्य अपने किये कर्मों के प्रभाव से ही जन्म, मृत्यु, बुढ़ापे आदि के दुःखों से पीड़ित होता हुआ बारम्बार संसार में आने-जाने का शोक-सन्ताप भोगता है। कर्म-बन्धन में बँधे हुए जीव हज़ारों तिर्यक् योनियों में जाते हैं, नरकों की यातना सहते हैं, और इसी तरह संसार-चक्र में चक्कर लगाते रहते हैं। जीव एक देह छूटने पर अपने कर्मों के कारण यातनाएँ सहता है, और कर्मफल-रूपी दुःख भोगने के लिए निकृष्ट योनि में जन्म लेता है। फिर जन्म पाकर और बहुत से नये कर्म करता है। रोगी कुपथ्य खाकर जैसे अपनी पीड़ा को और भी बढ़ा लेता है वैसे ही वह उन कर्मों के कारण अपनी यातनाओं का सिलसिला बढ़ाता जाता है। [संसार में दुःख से पीड़ित लोगों की ही संख्या अधिक है।] जो लोग सुखी समझे जाते हैं वे भी वास्तव में दुःखी ही हैं। [इस प्रकार कर्मों का सिलसिला जारी रहने के कारण जीव अनेक क्लेशों को भोगता रहता है।] कर्मों का उदय बराबर होता है और उनकी निवृत्ति नहीं होती [क्योंकि वासनाओं का नाश नहीं होता]। रथ का पहिया जैसे बराबर नीचे-ऊपर फिरा करता है, वैसे ही जीव भी उच्च-नीच अनेक योनियों में घूमता और आवागमन के कष्ट झेलता है।

हे द्विजश्रेष्ठ, मनुष्य यदि विषय-वासना छोड़कर सत्कर्मों की पवित्रता प्राप्त करता है, तप और योग-साधन करने लगता है, तो उन विविध शुभ कर्मों के द्वारा पवित्र लोकों में जाता है। मतलब यह कि यदि मनुष्य विषयवासना छोड़कर विशुद्ध कर्मों के द्वारा संसार-बन्धन (जन्म-मरण के फेर) से अपने को छुड़ा लेता है तो फिर उन पवित्र लोकों को जाता है जहाँ उसे शोक
नहीं करना पड़ता। हे ब्राह्मण ! पापी पुरुष बराबर पाप करता रहता है, इसी से उसके पापों ४०
का अन्त नहीं होता। इस कारण मनुष्य को सदा पापकर्म से बचकर पुण्य कर्म करने की चेष्टा करनी चाहिए। जो मनुष्य ईर्ष्या छोड़कर शुभ कर्म करता है, कृतज्ञ बना रहता है, वह धर्म-अर्थ-स्वर्ग और सुख पाता है। वह विशुद्ध-हृदय, जितेन्द्रिय, नियमों का पालन करनेवाला और ज्ञानी है; वह इस लोक और परलोक, दोनों जगह सुख भोगता है।

मनुष्य को चाहिए कि साधु जनों के धर्म का आचरण करे, शिष्ट पुरुषों के से काम करे और इस प्रकार की जीविका से अपना निर्वाह करे जिसमें किसी दूसरे को क्लेश न पहुँचे। संसार में आगम-विज्ञानवान्, शास्त्र-विशारद, निर्लिप्त, शिष्ट पुरुष अनेक हैं जो अपने धर्म के अनुसार कर्म करते हैं। अपने धर्म के अनुसार कार्य करने से लोक में कर्मसंकर नहीं होता। प्राज्ञ

पुरुप धर्म से ही रमते हैं। धर्म ही उनकी जीविका होती है। वे धर्म के द्वारा प्राप्त धन से
उसी धर्म की जड़ को सींचते हैं; क्योंकि धर्मपालन में ही उन्हें सब गुण देख पड़ते हैं। मनुष्य
इसी तरह धर्मात्मा होता है। उसका चित्त प्रसन्न होता है। वह इस लोक में मित्र-समागम
से सन्तुष्ट रहकर परलोक में परमानन्द पाता है। उसे शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध आदि इष्ट पदार्थ
और प्रभुत्व (संकल्प-सिद्धि) प्राप्त होता है। यह सब धर्म का फल कहा गया है। ज्ञान-दृष्टि-
वाला पुरुप इन धर्म-फलों को पाकर भी उनसे सन्तुष्ट नहीं होता, बल्कि उन शब्द आदि विषयों
में प्रीति न रखकर वैराग्य का ही आश्रय लेता है। वह कभी राग और द्वेष आदि के वश में
५० नहीं होता। वह अपनी इच्छा से विषय-सुखों को छोड़ देता है; परन्तु धर्म को नहीं छोड़ता।
वह इस संसार को नश्वर जानकर कर्म-फल की वासना को छोड़ने का यत्न करता है। वह
केवल दैव के भरोसे न रहकर शास्त्रोक्त उपाय से मोक्ष पाने का यत्न करता है। प्रज्ञा-
सम्पन्न पुरुप इस प्रकार वैराग्य का सहारा लेकर, पाप-कर्मों को छोड़ देता है, और धर्मनिष्ठ
होकर अन्त को कर्मबन्धन से 'मुक्ति' पा जाता है। हे द्विजसत्तम, मेरे इस कथन का तात्पर्य
यह है कि ज्ञान ही एक ऐसा साधन है, जिससे जीव को मुक्ति मिल सकती है। उस ज्ञान की
जड़ शम (चित्तशुद्धि) और दम (इन्द्रियदमन) है। मनुष्य मन में जो इच्छाएँ करता है,
वे सब उसे उस ज्ञान के प्रभाव से मिल जाती हैं। ब्रह्मन्! इन्द्रिय-निरोध, सत्य और दम, इन
तीन उपायों से परमपद, जिसे ब्रह्मपद भी कहते हैं, मिलता है।
कौशिक ने पूछा—हे धर्मव्याध, इन्द्रिय क्या हैं? उनका निग्रह क्यों और कैसे करना
५६ चाहिए? इन्द्रिय-निग्रह का फल क्या है? इन बातों का तत्त्व मैं जानना चाहता हूँ।

दो सौ दस अध्याय

इन्द्रियनिग्रह और ब्रह्मविद्या का वर्णन

मार्कण्डेय कहते हैं कि युधिष्ठिर, कौशिक के यों पूछने पर धर्मव्याध ने जो उत्तर दिया सो सुनो। व्याध ने कहा—हे विप्र, मनुष्य का मन पहले रूप-रस आदि विषयों का ज्ञान प्राप्त करने का यत्न करता है। फिर यह ज्ञान प्राप्त कर लेने पर वह काम या क्रोध को भजता है। इसके बाद उन विषयों को पाने के लिए यत्न करता है, बड़े-बड़े कार्यों का आरम्भ कर देता है और अपने इष्ट रूप-गन्ध आदि विषयों का बारम्बार-सेवन करता है। फिर क्रम से राग, द्वेष, लोभ और मोह की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार लोभ से अभिभूत और राग-द्वेष से प्रभावित होने पर मनुष्य की धर्मबुद्धि का लोप हो जाता और वह पाखण्ड करने लगता है। तब वह पाखण्ड (कपटधर्म) करता हुआ कपट-कृत्य-पूर्वक धन प्राप्त करने की इच्छा करता है। इस तरह

कपट-व्यवहार के द्वारा धन प्राप्त हो जाने पर बुद्धि उसी में लग जाती है और उसकी पाप-प्रवृत्ति प्रबल हो उठती है। उस समय मित्रों और पण्डितों के मना करने पर वह वेदानुकूल सदृश जान पड़नेवाले, किन्तु वास्तव में वेद-विरुद्ध, उत्तर देता है। तब राग-द्वेष से तीन प्रकार का अधर्म उत्पन्न होता है; अर्थात् वह मन से पाप का विचार करता है, वाणी से पाप-भाषण करता है और शरीर से पाप-कर्म करता है। इस कारण उसके सब अच्छे गुण नष्ट हो जाते हैं। वह पापात्मा अपने समान चरित्रवाले लोगों के साथ मित्रता करके इस लोक में दुःख पाता है और
परलोक के लिए विपत्ति कमाता है। हे विप्र, लोग इस प्रकार के आचरण से ही पापी होते १०
हैं। अब जिस तरह लोग धर्म प्राप्त करते हैं, सो सुनो। जो व्यक्ति सुख और दुःख के यथार्थ निर्णय में निपुण होकर अपनी प्रज्ञाबुद्धि के प्रभाव से पहले से ही ऊपर कहे हुए दोषों को देखकर साधुसेवा करता है, उसी की बुद्धि सत्कार्यों के अनुष्ठान से धर्म में लगी रहती है।

ब्राह्मण ने कहा—इस संसार में सत्यधर्म के वक्ता कहीं नहीं देख पड़ते। तुम उसी का वर्णन कर रहे हो, इसलिए मुझे तुम दिव्य-प्रभाव-सम्पन्न कोई महर्षि जान पड़ते हो।

व्याध ने कहा—इस लोक में ब्राह्मण हो महाभाग्यवान् और अग्रभोजी (सबसे पहले भोजन और आदर-सत्कार पाने के अधिकारी) पितर हैं; बुद्धिमान् पुरुष को सदा सब तरह उनका प्रिय करना चाहिए। हे द्विजश्रेष्ठ, अब मैं बतलाता हूँ कि किस तरह ब्राह्मण का प्रिय करना चाहिए। आप ब्राह्मणों को प्रणाम करके मुझसे वह ब्रह्मविद्या सुनिए। यह विश्व और सब चराचर जगत पञ्चमहाभूतमय है। कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं जो पञ्चमहाभूतों से न बना हो। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी, ये पञ्चमहाभूत हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पाँच उनके गुण हैं। इन सबके भी अलग-अलग गुण और परस्पर गुणों की वृत्तियाँ हैं। पूर्व-पूर्व गुण-परम्परा क्रमानुसार ईश्वर, विराट् और हिरण्यगर्भ, इन तीन गुणियों अर्थात् गुणधारियों में संक्रामित होती है। इनमें छठा गुण जो चेतना है उसे मन कहते हैं। सातवें गुण को बुद्धि कहते हैं। आठवाँ अहङ्कार है। ये, और पाँच इन्द्रिय, आत्मा, सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण, इन सत्रह के समूह को अव्यक्त अर्थात् माया कहते हैं। ये सत्रह, और इन्द्रियों से ग्रहण किये जानेवाले शब्द आदि पाँच विषय, भोग्य और भोक्ता, सब मिलाकर चौबीस गुण हैं। इनमें कुछ तो इन्द्रियग्राह्य होने से प्रकट हैं और कुछ तक इन्द्रियों की पहुँच न होने से वे अप्रकट
हैं। ब्रह्मन्, यह मैंने तुमसे कह दिया; अब और क्या सुनना चाहते हो? २१

दो सौ ग्यारह अध्याय

पञ्चमहाभूतों के गुणों का वर्णन

मार्कण्डेय कहते हैं कि हे युधिष्ठिर, धर्मव्याध के यों पूछने पर ब्राह्मण ने फिर हृदय को आनन्द देनेवाला प्रश्न किया। ब्राह्मण ने कहा—हे धार्मिकश्रेष्ठ, जो पाँच महाभूत कहलाते हैं, उनमें से हरएक के गुण मुझे अलग-अलग समझाइए।

व्याध ने कहा—पृथ्वी, जल, तेज, आकाश और वायु, ये सब तत्त्व उत्तरोत्तर महागुण-युक्त हैं। इनके गुणों का वर्णन सुनो। पृथ्वी में पाँचों गुण, जल में चार गुण, तेज में तीन गुण, और वायु में दो गुण हैं। आकाश में एक गुण है। पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँचों गुण हैं। जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये चार ही गुण हैं। तेज में शब्द, स्पर्श, और रूप ये तीन ही गुण हैं। वायु में शब्द और स्पर्श, ये दो ही गुण हैं। आकाश में केवल शब्द गुण है। हे द्विजवर, पञ्चमहाभूतों के ये पन्द्रह गुण सभी भूतों में वर्त्तमान हैं। इन्हीं में सब लोक स्थित हैं। ये (भूत) परस्पर अविच्छिन्न अर्थात् मिले हुए हैं। ये जब परस्पर विषम भाव को प्राप्त होते हैं तब काल-प्रेरित जीव एक शरीर छोड़कर अन्य शरीर को प्राप्त होता है। ये गुण जिस क्रम से उत्पन्न होते हैं उसी के उलटे क्रम से नष्ट होते हैं—अर्थात् जो
१० जिससे प्रकट हुआ है वह उसी में लीन हो जाता है। यह चराचर जगत् जिन पदार्थों से आवृत है उन सबमें पाञ्चभौतिक धातुएँ देख पड़ती हैं। हे द्विज, इन्द्रियाँ जिसको ग्रहण कर सकती हैं वह व्यक्त है; और जो अनुमान और इन्द्रियों से परे है वही अव्यक्त है। देहधारी पुरुष जब इन्द्रियों को उनके विषयों से रोककर, अर्थात् विषय-वासना को प्रबल न होने देकर, आत्म-तत्त्व की छानबीन करने लगता है तब वह सबमें अपने को व्याप्त और अपने में सबको स्थित देख पाता है। परापरज्ञ जीव प्रारब्ध कर्मों से बँधा रहने पर जीवन भर आत्मा की सोपाधि अवस्था का ही [समाधि में] अनुभव करता है। और, उपाधिशून्य होने पर, सब अवस्थाओं में सब प्राणियों में सदा अपने को व्याप्त देखनेवाला पुरुष, ब्रह्म-स्वरूप प्राप्त करके, कभी अनिष्ट-संयोग से क्लेश नहीं पाता। बुद्धिमार्ग-प्रकाशक आत्मज्ञान के प्रभाव से उन क्लेशों को, जो पूर्वोक्त माया से उत्पन्न हैं, मिटा सकने पर पुरुष परमपुरुषार्थ अर्थात् मुक्ति पा सकता है। विशुद्ध-बुद्धि-युक्त होकर जो पुरुष ऐसी मुक्ति पा चुका है वही, भगवान् प्रजापति के कथनानुसार, आत्मयोनि है। वह फिर आदि और अन्त से हीन, निराकार, सुख-दुःख आदि विकारों से रहित, अनुपम अद्वितीय हो जाता है।

हे द्विजश्रेष्ठ, आप जो कुछ मुझसे पूछ रहे हैं उसका मूल तप अर्थात् आत्मतत्त्व की आलोचना है। वह आत्मतत्त्व की आलोचना इन्द्रियों को वश में किये बिना हो ही नहीं सकती।

इन्द्रियों के ही कारण मनुष्य स्वर्ग का भी अधिकारी होता है और नरक को भी जाता है। इन्द्रियों को वश में रखना ही स्वर्ग की सीढ़ी है और इन्द्रियों के वश हो जाना ही नरक का कारण है। इन्द्रियों का दमन ही आत्मज्ञान और स्वर्ग का साधन है, इसलिए वही यथार्थ योगविधि है। इन्द्रियों की चञ्चलता नरक की जड़ है। इन्द्रियों की अत्यन्त विषयासक्ति से ही मनुष्य २८
रागद्वेष के वश हो जाता है। इन्द्रियों को वश में रखने से मनुष्य को सिद्धि प्राप्त हो जाती है। पाँच इन्द्रियाँ और छठा मन, इस षड्वर्ग पर प्रभुत्व स्थापित करके उसे जो आत्मतत्त्व के विचार में लगाता है वह जितेन्द्रिय पुरुष पापों और उनके अनर्थों से दूर रहता है। पण्डितों का कहना है कि पुरुष का शरीर एक रथ है और इन्द्रियाँ घोड़े हैं। मन या आत्मा सारथी है। धीर और निपुण पुरुष ही इन्द्रिय-रूपी घोड़ों को वश में रखकर, रथी की तरह सावधान रहकर परम-सुख से संसार में विचरते हैं। इन्द्रिय-रूपी घोड़ों को आत्मज्ञान की ओर लगाकर जो धीर पुरुष उनकी 'रास' को अपने हाथ में रखता है वही श्रेष्ठ सारथी है। हे कौशिक, राह में छूटे हुए घोड़ों के समान इन्द्रियों को रोकना चाहिए। 'धैर्य' की सहायता से इन्द्रियाँ रोकी जा सकती हैं; 'धैर्य ही इन्द्रिय-निग्रह का प्रधान साधन है। इन्द्रियाँ यदि मनमाने ढङ्ग से विषय-मार्ग में बिचरने पाती हैं तो मन भी उधर ही दौड़ा जाता है। तब बुद्धि विचलित हो उठती है और उसकी वही दशा होती है जो नदी के भीतर आँधी आने से डगमगाती हुई नाव की होती है। मन और पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ जिनकी ओर स्वभावतः झुकती हैं वे विषय-सुख मोक्ष-प्राप्ति में विकट बाधक हैं। विषय-सुख में भूले हुए पुरुषों का चित्त उधर ही खिंचता है। जो लोग तत्त्वज्ञान के प्रभाव से—यथार्थ दृष्टि की शक्ति से—उन विषय-सुखों को अत्यन्त तुच्छ समझते हैं वे ही उनके दोषों को देखकर, उनसे बचकर, तत्त्वज्ञान (विवेकबुद्धि) का फल (मोक्ष) पाते हैं। २७

दो सौ बारह अध्याय

माया के तीनों गुणों का वर्णन

मार्कण्डेय ऋषि कहते हैं कि हे युधिष्ठिर, धर्मव्याध जब यों सब सूक्ष्म विषयों का वर्णन कर चुका तब कौशिक ने फिर पूछा—हे धार्मिकश्रेष्ठ! तुम सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण का तत्त्व भी मुझसे कहो।

व्याध ने कहा—भगवन्, आपने जो पूछा उसे मैं कहता हूँ। सत्त्वगुण आदि का अलग-अलग वर्णन सुनो। इन तीनों गुणों में तमोगुण का स्वरूप मोह है, रजोगुण का रूप प्रवृत्ति है और सबमें श्रेष्ठ सत्त्वगुण का रूप प्रकाश (ज्ञान) है। जो लोग इन्द्रियासक्त, आलसी अधिक सोनेवाले, और क्रोध, मोह, अविद्या तथा अज्ञान से परिपूर्ण हैं वे तमोगुणी हैं। जिनकी विषय-

वासना और मन्त्रणाशक्ति अत्यन्त प्रबल है, जो ईर्ष्या-रहित, मानी, अच्छे चरित्रवाले, अच्छे वचन बोलनेवाले, और अपने को श्रेष्ठ समझनेवाले हैं, उन्हें रजोगुणी समझना चाहिए। जो अधिक जागनेवाले, धीर, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान्, सर्वत्र प्रसिद्ध, ईर्ष्या और क्रोध से रहित तथा विषयवासना की अधिकता से बचे हुए हैं, वे सत्त्वगुणी पुरुष हैं। सत्त्वगुणी पुरुष ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा होने पर लोक-व्यवहार में लिप्त नहीं होता; उसे उस पर आस्था नहीं होती। जब वह ज्ञेय विषय को जान लेता है तब तमोगुण और रजोगुणवाले लोकव्यवहार की निन्दा करता है। उसमें विषयों से वैराग्य का लक्षण पहले से ही देख पड़ता है। वैराग्य के आरम्भ की अवस्था में ही अहङ्कार का प्रभाव धीमा पड़ जाता है और उसके साथ ही सरलता और शान्ति का आविर्भाव होता है। वह सर्वत्र संयम का उपयोग करता है। मान-अपमान का ज्ञान आदि
१० सब द्वन्द्व भाव शान्त हो जाते हैं और संशय बुद्धि दूर हो जाती है। भगवन्, शूद्र भी इन सद्गुणों से युक्त होने पर वैश्य और क्षत्रिय के भाव को प्राप्त हो सकता है। यहाँ तक कि सरलता की मात्रा अधिक बढ़ने पर सत्त्वगुणी स्वभाव का शूद्र ब्रह्मज्ञान का अधिकारी हो सकता है। हे कौशिक, आपने जो गुणों के बारे में पूछा था सो सब मैंने कह दिया।
१२ अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?

दो सौ तेरह अध्याय

आत्मा के तत्त्व का वर्णन

कौशिक ने पूछा—हे श्रेष्ठ पुरुष शरीर में रहनेवाला अग्नि पार्थिव धातुओं को पाकर कैसे देहाभिमानी होता है ? प्राण आदि वायु किन-किन विशेष स्थानों में रहते हैं ?

मार्कण्डेय कहते हैं कि हे युधिष्ठिर, ब्राह्मण के यों पूछने पर उन महात्मा से व्याध ने कहा—अग्नि सिर में रहकर सारे शरीर का पालन करता है; अर्थात् नित्य प्रकाशमान विज्ञानमय आत्मा चैतन्यमय आत्मा का आश्रय लेकर शरीर में चेतना का सञ्चार करता है। प्राण उसी चिदात्मा और विज्ञानात्मा में वर्त्तमान रहकर अनेक प्रकार की चेष्टा करता है। भूत, भविष्य और वर्त्तमान, सब उसी प्राण में स्थित है। हम लोग सब तत्त्वों में श्रेष्ठ उसी ब्रह्मज्योति-रूप प्राण की उपासना करते हैं। चैतन्य और ज्ञान से युक्त प्राण ही सब प्राणियों को चेतन बनाता है। जीवात्मा सनातन पुरुष है। वही मन, बुद्धि, अहङ्कार, पञ्चभूतों के शब्दादि विषय, प्रकृति और पुरुष है। जीवात्मा 'प्राण'-वायु के प्रभाव से भीतर और बाहर सर्वत्र अपनी शक्ति फैलाता है। वह प्राण 'समान'-वायु के रूप से भिन्न-भिन्न गतियों को ग्रहण करता है। वही प्राणवायु 'अपान' नाम धारण करके, जठरानल का आश्रय लेकर, वस्तिमूल और मलाशय में मूत्र और मल को पहुँचा देता है। वह प्राणवायु ही प्रयत्न (काम करने की चेष्टा), कर्म (चलना-फिरना)

और बल (बोझ उठाने की शक्ति), इन तीन विषयों में प्रवृत्त होता है। तब उसका नाम
'उदान' हो जाता है। वही प्राणवायु मनुष्य-शरीर के हर एक सन्धिस्थल में रहकर 'व्यान'
नाम धारण करता है। अध्यात्म-विद्या के पण्डितों ने इस प्रकार एक ही प्राणवायु को, स्थान-
विशेष के अनुसार, पाँच नामों से प्रसिद्ध किया है।

जठरानल त्वचा आदि सब धातुओं में व्याप्त है। वह प्राण आदि वायुओं से सञ्चालित
होकर अन्न आदि रसों, त्वचा आदि धातुओं और पित्त आदि दोषों को परिवर्त्तित करता हुआ
शरीर भर में दौरा किया करता है। प्राण आदि वायुओं के एक जगह मिलने से सङ्घर्षण उत्पन्न १०
होता है; उससे प्रकट होनेवाला उत्ताप ही जठरानल कहलाता है। यही अग्नि प्राणियों की खाई
हुई अन्न आदि वस्तुओं को पकाने और पचाने का काम करता है। समान और उदान वायुओं
के बीच में प्राणवायु और अपानवायु की स्थिति है। इन्हीं के सङ्घर्षण से उत्पन्न होकर जठरानल
शरीर को पुष्ट करता है। पायु (गुदा) तक अग्नि का स्थान अपान कहलाता है। उसी अपान से
शरीर-धारियों के प्राण आदि वायुओं का प्रवाह प्रकट होता है। प्राण, अग्नि के वेग को लेकर,
मलद्वार के सिरे पर टकराकर फिर ऊपर को जाता है और इस प्रकार अग्नि को भड़काता रहता
है। नाभि के नीचे पक्वाशय (पके हुए भोजन का स्थान) है और ऊपर आमाशय (कच्चे
भोजन का स्थान) है। शरीर में स्थित सब प्राणवायुओं का स्थान अर्थात् केन्द्र नाभि है।
नाड़ियाँ हृदय से नीचे, ऊपर और इधर-उधर फैली हुई हैं। वे दसों प्रकार के प्राणवायु के प्रभाव
से शरीर के सब भागों में अन्नरस को पहुँचाती हैं। धीर और क्लान्ति-रहित समदर्शी योगी
लोग जिधर से ब्रह्म का साक्षात्कार पाते हैं और आत्मा को सहस्रार चक्र में धारण करते हैं, वह
यही मार्ग है। हे द्विज, इस प्रकार प्राणवायु (ऊपर का वायु) और अपानवायु (नीचे का
वायु) सब शरीरधारियों के शरीरों में व्याप्त है।

आत्मा के स्थूल और सूक्ष्म दो शरीर हैं। एक शरीर प्राण आदि ग्यारह विकारों से
युक्त है और दूसरा शरीर महाभूत आदि सोलह कलाओं से बना है। वह आत्मा नित्य होने
पर भी कर्मों के अधीन है। थाली में आग की तरह वह आत्मा उन्हीं दोनों शरीरों में स्थित
है। योगबल से ही उसकी उपलब्धि होती है। हे द्विज, कमल के पत्ते पर जलबिन्दु के समान
जो परमात्मा सोलह कलावाले अन्तःकरण में विराजमान है, वह क्षेत्रज्ञ, नित्य और योगाभ्यास
से प्राप्य है। जीव जैसे सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण का मूल और आत्मा के वश है वैसे २०
परमात्मा आत्मा का आश्रय है। पण्डित लोग शरीरादि अचेतन पदार्थों को जीव के उपभोग
का स्थान बताते हैं। उनका कहना है कि आत्मा जीव-रूप से स्वयं चेष्टाएँ करता है, और
ही ईश्वर रूप से सब जीवों की चेष्टाओं का नियामक है। क्षेत्रज्ञ अर्थात् आत्मज्ञानी पुरुष कहते
हैं कि आत्मा से ही जीव और सातों भुवनों की प्रवृत्ति (सृष्टि) होती है; वह ईश्वर से भी

उन्नत है। सब प्राणियों का आत्मा, अर्थात् परमात्मा, सब प्राणियों में गूढ़ रूप से स्थित होने के कारण यद्यपि अच्छी तरह प्रकाशमान नहीं है तो भी ज्ञानी लोग सूक्ष्म विचार से उसे देख लेते हैं। जिनका आत्मा पवित्र है, वे चित्तशुद्धि के बल से सब शुभाशुभ कर्मों को नष्ट करके अन्त को आत्मनिष्ठा के प्रभाव से अनायास ही मोक्ष प्राप्त करते हैं। जैसे तृप्त मनुष्य निश्चिन्त होकर नींद के सुख का अनुभव करता है और जैसे वायु-रहित स्थान में दीपक की ज्योति प्रबल रूप से प्रकाशमान होती है, वैसे ही चित्तशुद्धि से सम्पन्न पुरुष प्रसन्न देख पड़ता है। जिसका चित्त विशुद्ध है और जो स्वल्प आहार करता है वह मन को सबेरे-शाम आत्मचिन्तन में लगाकर, अर्थात् समाधिस्थ होकर, अपने हृदय में ही आत्मा को देखता है। प्रज्वलित दीपक के समान मन के दीपक से निर्गुण आत्मा के दर्शन पाकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। [यही जीवन्मुक्ति है।]

सब उपायों से क्रोध और लोभ को जीत लेना ही पवित्र तपस्या है। विद्वानों ने इसे संसार के पार जाने का सेतु माना है। क्रोध से तप को, ईर्ष्या से धर्म को, मानापमान के ख़याल से विद्या (ज्ञान) को और प्रमाद (मोह) से आत्मा को सदा बचाना चाहिए। अहिंसा ही परम धर्म है; क्षमा ही परम बल है; आत्मज्ञान ही परम ज्ञान है; सत्य ही परम पवित्र व्रत है। सत्य वही है जिससे प्राणियों का अत्यन्त हित हो। सत्य बोलना श्रेयस्कर है। ज्ञान और कल्याण प्राप्त करने का सबसे अच्छा उपाय सत्य ही है।

जो पुरुष फल की इच्छा के बन्धन से छूटकर निष्काम कर्म करता है और सब वासनाओं को त्याग देता है वही सच्चा संन्यासी और बुद्धिमान् है। वासना के वियोग को ही योग और ब्रह्मयोग कहते हैं। गुरु भी वचनों से इसे सुनाने में असमर्थ होते हैं; वे संकेतमात्र से इसका उपदेश देते हैं। हे कौशिक, इस जीवन में किसी के साथ शत्रुता न करनी चाहिए; किसी प्राणी की हिंसा न करनी चाहिए। सबसे मित्रता का भाव रखना चाहिए। सन्तोष, निष्काम भाव, अकिञ्चन भाव, धैर्य और आत्मज्ञान में रुचि श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करने के साधन हैं। दान न लेकर यतव्रत (सच्चरित्र) बनना चाहिए। वैराग्य से ही इस लोक और परलोक में शोक-हीन निश्चल पद प्राप्त होता है। जिसे दुर्लभ मोक्ष-पद की इच्छा हो उसे चाहिए कि सदा तप के अनुष्ठान में निरत, दम-गुणावलम्बी, विशुद्ध-हृदय, ऋषि होकर सब विषयों की इच्छा छोड़ दे। जिसके निकट लौकिक गुण गुण-रूप से नहीं प्रतीत होते, जिसका प्रतिपादक जीवात्मा ही है, जिसके मिलने का उपाय आत्मज्ञान ही है, जो सङ्गरहित और अक्षय सुख का आधार है, वही ब्रह्म है। जो मनुष्य सुख और दुःख दोनों का त्याग कर देता है उसी को ब्रह्म का साक्षात्कार होता और मुक्ति मिलती है। हे द्विजश्रेष्ठ, मैंने जिस तरह सुना था उसी के अनुसार संक्षेप में तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

कौशिक व्याध के घर के भीतर गये तो देखा कि व्याध के मातृ पिता अच्छे आसन पर बैठे हुए हैं।—पृ० ११५१

दो सौ चौदह अध्याय

माता-पिता की सेवा और माहात्म्य का वर्णन

मार्कण्डेय कहते हैं कि हे युधिष्ठिर, धर्मव्याध के मुँह से इस तरह मोक्ष-धर्म का वर्णन सुनकर कौशिक बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—हे निष्पाप, तुमने जो कुछ कहा, वह सब ठीक है। धर्म के सम्बन्ध की ऐसी कोई बात नहीं जो तुमको न मालूम हो। व्याध ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ, जिस धर्म के प्रभाव से मुझे यह सिद्धि मिली है उसे चलकर प्रत्यक्ष देख लीजिए। उठिए, घर के भीतर चलकर मेरे माता-पिता को देखिए।

मार्कण्डेय कहते हैं—व्याध के कहने पर कौशिक उस व्याध के घर के भीतर गये। वह घर देवभवनसदृश मनोहर, साफ़ और सजा हुआ था। उसमें चार दालानें थीं। वहाँ अनेक पलँग और आसन पड़े हुए थे। चारों ओर मनोहर सुगन्ध फैली हुई थी। व्याध के पिता-माता साफ़ कपड़े पहने हुए भोजन करके प्रसन्नतापूर्वक अच्छे आसन पर बैठे थे।

धर्मव्याध ने उन्हें देखते ही उनके पैरों पर सिर रख दिया। उन्होंने कहा—हे धर्मज्ञ, उठो। धर्म तुम्हारी रक्षा करे। हम तुम्हारे विशुद्ध व्यवहार से बहुत ख़ुश हैं। तुम्हारी बड़ी
आयु हो। तुमने इष्टगति, ज्ञान, तप और
बुद्धि पाई है। हे पुत्र, तुम बड़े सपूत
हो। तुम नित्य विधिपूर्वक श्रद्धा के साथ
हमारी पूजा और देवताओं से भी बढ़कर
सम्मान करते हो। तुम्हारा अन्तःकरण
अत्यन्त पवित्र है। तुम ब्राह्मणों के समान
जितेन्द्रिय हो। तुम्हारे पितामह और १०
प्रपितामह तुम्हें इस प्रकार श्रद्धा से माता-
पिता की पूजा करते देखकर तुम पर
अत्यन्त प्रसन्न हैं। तुम मन, वाणी और
काया से हमारी सेवा करते हो; तुम्हारा
यह भक्तिभाव कभी कम नहीं होता।
इसका कारण यही है कि तुम्हारी बुद्धि
हमारी सेवा के सिवा और किसी ओर
नहीं जाती। जमदग्नि ऋषि के पुत्र परशुराम जिस तरह अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा करते थे उसी तरह, बल्कि उससे बढ़कर, तुम हमारी सेवा करते हो।

अब धर्मव्याध ने उनसे कौशिक का वृत्तान्त कहा। तब उन्होंने ब्राह्मण का स्वागत किया। उस पूजा को ग्रहण करके कौशिक ने कहा—तुम्हारे घर में तुम, तुम्हारे पुत्र और तुम्हारे सेवक आदि सब कुशल से तो हैं न? तुम्हारा शरीर वृद्ध है, इस कारण किसी रोग आदि की पीड़ा तो तुमको नहीं है?

वृद्ध और वृद्धा ने कहा—हम सब प्रकार सकुशल हैं। हमारे नौकर-चाकर और परिवार के लोग भी कुशल-मङ्गल से हैं। आप तो यहाँ निर्विघ्न आये? राह में कुछ कष्ट तो नहीं हुआ? ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर कहा—मैं यहाँ अच्छी तरह आया हूँ।

अब कौशिक की ओर देखकर धर्मव्याध कहने लगा—भगवन्, ये माता-पिता ही मेरे परम देवता हैं। देवताओं के लिए जो पूजा-आराधना विहित है सो सब मैं इन्हीं की करता हूँ। सब लोग जैसे इन्द्र आदि तेंतीस प्रधान देवताओं की पूजा करते हैं वैसे ही मैं इन माता-पिता की पूजा
२० करता हूँ। ब्राह्मण लोग जैसे सब सामग्री लाकर देवताओं की पूजा करते हैं वैसे ही मैं, आलस्य छोड़कर, वैसी ही सामग्री से माता-पिता की पूजा करता हूँ। मतलब यह कि ये माता-पिता ही मेरे परम देवता हैं। मैं सदा विविध फल-मूल अन्न आदि से इन्हें सन्तुष्ट रखता हूँ। बुद्धिमान् विद्वान् लोग जिन तीन पवित्र अग्नियों का वर्णन करते हैं, उन्हीं अग्नियों का रूप इनको समझकर मैं इनकी पूजा करता हूँ। मैं इन्हीं को यज्ञ और चारों वेद समझता हूँ। मेरे पुत्र, भार्या, सुहृद् और प्राण तक जो कुछ है, सब इन्हीं के लिए है। मैं नित्य अपनी स्त्री और पुत्र आदि के साथ इनकी सेवा करता हूँ। मैं आप अपने हाथ से इन्हें नहलाता हूँ, इनके पैर धोता हूँ और भोजन कराता हूँ। मैं सदा इनके अनुकूल प्रिय वचन कहता हूँ। ऐसे वचन कभी अपने मुँह से नहीं निकालता जो इन्हें अप्रिय हों। इनका प्रिय कार्य करने में यदि अधर्म भी होता हो तो मुझे कुछ सङ्कोच नहीं है; उसे मैं बेधड़क कर डालूँगा। मुझे इनका प्रिय करना ही सबसे बढ़कर धर्म जान पड़ता है। भगवन्, मैं सदा तत्परता के साथ इनकी सेवा करता हूँ। पिता, माता, अग्नि, आत्मा और उपदेश देनेवाला, ये पाँच गुरु कहे गये हैं। भलाई की इच्छा रखनेवाले को सदा इनकी सेवा करनी चाहिए। जो पुरुष इनके साथ यथोचित व्यवहार करता है उसे नित्य अग्नि-
२९ होत्र करने का फल मिलता है। गृहस्थाश्रम में रहनेवाले लोगों का यही सनातन धर्म है।

दो सौ पन्द्रह अध्याय

धर्मव्याध के पूर्व जन्म का वृत्तान्त

मार्कण्डेय कहते हैं कि पिता-माता के माहात्म्य का वर्णन करके धर्मात्मा धर्मव्याध फिर कौशिक से कहने लगा—भगवन्, माता-पिता के सेवा-रूप मेरे तप का प्रभाव देखिए। उस पति-

व्रता सत्यपरायण स्त्री ने आपसे जो कहा था कि "आप मिथिलापुरी को जाइए। वहाँ धर्मव्याध रहता है। वह आपको धर्म का उपदेश करेगा," उसे मैंने इसी तप से मिली हुई दिव्य दृष्टि के प्रभाव से जान लिया था। आपके आने से पहले ही मुझे सब मालूम हो गया था।

ब्राह्मण ने कहा—हे धर्मज्ञ, उस सत्यवादिनी सुशीला पतिव्रता ने तुमको जैसा बताया था, तुम वास्तव में वैसे ही प्रभावशाली और जानकार हो।

व्याध ने कहा—हे ऋषिश्रेष्ठ, वह पतिव्रता मुझे अच्छी तरह जानती है, इसी से उसने आपको मेरे पास भेजा। आप पर कृपा करने के विचार से ही मैंने यह सब आपको दिखाया है। अब मैं आपके भले के लिए जो कुछ कहता हूँ सो सुनिए। आपने पिता-माता की सेवा-शुश्रूषा नहीं की। आप उनसे बिना पूछे, उनका अनादर करके, वेद पढ़ने के लिए घर से निकल आये हैं। आपने यह काम ठीक नहीं किया। आपका यह कार्य धर्म के विरुद्ध है। आपके शोक से रो-रोकर आपके तपस्वी पिता-माता अन्धे हो गये हैं। इसलिए उन्हें प्रसन्न करने के लिए आप शीघ्र अपने घर को लौट जाइए। आप तपस्वी, धर्मनिष्ठ और महात्मा हैं। इस कारण पिता-माता को प्रसन्न करने के लिए शीघ्र जाइए; नहीं तो अब तक आपने जो धर्म किया है वह सब निष्फल हो जायगा। भगवन्, आपके हित के लिए मैं यह कह रहा हूँ। आप मेरे कहे पर विश्वास करके शीघ्र अपने पिता के पास जाइए। १०

ब्राह्मण ने कहा—हे निष्पाप, मैं तुम्हारी यह बात सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ; क्योंकि तुम्हारा कहना बिलकुल सच है।

व्याध ने कहा—ब्रह्मन्, आप जिस अनादि सनातन धर्म का अनुष्ठान कर रहे हैं उसको साधारण आत्मज्ञानहीन पुरुष नहीं कर सकते। आप इस धर्म के प्रभाव से देवतुल्य हो गये हैं। इसलिए अब आप माता-पिता के पास जाकर तत्परता के साथ उनकी पूजा और सेवा कीजिए। मेरी समझ में इससे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है।

ब्राह्मण ने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ, बड़े भाग्य की बात है जो मैं यहाँ आया और तुमसे मिला। हे निष्पाप, तुम्हारे समान धर्म का उपदेश करनेवाला कहीं नहीं देख पड़ता। संसार में, हज़ार आदमियों के बीच एक आदमी के भी धर्मज्ञ होने में सन्देह है। हे नरश्रेष्ठ, मैं तुम्हारी सत्यनिष्ठा देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। तुम्हारा भला हो। यह होनी की बात थी जो मैं तुम तक पहुँच गया। सच तो यह है कि मैं नरक में गिरा जा रहा था; तुमने मुझे उबार लिया। राजा ययाति भौम नरक में गिर पड़े थे, उनकी कन्या के पुत्रों ने जैसे उनका उद्धार किया था वैसे ही तुमने मुझे उबार लिया। अब मैं तुम्हारे उपदेश से घर जाकर माता-पिता की सेवा करूँगा। ज्ञानहीन पापी पुरुष कभी धर्माधर्म का निर्णय करके उपदेश नहीं दे सकता। मैं तुमको शूद्र नहीं मानता; क्योंकि शूद्र को सूक्ष्म सनातन धर्म का ज्ञान नहीं हो सकता। मुझे

जान पड़ता है, तुम किसी विशेष कारण से या भवितव्यता-वश शूद्र-योनि में उत्पन्न हुए हो।
२० मैं जानना चाहता हूँ कि किस कर्म के फल से तुम्हें यह शूद्र योनि मिली है।

व्याध ने कहा—हे द्विजवर, ब्राह्मणों की आज्ञा को मैं किसी तरह नहीं टाल सकता। इसलिए मैं अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त कहता हूँ, सुनिए। मैं पूर्व जन्म में ब्राह्मण था। मैं एक श्रेष्ठ ब्राह्मण के घर पैदा हुआ था। वेदों और वेदाङ्गों का मैं पूरा पण्डित था। भगवन्, अपने ही दोष से मेरी यह दशा हुई है। पूर्व जन्म में धनुर्वेद के विद्वान् एक राजा मेरे मित्र थे। उनके साथ रहने से मैं भी बाण-विद्या का जानकार हो गया। एक समय वे राजा अपने प्रधान-प्रधान योद्धा, मन्त्री आदि को साथ लेकर शिकार खेलने गये। उनके साथ मैं भी था। वन में एक आश्रम के पास हम लोगों ने अनेक मृगों का शिकार किया। दैव-योग से मेरा चलाया हुआ बाण एक ऋषि को जा लगा। ऋषि उसी समय पृथ्वी पर गिर पड़े। उन्होंने आर्त्तनाद करते हुए कहा—मैंने किसी का कुछ अपराध नहीं किया था; फिर यह

पाप कर्म किसने किया? ब्रह्मन्, मैं यह समझकर कि एक मृग मारा है जब पास गया तब देखा कि एक ऋषि पड़े तड़प रहे हैं। अपने इस अनुचित कर्म को देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। दुखी होकर मैंने पृथ्वी पर छटपटाते हुए उन तपस्वी ऋषि से कहा—भगवन्, बिना जाने मुझसे यह अपराध हुआ है, इसलिए क्षमा कीजिए। मुनि ने क्रोध से अधीर होकर कहा—रे क्रूर,
३१ तू व्याध होकर शूद्र-योनि में जन्म लेगा।

दो सौ सोलह अध्याय

कौशिक का व्याध से बिदा होकर घर जाना

व्याध ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ, ऋषि के यों शाप देने पर मैंने उनको मनाते हुए हाथ जोड़कर कहा—रक्षा कीजिए। ब्रह्मन्, मैंने बिना जाने यह अनुचित कार्य किया है, इसलिए

प्रसन्न होकर मेरा अपराध क्षमा कीजिए। ऋषि ने कहा—मेरा शाप मिथ्या नहीं हो सकता; परन्तु मुझे तुम्हारे क्षमा-प्रार्थना करने पर दया आ गई है, इसलिए इतनी कृपा करता हूँ कि तुम शूद्र-योनि में पैदा होकर भी पिता-माता की सेवा करोगे और तुमको धर्म का ज्ञान बना रहेगा। पिता-माता की सेवा के प्रभाव से महासिद्धि पाकर तुम्हें पूर्व जन्म की याद बनी रहेगी और स्वर्ग-धाम मिलेगा। मेरा यह शाप समाप्त होने पर फिर तुम्हें ब्राह्मण की योनि मिल जायगी।

हे द्विजश्रेष्ठ, उन उग्रतेजस्वी ऋषि ने शाप देकर इस प्रकार कृपा कर दी। मैंने ऋषि के शरीर से बाण निकालकर उन्हें उनके आश्रम में पहुँचा दिया। वे मरे नहीं, अच्छे हो गये। भगवन्, पहले जिस घटना के कारण मुझे यह नीच योनि मिली है और पीछे शाप से छुटकारा पाने पर मैं जैसे स्वर्ग को जाऊँगा, सो सब मैंने आपको सुना दिया।

कौशिक ने कहा—हे महाबुद्धिमान् पुरुष, मनुष्य इसी तरह सुख और दुःख पाया करते
हैं। इस कारण इसके लिए तुमको खेद न करना चाहिए। हे लोक-चरित्र के तत्त्व को जानने- १०
वाले, हे धर्मात्मा! तुमने अपनी जाति को जानकर भी शिकार खेला, जो ब्राह्मण के लिए सब तरह अनुचित है। उस कर्म-दोष का फल कुछ दिन तुमको भोगना ही पड़ेगा। उसके बाद तुम ब्राह्मणयोनि में जन्म पाओगे। इस योनि में भी तुम ब्राह्मण ही जान पड़ते हो; क्योंकि जो ब्राह्मण ऐसे कर्मों में लगा हुआ है जिनसे वह पतित हो सकता है, जो ब्राह्मण पाखण्डी, घमण्डी और दुराचारी है, वह शूद्र के तुल्य है; और जो शूद्र इन्द्रियदमन, सत्य और धर्म पर प्रीति रखता है उसे मैं ब्राह्मण ही समझता हूँ। मनुष्य अच्छे चरित्र से ही ब्राह्मण हो सकता है। तुम कर्म-दोष से नीच गति को प्राप्त हुए हो। इस समय मुझको तुम्हारा वह कर्म-दोष सब तरह क्षीण हो गया जान पड़ता है। इसलिए अब तुमको खेद नहीं करना चाहिए। तुम्हारे ऐसे लोक-वृत्तान्त के जाननेवाले धर्मात्मा लोग कभी खेद नहीं करते।

व्याध ने कहा—ब्रह्मन्, मन के दुःख को बुद्धि से और शरीर के दुःख को औषध आदि से मिटाना चाहिए। ज्ञान की यही शक्ति है। ज्ञानी को बालकों के समान खेद या विलाप न करना चाहिए। थोड़ी समझ के मूर्ख ही किसी अनिष्ट का संयोग या किसी प्रिय वस्तु का वियोग होने पर मानसिक दुःख से व्याकुल होते हैं। संसार में आकर सुख और दुःख सभी को भोगने पड़ते हैं; कुछ एक को ही शोक और दुःख नहीं होता। लोग अनिष्ट घटना को देखते ही
तुरन्त ऊब जाते हैं; और यदि उसका आरम्भ ही देखते हैं तो उसका प्रतिकार करने लग जाते हैं। २०
किन्तु उसके लिए केवल शोक करने से कुछ नहीं होता; सन्ताप ही हाथ लगता है। इसलिए ज्ञान से सन्तुष्ट बुद्धिमान् मनुष्य सुख या दुःख, दोनों को छोड़कर सुखी होने का यत्न करते हैं।

मूढ़ लोग असन्तोषी होते हैं, और ज्ञानी लोग सदा सन्तुष्ट रहते हैं। असन्तोष का अन्त नहीं है, वह बढ़ता ही जाता है। इसलिए सन्तोष ही परम सुख है। जिन्होंने ज्ञान-मार्ग

को पा लिया है वे शोक नहीं करते; क्योंकि वे परम गति पर लक्ष्य रखते हैं। खेद करना ठीक नहीं है। खेद भयङ्कर विष है। वह क्रुद्ध साँप की तरह मूर्ख के प्राण हर लेता है। बुरा समय या सङ्कट आने पर जो कोई खेद करता है उस, तेज से हीन, पुरुष में पुरुषार्थ नहीं समझना चाहिए।

कार्य करने से उसका फल मिलता ही है। उद्योग से उदासीन रहने पर भला नहीं हो सकता। इसलिए दुःख आ पड़ने पर, विषाद में न पड़कर, उस दुःख से छुटकारे का उपाय करना चाहिए। शोक से बचकर कार्य का आरम्भ करना चाहिए। जो कोई इस तरह तत्परता के साथ उद्योग करता है वह अवश्य अपने दुःख या विपत्ति को दूर कर सकता है। तत्त्वज्ञान के पारदर्शी लोग प्राणियों के विनाशशील होने का विचार करके कभी शोक नहीं करते। वे सदा परम गति पर लक्ष्य रखते हैं। ब्रह्मन्, मैं भी शोक नहीं करता। समय की बाट जोहता हुआ इसी शरीर में रम रहा हूँ। ऊपर कहे गये लक्षणों को देखकर मैं कभी खेद नहीं करता।

कौशिक ने कहा—हे धर्मज्ञ, तुम
ज्ञानी हो। तुम्हारी बुद्धि अथाह है। तुम
सदा पाप से दूर रहते हो। इसलिए मैं
तुम्हारी इस हीन योनि के लिए शोक नहीं
३० करता। हे नरश्रेष्ठ, अब मैं जाना चाहता हूँ।
तुम्हारा भला हो और धर्म सदा तुम्हारी रक्षा
करे। धर्म के पालन में सदा सावधान रहना।

मार्कण्डेय कहते हैं—तब व्याध ने हाथ जोड़कर कौशिक को विदा किया। व्याध की प्रदक्षिणा करके कौशिक अपने घर को चल दिये। घर जाकर वे सब तरह से माता-पिता की सेवा करने लगे। हे युधिष्ठिर, तुमने धर्म के विषय में मुझसे जो पूछा था वह, और पतिव्रता का माहात्म्य, ब्राह्मणों की महिमा, धर्मव्याध का कहा हुआ माता-पिता की सेवा का माहात्म्य, यह सब मैंने विस्तार के साथ तुमको सुना दिया।

युधिष्ठिर ने कहा—ब्रह्मन्, आपने यह अद्भुत श्रेष्ठ धर्म-कथा हमको सुनाई। यह कथा सुनने में हमको ऐसा सुख मिला कि इतना अधिक समय पल भर की तरह बीत गया। हे
३७ धर्मज्ञ पुरुषों में श्रेष्ठ, इतना सुनकर भी धर्म-कथा से मेरा जी अभी नहीं भरा।

———

दो सौ सत्रह अध्याय

आङ्गिरस और अग्नि का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, यह धर्मचर्चा से परिपूर्ण पवित्र कथा सुनकर युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय से पूछा—भगवन्, अग्नि ने वन के भीतर क्यों प्रवेश किया? अग्नि के अन्तर्द्धान होने पर महातेजस्वी अङ्गिरा ऋषि ने कैसे उनका रूप रखकर देवताओं को हव्य पहुँचाया? वास्तव में अग्नि के एक होने पर भी, यज्ञ आदि कार्यों के समय, उनके कई रूप होने का कारण क्या है? कृपा करके यह भी कहिए कि भगवान् कार्त्तिकेय का जन्म कैसे हुआ। वे अग्नि के पुत्र कैसे हुए? महादेव के वीर्य से उनका जन्म कैसे हुआ? गङ्गा और कृत्तिकाएँ उनकी माता क्योंकर हुईं? यह वृत्तान्त सुनने के लिए मुझे बड़ा कौतूहल है।

मार्कण्डेय ने कहा—हे महाबाहो, अग्नि कुपित होकर तप करने के लिए जैसे जल के भीतर चले गये, भगवान् अङ्गिरा ने स्वयं अग्नि होकर जैसे अपनी प्रभा से सब लोकों को प्रकाशित और अन्धकार को दूर किया, उसके सम्बन्ध में पुरातन इतिहास कहता हूँ; सुनो।

पूर्व समय में महाभाग अङ्गिरा ऋषि ने अपने आश्रम में ऐसा तप किया कि उनका तेज अग्नि के तेज से भी बढ़ गया। वे अपने उग्र तेज से सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करने लगे। उसी समय अग्निदेव भी जल में तप कर रहे थे। अङ्गिरा के तेज को देखकर सन्ताप से वे मलिन हो गये। तेजस्वी अग्नि उदास होकर उसका कारण कुछ नहीं समझ सके। वे सोचने लगे कि मैं तप कर रहा हूँ, इससे मेरा अग्निभाव नष्ट हो गया है;
और इसी से शायद ब्रह्मा ने दूसरे अग्नि को उत्पन्न किया है। "मैं फिर कैसे अग्नि होऊँ?" यों १०
सोचकर अग्निदेव अङ्गिरा के पास गये। उन्होंने देखा, अङ्गिरा ऋषि अग्नि के समान अपने तेज से लोकों को ताप पहुँचा रहे हैं। अग्निदेव डरते हुए धीरे-धीरे अङ्गिरा के पास गये।

अग्नि को देखकर अङ्गिरा ने कहा—हे अन्धकार को मिटानेवाले, पितामह ब्रह्मा ने पहले आपको ही अन्धकार-नाशक प्रथम अग्नि के रूप से उत्पन्न किया है। आप इस त्रिलोकी में प्रसिद्ध हैं। इसलिए आप शीघ्र ही फिर लोकभावन अग्नि होकर अपना पद ले लीजिए। अग्नि ने कहा—हे तपोधन, इस समय आप अग्नि का कार्य कर रहे हैं, देवताओं को हव्य पहुँचाते हैं, इससे मेरी कीर्त्ति जगत् से उठ गई है। लोग अब आपको ही अग्नि जानेंगे, मुझे नहीं। इसलिए अब मैं अग्नि-पद को छोड़ता हूँ। आप ही प्रथम-अग्नि का पद लिये रहिए। मैं द्वितीय 'प्राजापत्य' अग्नि होकर रहूँगा। अङ्गिरा ने कहा—हे देव, आप ही अन्धकारनाशक और देवताओं को हव्य पहुँचानेवाले अग्नि का पद स्वीकार करें। आप ही प्रजा के स्वर्ग जाने के साधन और उनके पुण्य कर्मों के सहायक बनें और मुझे भी अपने अंश से उत्पन्न एक तेजस्वी पुत्र दें।

मार्कण्डेय कहते हैं—अङ्गिरा के वचन सुनकर, उनकी प्रार्थना मानकर, अग्नि ने अपना पद ग्रहण कर लिया। अङ्गिरा को अग्नि ने एक पुत्र भी दिया। वह पुत्र देवगुरु बृहस्पति हैं। देवताओं ने जब सुना कि अङ्गिरा के पहला पुत्र, अग्नि के अंश से, उत्पन्न हुआ है तब उन्होंने आकर अङ्गिरा से इसका कारण पूछा। अङ्गिरा ने उनको सब वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि यह मेरा पुत्र तुम लोगों का गुरु होगा। देवताओं ने अङ्गिरा की यह बात मान ली।

हे युधिष्ठिर, अग्नि अनेक प्रकार के हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थों में जुदे-जुदे कर्मों के उन महा-तेजस्वी अग्नियों की अलग-अलग कल्पना है। उनसे अलग-अलग प्रयोजन सिद्ध होते हैं। मैं
२१ उन सबका वर्णन करता हूँ; सुनो।

दो सौ अठारह अध्याय

अङ्गिरा के वंश का वर्णन

मार्कण्डेय ने कहा—हे कुरुकुलश्रेष्ठ, ब्रह्मा के तीसरे पुत्र अङ्गिरा थे। उनकी स्त्री का नाम शुभा था। उसके गर्भ से अङ्गिरा के जो लड़की-लड़के हुए उनका ब्योरा सुनो। अङ्गिरा के बृहत्कीर्ति, बृहज्ज्योति, बृहद्ब्रह्मा, बृहन्मना, बृहन्मन्त्र, बृहद्भास और बृहस्पति, ये सात पुत्र हुए। अङ्गिरा की पहली कन्या का नाम भानुमती है। वह उनकी सब सन्तानों से बढ़कर रूपवती है। दूसरी कन्या का नाम रागा है। उस पर सबका अनुराग अधिक होने के कारण उसका यह नाम पड़ा। तीसरी कन्या का नाम सिनीवाली है। इसे सब लोग रुद्रसुता कहते हैं। कृश होने के कारण यह देख भी पड़ती है और नहीं भी देख पड़ती। चौथी कन्या का नाम अर्चिष्मती है। इसकी कान्ति से सब जगत् उद्भासित होता है। इसका एक रूप भी है और अनेक रूप भी हैं। पाँचवीं कन्या का नाम हविष्मती है। इसके द्वारा देवताओं को

हवि प्राप्त होता है। छठी कन्या का नाम माहिष्मती है। सातवीं कन्या का नाम कुहू है। दीप्तियुक्त महायज्ञों में यह महामती नाम से प्रसिद्ध है। लोग इसे देखकर अत्यन्त विस्मित होते हैं। ८

दो सौ उन्नीस अध्याय

बृहस्पति के वंश का वर्णन

मार्कण्डेय कहते हैं—बृहस्पति की यशस्विनी भार्या का नाम चान्द्रमसी है। उसके गर्भ से बृहस्पति के छः अग्नि और एक कन्या, सात बच्चे हुए। आहुति देते समय जिस अग्नि में केवल घी छोड़ा जाता है और चातुर्मास्य, अश्वमेध, अग्निष्टोम यज्ञों में जिसे बलि का अग्रभाग मिलता है, उस उग्र तेज से पूर्ण और अनेक रङ्ग की लपटों से प्रदीप्त अग्नि का नाम 'शंयु' है। ये बृहस्पति के प्रथम पुत्र हैं। शंयु की स्त्री का नाम सत्या है। परम रूपवती सत्या धर्म की बेटी है। शंयु के एक तेजस्वी पुत्र और तीन कन्याएँ हुईं। पुत्र का नाम 'भरद्वाज' हुआ। ये सबके अग्रज हैं, और यज्ञ में प्रथम आज्यभाग इन्हें मिलता है। शंयु के, दूसरी स्त्री से, 'भरत' नाम के द्वितीय पुत्र का जन्म हुआ। इस स्त्री से तीन कन्याएँ भी हुईं। भरत इन तीनों बहनों से बड़े थे। उनको पौर्णमास यज्ञ में घी की आहुति मिलती है। भरत के 'भारत' नाम का एक पुत्र और 'भारती' नाम की एक कन्या हुई। भारत के 'पावक' नाम का पुत्र हुआ। पावक अग्नि अत्यन्त पूजनीय हैं, इसलिए इनका दूसरा नाम महान्' भी है। राजन्, शंयु के पहले पुत्र भरद्वाज की स्त्री का नाम वीरा था। वीरा के पुत्र का नाम 'वीर' हुआ। ब्राह्मण लोग, सोम की तरह, आज्य से इन वीर की भी पूजा करते हैं। इन्हें सोम के साथ द्वितीय आज्यभाग
मिलता है। इन्हें रथप्रभु, रथध्वान और कुम्भरेता भी कहते हैं। इन वीर की स्त्री का नाम १०
शरयू है। शरयू में इनके 'सिद्धि' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सिद्धि ने अपनी प्रभा से सूर्य को फीका कर रक्खा है। सूर्य के छिप जाने पर सिद्धि ने अग्निदैवत यज्ञ किया। आह्वान-मन्त्र में यही कहा जाता है। [सुवर्ण की कान्ति को मिथ्या (झूठा = फीका) कर दिया है, इसी से इनका दूसरा नाम 'मिथ्य' है। इनकी आराधना करने से सुवर्ण-लाभ होता है।]

बृहस्पति के दूसरे पुत्र का नाम 'निश्च्यवन' है। वे यश, ब्रह्मतेज और श्री से कभी च्युत (हीन) नहीं होते, इसी से उनका यह नाम पड़ा। वे केवल पृथ्वी की स्तुति करते हैं। उनके पुत्र का नाम 'सत्य' है। वे समय-धर्म के प्रवर्तक, निष्पाप, विशुद्ध और प्रभापुञ्ज से सदा उद्भासित हैं। उनकी अच्छी तरह सेवा करने से मनुष्यों की शोभा बढ़ती है। संसार की यन्त्रणा से पीड़ित लोगों को निष्कृति (छुटकारा) देनेवाले होने के कारण वही 'निष्कृति' नाम से भी

प्रसिद्ध हैं। 'सत्य' के पुत्र का नाम 'स्वन' है। उनके द्वारा पीड़ित होकर लोग चिल्लाते हैं, इसी से उनका नाम स्वन है। वे पीड़ा पहुँचानेवाले अग्नि हैं।

बृहस्पति के तीसरे पुत्र का नाम 'विश्वजित्' है। वे सारे विश्व की बुद्धि को अपने वश में किये हुए हैं, इसी से पण्डितों ने उनका नाम विश्वजित् रक्खा है। सब लोकों में प्रसिद्ध 'विश्वभुक्' नाम के अग्नि बृहस्पति के चौथे पुत्र हैं। वे प्राणियों के शरीर में रहकर खाये हुए पदार्थों को पचाते हैं। वे सदा ब्रह्मचारी, संयत और विपुल प्रभा-युक्त हैं। ब्राह्मण लोग पाकयज्ञ में उनकी पूजा करते हैं। गोमती नदी उनकी प्रिया है। धर्मकर्म करनेवाले लोग उसी नदी के तट पर सब क्रियाएँ करते हैं।

जो परम दारुण वाड़वाग्नि रूप से जल सोखते हैं, प्राणवायु के आश्रित हैं और ऊर्ध्वगति
२० के कारण 'ऊर्ध्वभाक्' नाम से प्रसिद्ध हैं, वे 'कवि' नाम के अग्नि बृहस्पति के पाँचवें पुत्र हैं। जिस अग्नि में जल से शुद्ध हवि डाला जाता है उसे स्विष्टकृत् कहते हैं। वे 'स्विष्टकृत्' अग्नि बृहस्पति के छठे पुत्र हैं। वे हवनीय पदार्थों को अच्छी तरह आहुत करते हैं, इस कारण भी उनका नाम स्विष्टकृत् है। इनके सिवा और भी अग्नि हैं। सब प्राणियों के शान्त रहने पर जो अग्नि प्रकट होता है उसका नाम 'मन्यु' है। उनके क्रूर स्वभाववाली, दारुण क्रोधमयी स्वाहा नाम की कन्या है। उसका दूसरा नाम मन्यन्ती भी है। वह सब प्राणियों में रहती है। एक अग्नि का नाम 'काम' है। स्वर्ग में भी उनके समान रूपवान् कोई नहीं है, इसी कारण देवताओं ने उनका यह नाम रक्खा है। एक अग्नि का नाम 'अमोघ' है। वे क्रोध धारण किये, धनुष और माला लिये, रथ पर चढ़े, हर्ष के साथ शत्रुओं का नाश करते हैं। एक और अग्नि 'उक्थ' हैं। वे कर्मफल और मोक्ष-प्राप्ति का कारण हैं, इसी से उनको उक्थ कहते हैं। तीन उक्थों से उनकी स्तुति की जाती है। वेदज्ञ लोग उनको वेदवाक्य का मूल कारण और
२५ मुक्तिरूप विश्राम का निमित्त कारण मानते हैं।

दो सौ बीस अध्याय

पाञ्चजन्य की उत्पत्ति का वर्णन

मार्कण्डेय कहते हैं—काश्यप, वासिष्ठ, प्राण-पुत्र प्राणक, आङ्गिरस च्यवन और त्रिवर्चा, ये पाँचों ऋषि ब्रह्मा के समान यशस्वी और धर्मनिष्ठ पुत्र पाने के लिए बहुत वर्षों तक कठोर तपस्या करते रहे। महाव्याहृति मन्त्रों के द्वारा ध्यान करने से एक महाप्रभा से पूर्ण, पाँच वर्ण का, ज्वालायुक्त, तेजोमय पुरुष उत्पन्न हुआ। उसका सिर प्रज्वलित अग्नि के समान था। दोनों हाथ सूर्य-सदृश थे। त्वचा और नेत्रों की आभा सुवर्ण की सी थी। दोनों जाँघें काले

रङ्ग की थीं। पूर्वोक्त पाँच ऋषियों की तपस्या से उत्पन्न होने के कारण उस पुरुष का नाम
पाञ्चजन्य हुआ। उनसे पाँचों ऋषियों का वंश चला। महातपस्वी पाञ्चजन्य ने पितरों का
वंश चलाने के लिए दस हज़ार वर्ष तक तप करके घोर दक्षिणाग्नि को उत्पन्न किया। उन्होंने
पहले मस्तक से बृहत् को, मुख से रथन्तर को, नाभि से शिव को, बल से इन्द्र को, प्राण से वायु
को, बाहुओं से उदात्त और अनुदात्त स्वरों को, मन को, पाँच ज्ञानेन्द्रियों को और महाभूतों को उत्पन्न
किया। उसके बाद अपने पितरों का वंश चलाने के लिए और पाँच पुत्र उत्पन्न किये। उन पुत्रों
में प्रणिधि से वासिष्ठ बृहद्रथ का, महत्तर से काश्यप का, भानु से च्यवन का, सौभ से त्रिवर्चा का
और अनुदात्त से प्राण का वंश चला। फिर पाञ्चजन्य ने यज्ञ में विघ्न डालनेवाले पन्द्रह देवरूप
असुरों को भी उत्पन्न किया। उनका विवरण यों है—सुभीम, अतिभीम, भीम, भीमबल और १०
अबल नाम के असुरों को पहले उत्पन्न किया। उनके बाद सुमित्र, मित्रवान्, मित्रज्ञ, मित्रवर्द्धन
और मित्रधर्मा, इन पाँच को उत्पन्न किया। अन्त को सुरप्रवीर, वीर, सुवेश सुवर्चा और सुर-
निहन्ता, इन पाँच की सृष्टि की। इस प्रकार पाँच-पाँच का एक दल है। ये देवरूप असुर
पृथ्वी पर रहकर स्वर्गस्थित यज्ञकर्त्ताओं के यज्ञ-फल को नष्ट कर देते हैं। ये अन्य अग्नियों
की ईर्ष्या से यज्ञ करनेवालों के इष्ट फल को हर लेते हैं और महत् हवि को भी नष्ट कर
डालते हैं। इनका कार्य ही यज्ञ-फल को हरना है। इसी कारण यज्ञकर्म में निपुण याज्ञिक
लोग यज्ञशाला की बहिर्वेदी में इनका भाग रख देते हैं। फिर ये वहाँ नहीं जाते जहाँ अग्नि की
स्थापना होती है। कुण्ड में सञ्चित अग्नि पत्तों के द्वारा, इनके वहाँ पहुँचने में, रुकावट
डालता है। मन्त्रों के द्वारा शान्त किये जाने पर ये यज्ञ के फल को नहीं हरते।
इनके सिवा तप नामक अग्नि के पुत्र बृहदुक्थ पृथ्वी पर स्थित हैं। अग्निहोत्र यज्ञ का
अनुष्ठान होते समय सज्जन लोग उनकी भी पूजा करते हैं। तप अग्नि के दूसरे पुत्र रथन्तर
नामक अग्नि हैं। वे बृहस्पति से भी श्रेष्ठ हैं। अध्वर्यु लोग उन्हें मित्रविन्द, अर्थात् महा-
विराट् के समान, मानते हैं। महायशस्वी पाञ्चजन्य इन प्रिय पुत्रों को पाकर परम प्रसन्न हुए। २०

दो सौ इक्कीस अध्याय

विविध अग्नियों का वर्णन

मार्कण्डेय कहते हैं—पूर्वोक्त भरत नाम के अग्नि विशेष नियमों से युक्त हैं। उनका दूसरा नाम पुष्टिमति भी है। ये सन्तुष्ट होने पर पुष्टि देते हैं। प्रजा का भरण-पोषण करने के कारण ये भरत कहलाते हैं। शिव नाम से प्रसिद्ध अग्नि सदा शक्ति की उपासना करते हैं। वे सब दुःखपीड़ित मनुष्यों का भला करते हैं, इसी से उनका नाम शिव है। तपस्या के फल से

अमित ऐश्वर्य पाने के लिए उत्पन्न अग्नि का नाम पुरन्दर है। सब प्राणियों में व्याप्त ऊष्मा नामक अग्नि ऊष्मा (गर्मी) से उत्पन्न हुए हैं। मनु नामक अग्नि ने प्राजापत्य यज्ञ किया था। एक महातेजस्वी अग्नि का नाम शम्भु है। एक अग्नि का नाम आवसथ्य है। उन महाप्रभा-युक्त प्रदीप्त अग्नि की पूजा आवसथ यज्ञ में होती है। तप नामक अग्नि के ऊर्जस्कर नाम से प्रसिद्ध पाँच पुत्र हुए। वे सब सुवर्ण के समान प्रभायुक्त हैं और देवताओं को हव्य पहुँचाते हैं। उन्हें यज्ञ में सोमरस का भाग मिलता है।

अस्ताचल में जाने से थके हुए सूर्य प्रशान्त अग्नि के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्होंने घोर-
रूपवाले असुरों और मनुष्यलोक-वासी अनेक प्रकार के प्राणियों की सृष्टि की है। तप अग्नि
के मनु नामक अग्नि उत्पन्न हुए। अङ्गिरा से प्रजापति भानु अग्नि की उत्पत्ति हुई। वेदज्ञ
ब्राह्मण उन्हें बृहद्भानु भी कहते हैं। सूर्य की कन्या, श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न करनेवाली बृहद्भासा,
भानु की स्त्री है। उनके छः पुत्र हुए। उनका हाल सुनो। भानु के पहले पुत्र का नाम
१० बलद है। वे दुर्बल प्राणियों को बल देते हैं। दूसरे पुत्र का नाम मन्युमान है। वे शान्त
प्राणियों में दारुण मन्यु (क्रोध) के रूप से स्थित हैं। तीसरे पुत्र धृतिमान अङ्गिरा हैं। उनको
विष्णु भी कहते हैं। दर्श और पौर्णमास यज्ञों में उन्हें हवि दिया जाता है। चौथे पुत्र
आग्रयण हैं। वे इन्द्र के साथ आग्रयण हवि पाते हैं। पाँचवें पुत्र का नाम अग्रह है। वे
चातुर्मास्य यज्ञ में आग्नेय आदि आठ हवियों के भाग पाते हैं। इनके चार पुत्र भी हैं।
भानु के छठे पुत्र का नाम स्तुभ है। इनके सिवा भानु के निशा नाम की एक कन्या और
अग्नीषोम नाम के पुत्र भी हुए।

मनु नामक अग्नि के रेवा नाम की स्त्री में पाँच अग्नि उत्पन्न हुए। हे युधिष्ठिर, चातु-
र्मास्य यज्ञ में पर्जन्य (इन्द्र) के साथ हवि के अग्रभाग को प्राप्त करनेवाले अग्नि का नाम वैश्वानर
है। सब लोकों के प्रभु कहलानेवाले, मनु के दूसरे पुत्र, विश्वपति नाम के अग्नि हैं। उनका
दूसरा नाम स्विष्टकृत भी है। हिरण्यकशिपु की कन्या रोहिणी उनकी स्त्री हैं। प्राणवायु
का आश्रय लेकर देहधारियों के शरीर को कामों में लगानेवाले अग्नि का नाम सन्निहित है। वे
शब्द और रूप के साधन हैं। शुक्ल (निवृत्ति मार्ग) और कृष्ण (प्रवृत्ति मार्ग) फल के
२० विधाता, स्वयं पाप-स्पर्श से रहित होकर सकाम कर्मरूप पाप के प्रचारक, क्रोध के आधार रूप
अग्नि का नाम कपिल है। विद्वान् लोग इन्हीं को सांख्ययोगशास्त्र के कर्त्ता महर्षि कपिल कहते
हैं। एक अग्नि का नाम अग्रणी है। सब लोग इन्हीं अग्नि में सब प्राणियों के लिए 'अग्र' अर्पण
करते हैं। बलिवैश्वदेव के बाद मनुष्य-यज्ञ के लिए दिये जानेवाले अन्न को अग्र कहते हैं।

दूषित अग्निहोत्र के प्रायश्चित्त के लिए इन सबकी और अन्य बहुत से घोररूप प्रसिद्ध अग्नियों की सृष्टि हुई है। यदि ये सब अग्नि किसी तरह वायु के द्वारा परस्पर छू जायँ

मुनि-पत्नियों को देखकर अग्निदेव काम से पीड़ित हो गये—पृ० ११६८

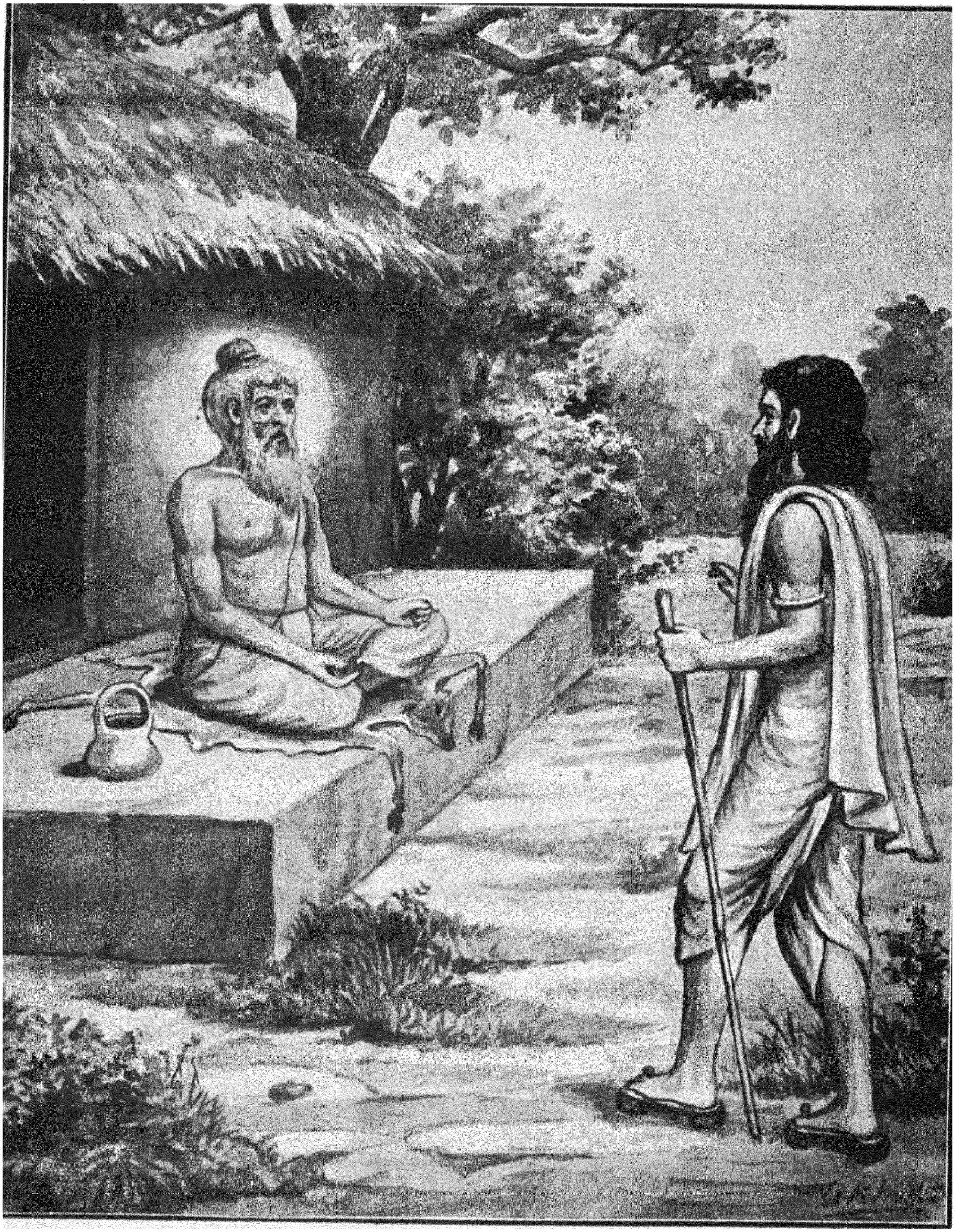

प्रथम अग्नि-सह ने अङ्गिरा को देखकर कहा—हे वीर ! मैं बहुत ही दुर्बल होगया हूँ—पृ० ११६३

(क्योंकि इन सब अग्नियों की स्थापना अलग-अलग की जाती है), तो शुचि नामक अग्नि में अष्टाकपाल नाम की इष्टि करनी चाहिए। और, यदि अपने स्थान पर प्रज्वलित इन अग्नियों को दावानल का स्पर्श हो जाय, तो भी शुचि अग्नि में अष्टाकपाल इष्टि करनी चाहिए। यदि रजस्वला स्त्री अग्निहोत्र के अग्नि को छू जाय, तो वसुमान् अग्नि में अष्टाकपाल इष्टि करनी चाहिए। अग्निहोत्र के समय किसी के मरने की ख़बर मिले, अथवा अपने यहाँ का कोई पशु मरकर घर को अशुद्ध कर दे, तो सुरभिमान् नाम के अग्नि में अष्टाकपाल इष्टि करनी चाहिए। रोगपीड़ित होने के कारण यदि कोई ब्राह्मण तीन दिन तक अग्निहोत्र न कर सके तो उसे तन्तुमान् (उत्तराग्नि) नामक अग्नि में अष्टाकपाल इष्टि करनी चाहिए। यदि कोई ब्राह्मण समय पर दर्श और पौर्णमास यज्ञ न कर सके, तो उसे पथिकृत् अग्नि में अष्टाकपाल इष्टि करनी चाहिए। अगर अग्निहोत्र की आग से सूतिकागृह की आग छू जाय, तो अग्निमान् अग्नि में अष्टाकपाल इष्टि करनी चाहिए। ३१

दो सौ बाईस अध्याय

सह अग्नि और अथर्वाग्नि का वर्णन

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, सह नाम के अग्नि ने अपनी बहुत प्यारी पत्नी मुदिता के गर्भ से अद्भुत नाम के अग्नि को उत्पन्न किया। अद्भुत नामक अग्नि भुवनभर्त्ता और आत्मा हैं; इसी से विद्वान् ब्राह्मण उनको सब प्राणियों का स्वामी कहते हैं। वे महातेजस्वी भगवान् पावक वायु आदि महाभूतों के अधिपति हैं। यज्ञों में गृहपति अग्नि के नाम से उनकी पूजा की जाती है। अद्भुत के पुत्र भरत नाम के अग्नि हैं। वे लोगों की दी हुई आहुतियों को देवताओं तक पहुँचाते हैं। वही जल की उत्पत्ति का स्थान हैं। वे महातपस्वी, महाअद्भुत, प्राणियों को जलानेवाले, पृथ्वी के पति, त्रिभुवन का भरण करनेवाले और महत्पति हैं। वही मृत प्राणियों के शरीर को भस्म करते हैं। उन भरत के पुत्र क्रतुश्रेष्ठ नाम के अग्नि हुए। अग्निष्टोम यज्ञ में नियत नाम से उनकी पूजा होती है।

एक समय उन्हीं प्रथम-अग्नि सह को सब देवता ढूँढ़ रहे थे, इसी समय नियत अग्नि को आते देखकर उनके डर से 'सह' समुद्र के भीतर चले गये। देवता लोग चारों ओर उनको खोजते हुए उसी स्थान पर पहुँचे। उधर सह ने अथर्वा-अग्नि (तीव्र तप करनेवाले अङ्गिरा) को देखकर उनसे कहा—हे वीर, मैं बहुत ही दुर्बल हो गया हूँ; इसलिए तुम पिङ्गलोचन अग्नि का रूप धारण करके देवताओं को हव्य पहुँचाओ और मेरा प्रिय करो।

अथर्वा से यों कहकर सह अग्नि दूसरी जगह चले गये। मछलियों ने देवताओं को उनका पता बता दिया। अग्नि ने इससे कुपित होकर उन्हें शाप दिया कि तुमको अनेक प्रकार से प्राणी खाया करेंगे। मछलियों से यों कहकर अथर्वा से अग्नि ने पूर्वोक्त वचन कहे। देवताओं ने अग्नि से बहुत कुछ कहा-सुना, परन्तु अग्नि ने सम्पूर्ण हव्य ले जाने का काम स्वीकार करना नहीं चाहा। वे शरीर छोड़कर पृथ्वी के भीतर घुस गये।

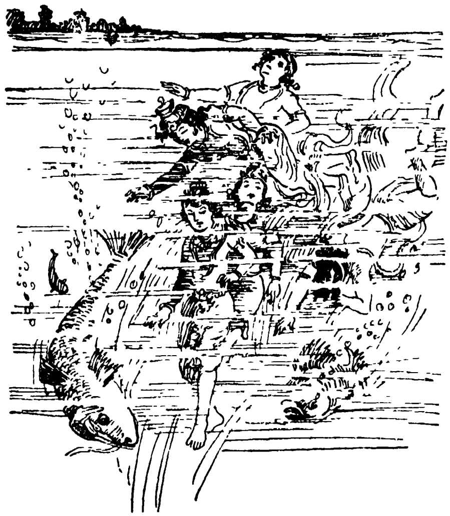

अग्नि ने यों पृथ्वी में प्रवेश करके अपने शरीर से अनेक प्रकार की मैनसिल आदि धातुओं की सृष्टि की। उनके मुँह से गन्ध और तेज, हड्डियों से देवदारु, कफ से स्फटिक (बिल्लौर), पित्त से मरकत मणि और यकृत् से काला लोहा पैदा हुआ। पूर्वोक्त काष्ठ, लोहा और पत्थर से प्रजा के अनेक काम निकलते हैं। हे भरतश्रेष्ठ, उनके नखों से मेघ और नसों से मूँगे के पेड़ पैदा हुए। उनके शरीर से इस प्रकार और भी अनेक धातुएँ उत्पन्न हुईं।

अग्नि जब इस तरह अपना शरीर छोड़कर आत्मविचाररूपी निरुपाधि समाधि में स्थित हुए, तब भृगु और अङ्गिरा आदि महर्षियों ने तप के प्रभाव से उनको फिर उठाया, अर्थात् उनकी समाधि छुड़ा दी। तब वे तप के तेज से पूर्ण होकर बड़े वेग से प्रज्वलित हो उठे किन्तु अथर्वा आदि ऋषियों के तेज को देखकर डर के मारे वे फिर महासागर में घुस गये। अग्नि के नष्ट होने से व्याकुल और डरे हुए देवता आदि सबने अथर्वा का आश्रय लिया और वे उन्हीं की पूजा करने लगे। तब अथर्वा ने सबके सामने समुद्र को मथकर अग्नि से भेट की और उनको प्रकट किया।

इस प्रकार वे पहले विनष्ट हुए अग्नि भगवान् अथर्वा के द्वारा बुलाये जाने के कारण, प्रकट होकर, सब प्राणियों का हव्य देवताओं तक पहुँचाते हैं। अथर्वा ऋषि ने महासागर में जाकर और अनेक देशों में भ्रमण करके वेदोक्त अनेक अग्नियों की (बृहस्पति, शंयु आदि के पहले कहे गये क्रम से) सृष्टि की। हे भारत! सिन्धु, पञ्चनद, देविका, सरस्वती, गङ्गा, शतकुम्भा, सरयू, गण्डकी, चर्मण्वती, मही, मेध्या, मेधातिथि, ताम्रावती, वेत्रवती, कौशिकी, तमसा, नर्मदा, गोदावरी, वेणा, उपवेणा, भीमा, मरुदा, वड़वा भारती, सुप्रयोगा, कावेरी, मुर्मुरा, तुङ्गवेणा, कृष्णवेणा, कपिला और शोणा आदि नदियाँ इन सब अग्नियों की जननी मानी गई हैं।

अद्भुत अग्नि की भार्या का नाम प्रिया है। उनके पुत्र विभूरसि नाम अग्नि हैं। जितने अग्नि कहे गये, उतने सोम (सोमयाग) हैं। वे सोम ब्रह्मा के मानस पुत्र अत्रि के वंश में उत्पन्न हुए हैं। अत्रि ने पुत्र पाने की इच्छा से पूर्वोक्त अग्नियों को शरीर में धारण किया था। वे अग्नि उनकी ब्रह्मकाया से प्रकट हुए हैं। हे कौरव! ये पूर्वोक्त अप्रमेय, श्रीमान्, अन्धकार-नाशक अग्नि जिस तरह उत्पन्न हुए सो मैंने तुमको सुना दिया। वेद में अद्भुत अग्नि का माहात्म्य जैसा कहा गया है वैसा ही माहात्म्य तुम सब अग्नियों का जानो; क्योंकि अग्नि एक ही हैं। भगवान् अङ्गिरा ही प्रथम अग्नि हैं। ज्योतिष्टोम यज्ञ के भेदों की तरह इन्हीं के शरीर से एक अग्नि अनेक होकर प्रकट हुए हैं। अग्नि का यह बहुविस्तृत वंश मैंने तुमको सुना दिया। एक ही अग्नि अनेक होकर विविध मन्त्रों के द्वारा देहधारियों का हव्य पहुँचाते हैं। ३२

दो सौ तेईस अध्याय

कार्त्तिकेय का उपाख्यान

मार्कण्डेय कहते हैं—हे निष्पाप, मैं अग्नि के विविध वंशों का वर्णन कर चुका। अब अद्भुत अग्नि के अद्भुत पुत्र, परम तेजस्वी, कीर्तिवर्द्धन, कार्त्तिकेय जैसे ब्रह्मर्षियों की पत्नियों से उत्पन्न हुए उसका हाल सुनो। पूर्व समय में देवता और दैत्य एक दूसरे के प्रबल शत्रु थे। वे मौका पाकर एक दूसरे को मारने का यत्न किया करते थे। घोर दानवगण सदा जीतते और देवता हारते थे। दानवों के द्वारा अपनी सेना का नाश होते देखकर इन्द्र को एक सेनापति की बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा कि एक ऐसे महाबली वीर पुरुष को ढूँढ़ना चाहिए, जो अपने बल से दानवों को मारकर देव-सेना की रक्षा कर सके। इसके लिए वे मानस पर्वत पर गये। एक समय वे एकाग्र होकर यही सोच रहे थे, इसी समय उनको एक स्त्री के मुँह से दीन

वचन सुन पड़े कि "कोई पुरुष रक्षा के लिए मेरे पास आवे और वह या तो मुझे पति दे अथवा आप ही मेरा पति हो जाय।" तब "तुम्हें डर नहीं है" कहकर इन्द्र उस स्त्री के पास गये।

जाकर देखा कि गदा हाथ में लिये, धातुओं से शोभित पर्वत की तरह, किरीट-धारी केशी एक कन्या को हाथ पकड़कर खींच रहा है। तब इन्द्र ने उससे कहा—अरे नीच कर्म करनेवाले, तू इस कन्या को क्यों खींच रहा है? मैं वज्रधारी इन्द्र हूँ। इस कन्या को मत सता, छोड़ दे।

केशी ने कहा—इन्द्र, तुम इस कन्या की आशा छोड़ दो। इसे पाने की मुझे इच्छा है। हे इन्द्र, मैं तुम्हें क्षमा किये देता हूँ, इसलिए प्राण लेकर अपने स्थान को चले जाओ।

अब इन्द्र को मारने के लिए केशी ने गदा चलाई तो इन्द्र ने बीच में ही वज्र से वह गदा काट डाली। तब कुपित होकर केशी ने इन्द्र पर एक पर्वत का शिखर फेंका किन्तु इन्द्र के प्रहार से वह भी टूट-फूटकर गिर पड़ा। ऊपर से टूटकर वह शिखर केशी के ऊपर ही गिरा। शिखर की चोट खाकर, उस कन्या को छोड़कर, केशी वेग से भाग गया। असुर के भाग जाने पर इन्द्र ने उस कन्या से पूछा—सुन्दरी, तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? यहाँ क्या कर रही हो?

दो सौ चौबीस अध्याय

देवसेना और इन्द्र का, इन्द्र और ब्रह्मा का, संवाद। अग्नि का वनगमन

उस कन्या ने कहा—मैं प्रजापति की जगत्प्रसिद्ध कन्या देवसेना हूँ। मेरी बहन का नाम दैत्यसेना है। केशी पहले उसको हर ले गया है। प्रजापति की आज्ञा लेकर हम दोनों बहनें, क्रीड़ा करने के लिए, सखियों के साथ इस मानस पर्वत पर आया करती थीं। महा-असुर केशी नित्य हमें हरने की घात में लगा रहता था। दैत्यसेना तो केशी को चाहती थी, किन्तु मुझे वह पसन्द नहीं था। भगवन् केशी मेरी बहन को हर ले गया और आज मुझे भी हरे लिये जा रहा था परन्तु आपके बल से मेरी रक्षा हो गई। हे देवेन्द्र, अब मुझे आप एक दुर्जय पति बता दीजिए।

इन्द्र ने कहा—हे शोभने, तुम मेरी मौसी की लड़की हो। मेरी माता भी दक्ष की बेटी हैं। तुम अपनी शक्ति का वर्णन करो।

देवसेना ने कहा—हे महाबाहु, मैं तो अबला हूँ; परन्तु मेरा पति, पिता के वरदान से, महाबली होगा; देवता और दैत्य, सभी उसे प्रणाम करेंगे।

इन्द्र ने कहा—देवी, मैं सुनना चाहता हूँ कि तुम्हारे पति का बल कैसा होगा। देवसेना ने कहा—देवराज, जो स्वयं स्वभाव से ही महाबली और महापराक्रमी होंगे, जो तुम्हारे साथ देवता, दानव, यक्ष, किन्नर, नाग, राक्षस, दुष्ट दैत्य, और अन्य प्राणियों को जीतेंगे, वही कीर्त्ति बढ़ानेवाले ब्रह्मनिष्ठ पुरुष मेरे पति होंगे।

मार्कण्डेय कहते हैं कि कन्या के वचन सुनकर इन्द्र बहुत दुःखित हुए और सोचने लगे कि जैसा पति यह चाहती है वैसा तो संसार में कहीं देख नहीं पड़ता। इसके बाद सूर्य के

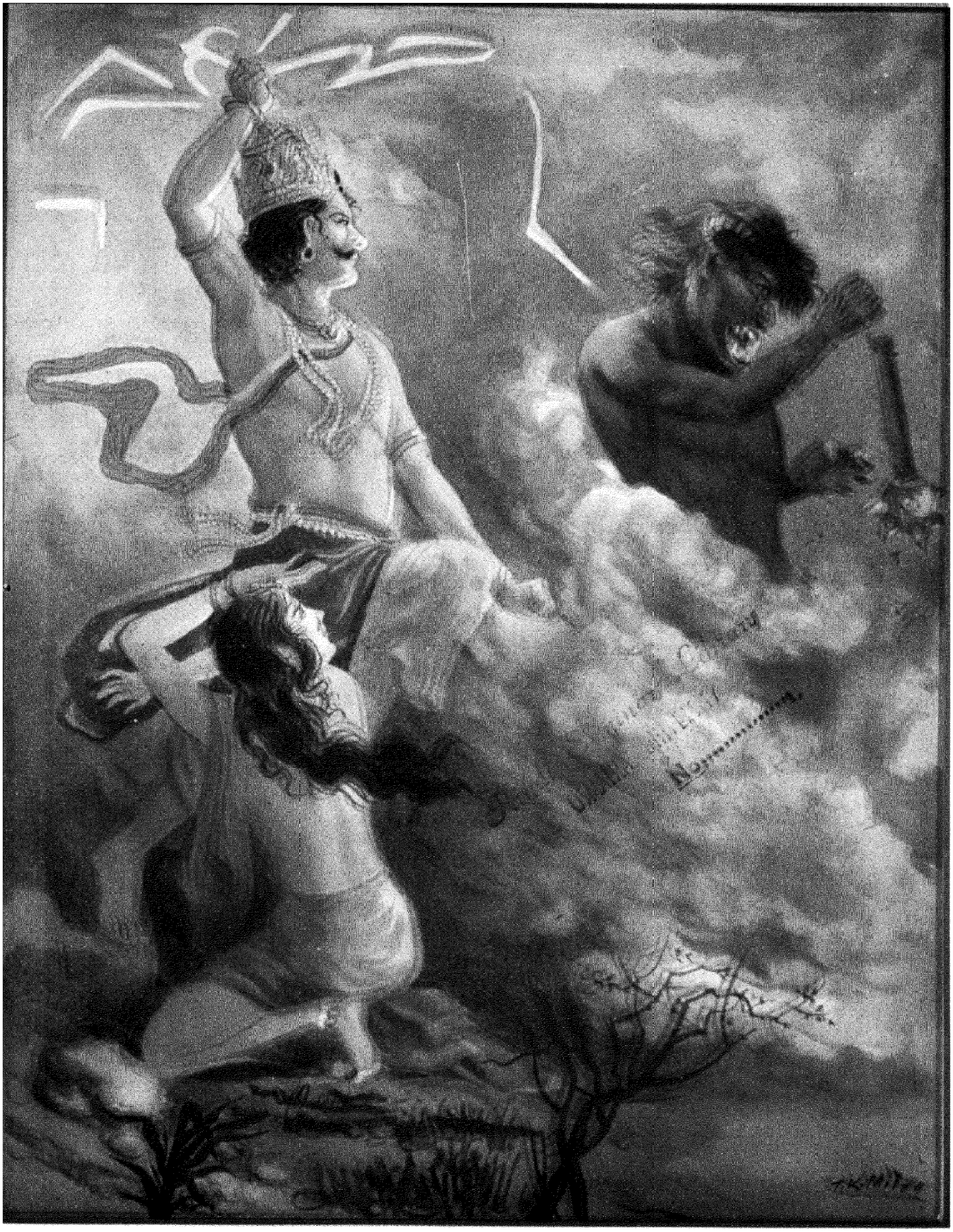

इन्द्र-द्वारा केशी राक्षस से देवसेना का उद्धार---पृ० ११६६

समान तेजस्वी इन्द्र ने देखा कि सूर्य उदयाचल पर चढ़ रहे हैं और चन्द्रमा उनके शरीर में प्रवेश कर रहे हैं। उसी रौद्र मुहूर्त में अमावस आ जाने पर इन्द्र ने उदय पर्वत पर देवासुर-संग्राम देखा। लाल रङ्ग के बादलों ने पूर्व-सन्ध्या को ढक लिया, महासागर का रङ्ग लाल हो गया। भृगु और अङ्गिरा की सन्तानों ने जुदे-जुदे मन्त्रों से अग्नि का आह्वान किया। अग्नि आहुति और हव्य लेकर सूर्य में प्रवेश करने लगे। अमावस आदि चौबीस पर्व भी सूर्य में उपस्थित हुए। अग्नि और चन्द्र को सूर्यगत देखकर—चन्द्रमा और सूर्य की एकता तथा उसमें रौद्र अग्नि का समावेश देखकर—इन्द्र सोचने लगे कि सूर्य और चन्द्रमा का घोर संयोग देख पड़ता है। इससे यह सूचना मिलती है कि रात्रि के अन्त में महायुद्ध होगा। नदियाँ उलटी बह रही हैं और उनमें जल की जगह रक्त देख पड़ता है, सियारी सूर्य की ओर मुँह करके बोल रही है, यह रौद्र तेज प्रज्वलित हो रहा है और सूर्य तथा अग्नि से चन्द्रमा का अद्भुत समागम देख पड़ रहा है। जान पड़ता है, चन्द्रमा जो पुत्र उत्पन्न करेंगे वही इस देवी का पति होगा। अथवा ये सर्वगुणवान् सर्वदेवमय अग्नि जो पुत्र
उत्पन्न करेंगे वह इस देवी का पति होगा। २०
यों सोचकर इन्द्र उसी समय ब्रह्मलोक को गये। देवसेना को पितामह ब्रह्मा के पास ले जाकर इन्द्र कहने लगे—भगवन्, आपको प्रणाम है। आप इस देवी के लिए कोई शूर और योग्य पति बता दीजिए।

ब्रह्मा ने कहा—हे दानवों के शत्रु, तुमने जिस तरह सोचा है उसी तरह एक बलवान् पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होकर तुम्हारी सहायता करनेवाला सेनापति और इस देवी का पति होगा।

ब्रह्मा के वचन सुनकर इन्द्र ने उन्हें प्रणाम किया। फिर वहाँ से वे उस कन्या को साथ लिये हुए वशिष्ठ आदि शक्तिशाली ब्रह्मर्षियों की यज्ञशाला में आये। अन्यान्य देवता भी सोमरस पीने के लालच से वहाँ पर आये। महर्षियों ने प्रज्वलित अग्नि में यथाविधि इष्टि करके देवताओं के लिए आहुति देना प्रारम्भ किया। इसी समय परम अद्भुत अग्नि भी, आहुति देने पर, सूर्यमण्डल से निकलकर चुपचाप वहाँ पर आ गये। महर्षियों के मन्त्रपूत हव्य को लेकर, देवताओं को पहुँचाकर, अग्नि जब वहाँ से जाने लगे तब उन्होंने देखा कि महर्षियों की

३१ स्त्रियों में कोई बैठी हुई है और कोई पड़ी सो रही है। वे मुनि-पत्नियाँ सुवर्ण की वेदी, चन्द्रमा की कला, अग्नि की शिखा और तारागण की पङ्क्ति के समान हृदय को प्रसन्न करनेवाली थीं। उनको देखकर अग्निदेव काम के बाणों से पीड़ित हो गये। उनकी इन्द्रियाँ विचलित हो गईं; परन्तु उन्होंने उसी दम सोचा कि मेरा यों चञ्चल होना ठीक नहीं। ब्राह्मणों की स्त्रियाँ पतिव्रता और कामनाहीन हैं; इनके प्रति मेरे हृदय में इच्छा उत्पन्न होना ठीक नहीं है। मैं अकारण इन्हें न तो छू सकता हूँ और न देख सकता हूँ। इसलिए मैं गार्हपत्य अग्नि में प्रवेश करके इनको देखूँगा।

मार्कण्डेय कहते हैं—इसके बाद गार्हपत्य अग्नि में प्रवेश करके अग्निदेव ने अपना मनोरथ सिद्ध किया। वे सुवर्ण के रङ्गवाली ऋषि-पत्नियों को देखकर और अपनी ज्वालाओं से छूकर बहुत ही आनन्दित हुए। इस प्रकार कामना के अधीन होकर वे मुनि-पत्नियों को अपना हृदय अर्पण करके बहुत देर तक वहाँ ठहरे रहे। अन्त को उन्हें पाने की आशा न होने पर उन्होंने देहत्याग का विचार कर लिया। फिर कामाग्नि से व्याकुल अग्नि वन को चले गये।

उसी समय दक्ष की कन्या स्वाहा अग्नि पर आसक्त हो रही थी। वह बहुत दिनों से अग्नि का दोष ढूँढ़ रही थी; पर अग्नि के सावधान रहने से स्वाहा को सफलता नहीं हुई थी। इस समय यह जानकर कि अग्नि वास्तव में काम-पीड़ित होकर वन को जा रहे हैं, स्वाहा ने सोचा कि अग्नि सप्तर्षियों की पत्नियों के रूप पर मोहित हो गये हैं इसलिए मैं उनका रूप
४२ रखकर अग्नि को भजूँ तो वे भी प्रसन्न होंगे और मेरी इच्छा भी पूरी होगी।

दो सौ पचीस अध्याय

स्कन्द की उत्पत्ति। क्रौञ्च-विदारण

मार्कण्डेय कहते हैं कि महाराज, स्वाहा पहले अङ्गिरा की स्त्री शील-गुण-रूपवती शिवा का रूप रखकर अग्नि के पास गई। उसने कहा—हे अग्नि, मुझे काम सता रहा है इसलिए तुम मेरी इच्छा पूरी करो; नहीं तो मैं अपनी जान दे दूँगी। हे हुताशन, मैं महर्षि अङ्गिरा की पत्नी हूँ; मेरा नाम शिवा है। अपनी सखियों से सलाह करके मैं तुम्हारे पास आई हूँ। अग्नि ने पूछा—हे सुन्दरी, मेरे काम-पीड़ित होने का हाल तुमने कैसे जाना? और, जिन ऋषि-पत्नियों का तुमने उल्लेख किया वे तुम्हारी सखियाँ कैसी हैं? स्वाहा ने कहा—तुम हमें सदा से प्रिय हो, पर हम तुमसे छड़कती थीं। ऋषि-पत्नियों ने तुम्हारे इङ्गित से तुम्हारा अभिप्राय जानकर मुझे तुम्हारे पास भेजा है। मैं रति की इच्छा से आई हूं। इसलिए तुम शीघ्र मेरी इच्छा पूरी करो। मेरे पति मेरी राह देख रहे होंगे; मैं झटपट लौट जाना चाहती हूँ।

मार्कण्डेय कहते हैं—तब अग्नि ने प्रसन्न होकर स्वाहा की इच्छा पूरी की। देवी स्वाहा ने प्रसन्न होकर अग्नि के शुक्र को हाथ में ले लिया। पीछे वह सोचने लगी कि वन में जो कोई मेरा यह रूप देख लेगा तो मुनिपत्नियों को अग्नि-समागम का कलङ्क अकारण ही लग जायगा। इसलिए मैं इस वीर्य की रक्षा के लिए गरुड़ पक्षी का रूप रख लूँ। तब मैं मज़े में इस वन से निकल जाऊँगी।

यों सोचकर स्वाहा ने वही रूप रख लिया। वन से निकलकर उसने देखा कि सामने सफ़ेद पर्वत है और उस पर तमाम
सेंठे का वन लगा हुआ है। दृष्टि से ही १०
जला देने की शक्ति रखनेवाले सात सिर के भयानक नाग, बहुत से राक्षस, पिशाच, भूत, राक्षसी, मृग और पक्षी आदि उस भयानक वन में भरे पड़े हैं। उस दुर्गम पर्वत के ऊपर स्वाहा ने काञ्चनकुण्ड में वह अग्नि का तेज डाल दिया। महाराज, स्वाहा ने इस तरह छः बार छः ऋषियों की पत्नियों के रूप रख-रखकर अग्नि के साथ अपनी इच्छा पूरी की। किन्तु वशिष्ठ की स्त्री अरुन्धती स्वभाव से ही परम पतिव्रता और तेजस्विनी-तपस्विनी थीं, इस कारण उनके दिव्य रूप को स्वाहा नहीं रख सकी। स्वाहा ने इस तरह छः बार—प्रत्येक बार प्रतिपदा तिथि को—अग्नि का तेज उसी काञ्चनकुण्ड में लाकर डाला। तब उससे ऋषि-पूजित एक पुत्र उत्पन्न हुआ। स्कन्द, अर्थात् स्खलित, तेज से जन्म होने के कारण उस बालक का नाम स्कन्द पड़ा। हे कुरुश्रेष्ठ! स्कन्द के छः सिर, एक पेट, एक गरदन और हाथ, आँख, कान आदि अङ्ग बारह-बारह हुए। वे द्वितीया को कुछ प्रकट, तृतीया को शिशुरूप और चतुर्थी को सब अङ्ग-प्रत्यङ्गों से शोभित हो उठे। बिजलियों से शोभित लाल रङ्गवाले बादलों से व्याप्त आकाशमण्डल में स्थित तीक्ष्ण तेजवाले सूर्य के समान स्कन्द की कान्ति चारों ओर फैलने लगी। फिर उस तेजस्वी कुमार ने त्रिपुर-दहन महा-
देव का, दानवदलन विशाल भयानक, धनुष अपने हाथ में लिया। वह धनुष लेकर महाबली २०
स्कन्द ने घोर सिंहनाद किया। वह शब्द सुनकर सब चराचर प्राणी मोहित से हो गये।

स्कन्द का मेघगर्जन के समान सिंहनाद सुनकर चित्र और ऐरावत नाम के दोनों दिग्गज उनकी ओर दौड़े। बाल-सूर्य-सदृश तेजस्वी अग्नि-पुत्र महाबाहु कुमार उनको आते देखकर एक

हाथ में शक्ति को, एक हाथ में मुर्गे को और दो हाथों में उन दिग्गजों को लेकर भयानक शब्द
करते हुए क्रीड़ा करने लगे। वे अन्य दो हाथों में शङ्ख लेकर बजाने लगे। उस शङ्ख के गम्भीर
महाशब्द को सुनकर बड़े-बड़े बली प्राणी भी डर गये। अन्य दो हाथों से वे आकाश को पीटने
लगे। उदयाचल पर सूर्य के समान शोभायमान स्कन्द उस पर्वत पर इस भयानक भाव से क्रीड़ा
कर रहे थे, मानो तीनों लोकों को पी जायँगे। अद्‌भुत पराक्रमी कार्त्तिकेय उस पर्वत पर बैठकर
चारों ओर देखने लगे, क्योंकि उनके छः मुँह थे। वे पर्वत पर से जगत् के विविध भावों को
देखकर फिर गरजने लगे। उनके उस घोर शब्द से घबराकर, डरकर, अनेक वर्ण के सब
३० लोग उनकी शरण में आये। उस समय जो लोग उनकी शरण में आये वे महाशक्तिशाली
पारिषद ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध हुए।

फिर महाबाहु कुमार उन शरणागतों को अभय देकर उठ खड़े हुए और धनुष चढ़ाकर
श्वेत पर्वत पर बाणों की वर्षा करने लगे। स्कन्द ने हिमवान् के पुत्र उस क्रौञ्च पर्वत को अपने
बाणों से तोड़ डाला। हंस और गिद्ध
पक्षी, उसी छेद की राह से, अब तक सुमेरु
पर्वत पर जाते हैं। विदीर्ण होकर क्रौञ्च पर्वत
घोर आर्तनाद करने लगा। उसकी यह
दशा देखकर और पर्वत भी चिल्लाने लगे।
महाबली कार्त्तिकेय उन पर्वतों के आर्तनाद
को सुनकर तनिक भी विचलित नहीं हुए।
वे हाथ में शक्ति तानकर गरजने लगे।
महात्मा कार्त्तिकेय ने वह शक्ति चलाकर
उसी समय श्वेत पर्वत के भारी शिखर को
गिरा दिया। फट जाने पर वह श्वेत पर्वत
स्कन्द से डरकर पृथ्वी छोड़कर भाग गया।
उधर पर्वत का शिखर फटकर ऊपर गिरने
से पृथ्वी बहुत ही व्यथित हुई। वह चारों

ओर फट गई। स्कन्द की शरण में आने से पृथ्वी फिर प्रबल हो उठी। सब पर्वत भी स्कन्द
को प्रणाम करके फिर पृथ्वी पर स्थित हुए। तभी से सब लोग शुक्लपक्ष की पञ्चमी को
३६ कार्त्तिकेय की पूजा करते हैं।

दो सौ छब्बीस अध्याय

सप्तर्षियों का लोकापवाद के डर से अपनी स्त्रियों को छोड़ देना

मार्कण्डेय कहते हैं—महासत्त्व महाबली कार्त्तिकेय का जन्म होने पर अनेक प्रकार के घोर उत्पात देख पड़ने लगे। स्त्रियों और पुरुषों में परस्पर विरोध होने लगा। जाड़ा-गरमी आदि द्वन्द्व धर्मों का प्रभाव बढ़ने लगा। ग्रह, दिशाएँ और आकाशमण्डल प्रज्वलित सा हो उठा। पृथ्वी मे घोर शब्द हुआ। लोक-रक्षा करनेवाले ऋषि लोग चारों ओर अनेक भयानक उत्पात देखकर बहुत घबराये और उनकी शान्ति करने लगे। उस समय चैत्ररथ वन में रहनेवाले लोग कहने लगे कि अग्नि ने सप्तर्षियों की छः पत्नियों से सहवास करके हम लोगों के लिए यह महा अनर्थ खड़ा कर दिया है। जिन लोगों ने उस वन से पक्षी का रूप रखकर स्वाहा को जाते देखा था वे उसी को इन उत्पातों की उत्पत्ति का कारण कहने लगे। किन्तु यह किसी को नहीं मालूम हुआ कि स्वाहा ने यह कर्म किया है। उधर सुपर्णी (पक्षी का रूप रक्खे हुए स्वाहा) ने जब ये बातें सुनीं तब वह स्कन्द को ही अपना पुत्र समझकर धीरे-धीरे उनके पास जाकर कहने लगी—बेटा, मैं ही तुम्हारी माता हूँ।

उसी समय सप्तर्षियों ने प्रबल प्रतापी पुत्र स्कन्द के उत्पन्न होने का वृत्तान्त सुना तो अरुन्धती के सिवा और सब पत्नियों को त्याग दिया। क्योंकि वनवासी लोग अरुन्धती को छोड़कर शेष छः पत्नियों को ही स्कन्द की माता कह रहे थे। तब स्वाहा ने सप्तर्षियों से आकर कहा—यह पुत्र मेरा है। तुम्हारी पत्नियों ने इस बालक को उत्पन्न नहीं किया है।

सप्तर्षियों का यज्ञकार्य समाप्त होने के बाद महामुनि विश्वामित्र गुप्त रूप से काम-
पीड़ित अग्नि के पीछे गये थे। इस कारण वे सारा हाल जानते थे। वही पहले कुमार के शरणा- १०
गत होकर उनकी दिव्य स्तुति करने लगे थे। विश्वामित्र ने ही कुमार के तेरह मङ्गल-कर्म और जात-कर्म आदि संस्कार किये थे। विश्वामित्र ने ही लोकहित के लिए कार्त्तिकेय के माहात्म्य

का वर्णन, कुक्कुट-साधन, शक्ति-साधन, देवी और पारिषदों का साधन आदि कार्य किये; इसी से वे स्कन्ददेव को अत्यन्त प्रिय हैं। विश्वामित्र ने सप्तर्षियों के पास जाकर उनको स्कन्द-जन्म का भेद बतलाया। उन्होंने कहा—इसमें तुम्हारी पत्नियों का कुछ अपराध नहीं है; उनका रूप रखकर स्वाहा ने यह पुत्र पैदा किया है। किन्तु आदि से अन्त तक सब हाल सुनकर भी, लोकापवाद के डर से, ऋषियों ने अपनी स्त्रियों को छोड़ ही दिया।

मार्कण्डेय कहते हैं कि इधर कार्त्तिकेय के जन्म का वृत्तान्त सुनकर सब देवता इन्द्र से कहने लगे—हे देव! स्कन्द का बल और तेज असह्य हो रहा है, इसलिए शीघ्र उनका नाश कीजिए। यदि आप स्कन्द को मार न डालेंगे तो वे महाबली कुमार सब लोकों को, हमको और आपको भी अपने वश में करके इन्द्रपद पर विराजमान होंगे। देवताओं की इन बातों से घबराकर इन्द्र ने कहा—इसमें सन्देह नहीं कि स्कन्द महाबली हैं और युद्ध में पराक्रम प्रकट करके सब लोकों के विधाता ब्रह्मा का भी संहार कर सकते हैं, तो भी बालक हैं। भला बच्चे
२० को मैं क्या मारूँ? इन्द्र के यों कहने पर देवताओं ने कहा—आप डरपोक हैं, इसलिए ऐसी बात कहते हैं। खैर, अब ये इच्छानुसार पराक्रम प्रकट करनेवाली लोकमातृकाएँ स्कन्द के पास जाकर उन्हें नष्ट करें।

मातृकाएँ स्वीकार करके वहाँ से चल पड़ीं, पर कार्त्तिकेय का अप्रतिम बल देखकर उनके चेहरों पर मुर्दनी छा गई। कार्त्तिकेय का वध अशक्य समझकर वे उनकी शरण में गईं और

कहने लगीं—हे महाबली, तुम हमारे पुत्र हो जाओ। हम तुम्हारे स्नेह से अत्यन्त विवश हो रही हैं। यह देखो, हमारे स्तनों से दूध की धारा बह निकली है। इसलिए तुम हमें माता मान लो। यह सुनकर कुमार ने दूध पीने की इच्छा से उनका सत्कार किया। फिर स्कन्द ने महाबली पिता अग्नि को आते देखकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की। मातृकाओं के साथ उन्हें घेरकर अग्नि भी उनकी रक्षा करने लगे। अब मातृकागण के क्रोध से उत्पन्न एक स्त्री

शूल हाथ में लेकर, अपने पुत्र की तरह, कार्त्तिकेय की रक्षा करने लगी। क्रूर स्वभाववाली, लाल समुद्र की कन्या, लोहितभोजना, अपने बच्चे की तरह छाती से लगाकर स्कन्द की रक्षा करने लगी। वेद में प्रसिद्ध वैदिक अग्नि, बकरे का रूप रखकर, अपनी बहुत सी सन्तानों के साथ वहाँ आकर कुमार को तरह-तरह के खिलौनों से सन्तुष्ट करने लगे। २९

दो सौ सत्ताईस अध्याय

स्कन्द से देवताओं का हार जाना

मार्कण्डेय कहते हैं—ग्रह, उपग्रह, ऋषि, मातृकागण, अग्नि आदि पारिषदगण और घोर स्वर्गनिवासीगण चारों ओर से घेरकर कार्त्तिकेय की रक्षा करने लगे। जय की इच्छा रखनेवाले इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर, वज्र हाथ में लेकर, देवताओं के साथ जल्दी से स्कन्द की ओर बढ़े। यद्यपि उनके हृदय में हिंसा का भाव था, परन्तु विजय होने का उन्हें भरोसा न था। देव-सेना के योद्धा विचित्र ध्वजा, धनुष और वाहन आदि से सजकर अपनी प्रभा का प्रकाश फैलाते हुए इन्द्र के साथ-साथ चले। सुन्दर कपड़े पहने, श्रीयुत, इन्द्र को अपनी ओर मारने की इच्छा से आते देखकर स्कन्द भी उनकी ओर बढ़े। महाबली इन्द्र सिंहनाद करते हुए उनकी ओर चले। उससे देव-सेना का उत्साह और आनन्द दूना हो गया।

देवता और महर्षि इन्द्र की स्तुति कर रहे थे। इन्द्र ने कार्त्तिकेय के पास पहुँचकर ज़ोर से सिंहनाद किया। वह शब्द सुनकर कुमार भी महासागर की तरह गरजने लगे। कुमार के उस भयानक शब्द को सुनकर देव-सेना अचेत सी हो गई। मारने की इच्छा से देवताओं को अपनी ओर आते देखकर क्रोध के १०
मारे कुमार अपने मुँह से प्रबल अग्नि की ज्वालाएँ उगलने लगे। उनमें जल-भुनकर देवता पृथ्वी पर लोटने लगे। किसी का सिर, किसी का शरीर, किसी के शस्त्र और किसी का वाहन जल गया। इधर-उधर तितर-बितर होकर सब देवता छिन्न-भिन्न तारों के गुच्छे के समान जान पड़ने

लगे। जब शरीर जलने लगे तब सब देवता इन्द्र को छोड़कर कुमार के शरणागत
हुए, जिससे उन्हें शान्ति मिली।

इधर देवता जब छोड़कर चले गये तब इन्द्र ने कुमार के ऊपर वज्र चलाया। महाराज,
इन्द्र के हाथ से छूटा हुआ वज्र कुमार के दाहने अङ्ग में लगा। जहाँ पर वज्र ने घाव किया,
वहाँ से एक युवा पुरुष प्रकट हुआ। वह सोने का कवच और दिव्य कुण्डल पहने था। उसके
हाथ में शक्ति थी। वज्र के प्रवेश से उत्पन्न होने के कारण उस पुरुष का नाम विशाख हुआ।
उस कालाग्नि-सदृश तेजस्वी पुरुष को देखकर इन्द्र बहुत डरे। वे स्कन्द की शरण में आये।
१८ उन्होंने सेना सहित इन्द्र को अभयदान किया। अब प्रसन्न होकर देवता बाजे बजाने लगे।

दो सौ अट्ठाईस अध्याय

स्कन्द के पारिषदों का विवरण

मार्कण्डेय कहते हैं—अब स्कन्द के घोररूप अद्भुत पारिषदों का विवरण सुनो। वज्र
के प्रहार द्वारा स्कन्द के शरीर से कुमार ग्रह उत्पन्न हुए। वे दारुण कुमार ग्रह गर्भस्थ और पैदा
हुए बच्चों को हर ले जाते हैं। वज्रप्रहार के द्वारा स्कन्द के शरीर से शक्तिशालिनी कन्याएँ
भी उत्पन्न हुईं। उन कुमारों ने कार्त्तिकेय को अपना पिता मान लिया। छागमुख होकर अग्नि
ने मातृकाओं के सामने कन्या, आत्मीय, पुत्रगण सहित कुमार कार्त्तिकेय की रक्षा की थी।
इसी से लोग उन्हें पिता कहते हैं। कहीं-कहीं पुत्र की इच्छा रखनेवाले लोग अग्नि को रुद्र
और अग्नि-सुता स्वाहा को उमा मानकर उनकी उपासना करते हैं।

तप नाम के अग्नि ने जिन कन्याओं को उत्पन्न किया था, वे जब स्कन्द के पास आईं तब
स्कन्द ने उनसे कहा—कहो, तुम क्या चाहती हो? मैं तुम्हारा कौन सा काम करूँ?

कुमारियों ने कहा—तुम हमारा यह प्रिय करो कि तुम्हारे प्रसाद से सब लोग हमको माता
समझकर हमारी पूजा करें। बारम्बार "ऐसा ही होगा" कहकर स्कन्द ने उनसे कहा—तुम
शिवा (शुभ) और अशिवा (अशुभ) दो तरह की मानी जाओगी। तब वे मातृकाएँ स्कन्द को
अपना पुत्र मानकर चली गईं। काकी, हलिमा, मालिनी, बृंहिता, आर्या, पलाला और वैमित्रा,
१० ये सातों शिशु की माताएँ हैं। स्कन्द की कृपा से इनके शिशु नाम से प्रसिद्ध, पराक्रमी, लोहित-
लोचन, भयङ्कर बालक उत्पन्न हुआ। शिशु आठवें वीर गिने जाते हैं किन्तु छागमुख की भी
गिनती इसी गण में करने से ये मिलकर नवें हो जाते हैं। यह छागमुख ही कार्त्तिकेय का छठा
मुख है। यह अन्य मुखों में प्रधान और सब मुखों के बीच में है। सब मातृकाओं की इस मुख
पर बड़ी श्रद्धा है। भद्रशाख ने इसी मुख के प्रभाव से दिव्य शक्ति की सृष्टि की है। राजन्,
१५ इस प्रकार शुक्ल पक्ष की पञ्चमी को विविध पारिषदों की सृष्टि और छठ को महाघोर युद्ध हुआ।

दो सौ उनतीस अध्याय

स्कन्द और इन्द्र का संवाद

मार्कण्डेय ने कहा—राजन् ! सोने की कलँगी से शोभित मुकुट, सोने का कवच, सोने की ही माला और लाल कपड़े पहने हुए कार्त्तिकेय सुन्दर सुवर्णमय आसन पर विराजमान हुए। उनके नेत्रों की ज्योति सुवर्ण के समान चमकीली थी। स्वयं पद्मरूपिणी लक्ष्मी ने मानों उन्हें भजा। लक्ष्मी के समागम से स्कन्द देव पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान शोभायमान हुए। ब्राह्मण लोग सब लक्षणों से युक्त, तीनों लोकों के निवासियों को प्रिय, वर देनेवाले, जवान, सुन्दर कुण्डलों से शोभित, महाबली स्कन्द की पूजा करने लगे। वहाँ के निवासी महर्षि इस प्रकार स्कन्द की स्तुति करने लगे—हे हिरण्यगर्भ, तुम्हारा कल्याण हो। तुम सब लोगों का भला करो। तुम्हारा जन्म हुए केवल छः दिन हुए हैं; इतने ही समय में तुमने सब लोकों को वश में कर लिया है। इसलिए तुम त्रिभुवन को अभय देनेवाले इन्द्र का पद ग्रहण करो। कार्त्तिकेय ने पूछा—हे तपस्वियो, इन्द्रदेव सब लोकों का कौन सा कार्य करते हैं? वे देवताओं की रक्षा किस तरह करते हैं?

ऋषियों ने कहा—इन्द्रदेव सब प्राणियों को तेज, बल और सुख देते हैं। सन्तुष्ट होने
पर वे मनुष्यों की सब इच्छाएँ पूरी करते हैं। वे दुष्टों का संहार और शिष्टों की रक्षा करते
हुए सब प्राणियों को उनके कार्यों में लगाते हैं। वे सूर्यहीन स्थान के सूर्य और चन्द्रहीन स्थान १०
के चन्द्रमा हैं। वे भिन्न-भिन्न कारणों से अग्नि, वायु, पृथ्वी और जल का रूप भी धारण करते
हैं। ये ही सब इन्द्र के करने के काम हैं। उनका बल असीम है। हे वीर, तुम भी बलवानों
में श्रेष्ठ हो इसलिए तुम हमारे इन्द्र बनो।

इन्द्र ने भी स्कन्द से कहा—हे महाबाहु, तुम इन्द्रपद ग्रहण करके हम सबको सुखी करो। तुम समर्थ हो, इसलिए हम तुम्हारा अभिषेक करने के लिए तैयार हैं। स्कन्द ने कहा—हे इन्द्र, तुम शत्रु-विजय में तत्पर रहकर बेखटके त्रैलोक्य का शासन करो। मैं तुम्हारा सेवक हूँ। मैं इन्द्रपद नहीं चाहता। इन्द्र ने कहा—हे वीर, तुम्हारा बल अद्भुत है इसलिए

तुम देवताओं के शत्रुओं का नाश करो। सब लोग तुम्हारे पराक्रम को देखकर बहुत ही विस्मित हुए हैं। यदि इस तरह बलहीन और तुमसे पराजित होकर भी मैं इन्द्र के पद पर स्थित रहूँगा तो वे मेरा अनादर करेंगे। वे हम दोनों में भेद डालने के लिए विशेष यत्न करेंगे। यदि उनका यत्न सफल हो गया तो लोगों के दो दल हो जायँगे; एक दल तुम्हारे पक्ष में होगा और दूसरा दल मेरे। उस समय मुझमें और तुममें झगड़ा हो जायगा। तब युद्ध में तुम अपनी इच्छा के अनुसार मुझे जीत लोगे। इसलिए कुछ विचार न करके तुम इन्द्र का पद ग्रहण कर लो।

स्कन्द ने कहा—हे इन्द्र, तुम्हारा भला हो। तुम त्रिलोकी के और मेरे भी प्रभु हो। आज्ञा दो, मैं क्या करूँ? इन्द्र ने कहा—हे बलनिधान, मैं तुम्हारा कहा मानकर इन्द्रपद को नहीं छोड़ता। किन्तु जो तुमने यह वचन कि "तुम मेरे और त्रिभुवन के स्वामी हो" सत्य कहा है, और यदि तुम मेरी आज्ञा मानने के लिए तैयार हो, तो देवताओं के सेनापति का पद ग्रहण करो। स्कन्द ने कहा—अच्छी बात है। हे इन्द्र! दानवों के विनाश, देवताओं के प्रयोजन की सिद्धि और गो-ब्राह्मणों के हित के लिए मुझे देवताओं का सेनापति बनाओ।

मार्कण्डेय कहते हैं—हे युधिष्ठिर, अब देवताओं सहित इन्द्र ने कार्त्तिकेय को सेनापति बना दिया। महर्षियों ने भी उनकी पूजा की। उस समय स्कन्द की बड़ी शोभा हुई। उनके मस्तक पर सोने का छत्र प्रज्वलित अग्निमण्डल के समान शोभित हुआ। हे पुरुषसिंह, स्वयं त्रिपुर-दहन महादेव देवी पार्वती के साथ वहाँ पर आये। उन्होंने आकर विश्वकर्मा की बनाई काञ्चनमयी माला उनके गले में पहना दी और प्रसन्नतापूर्वक उनकी प्रशंसा की।

ब्राह्मण लोग अग्नि को रुद्र कहते हैं। इसी कारण कार्त्तिकेय का नाम रुद्रसूनु है। रुद्र अर्थात् अग्नि ने श्वेतपर्वत पर अपना शुक्र त्याग दिया था। कृत्तिकाओं के यत्न से वह शुक्र स्कन्द के रूप में वृद्धि को प्राप्त हुआ। रुद्र को स्कन्द का अभिनन्दन करते देखकर देवताओं ने उन्हें रुद्रसूनु कहा है। अग्नि में प्रविष्ट रुद्र के द्वारा स्कन्द का जन्म हुआ है, इसी से वे रुद्रसूनु कहाते हैं। किसी-किसी का मत है कि रुद्ररूप अग्नि के वीर्य से, ऋषि-पत्नीरूपिणी स्वाहा के गर्भ से, जन्म लेने के कारण स्कन्द का नाम रुद्रसूनु पड़ा है।

पावक-पुत्र कार्त्तिकेय का प्रभायुक्त शरीर, अक्षय लाल कपड़े पहनने से, लाल बादलों से ढके हुए सूर्य के समान प्रकाशमान था। उनके रथ पर, अलङ्कृत ध्वजा के रूप में, अग्नि का दिया हुआ मुर्ग़ा लाल रङ्ग के कालाग्नि के समान शोभित हो रहा था। सब प्राणियों की चेष्टा, प्रभा, शान्ति, बल और देवताओं की जय बढ़ानेवाली शक्ति उनके आगे उपस्थित थी। इसी समय उनके शरीर पर स्वाभाविक कवच भी आपसे आप प्रकट हो गया। युद्ध के अवसर पर वह सदा कार्त्तिकेय के शरीर पर देख पड़ता है। शक्ति, धर्म, बल तेज, कान्ति, सत्य, उन्नति, ब्रह्मनिष्ठा, मोहशून्यता, भक्तवत्सलता, शत्रुदमन और लोकरक्षा में प्रवृत्ति आदि सब श्रेष्ठ गुण उनमें जन्म से ही थे।

इस प्रकार देवताओं के द्वारा सेनापति के पद पर अभिषेक हो जाने के उपरान्त, दिव्य अलङ्कार पहने, अत्यन्त आनन्दित स्कन्ददेव पूर्ण चन्द्रमण्डल के समान शोभा को प्राप्त हुए। दिव्य स्वाध्यायपाठ का शब्द, देवताओं के नगाड़ों का शब्द और देवताओं की स्तुति तथा गन्धर्वों के मङ्गल-गान का शब्द चारों ओर गूँज उठा। अप्सरा, पिशाच, देवता और बहुत सी प्रजा, सभी उनके
चारों ओर उपस्थित थे। प्रसन्नता और आनन्द से उनके हृदय-कमल खिले हुए थे। कुमार उनके ४०
बीच में क्रीड़ा करने लगे। अन्धकारनाशक, प्रदीप्त मण्डलवाले सूर्य की भाँति कुमार देख पड़े। इसके बाद हज़ारों देवताओं की सेना आकर चारों ओर से कार्त्तिकेय को घेरकर खड़ी हो गई और कहने लगी—आप हमारे स्वामी हुए। उनकी पूजा और स्तुति से प्रसन्न कुमार, उनसे मिलकर, उन्हें ढाढ़स बँधाने लगे।

इन्द्र जब स्कन्द को सेनापति का पद दे चुके तब उन्होंने 'देवसेना' को याद किया, जिसे पहले सङ्कट से छुड़ाया था। इन्द्र ने सोचा कि स्वयं ब्रह्मा ने स्कन्द को ही देवसेना का पति नियत कर दिया है। बस, दिव्य अलङ्कार पहननेवाली देवसेना को लाकर उन्होंने स्कन्द से कहा—हे सुरश्रेष्ठ, ब्रह्माजी ने तुम्हारा जन्म होने के पहले ही इस देवी का तुम्हारी स्त्री होना निश्चित कर दिया है। तुम विधिपूर्वक इसका पाणिग्रहण करो। यह सुनकर कुमार ने विधिपूर्वक उस कन्या का पाणिग्रहण किया। मन्त्रों के ज्ञाता अग्निरूप बृहस्पति ने विवाह के समय जप और होम किया। ब्राह्मण लोग उस देवसेना को षष्ठी, लक्ष्मी, आशा, सुखप्रदा, सिनीवाली, कुहू, सद्वृत्ति और अपराजिता नामों से भी पुकारते हैं। इस प्रकार कार्त्तिकेय

की भार्या होकर देवसेना त्रिभुवन में प्रसिद्ध हुई। हे भरतश्रेष्ठ, जब देवसेना ने सदा के लिए कार्त्तिकेय को पति के रूप में प्राप्त किया तब लक्ष्मी देवी ने भी मूर्त्तिमती होकर उनका आश्रय लिया। पञ्चमी तिथि को स्कन्द ने लक्ष्मी प्राप्त की, इसलिए वह श्रीपञ्चमी कही जाती है। वे
छठ को कृतकार्य हुए थे, इसलिए वह महातिथि मानी जाती है। ५२

दो सौ तीस अध्याय

ग्रहों के वृत्तान्त का वर्णन

मार्कण्डेय कहने लगे कि कार्त्तिकेय जब सेनापति का पद और श्रेष्ठ शोभा प्राप्त कर चुके तब सप्तर्षियों की त्यागी हुई छहों स्त्रियों ने शीघ्र आकर स्कन्द से कहा—हे पुत्र, हमारे देवतुल्य पतियों ने अकारण कुपित होकर हमें छोड़ दिया है और पवित्र पद से हमको भ्रष्ट कर दिया है। किसी ने उनसे कह दिया है कि तुम्हारी उत्पत्ति हमारे गर्भ से हुई है। उस बात को सच समझकर उन्होंने हमारी यह दुर्दशा की है। इसलिए हमारी रक्षा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। प्रभो, तुम्हारे प्रसाद से हमें अक्षय स्वर्ग मिल सकता है। इसी से हम तुमको अपना पुत्र बनाना चाहती हैं। तुम हमारी यह इच्छा पूरी करके, हमारे पुत्र बनकर, माता के ऋण से छुटकारा पाओगे।

स्कन्द ने कहा—हे अनिन्दित स्त्रियो, आज से तुम मेरी माता हो और मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। इसके सिवा यदि और भी कुछ तुम्हारी इच्छा हो तो मैं उसे पूरा करने को तैयार हूँ।

मार्कण्डेय कहते हैं कि इसके बाद इन्द्र की भी कुछ कहने की इच्छा देखकर स्कन्द ने कहा—कहिए, क्या करूँ ? इन्द्र ने कहा—रोहिणी की छोटी बहन अभिजित नक्षत्र, स्पर्धा के कारण, ज्येष्ठता पाने के लिए तप करने वन को गई है। आकाश से इस नक्षत्र के हट जाने को देखकर मैं कर्त्तव्यमूढ़ सा हो रहा हूँ। इससे ब्रह्मा के साथ मिलकर तुम नक्षत्रों की संख्या पूरी करो।

हे युधिष्ठिर, पहले सत्ययुग का आरम्भ रोहिणी नक्षत्र से ही होता था। जब अभिजित नक्षत्र का स्थान खाली हो गया तब, इन्द्र की पूर्वोक्त प्रार्थना के अनुसार, ब्रह्मा और स्कन्द के विधान
१० से सत्ययुग के आरम्भ का योग धनिष्ठा नक्षत्र में होने लगा। जिस नक्षत्र के आदिकाल में चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति का एकत्र समावेश होता है वही युग के आदि का नक्षत्र होता है। अभिजित् के पतन से, समय-संख्या के समान न रहने से, यह योग धनिष्ठा में ही होने लगा। राजन् ! इस प्रकार इन्द्र के कहने पर, स्कन्द की इच्छा के अनुसार, ऋषि-पत्नियाँ कृत्तिका नक्षत्र के नाम से प्रसिद्ध होकर आकाश में चली गईं; क्योंकि यही इन्द्र का मतलब था कि कृत्तिका नक्षत्र बढ़ाकर अभिजित् नक्षत्र की कमी पूरी कर दो। कृत्तिका नक्षत्र के अधिष्ठाता देवता अग्नि हुए। वह नक्षत्र [छकड़े के आकार में स्थित] छः तारों का समूह है और आकाश में नित्य देख पड़ता है।

इसी बीच में विनता (गरुड़ की माता) ने आकर कहा—पुत्र, तुम मेरे पिण्डदाता पुत्र हो इसलिए मैं सदा तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ। [हे युधिष्ठिर, तुम्हें स्मरण होगा कि स्वाहा, गरुड़ जाति की चिड़िया का रूप रखकर, अग्नि का शुक्र लिये श्वेत पर्वत पर गई थी इसी से विनता ने आकर स्कन्द से यह प्रार्थना की।] स्कन्द ने कहा—मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। मैं तुम्हारा मनोरथ पूरा करूँगा। तुम पुत्र के स्नेह से मेरे साथ रहो। तुम्हारी बहू देवसेना सदा तुम्हारी सेवा करेगी।

मार्कण्डेय कहते हैं कि इसके बाद विनता आदि मातृकाओं ने आकर स्कन्द से कहा—हम सब लोकों की माता हैं, इसी कारण विद्वान् लोग हमारी स्तुति करते हैं। इस समय हम तुम्हारी भी जननी होना चाहती हैं। स्कन्द ने कहा—तुम सब मेरी माता हो और मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। कहिए, मैं क्या करूँ? मातृकाओं ने कहा—ब्राह्मी, माहेश्वरी आदि जो देवियाँ अब तक लोकमाता मानी जाती हैं उनका स्थान हमें प्राप्त हो; अर्थात् सब लोग उन्हें माता मानना और पूजना छोड़कर हमें माता समझें और हमारी पूजा करें। इसके सिवा उन ब्राह्मी आदि ने हमें तुम्हारी उत्पत्ति के सम्बन्ध का मिथ्या कलङ्क लगाकर हमारे पतियों को कुपित कर दिया है। पतियों के छोड़ देने से हमारे सन्तान होना भी मातृकाओं ने नष्ट कर दिया है। हम चाहती हैं कि तुम्हारी कृपा से हमारे पति हमें स्वीकार कर लें; हमारी पहले की प्रजा हमें प्राप्त हो। कुमार ने कहा—मेरे कहने से भी तुम्हारे पति तुम्हें ग्रहण न करेंगे, इसलिए तुम और प्रजा माँगो। मातृकाओं ने कहा—अच्छा तो हम तुम्हारे साथ रहकर उन मातृकाओं की प्रजा को और उनके पिता-माता आदि को भक्षण करना चाहती हैं। यह वर हमें दो। स्कन्द ने कहा—तुमने यह बहुत ही भयङ्कर वरदान माँगा है। मैं हाथ जोड़कर तुमसे प्रार्थना करता हूँ
कि तुम उन मातृकाओं के पुत्रों (सब संसार) की रक्षा करो। मातृकाओं ने कहा—अच्छी २०
बात है, हम तुम्हारी इच्छा से उनकी प्रजा की रक्षा करेंगी किन्तु हमें सदा तुम्हारे साथ रहने की बड़ी इच्छा है, उसे स्वीकार करो।

स्कन्द ने कहा—देखो, जब तक प्रजा अर्थात् बच्चे सोलह वर्ष के पूरे न हो जायँ तब तक तुम तरह-तरह के रूपों से उन्हें सताया करो। तुमको मेरे साथ रहने की बड़ी इच्छा है, इसलिए मैं तुमको अपना एक अक्षय और रौद्र रूप देता हूँ। तुम उसके साथ सुख से रहना।

मार्कण्डेय कहते हैं—इसके बाद अग्नि के समान तेजस्वी और महाबली एक पुरुष स्कन्द के शरीर से प्रकट हुआ। मनुष्यों के बच्चों को खा जाना ही उसका काम हुआ। वह जन्म लेते ही भूख के मारे अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। स्कन्द की आज्ञा से वह रौद्ररूप बालग्रह हो गया। ब्राह्मणों ने उस ग्रह का नाम स्कन्दापस्मार रक्खा। राजन्, मनुष्यों के बच्चों को मारनेवाले और भी महाग्रह हैं, जो स्कन्द के साथ पूजे जाते हैं। उनका वर्णन सुनो।

स्कन्दापस्मार के सिवा बालघातिनी पूतना राक्षसी पूतना-ग्रह के नाम से और रौद्ररूपवाली विनता शकुनि-ग्रह के नाम से प्रसिद्ध है। घोर रूप और दारुण आकारवाली पिशाची निशाचरी शीत-पूतना भी एक विकट बाल-ग्रह है। शीत-पूतना ही मनुष्यजाति की स्त्रियों के गर्भों को हर ले जाती है। देवमाता अदिति का नाम रेवती है। रेवती के ग्रह का नाम रैवत है। यह महाघोर ग्रह भी बालकों को बड़ा कष्ट पहुँचाता है। दैत्यमाता दिति मुखमण्डिका नाम के ग्रह
से प्रसिद्ध है। वह बालकों के मांस से बहुत सन्तुष्ट होती है। महाराज, पहले स्कन्द के ३०

शरीर से निकले हुए जिन कुमारों और कुमारियों का वर्णन किया जा चुका है, वे भी महाग्रह
हैं और गर्भ को खा जाते हैं—नष्ट कर देते हैं। वे कुमार उन्हीं कुमारियों के पति हैं। वे
घोर कर्म करनेवाले कुमार, अज्ञात रूप से, बालकों को हर ले जाते हैं। गायों की माता को सुरभि
कहते हैं। वही सुरभि-ग्रह है। शकुनि-ग्रह उस पर चढ़कर उसके साथ बच्चों को खाता है।
कुत्तों की माता सरमा भी एक ग्रह है। वह भी मानुषियों के गर्भ हर ले जाती है। वृक्षों की माता
का नाम करंजनिलया है। वह एक सौम्यदर्शन ग्रह है। वह वरदायक और सब प्राणियों पर
कृपा करनेवाला ग्रह है; इसी से पुत्र-रक्षा की इच्छा से लोग करंज के पेड़ को पूजते और उस ग्रह
को प्रणाम करते हैं। ये अठारह महाग्रह दस दिन तक सूतिकागृह में रहते हैं और तब तक इन
मांसाहारी रुधिरप्रिय ग्रहों से बच्चों को डर बना रहता है। इनके सिवा और भी कई महाग्रह
हैं। नागमाता कद्रू सूक्ष्म शरीर रखकर गर्भिणी स्त्रियों के गर्भ में घुस जाती है और गर्भ को
खा जाती है। गन्धर्वों की माता भी एक ग्रह है। वह गर्भ को हर ले जाती है, तभी स्त्रियों
का गर्भ नष्ट होते देखा जाता है। अप्सराओं की माता भी एक घोर ग्रह है। वह भी गर्भ को
हर ले जाती है। लोहितसागर की कन्या, स्कन्द की धाय, लोहितायनि भी एक ग्रह है। कदम्ब
४० में उसकी पूजा होती है। राजन्, रुद्र जैसे पुरुषों में श्रेष्ठ हैं, वैसे ही कुमारजननी आर्या स्त्रियों
में श्रेष्ठ हैं। लोग अपनी कामना पूरी होने के लिए उनकी भी इस दल से अलग पूजा करते हैं।

मार्कण्डेय कहते हैं—हे युधिष्ठिर, बालकों को नष्ट करनेवाले ये महाग्रह हैं। जब तक
बालक सोलह वर्ष का पूरा नहीं हो जाता तब तक ये उसके लिए अशुभ रहते हैं, इनसे बालकों
को हानि पहुँचने का खटका रहता है। इनमें मातृका आदि स्त्री-जाति के ग्रह और कुमार आदि
पुरुष-जाति के ग्रह हैं। ये सब 'स्कन्दग्रह' के नाम से प्रसिद्ध हैं। मनुष्यों को चाहिए कि
बालकों की रक्षा के लिए जल, चन्दन, धूप, बलि और उपहार चढ़ाकर—विशेष रूप से स्कन्द देव
की पूजा करते रहकर—इनकी शान्ति करें। हे राजेन्द्र, इस प्रकार प्रणाम-पूजा आदि करने
पर ये घोर ग्रह बालकों की आयु, वीर्य और कल्याण बढ़ाते हैं।

अब देवदेव महादेव को प्रणाम करके मैं उन ग्रहों का वर्णन करता हूँ जो सोलह वर्ष की
अवस्था के बाद मनुष्यों पर अपना असर डालते और सताते हैं। जो मनुष्य जागते या सोते में
देवताओं को देखकर शीघ्र ही पागल हो जाता है, उसको देवग्रह की बाधा कहते हैं। जो
बैठा-बैठा या सोते में पितरों को देखकर बावला हो जाता है, उसको पितृग्रह की बाधा कहते हैं।
जो सिद्धों का अपमान करता है और उनके कुपित होकर शाप देने से पागल हो जाता है, उसको
सिद्धग्रह की बाधा कहते हैं। जो अनेक प्रकार के गन्ध सूँघकर और चखकर शीघ्र पागल हो
५० जाता है, उसको राक्षसग्रह की बाधा जानना चाहिए। जो अपने शरीर में गन्धर्वों के आवेश
से एकाएक उन्मत्त हो जाता है, उसको गन्धर्वग्रह की बाधा समझो। जिस आदमी पर नित्य

पिशाचों का आवेश होता है और वह पागल हो उठता है, उसको पिशाच-ग्रह की बाधा कहते हैं। यक्षों का आवेश होने से जो पागल हो जाता है, उसको यक्ष-ग्रह की बाधा कहते हैं। जिस मनुष्य का चित्त कफ आदि दोषों के कोप से मोहित हो जाता है और वह पागल हो उठता है उसकी चिकित्सा वैद्यक-शास्त्र के अनुसार की जा सकती है। डर, कायरपन और घोर रूपों के दर्शन से जो विक्षिप्त हो जाता है उसके अच्छे होने का उपाय केवल समझाना और धैर्य देना ही है। राजन्, ग्रह तीन प्रकार की प्रकृति के हैं। किसी को खेलने की, किसी को भोग की और किसी को कामक्रिया की इच्छा होती है। सत्तर वर्ष की अवस्था तक मनुष्य को इन ग्रहों की बाधा का डर रहता है। उसके बाद ज्वर और जरा (वृद्धावस्था) ही ग्रहों के समान उसको सताती है। हे युधिष्ठिर! जितेन्द्रिय, शुद्ध-हृदय, पवित्र, सावधान, आस्तिक और धर्म पर श्रद्धा रखनेवाले पुरुष को इन ग्रहों की बाधा नहीं होती। महादेव के भक्त भी इन ग्रहों से बचे रहते हैं। यह मैंने
मनुष्यों को ग्रहों की बाधा होने का कारण विस्तार के साथ तुमको सुना दिया। ५९

दो सौ इकतीस अध्याय

देवासुर-संग्राम का वर्णन

मार्कण्डेय कहते हैं कि इस प्रकार कुमार कार्त्तिकेय जब मातृकाओं का कहा कर चुके, तब स्वाहा ने आकर उनसे कहा—पुत्र, तुम मेरे औरस पुत्र हो अर्थात् मेरे ही गर्भ से तुम्हारा जन्म हुआ है। इसलिए मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम मेरा परम दुर्लभ प्रिय काम करो। स्कन्द ने कहा—बताओ, तुम किस काम के करने से प्रसन्न होओगी ?

स्वाहा ने कहा—हे महाबाहु, मैं दक्ष की प्यारी कन्या स्वाहा हूँ। लड़कपन से अग्नि पर मेरा अनुराग है। किन्तु हे पुत्र, अग्नि अच्छी तरह नहीं जानते कि मैं उन्हें हृदय से चाहती हूँ। मैं सदा अग्नि के साथ रहना चाहती हूँ।

स्कन्द ने कहा—आज से वेदोक्त श्रेष्ठ मार्ग पर चलनेवाले सच्चरित्र मनुष्य ब्राह्मणों के मन्त्र-पाठ के साथ जो कुछ हव्य (देवताओं का अन्न) और कव्य (पितरों का अन्न) अग्नि में आहुति-रूप से डालेंगे, उसके साथ 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण अवश्य करेंगे। इस प्रकार अग्नि के साथ तुम सदा रहोगी।

मार्कण्डेय कहते हैं—महाराज, स्कन्द ने यों स्वाहा का कहना कर दिया। स्वाहा ने भी अपने पति अग्नि के साथ रहने का सौभाग्य पाकर स्कन्द की बड़ाई की। अब प्रजापति ब्रह्मा ने कुमार से कहा—स्कन्द, त्रिपुर को जलानेवाले महादेव तुम्हारे पिता हैं। तुम उनके अपराजित पुत्र हो। रुद्र ने ही अग्नि में प्रवेश करके स्वाहारूपिणी उमा के संयोग से, सब लोकों

के भले के लिए, तुमको उत्पन्न किया है। इसलिए तुम उनके पास जाओ। रुद्र ने उमा में जो
शुक्र स्थापित किया था वह पहले इस पर्वत पर गिरकर मिञ्जिका-मिञ्जिक के जोड़े के रूप में

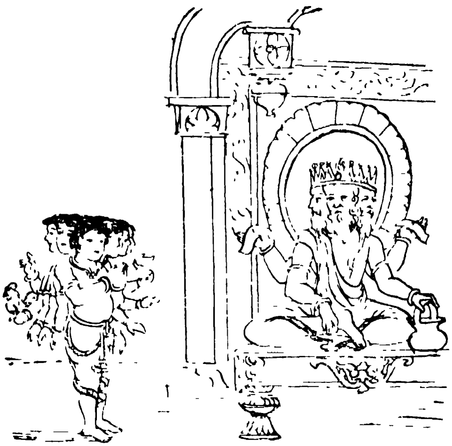

१० प्रकट हुआ था। उस शुक्र का बचा हुआ
कुछ अंश क्रमशः लोहितसागर में, सूर्य की
किरणों में, भूतल में और वृक्ष की जड़ में
गिरा। इस प्रकार वह शुक्र पाँच भागों में
बँट गया। उसीसे ये घोररूप, विविध आकार-
वाले, मांसभक्षी, तुम्हारे पारिषद उत्पन्न हुए
हैं। ब्रह्मा की यह बात मानकर पिता के
भक्त कार्त्तिकेय ने महादेव की पूजा की।

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, धन
और आरोग्य की इच्छा रखनेवाले मनुष्यों
को चाहिए कि वे मदार के फूलों से इन पाँच
गणों की पूजा करें। बालकों के भले के लिए
रुद्र से उत्पन्न मिञ्जिका-मिञ्जिक के जोड़े को भी प्रणाम करना चाहिए। अग्नि का शुक्र वृक्ष की
जड़ में गिरने से मनुष्य-मांस खानेवाली जो वृद्धिका नाम की देवियाँ उत्पन्न हुई थीं उनकी पूजा
भी सन्तान की इच्छा रखनेवाले मनुष्यों को करनी चाहिए। इस प्रकार स्कन्द के पारिषद असंख्य
पिशाचों के अनेक गण माने गये हैं। अब स्कन्द की पताका और घण्टे की उत्पत्ति का हाल सुनो।

इन्द्र के ऐरावत हाथी के वैजयन्त्य नाम के दो घण्टे थे। इन्द्र ने वे घण्टे मँगवाकर स्कन्द
को दे दिये। उनमें से एक घण्टा स्कन्द ने लिया और दूसरा घण्टा विशाख को दे दिया।
स्कन्द और विशाख दोनों की पताकाएँ लाल रङ्ग की हैं। महाबली महासेन स्कन्द को देवताओं
२० ने जो खिलौने दिये थे, उन्हीं से वे क्रीड़ा करते हैं। महाराज, लक्ष्मीयुक्त कार्त्तिकेय भगवान्
उस सुवर्ण-पर्वत पर पिशाचों और देवताओं के साथ विराजमान हुए। सुन्दर वनों से व्याप्त
वह पर्वत, स्कन्ददेव के रहने से, उदय हो रहे सूर्य से युक्त सुन्दर कन्दरावाले मन्दराचल के
समान, शोभायमान हुआ। वह काञ्चनपर्वत पहले से ही फूले हुए सन्तानक, करवीर, पारिजात,
जपा, अशोक, कदम्ब आदि वृक्षों के वनों से और दिव्य मृग-पक्षियों से शोभित था; उस पर अब
देवता, देवर्षि, नाचते-गाते हुए अप्सरा-गन्धर्व आदि के झुण्डों से और भी शोभायमान हो गया।
गरजनेवाले महासागर के शब्द के समान मेघों, नगाड़ों और सब लोगों का आनन्द-कोला-
हल चारों ओर गूँज उठा। श्वेतपर्वत पर विराजमान स्कन्द की शोभा देखकर इन्द्र सहित सब
जगत् को अपार आनन्द हुआ। उनकी वह शोभा देखकर किसी का जी नहीं भरता था।

शिवजी पार्वती के साथ श्वेतसिंहयुक्त लोहितवर्ण रथ पर सवार होकर भद्रवट को चले—पृ० ११८३

सेनापति के पद पर जब स्कन्द का अभिषेक हो चुका तब सर्वशक्तिमान् महादेवजी पार्वती को साथ लेकर प्रसन्नतापूर्वक, सूर्य के समान चमकीले रथ पर बैठकर, भद्रवट की ओर चले। महादेवजी के रथ में सफ़ेद रङ्ग के हज़ार सिंह लगे हुए थे। काल के द्वारा चलाया गया वह रथ लेकर गरजते हुए, और उस घोर शब्द से जगत् को डराते हुए, वे सिंह आकाशमण्डल में चले। ३०
वे सिंह इस तरह गरजते जा रहे थे मानों त्रिभुवन को पी जायँगे। इन्द्रधनुष से शोभित मेघ-मण्डल में बिजली के साथ विराजमान सूर्य के समान पार्वती सहित शङ्कर उस रथ पर बैठे जा रहे थे। नर-वाहन भगवान् कुबेर, यक्ष-गुह्यक लोगों के साथ, सुन्दर पुष्पक विमान पर बैठकर, उनके आगे-आगे चले। देवगण सहित इन्द्र, ऐरावत हाथी पर बैठकर, वरदानी महादेव के पीछे-पीछे चले। मालाधारी अनेक यक्ष, राक्षस, जृम्भकगण (एक प्रकार के ग्रह) आदि के साथ अमोघ नाम का महायक्ष दाहिनी ओर चला। वसुगण और रुद्रगण सहित बहुत से विचित्र युद्ध करनेवाले देवता भी शङ्कर की दाहनी ओर चले। भयङ्कर व्याधियों को साथ लिये हुए घोररूप यमराज भी उनके साथ चले। तीन पैनी नोकोंवाला रुद्र का विजय नाम का, भयङ्कर शूल यमराज के पीछे जा रहा था। उग्र पाश धारण करनेवाले जलेश्वर भगवान् वरुण अनेक प्रकार के जल-जन्तुओं के साथ धीरे-धीरे शङ्कर के पीछे जा रहे थे। गदा, मूसल, शक्ति आदि अनेक शस्त्रों के साथ शस्त्रों में श्रेष्ठ रुद्र का पट्टिश भी विजय शूल के पीछे चला। पट्टिश ४०
के पीछे रुद्र का महाप्रभा-परिपूर्ण छत्र चला। छत्र के पीछे महर्षिगण-सेवित कमण्डलु और उसके पीछे उज्ज्वल दण्ड चला।

भृगु, अङ्गिरा आदि ऋषियों के बीच में विराजमान भगवान् रुद्र उज्ज्वल रथ पर चढ़कर देवताओं को प्रसन्न करते हुए उनके पीछे चले। देवता, गन्धर्व, नाग, नदी, सरोवर, समुद्र, अप्सरा, ग्रह, नक्षत्र, देवताओं के बालक और स्त्रियाँ आदि सब महारुद्र के पीछे चले। सुन्दरी स्त्रियाँ फूलों की वर्षा करती चलीं। मेघ भी पिनाकधारी शिव को प्रणाम करके चले। चन्द्र ने उनके मस्तक पर उज्ज्वल छत्र लगाया। वायु और अग्नि चँवर डुला रहे थे। राजर्षियों सहित श्री-सम्पन्न इन्द्रदेव शङ्कर की स्तुति करते चले। गौरी, विद्या, गान्धारी, केशिनी, मित्रसा और सावित्री आदि देवियाँ और कविजन-कृत अनेक विद्याएँ पार्वती के पीछे जा रही थीं। उस सेना के मुख्य लोग इन्द्र आदि शङ्कर की आज्ञाओं का पालन करते जा रहे थे।

पताका हाथ में लिये राक्षस ग्रह आगे-आगे चला। लोगों को आनन्द देनेवाला, मसान में ५०
रहनेवाला, रुद्र का सखा, यक्षराज पिङ्गल भी शङ्कर के साथ था। इस प्रकार इन सबके साथ भगवान् महादेव सुखपूर्वक जा रहे थे। उनके आगे या पीछे कोई प्राणी नहीं जा सकता था। महर्षिगण उन्हीं शङ्कर को शिव, ईश, रुद्र, पितामह आदि नामों से पुकारते हैं। मनुष्य अनेक भावों और कर्मों से उन्हीं की उपासना करते हैं।

देवताओं के सेनापति कार्त्तिकेय इस प्रकार देवताओं की सेना को साथ लिये महादेव के पीछे चले। उनसे महादेव ने कहा—पुत्र, तुम सदा सावधानी के साथ मारुतस्कन्ध नामक देवताओं के सातवें व्यूह की रक्षा करो।

स्कन्द ने कहा—प्रभो, मैं सातवें मारुतस्कन्ध की अवश्य रक्षा करूँगा। उसके सिवा और भी जो कुछ मेरा कर्त्तव्य समझिए उसके लिए आज्ञा दीजिए। रुद्र ने कहा—पुत्र, समय-समय पर तुम सदा मुझसे मिलते रहना। तुम भक्तिपूर्वक मेरे दर्शन करके परम कल्याण पाओगे। मार्कण्डेय कहते हैं कि इतना कहकर रुद्र ने गले से लगाकर कुमार को विदा किया।

इधर स्कन्द के विदा होने पर अनेक प्रकार के घोर उत्पात प्रकट होने लगे। उनको देखकर देवगण घबरा गये। नक्षत्रों सहित आकाशमण्डल प्रज्वलित हो गया। सब संसार को मोह प्राप्त हुआ। पृथ्वी विचलित हुई, उससे घोर शब्द निकलने लगा और चारों ओर घना अँधेरा छा गया। देवादिदेव महादेव महाभागा पार्वती, सब देवता और महर्षिगण यह दारुण घटना देखकर अत्यन्त व्याकुल हुए।

इस प्रकार जब सब पर मोह का पर्दा पड़ गया तब, पर्वत और मेघ के समान, झुण्ड के झुण्ड भयङ्कर योद्धा प्रकट हुए। असंख्य आकारवाले वे योद्धा प्रास, खड्ग, गदा, परिघ, शतघ्नी, पर्वत और बाण आदि शस्त्रों की वर्षा करते हुए देवगण सहित महादेव की ओर दौड़ पड़े। उस शत्रु-सेना ने देवताओं की सेना को मार भगाया। देव-सेना के असंख्य रथ, हाथी, घोड़े और पैदल छिन्न-भिन्न होकर इधर-उधर गिरने लगे। दानवों के द्वारा पीड़ित सब देव-सेना युद्ध करना छोड़कर भागने लगी। दानवों के बाणों की आग से, अग्नि से जले हुए वन के वृक्षों की तरह, जल-जलकर अनेक देवता गिरने लगे। उस महायुद्ध में मारे जाते हुए देवता कहीं आश्रय न देखकर भागने लगे। उनके शरीर शत्रुओं के प्रहार से छिन्न-भिन्न हो रहे थे।

देवेन्द्र ने अपने सैनिकों को दानवों के द्वारा पीड़ित और भागते हुए देखकर उन्हें ढाढ़स बँधाते हुए कहा—हे वीरो, तुम डरो मत। शस्त्र हाथ में लेकर वीरता के साथ इन दुष्ट दानवों का सामना करो और इन्हें हराओ। इन्द्र के यों कहने से हिम्मत बाँधकर, उन्हीं का

आश्रय लेकर, देवताओं ने फिर युद्ध छेड़ दिया। महाबली वसुदेवता और साध्यगण भी देवताओं के साथ मिलकर दानवों से लड़ने लगे। वे क्रोधित होकर दानवों के ऊपर बाणवर्षा करने लगे। उनके छोड़े हुए बाण दैत्यों के शरीरों में घुसकर, बहुत सा रक्त पीकर, अन्त को शरीर फोड़कर बाहर निकलने लगे। उस समय वे पहाड़ों के भीतर से निकलते हुए विषैले नागों के समान जान पड़ते थे। दैत्यों के शरीर भी उन बाणों से छिन्न-भिन्न होकर, वायु से छितराई हुई घटाओं के समान, पृथ्वी पर चारों ओर गिरने लगे। देव-सेना के बाणों के मारे दैत्यों की सेना डरकर युद्धभूमि से भाग खड़ी हुई। यह देखकर शस्त्र ताने हुए देवताओं के दल आनन्द के मारे चिल्लाने और तरह तरह के बाजे बजाने लगे।

इस प्रकार देवताओं और दानवों का घोर युद्ध होने लगा। चारों ओर मांस और रक्त की कीच मच गई। दानव फिर उत्साह के साथ भिड़ गये। अकस्मात् देवताओं ने देखा कि दानव लोग देव-सेना को दबा रहे हैं; और तुरही, नगाड़े आदि बजाकर घोर सिंहनाद कर रहे हैं। इसी समय महाबली महिष दानव दैत्य-सेना से निकलकर बड़ा भारी पहाड़ हाथों में लिये देव-सेना की ओर चला। बादलों से घिरे हुए सूर्य के समान, उस पहाड़ को लिये आते, महिषासुर को देखकर देवता लोग भाग खड़े हुए।

८०

महिषासुर ने वह पर्वत देवताओं की सेना पर फेंका। उस भीमरूप पर्वत के नीचे दस हज़ार देवता एक साथ कुचलकर मर गये। फिर वह घोर महिषासुर दानवों को साथ लिये देवताओं को डराता हुआ उनकी ओर भी ऐसे झपटा जैसे क्षुद्र मृगों के झुण्ड पर सिंह झपटता है। उसे देख, अपने शस्त्रों और ध्वजा-पताकाओं को छोड़कर, डरे हुए इन्द्र आदि देवता रण से भाग खड़े हुए। तब क्रोध से भरा हुआ दारुण महिषासुर बड़ी तेज़ी से रुद्र के रथ के पास पहुँचा। अब उसने रुद्र के रथ का धुरा पकड़ लिया। जब क्रोधित महिषासुर ने एकाएक जाकर रथ का धुरा पकड़ लिया तब पृथ्वी और आकाश में घोर शब्द होने लगा और महर्षि लोग घबरा गये। उस समय मेघ-वर्ण महाकाय दैत्य, अपनी जीत का निश्चय करके, घोर कोलाहल और सिंहनाद करने लगे।

तब भगवान् रुद्र ने दुष्ट महिषासुर पर चोट की और उसे मारने के लिए कार्त्तिकेय को
९० याद किया। [क्योंकि उसकी मृत्यु स्कन्द के हाथ से ही बदी थी।] उधर महिषासुर रुद्र के भयङ्कर रथ को देखकर बारम्बार सिंहनाद करने लगा। उस सिंहनाद को सुनकर देवता डरे और दैत्य प्रसन्न हो उठे। देखते ही देखते लाल कपड़ा, माला, गहने आदि से शोभित महाबाहु कुमार कार्त्तिकेय सूर्य के समान प्रज्वलित रथ पर आते देख पड़े। उनके रथ के घोड़ों का भी रङ्ग लाल था। सुवर्णमय कवच पहने हुए कुमार क्रोध से प्रज्वलित सूर्यदेव के समान जान पड़ते थे। उन्हें देखते ही एकाएक दैत्य-सेना के छक्के छूट गये। महाबली अग्नि-पुत्र कुमार ने आकर अपनी प्रज्वलित शक्ति महिषासुर पर चलाई। उस शक्ति से महिषासुर का विशाल सिर, धड़ से अलग होकर, पृथ्वी पर गिर पड़ा। महिषासुर मर गया। पर्वत-तुल्य महिषासुर के सिर ने गिरकर सोलह योजन स्थान को घेर लिया। देवनिवास उत्तर कुरु प्रदेश का द्वार उसी सिर से बन्द हो गया। इसी कारण वह प्रदेश इतना अगम्य है।

देवता और दानव सबने देखा कि वह शक्ति स्कन्द के हाथ से बारम्बार छूटकर, हज़ारों दानवों को मारकर, फिर स्कन्द के हाथ में आ जाती है। बुद्धिमान् बली कुमार ने अकेले ही लगभग सभी शत्रुओं को मार डाला। उनके पारिषद लोग बचे हुए शत्रुओं को मारकर प्रसन्नता-
१०० पूर्वक उनका मांस खाने और रक्त पीने लगे। दम भर में सब जगत् दानवों से ख़ाली हो गया। सूर्य जैसे अँधेरे को हटा देते हैं, आग जैसे वृक्षों को जला डालती है, हवा जैसे मेघों को छिन्न-भिन्न कर देती है, वैसे ही कीर्त्तिशाली कुमार ने अपने पराक्रम से सब शत्रुओं को मार डाला। देवता लोग उनकी स्तुति करने लगे। स्कन्द ने महेश्वर को प्रणाम किया। उस समय अपनी असंख्य किरणें चारों ओर फैलाये हुए सूर्य के समान स्कन्द की शोभा हुई।

इस प्रकार शत्रुओं को मारकर जब कुमार अपने पिता रुद्र के पास आये तब इन्द्र ने उन्हें गले से लगाकर कहा—हे स्कन्द, इस महिषासुर को ब्रह्मा का वरदान था, इसी कारण इसने संसार के सब लोगों को जीतकर अपने अधीन कर रक्खा था। देवताओं को तो यह कुछ समझता ही न था। इसे मारकर तुमने देवताओं का कण्टक दूर कर दिया। महिषासुर के समान देवताओं के शत्रु जो सैकड़ों अन्य दानव हम लोगों को सताते थे, उन्हें भी तुमने मार डाला। तुम्हारे गणों ने भी अन्य हज़ारों दानवों को मारा और भक्षण कर लिया। इसमें सन्देह नहीं कि तुम उमापति रुद्र के समान युद्ध में शत्रुओं के लिए अजेय हो; शत्रु तुमको नहीं जीत सकते। हे देव, तुम्हारा यह पहला कार्य त्रिलोक में प्रसिद्ध होगा। इससे तुम्हारी कीर्त्ति अक्षय होगी। सब देवता तुम्हारे अधीन रहेंगे। इन्द्र यों कहकर, महेश्वर से आज्ञा लेकर, देवताओं के साथ
१० अपने स्थान को गये। भगवान् रुद्र भी देवताओं से यों कहकर कि तुम लोग कुमार को मेरे ही समान समझना, अपने स्थान रुद्रवट को चल दिये।

अग्नि-पुत्र कुमार स्कन्द ने एक दिन में सब दानवों का संहार करके त्रिभुवन को अपने वश में कर लिया। महर्षि लोग भी उनकी स्तुति करते हुए अपने आश्रमों को गये। हे युधिष्ठिर, जो ब्राह्मण एकाग्र होकर स्कन्द के इस जन्म-वृत्तान्त को पढ़ता है वह यहाँ हृष्ट-पुष्ट रहकर अन्त को स्कन्द भगवान् के लोक में जाकर सुख भोगता है। ११३

दो सौ बत्तीस अध्याय

स्कन्द के नामों का वर्णन

धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, मैं स्कन्द भगवान् के जगत्प्रसिद्ध नामों को सुनना चाहता हूँ; कृपा करके कहिए।

महातपस्वी मार्कण्डेय से युधिष्ठिर ने जब यह पूछा तब वे ऋषिमण्डली के बीच स्कन्द के नामों का वर्णन करने लगे। मार्कण्डेय ने कहा—आग्नेय, स्कन्द, दीप्तकीर्त्ति, अनामय, मयूरकेतु, धर्मात्मा, भूतेश, महिषार्दन, कामजित्, कामद, कान्त, सत्यवाक्, भुवनेश्वर, शिशु, शीघ्र, शुचि, चण्ड दीप्तवर्ण, शुभानन, अमोघ, अनघ, रौद्र, प्रिय, चन्द्रानन, दीप्तशक्ति प्रशान्तात्मा, भद्रकृत, कूटमोहन, षष्ठीप्रिय, पवित्र, मातृवत्सल, कन्यकाभर्ता, विभक्त, स्वाहेय, रेवतीसुत, प्रभु, नेता विशाख, नैगमेय, सुदुश्चर सुव्रत, ललित, बाल, क्रीड़नकप्रिय, खचारी, ब्रह्मचारी, शूर, शरवणोद्भव, विश्वामित्रप्रिय देवसेनाप्रिय, वासुदेवप्रिय, प्रियकृत्, इतने कार्त्तिकेय के नाम हैं। जो कोई नित्य स्कन्द के इन नामों को पढ़ता है उसे स्वर्ग, कीर्त्ति और धन प्राप्त होता है।

अब मैं देवर्षिगणपूजित, शक्ति धारण करनेवाले, षडानन, गुह की स्तुति करता हूँ, सुनो। १०
हे गुह! तुम ब्रह्मण्य, ब्रह्मप्रिय, ब्रह्मात्मज, ब्रह्मेश, ब्रह्मवित्, ब्राह्मणों के समान व्रतधारी और ब्राह्मणों के नेता हो। तुम स्वाहा, स्वधा, परमपवित्र, मन्त्रस्तुत और सुप्रसिद्ध षडर्चि हो। तुम्हीं संवत्सर, छः ऋतुएँ, पक्ष, मास, अयन और दिशाएँ हो। हे कमलनयन! तुम कमलमुख, सहस्रमुख और सहस्रबाहु हो। तुम्हीं लोकपाल, परमहवि और सब देवता-दैत्यों के रक्षक हो। तुम्हीं सेनापति, प्रचण्ड, प्रभु, विभु और शत्रुदमन हो। तुम्हीं सहस्रभू और पृथिवी हो। तुम सहस्र-तुष्टि, सहस्रभुक्, सहस्रशिरा और सहस्रचरण हो। तुम्हारे अनन्त रूप हैं। तुम भारी शक्ति को धारण करते हो। गङ्गा, स्वाहा, पृथ्वी और कृत्तिकाओं ने तुम्हें उत्पन्न किया है। हे षडा-नन, मुर्ग़ तुम्हारा खिलौना है। तुम अपनी इच्छा के अनुसार तरह-तरह के रूप रख लेते हो। तुम्हीं दीक्षा, सोम और मरुत् हो। तुम्हीं धर्म, वायु, पर्वतराज और देवराज हो। तुम उग्र-धन्वा, सनातनों से भी सनातन, प्रभुओं के भी प्रभु, सत्य के कर्ता, दैत्यों का संहार करनेवाले, शत्रुओं को जीतनेवाले और श्रेष्ठ देवता हो। सूक्ष्मतम तप तुम्हारा स्वरूप है। तुम परमात्मा

और आत्मा के ज्ञाता हो। तुम्हीं परमात्मा और आत्मा हो। परम धर्म और काम तुममें स्थित है। तुम्हारा तेज सब जगत् में व्याप्त हो रहा है। हे सब देवताओं से बढ़कर वीर, हे बारह नेत्रों और हाथों से शोभित, तुमको प्रणाम है। हे लोकनाथ, मैंने अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार तुम्हारी स्तुति की है। इससे अधिक जो तुम्हारी सूक्ष्म गति है, उसके बारे में मैं कुछ नहीं जानता।

हे युधिष्ठिर! जो ब्राह्मण मन लगाकर स्कन्द के इस जन्मवृत्तान्त को पढ़ता है, जो ब्राह्मणों
को सुनाता है या ब्राह्मण के मुँह से सुनता है, वह आयु, धन निर्मल यश, पुत्र, शत्रुजय, पुष्टि
२१ और तुष्टि पाकर अन्त समय स्कन्दलोक की पवित्र गति पाता है।

द्रौपदीसत्यभामा-संवादपर्व

दो सौ तैंतीस अध्याय

द्रौपदी और सत्यभामा की बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, एक दिन सब ब्राह्मण और महात्मा पाण्डव अपने आश्रम में बैठे हुए थे। इसी समय द्रौपदी और सत्यभामा भी वहाँ एक स्थान पर आ बैठीं। प्रिय वचन बोलनेवाली दोनों सुन्दरियों की भेंट बहुत दिनों के बाद हुई थी। दोनों आपस में कुरुवंश और यदुवंश की विचित्र बातें कहने लगीं। श्रीकृष्ण की प्यारी रानी, सत्राजित् की कन्या, सत्यभामा ने एकान्त स्थान में द्रौपदी से पूछा—हे द्रौपदी, तुम कैसे व्यवहार से लोक-पाल-सदृश अपने वीर बली पतियों को सन्तुष्ट रखती हो? हे सुन्दरी, तुम्हारे पति तुम पर कभी क्रोध नहीं करते; सदा तुम्हारे वश में रहकर तुम्हारा मुँह ताका करते हैं। उनमें तुम्हारे कारण आपस में कभी ईर्ष्या का भाव नहीं देखा जाता। इसका कारण क्या है? हे सुन्दरी, तुमने इसके लिए क्या कोई व्रत, तप या जप किया है? अथवा किसी मन्त्र, दवा, अञ्जन, जड़ी-बूटी आदि का सहारा लिया है? हे पाञ्चाली, मुझे भी ऐसा कोई यश और सौभाग्य बढ़ानेवाला उपाय बताओ, जिससे श्रीकृष्णचन्द्र मेरे वश में रहें।

पतिव्रता भाग्यशालिनी द्रौपदी ने कहा—हे सत्यभामा, यह तुम मुझसे दुष्ट स्त्रियों का
आचरण पूछती हो। जिस राह पर ओछे स्वभाव की स्त्रियाँ चलती हैं उसका उत्तर ही क्या
१० दिया जा सकता है? तुम ऐसी स्त्री के लिए ऐसा प्रश्न करना उचित नहीं कहा जा सकता;
क्योंकि तुम बुद्धिमती हो और श्रीकृष्ण की प्यारी रानी हो। देखो, जब पति जानता है कि स्त्री
मुझे वश में करने के लिए मन्त्र-जन्त्र करवाती है तब वह सदा उससे उसी तरह घबराता है जिस
तरह लोग घर में रहनेवाले साँप से डरते हैं। जो चिन्तित रहता है उसे शान्ति कहाँ? और

जब शान्ति ही नहीं तब सुख कहाँ से होगा ? बहन, मन्त्र-जन्त्र से पति कभी स्त्री के वश में नहीं हो सकता; उलटे बुराई ही पैदा होती है। जिन लोगों के द्वारा स्त्रियाँ पतियों को वश में करने के यत्न कराती हैं वे ऐसी दवा आदि दे देते हैं जिससे दारुण रोग भी कभी-कभी पतियों के शरीर में हो जाते हैं। कोई-कोई धूर्त शत्रु वशीकरण की दवा बताकर, स्त्रियों से उनके पतियों को विष दिला देते हैं। इससे वश होने के बदले पति मर तक जाते हैं। पुरुष जीभ से जो खाते हैं और शरीर में जो लगाते हैं उसमें वशीकरण के लिए धूर्तों के दिये चूर्ण आदि मिला देने से भी पतियों की मृत्यु या उनके रोगी होने की आशङ्का रहती है। बहुत सी पापिनी स्त्रियाँ स्वामी को क़ाबू में करने का यत्न करने में ऐसा कर बैठती हैं कि वे जलन्धर रोग से पीड़ित, कोढ़ी, असमय में ही वृद्ध, नपुंसक, पागल, अन्धे और बहरे तक हो जाते हैं। सत्यभामाजी, स्त्री को अपने पति का अनिष्ट या अप्रिय कभी न करना चाहिए। महात्मा पाण्डव मेरे जिन कामों से प्रसन्न रहते हैं, जैसे व्यवहार से मैं उन्हें अपने वश में रखती हूँ, वह तुमसे कहती हूँ; सुनो। मैं अहङ्कार, काम-वासना, क्रोध आदि दुष्ट भावों से बचकर पवित्रता के साथ पाण्डवों की और उनकी अन्य स्त्रियों की सेवा करती रहती हूँ। मैं ईर्ष्या छोड़कर, मन को वश में रखकर, सेवा करती हूँ। घमण्ड को पास नहीं फटकने देती। सदा पतियों का मन रखती हूँ। कभी २०
कठोर वचन नहीं कहती। सन्देह की दृष्टि से नहीं देखती। बुरी जगह पर नहीं बैठती। ख़राब चाल नहीं चलती। निन्दित विचार प्रकट करनेवाली नज़र से नहीं देखती। पाण्डव लोग सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी, चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन, महारथी, उग्रवीर्य और प्रताप-वाले हैं; वे दृष्टि से ही शत्रुओं का नाश कर देते हैं। उनकी सेवा मैं उल्लिखित रीति से करती हूँ। देवता, गन्धर्व या मनोहर रूपवाला, जवान, ठाट-बाट से रहनेवाला अथवा धनी मनुष्य, कोई भी पाण्डवों के सिवा मेरे हृदय में स्थान नहीं पाता। पाण्डवों के भोजन किये बिना मैं भोजन नहीं करती; उनके नहाये बिना नहाती नहीं हूँ। उनके सो जाने पर ही सोती हूँ। यहाँ तक कि घर के और लोगों या सेवकों के खाने-पीने से पहले भी मैं स्नान, भोजन या शयन नहीं करती। पति खेत, वन या गाँव से लौटकर जब घर आते हैं तब मैं आगे से उठकर उन्हें भीतर ले आती हूँ, बैठने को आसन देती हूँ, हाथ-पैर-मुँह धोने के लिए पानी लाकर देती हूँ। इस प्रकार आव-भगत करके उन्हें सन्तुष्ट रखती हूँ। घर और घर की सब सामग्री साफ़ रखती हूँ। सफ़ाई के साथ भोजन बनाकर ठीक समय पर उन्हें भोजन कराती हूँ। यत्न के साथ अन्न आदि को भण्डार में रखती हूँ। तिरस्कार के वचन कभी जीभ पर नहीं लाती। न तो बुरे चलन की स्त्रियों के पास बैठती हूँ और न उनसे मित्रता ही रखती हूँ। आलस्य छोड़कर सदा पति की रुचि के काम करती हूँ। बिना दिल्लगी की बात के हँसती नहीं हूँ। द्वार पर खड़ी नहीं रहती। घर से मिले हुए बाहरी बाग़ में देर तक नहीं ठहरती। न तो बहुत हँसती हूँ और न बहुत क्रोध करती हूँ।

क्रोध उत्पन्न होनेवाले कामों और अवसरों को बचा जाती हूँ। पति से अलग रहना मुझे अच्छा
नहीं लगता। घर के या कुटुम्ब के किसी काम से जब पति परदेस जाते हैं, तब मैं फूल-माला,
३० सुगन्ध आदि का सेवन नहीं करती। ब्रह्मचर्यव्रत धारण किये रहती हूँ। मेरे पति जो चीज़
नहीं खाते-पीते, जिसका सेवन नहीं करते उस चीज़ को मैं भी छोड़े रहती हूँ। हे सुन्दरी, मैं
सब काम पति के उपदेश के अनुसार करती हूँ। पति का प्रिय और हित करना मेरा नित्य का
व्रत है। पति के पास पवित्र होकर, सुन्दर कपड़े और गहने आदि पहनकर जाती हूँ।

मेरी सास ने अपने कुटुम्ब के प्रति जिन कर्तव्यों का उपदेश मुझे दिया था उनका पालन सदा करती हूँ। भिक्षा देना, देव-पूजा, श्राद्ध पर्व के दिन अच्छे-अच्छे भोजन बनाना, माननीय पुरुषों की पूजा और सत्कार करना और अन्य जो अपने कर्तव्य मुझे मालूम हैं उन सबको दिन-रात किया करती हूँ। कभी विनय के भाव को और पतिव्रता के नियमों को नहीं छोड़ती। मेरे पति कोमल स्वभाव के, सत्यव्रत, सज्जन, सत्य धर्म का पालन करनेवाले और क्रोध के समय ज़हरीले साँप के समान भयङ्कर हैं। मैं सदा उनका मन लिये रहकर उनकी सेवा करती हूँ। बहन! पति के आश्रय में रहना, अर्थात् उसके अधीन रहना स्त्रियों का सनातन धर्म है। पति ही स्त्रियों का देवता और एकमात्र गति है। कौन समझदार स्त्री उस पति के विरुद्ध काम करेगी? किसे पति का अप्रिय करना ठीक जान पड़ेगा? हे सुन्दरी, मैं पतियों को हीन दृष्टि से कभी नहीं देखती। उनसे अच्छा भोजन नहीं करती। उनसे बढ़-चढ़कर कपड़े और गहने नहीं पहनती। अपनी सास की निन्दा कभी नहीं करती। सदा अपनी सास की सेवा करती हूँ। मैं सदा लगन से सब काम करती हूँ, बड़े-बूढ़ों की सेवा में तत्पर रहती हूँ। इन्हीं गुणों को देखकर मेरे पति मेरे वश में हैं।

हे सत्यभामा! वीर पुत्रों की माता, सत्यवादिनी, आर्या कुन्ती को मैं अपने हाथ से परोस-
कर भोजन कराती हूँ, और उनकी सब तरह की सेवा करती हूँ। उनसे बढ़कर न तो भोजन
४० करती हूँ और न कपड़े या गहने पहनती हूँ। कभी कोई ऐसी बात नहीं कहती जो कठोर हो
या उन्हें बुरी लगे। पहले महाराज युधिष्ठिर के भवन में नित्य सोने के थालों में आठ हज़ार
ब्राह्मण भोजन करते थे। इनके सिवा अट्ठासी हज़ार स्नातक गृहस्थ ब्राह्मण महाराज युधिष्ठिर
के यहाँ से अन्न-वस्त्र पाते थे। एक-एक ब्राह्मण की सेवा के लिए तीस-तीस दासियाँ नियुक्त
थीं। इनके सिवा दस हज़ार ऊर्ध्वरेता यतियों को सोने के थालों में भोजन दिया जाता था।
बहन, मैं इन सब वेदपाठी ब्राह्मणों को वैश्वदेव कर्म से बचा हुआ अन्न खिलाकर अन्न-वस्त्र आदि
देकर, यथायोग्य सबकी पूजा करती थी।

बहन! महाराज युधिष्ठिर के एक लाख दासियाँ थीं। सोने के बाज़ूबन्द आदि गहने, मूल्यवान् माला, कपड़े, चन्दन आदि से सजी हुई, सुन्दर रूपवाली, मणि-रत्न आदि की

प्रभा से जगमगाती हुई ये दासियाँ महाराज के आगे नाचती गाती रहती थीं; और भी अनेक प्रकार की सेवा करती थीं। सोने के थालों में अन्न लिये हुए ये दासियाँ, अतिथियों और अभ्यागतों को भोजन भी कराया करती थीं। सत्यभामाजी ! मैं उनके नाम, रूप और खाने-पहनने का हाल, सब जानती थी। कब किसने क्या काम किया और किसका क्या काम बँधा हुआ है, इसकी खबर भी मुझे रहती थी। जिस समय महाराज युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ में राज्य
करते थे उस समय एक लाख घोड़े और एक लाख हाथी उनकी सवारी के साथ निकलते थे। ५०
मुझे इन सब की गिनती मालूम थी। मैं ही इन सबका सब तरह का प्रबन्ध करती थी। सब अन्तःपुरों (महलों) का, सब नौकरों का, सब परिवार का, गाय और भेड़ आदि पशुओं को चरानेवाले रखवालों तक का प्रबन्ध और देखभाल मैं ही करती थी।

बहन, महाराज के राज्य की आमदनी और खर्च का हिसाब मुझे मालूम रहता था और मैं ही उसकी जाँच-पड़ताल करती थी। भरतकुल श्रेष्ठ पाण्डवों ने इस तरह राज्य की और कुटुम्ब की देखभाल का काम मुझे सौंप रक्खा था। वे निश्चिन्त होकर धर्म-कर्म में लगे रहते थे और मैं सब सुख छोड़कर यह भार सँभाले हुए दिन-रात परिश्रम करती थी। दुर्बल पुरुष जिन कामों के बोझ को नहीं सँभाल सकते उसे मैं, स्त्री होकर भी, अकेली सँभालती थी। वरुण के निधि-पूर्ण रत्नाकर सागर के समान, पाण्डवों के खज़ाने में अथाह धन भरा पड़ा था। उसकी भी देख-रेख मेरे ही ज़िम्मे थी। बहन, मैं भूख और प्यास की परवा छोड़कर, दिन को और रात को, सदा ये काम करके अपने पतियों की सेवा में लगी रहती थी। मुझे पतियों की सेवा करने में दिन और रात एक से जान पड़ते हैं; कभी मैं नहीं ऊबती। मैं पतियों से पहले सोकर उठती हूँ और उनके सो जाने के बाद लेटती हूँ।

हे सत्यभामा, मेरे पास पतियों के वशीकरण का यही उपाय है। ओछी चाल की स्त्रियों का हाल मैं नहीं जानती। वे जिन उपायों को वशीकरण के लिए काम में लाती हैं, उनको न मैं करती हूँ और न वे मुझे पसन्द हैं।

वैशम्पायन कहते हैं कि द्रौपदी के इन धर्मयुक्त वचनों को सुनकर सत्यभामा ने कहा—हे पाञ्चाली, मेरा अपराध क्षमा करो। मैं तुम्हारी सखी हूँ, इसलिए मैंने दिल्लगी के तौर पर
६१ तुमसे यह बात पूछी थी। उसके लिए तुम कोप या दुःख मत करो।

दो सौ चौंतीस अध्याय

स्वामी की सेवा के सम्बन्ध में द्रौपदी का उपदेश

द्रौपदी ने कहा—सत्यभामा! सुनो, मैं तुमको स्वामी के चित्त को अपनी ओर खींचने का जो उपाय बताती हूँ वह निर्दोष है। वह उपाय ठीक तौर से करने पर तुम अपने स्वामी को सौतों से छीन लोगी। बहन, स्त्री के लिए सब लोकों में पति के समान दूसरा देवता नहीं है। पति प्रसन्न होता है तो स्त्री के सब मनोरथ पूरे होते हैं और यदि वह नाराज़ होता है तो सब कामनाएँ निष्फल कर देता है। स्त्रियाँ पति के प्रसाद से सन्तान, विविध भोग, उत्तम शय्या, अद्भुत आसन, कपड़े, माला, सुगन्ध पदार्थ, स्वर्गलोक और अनन्त कीर्त्ति पाती हैं। सुख सुख से नहीं मिलता। पतिव्रता और नेकचलन स्त्रियाँ दुःख झेलकर सुख पाती हैं। तुम नित्य शारीरिक क्लेश सहकर, निष्कपट प्रेम का व्यवहार करके श्रीकृष्ण की सेवा करो। सुन्दर अनुकूल भाव से आसन-माला-सुगन्ध आदि भोग के पदार्थ अर्पण करके, उन्हें इस प्रकार प्रसन्न करो जिससे वे समझें कि तुम उनको हृदय से प्यार करती हो। ऐसा व्यवहार करोगी तो वे सब रानियों को छोड़कर तुम्हीं को चाहेंगे। दरवाज़े पर उनकी आवाज़ सुनते ही तुरन्त उठकर अभ्यर्थना के लिए आँगन में खड़ी हो जाया करो। वे ज्योंही भीतर आवें त्योंही बैठने के लिए आसन बिछा दिया करो। उनके पैर धो दिया करो। वे दासी से कोई काम करने के लिए कहें तो तुम स्वयं उठकर वह काम करो। बहन! श्रीकृष्ण तुम्हारे इन भावों को देखकर, अपने ऊपर तुम्हारी ऐसी भक्ति और अनुराग देखकर, अवश्य तुम्हारे वश में हो जायँगे। तुम्हारा भाव देखकर श्रीकृष्ण को यह विश्वास हो जाना चाहिए कि तुम सबसे बढ़कर उन्हें चाहती हो। बहन! यदि श्रीकृष्ण तुमसे कोई बात कहें और वह छिपाने के योग्य न हो, तो भी तुम उसे किसी से मत कहो। क्योंकि जो तुम्हारी कोई सौत उस बात को सुनकर श्रीकृष्ण से कह देगी तो वे तुम पर अपने मन में नाराज़ हो सकते हैं। जो लोग तुम्हारे पति के प्यारे, हितचिन्तक और उन पर स्नेह रखनेवाले हों, उन्हें अनेक प्रकार से भोजन कराओ, उनका सत्कार करो। और जो लोग उनके शत्रु, विरोधी, अशुभचिन्तक, उपेक्षणीय और कपटी हों, उनको पास न आने दो और श्रीकृष्ण को भी उनसे अलग रखने की चेष्टा करती रहो। पर-पुरुष के आगे असावधानी या मतवालेपन को मत प्रकट होने दो। पुरुषों के आगे न तो बहुत बोलो और न अपने हृदय के

भाव को प्रकट होने दो। लज्जा और सङ्कोच के साथ रहो। प्रद्युम्न और साम्ब तुम्हारे पुत्र होते हैं, परन्तु एकान्त में उनके पास भी मत बैठो। क्रोधी स्वभाववाली, मद्य पीनेवाली, बहुत भोजन करनेवाली, कर्कशा, चोर, दुष्ट, चञ्चल स्त्रियों का सङ्ग मत करो। अच्छे वंश की, पाप से डरनेवाली, पतिव्रता स्त्रियों से मित्रता करो—उनके पास बैठो-उठो। मूल्यवान् कपड़े-गहने, चन्दन-अङ्गराग आदि से सज-धजकर सदा पति के पास जाओ और उनकी सेवा करो। हे सत्यभामा, ये मेरे बताये हुए उपाय यश और सौभाग्य बढ़ानेवाले हैं। इस तरह पति की सेवा करनेवाली स्त्री मरने पर स्वर्गलोक को जाती है। सौतें शत्रुता करके कभी तुमको हानि न पहुँचा सकेंगी। ११

दो सौ पैंतीस अध्याय

सत्यभामा सहित श्रीकृष्ण का द्वारका को जाना

वैशम्पायन कहते हैं—महर्षि मार्कण्डेय और महात्मा पाण्डवों के साथ अनेक प्रकार की बातचीत करके, कुछ दिन रहकर, श्रीकृष्ण ने द्वारका को जाने का विचार किया। अब पाण्डवों से मिल-भेटकर रथ पर चढ़ने के समय श्रीकृष्णचन्द्र ने सत्यभामा को बुलाया। सत्यभामा ने द्रौपदी को प्रेमपूर्वक गले से लगाकर कहा—बहन द्रौपदी! तुम खेद न करो, व्याकुल मत होओ। सोच में रात-रात का जागना छोड़ दो। शीघ्र ही तुम्हारे देवतुल्य पति शत्रुओं को जीतकर फिर राज्य पावेंगे। तुम्हारे समान चरित्र, शील, सुन्दर श्रेष्ठ लक्षणोंवाली स्त्रियाँ कभी अधिक दिनों तक दुःख नहीं भोगतीं। मैंने ऋषियों से सुना है कि तुम्हारे सब शत्रु मारे जायँगे और तुम अपने स्वामियों के साथ इस पृथ्वी का निष्कण्टक राज्य भोगोगी। हे द्रौपदी, धृतराष्ट्र के दुष्ट बेटे शीघ्र ही मारे जायँगे; उनके किये अत्याचार और अपमान का बदला

लेकर महाराज युधिष्ठिर फिर इस पृथ्वी के सम्राट् होंगे, और तुम अपनी आँखों से यह सुख देखोगी। घमण्ड से भरी और मोह को प्राप्त जो कुरु-कुल की स्त्रियाँ वनवास के समय तुमको

देखकर हँसी थीं उन्हें शीघ्र ही तुम बुरी दशा में देखोगी; उनके सब इरादे मिट्टी में मिल जायँगे। तुम्हारे दुःख के समय जिन्होंने तुम्हारा अप्रिय किया है, उन्हें तुम मरा हुआ ही समझो।
१० प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकर्मा, श्रुतसेन और शतानीक, ये तुम्हारे पाँचों बेटे राज़ी-ख़ुशी से हैं। वे सब युद्धकला में निपुण, अस्त्र-विद्या में प्रवीण और वीर हैं। वे अभिमन्यु की तरह द्वारका में आराम से रहते हैं। सुभद्रा देवी तुम्हारी ही तरह स्नेह से उनका पालन और देखभाल करती हैं। प्रद्युम्न की माता रुक्मिणी देवी को तुमसे पूरी सहानुभूति है। वे निर्द्वन्द्व और सन्तापरहित होकर तुम्हारे पुत्रों को प्रसन्न रखती हैं। वे तुम्हारे सुख से सुखी और तुम्हारे दुःख में दुखी हैं। स्वयं भगवान् कृष्णचन्द्र अपने पुत्र भानु आदि से बढ़कर तुम्हारे पुत्रों को चाहते हैं। मेरे ससुर वसुदेवजी तुम्हारे पुत्रों के खाने-पीने-पहनने का ख़याल रखते हैं। बलभद्र आदि अन्धक और वृष्णिवंश के यादव उन कुमारों पर बड़ी प्रीति रखते हैं। बहन, प्रद्युम्न के साथ तुम्हारे पुत्रों की गहरी मित्रता है। इसलिए तुम अपने पुत्रों की चिन्ता न करो।

इस प्रकार प्रिय, सत्य और मनोहर वचन कहकर सत्यभामा श्रीकृष्ण के साथ रथ पर चढ़ने के लिए तैयार हुईं। सत्यभामा ने द्रौपदी की प्रदक्षिणा की और फिर रथ पर सवार हो गईं। मुसकाकर श्रीकृष्ण ने भी द्रौपदी को समझाया। इसके बाद घोड़ों को हाँककर
१८ कृष्णचन्द्र अपनी पुरी की ओर चल दिये।

घोषयात्रापर्व

दो सौ छत्तीस अध्याय

धृतराष्ट्र का विलाप और चिन्ता

जनमेजय ने कहा—हे तपोधन! नरश्रेष्ठ पाण्डवों ने इस प्रकार वन में रहते हुए, जाड़ा-गर्मी और आँधी-पानी-धूप आदि के कष्टों से दुर्बल होकर उस पवित्र सरोवर और वन में जाकर फिर क्या किया? यह विस्तार के साथ मुझसे कहिए।

वैशम्पायन कहते हैं—श्रीकृष्ण को बिदा करके पाण्डव लोग फिर उसी सरोवर के पास आये और वहाँ पर एक सुन्दर कुटी बनाकर रहने लगे। बीच-बीच में वे रमणीय वनों में, पर्वतों पर और पवित्र नदियों के किनारे विचरने जाया करते थे। समय-समय पर स्वाध्याय करनेवाले तपोधन प्राचीन महर्षि लोग भी उनसे मिलने आते थे। पाण्डव लोग यथाशक्ति उनकी पूजा और सत्कार करते थे।

एक दिन प्राचीन कथाओं के कहने में चतुर एक ब्राह्मण पाण्डवों से मिलने आया। पाण्डवों से मिलकर बातचीत करने के बाद, उनसे बिदा होकर, वह ब्राह्मण इच्छानुसार घूमता-

फिरता महाराज धृतराष्ट्र की सभा में पहुँचा। कुरुवंश में श्रेष्ठ वृद्ध राजा धृतराष्ट्र ने उस ब्राह्मण का यथोचित सत्कार किया। इसके बाद धृतराष्ट्र के पूछने पर वह ब्राह्मण पाण्डवों का हाल इस प्रकार कहने लगा—

राजन्, इस समय पाण्डव लोग जाड़ा-गर्मी-आँधी-पानी-धूप आदि के कष्ट सहते-सहते दुबले हो गये हैं, वे कठोर दुःख और कष्ट सह रहे हैं। वीर पतियों से सनाथ द्रौपदी इस समय अनाथ की तरह क्लेश पा रही हैं। विचित्रवीर्य के पुत्र महाराज धृतराष्ट्र को ब्राह्मण के मुँह से यह हाल सुनकर पाण्डवों पर बड़ी दया आई। पाण्डव लोग राजकुमार और राजा के पौत्र होकर वन में ऐसे कठिन दुःख भोग रहे हैं यह सोचकर, व्याकुल होकर, वे लम्बी साँसें लेने लगे। फिर किसी तरह सँभलकर, धैर्य धारण कर, उन्होंने सोचा कि मैं ही तो उनके इन दुःखों का कारण हूँ। महाराज धृतराष्ट्र कहने लगे कि जो युधिष्ठिर मेरे पुत्रों में जेठे, सत्यपरायण, पवित्र-हृदय, सुशील और पृथ्वी पर अजातशत्रु के नाम से प्रसिद्ध हैं और जो पहले रंकु मृग के रोमों के बिछौने पर बढ़िया कोमल शय्या पर सोते थे, वे इस समय पृथ्वी पर कैसे सोते होंगे। जिनको सूत-मागध-वन्दीजन नित्य सबेरे स्तुतिपाठ करके जगाते थे, वे इन्द्रतुल्य धर्मराज युधिष्ठिर
पक्षियों का कलरव सुनकर सबेरे आँख खोलते होंगे। महाबली भीमसेन आँधी और घाम सहने १०
से निर्बल हो गये होंगे। कोप के मारे उनका शरीर काँप रहा होगा। वे द्रौपदी के सामने किस तरह धरती पर सोते होंगे? सुकुमार मनस्वी अर्जुन धर्मराज के आज्ञाकारी हैं। इसलिए कुछ न कर सकने के कारण क्रोध के मारे वे भीतर ही भीतर जलते होंगे। रात को उन्हें नींद न पड़ती होगी। वे नकुल, सहदेव, द्रौपदी, युधिष्ठिर और भीमसेन आदि को सुखभोग से भ्रष्ट देखकर क्रोध के मारे ज़हरीले साँप की तरह लगातार लम्बी साँसें ले रहे होंगे। सुखभोग के योग्य नकुल और सहदेव, धर्म और सत्य के फन्दे में बँधे रहने के कारण, बड़ी बेचैनी के साथ जागते-जागते रातें बिता रहे होंगे। वैसे ही वायु के समान वेग और बलवाले वायु-पुत्र भीमसेन, युधिष्ठिर के प्रतिज्ञारूपी धर्मपाश में बँधे रहने के कारण, क्रोध को रोककर पृथ्वी पर पड़े तड़पते होंगे। धर्म और सत्य उनको इस समय रोके हुए है, इसी से वे मेरे पुत्रों को मारने के लिए उपयुक्त समय की राह देख रहे होंगे।

अजातशत्रु युधिष्ठिर को कपटद्यूत में जीतकर दुःशासन ने जो कठोर वचन कहे हैं वे भीमसेन के शरीर में प्रवेश करके, सूखी घास को आग की तरह, जला रहे होंगे। धर्मपुत्र युधिष्ठिर पापविचार को अपने मन में न लावेंगे; अर्जुन भी उनके अनुगामी हैं। एक भीमसेन का ही कोप, वायु की सहायता से आग की तरह, वनवास के कष्टों से बढ़ रहा होगा। उस क्रोध के मारे भीमसेन आग-बबूला हो रहे होंगे। वे हाथ से हाथ मलकर इस तरह गर्म और लम्बी साँसें ले रहे होंगे मानो मेरे पुत्र-पौत्रों को भस्म कर देंगे। अर्जुन और भीमसेन दोनों क्रोधी और काल के

२० समान हैं। वे वज्रतुल्य बाणों की वर्षा करके शत्रुसेना के एक आदमी को भी जीता न छोड़ेंगे। दुर्योधन, शकुनि, सूतपुत्र कर्ण और मन्दबुद्धि दुःशासन ये लोग अर्जुन और भीमसेन से उत्पन्न होनेवाले भय को नहीं देखते। जैसे शहद उतारनेवाला शहद पर दृष्टि रखता है, पर ऊपर से गिरने का ख़याल नहीं रखता, वैसे ही वे राज्यसुख पाने पर दृष्टि रखते हैं, किन्तु उससे होनेवाले विनाश को नहीं देखते। मनुष्य शुभ या अशुभ कर्म करके यदि उसके फल की इच्छा रखता है तो विवश होकर उसे उसका फल भोगना पड़ता है। उससे वह बच कैसे सकता है? अच्छी तरह जोते हुए खेत में यदि बीज बोया जाय और ठीक समय पर वर्षा भी हो, किन्तु फिर भी उसमें फल न उत्पन्न हो, तो उसे दैवविडम्बना के सिवा और क्या कहेंगे? अर्थात् इसी तरह मेरे और दुर्योधन आदि के हृदय में वृद्धों के हितवचन जो सफल नहीं होते, उसका कारण दैवकोप ही है। शकुनि ने कपट-क्रीड़ा करके अच्छा नहीं किया। पाण्डवों ने भी उन दुष्टों को उसी समय न मारकर अच्छा नहीं किया। मैंने भी कुबुद्धि पुत्रों का कहा मानकर कौरवों के नाश को बुलाया, सो अच्छा नहीं किया। जैसे हवा न पाकर आग ज़रूर बुझ जाती है, गर्भिणी स्त्री अवश्य बच्चा पैदा करती है, सबेरे रात का अन्त अवश्य होता है और रात्रि के आरम्भ में दिन का अन्त होता है, वैसे ही पाप का फल फलेगा ही—कौरवों का नाश हुए बिना न रहेगा। चाहे हम धन का उपार्जन करें और चाहे दूसरे करें और उस उपार्जित धन को लोग चाहे किसी को दें या न दें, किन्तु प्रयोजन के समय वह धन अवश्य ही अनर्थ का कारण होगा। फिर लोग क्यों उस अनर्थ की जड़ अर्थ (धन) के लिए इतनी कोशिश करते हैं? जो धन-सम्पत्ति प्राप्त हो जाय तो मनुष्य को अवश्य यह यत्न करना चाहिए कि वह धीरे-धीरे या एकबारगी नष्ट न हो जाय। उसकी सर्वथा रक्षा करनी चाहिए। यदि रक्षा न की जायगी तो सैकड़ों तरह से उसका क्षय होगा। चाहे जो हो, इस समय मुझे यही जान पड़ता है कि इस धन के कारण कुरुवंश का नाश अवश्य होगा; क्योंकि किये हुए कर्म का नाश नहीं होता—उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है।

देखो, अर्जुन वन से भी इन्द्रलोक को गये और वहाँ से चार प्रकार के दिव्य अस्त्र प्राप्त करके फिर मनुष्य-लोक में आ गये। एक इसी काम से जाना जा सकता है कि अर्जुन का पराक्रम, साहस और उद्योग कैसा असाधारण है! कौन मनुष्य इसी शरीर से स्वर्ग जाकर फिर वहाँ से पृथ्वी पर आना चाहेगा? इसी से जान पड़ता है कि काल ने जिनका विनाश उपस्थित कर दिया है उन मेरे पुत्रों को मारने के लिए ही अर्जुन वहाँ से लौट आये हैं। सव्यसाची अर्जुन अद्वितीय धनुर्द्धर हैं; उनके गाण्डीव धनुष का वेग भी बड़ा भयानक है; अब अर्जुन ने दिव्य अस्त्र भी प्राप्त कर लिये हैं। इस समय इन तीनों के सम्मिलित उग्र तेज को कौन सह सकता है?

राजा धृतराष्ट्र की ये बातें सुनकर शकुनि, कर्ण को साथ लिये हुए, एकान्त में दुर्योधन के पास गया। वहाँ जाकर उसने दुर्योधन से सब हाल कहा। यह समाचार सुनकर क्षुद्रबुद्धि दुर्योधन बहुत ही उदास और चिन्तित हुआ। ३१

दो सौ सैंतीस अध्याय

दुर्योधन से कर्ण और शकुनि की बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं कि धृतराष्ट्र के पूर्वोक्त वचन सुनकर कर्ण को साथ लिये हुए शकुनि दुर्योधन के पास जाकर कहने लगा—हे भरतवंशी, तुमने अपने पराक्रम से पाण्डवों को वनवासी बना दिया है। अब तुम, स्वर्ग में इन्द्र की तरह, अकेले सारी पृथ्वी का राज्य करो। हे नरश्रेष्ठ! पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, चारों ओर के सब राजा तुमको 'कर' देते हैं। जो शोभायमान लक्ष्मी पहले युधिष्ठिर के पास थी वही इस समय तुमको और तुम्हारे भाइयों को मिली है। पहले इन्द्रप्रस्थ में जाकर हमने युधिष्ठिर की जो शोभा और वैभव देखा था, वह शोभा और वैभव इस समय तुमको प्राप्त है। थोड़े ही दिन हुए, तुमने बुद्धिबल से शत्रुओं को शोकाकुल करके उनसे राजलक्ष्मी छीन ली है। हे शत्रु-वीरों का नाश करनेवाले, अन्य सब राजा तुम्हारे अधीन रहकर आज्ञा पाने की बाट जोहते रहते हैं। राजन्! अनेक पर्वत, उपवन, वन, सागर, नगर, नदी, गाँव, खान आदि से शोभित सारी पृथ्वी तुम्हारे अधिकार में है।

महाराज! ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण तुम्हारी प्रशंसा करते हैं और राजा लोग पूजा करते हैं। स्वर्ग में देवताओं के बीच सूर्य जैसे अपनी किरणों से प्रदीप्त हो रहे हैं, वैसे ही पृथ्वी पर
अपने पौरुष के प्रभाव से तुम तप रहे हो। रुद्रगण सहित यमराज, मरुद्गण सहित इन्द्र और नक्षत्रों १०
सहित चन्द्रमा के समान तुम अपने भाइयों के बीच शोभा पाते हो। तुम्हारे शासन को न माननेवाले और तुम्हारी आज्ञा से विमुख पाण्डवों को वन में लक्ष्मी से हीन दीन अवस्था में, चलकर, देखना चाहिए। हमने सुना है कि वे द्वैतवन में सरोवर के पास, वनवासी ब्राह्मणों के साथ,

रहते हैं। तेज और प्रभाव से युक्त सूर्य की तरह तपते हुए तुम वहाँ चलकर अपने अपूर्व ऐश्वर्य
से उन्हें चिढ़ाओ। इस समय वे राज्य से भ्रष्ट, लक्ष्मी से हीन और दीन हो रहे हैं; किन्तु तुम
श्रीयुक्त, समृद्धिशाली और राजा हो। इसलिए इस समय वहाँ जाकर पाण्डवों से भेंट करना
बहुत ही अच्छा होगा। वे तुमको महावंश में उत्पन्न, मङ्गलमय, नहुष राजा के पुत्र महाराज
ययाति के समान देखें। मित्रों को ख़ुश करनेवाली और शत्रुओं को कुढ़ानेवाली तुम्हारी अपार
सम्पत्ति और प्रभाव को देखकर पाण्डवों को अवश्य महाशोक होगा। पहाड़ के ऊपर खड़ा
हुआ आदमी जैसे, अपने से नीचे पर दिखाई पड़नेवाली, जगत् की चीज़ों को छोटी देखता है,
वैसे ही सम्पत्ति के शिखर पर पहुँचा हुआ आदमी हीन दशा में स्थित शत्रुओं की दुर्दशा देखेगा,
इससे बढ़कर सुख की बात और क्या होगी? पुत्र, धन और राज्य मिलने से जो ख़ुशी होती
है वह उस ख़ुशी के आगे कुछ नहीं है जो शत्रुओं की दुर्दशा देखकर मिलती है। आश्रम में
अर्जुन को वल्कल और मृगछाला पहने देखकर तुम बड़े सुखी होओगे और तुम्हारा मनोरथ पूरा
२० होगा। तरह-तरह के मूल्यवान वस्त्रों और गहनों को पहने तुम्हारी रानियाँ जब वल्कल और
मृगछाला पहने हुए दुखिया द्रौपदी से मिलेंगी तब वह उन्हें देखकर बहुत ही कुढ़ेगी—अपनी
निर्धन अवस्था से खिन्न होकर अपने जीवन और भाग्य की निन्दा करेगी। सभा में
द्रौपदी को उतना दुःख नहीं हुआ होगा, जितना अब ख़ूब ठाटबाट किये हुए तुम्हारी रानियों
को देखने से होगा।

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, कर्ण और शकुनि राजा दुर्योधन से यों कहकर
२३ चुप हो रहे।

दो सौ अड़तीस अध्याय

दुर्योधन का उत्तर

वैशम्पायन कहते हैं कि कर्ण के ये वचन सुनकर पहले तो दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ, परन्तु फिर उदास होकर कहने लगा—कर्ण, जो तुमने कहा उसका इरादा पहले से ही मेरे मन में है; किन्तु पाण्डव इस समय जहाँ रहते हैं वहाँ जाने के लिए पिताजी आज्ञा नहीं देते। महाराज धृतराष्ट्र पाण्डवों के लिए सदा खेद प्रकट किया करते हैं। वे उन्हें तपस्या के कारण हमसे अधिक भी समझते हैं। अथवा इस समय हमारा अभिप्राय समझ जायँगे तो भी अनिष्ट की सम्भावना करके हमें वहाँ जाने की आज्ञा न देंगे। पिताजी यदि हमारा अभिप्राय समझ लें तो कोई आश्चर्य नहीं; क्योंकि इस समय शत्रुओं को चिढ़ाने और कुढ़ाने के सिवा हमारे वहाँ जाने की कोई ज़रूरत नहीं है।

हे कर्ण, जुए के समय महात्मा विदुर ने मुझसे और शकुनि से जो कहा था, सो तो तुम जानते ही हो। उन बातों पर और अन्यान्य सन्ताप की बातों पर सोच-विचार करके मैं वहाँ जाने या न जाने का निश्चय करूँगा। मैं यदि वन में द्रौपदी के साथ भीमसेन और अर्जुन को क्लेश सहते देखूँगा तो मुझे भी बड़ा हर्ष होगा। पाण्डवों को वल्कल और मृगछाला पहने देखकर मुझे जैसी प्रसन्नता होगी, वैसी प्रसन्नता सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल का राज्य पाने पर भी नहीं हो सकती।
मैं वन में द्रौपदी को गेरुए कपड़े पहने देखूँ, इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात क्या होगी? यदि १०
धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन आदि पाण्डव मुझे परम ऐश्वर्य से युक्त देखें तो मैं अपने जीवन को सफल समझूँगा; किन्तु वन जाने के लिए आज्ञा लेने को मुझे कोई उपाय नहीं देख पड़ता। इसलिए तुम, शकुनि और दुःशासन के साथ, सलाह करके ऐसा कोई उपाय निकालो जिसमें राजा धृतराष्ट्र उस वन में जाने के लिए मुझे आज्ञा दे दें। मैं भी आज इस बारे में अपना कर्त्तव्य ठीक करके कल पिताजी के पास जाऊँगा। मैं पहले से ही कुरुश्रेष्ठ भीष्म के साथ वहाँ बैठा रहूँगा; तुम शकुनि के साथ आकर अपना सोचा हुआ उपाय कहना। तब महाराज के और भीष्म के वचन सुनकर मैं पितामह से विनय करूँगा और इस प्रकार वहाँ जाने का प्रबन्ध कर लूँगा।

'यही होगा' कहकर कर्ण और शकुनि अपने-अपने स्थान को चले गये। सबेरा होने पर कर्ण दुर्योधन के पास पहुँचा और हँसकर कहने लगा—राजन्, मैंने द्वैतवन जाने का जो उपाय सोचा है वह सुनो। आपके घोष (गायों के समूह) द्वैतवन में ही हैं और वे आपकी बाट जोहते हैं। यही अच्छा उपाय है। हम लोग घोषयात्रा के बहाने वहाँ जायँगे। महाराज, घोषयात्रा में जाना तुम्हारा आवश्यक कर्त्तव्य है, इसके लिए तुम्हारे पिताजी भी अनुमति दे
देंगे। कर्ण और दुर्योधन इस तरह घोषयात्रा के बारे में सलाह कर रहे थे, कि शकुनि ने भी २०

आकर हँसते हुए कहा—मैंने वन जाने का जो उपाय सोचा है उसके अनुसार राजा से द्वैतवन जाने की आज्ञा माँगोगे तो अवश्य मिल जायगी। द्वैतवन में गायें ठहरी हुई हैं। हम लोग घोषयात्रा के बहाने वहाँ चलेंगे। शकुनि की भी वही राय देखकर दुर्योधन और कर्ण को बड़ी
२४ खुशी हुई। तीनों ने हँसकर आपस में हाथ मिलाया। अब वे महाराज धृतराष्ट्र के पास गये।

दो सौ उन्तालीस अध्याय

घोषयात्रा के लिए धृतराष्ट्र का अनुमति देना

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय! दुर्योधन, शकुनि और कर्ण, तीनों धृतराष्ट्र के पास पहुँचे। दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से और धृतराष्ट्र ने उन सबसे शारीरिक और मानसिक कुशल का हाल पूछा। इसी समय, जिसे दुर्योधन ने पहले से ही पढ़ा रक्खा था उस, समङ्ग नाम के गोप ने धृतराष्ट्र के पास आकर निवेदन किया—महाराज, आपकी सब गायें समीप ही आ गई हैं।

इसी समय शकुनि और कर्ण ने कहा—राजन्, इस समय आपकी सब गायें रमणीय स्थान में आकर ठहरी हैं। याद रखने के लिए गायों की गिनती करने और हर एक गाय और बछड़े की अवस्था, जाति आदि लिखने का यही समय है। इस कारण आप राजा दुर्योधन को वहाँ जाने की आज्ञा दीजिए। उस समय दुर्योधन वहाँ शिकार भी खेलेंगे।

धृतराष्ट्र ने कहा—शिकार खेलने जाना और गायों की देख-भाल करना तो अच्छी बात है; किन्तु मेरी राय में गोपों के कहने पर विश्वास करके वहाँ जाना ठीक नहीं। मने सुना है, पुरुषसिंह पाण्डव उसी द्वैतवन में, सरोवर के पास, जहाँ हमारी गायें हैं, ठहरे हुए हैं। इस कारण मैं स्वयं तुम्हें वहाँ जाने की आज्ञा नहीं दे सकता। हे कर्ण, महारथी पाण्डव कपट के जुए में हारकर वन को गये हैं और वहाँ अनेक प्रकार के क्लेश सह रहे हैं। वे तपस्वी और स्वभाव से ही बली हैं। धर्मराज युधिष्ठिर तो तुम पर कोप नहीं कर सकते, किन्तु भीमसेन बड़े ही क्रोधी और द्रौपदी साक्षात् तेज की मूर्ति है। तुम घमण्ड में आकर उनसे किसी तरह की छेड़-छाड़ करोगे तो तपस्वी पाण्डव या तो तपस्या के प्रभाव से तुमको भस्म कर देंगे,
११ अथवा अस्त्र-शस्त्र खड्ग आदि से तुम्हें मार डालेंगे। यदि तुम अपने जत्थे को बड़ा समझकर उनसे कुछ बुरा व्यवहार करोगे (उन्हें जीत लोगे या क़ैद कर लोगे) तो भी बड़ी नीचता होगी। उन्हें जीत लेना भी सहज काम नहीं है। महाबाहु अर्जुन इन्द्रलोक में रहकर दिव्य अस्त्र सीख आये हैं। पहले जब दिव्य अस्त्रों की विद्या नहीं जानते थे तभी अर्जुन ने समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी को जीतकर अपने अधीन कर लिया था। अब तो वे दिव्य अस्त्र सीख आये हैं। इस समय महारथी अर्जुन क्या तुम्हें मार डाले बिना छोड़ेंगे? इसलिए मेरी बात सुनकर तुम्हें सावधान हो जाना चाहिए—वहाँ जाने का विचार छोड़ देना चाहिए। यदि गोपों के कहने पर विश्वास

करके, और यह समझकर कि पाण्डव हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते, वहाँ जाओगे और पाण्डवों को छेड़ोगे, तो तुम्हें अवश्य वहाँ दुःख भोगना पड़ेगा। मान लो कि तुम कुछ छेड़छाड़ नहीं करोगे, किन्तु जो तुम्हारा कोई सिपाही दुर्बुद्धि के कारण युधिष्ठिर का या किसी पाण्डव का अपमान कर बैठेगा, तो उससे भी यही दोष उत्पन्न होगा। इस कारण गायों की गिनती और पहचान लिखने के लिए किसी विश्वासी पुरुष को वहाँ भेज दो। तुम्हारा स्वयं वहाँ जाना किसी तरह ठीक नहीं।

शकुनि ने कहा—राजन्, बड़े पाण्डव धर्मात्मा युधिष्ठिर बारह वर्ष तक वन में रहने की
प्रतिज्ञा सभा में कर चुके हैं। उनके छोटे भाई धर्मात्मा चारों पाण्डव बड़े भाई के कहे में हैं।
इसलिए वे हमारे वहाँ जाने से कभी न चिढ़ेंगे। शिकार खेलने के लिए, और गाय-बछड़ों की
गिनती तथा पहचान लिखने आदि का काम करने के लिए, हमारा जी बहुत चाहता है। हमको
पाण्डवों से मिलने की उत्सुकता नहीं है। न हम उनके आश्रम में जायँगे, न उनसे छेड़छाड़ २०
करेंगे और न कोई अन्याय ही हमारी ओर से होगा।

शकुनि के यों कहने पर, इच्छा न रहते भी, राजा धृतराष्ट्र ने मन्त्रियों के साथ दुर्योधन को वहाँ जाने की आज्ञा दे दी। धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर दुःशासन, शकुनि और कर्ण के साथ दुर्योधन द्वैतवन को रवाना हुआ। उसके साथ सैकड़ों स्त्रियाँ और बहुत सी सेना चली। सब छोटे भाई और अपनी-अपनी स्त्रियों को साथ लिए अनेक पुरवासी भी दुर्योधन के साथ द्वैतवन और द्वैतसरोवर देखने को चले। आठ हज़ार रथ, तीस हज़ार हाथी, नव हज़ार घोड़े और असंख्य पैदल सेना दुर्योधन के साथ चली। बहुत से छकड़े, बाज़ार, वेश्याएँ, बनिये, स्तुतिपाठ करनेवाले बन्दीजन और शिकारी भी दुर्योधन के पीछे चले।

जनमेजय! वर्षाकाल में आँधी आने से जैसा घोर शब्द होता है वैसा ही कोलाहल उस
सेना का सुन पड़ता था। दुर्योधन ने जाकर द्वैतवन में, सरोवर से दो कोस के फ़ासले पर,
अपना डेरा डाल दिया। २१

दो सौ चालीस अध्याय

दुर्योधन के आदमियों से और गन्धर्वों से विवाद

वैशम्पायन कहते हैं—वन में इधर-उधर डेरा डालता हुआ दुर्योधन उस स्थान के पास पहुँचा जहाँ उसकी गायों को लिये हुए ग्वाले ठहरे हुए थे। गोपों के उस गाँव के पास ही दुर्योधन के आदमियों ने एक रमणीय, जाने हुए, स्थान पर दुर्योधन के रहने का स्थान बनाया। वहाँ छायादार पेड़ थे और पानी भी सरलता से मिल सकता था। कर्ण, शकुनि और दुःशासन आदि अन्य भाइयों के लिए भी, पास ही पास, श्रेष्ठ निवास-स्थान बनाये गये।

वहाँ दुर्योधन की असंख्य गायें थीं। उन सबको गिनवाकर और पहचान लिखवाकर दुर्योधन ने अपने पास आये हुए जिन बछड़ों को नाथने और दागने के योग्य समझा, उनके लिए वैसी आज्ञा दे दी। इस प्रकार बछड़ों-सहित गायों को गिनने और पहचानने का काम हो जाने पर दुर्योधन ने तीन साल के, काम के लायक, बछड़ों को अलग गिनने की आज्ञा दी। इस तरह सब कामों से छुट्टी पाकर दुर्योधन वहाँ बड़े आनन्द से विहार करने लगा। नगरवासियों और हज़ारों सैनिकों के बीच दुर्योधन की वैसी ही शोभा हो रही थी जैसी देवताओं के बीच इन्द्र की होती है। सब लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुसार आनन्द मनाने लगे। राह चलने से थका हुआ दुर्योधन विश्राम करने लगा। नाचने और गाने में चतुर अहीर, गहनों से सजी हुई, अपनी कन्याओं को साथ लेकर वहाँ आये। अपने कुल की स्त्रियों के साथ उनका नाच-गान और तमाशा देखकर दुर्योधन ने उनको बढ़िया भोजन, पीने के पदार्थ, बढ़िया कपड़े और धन आदि देकर ख़ुश किया। गोपों को, उनकी प्राथना से, बहुत अधिक धन मिला।

इसके बाद सब लोग मिलकर शिकार खेलने गये और तेंदुए, भैंसे तथा बनैले सुअर आदि
१० का पीछा करने लगे। दुर्योधन ने ख़ुद रमणीय स्थान में बाणों से बहुत से हाथियों और मृगों का शिकार किया। दुर्योधन आदि ने गोरस पिया, अन्य प्रकार के भोग के पदार्थों का सेवन किया। इस प्रकार घूमते-फिरते वे लोग राह में मस्त भौंरों और मोरों से पूर्ण रमणीय वनों की शोभा देखते हुए द्वैतवन के सरोवर पर पहुँचे। उस सरोवर के आसपास सप्तच्छद, पुन्नाग, मौलसिरी आदि वृक्षों के घने वन थे और भौंरों तथा मोरों का शब्द चारों ओर गूँज रहा था। वहीं पर इन्द्र के समान महाराज युधिष्ठिर ठहरे हुए थे। सरोवर के चारों ओर यज्ञशाला और रहने का स्थान बना हुआ था। उसी दिन धर्मपत्नी द्रौपदी सहित महाराज युधिष्ठिर ने जङ्गली सामग्री से दिव्य विधि के अनुसार राजर्षि-यज्ञ की दीक्षा ली थी। वह यज्ञ एक ही दिन में समाप्त हो जानेवाला था।

राजा दुर्योधन ने वहाँ पहुँचकर अपने हज़ारों आदमियों को, उस सरोवर के किनारे, एक ओर क्रीड़ाभवन बनाने की आज्ञा दी। दुर्योधन के नौकर और सिपाही द्वैतवन के सरोवर पर

गये। वहाँ पहुँचने पर गन्धर्वों ने उन्हें रोका। हे जनमेजय, कुबेर के भवन से आकर चित्रसेन २०
नाम का गन्धर्वराज पहले से ही, क्रीड़ा के लिए, सरोवर के स्थान में ठहरा हुआ था। उसके साथ अनेक गन्धर्व, देवता, देवपुत्र और अप्सराएँ थीं। वहाँ उन लोगों की भीड़ थी। वे सब आनन्द से क्रीड़ा कर रहे थे। दुर्योधन के आदमी उस सरोवर को खाली न पाकर और उन लोगों के द्वारा रोके जाने पर दुर्योधन के पास लौट आये। उन्होंने दुर्योधन से सब हाल कहा। तब दुर्योधन ने उसी समय अपने योद्धाओं को वहाँ यह आज्ञा देकर भेजा कि तुम लोग गन्धर्वों को शीघ्र मारकर वहाँ से निकाल दो।

राजा की आज्ञा पाकर सेनापति लोग द्वैतसरोवर पर गये। वहाँ उन्होंने गन्धर्वों से कहा—धृतराष्ट्र के पुत्र महाबली राजा दुर्योधन विहार के लिए यहाँ आ रहे हैं; इस लिए तुम लोग अभी यह स्थान खाली कर दो। हे जनमेजय, यह सुनकर गन्धर्व लोग हँसने लगे। फिर कठोर वचनों से तिरस्कार करते हुए वे लोग दुर्योधन के आदमियों से बोले—तुम्हारा राजा दुर्योधन बड़ा ही दुष्ट और मूर्ख है। अभी तक उसे चेत नहीं हुआ। राजा लोग प्रजा को या देवता लोग साधारण मनुष्यों को जैसे आज्ञा देते हैं वैसे ही वह हमको आज्ञा देता है; इससे बढ़कर नादानी और क्या होगी? जान पड़ता है, तुम लोगों की मौत आ गई है, जो उस दुर्बुद्धि दुर्योधन की आज्ञा पाकर हमसे यों कह रहे हो। तुम लोग भला चाहो तो अपनी जान लेकर दुर्योधन के पास चले जाओ; नहीं तो अभी यमपुर के पाहुने बनोगे।

वे योद्धा और सेनापति लोग गन्धर्वों की ये बातें सुनकर वहाँ से दौड़ते हुए दुर्योधन के
पास लौट आये। ३१

दो सौ इकतालीस अध्याय

गन्धर्वों के साथ कौरव-सेना का युद्ध

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, सेनापतियों और योद्धाओं ने दुर्योधन के पास आकर गन्धर्वों के कहे हुए दुर्वचन सुना दिये। गन्धर्वों ने दुर्वचन कहकर सेनापतियों को लौटा दिया, यह सुनकर प्रभावशाली दुर्योधन को बड़ा क्रोध चढ़ आया। उसने कहा—हे सेनापतियो, तुम जाकर मेरा अप्रिय करनेवाले गन्धर्वों को दण्ड दो। जो देवताओं के स्वामी इन्द्र भी अपनी सेना-सहित आकर उनकी सहायता करें तो भी तुम उन अधर्मियों को दण्ड देने में आगा-पीछा न करना।

यह आज्ञा पाकर महाबली दुःशासन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र और हज़ारों वीर योद्धा अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध के लिए तैयार हुए। भयङ्कर सिंहनाद से दिशाओं को व्याप्त करते हुए कौरव-

दो सौ चालीस अध्याय

दुर्योधन के आदमियों से और गन्धर्वों से विवाद

वैशम्पायन कहते हैं—वन में इधर-उधर डेरा डालता हुआ दुर्योधन उस स्थान के पास पहुँचा जहाँ उसकी गायों को लिये हुए ग्वाले ठहरे हुए थे। गोपों के उस गाँव के पास ही दुर्योधन के आदमियों ने एक रमणीय, जाने हुए, स्थान पर दुर्योधन के रहने का स्थान बनाया। वहाँ छायादार पेड़ थे और पानी भी सरलता से मिल सकता था। कर्ण, शकुनि और दु:शासन आदि अन्य भाइयों के लिए भी, पास ही पास, श्रेष्ठ निवास-स्थान बनाये गये।

वहाँ दुर्योधन की असंख्य गायें थीं। उन सबको गिनवाकर और पहचान लिखवाकर दुर्योधन ने अपने पास आये हुए जिन बछड़ों को नाथने और दागने के योग्य समझा, उनके लिए वैसी आज्ञा दे दी। इस प्रकार बछड़ों-सहित गायों को गिनने और पहचानने का काम हो जाने पर दुर्योधन ने तीन साल के, काम के लायक, बछड़ों को अलग गिनने की आज्ञा दी। इस तरह सब कामों से छुट्टी पाकर दुर्योधन वहाँ बड़े आनन्द से विहार करने लगा। नगरवासियों और हजारों सैनिकों के बीच दुर्योधन की वैसी ही शोभा हो रही थी जैसी देवताओं के बीच इन्द्र की होती है। सब लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुसार आनन्द मनाने लगे। राह चलने से थका हुआ दुर्योधन विश्राम करने लगा। नाचने और गाने में चतुर अहीर, गहनों से सजी हुई, अपनी कन्याओं को साथ लेकर वहाँ आये। अपने कुल की स्त्रियों के साथ उनका नाच-गान और तमाशा देखकर दुर्योधन ने उनको बढ़िया भोजन, पीने के पदार्थ, बढ़िया कपड़े और धन आदि देकर ख़ुश किया। गोपों को, उनकी प्रार्थना से, बहुत अधिक धन मिला।

इसके बाद सब लोग मिलकर शिकार खेलने गये और तेंदुए, भैंसे तथा बनैले सुअर आदि
१० का पीछा करने लगे। दुर्योधन ने ख़ुद रमणीय स्थान में बाणों से बहुत से हाथियों और मृगों का शिकार किया। दुर्योधन आदि ने गोरस पिया, अन्य प्रकार के भोग के पदार्थों का सेवन किया। इस प्रकार घूमते-फिरते वे लोग राह में मस्त भौंरों और मोरों से पूर्ण रमणीय वनों की शोभा देखते हुए द्वैतवन के सरोवर पर पहुँचे। उस सरोवर के आसपास सप्तच्छद, पुन्नाग, मौलसिरी आदि वृक्षों के घने वन थे और भौंरों तथा मोरों का शब्द चारों ओर गूँज रहा था। वहीं पर इन्द्र के समान महाराज युधिष्ठिर ठहरे हुए थे। सरोवर के चारों ओर यज्ञशाला और रहने का स्थान बना हुआ था। उसी दिन धर्मपत्नी द्रौपदी सहित महाराज युधिष्ठिर ने जङ्गली सामग्री से दिव्य विधि के अनुसार राजर्षि-यज्ञ की दीक्षा ली थी। वह यज्ञ एक ही दिन में समाप्त हो जानेवाला था।

राजा दुर्योधन ने वहाँ पहुँचकर अपने हजारों आदमियों को, उस सरोवर के किनारे, एक ओर क्रीड़ाभवन बनाने की आज्ञा दी। दुर्योधन के नौकर और सिपाही द्वैतवन के सरोवर पर

गये। वहाँ पहुँचने पर गन्धर्वों ने उन्हें रोका। हे जनमेजय, कुबेर के भवन से आकर चित्रसेन २०
नाम का गन्धर्वराज पहले से ही, क्रीड़ा के लिए, सरोवर के स्थान में ठहरा हुआ था। उसके साथ अनेक गन्धर्व, देवता, देवपुत्र और अप्सराएँ थीं। वहाँ उन लोगों की भीड़ थी। वे सब आनन्द से क्रीड़ा कर रहे थे। दुर्योधन के आदमी उस सरोवर को खाली न पाकर और उन लोगों के द्वारा रोके जाने पर दुर्योधन के पास लौट आये। उन्होंने दुर्योधन से सब हाल कहा। तब दुर्योधन ने उसी समय अपने योद्धाओं को वहाँ यह आज्ञा देकर भेजा कि तुम लोग गन्धर्वों को शीघ्र मारकर वहाँ से निकाल दो।

राजा की आज्ञा पाकर सेनापति लोग द्वैतसरोवर पर गये। वहाँ उन्होंने गन्धर्वों से कहा—धृतराष्ट्र के पुत्र महाबली राजा दुर्योधन विहार के लिए यहाँ आ रहे हैं; इस लिए तुम लोग अभी यह स्थान खाली कर दो। हे जनमेजय, यह सुनकर गन्धर्व लोग हँसने लगे। फिर कठोर वचनों से तिरस्कार करते हुए वे लोग दुर्योधन के आदमियों से बोले—तुम्हारा राजा दुर्योधन बड़ा ही दुष्ट और मूर्ख है। अभी तक उसे चेत नहीं हुआ। राजा लोग प्रजा को या देवता लोग साधारण मनुष्यों को जैसे आज्ञा देते हैं वैसे ही वह हमको आज्ञा देता है; इससे बढ़कर नादानी और क्या होगी? जान पड़ता है, तुम लोगों की मौत आ गई है, जो उस दुर्बुद्धि दुर्योधन की आज्ञा पाकर हमसे यों कह रहे हो। तुम लोग भला चाहो तो अपनी जान लेकर दुर्योधन के पास चले जाओ; नहीं तो अभी यमपुर के पाहुने बनोगे।

वे योद्धा और सेनापति लोग गन्धर्वों की ये बातें सुनकर वहाँ से दौड़ते हुए दुर्योधन के
पास लौट आये। ३१

दो सौ इकतालीस अध्याय

गन्धर्वों के साथ कौरव-सेना का युद्ध

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, सेनापतियों और योद्धाओं ने दुर्योधन के पास आकर गन्धर्वों के कहे हुए दुर्वचन सुना दिये। गन्धर्वों ने दुर्वचन कहकर सेनापतियों को लौटा दिया, यह सुनकर प्रभावशाली दुर्योधन को बड़ा क्रोध चढ़ आया। उसने कहा—हे सेनापतियो, तुम जाकर मेरा अप्रिय करनेवाले गन्धर्वों को दण्ड दो। जो देवताओं के स्वामी इन्द्र भी अपनी सेना-सहित आकर उनकी सहायता करें तो भी तुम उन अधर्मियों को दण्ड देने में आगा-पीछा न करना।

यह आज्ञा पाकर महाबली दुःशासन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र और हज़ारों वीर योद्धा अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध के लिए तैयार हुए। भयङ्कर सिंहनाद से दिशाओं को व्याप्त करते हुए कौरव-

पक्ष के वीर, गन्धर्व-सेना को दलित करते हुए, उस वन के भीतर घुसने की चेष्टा करने लगे। गन्धर्वों ने प्रवेश करने के लिए उतारू कौरवों की सेना को फिर वन के भीतर घुसने से रोका। गन्धर्वों ने पहले नर्मी के साथ समझा-बुझाकर उन्हें लौटाने की चेष्टा की पर कौरव पक्ष के वीरों ने नहीं माना; वे जबर्दस्ती वहाँ घुसने लगे। दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों को, कहा न मानकर, अनादर करके भीतर घुसते देख गन्धर्वों ने अपने स्वामी चित्रसेन से जाकर सब हाल कहा। गन्धर्वराज चित्रसेन सुनकर बहुत कुपित हुआ। उसने नीच प्रकृतिवाले ढीठ दुर्योधन आदि कौरवों को दण्ड देने के लिए अपने पक्ष के वीरों को आज्ञा दी।

हे भरतश्रेष्ठ, तब चित्रसेन की आज्ञा पाकर सब गन्धर्व अनेक अस्त्र-शस्त्र लेकर कौरव-सेना के ऊपर हमला करने के लिए चले। शस्त्र लिये हुए गन्धर्वों को अपनी ओर वेग से आते देख, दुर्योधन के सामने ही, उसके पक्ष के योद्धा और दुःशासन आदि भाई डर के मारे इधर-उधर भागने लगे। उन सबको भागते देखकर भी वीर कर्ण वहीं डटा रहा; उसने पीठ नहीं दिखाई। गन्धर्वों की भारी सेना को अपनी ओर आते देखकर कर्ण बाणों की वर्षा से उसे रोकने लगा। फुर्ती के साथ क्षुरप्र, भल्ल, वत्सदन्त आदि तरह-तरह के तीक्ष्ण, लोहे के, बाणों से सैकड़ों गन्धर्वों को उसने घायल कर दिया और अनेकों के सिर काट डाले। वीर कर्ण ने दम भर में चित्रसेन की सेना को मारकर छिन्न-भिन्न कर दिया; किन्तु सैकड़ों-हजारों गन्धर्व फिर लड़ने के लिए युद्ध-भूमि में आ गये। चारों ओर गन्धर्व ही गन्धर्व देख पड़ने लगे।

तब राजा दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन, विकर्ण, और धृतराष्ट्र के अन्य पुत्र गरुड़ के समान शब्द करनेवाले दृढ़ रथों पर बैठकर गन्धर्व-सेना को चौपट करने लगे। कर्ण भी गन्धर्वों के पराक्रम को देखकर न सह सका। वह सब कौरवों के आगे था और रथों पर सवार होकर प्रहार करनेवाले असंख्य गन्धर्वों को मार रहा था। अपने रथों के पहियों की घरघराहट से युद्ध-भूमि को पूर्ण करते हुए गन्धर्व भी दुर्योधन और कर्ण को घेरकर प्रहार करने लगे। कौरवों और गन्धर्वों से दारुण संग्राम होने लगा। कर्ण आदि के बाणों से पीड़ित होकर गन्धर्व लोग धीमे पड़ गये। गन्धर्वों को पीड़ित शिथिल देखकर कौरवपक्ष के योद्धा आनन्द से सिंहनाद करने लगे। तब गन्धर्वों को पीड़ित और डरा हुआ देखकर चित्रसेन को बड़ा क्रोध चढ़ आया। वह अपने आसन से उठकर कौरवों को मारने के लिए चला। चित्रसेन विचित्र युद्धकला जानता था। वह मायामय अस्त्रों का सहारा लेकर कौरवों से भिड़ गया। चित्रसेन की माया से सब कौरव घबरा गये। कौरव सेना के एक-एक मनुष्य पर दस-दस गन्धर्व टूट पड़े।

गन्धर्व-सेना के पराक्रम और प्रहारों से पीड़ित होकर कौरवों की सेना के लोग भागे। सब सेना और धृतराष्ट्र के अन्य पुत्रों के भाग खड़े होने पर भी महारथी वीर कर्ण अपनी जगह पर ही पर्वत की तरह खड़ा रहा। दुर्योधन, शकुनि के साथ, अत्यन्त घायल होकर भी गन्धर्वों से युद्ध

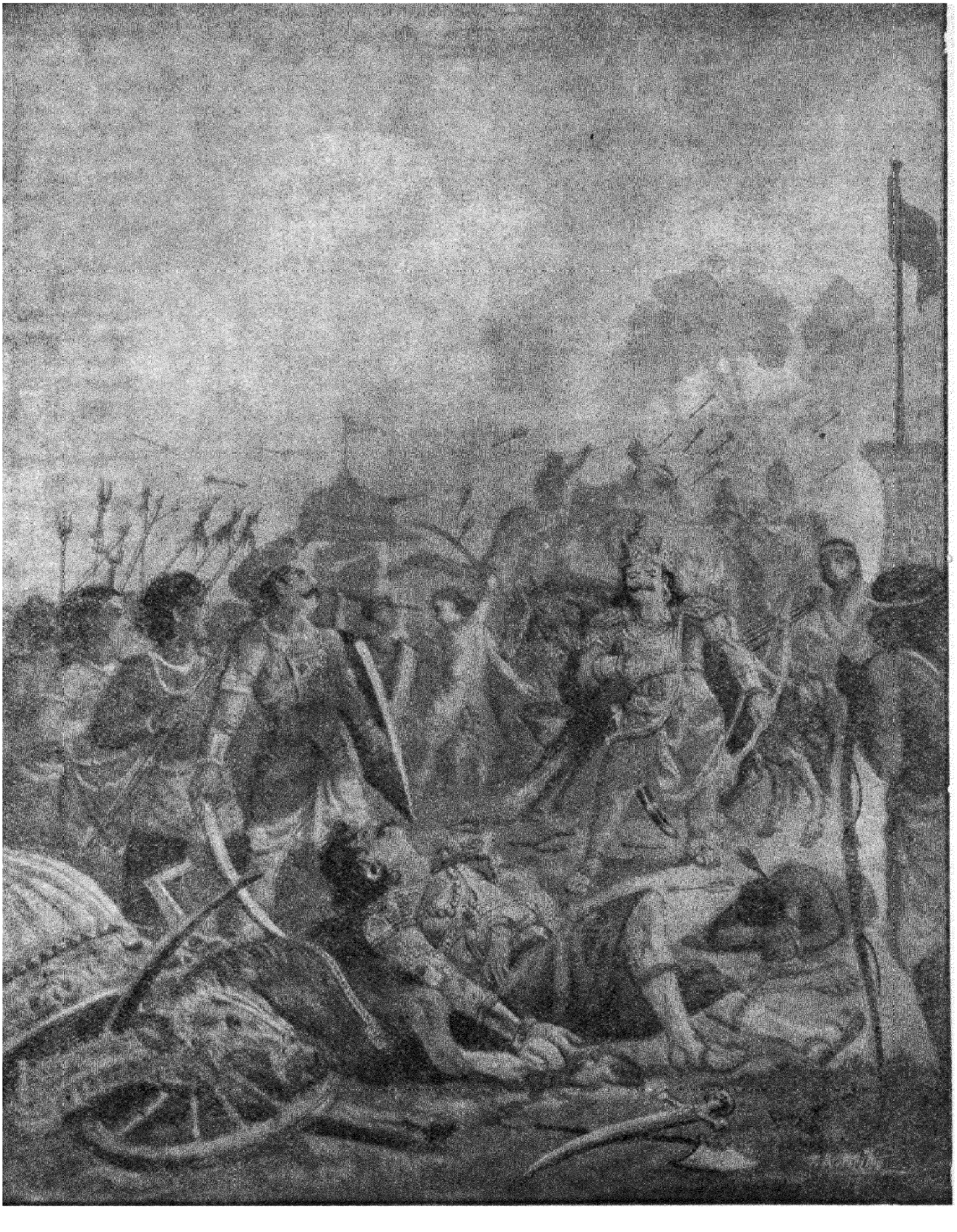

दुर्योधन को रथ से हीन और पृथ्वी पर गिरा हुआ देखकर चित्रसेन झपट कर पकड़ने चला ।—पृ० १२०५

करता रहा। सैकड़ों हज़ारों कुपित गन्धर्व, मार डालने की इच्छा से, कर्ण के ही ऊपर हमला करने लगे। कर्ण को चारों ओर से घेरकर वे उस पर खड्ग, पट्टिश, शूल, गदा और बाण आदि की वर्षा करने लगे। किसी ने कर्ण के रथ का धुरा, किसी ने ध्वजा, किसी ने पहिये, किसी ने छत्र और किसी-किसी ने रथ के और-और अंश काट डाले। गन्धर्व कई हज़ार थे; उन्होंने तिल-तिल करके कर्ण का रथ काट डाला। तब ढाल-तलवार लेकर वीर कर्ण रथ पर से कूद पड़ा। विकर्ण के रथ पर बैठकर,

बचाव के लिए, उसने घोड़ों को युद्धभूमि से भगा दिया। ३२

दो सौ बयालीस अध्याय

दुर्योधन का पकड़ा जाना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, गन्धर्वों ने कर्ण को हराकर जब भगा दिया तब कौरवों की सेना और दुर्योधन के भाई भी, उसके सामने ही, युद्ध छोड़कर भागने लगे। राजा दुर्योधन अपने योद्धाओं को रण छोड़कर भागते देखकर भी युद्धभूमि से नहीं भागा। वह गन्धर्वों की सेना पर लगातार तीक्ष्ण बाण बरसाने लगा। उस बाण-वर्षा की कुछ परवा न करके गन्धर्वों ने दुर्योधन को मार डालने के लिए, चारों ओर से, उसके रथ को घेर लिया। वे दुर्योधन पर लगातार प्रहार करने लगे। उन्होंने दुर्योधन के रथ के भी युग, ईषा, ध्वजा, त्रिवेणु, बैठक आदि अङ्गों को तिल-तिल भर काटकर सारथी समेत घोड़ों को मार डाला। दुर्योधन को रथ से हीन और पृथ्वी पर गिरा हुआ देखकर चित्रसेन ने झपटकर उसको जिते ही पकड़ लिया। उसके बाद रथ पर सवार दु:शासन को भी गन्धर्वों ने घेरकर पकड़ लिया। इसी प्रकार विविंशति, चित्रसेन, विन्द, अनुविन्द आदि कौरवों और रानियों को पकड़कर गन्धर्व लोग चल दिये।

तब दुर्योधन की सेना के बचे हुए लोग—पहले की भागी हुई सेना, टूटे-फूटे छकड़े, लुटे हुए बाज़ार, वेश्याओं के डेरे और अन्य सब सामान लेकर—पाण्डवों की शरण में गए। उन्होंने १०

महाराज युधिष्ठिर के पास जाकर कहा—महावीर पाण्डवो, रक्षा करो, रक्षा करो। वीर गन्धर्व लोग राजा दुर्योधन, दुःशासन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुर्जय आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों को बाँधे लिए जाते हैं। राजकुल की स्त्रियों को भी उन दुष्टों ने नहीं छोड़ा। आप लोग गन्धर्वों का पीछा करके उन्हें छुड़ाइए।

राजभक्त सैनिक यों कह-कर आर्त्तनाद करते हुए दीनभाव से महाराज युधिष्ठिर के पास खड़े रहे। युधिष्ठिर से प्रार्थना करने-वाले, व्यथित-हृदय, दीन, दुर्यो-धन के बूढ़े मन्त्रियों से भीमसेन ने कहा—बड़ी तैयारी और धूम-धाम से हाथी-घोड़े सजाकर दुर्योधन आदि तो कुछ और करने आये थे, किन्तु दैव ने कुछ और ही कर दिया। जो काम हमें करना था वह गन्धर्वों ने कर दिया। कपट का जुआ खेलनेवाले दुर्योधन को यह उसकी करतूत का फल मिला है। हमने सुना था कि निर्बल पुरुष से द्रोह करनेवालों को दूसरे लोग मार डालते हैं; सो आज गन्धर्वों ने यह अलौकिक काम करके हमें प्रत्यक्ष दिखा दिया। बड़ी बात है, इस संसार में हमारा प्रिय करनेवाले लोग भी हैं! बड़े आनन्द की बात है कि हम लोग यहाँ बैठे ही रहे और गन्धर्वों ने यह काम करके हमारा बोझ हलका कर दिया। दुर्मति दुर्योधन हमें अपना ऐश्वर्य दिखाने और आप यह देखने आया था कि हम लोग कैसे सर्दी-गर्मी-आँधी-पानी के कष्ट सहते हुए वन म रहते हैं। अधर्मी दुरात्मा दुर्योधन के से नीच स्वभाव के
२ जितने लोग हैं उन्हें इसी तरह नीचा देखना पड़ता है। मैं सबके सामने खुलासा कहता हूँ कि निष्कपट, उच्च विचारवाले पाण्डवों को चिढ़ाने या कुढ़ाने के लिए यहाँ इस तरह आने की सलाह जिसने दुर्योधन को दी है वह बड़ा अधर्मी है।

क्रोध से भरे भीम को कठिन स्वर से यों कठोर वचन कहते देखकर युधिष्ठिर ने कहा—भाई
२१ भीमसेन, यह समय इन कठोर बातों के कहने का नहीं है।

दो सौ तैंतालीस अध्याय

दुर्योधन को छुड़ाने के लिए युधिष्ठिर की आज्ञा

युधिष्ठिर ने कहा—हे भीम, कौरव सङ्कट में पड़े हैं; उनके ये आदमी डर से व्याकुल होकर हमारी शरण में आये हैं। इनसे इस समय ऐसी बातें करना क्या तुमको उचित है? हे भीमसेन, जाति-भाइयों में फूट भी पड़ जाती है; लड़ाई-झगड़े भी हुआ करते हैं और वैर-भाव भी बहुत दिनों तक बना रहता है; पर जाति का धर्म नहीं नष्ट होता, अर्थात् वे जातिवाले और भाई ही बने रहते हैं। जो कोई ग़ैर अपने कुल का अनिष्ट करने पर तैयार होता है तो समझदार लोग उसे नहीं सह सकते; आपस में लाख विरोध और शत्रुता हो किन्तु जो कोई ग़ैर उस विरोध रखनेवाले भाई का अपमान करे तो उसका प्रतिकार करना चाहिए। उस समय आपस का वैर-विरोध भूल जाना चाहिए। मैं जानता हूँ कि हम लोगों का इस स्थान पर अर्से से रहना दुर्मति दुर्योधन को मालूम था और हमें चिढ़ाने के लिए—हमारा अप्रिय करने के लिए—जान-बूझकर वह यहाँ आया था। परन्तु इस समय दुर्योधन को युद्ध में हराकर गन्धर्व पकड़े लिये जा रहा है; इतना ही नहीं, हमारे कुल की स्त्रियों का भी उसने अपमान किया है—उन्हें भी पकड़े लिये जा रहा है। यह हमारे कुल का अपमान होने के कारण हमारा भी अपमान है। इसलिए हे पुरुषसिंहो, शरणागतों की रक्षा करने के लिए, कुल को अपमान और कलङ्क से बचाने के लिए, शीघ्र उठो; कमर कसकर खड़े हो जाओ। हे भीम, तुमको कोई नहीं जीत सकता। तुम, अर्जुन, नकुल और सहदेव, चारों भाई जाकर गन्धर्व के हाथ से दुर्योधन का उद्धार करो। तुम लोग अपने इन्द्रसेन आदि सारथियों के साथ इन सुवर्ण की ध्वजा, अस्त्र-शस्त्र आदि से सुसज्जित, प्रभापूर्ण, धृतराष्ट्र के पुत्रों के रथों पर चढ़कर गन्धर्वों से लड़ने के लिए जाओ और दुर्योधन को छुड़ाने के लिए कोई बात उठा न रक्खो। हे भीम, तुमसे अधिक क्या कहूँ,
साधारण क्षत्रिय भी शरणागत की रक्षा करना अपना धर्म समझकर उससे मुँह नहीं मोड़ते। १०
यदि कोई शत्रु हाथ जोड़कर "मेरी रक्षा करो" कहता हुआ शरण में आवे तो आर्य पुरुष को उसकी भी रक्षा करनी चाहिए। भाइयो! वर प्राप्त करना, राज्य-लाभ, शत्रु को क्लेश से छुड़ाना और पुत्र उत्पन्न करना, ये चारों बातें बराबर हैं।

फिर विचारकर देखो, शत्रु दुर्योधन आज जीवन की रक्षा के लिए तुम्हारे बाहुबल के आश्रय की प्रार्थना करता है। [इससे बढ़कर सुख की बात क्या हो सकती है?] हे भीम, जो मैंने यज्ञ की दीक्षा न ले ली होती तो मैं स्वयं दुर्योधन को छुड़ाने के लिए जाता। तुम लोग जाओ, पहले गन्धर्व से मेल करके दुर्योधन को छुड़ाने की कोशिश करना। यदि सामनीति के द्वारा गन्धर्वराज, दुर्योधन को छोड़ने के लिए, तैयार न हो तो साधारण युद्ध करके अपना काम

निकालने की चेष्टा करना। उसमें भी सफलता न हो तो जिस उपाय से हो उस उपाय से कौरवों को गन्धर्व के चंगुल से छुड़ा लेना। मेरा यज्ञ अभी तक समाप्त नहीं हुआ, नहीं तो मैं स्वयं जाकर दुर्योधन को छुड़ा लाता। अब तुम जाकर दुर्योधन को छुड़ाओ, यही मेरी अन्तिम आज्ञा है।

अजात-शत्रु महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर अर्जुन ने गन्धर्वों के हाथ से कौरवों को
२० छुड़ाने की प्रतिज्ञा की। उन्होंने कहा—जो सीधी तरह समझाने से गन्धर्व लोग कौरवों को
न छोड़ेंगे तो मैं आज गन्धर्वों के रक्त से पृथ्वी को तर कर दूँगा। राजन्, सत्यवादी अर्जुन
२२ की इस प्रतिज्ञा को सुनकर कौरवों के मन में फिर आशा हुई।

दो सौ चवालीस अध्याय

गन्धर्वों के साथ अर्जुन का युद्ध

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! युधिष्ठिर के वचन सुनकर भीमसेन आदि पाण्डव हर्ष और उत्साह के साथ उठ खड़े हुए। उन्होंने सुवर्णमय अभेद्य कवच पहने और विविध विचित्र शस्त्र लिये। वे अपने तेज के प्रभाव से प्रज्वलित अग्नि के समान देख पड़ने लगे। इसके बाद वे पुरुषसिंह सुसज्जित शीघ्रगामी घोड़ों से युक्त रथों पर चढ़कर गन्धर्वों की ओर चले। पाण्डवों को चलते देखकर कौरवों के सब वीर आनन्द के साथ घोर कोलाहल करने लगे।

महारथी गन्धर्व लोग अपने को युद्ध में विजयी समझकर लौटे जा रहे थे, इसी समय पाण्डवों को रथ पर चढ़कर अपनी ओर आते देखकर वे निर्भय भाव से युद्ध-भूमि की ओर लौट पड़े। हे भरतश्रेष्ठ, लोकपालों के समान तेजस्वी और प्रभावशाली पाण्डवों को लड़ने के लिए तैयार देखकर गन्धमादन पर्वत के रहनेवाले गन्धर्व भी व्यूह-रचना करके लड़ने को तैयार हो गये। पाण्डव लोग पहले तो धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा के अनुसार साधारण रूप से कोमल युद्ध करने लगे; किन्तु जब अर्जुन ने देखा कि गन्धर्वराज के कुबुद्धि सैनिक कोमल
१० युद्ध से हार माननेवाले नहीं हैं, तब उन्होंने उन युद्धप्रिय गन्धर्वों को समझाते हुए कहा—हे
गन्धर्वो, तुम मेरे भाई राजा दुर्योधन को छोड़ दो। यह सुनकर गन्धर्व लोग कहने लगे—हे अर्जुन, हम लोग जिनकी आज्ञा के अधीन रहकर बिना किसी रोक-टोक के इस पृथ्वी पर विचरते हैं, केवल उन्हीं की आज्ञा मान सकते हैं। गन्धर्वराज चित्रसेन के सिवा और कोई हमारा शासक नहीं है।

अर्जुन ने गन्धर्वों के वचन सुनकर फिर उनसे कहा—पराई स्त्रियों को पकड़ ले जाना और मनुष्यों से मिलना गन्धर्वराज के योग्य काम नहीं है। इसलिए हे महावीर गन्धर्वो, धर्म-

राज की आज्ञा मानकर तुम लोग महाराज धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि को और उनकी स्त्रियों को छोड़ दो। यदि तुम मेरे समझाने से भी दुर्योधन आदि कौरवों को न छोड़ोगे तो फिर मैं स्वयं अपने पराक्रम से इन लोगों को छुड़ा लूँगा।

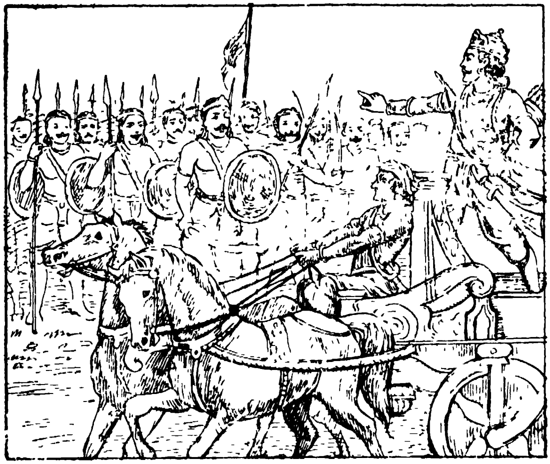

इतने पर भी जब गन्धर्वों ने नहीं सुना तब अर्जुन उन आकाशचारियों पर अपने पैने
बाण बरसाने लगे। महाबली गन्धर्व भी पाण्डवों पर बाणों की वर्षा करने लगे। इस प्रकार गन्धर्वों के साथ पाण्डवों का कठिन युद्ध छिड़ गया। अत्यन्त वेगशाली गन्धर्वों और पाण्डवों के उस भयानक युद्ध में गन्धर्व लोग पाण्डवों पर और पाण्डव गन्धर्वों पर प्रहार करके अपना अपना पराक्रम प्रकट करने लगे। २०
२१

दो सौ पैंतालीस अध्याय

अर्जुन से चित्रसेन की भेंट और युद्ध की समाप्ति

वैशम्पायन कहते हैं—युद्ध छिड़ जाने पर दिव्य अस्त्रों के जाननेवाले, सुवर्ण की मालाएँ पहननेवाले गन्धर्व लोग प्रज्वलित बाण चलाने लगे। वे बाण पाण्डवों के चारों ओर छा गये। युद्ध में हज़ारों गन्धर्वों से चार पाण्डव घोर युद्ध कर रहे थे। यह अत्यन्त अद्भुत दृश्य था। गन्धर्वों ने जैसे कर्ण, दुर्योधन और दुःशासन के रथों के टुकड़े-टुकड़े कर डाले थे, वैसे ही पाण्डवों के रथों को भी काट डाला। पुरुषसिंह पाण्डव भी युद्ध में गन्धर्वों पर हज़ारों बाण बरसाकर उन पर आक्रमण करने लगे। आकाशचारी गन्धर्व लोग घोर बाण-वर्षा के मारे पाण्डवों के पास तक नहीं आ सकते थे। इसके बाद महावीर अर्जुन क्रोधित होकर, अत्यन्त क्रोधित गन्धर्वों पर, दिव्य अस्त्र छोड़ने लगे। उन अस्त्रों के प्रभाव से हज़ारों गन्धर्व दम भर में मर गये। इसी समय महाबली भीमसेन भी तीक्ष्ण बाण मारकर सैकड़ों गन्धर्वों को यमपुर भेजने लगे। महाबली नकुल और सहदेव भी शत्रुओं का संहार करने में भीमसेन और अर्जुन की सहायता करने लगे।

महारथी पाण्डव जब इस प्रकार संहार करने लगे, तब गन्धर्व लोग धृतराष्ट्र के पुत्रों को लेकर आकाशमार्ग में चले गये। अर्जुन ने वहाँ भी बाणों की वर्षा से उन्हें ढक दिया। पिंजड़े के बीच चिड़िया की तरह वे गन्धर्व चारों ओर से बाणों के पिंजड़े में घिर गये। तब वे कुपित होकर अर्जुन के ऊपर गदा, शक्ति और दिव्य अस्त्र आदि की वर्षा करने लगे। दिव्य अस्त्रों के जाननेवाले अर्जुन ने उन अस्त्र-शस्त्रों को नष्ट कर दिया। उसके बाद वे भल्ल नाम के बाणों से गन्धर्वों के अङ्ग काटने लगे। किसी का सिर, किसी के पैर, किसी के हाथ, कट-कटकर आकाश से गिरने लगे। ऐसा जान पड़ता था, मानों पत्थरों की वर्षा हो रही है। यह देखकर गन्धर्व लोग बहुत डरे। महात्मा अर्जुन आकाशचारी गन्धर्वों को मार रहे थे, और वे भी पाण्डवों के ऊपर लगातार बाणों की वर्षा कर रहे थे। शत्रु-दमन अर्जुन ने गन्धर्वों के अस्त्रों को व्यर्थ कर दिया और फिर अपने अस्त्रों से उन्हें घायल करना शुरू किया। महावीर अर्जुन स्थूणाकर्ण, इन्द्रजाल, सौर, आग्नेय और सौम्य आदि तरह-तरह के अस्त्र चलाने लगे। इन्द्र के मारे हुए दानवों के समान, अर्जुन के बाणों की आग में भस्म होते हुए गन्धर्व बहुत ही खिन्न हुए। गन्धर्व लोग जब ऊपर आकाश में जाकर आक्रमण करना चाहते थे तब अर्जुन बाणों की वर्षा से उन्हें रोक देते थे। और, जब वे नीचे पृथ्वी पर आकर हमला करने पर उतारू होते थे तब भल्ल अस्त्र से उनकी गति रोक दी जाती थी। हे भरतश्रेष्ठ, गन्धर्वराज चित्रसेन ने जब देखा कि अर्जुन के घोर युद्ध से गन्धर्व लोग डर गये हैं, तब वह कुपित होकर लोहे की भारी गदा लेकर अर्जुन की ओर दौड़ा। अर्जुन ने अपने बाणों से, उसके हाथ में ही, उस लोहे की गदा के सात टुकड़े कर डाले।

पराक्रमी अर्जुन ने जब गदा के कई टुकड़े कर डाले, तब चित्रसेन अदर्शन-विद्या के प्रभाव से गुप्त हो गया, और इस प्रकार छिप कर अर्जुन से घोर युद्ध करने लगा। अर्जुन ने चित्रसेन के चलाये हुए सब दिव्य अस्त्रों को अपने दिव्य अस्त्रों से बेकाम कर दिया। इसके बाद वे फिर गन्धर्वराज के ऊपर अपने दिव्य अस्त्र चलाने लगे। पर गन्धर्वराज के अन्तर्द्धान रहने

के कारण उस पर दिव्य अस्त्रों का असर नहीं हुआ। अर्जुन के प्रहार निष्फल हो जाते थे और गन्धर्व के प्रहार निशाने पर बैठते थे। मायाबल से छिपे हुए गन्धर्वराज को मारने के लिए अर्जुन ने ऐसे दिव्य अस्त्र का प्रयोग किया कि उसकी माया नष्ट हो गई। क्रोधित होकर अर्जुन शब्द-वेधी बाण चलाकर गन्धर्वराज को मारने लगे। इस प्रकार अर्जुन के द्वारा मारे जाने पर अर्जुन का प्रिय मित्र चित्रसेन प्रकट होकर उनके सामने आया।

उसने कहा—हे अर्जुन, मैं तुम्हारा मित्र चित्रसेन हूँ। पाण्डव अर्जुन अपने प्रिय मित्र चित्रसेन को देख बहुत विस्मित हुए। उन्होंने अपने मित्र को पीड़ित देखकर वह दिव्य अस्त्र लौटा लिया। अर्जुन को अस्त्र का प्रतिसंहार करते देखकर अन्य पाण्डवों ने भी अस्त्र-शस्त्र रखकर, धनुष उतारकर, युद्ध बन्द कर दिया। इसके बाद रथों पर बैठे हुए अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और चित्रसेन ने परस्पर कुशल-प्रश्न किया। ३०

दो सौ छियालीस अध्याय

दुर्योधन आदि का छुटकारा

वैशम्पायन कहते हैं कि इसके बाद परमतेजस्वी महाधनुर्द्धर अर्जुन ने उस गन्धर्व-सेना के बीच में हँसकर मित्र चित्रसेन से पूछा—हे वीर, तुमने किसलिए इन कौरवों को इस तरह परास्त किया? स्त्रियों-सहित दुर्योधन को यों पकड़ने और नीचा दिखाने का क्या अभिप्राय है।

चित्रसेन ने कहा—हे अर्जुन, इन्द्र को अपने लोक में ही दुर्योधन और दुष्ट कर्ण का विचार मालूम हो गया था। पापी दुर्योधन, यह जानकर कि तुम लोग वन में अपने अयोग्य क्लेश भोग रहे हो, उस दुर्दशा में तुम्हें देखने आया था। ये सब कौरव-यशस्विनी द्रौपदी को दुर्दशा में देखने और हँसने आये थे। इन लोगों की इस बुरी प्रवृत्ति को जानकर इन्द्र ने मुझसे कहा—जाओ, मन्त्रियों और सेवकों-सहित दुष्ट दुर्योधन को यहाँ मेरे पास पकड़ लाओ। युद्ध में भाइयों-सहित अर्जुन की रक्षा करना। अर्जुन तुम्हारे सखा और शिष्य हैं। हे अर्जुन, इन्द्र की इसी आज्ञा से मैं यहाँ

आया था। अब मैं इस दुरात्मा दुर्योधन को कैद कर चुका हूँ। इसलिए इन्द्र की आज्ञा के अनुसार इसे उनके पास ले जाऊँगा।

अर्जुन ने कहा—मित्र चित्रसेन, यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो धर्मराज की आज्ञा के अनुसार हमारे भाई दुर्योधन को छोड़ दो। चित्रसेन ने कहा—अर्जुन, इस घमण्डी पापी को छोड़ देना ठीक नहीं है। इसने धर्मराज को धोखा दिया और द्रौपदी का अपमान किया था। इसके विचार
१० सदा बुरे ही रहते हैं। महाराज युधिष्ठिर इसके बुरे विचारों और चेष्टाओं का हाल नहीं जानते। जो कुछ हाल था वह तुमने सुन लिया। अब इसे धर्मराज के पास ले चलो; वे सब हाल सुनकर जो कुछ कहें और तुम्हारी जो इच्छा हो वही करो।

वैशम्पायन कहते हैं—अब सब लोग युधिष्ठिर के पास गये। वहाँ पहुँचकर चित्रसेन और अर्जुन आदि ने दुर्योधन के बुरे विचार का सब वृत्तान्त उनसे कहा। अजातशत्रु धर्मराज ने

चित्रसेन के मुँह से दुर्योधन की करनी का हाल सुनकर भी उसको, भाइयों और रानियों-समेत, छुड़वा दिया। फिर गन्धर्वों की बहुत बड़ाई करके धर्मराज ने कहा—हे गन्धर्व, तुमने बलवान् होकर भी मन्त्री और बान्धवों-सहित दुराचारी दुर्योधन को मार नहीं डाला, यह बड़े ही भाग्य की बात है। हे आकाशचारी गन्धर्वराज, तुमने यह मेरा बड़ा उपकार किया। इस दुरात्मा दुर्योधन के छूट जाने से मेरा कुल, अपमान और कलङ्क से, बच गया। हे गन्धर्वों, तुम्हें देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। बतलाओ, मैं तुम्हारी कौन सी इच्छा पूरी करूँ? अपनी इच्छा पूरी कराकर तुम लोग शीघ्र अपने स्थान को जाओ।

इस प्रकार युधिष्ठिर से विदा होकर चित्रसेन आदि गन्धर्व लोग, अप्सराओं को साथ लेकर, प्रसन्नता-पूर्वक अपने लोक को गये। कौरवों और पाण्डवों से लड़कर जो गन्धर्व मरे थे उन्हें इन्द्र ने, अमृत की वर्षा करके, जिला दिया। पाण्डव लोग इस प्रकार अपने भाइयों को और उनकी स्त्रियों को शत्रुओं के हाथ से छुड़ाकर, दुष्कर कर्म करके, बहुत प्रसन्न हुए। स्त्री-पुत्र आदि के साथ दुर्योधन प्रभृति कौरवों ने पाण्डवों का सत्कार किया। उस समय यज्ञ-वेदी में स्थित अग्नि
२० के समान पाँचों पाण्डव शोभायमान हुए।

भाइयों-सहित छुटकारा पाये हुए दुर्योधन से महाराज युधिष्ठिर ने स्नेहपूर्वक कहा—भैया, अब फिर कभी ऐसा साहस न करना। साहस के काम करनेवालों को न कभी सुख मिलता है और न उनका अभ्युदय होता है। हे कुरुनन्दन, अपने भाइयों के साथ सकुशल घर को जाओ। मन में किसी प्रकार का खेद न करना।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर दुर्योधन बहुत लज्जित हुआ। उस समय वह मुर्दा सा जान पड़ता था। वह युधिष्ठिर को प्रणाम करके वहाँ से अपने नगर की ओर चला। जाते समय लज्जा और क्षोभ के मारे उसकी छाती फटी जा रही थी। कौरव लोग चले गये। युधिष्ठिर भी, देवताओं सहित इन्द्र की तरह, ब्राह्मणों और भाइयों के साथ आनन्द-पूर्वक उसी वन में रहने लगे। तपोधन
मुनिगण उनकी बड़ाई किया करते थे। २७

दो सौ सैंतालीस अध्याय

भागे हुए कर्ण से दुर्योधन की भेंट और कर्ण का दुर्योधन को गन्धर्वों पर विजय पानेवाला जानकर उसकी बड़ाई करना

जनमेजय ने कहा—हे तपोधन, दुरात्मा दुर्योधन सदा बढ़-बढ़कर बातें करनेवाला, घमण्डी और मानी था। वह सदा पौरुष और उदारता में अपने को अधिक मानकर पाण्डवों को तुच्छ समझता था। वही दुर्योधन गन्धर्वों से लड़कर हार गया, शत्रु गन्धर्वों ने उसे क़ैद कर लिया। अन्त को पाण्डवों ने ही उसे शत्रुओं के हाथ से छुड़ाया। ऐसी दशा में लज्जा और शोक ने उसको व्याकुल कर दिया होगा। मुझे तो जान पड़ता है कि हस्तिनापुर में प्रवेश करना उसके लिए कठिन हो गया होगा। दुर्योधन किस तरह हस्तिनापुर में गया, यह वृत्तान्त कृपा करके विस्तार के साथ कहिए।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, दुर्योधन जब पाण्डवों से विदा होकर अपने नगर की ओर चला तब उसका बहुत बुरा हाल था। लज्जा और दुःख के मारे वह सिर झुकाए हुए था। शोक से विह्वल होकर वह अपने उस असह्य पराभव के बारे में सोचता जा रहा था। चतुरङ्गिणी सेना उसके साथ जा रही थी। राह में एक सुन्दर स्थान पर वह ठहर गया। वहाँ हाथी-घोड़े आदि पशुओं के लिए चारे का सुभीता था। जल आदि का भी अच्छा प्रबन्ध था। हाथी, घोड़े, रथ आदि सब खोल दिये गये। अग्नि के समान चमकीले पलँग पर दुर्योधन भी बैठकर विश्राम करने लगा। इसी समय वहाँ पर कर्ण भी पहुँचा। उसने, प्रातःकाल राहु के ग्रसे हुए चन्द्रमा के समान, प्रभा-हीन दुर्योधन से कहा—हे गान्धारी के पुत्र, बड़े भाग्य की बात है कि तुम जीते-जागते हो और

१० मेरी तुमसे भेंट फिर हुई। बड़ी बात हुई जो तुमने चाहे जैसा रूप रख लेनेवाले गन्धर्वों को जीत लिया। यह भी सौभाग्य की बात है कि तुम्हारे महारथी, विजय की इच्छा रखनेवाले भाई लोग भी शत्रुओं को जीतकर सकुशल देख पड़ते हैं। हे कौरव, मुझे तो तुम्हारे सामने ही गन्धर्वों ने ऐसा तङ्ग किया कि मैं अपनी भागती हुई सेना को रोक नहीं सका। अन्त को गन्धर्वों के बाणों से अत्यन्त घायल होकर मैं वहाँ से भाग खड़ा हुआ। किन्तु हे भरतकुलतिलक, मुझे यह बहुत ही आश्चर्य हो रहा है कि तुम उस अमानुष युद्ध से स्त्रियों और सैनिकों सहित बच आये; किसी के शरीर में तनिक सा घाव तक नहीं लगा! राजन्, तुमने और तुम्हारे भाइयों ने युद्ध-भूमि में बड़ा अद्भुत काम किया है। इससे जान पड़ता है, पृथ्वीमण्डल में तुम्हारे समान वीर योद्धा दूसरा नहीं है। महाराज, अङ्गराज कर्ण के ये वचन सुनकर राजा दुर्योधन ने आँखों में

१६ आँसू भरकर गद्गद स्वर में उत्तर दिया।

दो सौ अड़तालीस अध्याय

दुर्योधन का कर्ण को उत्तर

दुर्योधन ने कहा—कर्ण, तुम सब हाल जानते नहीं हो, इसी से तुम्हारे यों कहने से बुरा नहीं मानता। तुम समझते हो कि मैंने अपने तेज और बाहुबल से गन्धर्वों को हराया है; किन्तु असल में यह बात नहीं है। अपने भाइयों सहित मैं गन्धर्वों से बहुत देर तक लड़ता रहा। उस युद्ध में दोनों ओर के बहुत से वीर मारे गये। अन्त को जब मायावी शूर गन्धर्व लोग आकाश में जाकर युद्ध करने लगे तब हम उनसे युद्ध न कर सके। फिर क्या था, गन्धर्व मेरे सेवक, मन्त्री, भाई, योद्धा आदि को पकड़कर, हम लोगों को बाँधकर, आकाश-मार्ग से ले चले।

इस दशा में मुझे देखकर मेरे कुछ मन्त्री और सिपाही दीन भाव से रणशूर पाण्डवों के पास पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने कहा—हे वीरो, आकाशचारी गन्धर्व लोग रनिवास सहित राजा दुर्योधन को और उनके भाइयों को क़ैद करके लिए जाते हैं। आप लोग तुरन्त जाकर दुर्योधन को तथा उनके मन्त्री, भाई और स्त्री आदि को गन्धर्वों के हाथ से छुड़ाइए। इससे आपका भला होगा। आप लोगों का सब तरह यही कर्तव्य है कि कुरुवंश की स्त्रियों का अपमान न होने पावे।

यह हाल सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को, शान्त करके, हमें छुड़ाने के लिए जाने की आज्ञा दी। पुरुषश्रेष्ठ पाण्डव गन्धर्वों के पास गये। उन लोगों को हराने में समर्थ होकर भी पाण्डवों ने उनसे समझाकर शान्तिपूर्वक हमें छोड़ देने का प्रस्ताव किया। किन्तु उसके लिए गन्धर्वों को तैयार न देखकर महावीर अर्जुन, भीमसेन, नकुल और सहदेव उन
पर असंख्य तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे। तब वे आकाशचारी गन्धर्व लड़ना छोड़- ११
कर हमें खींचते हुए आकाश पर चले गये। उस समय हमने देखा कि महावीर अर्जुन पर चारों ओर से असंख्य बाण बरसाये जा रहे हैं। पर अर्जुन तनिक भी घबराये नहीं; वे भी चारों ओर बाण चलाने लगे। पाण्डवों के बाण चारों ओर छा गये। तब चित्रसेन अर्जुन के सामने आ गया। दोनों वीर परस्पर गले मिले; दोनों ने परस्पर कुशल पूछी। अन्य पाण्डवों ने भी चित्रसेन से मिलकर उनकी कुशल पूछी। गन्धर्व और पाण्डव इस तरह युद्ध करना छोड़ परस्पर मिल-
कर एक दूसरे का आदर करने लगे। १६

दो सौ उनचास अध्याय

दुर्योधन का प्रायोपवेशन का निश्चय करना

दुर्योधन ने कहा—इसके बाद शत्रुदमन अर्जुन ने चित्रसेन से मिलकर हँसते हुए कहा कि हे मित्र, हे गन्धर्वश्रेष्ठ, आप हमारे भाइयों को छोड़ दीजिए। पाण्डवों के जीते रहते

कौरवों का ऐसा अपमान करना अनुचित है। महात्मा अर्जुन के यों कहने पर, हमारा जो कुछ इरादा था, सो सब गन्धर्वराज ने कह दिया [कि हम लोग पाण्डवों की दुर्दशा देखने और उन्हें कुढ़ाने द्वैतवन को गये थे] तब मैं बहुत ही लज्जित हुआ। मैं मन में कहने लगा कि धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ।

इसके बाद गन्धर्व लोग पाण्डवों के साथ धर्मराज युधिष्ठिर के पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने मेरा इरादा और मेरे क़ैद किये जाने का सब वृत्तान्त आदि से अन्त तक कह सुनाया। मुझे स्त्री, भाई, और मन्त्रियों के आगे दीन भाव से बँधकर पाण्डवों के आगे, युधिष्ठिर की भेंट बनकर, जाना पड़ा; इससे बढ़कर दुःख और क्या हो सकता है ? मैं सदा पाण्डवों का अनादर करता रहा हूँ; वे मेरे परम शत्रु हैं। उन्हीं ने मुझे शत्रु के हाथ से छुड़ाया और जीवन दान किया। हे वीर, इस तरह अपमान सहने से तो गन्धर्वों से लड़कर वहाँ युद्ध में मर जाना ही मेरे लिए अच्छा था। वहाँ मर जाने से पृथ्वी पर सदा के लिए मैं यश छोड़ जाता और परलोक में महेन्द्र के पवित्र लोक में जाकर अक्षय पुण्य-फल भोगता।

१० जो हो, अब मेरा जो इरादा है सो सुनो। दुःशासन आदि मेरे भाई, और कर्ण आदि मेरे सब शुभचिन्तक मित्र, तुम सब लोग राजधानी को जाओ। मैं यहाँ अन्न-जल छोड़कर प्रायोपवेशन करूँगा। शत्रु से यों अपमानित होकर अब मैं राजधानी में पैर न रक्खूँगा—वहाँ मुँह न दिखाऊँगा। पहले मैं शत्रुओं का मान घटाकर मित्रों का मान बढ़ाता था। इस समय मित्रों का शोक और शत्रुओं का आनन्द बढ़ानेवाला बनकर हस्तिनापुर में जाकर महाराज से क्या कहूँगा ? महात्मा भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विदुर, सञ्जय, वाह्लीक और सोमदत्त के पुत्र आदि बड़े बूढ़े लोग, ब्राह्मण लोग, सब प्रजा और अन्य लोग मुझे क्या कहेंगे ! मैं उन लोगों को क्या जवाब दूँगा ? मैं शत्रुओं की छाती पर मूँग दल चुका था; परन्तु अब अपने दोष अर्थात् मूर्खता से उस पद से भ्रष्ट हो गया हूँ। अब मैं जाकर नगर-वासियों से क्या कहूँगा ? क्या मुँह दिखाऊँगा ? मैं किसी तरह नगर में पैर न रख सकूँगा।

जो मनुष्य उद्दण्ड है वह लक्ष्मी, विद्या और ऐश्वर्य पाकर भी बहुत दिन तक सुखी नहीं रह सकता। देखो, मैं अपनी दुर्बुद्धि से ही घमण्ड के मद में आकर ऐसा निन्दित कर्म कर बैठा और अन्त को घोर सङ्कट में पड़ गया। इसलिए अब मैं प्रायोपवेशन करूँगा। अब मेरे जीने का कोई काम नहीं। कौन समझदार मनुष्य इस तरह शत्रु के हाथ से कष्ट से छुटकारा पाकर फिर जीना
२० चाहेगा ? मैं बँधा हुआ असमर्थ था, पाण्डवों ने अपने पौरुष से मुझ मानी को छुड़ाया—अनादर की दृष्टि से मुझे देखा; मेरी हँसी हुई।

इस प्रकार चिन्तित होकर दुर्योधन ने दुःशासन से कहा—दुःशासन, मैं जो कहता हूँ सो सुनो। मैं तुमको राजगद्दी पर बिठाता हूँ। कर्ण और मामा शकुनि की सहायता और

सलाह से तुम, पृथ्वीमण्डल का राज्य करो। इन्द्र जैसे देवताओं का पालन करते हैं, वैसे तुम अपने भाइयों की रक्षा और प्रजा का पालन करो। तुम सावधानी के साथ ब्राह्मणों से अच्छा बर्ताव करना। तुम्हीं भाई-बन्धुओं का और मित्रों की एकमात्र गति हो। विष्णु जैसे देवताओं की देख-भाल रखते हैं, वैसे ही तुम अपने भाई-बन्धुओं का और प्रजा का खयाल रखना। बड़े-बूढ़ों की आज्ञा मानना और उनकी रक्षा करना। जाओ, मित्रों को आनन्दित और शत्रुओं को शोकाकुल करते हुए राज्य करो। दुर्योधन ने दुःशासन को गले लगाकर कहा—जल्दी राजधानी को चले जाओ।

दुर्योधन के ये वचन सुनकर दुःख के मारे दुःशासन की आँखों में आँसू भर आये। उसने दुर्योधन के पैरों पर गिरकर गद्गद स्वर में कहा—महाराज, शान्त और प्रसन्न हूजिए। उसके आँसुओं से दुर्योधन के पैर भीग गये। कुछ देर बाद अपने को सँभालकर, ढाँढ़स बाँधकर,
दुःशासन ने कहा—राजन्, यह विचार ३०
आपके योग्य नहीं है। यदि पृथ्वी फट जाय और आकाश टुकड़े-टुकड़े हो जाय, तो भी मैं आपके बिना राज्य करने का नहीं। यदि सूर्य अपने तेज को, चन्द्रमा शीतलता को, वायु गति को और अग्नि उत्ताप को छोड़ दे; यदि समुद्र सूख जायँ और हिमालय अपनी जगह से हट जाय, तो भी मैं आपके बिना इस पृथ्वी का राज्य नहीं कर सकता। आप प्रसन्न हों। हमारे वंश में आप सैकड़ों बरसों तक जीकर राज्य करेंगे। बस, दुःशासन बड़े भाई के पैरों से लिपट गया और रोने लगा।

दुर्योधन और दुःशासन को अत्यन्त दुःखित देखकर कर्ण ने कहा—तुम लोग अपनी नासमझी के कारण साधारण आदमियों की तरह क्यों खेद कर रहे हो? जो शोक किया करता है उसका शोक कभी दूर नहीं होता। शोक जब सङ्कट को दूर नहीं कर सकता, तब तुम शोक करने में क्या लाभ देखते हो? शोक त्यागकर धैर्य धरो। व्यर्थ शोक करके शत्रु का आनन्द बढ़ाने की क्या ज़रूरत? राजन्, पाण्डवों ने तुमको शत्रु के हाथ से छुड़ाकर अपना कर्तव्य ही किया है। राज्य के भीतर रहनेवाले लोग सब तरह राजा की सहायता करने

के लिए बाध्य हैं; क्योंकि राजा सब तरह उनकी रक्षा किया करता है। इसलिए साधारण आदमी की तरह सोच करना किसी तरह तुम्हारे योग्य काम नहीं है। तुम्हारे प्रायोपवेशन के इरादे को जानकर तुम्हारे भाई अत्यन्त दुःखित हो रहे हैं। इसलिए उठो, अपने भाइयों को धीरज देकर
४१ राजधानी में चलो।

दो सौ पचास अध्याय

कर्ण का दुर्योधन को समझाना

कर्ण ने कहा—राजन्, इस समय तुम किसी छोटे जी के (नासमझ) आदमी का सा आचरण कर रहे हो। हे वीर, तुमको शत्रुओं ने पकड़ लिया था; उनसे पाण्डवों ने छुड़ा लिया, तो इसमें विचित्रता क्या हुई? सैनिक पुरुष और राज्य के भीतर रहनेवाले आदमी, दोनों, परिचित हों और चाहे अपरिचित, उनका कर्त्तव्य है कि वे अपने राजा का प्रिय करके अपने धर्म का पालन करें। सेना के प्रधान पुरुष अक्सर शत्रु-सेना में घुसकर उसे नष्ट करते हैं। कभी-कभी वे पकड़ भी लिए जाते हैं और सैनिक लोग उन्हें छुड़ाते हैं। मतलब यह कि राज्य में रहनेवाली प्रजा और सैनिक का धर्म है कि वह राजा का हित—राजा की सहायता—करे। तुम्हारे राज्य में रहनेवाले पाण्डवों ने अपनी इच्छा से आकर तुमको छुड़ाया तो इसमें दुःख की कौनसी बात है?

राजन्, यह अच्छा नहीं कि जब तुम सेना सहित यात्रा करते हो तब पाण्डव लोग तुम्हारे पीछे नहीं चलते। तुम अब तक बराबर पाण्डवों के रत्नों का उपभोग कर रहे हो, पर पाण्डवों ने दुःखित होकर प्रायोपवेशन नहीं किया। इसलिए अब देर न करो; उठो। राजन्, मैं कह तो चुका कि राज्य में रहनेवालों का कर्त्तव्य राजा का प्रिय करना है। पाण्डवों ने, यह काम करके, अपने कर्त्तव्य
१० का पालन किया है। इसमें दुःख की क्या बात है?

हे राजेन्द्र, जो तुम मेरा कहा न मानोगे तो मैं यहीं रहकर तुम्हारी सेवा करूँगा। हे नरश्रेष्ठ, मैं तुम्हारे बिना दमभर भी जीता नहीं रह सकता। तुम यदि प्रायोपवेशन करोगे तो सब राजा लोग हँसेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं—कर्ण के यों समझाने पर भी राजा दुर्योधन नहीं उठा। उसने प्रायोप-
१३ वेशन के निश्चय को नहीं बदला।

दो सौ इक्यावन अध्याय

दुर्योधन का दानवलोक-गमन

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, दुर्योधन को प्रायोपवेशन के लिए निश्चय किए हुए देखकर सुबल-पुत्र शकुनि समझाता हुआ कहने लगा—हे कौरव, कर्ण ने तुमसे बहुत ठीक कहा है। तुम क्यों मोह में पड़कर वह राजलक्ष्मी छोड़ने को तैयार हो, जिसे मैंने पाण्डवों से छीनकर तुम्हें दिलाया है ? तुम जो अपने प्राण गँवाना चाहते हो सो सरासर तुम्हारी मूर्खता है। जान पड़ता है, तुमने कभी बड़े-बूढ़ों की सेवा नहीं की। जो मनुष्य अचानक आये हुए दुःख अथवा सुख को सँभाल नहीं सकता वह लक्ष्मी को पाकर भी उसी तरह नष्ट हो जाता है जैसे मिट्टी का कच्चा घड़ा पानी में पड़कर गल जाता है। अत्यन्त डरपोक, सामर्थ्य-हीन, काम में देर लगानेवाला, असावधान, मदिरा-शिकार-जुआ आदि व्यसनों में आसक्त और स्त्री आदि के अधीन राजा को प्रजा कभी नहीं चाहती। पाण्डवों ने तुम्हें छुड़ाकर तुम्हारा सत्कार किया है। उसके लिए तुम खुश न होकर शोक क्यों करते हो ? शोक प्रकट करके पाण्डवों के कर्त्तव्य पालन को नष्ट मत करो। राजेन्द्र, तुम्हें खुश होना चाहिए, पाण्डवों का सत्कार करना चाहिए। उलटे शोक करना अनुचित और बुद्धि मानी के विरुद्ध है। प्रसन्न होकर अपने प्राण-त्याग का विचार छोड़ दो। प्रसन्न होकर पाण्डवों के किये उपकार को स्मरण करो। पाण्डवों का राज्य उन्हें देकर यश और धर्म के भागी बनो। ऐसा करने से तुम्हें कोई कृतघ्न न कहेगा। पाण्डवों से भाई-चारे का व्यवहार करो, उन्हें उनके बाप-दादे का राज्य दो। इसी में सुख पाओगे।

वैशम्पायन कहते हैं—शकुनि के ये वचन सुनकर और भाई दुःशासन को भ्रातृस्नेह के कारण व्याकुल तथा पैरों पर पड़ा हुआ देखकर दुर्योधन ने दोनो हाथों से उसको उठाकर छाती से लगा लिया; उसके मस्तक को सूँघा। कर्ण, शकुनि और अन्य इष्ट-मित्रों के वचन सुनकर दुर्योधन जीवन से उदास, लज्जित और राज्य-लाभ से निराश हुआ। उसने बहुत ही दीनभाव से कहा—मुझे धर्म, धन, सुख, भोग, ऐश्वर्य, हुकूमत आदि से कुछ काम नहीं। तुम लोग जाओ; मेरे विचार में विघ्न मत डालो। प्रायोपवेशन का मैं पक्का निश्चय कर चुका हूँ। तुम लोग लौटकर राजधानी में जाओ; मेरे बड़े-बूढ़ों की सेवा और सत्कार करो।

दुर्योधन के वचन सुनकर सब लोग उससे कहने लगे—हे राजेन्द्र, जो तुम्हारी गति होगी वही हमारी होगी। भला हम तुम्हारे बिना कैसे राजधानी में जा सकते हैं ?

वैशम्पायन कहते हैं—सुहृद, मन्त्री, भाई आदि स्वजनों ने बहुत समझाया; परन्तु दुर्योधन ने अपना विचार नहीं बदला। राजा दुर्योधन स्वर्ग पाने की इच्छा से कुश-वल्कल आदि पहन-कर कुशासन पर आचमन करके बैठ गया। चित्त-शुद्धि के उपरान्त बाहरी इन्द्रियों के सब

काम छोड़कर, मौन होकर, उसने प्रायोपवेशन का नियम ग्रहण किया; और पास ही चिता भी लगवा ली।

उधर उन पातालवासी दानवों ने, जिन्हें पहले देवताओं ने हराया था, दुर्योधन के प्रायोपवेशन का पक्का इरादा जानकर, अपना पक्ष गिरते देख, दुर्योधन को अपने लोक में बुलाने के लिए एक यज्ञ आरम्भ किया। यज्ञ करानेवाले मन्त्रज्ञ ब्राह्मण, बृहस्पति और शुक्र की कही हुइ विधि के अनुसार, मन्त्र पढ़कर, अथर्ववेद की ऋचाओं का उच्चारण कर उपनिषदों में कहे गये कर्मों का अनुष्ठान और जप करने लगे। दृढ़व्रत और वेद-वेदाङ्ग के विद्वान् ब्राह्मण लोग एकाग्र भाव से मन्त्र पढ़-पढ़कर आग में घी और खीर की आहुतियाँ छोड़ने लगे। राजन्, वह यज्ञ समाप्त होने पर अद्भुत-रूपिणी एक कृत्या (देवता-विशेष) जँभाती हुई अग्नि-कुण्ड से निकली। उसने कहा—"बतलाइए, मैं क्या करूँ?" उसके वचन सुनकर दानवों ने प्रसन्न होकर कहा—महाराज धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन प्रायोपवेशन करने बैठे हैं; तुम जाकर उन्हें यहाँ ले आओ। कृत्या ने उनका यह काम करना स्वीकार कर लिया। वहाँ से चलकर कृत्या दम भर में वहाँ जा पहुँची जहाँ राजा दुर्योधन प्रायोपवेशन किये बैठा था। वह दुर्योधन को लेकर पातालपुरी में दानवों के पास पहुँच गई। रात्रि के समय दुर्योधन को अपने पास आया हुआ देखकर दानव बहुत प्रसन्न हुए, उनके नेत्र-कमल खिल गये। वे लोग दुर्योधन से अभिमान-
३० पूर्ण वाक्य कहने लगे।

दो सौ बावन अध्याय

दानवों का दुर्योधन को समझाना

दानवों ने कहा— हे भरतकुल-दीपक राजेन्द्र दुर्योधन, शूर और महात्मा लोग सदा तुम्हारे पास बने रहते हैं; फिर तुमने यह प्रायोपवेशन का साहस क्यों किया? आत्म-हत्या करने-

वाला मनुष्य नरक में जाता है और इस लोक में सब लोग उसकी निन्दा करते हैं। तुम्हारे ऐसे बुद्धिमान् लोग कभी इस कुलक्षय-कारक, महादोषजनक, आत्महत्यारूपी महापाप में लिप्त नहीं होते। महाराज, तुम शत्रुओं के आनन्द को बढ़ानेवाली यह बुद्धि छोड़ दो। यह बुद्धि धर्म, अर्थ, यश, वीर्य और सुख का नाश करती है। प्रभो, तुम साधारण मनुष्य नहीं हो। सुनो, जिस तरह दिव्य शरीर धारण करके तुम उत्पन्न हुए हो, सो सब हाल हम कहते हैं।

राजन्, पहले तपस्या करके हम लोगों ने महादेवजी से वरदान माँगकर तुमको प्राप्त किया है। तुम्हारा नाभि से ऊपर का शरीर वज्र का बना हुआ है। कोई भी अस्त्र-शस्त्र उसे तोड़ नहीं सकता। नाभि से नीचे का हिस्सा फूलों से बना और स्त्रियों के लिए मनोहर है। ऊपर का हिस्सा महादेव का और नीचे का हिस्सा पार्वती का बनाया हुआ है। इस प्रकार शङ्कर और पार्वती का बनाया हुआ तुम्हारा शरीर दिव्य है। तुम साधारण मनुष्य नहीं हो। भगदत्त आदि दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता, महापराक्रमी शूर क्षत्रिय तुम्हारे शत्रुओं का नाश करेंगे। तुम खेद न करो; तुम्हें डर न होना चाहिए। तुम्हारी सहायता करने के लिए अनेक दानव
पृथ्वी पर उत्पन्न हुए हैं। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि के शरीरों में भी बहुत से असुर प्रवेश १०
करेंगे, जिससे भीष्म आदि सब लोग स्नेह और दया छोड़कर तुम्हारे शत्रुओं से युद्ध करेंगे। वे यहाँ तक निठुर बन जायँगे कि ख़ुशी से पुत्र, पिता, भाई, बन्धु-बान्धव, शिष्य, सजातीय, बालक और बूढ़े, किसी को नहीं छोड़ेंगे—सबको मारेंगे। दानवों के आवेश से उनका चित्त ऐसा हो जायगा कि वे लोग स्नेह को छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक बन्धुओं का वध करेंगे। दानवों के आवेश से, और पूर्वजन्म के किये कर्मों के संस्कार से, वे ऐसे मूढ़ हो जायँगे कि "जीते रहते मुझसे बच न सकोगे" यों कहते हुए स्वजनों पर ही चोट करेंगे। उन्हें कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान न रहेगा। अपनी बड़ाई करके, अपना पौरुष प्रकट करके, वे लोग अस्त्र-शस्त्रों से घोर हत्याकाण्ड मचा देंगे। देवताओं के अंश से उत्पन्न महाबली पाँचों पाण्डव भी उनसे युद्ध करेंगे और उन्हें मारेंगे। राजन्, क्षत्रियों के यहाँ उत्पन्न दैत्य और राक्षस लोग तुम्हारे शत्रुओं से लड़कर पराक्रम प्रकट करेंगे; उन पर गदा, मूसल, शूल आदि अनेक शस्त्रों की वर्षा करेंगे। हे वीर, तुम्हारे हृदय में अर्जुन का जो डर है उसे हटाने के लिए अर्जुन के वध का उपाय भी हमने कर रक्खा है। मारे गये नरकासुर का आत्मा कर्ण के रूप से तुम्हारी सहायता करेगा। वह
पहले के वैर को याद करके कृष्ण और अर्जुन से युद्ध करेगा। वह तुम्हारे सब शत्रुओं को २०
और बड़े पराक्रमी महाबली अर्जुन को हरावेगा। यह हाल जानकर इन्द्र, अर्जुन की रक्षा के लिए छलपूर्वक कर्ण से उसके दोनों कुण्डल और कवच माँग ले जायँगे। इससे हमने प्रसिद्ध अजेय सैकड़ों-हजारों संशप्तक नाम के राक्षसों को तैयार कर रक्खा है; वे युद्ध में अवश्य अर्जुन को मार डालेंगे। इसलिए कुछ चिन्ता मत करो। तुम इस पृथ्वी का निष्कण्टक राज्य भोगोगे।

महाराज, खेद मत करो; यह तुम्हारे योग्य काम नहीं है। हे कौरव, तुम अपनी जान दे दोगे तो हमारे पक्ष का बल घट जायगा। हे वीर, इसलिए तुम जाओ; और कुछ इरादा मत करो। याद रक्खो, पाण्डव लोग देवताओं की गति हैं, और तुम हम दानवों की गति हो।

पिता जैसे पुत्र को गले से लगाता है वैसे ही दानवों ने दुर्योधन को गले से लगाया और आश्वासन दिया। जब दुर्योधन कुछ सँभला तब प्रिय वचनों से "तुम्हारी जय हो, अब जाओ" कहकर उन्होंने उसे बिदा दिया। कृत्या फिर दुर्योधन को वहीं पहुँचा गई जहाँ पर वह प्रायोपवेशन करके बैठा था। उसने दुर्योधन का समुचित सत्कार किया; फिर दुर्योधन से आज्ञा लेकर वह वहीं पर
३० अन्तर्द्धान हो गई।

हे भरतश्रेष्ठ, राजा दुर्योधन को यह सब सपना-सा जान पड़ा। वह उस दृश्य को याद करके मन में कहने लगा कि मैं युद्ध में अवश्य पाण्डवों को हराऊँगा। उसे जान पड़ने लगा कि कर्ण और संशप्तक लोग अर्जुन को मारने के लिए तैयार और समर्थ हैं। उस समय पाण्डवों को जीतने की आशा उसके हृदय में दृढ़ हो गई। नरकासुर की आत्मा के आवेश से कर्ण ने भी उस समय अर्जुन को मारने का क्रूर निश्चय कर लिया। महावीर संशप्तकों ने भी राक्षसों के आवेश से रजोगुण और तमोगुण के वश में होकर अर्जुन को मारने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली। दानवों के आवेश के कारण भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि के हृदय में भी पाण्डवों पर पहले का सा स्नेह न रहा।

दुर्योधन ने दानवों के यहाँ जाने का और उनके समझाने का कुछ भी हाल किसी के आगे प्रकट नहीं किया। दूसरे दिन सबेरे महावीर कर्ण हाथ जोड़कर, हँसकर, दुर्योधन से कहने लगा—राजन् प्राणत्याग करने से शत्रु नहीं जीता जाता। जीवित पुरुष ही अभ्युदय और मङ्गल प्राप्त कर सकते हैं। हे कुरुनन्दन! जो मर गया, वह कल्याण या विजय कैसे पा सकता है? यह समय खेद करने, डरने या प्राण देने का नहीं है। अब कर्ण ने दुर्योधन को गले लगाकर
४० कहा—राजन्! उठो, क्यों सुस्त पड़े हो; किस बात की फ़िक्र है! अपने प्रताप से पहले शत्रुओं

को सताकर, अब [ज़रा सी बात के लिए] प्राण देने पर उतारू हो! अथवा यदि तुम अर्जुन के पराक्रम से डरते हो तो मैं अर्जुन को मारने की प्रतिज्ञा करता हूँ। मैं शस्त्र छूकर यह प्रण करता हूँ कि तेरह वर्ष पूरे होने पर अवश्य पाण्डवों को तुम्हारे अधीन कर दूँगा।

उधर दानवों ने भर दिया था, इधर कर्ण और शकुनि आदि ने उत्तेजित किया, इससे दुर्योधन का भाव बदल गया। दुःशासन आदि के मनाने से वह उठ खड़ा हुआ। दैत्यों द्वारा उत्तेजित किये जाने पर पाण्डवों से लड़ने का निश्चय करके दुर्योधन अपनी राजधानी को चला। सब सेना चलने के लिए तैयार हो गई। रथ, घोड़े, हाथी और पैदलों का ताँता लग गया। वह सेना गङ्गा-प्रवाह के समान नगर की ओर चली। वह सेना सफ़ेद छत्र, पताका, चँवर आदि से शरद् ऋतु के आकाश की शोभा दिखा रही थी। सम्राट् के ऐश्वर्य से भूषित होकर दुर्योधन आगे-आगे जा रहा था। ब्राह्मण लोग उसका जयजयकार करते और उसे आशीर्वाद देते जाते थे। वह विचित्र मालाएँ और रत्न पहने हुए था। उसके प्रिय शकुनि, कर्ण, दुःशासन आदि सब स्वजन इधर-उधर मौजूद थे। भूरिश्रवा, सोमदत्त और बाह्लीक आदि वीर पुरुष अनेक आकार के रथों, हाथियों और घोड़ों पर बैठे हुए दुर्योधन के पीछे चल रहे थे। इस तरह धीरे-धीरे यथा समय कौरव अपनी नगरी में पहुँचे। ५२

दो सौ तिरपन अध्याय

भीष्मकृत कर्ण की निन्दा

जनमेजय ने पूछा—ब्रह्मन्, महात्मा पाण्डवों ने द्वैतवन में जो समय बिताया उसमें कर्ण, शकुनि महाबली भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और महारथी भाइयों सहित दुर्योधन ने क्या किया? वैशम्पायन कहते हैं—पाण्डवों की बदौलत छुटकारा पाकर, उनसे बिदा होकर, दुर्योधन हस्तिनापुर में पहुँचा। उस समय भीष्म पितामह ने दुर्योधन से कहा—बेटा दुर्योधन, जब तुम द्वैतवन को जाने लगे थे तभी मैंने तुमको रोका था, पर तुम्हें मेरी बात नहीं रुची। मेरा कहा न मानकर तुम चल दिये। उसका फल यह मिला कि शत्रु लोग बलपूर्वक तुम्हें बाँधकर ले चले और फिर धर्म के जाननेवाले पाण्डवों ने तुमको छुड़ाया। अब भी क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती? तुम्हारे और तुम्हारी सेना के आगे ही गन्धर्वों से डरकर सूत-पुत्र कर्ण युद्ध से भाग गया। तुमने महात्मा पाण्डवों का और दुर्बुद्धि कर्ण का पराक्रम देख लिया। देखो, यह कर्ण धनुर्वेद के कौशल, शूरता या धर्म, किसी बात में, पाण्डवों के चतुर्थांश भर भी नहीं है। इससे मैं यही उचित समझता हूँ कि कुल की भलाई और रक्षा के लिए तुम पाण्डवों से मेल कर लो। १०

धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने भीष्म के कथन पर कुछ ध्यान नहीं दिया। वह कर्ण और शकुनि के साथ हँसकर, अनादर का भाव दिखाता हुआ, एकाएक वहाँ से चल दिया। दुःशासन आदि भी उसके पीछे चल दिये। कुरुपितामह भीष्मजी, इस प्रकार अनादर दिखाकर, उनके चले जाने से मन में बहुत लज्जित हुए और उठकर अपने घर को चले गये। हे जनमेजय! भीष्म के चले जाने पर कर्ण आदि अपने मन्त्रियों के साथ महाबाहु दुर्योधन फिर वहाँ आकर सलाह करने लगा। दुर्योधन ने कहा—हे मन्त्रियो, अब हमें क्या करना चाहिए? क्या करने से हम लोग कल्याण प्राप्त कर सकेंगे? जो काम हमें करना है वह किस प्रकार सम्पन्न होगा, इसकी सलाह मुझे दो।

कर्ण ने कहा—महाराज दुर्योधन, मैं जो कहता हूँ उसे मन लगाकर सुनो। भीष्म पितामह सदा हम लोगों की निन्दा और पाण्डवों की बड़ाई किया करते हैं। वे तुमसे द्वेष रखने के कारण मुझसे भी कुढ़ते हैं। राजन्, तुम्हारे आगे वे सदा मेरी निन्दा किया करते हैं। हे शत्रुदमन, तुम्हारे सामने भीष्म ने जो पाण्डवों की बड़ाई और तुम्हारी निन्दा की है, उसे मैं नहीं सह सकता। महाराज, मुझे आज्ञा दो; मैं अपने अनुचरों और वाहनों सहित सब सेना साथ ले जाकर पर्वत, वन, उपवन सहित सारी पृथ्वी को जीतने
२० जाऊँगा। बलवान् चारों पाण्डवों ने मिलकर पृथ्वी को जीता है, परन्तु मैं अकेला ही जाकर दिग्विजय कर लूँगा। दुर्मति भीष्म कुरुकुल में अधम हैं; वे मेरा पराक्रम देख लें। जो निन्दा के योग्य नहीं उसकी तो वे निन्दा करते हैं और जो बड़ाई के योग्य नहीं उसकी बड़ाई किया करते हैं। वे अब मेरे बल और पराक्रम को देखकर झेंप जायँ। महाराज, मुझे दिग्विजय के लिए जाने की आज्ञा दो। मैं शस्त्र छूकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि अवश्य तुमको विजय-लक्ष्मी प्राप्त होगी।

नराधिप दुर्योधन ने कर्ण के वचन सुनकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—मित्र कर्ण, तुम सदा मेरे हित के कामों में लगे रहते हो। मैं धन्य हूँ। मुझ पर तुम्हारी बड़ी कृपा है। मैं अपने जन्म को सफल समझता हूँ। तुम मेरे सब शत्रुओं को नष्ट करना चाहते हो—उन्हें

नीचा दिखाना चाहते हो, तो मैं भी तुमको दिग्विजय-यात्रा के लिए अनुमति देता हूँ। जाओ, तुम्हारा भला हो। मुझे और जो कुछ करना चाहिए, सो बताओ।

दुर्योधन के ये वचन सुनकर कर्ण ने सेवकों को यात्रा की तैयारी करने की आज्ञा दी। छकड़े, बाज़ार, तम्बू आदि सब सामान आगे चला। इसके बाद महारथी वीर कर्ण ने शुभ नक्षत्र, शुभ तिथि और शुभ मुहूर्त्त में ब्राह्मणों के द्वारा स्वस्त्ययन कर्म कराया और सुगन्धित तेल-उबटन आदि लगाकर स्नान किया। कर्ण की आरती उतारी गई। ब्राह्मण लोग स्तुति और प्रशंसा के वचन कहकर उसे आशीर्वाद देने लगे। इसके बाद अपने रथ के शब्द से जगत् को कँपाता हुआ कर्ण दिग्विजय के लिए चल पड़ा। २९

दो सौ चौवन अध्याय

दिग्विजय करके कर्ण का लौट आना

वैशम्पायन कहते हैं—सेना-सहित महाबली कर्ण ने जाकर महाराज द्रुपद की राजधानी पर चढ़ाई की। युद्ध में वीर द्रुपद को अपने अधीन करके कर्ण ने उनसे कर के रूप में सोना, चाँदी और तरह-तरह के रत्न प्राप्त किये। फिर महाराज द्रुपद के अनुगत अन्य राजाओं को हराकर और उनसे कर वसूलकर कर्ण उत्तर दिशा की ओर गया। वहाँ के सब राजाओं को हराकर, महाराज भगदत्त को अपने अधीन करके, कर्ण गिरिराज हिमालय पर पहुँचा। वहाँ के पहाड़ी राजाओं को जीतकर उसने उनसे कर वसूल किया। नेपाल देश के राजाओं को जीतकर, पहाड़ी स्थान से उतरकर, कर्ण पूर्व दिशा को गया। पूर्व में अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, शुण्डिक, मिथिला, मगध, कर्कखण्ड, आवशीर, योध्य और अहिच्छत्र आदि देशों को जीतकर उसने दुर्योधन के साम्राज्य में मिला लिया। इस प्रकार पूर्व दिशा को जीतकर कर्ण वत्सभूमि नाम के देश में पहुँचा। वहाँ जय प्राप्त करके उसने केवला, मृत्तिकावती, मोहन, पत्तन, त्रिपुरा और कोशल आदि नगरों तथा देशों को अपने अधीन किया और वहाँ के राजाओं से
कर लिया। वहाँ से दक्षिण दिशा में जाकर कर्ण ने कई महारथी दक्षिणी राजाओं को जीता। १०
वहीं रुक्मी से और कर्ण से भयङ्कर युद्ध हुआ। कुछ समय तक युद्ध करने के बाद रुक्मी ने कर्ण से कहा—हे राजेन्द्र, तुम्हारे बल और पराक्रम को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। अब मैं तुम्हारे दिग्विजय में विघ्न करना नहीं चाहता। क्षत्रिय के धर्म का पालन करने के लिए ही मैंने तुमसे युद्ध ठाना था। अब मैं तुमको प्रसन्नतापूर्वक कर देता हूँ; जितना चाहो उतना सोना ले लो।

रुक्मी को साथ लेकर कर्ण पाण्ड्य और शैल प्रदेश में गया। उसने वहाँ के राजाओं को भी जीता। आगे बढ़कर केरल, नील, वेणुदारिसुत आदि अनेक श्रेष्ठ और वीर राजाओं को जीतकर उनसे उसने कर लिया। वहाँ से चलकर उसने शिशुपाल के पुत्र को जीता, और आसपास के अन्य राजाओं से भी कर वसूल किया। वहाँ से उज्जैन जाकर वहाँ के राजाओं को उसने मेल से अपना मित्र बनाकर कर लिया। फिर वृष्णिवंश के यादव वीरों को साथ लेकर कर्ण ने पश्चिम दिशा को भी जीत लिया; यवन, बर्बर आदि जातियों को भी जीतकर उनसे कर लिया। महारथी कर्ण ने भद्र, रोहितक, आग्नेय, मालव, शशक आदि गणों, म्लेच्छ जातियों, जङ्गली और पहाड़ी जातियों, और नग्नजित् आदि महा-
२१ रथियों के समूहों को भी सहज ही जीत लिया।

महारथी कर्ण इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल को जीत हस्तिनापुर में लौट आया। भाई-बन्धु और भीष्म आदि बड़े-बूढ़ों के साथ जाकर दुर्योधन ने कर्ण की आगवानी की। दुर्योधन ने विधिपूर्वक महारथी कर्ण का स्वागत कर उसका सम्मान किया। अब कर्ण के दिग्विजय की घोषणा की गई। फिर प्रसन्न होकर दुर्योधन ने कर्ण से कहा—कर्ण, तुम्हारा भला हो। भीष्म, कृप, बाह्लीक, द्रोण आदि मिलकर जो मेरा काम नहीं कर सके, वह काम आज तुमने अकेले कर दिखाया। भाई कर्ण, और अधिक क्या कहूँ, तुमको सहायक पाकर आज मैं अपने को सनाथ समझ रहा हूँ। पाण्डव लोग या अन्य प्रतापी श्रेष्ठ राजा तुम्हारे आगे रुपये में एक आने भर भी नहीं हैं। हे महाधनुर्द्धर, अदिति के पास जैसे इन्द्र जाते हैं वैसे ही तुम भी यशस्विनी गान्धारी और महाराज धृतराष्ट्र के पास चलकर उनके दर्शन करो।

महाराज, अब हस्तिनापुर में चारों ओर शोर-गुल और हाहाकार सुन पड़ने
३० लगा। कोई कर्ण की निन्दा कर रहा था, कोई बड़ाई कर रहा था और कोई चुप था। हे राजेन्द्र, श्रेष्ठ योद्धा कर्ण ने इस प्रकार पर्वत, वन, समुद्र, खेत, नगर, द्वीप, गाँव, अनूप (चारों ओर से जल से घिरे स्थान) आदि सहित पृथ्वी को जीतकर, राजाओं को वश में करके उनसे बहुत सा धन लाकर दुर्योधन को दिया। फिर रनिवास में जा करके उसने गान्धारी

और धृतराष्ट्र के दर्शन किये। हे पुरुषसिंह, कर्ण ने पुत्र की तरह भक्ति से धर्मशील धृतराष्ट्र और गान्धारी के चरणों में प्रणाम किया। धृतराष्ट्र ने स्नेह के साथ उसे गले से लगा लिया। धृतराष्ट्र से आज्ञा लेकर कर्ण अपने घर गया। महाराज, तभी से दुर्योधन और शकुनि को यह निश्चय हो गया की महारथी कर्ण पाँचों पाण्डवों को जीत लेगा। ३६

दो सौ पचपन अध्याय

दुर्योधन की यज्ञ करने की तैयारी

वैशम्पायन कहते हैं कि हे नरेश, इस प्रकार पृथ्वीमण्डल को जीत कर कर्ण ने दुर्योधन से कहा—हे कुरुश्रेष्ठ, मैं तुमसे जो कहता हूँ उसे मन लगाकर सुनो और उसी के अनुसार काम करो। राजन्, पृथ्वी पर अब तुम्हारा कोई शत्रु नहीं रहा। अब तुम इन्द्र की तरह पृथ्वी का निष्कण्टक राज्य करो।

कर्ण के ये वचन सुनकर दुर्योधन ने कहा—हे कर्ण, तुम जिसके सहायक हो, जिस पर स्नेह रखते हो और जिसका काम बनाने के लिए तैयार हो, उसके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है। इस समय मेरे मन में एक इच्छा उत्पन्न हुई है, सो सुनो। पाण्डवों का राजसूय यज्ञ जब से मैंने देखा है तब से वह यज्ञ करने के लिए मैं बहुत ही उत्सुक हो रहा हूँ। मित्र, तुम मेरी यह इच्छा पूरी करो। महाराज, दुर्योधन के ये वचन सुनकर कर्ण ने कहा—हे राजेन्द्र, इस समय पृथ्वी भर के सब राजा तुम्हारी आज्ञा में हैं, इसलिए तुम राजसूय यज्ञ कर सकते हो। अभी ब्राह्मणों को बुलाकर यज्ञ की सामग्री जुटाने की तैयारी करो। हे शत्रुदमन, वेद-पाठी ऋत्विजों को बुलाओ; वे लोग आकर शास्त्रोक्त रीति से समृद्धि-सम्पन्न यज्ञ आरम्भ कर दें। हे राजेन्द्र, महायज्ञ में तुम भोजन-वस्त्र आदि देकर याचकों को सन्तुष्ट करो। १०

महाराज, अब दुर्योधन ने अपने कुल-पुरोहित को बुलाकर कहा—हे द्विजवर, आप मेरे लिए बहुत दक्षिणावाले महायज्ञ राजसूय का विधिपूर्वक अनुष्ठान कीजिए। पुरोहित ने कहा—हे कुरुकुल-श्रेष्ठ, जब तक महाराज युधिष्ठिर जीते हैं तब तक तुम्हारे कुल में और कोई राजसूय यज्ञ नहीं कर सकता; खासकर अभी तुम्हारे दीर्घायु पिता जीवित हैं; इस कारण भी तुम राजसूय यज्ञ करने के अधिकारी नहीं। राजन्, राजसूय के समान श्रेष्ठ एक और महायज्ञ है। तुम मेरी बात मानकर वही महायज्ञ करो। जिन राजाओं ने तुम्हारी अधीनता स्वीकार करके तुमको कर दिया है वे तुमको सुवर्ण दें। तुम उसी सुवर्ण का एक हल बनवाओ। उस हल से यज्ञभूमि जोतकर शुद्ध की जायगी। उसी जुती हुई भूमि पर विधि के अनुसार यज्ञ होगा। उस यज्ञ में तुम यथेष्ट रूप से अन्नदान करना। इस यज्ञ को वैष्णव यज्ञ कहते हैं। इसे श्रेष्ठ और समृद्धि-

शाली पुरुष ही कर सकते हैं। सबसे पहले विष्णु भगवान् ने यह यज्ञ किया था। फिर किसी ने आज तक नहीं किया। हे भारत, यह यज्ञ राजसूय के ही समान है। हम लोग चाहते हैं कि तुम यह यज्ञ करो। इस यज्ञ में कोई विघ्न भी नहीं होता। इस यज्ञ को करने से तुम्हारी इच्छा पूरी होगी।

पुरोहित आदि ब्राह्मणों के ये वचन सुनकर राजा दुर्योधन ने कर्ण, शकुनि और भाइयों से कहा—ब्राह्मणों की यह सलाह मुझे पसन्द है। तुम लोग अपनी राय दो। यह सुनकर उन लोगों ने कहा—तो बस महाराज, वही यज्ञ कीजिए। तब दुर्योधन ने कार्य-कुशल लोगों को उनके योग्य काम करने की और कारीगरों को सोने का हल बनाने की आज्ञा दी। दुर्योधन की आज्ञा से सब काम हुए। सब सामग्री झट-पट जमा कर ली गई।

दो सौ छप्पन अध्याय

पाण्डवों के पास यज्ञ का निमन्त्रण भेजना

वैशम्पायन कहते हैं कि इसके बाद सब कारीगरों और सेवकों ने दुर्योधन को सूचना दी कि महाराज, आज्ञा के अनुसार सब सामग्री तैयार है। महामति विदुर ने धृतराष्ट्र से जाकर कहा—राजन्, यज्ञ का समय आ गया। सब सामान जुटा दिया गया है और सोने का बहुमूल्य हल भी बन गया। हे जनमेजय, यह ख़बर पाकर धृतराष्ट्र ने यज्ञ का आरम्भ होने की आज्ञा दे दी। वेदोक्त संस्कारों के उपरान्त उस यज्ञ का आरम्भ हुआ। याचकों को अन्न और धन बाँटा जाने लगा। शास्त्र की विधि के अनुसार दुर्योधन ने यज्ञ की दीक्षा ली। महायशस्वी विदुर, धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण और यशस्विनी गान्धारी आदि को बड़ी प्रसन्नता हुई। चारों ओर शीघ्रगामी दूत, ब्राह्मणों और राजाओं को निमन्त्रण देने के लिए, भेजे जाने लगे। वे दूत शीघ्र चलनेवाले वाहनों पर चढ़कर इधर-उधर जाने लगे। दुःशासन ने एक दूत से कहा—तुम शीघ्र द्वैतवन में जाकर पापी पाण्डवों को और वहाँ के ब्राह्मणों को यज्ञ में आने के लिए, न्यायानुसार, न्यौता दो। उस दूत ने पाण्डवों के पास जाकर, उन्हें प्रणाम करके, कहा—महाराज, राजाओं में श्रेष्ठ महाराज दुर्योधन ने अपने पराक्रम से प्राप्त किये हुए धन से महायज्ञ आरम्भ कर दिया है। अनेक स्थानों से बहुत से राजा और ब्राह्मण वहाँ जा रहे हैं। राजन्, महाराज दुर्योधन ने मुझे आपके पास भेजा है। उन्होंने आप लोगों को भी उस यज्ञ में चलने के लिए निमन्त्रण भेजा है। आप लोग चलकर महाराज दुर्योधन के अभिलषित उस यज्ञ को देखिए।

दूत के मुँह से ये वचन सुनकर महाराज युधिष्ठिर ने कहा—बड़े भाग्य की बात है कि पूर्वपुरुषों की कीर्त्ति बढ़ानेवाले राजा दुर्योधन ने महायज्ञ आरम्भ किया है। उसमें हमारा

भी उपस्थित होना उचित था, किन्तु हम इस समय नहीं जा सकते। हमें तो अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तेरह साल तक वन में ही रहना है।

धर्मराज के ये वचन सुनकर भीमसेन ने कहा—हे दूत, तुम दुर्योधन से जाकर कहना कि धर्मराज युधिष्ठिर तेरह वर्ष के उपरान्त वहाँ जाँयगे और युद्ध-यज्ञ में, अस्त्र-शस्त्र की प्रज्वलित आग में, उसे डालकर पूर्णाहुति देंगे। जिस समय पाण्डव युधिष्ठिर कौरवों पर क्रोध की आहुति छोड़ेंगे उस समय हम लोग वहाँ आवेंगे। हे जनमेजय, अर्जुन आदि ने कुछ अप्रिय वचन नहीं कहा। वहाँ से दुर्योधन के पास जाकर दूत ने यह सब कह सुनाया।

उधर अनेक देशों के राजा और ब्राह्मण दुर्योधन का यज्ञ देखने को हस्तिनापुर में आने लगे। शास्त्र-विधि के अनुसार क्रम से उन सबकी पूजा और सत्कार किया गया और वे भी
उससे बहुत प्रसन्न हुए। तब कौरव-मण्डली में बैठे हुए धृतराष्ट्र ने बड़े हर्ष के साथ विदुर से २०
कहा—हे विदुर, ऐसा प्रबन्ध करो कि आये हुए सब लोगों को कोई कष्ट न हो; सब लोग खाने-पीने की मनमानी सामग्री पाकर संतुष्ट हों। धृतराष्ट्र की आज्ञा के अनुसार धर्मात्मा विदुर खाने-पीने की सामग्री, सुगन्धित माला और विविध वस्त्र आदि से सभी वर्ण के लोगों का सत्कार करने लगे। महाराज, दुर्योधन ने विधि के अनुसार यज्ञ समाप्त करके अवभृथ स्नान किया। फिर ब्राह्मणों को बहुत सा धन देकर, विनय से संतुष्ट कर, बिदा किया। आये हुए राजाओं को भी सत्कार और मधुर वचनों से प्रसन्न करके अपने-अपने देश को जाने की आज्ञा दी। इस प्रकार यज्ञ
को सकुशल समाप्त करके कर्ण, शकुनि और अपने भाइयों सहित दुर्योधन हस्तिनापुर में गया। २७

दो सौ सत्तावन अध्याय

कर्ण का अर्जुन-वध की प्रतिज्ञा करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महावीर योद्धा दुर्योधन ने जब यज्ञ के उपरान्त नगर में प्रवेश किया तब सूत-मागध लोग अनेक प्रकार से उसकी स्तुति करने लगे। और लोग भी स्तुति-वचन कहते हुए उस पर खीलें और चन्दन-चूर्ण बरसाने लगे। बहुत से लोग कहने लगे—राजन्, बड़े भाग्य की बात है कि आपका यह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया। वायु-ग्रस्त पागलों के समान कुछ खुशामदी लोग कहने लगे कि आपका यह यज्ञ युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ से कहीं बढ़कर हुआ है; वह यज्ञ इस यज्ञ के मुक़ाबले में सोलह आने में एक आने भर भी न था। कुछ उचित वक्ता लोगों ने इसके विपरीत कहा कि आपका यह यज्ञ युधिष्ठिर के यज्ञ के बराबर कैसा, उसके मुक़ाबले में, रुपये में एक आने भर भी नहीं हुआ। दुर्योधन के कुछ इष्ट-मित्र कहने

लगे—राजन्, आपका यह यज्ञ सब महायज्ञों से बढ़कर है। राजा ययाति, नहुष, मान्धाता और भरत इस यज्ञ को करके पवित्र हुए और स्वर्ग को गये हैं। हे जनमेजय, इस तरह सब लोगों की तरह-तरह की बातें और मित्रों की की हुई अपनी स्तुति सुनते हुए दुर्योधन ने प्रसन्नतापूर्वक नगर में प्रवेश किया। अपने महल में पहुँचकर दुर्योधन ने भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर और अपने पिता-माता को यथोचित रूप से प्रणाम किया। छोटे भाइयों ने उसके चरणों में प्रणाम किया। इसके बाद वह अपने भाइयों के साथ सुन्दर श्रेष्ठ बहुमूल्य सिंहासन पर विराजमान हुआ।

अब महावीर कर्ण ने उठकर दुर्योधन से कहा—राजन्, बड़ी ख़ुशी की बात है कि तुम्हारा यह यज्ञ निर्विघ्न रूप से पूरा हो गया। अब युद्ध में पाण्डवों को मारकर जब तुम राजसूय यज्ञ करोगे तब फिर मैं इसी तरह तुम्हारा अभिनन्दन और सत्कार करूँगा। यह सुनकर महायशस्वी दुर्योधन ने उससे कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ, तुमने यह ठीक ही कहा कि जब मैं युद्ध में दुरात्मा पाण्डवों को मारकर राजसूय यज्ञ करूँगा तब तुम फिर इसी तरह मेरा सम्मान करके आनन्द प्रकट करोगे। हे जनमेजय, यों कहकर दुर्योधन ने कर्ण को गले से लगा लिया।

इसके बाद फिर वह राजसूय यज्ञ के बारे में सोचकर पास बैठे हुए कौरवों से कहने लगा—वह समय कब आवेगा, जब मैं पाण्डवों को मारकर खूब धन खर्च करके राजसूय महायज्ञ करूँगा! कर्ण ने कहा—हे राजेन्द्र, सुनो, मैं जब तक अर्जुन को नहीं मार लूँगा तब तक दूसरे से अपने पैर नहीं धुलाऊँगा, और मद्य-मांस का सेवन भी न करूँगा। दूसरा नियम यह भी ग्रहण करूँगा कि जब तक अर्जुन को न मार लूँगा तब तक किसी याचक को विमुख न करूँगा; अर्थात् कोई कुछ भी माँगने आवे तो, वह उसे दे डालूँगा—'नाहीं' न करूँगा।

इस प्रकार महावीर कर्ण के मुख से युद्ध में अर्जुन के मारने की प्रतिज्ञा सुनकर धृतराष्ट्र के महारथी पुत्र आनन्द के मारे उछल पड़े। उन्होंने विश्वास कर लिया कि अब पाण्डवों को हमने जीत लिया। दुर्योधन भी उसके बाद सब राजाओं और दरबारियों को बिदा करके अपने भवन में इस तरह गया, जैसे कुबेर चैत्ररथ वन में जाते हैं। राजा लोग दुर्योधन से बिदा होकर अपने-अपने घरों को गये।

उधर पाण्डवों ने जब से दूत के मुँह से दुर्योधन के वैष्णव यज्ञ का समाचार सुना तबसे वे उसी के बारे में सोचने लगे। उन्हें किसी तरह कल न पड़ती थी। इसी बीच में एक जासूस ने आकर अर्जुन-वध के बारे में कर्ण की प्रतिज्ञा का हाल सुनाया। यह समाचार पाकर महाराज युधिष्ठिर और भी चिन्तित हुए। वे सोचने लगे कि उसका कवच तोड़ा नहीं जा सकता। फिर उसका पराक्रम भी साधारण नहीं। कर्ण की प्रतिज्ञा और वनवास के क्लेशों का ख़याल करके युधिष्ठिर बेचैन हो उठे। चिन्ता से व्याकुल महात्मा धर्मराज उस सर्प, मृग आदि जीव-जन्तुओं से पूर्ण द्वैतवन को छोड़ जाने का विचार करने लगे।

उधर राजा दुर्योधन भी भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और दुःशासन आदि भाइयों के साथ रहकर महावीर कर्ण की सहायता से समूचे पृथ्वीमण्डल का एकच्छत्र राज्य करने लगा। वह नित्य अपने अनुगत राजाओं का प्रिय करने में लगा रहता था। बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ देकर उसने अनेक यज्ञ किये। इस प्रकार ब्राह्मणों को भी वह प्रसन्न रखता था। अपने भाइयों को प्रसन्न रखने में वह कुछ उठा नहीं रखता था। दुर्योधन समझता था कि धन का फल दान और भोग ही है। इसी से वह औरों को धन देता और आप भी जी भरकर ऐश्वर्य भोगता रहता था। २८

मृगस्वप्नोद्भवपर्व

दो सौ अट्ठावन अध्याय

युधिष्ठिर का स्वप्न देखकर द्वैतवन को छोड़ जाना

जनमेजय ने पूछा—भगवन्, महाबली पाण्डवों ने दुर्योधन को गन्धर्वों के हाथ से छुड़ा कर फिर कौन कौन से काम किये? कृपा करके कहिए। वैशम्पायन कहते हैं कि एक दिन, रात के समय, धर्मराज युधिष्ठिर पड़े सो रहे थे कि उन्होंने स्वप्न में देखा कि कुछ मृग आँखों में आँसू भरे, हाथ जोड़े, खड़े काँप रहे हैं। धर्मराज ने उनसे पूछा-तुम कौन हो? क्या चाहते हो? बताओ, तुम्हें क्या कहना है? उदार-हृदय युधिष्ठिर के यों पूछने पर शिकार में मारे जाने से बचे हुए उन मृगों ने युधिष्ठिर से कहा—हे भरतकुलावतंस, हम द्वैतवन के रहनेवाले मृग हैं। महाबली, अस्त्र-विद्या में निपुण, आपके भाइयों ने हमारे वंश को नष्टप्राय कर दिया है; थोड़े से मृग बचे हैं। अपने वंश के बीजरूप हम कुछ मृग ही बचे हैं, जो इस वन में रहते हैं। इसलिए महाराज, हमारे वंश को

निर्मूल न कर डालिए। अब आप कृपा करके अपना निवासस्थान बदल दीजिए तो फिर

आपकी कृपा से हमारा वंश बढ़ सकेगा। मृगों के वचन सुनकर, उन्हें डर से काँपते, दुःखित और शरणागत देखकर, सब प्राणियों के शुभचिन्तक युधिष्ठिर ने दुःखित होकर उनसे कहा—हे मृगो, तुम जो कहते हो वही मैं करूँगा।

१० नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने सबेरे उठकर मृगों पर दया करके अपने भाइयों से कहा—भाइयों, मैंने कुछ रात रहे स्वप्न में देखा है कि इस वन के रहनेवाले, मरने से बचे हुए, मृग मेरे पास आकर कहते हैं कि "महाराज, अपने कुल के बीजस्वरूप हम थोड़े से मृग बच रहे हैं; अब आप हम पर दया कीजिए। आपका भला हो"। सो हे भाइयो, वे सच कहते हैं। वनवासी जीवों पर दया करना हमारा कर्त्तव्य है। एक वर्ष और आठ महीने से हम लोग यहाँ के मृगों को मार मारकर खा रहे हैं। इसलिए चलो, हम लोग तृणबिन्दु सरोवर के पास, मरुभूमि के ऊपरी स्थान, रमणीय काम्यक वन में चलकर रहें। वहाँ बहुत से मृग हैं। वहीं विहार करते हुए वनवास का शेष समय बितावेंगे।

हे जनमेजय, अब धर्मज्ञ पाण्डव लोग ब्राह्मणों और अन्यान्य सहायक साथियों के साथ काम्यक वन को चले। इन्द्रसेन आदि सेवक भी उनके साथ गये। अन्न-जल से पूर्ण मार्ग से पाण्डव लोग तपस्वियों की निवास-भूमि, पुण्य आश्रम, काम्यक वन में पहुँचे। जैसे पुण्यात्मा लोग स्वर्गभूमि में जाते हैं, वैसे ही ब्राह्मणों सहित पुण्यात्मा भरतकुल-श्रेष्ठ पाण्डव लोग उस पवित्र
१७ काम्यक वन में पहुँचे।

व्रीहिद्रौणिकपर्व

दो सौ उनसठ अध्याय

वेदव्यास और युधिष्ठिर का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं—हे भरतश्रेष्ठ, महात्मा पाण्डवों ने इस प्रकार कठिन कष्ट सहकर ग्यारह वर्ष बिता दिये। वे श्रेष्ठ पुरुष सुख के योग्य होकर भी फल-मूल खाकर, समय के फेर का ख़याल करके, उस दुःख को सह रहे थे। वे सोचते थे कि अच्छे दिन शीघ्र आनेवाले हैं, तब हमारे सब दुःखों का अन्त हो जायगा।

अपने कर्म के कारण भाइयों को कठिन दुःख सहते देखकर और कपट-द्यूत में किये गये शत्रुओं के दुर्व्यवहार को याद कर युधिष्ठिर को रात में नींद नहीं आती थी। इन बातों का विचार उनके हृदय में काँटे की तरह खटकता रहता था। वे कर्ण के कठोर वचनों को याद कर दीन भाव से लम्बी साँसे लेते रहते और भारी क्रोध के विष को अपने हृदय में ही रोके हुए थे। अर्जुन, महाबली भीमसेन, नकुल, सहदेव और यशस्विनी द्रौपदी, ये लोग युधिष्ठिर का मुख देख-

कर चुपचाप सब दुःख और कष्ट सह रहे थे। वे सोचते थे कि अब थोड़ा ही समय बाकी है, उसके बाद हम इस दुःख से छुटकारा पा जायँगे। उत्साह और क्रोध की चेष्टाओं से उनका भाव ही मानों बदल गया था।

इसी बीच में एक दिन महायोगी व्यासदेव पाण्डवों को देखने के लिए उनके आश्रम में आये। उनको आये देखकर युधिष्ठिर ने उठकर आगे से उनकी अभ्यर्थना की और प्रणाम किया। महात्मा व्यासजी पूजा ग्रहण करके जब आराम से आसन पर बैठ गये तब सेवा करने के भाव से युधिष्ठिरजी भी उनके पास ही बैठे। युधिष्ठिर को विकार-हीन देखकर और उनके चित्त की शुद्धि देखकर व्यासजी बहुत प्रसन्न हुए। अपने पौत्रों को दुर्बल, जङ्गली फल-मूल खाकर निर्वाह करते और कष्ट सहते देखकर व्यासजी की आँखों में आँसू भर आये। करुणा का भाव प्रकट करते हुए गद्गद वाणी से उन्होंने कहा—हे धर्मराज, हे महाबाहु युधिष्ठिर, सुनो। इस लोक में तप किये बिना, कष्ट उठाये बिना, कोई भी पुरुष श्रेष्ठ सुख नहीं पाता। लोग कभी सुख और कभी दुःख पाते हैं। अनन्त सुख या अनन्त दुःख कोई नहीं भोगता। समझदार लोग ऐसी बुद्धि प्राप्त करके, उन्नति और अवनति के रहस्य को जानकर, न सुख में हर्ष करते हैं और न दुःख में शोक करते हैं। इसलिए पुरुष को चाहिए कि सुख प्राप्त हो तो उसे भोगे, और दुःख आ पड़े तो उसे भी सह ले। जैसे किसान लोग कष्ट उठाकर समय पर अन्न पाने की आशा करते हैं वैसे ही मनुष्यों को दुःख सहकर समय पर सुखभोग की राह देखनी चाहिए। देखो, तप (ज्ञान) से बढ़कर कोई चीज़ नहीं है। तप से ही महत् फल (ब्रह्म) प्राप्त होता है। यह तुम जान रक्खो कि तप के द्वारा असाध्य कुछ भी नहीं है। महाराज! सत्य, सरलता, क्रोध का त्याग, अन्न आदि बाँटकर खाना, इन्द्रियों का दमन, शम, पर-सन्ताप न करना, अहिंसा, पवित्रता, इन्द्रियों का संयम, ये ही गुण पुण्यात्मा पुरुषों के पुरुषार्थ-लाभ या अभ्युदय के साधन हैं। पशु-धर्म का आचरण करनेवाले, अधर्म पर रुचि रखनेवाले, मूढ़ लोग सदा नीच योनियों में जन्म लेकर कष्ट भोगते हैं, उन्हें कभी सुख नहीं मिलता। इस लोक में मनुष्य जो कर्म करता है उसी का फल उसे परलोक में भोगना पड़ता है। इसलिए मनुष्यों को सदा मन और शरीर के द्वारा तप करना और नियमानुसार सुमार्ग पर चलना चाहिए। राजन्, समय पर यदि कोई प्रार्थी आ जाय तो उसकी पूजा और प्रणाम करके श्रद्धा के साथ यथाशक्ति उसकी सहायता करनी चाहिए। सत्यवादी पुरुष दीर्घ आयु और सरलता प्राप्त करता है। उसके सब क्लेश दूर हो जाते हैं। जो पुरुष क्रोध और डाह से दूर रहता है वही परम शान्ति (मोक्ष) का अधिकारी होता है। जो पुरुष शम और दम का आधार है वह कभी क्लेश नहीं पाता। जिसने चित्त को शुद्ध करके मन को वश में कर लिया है वह दूसरे के सुख या ऐश्वर्य को देखकर कभी नहीं जलता। जो पुरुष लोगों को अन्न आदि बाँटकर खाता है, प्रार्थियों को धन आदि देता है,

हिंसा से बचा रहता है, आप सुख और भोग के पदार्थों का उपभोग करता है, वह परम आरोग्य प्राप्त करता है। जो कोई मान्य पुरुष का मान करता है, वह श्रेष्ठ कुल में जन्म पाता है। जो कोई जितेन्द्रिय रहता है वह व्यसन में नहीं पड़ता। जिसकी बुद्धि सदा शुभ कामों में लगी रहती है वह मरने पर दूसरे जन्म में भी श्रेष्ठ बुद्धि का अधिकारी होता है।

युधिष्ठिर ने पूछा—भगवन्! परलोक में, दान-धर्म का फल श्रेष्ठ है या तप (काया के क्लेश सहने) का? इन दोनों में दुष्कर अर्थात् कठिन कौन सा काम है? वेदव्यास ने कहा—हे युधिष्ठिर, पृथ्वी पर दान से बढ़कर दुष्कर कर्म नहीं है। लोगों को धन का लोभ बहुत अधिक होता है। वह धन मिलता भी बड़े कष्ट से है—उसके लिए अनेक दुःख सहने पड़ते हैं। प्राणों से बढ़कर कोई वस्तु प्रिय नहीं है। उन प्राणों के मोह को भी छोड़कर लोग धन के लिए युद्ध करते हैं, बीहड़ वनों में जाते हैं और समुद्र में भी गोते लगाते हैं। कुछ लोग धन के लिए खेती करते हैं; गायें पालते और चराते हैं। कुछ लोग दासवृत्ति तक करते हैं। इसलिए दुःख सहकर पैदा किये हुए धन को दे डालना अत्यन्त कठिन काम है। ख़ासकर देश, काल, पात्र का विचार करके न्याय से प्राप्त किये हुए धन का दान करना कभी सहज नहीं है; किन्तु ऐसा दान करना ही विशेष रूप से फल-दायक होता है। जो मनुष्य अन्याय से प्राप्त किया हुआ धन देकर दान-धर्म करना चाहता है वह कभी उस दान के द्वारा बड़ी विपत्ति से छुटकारा नहीं पाता। वह दान व्यर्थ है। राजन्, विशुद्ध भाव से योग्य समय में योग्य पात्र को थोड़ा सा भी देने से अनन्त फल होता है। यहाँ पर एक पुरातन इतिहास कहा जाता है। जिस तरह द्रोण (एक माप) भर धान्य देने से महर्षि मुद्गल ने अनन्त फल प्राप्त किया सो मैं तुमसे कहता हूँ।

दो सौ साठ अध्याय

मुद्गल ऋषि का उपाख्यान

युधिष्ठिर ने कहा—हे ऋषिश्रेष्ठ, महात्मा मुद्गल ने किस तरह किसे द्रोण भर धान्य दिया, सो आप विस्तार के साथ मुझसे कहिए। मनुष्यों के धर्माधर्म को जाननेवाले अन्तर्यामी ईश्वर जिस धर्मात्मा के पुण्यकर्मों से सन्तुष्ट हों उसी का जन्म, मेरी समझ में, सफल है।

वेदव्यास ने कहा—राजन्, कुरुक्षेत्र में मुद्गल नाम के एक महात्मा ऋषि रहते थे। वे धर्मात्मा, जितेन्द्रिय और सत्यनिष्ठ थे। ईर्ष्या और क्रोध उन्हें छू तक न गया था। वे कटे हुए खेतों से, इधर-उधर गिरे पड़े, अन्न के दाने बीन लाते और उन्हीं से अपनी जीविका चलाते थे। वे कबूतर की तरह थोड़ा ही अन्न बीन लाते और उसी से अपना और अपने परि-

वार का भरण-पोषण करते थे। और, उसी अन्न से आये हुए अतिथियों का सत्कार भी करते थे। वे महातपस्वी पशुबलि-विहीन 'इष्टीकृत' यज्ञ भी नित्य करते थे। इसके सिवा अमावस और पूर्णिमा को दर्श तथा पौर्णमास नाम के यज्ञ भी करते थे। कपोतवृत्ति से अपना निर्वाह करनेवाले वे ब्राह्मण इस प्रकार एक पक्ष में द्रोण भर अन्न बीन लाते थे। उसी से देवता-पितर और अतिथि आदि की पूजा-सेवा करने के बाद जो कुछ बचता था, उसी को वे और उनकी स्त्री तथा पुत्र खाते थे। साक्षात् इन्द्र, देवताओं के साथ, हर पर्व में आकर उनके यज्ञ का भाग लेते थे। महर्षि मुद्गल मुनि-वृत्ति से अपना निर्वाह करते हुए प्रत्येक पर्व के समय प्रसन्नतापूर्वक अतिथियों को भोजन कराते थे। वे महात्मा ऋषि श्रद्धा के साथ प्रसन्नतापूर्वक अन्न-दान करते थे इस कारण वह द्रोण भर अन्न, देने से, बढ़ता जाता था—घटता नहीं था। चित्त-शुद्धि के साथ दान करने के कारण मुद्गल ऋषि उस अन्न से सैकड़ों अतिथियों को भोजन कराते थे, इस
पर भी वह अन्न बढ़ता ही जाता था। १०

महर्षि मुद्गल के दान की महिमा सुनकर एक समय महर्षि दुर्वासा उनकी परीक्षा लेने को आये। वे सिर मुड़ाये, नङ्ग-धड़ङ्ग, पागलों का सा वेष बनाये, कठोर बचन कहते मुद्गल ऋषि के आश्रम में पहुँचे। उन्होंने मुद्गल से कहा—हे मुनिवर, मैं भोजन की इच्छा से तुम्हारे पास आया हूँ। मुद्गल ने अटल भक्ति और श्रद्धा के साथ दुर्वासा का स्वागत किया। पाद्य, अर्घ्य, आचमन के लिए जल देकर पहले उनकी पूजा की और फिर अतिथि-भक्त मुद्गल ने उन्मत्त भाव धारण किये हुए दुर्वासा को भूखा जानकर भोजन दिया। भूखे दुर्वासा ने मुद्गल का दिया हुआ वह स्वादिष्ट अन्न खाया। यहाँ तक कि दुर्वासा वह सब अन्न खा गये और मुद्गल ने वैसी ही श्रद्धा से सब खिला दिया। भोजन करने के बाद दुर्वासा ने सब जूठन अपने शरीर भर में लगा ली और फिर वे वहाँ से चले गये। इसी प्रकार दूसरे पर्व के समय फिर दुर्वासा

आये और सब अन्न खाकर चले गये। मुद्गल फिर परिवार सहित भूखे रह गये और उसी तरह अन्न के दाने बीनकर जमा करने लगे। भूख, क्रोध, खीझ, अपमान, घबराहट आदि किसी

२० कारण से वे महात्मा अपने व्रत से विचलित नहीं हुए। उनकी स्त्री और पुत्र के मन में भी किसी प्रकार का विकार नहीं उत्पन्न हुआ। महर्षि दुर्वासा इसी तरह छः दफे आये और हर पर्व में सब अन्न खाकर चले गये। महर्षि मुद्गल भी उन्हें भोजन कराकर फिर अन्न बीनने में लग जाते थे। उनके मन में किसी प्रकार का विकार नहीं पैदा हुआ। वे जितेन्द्रिय थे, उनका अन्तःकरण शुद्ध था, इस कारण वे बारम्बार अधिक श्रद्धा और शान्ति के साथ दुर्वासा को भोजन कराते थे।

तब दुर्वासा ने मुद्गल पर अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—मुनिवर, इस लोक में तुम्हारे समान ईर्ष्या-रहित दाता कोई दूसरा नहीं है। भूख ऐसी बुरी चीज़ है कि धर्म के ज्ञान को मिटा देती है और धैर्य को नष्ट कर देती है। जीभ भी विषयों का अनुसरण करती है; मनुष्य के मन को रस की ओर खींचती है। भोजन से ही मनुष्य के प्राणों की रक्षा होती है। मन भी अत्यन्त चञ्चल है; उसे वश में रखना बड़ा ही कठिन काम है। मन और इन्द्रियों को एकाग्र तथा अपने वश में करना ही निश्चित रूप से तप कहलाता है। परिश्रम करके प्राप्त की हुई वस्तु को खुशी से दे डालना बहुत ही कठिन है। हे साधुश्रेष्ठ, तुम इन बातों में पूरी सिद्धि पा चुके हो। मैं तुमसे मिलकर बहुत प्रसन्न और अनुग्रहीत हुआ। इन्द्रियजय, धैर्य, अन्न आदि बाँट देना, दम, शम, दया, सत्य और धर्म, ये सब श्रेष्ठ गुण तुममें पूरे-पूरे देख पड़ते हैं। तुमने अपने कर्मों से सब शुभ लोकों को जीत लिया है। तुम सहज ही मुक्ति के अधिकारी हो चुके हो। अहो, कैसे आश्चर्य की बात है कि स्वर्गवासी देवता भी तुम्हारे दान की बड़ाई करते हुए उसकी घोषणा कर रहे हैं! हे सच्चरित्र ब्राह्मण, तुम इसी शरीर से स्वर्ग जाओगे।

महर्षि दुर्वासा के यों कहते ही एक देवदूत, सुन्दर विमान लेकर, मुद्गल के सामने
३० आ गया। उस रथ में दिव्य हंस और सारस जुते हुए थे। चारों ओर किङ्किणी-जाल की मालाएँ पड़ी हुई थीं। चाहे जहाँ जा सकनेवाले उस दिव्य विमान में अगुरु-धूप-चन्दन आदि की सुगन्ध छाई हुई थी। वह विचित्र विमान लाकर देवदूत ने मुद्गल से कहा—

ब्रह्मन्, आप अपने कर्मों से परम सिद्धि पा चुके, इसलिए इस विमान पर बैठकर देवलोक को चलिए। यह सुनकर मुद्गल ने कहा—हे देवदूत, मैं स्वर्गवासियों के गुण तुम्हारे मुँह से सुनना चाहता हूँ ? स्वर्ग में रहनेवाले किन गुणों के अधिकारी होते हैं ? उनका तप (ज्ञान) और सिद्धान्त क्या है ? स्वर्ग में सुख क्या है और दोष क्या है ? सज्जन कुलीन लोग सात पग एक साथ चलने पर परम्परा मित्र हो जाते हैं। वैसी ही मित्रता को मानकर मैं मित्रभाव से तुमसे ये बातें पूछता हूँ। इस विषय में जो सत्य और उपयोगी हो वह, बिना सोच-विचार किये, तुम मुझसे कह दो। तुम्हारे उत्तर को सुनकर मैं फिर स्वर्ग जाने के सम्बन्ध में निश्चय करूँगा। ३६

दो सौ एकसठ अध्याय

मुद्गल का देवदूत से स्वर्ग के गुण-दोषों का विवरण सुनकर, उसे सुखमय न समझ,
वहाँ जाना अस्वीकार करना और विष्णु-पद पाने का प्रयत्न करना

देवदूत ने कहा—ऋषिवर, आप बहुत ही भोले-भाले हैं। लोग स्वर्गलोक पाने से आदरणीय होते हैं; उसी स्वर्गलोक को जाने के बारे में आप मूर्खों की तरह सोच-विचार कर रहे हैं ! हे मुनिवर, वह स्वर्गलोक ऊपर स्थित है। वह उर्ध्वगामी है और शुभ मार्ग (ब्रह्ममार्ग) से युक्त है। स्वर्गलोक के मार्गों में सदा देवताओं के विमान विचरा करते हैं। हे मुद्गल, जिन लोगों ने कठिन तप नहीं किया, महायज्ञ नहीं किये, जो लोग सत्य से हीन और नास्तिक हैं वे वहाँ नहीं जा सकते। धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, शान्त, दमनिरत, मत्सर-हीन, दान करनेवाले, शूर, शुभ लक्षणों और गुणों से युक्त लोग, महापुरुषों के अनुगामी होकर शम-दमरूपी श्रेष्ठ धर्मों का आचरण करके, पुण्यात्मा पुरुषों के लोकों में जाते हैं। उस स्वर्गभूमि में देवता, साध्य, महर्षि, याम-धामगण, गन्धर्व और अप्सरा आदि के काम-भोगयुक्त, तेजोमय, शुभ लोक अलग-अलग देख पड़ते हैं। वहाँ सोने का पर्वत-राज सुमेरु है। उसका घेरा तेंतीस हज़ार योजन का है। उस पर्वत पर पुण्यात्माओं के विचरने और विहार करने के लिए नन्दन आदि श्रेष्ठ और पवित्र बाग़ लगे हुए हैं। वहाँ भूख-प्यास, उदासी, गर्मी-जाड़ा, डर, बीभत्स दृश्य, रोग या और कोई अशुभ भाव नहीं देख पड़ता। वहाँ का वायु सुगन्धित, मन को हरनेवाला और शरीर में लगकर सुख को बढ़ानेवाला है। वहाँ के शब्द कानों को सुख पहुँ- १०
चानेवाले, मधुर और मनोहर हैं। वहाँ शोक, बुढ़ापा, परिश्रम और रोना-धोना नाम को भी नहीं है। हे मुद्गल, वह स्वर्गलोक ऐसा है। वहाँ जाकर मनुष्य अपने शुभकर्मों का फल भोगते हैं। लोग अपने पुण्यकर्मों के फल से ही वहाँ जा सकते हैं। वहाँ रहनेवालों के शरीर तेजोमय होते हैं। वे शरीर पिता-माता के संयोग से नहीं, अपने कर्मों से ही उत्पन्न होते हैं।

हे मुनिवर, उन शरीरों से पसीना नहीं निकलता, दुर्गन्ध नहीं आती। वे लोग मल-मूत्र-त्याग नहीं करते। न तो उन लोगों के कपड़े धूल से मैले होते हैं और न उनकी दिव्य गन्धवाली रमणीय मालाएँ कुम्हलाती हैं। वहाँ के निवासी विमानों पर ही इधर-उधर फिरते हैं। वे ईर्ष्या, शोक, थकन, मोह, मत्सर आदि से रहित होकर आराम से स्वर्ग में रहते हैं। इन्द्रलोक के ऊपर इन दिव्य गुणों से युक्त और भी अनेक पुण्यलोक हैं। भगवन्, इस प्रकार के सब लोकों के ऊपर ब्रह्मलोक है। उस तेजोमय शुभलोक में वे ऋषि जाते हैं जो अपने शुभ कर्मों से सर्वथा पवित्र हो जाते हैं। वहाँ ऋभु नाम देवताओं के लोक हैं। वे देवताओं के भी देवता हैं, अर्थात् देवगण भी उनका लोक पाने को उनकी पूजा और आराधना करते हैं। उनके लोक स्वयं प्रकाशमान और यथेष्ट इच्छाओं के पूर्ण करनेवाले हैं। उन देवताओं को स्त्रीजनित ताप (काम भोग की इच्छा) और ऐश्वर्य से उत्पन्न होनेवाला मत्सर (ईर्ष्या) नहीं सताता। वे आहुति या अमृत का आहार नहीं करते। उनके शरीर दिव्य ज्योति-स्वरूप हैं; उनका कोई आकार नहीं है। वे सनातन देव देवताओं के भी देवता हैं। सुख की इच्छा न रखने पर भी वे सदा सुखी रहते हैं। कल्पान्त में भी वे नहीं बदलते। बुढ़ापा, मृत्यु, हर्ष, प्रीति, सुख, दुःख, राग, द्वेष आदि कुछ भी उनमें नहीं है। हे मुद्गल, इस शुभ गति को देवता लोग भी चाहते हैं। विषय-वासना के वशीभूत लोग इस परम सिद्धि को नहीं पा सकते। इन देवताओं के तेंतीस लोक हैं। बुद्धिमान् लोग श्रेष्ठ धर्म के नियमों का पालन करके अथवा विधिपूर्वक दान करके इन लोकों को पाते हैं। मुनिवर, आपने दान-धर्म के कारण सहज ही वह सुखदायक स्थान और सिद्धि प्राप्त कर ली है। अपने तप के तेज से सब लोकों को प्रकाशित करते हुए आप चलिए और पुण्य-लोकों में चलकर सुख भोगिए।

हे विप्र, यही स्वर्गभूमि का सुख है और वहाँ के ये ही अनेक प्रकार के लोक हैं। मैंने आपके आगे स्वर्गलोक के गुणों का वर्णन कर दिया; अब दोष भी सुनिए। देवलोक में जाकर जीव अपने किये हुए कर्मों का फल ही भोगते हैं; और कोई कर्म नहीं कर सकते। इस प्रकार केवल भोग करने के कारण जब पहले के पुण्य का फल घट जाता है तब उन्हें स्वर्गलोक से नीचे कर्म-भूमि में गिरना पड़ता है। मेरी समझ में, स्वर्गवास में यही एक बड़ा भारी दोष है। हे मुद्गल, लगातार सुख भोगनेवाले लोगों का वहाँ से नीचे गिरना अत्यन्त क्लेश की बात है। अपने से श्रेष्ठ लोक में रहनेवाले औरों के अतुल ऐश्वर्य या अभ्युदय को देखकर स्वर्गवासियों के हृदय में जो असन्तोष और सन्ताप होता है, वह भी एक भारी दोष है। स्वर्ग से नीचे गिरते समय वे लोग रजोगुण के आक्र-मण से ज्ञान-हीन और मोह के वशीभूत हो जाते हैं। उनके गले की दिव्य माला सूखने पर उनके हृदय में स्वर्ग से गिरने का डर उत्पन्न हो जाता है। हे मुद्गल, ब्रह्मलोक से लेकर नीचे के देवलोकों तक, नीचे गिरने के, ये दारुण दोष देख पड़ते हैं।

महाशय, स्वर्गलोक में रहते समय मनुष्यों में हज़ारों गुण देखे जाते हैं; किन्तु वहाँ से पतन होने पर भी यह एक श्रेष्ठ गुण देख पड़ता है कि स्वर्ग से गिरनेवाला जीव पहले के शुभ कर्मों के संस्कार से मनुष्य-योनि में उत्पन्न होता है। मनुष्य-लोक में आकर मनुष्य यदि सँभलकर नहीं चलता, अच्छे कर्म नहीं करता, तो फिर वह अधम योनियों में जाकर दारुण कष्ट सहता है। भगवन्, मतलब यह कि यह पृथ्वी ही कर्मभूमि है; स्वर्ग आदि लोक तो फल-भूमि हैं। [यहाँ जीव जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल परलोक में भोगता है।]

मुद्गल ने उस देवदूत से कहा—तुमने स्वर्ग के प्रधान दोषों का वर्णन कर दिया; अब ऐसा कोई लोक बताओ जहाँ किसी तरह का दोष न हो। देवदूत ने कहा—ब्रह्मलोक के ऊपर शुद्ध, सनातन, ज्योतिर्मय विष्णुपद है। उसी को लोग परब्रह्म कहते हैं। उस स्थान में दम्भ, लोभ, मोह, क्रोध, द्रोह और विषय-वासनाओं में लिप्त पुरुष नहीं जाते। ममता, अहंकार, द्वन्द्व आदि की बाधाओं से रहित, जितेन्द्रिय, ध्यान-योगपरायण पुरुष ही वहाँ जा सकते हैं। ब्रह्मन्, आपने जो पूछा था सो मैंने आपसे कह दिया। अब कृपा करके शीघ्र मेरे साथ चलिए—विलम्ब न कीजिए। ४०

व्यासजी कहते हैं—देवदूत से यह सब हाल सुनकर, विशेष रूप में विचार करके, मुद्गल ने कहा—हे देवदूत, मैं तुमको प्रणाम करता हूँ; अब तुम सुखपूर्वक स्वर्ग को लौट जाओ। मैं तुम्हारे कहे महादोषों का ख़याल करके इसी मनुष्यलोक में रहना चाहता हूँ। मैं न तो स्वर्ग जाऊँगा और न वहाँ के सुख भोगूँगा। स्वर्ग के निवासी, पुण्य क्षीण होने पर, इसी मनुष्य-लोक में गिरते हैं। स्वर्ग के भोग भोगकर वहाँ से गिरना बड़े ही दुःख और सन्ताप का कारण होता है; इसी लिए मैं स्वर्ग की इच्छा नहीं करता। जहाँ जाने से फिर गिरने का खटका नहीं रहता—शोक, दुःख या मानसिक सन्ताप नहीं भोगना पड़ता—वही स्थान खोजकर मैं उसे पाने की चेष्टा करूँगा।

हे युधिष्ठिर, यह कहकर मुद्गल ने देवदूत को बिदा कर दिया। वे फिर उसी प्रकार शिलोञ्छ-वृत्ति से अन्न बटोर लाकर अपनी जीविका चलाते हुए धर्म का पालन करने लगे। उत्तम शान्तिगुण का सहारा लेकर वे विष्णुपद पाने का प्रयत्न करने लगे। निन्दा और स्तुति को समान मानकर सोने और मिट्टी को वे बराबर समझने लगे। इस प्रकार ज्ञानयोग के साथ परम समाधि का आश्रय लेने से उनकी बुद्धि निर्मल हो गई। अन्त को योग-बल से उन्हें मोक्ष की परम सिद्धि प्राप्त हो गई। इसलिए हे धर्मराज, तुम राज्य से भ्रष्ट होने के कारण शोक मत करो। तुम तप के बल से फिर अपना राज्य पाओगे। देखो, पहिये के आरों की तरह दुःख के बाद सुख का और सुख के बाद दुःख का फेरा हुआ ही करता है। हे युधिष्ठिर, तेरहवाँ वर्ष बीतने पर तुम फिर अपने पिता का राज्य पाओगे। इसलिए मानसिक चिन्ता और दुःख छोड़ दो। हे जनमेजय, महर्षि व्यासदेव युधिष्ठिर को यों समझाकर फिर तप ५१
करने के लिए अपने आश्रम को चले गये।

द्रौपदी-हरणपर्व

दो सौ बासठ अध्याय

दुर्वासा मुनि का दुर्योधन के यहाँ जाना

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, महात्मा पाण्डव लोग महर्षियों से तरह-तरह की मनोहर कथाएँ सुनकर अपने चित्त को प्रसन्न कर रहे थे। सूर्य से उनको एक ऐसी थाली मिल गई थी, जो द्रौपदी के भोजन करने के पहले तक यथेष्ट अन्न देती थी। उस थाली की सहायता से, और तरह-तरह के जंगली मृगों का शिकार करके उनके मांस से, पाण्डव लोग ब्राह्मणों का और अन्य अतिथि-अभ्यागतों का सत्कार करके थे। कृपा कर कहिए, उस समय दुःशासन, कर्ण और शकुनि की सलाह पर चलनेवाले दुष्ट-प्रकृति दुर्योधन आदि ने उनके साथ कैसा व्यवहार किया ? यह वृत्तान्त सुनने की मुझे बड़ी इच्छा है।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, पाण्डव लोग नगर की तरह वन में भी सुखपूर्वक रहते
हैं, उन्हें किसी तरह की कमी नहीं है, यह खबर पाकर दुर्योधन को बड़ी बेचैनी हुई। उसने
फिर उन्हें कष्ट पहुँचाने का इरादा किया। वह कर्ण, शकुनि, दुःशासन आदि दुष्ट मन्त्रियों के
साथ मिलकर इसके लिए उपाय सोचने लगा। इसी बीच में घूमते हुए महायशस्वी, तपस्वी,
धर्मात्मा, परम क्रोधी महर्षि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्यों को साथ लिए हुए दुर्योधन के यहाँ
आये। उसने विनयपूर्वक अधीनता और सन्तोष का भाव दिखाकर मुनिवर को भोजन का
निमन्त्रण दिया। भाइयों सहित दुर्योधन ने विधिपूर्वक उनकी पूजा की और दास की तरह
खड़े रहकर उनकी सेवा और सत्कार का प्रबन्ध किया। मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा कई दिन तक दुर्योधन
१० के यहाँ ठहरे। दुर्योधन भी बड़ी मुस्तैदी से दिन-रात उनकी सेवा में लगा रहा। कारण यही
था कि उसे शंका थी कि तनिक सी असावधानी होते ही क्रोधी मुनि शाप दे देंगे। [दुर्वासाजी
भी परीक्षा लेने के लिए तरह-तरह से दुर्योधन को हैरान करने लगे।] कभी वे "राजन्, मुझे
बड़ी भूख लगी है, शीघ्र भोजन दो" कहकर नहाने चले जाते और फिर बहुत देर में लौटकर आते
थे। कभी यह कहकर चल देते थे कि "आज मुझे भूख नहीं है, मैं भोजन नहीं करूँगा" और
फिर अकस्मात आकर कहते थे कि "मुझे और मेरे शिष्यों को शीघ्र भोजन कराओ।" कभी आधी
रात को उठकर पहले की तरह भोजन तैयार कराकर फिर भोजन नहीं करते थे; उलटे दुर्योधन को ही
बुरा-भला कहने लगते थे।

महर्षि दुर्वासा के ऐसे व्यवहार से भी जब दुर्योधन को क्रोध नहीं आया, मन में कुछ विकार भी नहीं उत्पन्न हुआ, तब कठिनाई से क़ाबू में आनेवाले मुनि ने प्रसन्न होकर उससे कहा—हे भरत-कुल-तिलक, तुम्हारा भला हो। तुम अपनी इच्छा के अनुसार धर्म-सङ्गत वरदान मुझसे माँगो। मेरे प्रसन्न होने पर कोई बात तुम्हें दुर्लभ नहीं है।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, दुर्योधन ने कर्ण और दुःशासन आदि के साथ पहले से ही सलाह कर ली थी कि दुर्वासा ऋषि जब प्रसन्न होकर वरदान के लिए कहेंगे तब उनसे क्या माँगना होगा। महर्षि दुर्वासा के मुँह से वरदान माँगने के लिए ये वचन सुनकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ। मरकर फिर जी उठने से मनुष्य को जैसा हर्ष हो सकता है वैसा ही हर्ष उसको हुआ। दुर्योधन ने हाथ जोड़कर कहा—भगवन्, हमारे कुल में महाराज युधिष्ठिर ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं। वे गुणी, सच्चरित्र और सुशील हैं। वे धर्मात्मा २०
इस समय स्त्री और भाइयों सहित वन में रहते हैं। मैं आपसे यही वर माँगता हूँ कि जैसे आप शिष्यों सहित पधार कर मेरे अतिथि हुए हैं वैसे ही जाकर उनके भी अतिथि हों। यदि आप मुझ पर कृपा करना चाहते हैं तो ऐसे समय जाकर अतिथि हूजिए, जब सुकुमारी यशस्विनी द्रौपदी सब ब्राह्मणों को और पतियों को खिला-पिलाकर आप भोजन करके सुखपूर्वक बैठी विश्राम कर रही हो।

"तुम्हारी प्रसन्नता के लिए मैं यही करूँगा", यों कहकर महर्षि दुर्वासा यथेष्ट स्थान को चले गये। दुर्योधन अपने को कृतार्थ समझकर ख़ुशी से उछल पड़ा। उसने प्रसन्नता प्रकट करके कर्ण से हाथ मिलाया [भाव यह था कि बस बाजी मार ली]। कर्ण ने दुःशासन आदि के सामने दुर्योधन से कहा—हे भरतकुलश्रेष्ठ, बड़े भाग्य की बात है कि तुम्हारा काम बन गया। अब अवश्य तुम्हारा और भी अभ्युदय होगा। बड़ी ख़ुशी की बात है कि तुम्हारे शत्रु सङ्कट के समुद्र में डूब गये। महर्षि दुर्वासा को भोजन न करा सकने के कारण, उनके क्रोध की आग में पड़कर, पाण्डव लोग भस्म हो जायँगे। अपने ही महापाप के कारण उन्हें अनन्त नरक-यातना भोगनी पड़ेगी।

वैशम्पायन कहते हैं—कपट में प्रवीण दुर्योधन आदि इस प्रकार आपस में बातचीत कर हँसते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने घर गये। २८

दो सौ तिरसठ अध्याय

श्रीकृष्ण की कृपा से दुर्वासा ऋषि की तृप्ति

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इसके बाद एक समय, जब पाण्डव लोग भोजन करके द्रौपदी के साथ आराम से बैठे हुए थे तब महर्षि दुर्वासा दस हजार शिष्यों के साथ उनके स्थान पर पहुँचे। अतिथि को आते देखकर श्रीमान् युधिष्ठिर भाइयों के साथ अपने आसन से उठ खड़े हुए और आगे बढ़कर महर्षि को ले आये। फिर आसन पर बैठाकर, विधिपूर्वक उनकी पूजा करके, युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर कहा—ब्रह्मन्, स्नान-संध्या आदि दिन के आवश्यक कर्म समाप्त करके आइए और भोजन कीजिए। दुर्वासा तो इसलिए आये ही थे, उन्होंने यह विचार भी नहीं किया कि इस समय युधिष्ठिर मुझे और मेरे दस हज़ार शिष्यों को किस तरह कहाँ से भोजन करावेंगे। वे उसी समय शिष्यों के साथ नहाने को नदी-तट पर गये। सब मुनि जल में गोता लगाकर एकाग्रभाव से ध्यान करने लगे।

इधर पतिव्रता द्रौपदी बड़े असमञ्जस में पड़ गईं। बहुत सोच-विचार करने पर भी जब उन्हें अन्न प्राप्त करने का कोई उपाय न सूझ पड़ा, तब वे घोर चिन्ता में पड़कर अशरण-शरण श्रीकृष्ण का स्मरण करने लगीं। द्रौपदी मन में कहने लगीं—कृष्ण-कृष्ण! हे महाबाहु, हे देवकी-नन्दन, अच्युत, वासुदेव, जगदीश्वर, प्रणत पुरुषों के सङ्कट काटनेवाले, विश्वरूप, विश्व के विधाता, विश्व का संहार करनेवाले, प्रभु, प्रणतपाल, गोपाल, प्रजापालक! तुम सबसे परे परमात्मा हो।
१० आकूति और चित्ति नाम की चित्त की वृत्तियों के प्रवर्त्तक तुम्हीं हो। मैं तुमको प्रणाम करती हूँ। तुम श्रेष्ठ, वर देनेवाले, अनन्त और जिनको किसी का सहारा नहीं है उनको सहारा देनेवाले हो। हे पुराणपुरुष, प्राण और मन की वृत्तियाँ तुम तक पहुँच ही नहीं सकतीं। हे सबके स्वामी, हे सबसे बढ़कर स्वामी! मैं तुम्हारी शरण में आई हूँ। हे शरणागत-वत्सल देव! कृपा करके मेरी रक्षा करो। नीलकमल-दल के समान श्याम शरीरवाले, कमलकोष के समान लाल आँखोंवाले, पीताम्बर और कौस्तुभमणि धारण करनेवाले! सब प्राणी तुम्हीं से उत्पन्न होकर तुम्हीं में लीन हो जाते हैं। तुम्हीं सबकी परम गति हो। तुम परम से भी परम ज्योति, विश्वात्मा और सर्वतोमुख अर्थात् सर्वव्यापी हो। पण्डित जन तुम्हें ही इस जगत् का परम बीज और सब ऐश्वर्यों का आकर कहते हैं। हे देवेश! तुम हमारे नाथ हो, इसलिए हम लोग सारी आपत्तियों से नहीं डरते। हे नाथ! पहले कुरु-सभा में तुमने जैसे दुःशासन के हाथ से मेरी रक्षा की थी, वैसे ही इस सङ्कट से भी मुझे उबारिए।

वैशम्पायन कहते हैं—द्रौपदी ने भक्तवत्सल भगवान् की इस प्रकार स्तुति की। देव-देव जगदीश्वर जान गये कि इस समय द्रौपदी पर सङ्कट आ पड़ा है। अचिन्त्य-गति श्रीकृष्ण उस समय पलँग पर रुक्मिणी के पास लेटे थे, सो उन्हें वहीं छोड़कर आप दौड़े हुए द्रौपदी के

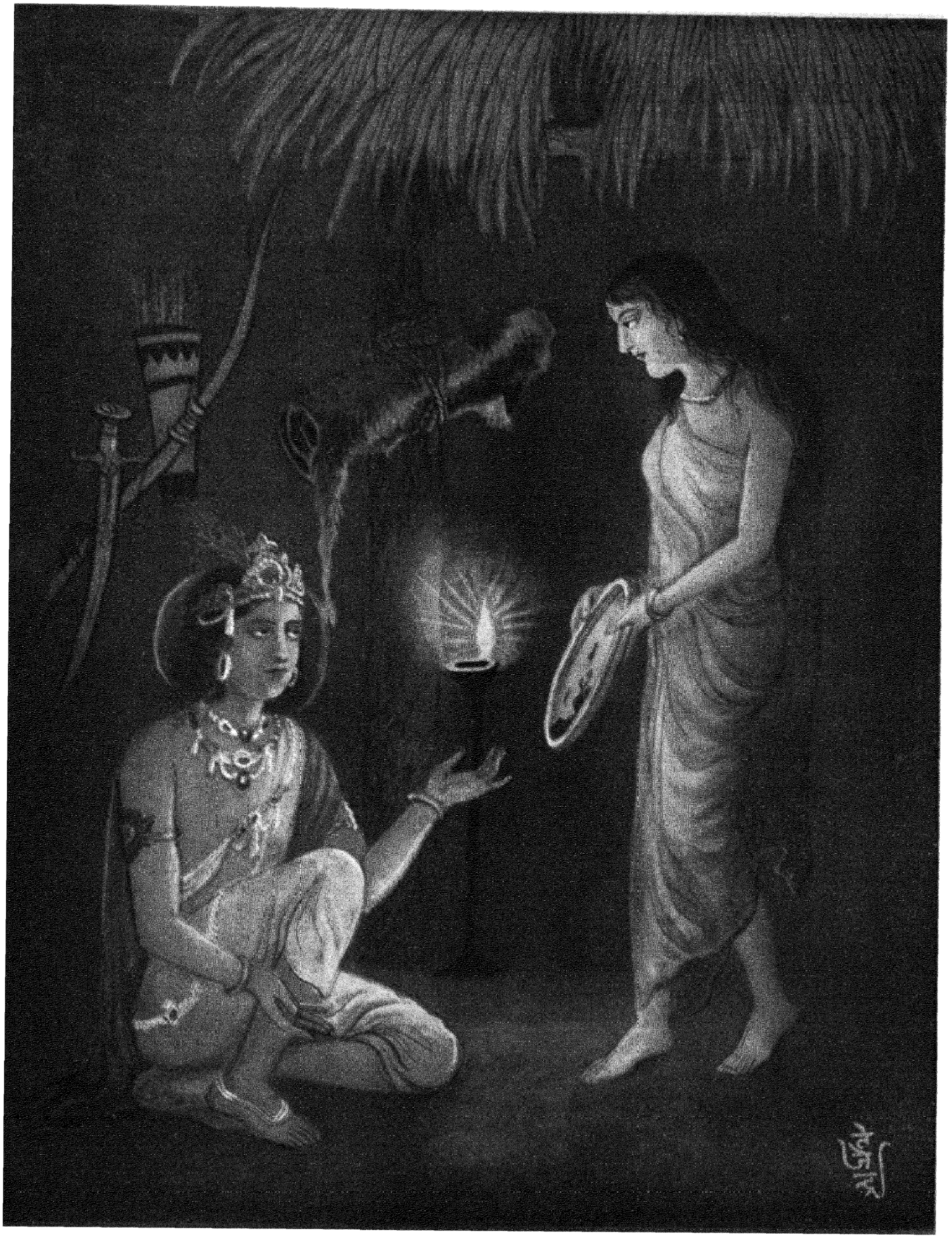

उस थाली के किनारे एक कण भर साग लगा हुआ था। पृ० १२४३

पास पहुँच गये। उन्हें देखते ही द्रौपदी के हर्ष का ठिकाना न रहा। द्रौपदी ने प्रणाम करके दुर्वासा के आने का सब हाल कह सुनाया। श्रीकृष्ण ने कहा—पाञ्चाली, मैं बहुत थका हुआ और भूखा हूँ; इसलिए पहले मुझे जल्दी भोजन कराओ, पीछे और सब प्रबन्ध करती रहना। २०

श्रीकृष्ण के यों कहने से द्रौपदी बहुत ही लज्जित हुईं। उन्होंने कहा—प्रभो, जब तक मैं भोजन नहीं करती तभी तक सूर्यनारायण की दी हुई बटलोही में अन्न रहता है, फिर कुछ नहीं रहता। इस समय मेरे भोजन कर चुकने के कारण उस बटलोही में कुछ भी नहीं है। तब कमलनयन कृष्णचन्द्र ने द्रौपदी से कहा—द्रौपदी, देखो, मैं भूखा और थका हुआ हूँ; इसलिए यह दिल्लगी करने का समय नहीं है। जल्द जाओ, बटलोही लाकर मुझे दिखाओ।

श्रीकृष्ण का अधिक आग्रह देखकर द्रौपदी वह बटलोही उठा लाईं। उस बटलोही की कगर में एक कण भर साग लगा हुआ था। श्रीकृष्ण ने उसे ही लेकर खा लिया और कहा—इससे विश्वरूप और यज्ञ के अधिपति देव प्रसन्न और तृप्त हों। इसके बाद कष्टनाशन श्रीकृष्ण ने भीमसेन से कहा—जाओ, ब्राह्मणों को शीघ्र भोजन के लिए बुला लाओ।

दुर्वासा और उनके शिष्य देवनदी में नहाने गये थे। उन्हें भोजन के लिए बुलाने को वहाँ भीमसेन गये। सब ब्राह्मण जल में ग़ोता लगाकर "अघमर्षण" कर रहे थे। उसी समय उन्हें [अजीर्ण की] डकार आई। उन्हें जान पड़ा कि वे ख़ूब डटकर भोजन कर चुके हैं। जल से बाहर निकलकर परस्पर एक दूसरे की ओर देखकर उन मुनियों ने महात्मा दुर्वासा से कहा—भगवन्, हम लोग युधिष्ठिर से भोजन-सामग्री तैयार करने के लिए कहकर यहाँ नहाने को आये थे; किन्तु इस समय अचानक हम ऐसे तृप्त हो गये हैं कि गले तक भोजन भरा हुआ है। अब हम लोग वहाँ चल- ३०
कर क्या भोजन करेंगे? हम लोगों ने व्यर्थ रसोई बनवाकर पाण्डवों का अन्न ख़राब करवाया। अब क्या करें?

दुर्वासा ने कहा—इसमें तो सन्देह नहीं कि वृथा रसोई बनवाकर हमने राजर्षि युधिष्ठिर का बड़ा भारी अपराध किया है। अब ऐसा उपाय करना चाहिए जिसमें प्रतापी पाण्डव क्रूर दृष्टि

से देखकर हम पर रुष्ट न हो जायँ। राजर्षि अम्बरीष का प्रभाव मुझे याद है। तब से मैं हरिचरणानुरागी भक्तों से बहुत डरता हूँ। पाण्डव लोग महात्मा, धर्मात्मा, शूर, विद्वान्, सच्चरित्र, तपस्वी, सदाचारी और भगवान् के परम भक्त हैं। आग जैसे रूई के ढेर को जला देती है वैसे ही क्रुद्ध होने पर वे लोग सहज ही हमें भस्म कर सकते हैं। इसलिए आओ, उनसे बिना पूछे ही हम लोग झट-पट भाग चलें।

वैशम्पायन कहते हैं— गुरु महर्षि दुर्वासा के यों कहने पर वे सब ब्राह्मण पाण्डवों के डर से इधर-उधर भाग गये। उधर भीमसेन ने देवनदी के तट पर जाकर दुर्वासा आदि को जब न देखा तब वे सब घाटों पर इधर-उधर उनकी खोज करने लगे। अन्त को वहाँ के निवासी तपस्वियों के मुँह से दुर्वासा और उनके शिष्यों के भाग जाने का हाल सुनकर भीमसेन लौट पड़े। युधिष्ठिर के पास जाकर उन्होंने सब हाल कह सुनाया। जितेन्द्रिय पाण्डव कुछ समय तक दुर्वासा के लौटकर आने की राह देखते रहे। इसके बाद वे लोग बारम्बार यह सोचकर लम्बी साँसें लेने लगे कि आधी रात को या न जाने किस
४० समय अचानक आकर दुर्वासा हमको धोखा देंगे। हाय! हम लोग दैव की भेजी हुई इस विपत्ति से कैसे छुटकारा पावेंगे!

पाण्डवों को यों चिन्तित देखकर श्रीकृष्ण ने कहा—हे महाभाग पाण्डवो, द्रौपदी के स्मरण करने से मैं शीघ्र यहाँ आया हूँ। क्रोधी दुर्वासा के द्वारा तुम पर जो विपत्ति आनेवाली थी उसे जानकर उसका प्रतीकार करने के लिए ही मैं आया था; किन्तु अब दुर्वासा से तुम्हें तिल भर भी खटका नहीं है। वे खुद तुम्हारे तेज और प्रताप से डरकर भाग गये हैं। जो लोग सदा धर्म का पालन करते रहते हैं वे कभी संकट में नहीं फँसते। तुम्हारा नित्य कल्याण हो। अब मैं अपनी नगरी को जाता हूँ।

द्रौपदी सहित पाँचों पाण्डव श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर सुस्थ हुए, उनके चित्त से चिन्ता जाती रही। उन्होंने कहा—हे गोविन्द, महासागर में डूबते हुए मनुष्य जैसे जहाज़ पाकर उसके सहारे उबर जाते हैं, वैसे ही तुम्हारी सहायता पाकर हम लोग इस दुस्तर विपत्ति के सागर में डूबने से बच गये। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम अपनी नगरी को जाओ।

हे जनमेजय, इस प्रकार पाण्डवों से पूछकर यदुपति श्रीकृष्ण अपनी नगरी को गये। उधर पाँचों पाण्डव भी द्रौपदी को साथ लिये एक वन से दूसरे वन में विचरते हुए वनवास का अन्तिम वर्ष बिताने लगे। धृतराष्ट्र के पुत्रों ने इस प्रकार कपट करके पाण्डवों को विपत्ति में डालने के लिए जो जाल फैलाया था, वह निष्फल हो गया। राजन्, तुमने जो पूछा था, सो
४९ सब मैंने तुमको सुना दिया।

दो सौ चौंसठ अध्याय

जयद्रथ का द्रौपदी को देखना और पता लगाने के लिए कोटिक को भेजना

वैशम्पायन कहते हैं—हे भरतश्रेष्ठ, इन्द्र-तुल्य प्रतापी महारथी पाण्डव लोग इस प्रकार इधर-उधर वनों में, सब ऋतुओं में रमणीय, फूले हुए वृक्षों की शोभा देखते और शिकार खेलते रहते थे। बहुत मृगों से पूर्ण काम्यक वन में वे देवताओं की तरह घूमते फिरते थे।

महर्षि तृणबिन्दु और महातपस्वी पुरोहित धौम्य की आज्ञा के अनुसार ब्राह्मण-भोजन के लिए मृगों का शिकार करने को पाँचों पाण्डव एक समय चारों दिशाओं में गये। आश्रम में द्रौपदी अकेली ही रह गई। जिस समय पाँचों पाण्डव शिकार करने गये थे उसी समय, सिन्धु देश का राजा, जयद्रथ राजसी पोशाक और गहने पहने हुए विवाह करने के लिए शाल्वेय देश को जा रहा था। उसके साथ बहुत से राजा थे। वह उसी काम्यक वन में आकर पहुँचा; उधर से ही उसके जाने की राह थी। उस समय अद्वितीय सुन्दरी द्रौपदी उस निर्जन वन में अपने आश्रम के पास खड़ी हुई थीं। बिजली की चमक से जैसे श्याम घन की शोभा होती है वैसे ही द्रौपदी के शरीर की कान्ति से वह सारा वन जगमगा रहा था। जयद्रथ और उसके साथी द्रौपदी को एकटक निहारते हुए मन में तर्क-वितर्क करने लगे कि यह कोई अप्सरा है, या देवकन्या है, अथवा देवनिर्मित मनोमोहिनी माया है! १०

परमसुन्दरी द्रौपदी को देखकर जयद्रथ बहुत चकराया। वह देखते ही कामदेव के वश हो मोहित हो गया। उसके मन में बुरा विचार उत्पन्न हो गया। उसने अपने साथी कोटिकास्य नाम के राजा से कहा—यह त्रिभुवन-सुन्दरी कौन है? किसकी स्त्री है? जान पड़ता है, यह मानुषी नहीं है। इस अत्यन्त सुन्दरी स्त्री को देखकर अब मेरा विवाह करने का विचार जाता रहा। मुझे अब और स्त्री से ब्याह करने की ज़रूरत नहीं। मैं इसी को लेकर अपने नगर को लौट जाऊँगा। हे सौम्य, जाकर यह पता लगाओ कि यह बाँकी भौंहोंवाली सुन्दरी किसकी बेटी और किसकी स्त्री है। यह कहाँ से किसलिए इस कण्टक-पूर्ण दुर्गम वन में आई है? यह भी जान लो कि यह सुन्दर मुखवाली, सुन्दर दाँतोंवाली, पतली कमरवाली, त्रिभुवन-सुन्दरी मुझे स्वीकार करेगी या नहीं। मैं इस श्रेष्ठ स्त्री को पाकर अपने मनोरथ को सफल कर सकूँगा या नहीं? हे कोटिक, जाकर पता लगाओ कि इस स्त्री का पति कौन है।

कुण्डल आदि गहने पहने हुए कोटिकास्य, जयद्रथ के यों कहने पर, अपने रथ से उतरकर वैसे ही द्रौपदी के पास गया और सब बातें पूछने लगा, जैसे सियार सिंहिनी के पास जाय। १७

दो सौ पैंसठ अध्याय

कोटिक का द्रौपदी से प्रश्न

कोटिक ने कहा—हे बाँकी भौंहोंवाली सुन्दरी! कदम्ब की डाल झुकाकर, रात्रि के समय पवन-सञ्चालित आग की लौ के समान प्रकाशमान, तुम इस आश्रम में अकेली खड़ी हो। तुम कौन हो? तुम्हारा रूप त्रिभुवन से निराला है। क्या इस वन में अकेले रहने से तुमको डर नहीं लगता? तुम किसी देवता, यक्ष, दानव या दैत्य की सुन्दरी स्त्री हो? या कोई श्रेष्ठ अप्सरा हो? तुम किसी नागराज की बेटी तो नहीं हो? या वन में रहनेवाले किसी राक्षस की स्त्री हो? सच बताओ, तुम वरुण, यमराज, चन्द्रमा अथवा कुबेर की, किसकी स्त्री हो? तुम धाता, विधाता, सूर्य, विष्णु या इन्द्र के भवन से, कहाँ से इस वन में आई हो? तुम सरस्वती, पार्वती, संज्ञा, लक्ष्मी या इन्द्राणी में से कौन हो? तुम हमसे हमारे बारे में कुछ नहीं पूछती हो कि हम कौन हैं और न हमीं को यह मालूम पड़ता है कि तुम्हारा स्वामी कौन है। भद्रे, हम लोग तुम्हारा मान बढ़ाते हुए तुमसे पूछते हैं कि तुम्हारा पिता कौन है और तुम्हारा पति कौन है। तुम अपने बन्धुओं, पति, कुल और जाति का परिचय देकर हमें बताओ कि यहाँ किस मतलब से क्या करने आई हो? हे सुन्दरी, मैं राजा सुरथ का पुत्र हूँ; मेरा नाम कोटिकास्य है। और देखो, कुण्ड में स्थित और आहुति पड़ने से प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी जो कमल-नयन वीर पुरुष सोने के पहियोंवाले रथ पर सवार देख पड़ते हैं, वे त्रिगर्तराज के पुत्र क्षेमङ्कर हैं। उनके बाद जो फूल-मालाएँ पहने, विशाल नेत्रोंवाले हाथ में महाधनुष लिये खड़े हुए तुमको देख रहे हैं वे पर्वत-निवासी कुलिंदनरेश के पुत्र हैं। उनके बाद जो श्यामवर्ण परमसुन्दर युवा पुरुष सरोवर के पास खड़े हैं वे इक्ष्वाकु देश के राजा सुभव के पुत्र हैं। वे दर्शनीय पुरुष युद्ध में शत्रुओं का नाश किया करते हैं। हे सुन्दरी, वह देखो सिन्धु-सौवीर देश के राजा जयद्रथ हैं। मैं समझता हूँ, तुमने उनका नाम सुना ही होगा। यज्ञ में प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी, सौवीर देश के बारह राजकुमार, लाल घोड़ोंवाले रथों पर बैठकर,
९ असंख्य सेना साथ लेकर, यात्रा के समय उनके पीछे-पीछे चलते हैं। अङ्गारक, कुञ्जर, गुप्तक, शत्रुञ्जय, सञ्जय, सुप्रवृद्ध, भयङ्कर, भ्रमर, रवि, शूर, प्रताप और कुहन, ये उन बारह राजकुमारों के नाम हैं। इनके सिवा छः हजार रथी, बहुत से पैदल, हाथी, घोड़े और बलाहक, अनीक, विदारण आदि महाबली नौजवान भाई भी महाराज जयद्रथ के साथ चलते हैं। मतलब यह कि अपने सहायकों, सेनापतियों और सैनिकों के साथ जब महाराज जयद्रथ चलते हैं तब वे देवताओं के बीच विराजमान इन्द्र के समान शोभित होते हैं। हे सुन्दर केशोंवाली, अब तुम भी बताओ कि तुम किसकी कन्या और किसकी स्त्री हो? हम तुमको नहीं जानते, इसी से
१४ पूछते हैं। हमें अपना परिचय दो।

दो सौ छाछठ अध्याय

द्रौपदी का कोटिकास्य को उत्तर

वैशम्पायन कहते हैं कि शिविवंश में उत्पन्न कोटिकास्य के यों पूछने पर उस कदम्ब की डाली का सहारा छोड़कर, अपने रेशमी दुपट्टे को सँभालकर और एक बार उसकी ओर देखकर राजपुत्री द्रौपदी ने कहा—हे राजपुत्र, मैं समझती हूँ कि मुझसी पतिव्रता स्त्री को तुमसे बात न करनी चाहिए। परन्तु यहाँ पर ऐसा कोई पुरुष या स्त्री नहीं, जो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे। इसलिए हे भद्र, मैं अकेली होने के कारण लाचार होकर, तुमसे बोलती हूँ। मैं अपने धर्म में निरत पतिव्रता हूँ; विशेषकर इस समय यहाँ पर तुम अकेले हो और मैं भी अकेली हूँ। इसलिए तुमसे बातचीत करना ठीक नहीं है किन्तु मैं तुमको जानती हूँ कि तुम सुरथ राजा के पुत्र कोटिकास्य हो; इसी कारण तुमको अपने कुल और बन्धुओं का परिचय देती हूँ—सुनो। हे शैब्य, मैं राजा द्रुपद की कन्या हूँ; मेरा नाम कृष्णा है। खाण्डवप्रस्थ में राज्य करनेवाले पाण्डवों का नाम तुमने अवश्य सुना होगा। उन्हीं युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव नाम के वीर पुरुषों के साथ मेरा ब्याह हुआ है। वे लोग इस समय, मुझे इस आश्रम में छोड़कर, शिकार के लिए वन में गये हैं। राजा युधिष्ठिर पूर्व दिशा को, भीमसेन दक्षिण दिशा को, अर्जुन पश्चिम दिशा को और नकुल-सहदेव उत्तर दिशा को गये हैं। अब उनके लौट आने का समय हो गया है। तुम लोग अपने वाहन खोलकर इस स्थान पर विश्राम करो। मेरे पति आकर अच्छी तरह तुम्हारा सत्कार करेंगे। महात्मा युधिष्ठिर बड़े अतिथि-भक्त हैं। वे तुम लोगों को देखकर बहुत प्रसन्न होंगे। अतिथि-सत्कार स्वीकार करने के बाद फिर तुम लोग यथेष्ट स्थान को चले जाना।

चन्द्रमुखी द्रौपदी इतना कहकर अतिथि-सत्कार की तैयारी करने के लिए अपनी पर्ण-
शाला के भीतर चली गईं। १

दो सौ सड़सठ अध्याय

जयद्रथ का द्रौपदी के पास जाना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, द्रौपदी से कोटिकास्य ने जो कुछ बातचीत की थी सो सब जयद्रथ से, सब राजाओं के सामने, जाकर कह दी। कोटिकास्य से सब हाल सुनकर जयद्रथ ने कहा—हे शैब्य उधर वह त्रिभुवन-सुन्दरी तुमसे बातचीत कर रही थी और इधर मेरा मन उस पर आसक्त हो रहा था। आश्चर्य है कि तुम उससे बातें करके भी कैसे ख़ाली लौट आये! वह तो ऐसी सुन्दरी है कि संसार भर में उसकी जोड़ नहीं निकलेगी। मैं सच कहता हूँ, जब से मैंने उसे देखा है

तब से और सुन्दरियाँ मुझे बँदरिया सी जान पड़ती हैं। नज़र पड़ते ही उसने मेरा मन हर लिया है। शीघ्र बताओ, वह मानुषी है कि नहीं ?

कोटिकास्य ने कहा—वह यशस्विनी पाण्डवों की प्यारी पत्नी और राजा द्रुपद की कन्या है। उसका नाम कृष्णा है। सब पाण्डव उसको बहुत मान और प्यार से रखते हैं। हे सौवीर-नरेश, उसे लेकर तुम झटपट अपने नगर की ओर चल दो। वैशम्पायन कहते हैं कि सिन्धु-सौवीर देश का राजा, दुष्टमति, जयद्रथ कोटिकास्य के ये वचन सुनकर कहने लगा—"मैं जाकर द्रौपदी को देखूँगा।" भेड़िया जैसे सिंह के स्थान में घुसे वैसे ही पाण्डवों के पवित्र आश्रम में प्रवेश करके उसने द्रौपदी से कहा—हे सुन्दरी, तुम मज़े में तो हो ? तुम्हारे स्वामी भी आरोग्य और कुशल-क्षेम से हैं न ? तुम जिनकी भलाई चाहती हो वे लोग सकुशल हैं ?

द्रौपदी ने कहा—हे सौवीर-नरेश ! राज्य, कोष, और सेनासहित तुम तो सकुशल हो ? समृद्धिसम्पन्न शिवि, सौवीर और सिन्धु देश तथा अन्य जिन देशों पर तुम्हारा अधिकार है वहाँ की प्रजा का पालन तुम धर्म और न्याय के अनुसार करते रहते हो न ? महाराज युधिष्ठिर, उनके चारों भाई, मैं और अन्य सब लोग—जिनके बारे में तुमने पूछा—कुशल से हैं। राजन्, यह पैर धोने के लिए जल और आसन लीजिए। प्रातःकाल के जलपान के लिए ये पचास मृग लीजिए। इसके सिवा महाराज युधिष्ठिर ख़ुद आकर ऐणेय, पृषत, न्यंकु, हरिण, शरभ, शश, ऋक्ष, रुरु, शम्बर, गवय आदि अनेक जाति के मृग और वराह, महिष आदि तुमको अर्पण करेंगे।

जयद्रथ ने कहा—प्रातःकाल के भोजन के लिए तुम सब कुछ मुझे दे चुकीं। आओ, मेरे रथ पर बैठो और चलकर मेरे साथ लगातार सुख भोगो। श्रीहीन, राज्य से भ्रष्ट, दीन, उत्साहहीन, वनवासी पाण्डवों का ख़याल छोड़ दो। उनका साथ देकर कष्ट भोगना तुम्हारे योग्य नहीं है। बुद्धिमती स्त्री कभी श्रीहीन स्वामी के साथ नहीं रहती। स्वामी के पास जब तक लक्ष्मी रहे तभी तक उसके साथ रहना चाहिए। जब लक्ष्मी उसे छोड़ दे तब स्त्री को भी उसका साथ छोड़ देना चाहिए। हे सुन्दरी, पाण्डव

लोग कई वर्षों से सदा के लिए लक्ष्मी और राज्य से भ्रष्ट हो गये हैं। उनकी भक्ति करके, उनके साथ रहकर, क्लेश सहना छोड़ो। उन्हें छोड़कर मेरी भार्या बनो। समूचे सिन्धु-सौवीर देश की महारानी बनकर मेरे साथ मजे से चैन करो। २०

हृदय को कँपा देनेवाले जयद्रथ के ये वचन सुनकर पतिव्रता द्रौपदी भौंहें टेढ़ी करके उस स्थान से हट गईं। उसकी बात पर अनादर प्रकट करके, उसे झिड़ककर, द्रौपदी ने कहा—ऐसी बात अब ज़बान से न निकालना! तुम्हें ऐसे वचन कहते लज्जा नहीं आती! द्रौपदी अपने स्वामियों के आने की प्रतीक्षा में जयद्रथ से उत्तर-प्रत्युत्तर करके उसे बिलमाने लगीं। वे चाहती थीं कि बातचीत में देर हो जाय और उसी बीच पाण्डवों में से कोई आ जाय। २३

दो सौ अड़सठ अध्याय

दौपदी का जयद्रथ को फटकारना

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, क्रोध के कारण द्रौपदी का सुन्दर मुख लाल हो आया। आँखों में ख़ून सा उतर आया। वे भौंहें टेढ़ी करके जयद्रथ से कहने लगीं—अरे मूढ़, यक्षों और राक्षसों से भी युद्ध करने में जो कभी विचलित नहीं हुए उन महेन्द्रतुल्य, अपने कर्त्तव्य कर्मों में निरत, तीक्ष्ण विषवाले नाग के समान क्रोधी, यशस्वी, महारथी पाण्डवों के लिए ऐसे कुवाक्य कहते तुझे लज्जा नहीं आती! तपस्वी, विद्वान् और पूजनीय पुरुष चाहे वनवासी हो और चाहे गृहस्थ, उसके लिए कटुवचन कहना आर्यों का धर्म नहीं है। इस तरह के कुवाक्य कहकर भूकना तुझ जैसे कुत्ता का काम है। जान पड़ता है, तेरे साथ की इस क्षत्रियमण्डली में ऐसा कोई तेरा हितचिन्तक आत्मीय नहीं है, जो हाथ पकड़कर तुझे पाताल में गिरने से बचा ले। अरे दुरात्मा, जैसे कोई मूर्ख पुरुष हिमालय पहाड़ के पास की भूमि पर विचरनेवाले पर्वत-शिखरतुल्य गजराज को, डण्डे से हाँककर, उसके झुण्ड से अलग कर लाना चाहे वैसे ही तू धर्मपुत्र युधिष्ठिर को जीतने की इच्छा प्रकट कर रहा है। जिस समय क्रोध में भरे हुए भीमसेन को तू देखेगा उस समय तुझे जान पड़ेगा कि सोये हुए महाबली सिंह को लात मारकर, उसकी गर्दन के बाल उखाड़कर तू भागने की चेष्टा कर रहा है। जब उग्र धनुषवाले अर्जुन क्रुद्ध होकर युद्ध करेंगे तब तेरी समझ में आवेगा कि पर्वत की कन्दरा में उत्पन्न और पले हुए, महाबली, सोये हुए भयङ्कर सिंह को तूने लात मारी है। जब पुरुष-श्रेष्ठ नकुल और सहदेव से तुझे युद्ध करना पड़ेगा तब तेरी समझ में आवेगा कि तीक्ष्ण विषवाले दो काले नागों की पूँछ पर तूने पैर रक्खा है! बाँस, केला या नारकुल में जैसे उनके नाश के लिए ही फल लगते हैं, अथवा केंकड़े की स्त्री जैसे अपनी मृत्यु के लिए ही गर्भवती होती है, वैसे ही तू भी अपने नाश के लिए मुझे—पाण्डवों के द्वारा सुरक्षित जानकर भी—हर ले जाना चाहता है।

जयद्रथ ने कहा—हे द्रौपदी, पाण्डवों का बल और पराक्रम मैं अच्छी तरह जानता हूँ।
१० तुम्हारे यों धमकाने से मैं डर नहीं सकता। मैं आठ कर्म*, नौ शक्ति† आदि गुण और शौर्य,
तेज, धैर्य, अनुकूलता, दान तथा ऐश्वर्य इन छः बातों से भूषित श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। इस
कारण मैं पाण्डवों को अपने से हीन समझता हूँ। तुम्हारी इन बातों से डरकर मैं तुम्हें छोड़ नहीं
सकता। तुम इस समय हाथी पर या रथ पर चढ़कर मेरे साथ चलो। मैं तुमसे सच कहता हूँ, जो इस
समय मेरा कहना न मानोगी तो अन्त को पाण्डवों के हारने पर फिर तुम्हें दीन वचन कहकर मेरे
आगे गिड़गिड़ाना पड़ेगा।

द्रौपदी ने कहा—महाबली पाण्डवों की पत्नी होने के कारण मैं महाबलशालिनी हूँ।
दुर्बल अबला की तरह मैं कैसे तेरा कहा मान सकती हूँ? तेरे अत्याचार करने पर भी मैं कभी
तेरे आगे दीन वचन नहीं कह सकती। एक रथ पर विराजमान श्रीकृष्ण और अर्जुन जिसकी
रक्षा करनेवाले हैं उस मुझको एक क्षुद्र मनुष्य की मजाल क्या है, जो ले जा सके; साक्षात्
इन्द्र भी नहीं हरकर ले जा सकते। शत्रुदमन अर्जुन रथ पर चढ़कर शत्रुओं के हृदय को
उत्साह-हीन करते हुए जब मेरे लिए तेरी सेना में प्रवेश करेंगे तब वे, गर्मियों में घास-फूस को आग
की तरह, तुझे और तेरी सेना को भस्म कर डालेंगे। अरे मूढ़, अन्धक और वृष्णिवंश के वीर
यादवों के साथ कृष्णचन्द्र और बड़े-बड़े धनुष धारण करनेवाले केकय देश के राजपुत्र मेरी रक्षा
करेंगे। अर्जुन के गाण्डीव धनुष की डोरी से छूटे हुए वेगशाली बाण बिजली की कड़क के
समान घोर शब्द करते हुए शत्रुसेना के भीतर जाते हैं। जब तू पराक्रमी अर्जुन को लगातार
शीघ्रगामी तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करते देखेगा तब अवश्य अपनी कुमति की निन्दा करेगा।
जब गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुन शङ्खनाद के साथ ताल ठोंककर बारम्बार तीक्ष्ण बाण
निकालकर तेरे हृदय में मारेंगे तब तेरे मन की क्या दशा होगी सो ज़रा सोचकर देख। रे अधम,
जब तू युद्धभूमि में गदा हाथ में लिये भीमसेन को दौड़ते देखेगा, क्रोध का विष उगलते हुए नकुल और
सहदेव को अपनी ओर झपटकर आते देखेगा, तब तुझे जो सन्ताप होगा वह सदा तेरे हृदय को जलाता
२० रहेगा। पूजनीय पतियों के विरुद्ध कोई विचार कभी मेरे मन में भी नहीं आया है। उसी धर्म के प्रभाव
से मैं शीघ्र ही तुझे पाण्डवों की क़ैद में देखूँगी। मैं देखूँगी कि पाण्डव तुझे पकड़कर घसीटते हुए ले
चलेंगे। अरे नीच, इस समय जो तू मुझे बलपूर्वक ले भी जायगा तो उससे मैं बिलकुल न डरूँगी;
क्योंकि कुरुवीर पाण्डवों को ज्योंही यह ख़बर मिलेगी त्योंही वे मुझे छुड़ाकर इसी काम्यक वन में
ले आवेंगे।

* खेती, व्यापार, दुर्ग, पुल, हाथी रखना, खान से कर वसूल करना, ऊजड़ स्थानों को आबाद करना इत्यादि।

† प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति, उत्साहशक्ति, प्रभुसिद्धि, मन्त्रसिद्धि, उत्साहसिद्धि, प्रभूदय, मन्त्रोदय और उत्साहोदय।

जयद्रथ फिर उठकर वेग के साथ द्रोपदी को पकड़ने लगा। पृ० १२५१

विशाल नेत्रोंवाली द्रौपदी यों कहकर उत्सुकता के साथ पाण्डवों के आने की राह देखने लगीं। जयद्रथ ने जब द्रौपदी को पकड़कर ले जाना चाहा तब द्रौपदी उसे झिड़ककर कहने लगीं—मुझे छू मत। फिर डरकर वे पुरोहित धौम्य को अपनी रक्षा के लिए ज़ोर से पुकारने लगीं। जयद्रथ ने लपककर द्रौपदी का दुपट्टा पकड़ लिया। द्रौपदी ने झटका देकर अपना दुपट्टा छुड़ाया तो उसके साथ ही, कटे हुए पेड़ की तरह, जयद्रथ पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर उठकर वेग के साथ जब जयद्रथ उन्हें पकड़ने लगा तब वे उसके स्पर्श से बचने के लिए आप ही, पुरोहित धौम्य के पैर छूकर, बारम्बार साँस लेती हुई जयद्रथ के रथ पर चढ़ गईं।

धौम्य ने जयद्रथ से कहा—अरे मूढ़, तू महारथी पाण्डवों को जीते बिना पतिव्रता द्रौपदी को नहीं ले जा सकता। अरे जयद्रथ, क्षत्रियों के प्राचीन धर्म का ख़याल कर। धर्मराज आदि पाण्डवों से भेंट होते ही तुझे अपने इस नीच कर्म का फल भोगने को मिलेगा। इतना कहकर पुरोहित धौम्य जयद्रथ की पैदल सेना के बीच में होकर यशस्विनी राजपुत्री द्रौपदी के पीछे-पीछे चले। २८

दो सौ उनहत्तर अध्याय

पाण्डवों का लौटकर आश्रम में आना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, अद्वितीय धनुर्धर पाण्डव लोग भिन्न-भिन्न दिशाओं में मृग, वराह, भैंसे आदि का शिकार करके फिर एक जगह पर आकर मिल गये। मृग, साँप, हाथी आदि जीवों से पूर्ण और पक्षियों के शब्द से व्याप्त काम्यक वन मृगों के शब्द को सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—भाइयो, देखो, ये वन में विचरनेवाले मृग और पक्षी पूर्व दिशा की ओर मुँह करके क्रूर शब्द सुना रहे हैं। यह उत्पात किसी घोर संकट की सूचना दे रहा है। शत्रुओं के द्वारा हमारा किसी प्रकार का अपमान अथवा हम पर आक्रमण होने की भी सम्भावना पाई जाती है। मेरा मन उदास हो रहा है, हृदय में जलन हो रही है। मेरा अन्तरात्मा शोक और मोह से पीड़ित सा हो रहा है—बुद्धि विचलित सी हो रही है। इसलिए अब मृगों का शिकार करने की ज़रूरत नहीं; झटपट अपने आश्रम को लौट चलो। गरुड़ के द्वारा सर्पराज के हर लिये जाने पर कुण्ड जैसे शोभाहीन देख पड़ता है, राजा से हीन राज्य जैसे श्रीहीन हो जाता है, शराबियों के शराब पी जाने पर घड़ा जैसे ख़ाली देख पड़ता है, वैसे ही इस समय काम्यक वन भी मुझे शून्य और शोभा-हीन जान पड़ता है।

इसके बाद वायु के समान शीघ्रगामी सिन्धु देश के घोड़े जिनमें जुते हुए थे उन श्रेष्ठ रथों पर बैठकर पाँचों पाण्डव अपने आश्रम की ओर चले। उस समय सियार उनकी बाईं ओर खड़े होकर ज़ोर से चिल्लाने लगा। यह असगुन देख विचार करके राजा युधिष्ठिर ने भीमसेन

और अर्जुन से कहा—देखो, यह नीच योनि का जीव सियार बाईं ओर आकर ज़ोर से चिल्ला रहा है। इससे जान पड़ता है कि पापी कौरवों ने आश्रम में जाकर, हमारा अपमान करके, किसी प्रकार का अनर्थ कर डाला है।

महावन में शिकार खेलकर लौटे हुए पाण्डवों ने फुर्ती के साथ आश्रम में जाते ही देखा कि प्रिया द्रौपदी की दासी धात्रेयिका रो रही है। तब इन्द्रसेन सारथी जल्दी से रथ से उतर पड़ा और दौड़ता हुआ उसके पास पहुँचा।

१० उसने अत्यन्त व्याकुल होकर दासी से पूछा—तुम पृथ्वी पर पड़ी क्यों रो रही हो? तुम्हारा चेहरा सूखा और उतरा हुआ क्यों है? निठुर पापी कौरव यहाँ आकर राजपुत्री द्रौपदी को तो हर नहीं ले गये? धर्मराज ऐसे व्याकुल हो रहे हैं कि पाण्डवों को शरीर के समान प्यारी, परमसुन्दरी, विशाल आँखोंवाली पाञ्चाली को जो कोई पाताल में, अन्तरिक्ष में या महासागर के भीतर ले गया होगा तो पाण्डव वीर वहाँ भी जाकर उन्हें ढूँढ़ लावेंगे। ऐसे शत्रुदमन, क्लेश सहनेवाले, अपराजित पाण्डवों की प्राणों से प्यारी पत्नी को, महामूल्य रत्न की तरह, कौन महामूढ़ हर ले गया है? द्रौपदी पाण्डवों का बाहरी हृदय हैं। पाण्डव उनके रक्षक हैं। मालूम नहीं कौन मूर्ख प्राणों का मोह छोड़कर उन्हें हर ले गया है? आज पाण्डवों के भयानक तीक्ष्ण बाण किसके शरीर को काटकर पृथ्वी में समा जायँगे? हे भीरु, तुम अब द्रौपदी के लिए शोक मत करो। द्रौपदी तो अभी अपने आश्रम में लौट आवेंगी। सब शत्रुओं को मारकर पाण्डव अभी द्रौपदी को ले आवेंगे।

हे जनमेजय, तब दोनों हाथों से अपने आँसू पोंछकर दासी ने पाण्डवों के सारथी इन्द्रसेन से कहा—इन्द्रतुल्य प्रतापी पाँचों पाण्डवों का अपमान करके दुष्ट जयद्रथ द्रौपदी को हर ले गया है। जान पड़ता है, राजपुत्री को लेकर वह दुष्ट अभी दूर नहीं पहुँचा होगा। वह देखो, उसके जाने की नई राहें अभी वैसी ही बनी हुई हैं। राह में जाते समय जो वृक्षों की डालियाँ टूटी हैं वे अभी मुरझाई नहीं हैं। इस कारण तुम लोग फुर्ती से शत्रु का पीछा करो। इन्द्रतुल्य पराक्रमी पाण्डव लोग अभेद्य कवच पहनकर, धनुष-बाण लेकर, अभी जयद्रथ का पीछा

करके, उसके हाथ से द्रौपदी की रक्षा करें। जो डाँट-डपट और दण्ड के भय से द्रौपदी व्याकुल-हृदय और मलिन मुख लेकर किसी अयोग्य पुरुष को आत्मसमर्पण कर देंगी तो महा अनर्थ हो जायगा। पाण्डव लोग यदि इसी दम जाकर द्रौपदी का उद्धार नहीं करेंगे तो उत्तम घी में पड़ा हुआ स्रुआ राख में गिरकर ख़राब हो जायगा; हवि की आहुति भूसी की आग में पड़ जायगी; सुन्दर माला मसान में गिरकर अशुद्ध हो जायगी; ब्राह्मणों को असावधान देख करके यज्ञ-भूमि २०
में रक्खे हुए सोमरस को कुत्ता पी जायगा; शिकार करके सियार पवित्र सरोवर में घुस पड़ेगा और उसे गन्दा कर देगा। हे पाण्डवो, जैसे कुत्ता यज्ञभूमि में रक्खे हुए देवताओं के भाग को छू ले, वैसे कोई कुकर्मी पुरुष कहीं तुम्हारी प्रिया के सुन्दर नासिका और नेत्रों आदि से शोभित, चन्द्रतुल्य, प्रसन्न मुखमण्डल को स्पर्श करके दूषित न कर दे! तुम लोग अभी इसी राह से जाओ; देर न करो।

युधिष्ठिर ने दासी से कहा—भद्रे, हट जाओ, चुप रहो। हम लोगों के आगे द्रौपदी के बारे में ऐसी अनुचित और कठोर बातें ज़बान पर मत लाओ। अपने बल के घमण्ड में आकर ऐसा काम करनेवाला पुरुष चाहे राजा हो और चाहे राजपुत्र, वह मरेगा; उसे अपने किए का फल चखना ही पड़ेगा।

वैशम्पायन कहते हैं—अब पाण्डव लोग बारम्बार धनुष की डोरी बजाते और साँप की सी फुफकार छोड़ते उसी नये मार्ग से चले, जो जयद्रथ की सेना के जाने से बन गया था। कुछ दूर जाने पर घोड़ों की टापों से उड़ी हुई धूल देख पड़ी, जिससे उन्हें शत्रु का पता लग गया। उन्होंने जयद्रथ की पैदल सेना के बीच में पुरोहित धौम्य को भी देखा। वे बारम्बार "हे भीम! हे अर्जुन!" कहकर चिल्ला रहे थे। राजपुत्र पाण्डवों ने दूर से ही यह कहकर धौम्य को धीरज धराया कि "हम लोग पहुँच गये, इसलिए आप सुखपूर्वक चले आइए।"

बाज जैसे मांस के लिए झपटता है, वैसे पराक्रमी पाण्डव लोग वेग के साथ शत्रु-सेना की तरफ़ बढ़े। इन्द्र के समान बल और पराक्रमवाले पाण्डव द्रौपदी का अपमान और हरा जाना देखकर क्रोध से विह्वल हो रहे थे। इस समय जयद्रथ को और उसके रथ पर द्रौपदी को देखकर उनका क्रोध आग के समान और भी प्रज्वलित हो उठा। तब महाधनुर्द्धर महाराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव, पाँचों पाण्डव ज़ोर से चिल्लाकर जयद्रथ को ललकारते हुए उससे ठहरने के लिए कहने लगे। पाण्डवों का सिंहनाद सुनकर शत्रुओं की आँखों के आगे अँधेरा सा
छा गया। २८

दो सौ सत्तर अध्याय

द्रौपदी का जयद्रथ को पाण्डवों का परिचय देना

वैशम्पायन कहते हैं—भीमसेन और अर्जुन को देखकर क्रोधित क्षत्रिय लोग घोर कोलाहल करने लगे। उस शब्द से वह वन गूँज उठा। दुरात्मा जयद्रथ भी पाण्डवों के रथों की ध्वजाएँ देखकर डर के मारे उत्साहहीन हो गया। उस समय वह अपने रथ पर बैठी हुई द्रौपदी से बोला—हे पाञ्चाली, ये जो पाँच रथों पर बैठे हुए पुरुष आ रहे हैं, यही शायद तुम्हारे पति पाण्डव हैं। हे सुन्दर केशोंवाली, तुम क्रम से अपने पाँचों पतियों का परिचय दो।

द्रौपदी ने कहा—अरे मूढ़, आयुर्बल को घटानेवाला ऐसा घोर नीच कर्म करने के बाद अब तू इन महाधनुर्द्धर वीरों का परिचय पूछकर क्या करेगा? ये पाँचों वीर मेरे पति हैं। ये ऐसा भयङ्कर युद्ध करेंगे कि तेरे पक्ष का एक आदमी भी जीता न बचेगा। भाइयों सहित धर्मराज को सामने देखकर अब न मुझे दुःख है और न तेरा डर ही है। तू अब शीघ्र ही मरनेवाला है, इसलिए धर्म का ख़याल करके मैं तेरे प्रश्न का उत्तर देती हूँ, सुन। जिनकी ध्वजा के सिरे पर बँधे हुए नन्द और उपनन्द नाम के दो मृदङ्ग मधुर शब्द से बज रहे हैं, जिनके शरीर का रङ्ग सोने के समान उज्ज्वल और चमकीला है, जिनकी नाक नुकीली और ऊँची है, जिनके दोनों नेत्र विशाल हैं, वे अपने धर्म के मर्म को अच्छी तरह जाननेवाले, मेरे पति धर्मपुत्र युधिष्ठिर हैं। सज्जन लोग इन्हीं के आचरणों को अपना आदर्श मानते हैं। ये वीर पुरुष ऐसे धर्मात्मा हैं कि शरण में आए हुए शत्रु को भी प्राणदान दे देते हैं। रे मूढ़, जो तू अपनी भलाई और जीवन चाहता है तो शीघ्र हथियार रख दे और हाथ जोड़कर इनकी शरण में जा।

वह देख, जो साखू के पेड़ के समान विशाल शरीर और लम्बी भुजाओं से शोभित वीर पुरुष रथ पर बैठे हैं, जो क्रोध के मारे भौंहें टेढ़ा करके अपने ओठ चबा रहे हैं, वे मेरे स्वामी भीमसेन हैं। बड़े बली, परिश्रमी, सुशिक्षित आजानेय नाम के घोड़े इनके रथ को खींचते हैं। भीमसेन के सब कर्म भयानक होते हैं, उन्हें और कोई मनुष्य नहीं कर सकता। इसी से पृथ्वी पर सब लोग
१० इन्हें भीम कहते हैं। इनका अपराध करनेवाला कोई पुरुष इनसे क्षमा नहीं पा सकता। ये कभी किसी समय वैर को नहीं भूलते। चाहे जिस तरह हो, ये वैरी से बदला ज़रूर लेते हैं। बदला लेने पर भी ये अच्छी तरह शान्त नहीं होते।

हे जयद्रथ, वे तीसरे वीर पुरुष मेरे स्वामी पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन हैं। ये युधिष्ठिर के भाई और प्रिय शिष्य हैं। ये सब धनुर्द्धर पुरुषों में प्रधान, यशस्वी, धैर्यशाली, सहनशील, जितेन्द्रिय और बड़े-बूढ़ों के सेवक हैं। ये कभी काम, लोभ या भय के वश होकर अपने धर्म का त्याग या नीच कर्म नहीं करते। इनका तेज अग्नि के समान है और ये सहज ही सब शत्रुओं का नाश कर सकते हैं।

चौथे रथ पर बैठे हुए मेरे पति महाबली नकुल हैं। ये सब प्रकार के धर्म और अर्थ के सिद्धान्तों को जाननेवाले, भय से पीड़ित मनुष्यों को अभय देनेवाले, विवेकी, बुद्धिमान्, खड्गयुद्ध में अद्वितीय, बड़े फुरतीले और पृथ्वी भर में अद्वितीय रूपवान् माने जाते हैं। ये अपने भाइयों पर बड़ा अनुराग रखते हैं; इसी कारण सब भाई उन्हें प्राणों से भी प्यारा समझकर इनकी रक्षा करते हैं। रे मूढ़, दैत्य-सेना में इन्द्र जैसे अद्भुत काम करते हैं वैसे ही इनके अद्भुत रण-कौशल को आज तू देखेगा।

और जो शूर, अस्त्रविद्या में निपुण, बुद्धिमान्, उदार, धर्मराज का प्रिय करनेवाले, चन्द्रमा और सूर्य के समान परम तेजस्वी, सब भाइयों से छोटे और सबके प्रीतिपात्र हैं, वही उस पाँचवें रथ पर बैठे हुए मेरे पति सहदेव हैं। बोलने की निपुणता में और न्याय में इनकी बराबरी करनेवाला पृथ्वी भर पर कोई नहीं है। ये बड़े पण्डित हैं। ये चाहे अपने प्राण त्याग दें, चाहे आग में कूद पड़ें, पर धर्म-विरुद्ध बात कभी न कहेंगे। ये पुरुषश्रेष्ठ सदा क्षत्रिय-धर्म का पालन करने में तत्पर हैं। देवी कुन्ती को ये प्राणों से भी बढ़कर प्यारे हैं।

रे मूढ़, रत्नों से लदी नाव जैसे समुद्र के बीच किसी बड़े मच्छ की पीठ से टकराकर टूट जाती है वैसे ही पाण्डव लोग तेरी इस सेना के योद्धाओं को मारकर छिन्न-भिन्न कर देंगे। तू अभी अपनी सेना की दुर्दशा देखेगा। तूने मोहवश जिनका अनादर करके यह कुकर्म किया है, उन पाण्डवों का परिचय मैंने तुझे दे दिया। जो आज तू इनके हाथ से जीता बच गया तो समझना कि इसी शरीर से तेरा दूसरा जन्म हुआ।

वैशम्पायन कहते हैं—उधर इन्द्रतुल्य पराक्रमी पाण्डवों ने जयद्रथ की पैदल सेना को, डरकर हाथ जोड़ते देख, छोड़ दिया। फिर वे कुपित होकर रथ, हाथी, घोड़े आदि के सवारों को चारों ओर से घेरकर उन पर बाण बरसाने लगे। २१

दो सौ इकहत्तर अध्याय

जयद्रथ की सेना से पाण्डवों का युद्ध

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, तब जयद्रथ "ठहरो, मारो, दौड़ो" कहकर अपने साथी राजाओं को युद्ध के लिए उकसाने लगा। युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव को देखकर युद्धभूमि में जयद्रथ के सैनिक लोग बड़ा कोलाहल करने लगे। सिंह के समान बली पाण्डवों को देखकर शिवि, सिन्धु और सौवीर देशों के राजाओं को अत्यन्त खेद हुआ।

भीम-पराक्रमी भीमसेन सुवर्ण-भूषित लोहे की गदा लेकर जयद्रथ को मारने के लिए उसकी ओर दौड़े। यह देखकर कोटिकास्य ने बहुत से रथों की सेना से, चारों ओर से, उन-

को घेर लिया ; घिर जाने से भीमसेन जयद्रथ के पास तक नहीं पहुँच सके। उस समय योद्धा लोग चारों ओर से भीमसेन के ऊपर तोमर, नाराच और शक्ति आदि शस्त्रों की वर्षा करने लगे। किन्तु उन शस्त्रों के लगने से भीमसेन तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने गदा प्रहार से सेना के अग्र भाग में स्थित हाथी, महावत और चौदह पैदलों को मार डाला। जयद्रथ के पास पहुँचने के लिए महावीर अर्जुन ने पहाड़ी जातियों के पाँच सौ महारथी योद्धाओं को देखते ही देखते मार डाला। स्वयं राजा युधिष्ठिर ने अपने ऊपर प्रहार करनेवाले सौवीर क्षत्रियों के सौ प्रधान वीरों को क्षण भर में नष्ट कर दिया। महावीर नकुल खड्ग लेकर रथ पर से कूद पड़े और [हाथियों के] पैरों के पास रहकर रक्षा करनेवाले वीर सिपाहियों के सिर काट-काटकर बीज की तरह पृथ्वी पर बोने लगे। रथ पर चढ़े हुए सहदेव हाथियों पर चढ़कर युद्ध करनेवालों को नाराच बाण मारकर—वृक्षों के ऊपर से मोरों की तरह—गिराने लगे।

इसके बाद त्रिगर्त देश का धनुर्धर राजा रथ पर से कूद पड़ा। उसने गदा चलाकर युधिष्ठिर के रथ के चारों घोड़ों को मार डाला। पैदल ही सामने झपटकर आते हुए त्रिगर्तराज के हृदय में धर्मराज ने एक अर्धचन्द्र बाण मारा। उस बाण के लगने से त्रिगर्तराज का हृदय फट गया, उसके हृदय और मुँह से रक्त बहने लगा। वह जड़ से कटे पेड़ की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा। रथ के घोड़े मर जाने से महाराज युधिष्ठिर इन्द्रसेन सारथी के साथ सहदेव के रथ पर सवार हो गये।

उधर क्षेमङ्कर और महामुख नाम के दो वीर राजा नकुल से भिड़कर उनके ऊपर वर्षा के बादलों की तरह तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। नकुल ने एक-एक विपाठ नामक बाण मारकर उन दोनों को घायल कर दिया। त्रिगर्तराज सुरथ हाथी की सवारी में बड़ा चतुर था। उसने अपना हाथी बढ़ाकर नकुल के रथ पर विकट हमला किया। इससे नकुल तनिक भी नहीं डरे। ढाल-तलवार लेकर वे रथ से कूद पड़े और अपनी जगह पर पर्वत की तरह अचल भाव से खड़े रहे। सुरथ ने फिर अंकुश मारकर अपने हाथी को नकुल के मारने के लिए बढ़ाया। वह हाथी क्रोधित होकर, सूँड़ उठाकर नकुल के ऊपर झपटा। जब वह हाथी पास आया तब नकुल ने इस जोर से तलवार मारी कि दाँतों समेत उसकी सूँड़ कटकर गिर पड़ी। किङ्किणी आदि गहने पहने वह हाथी जोर से चिल्लाकर घोर शब्द करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके साथ ही उसका सवार भी नीचे आ गया। महाशूर और महारथी नकुल यह अद्भुत साहस का काम कर चुकने पर भीमसेन के रथ पर आ गये। वहाँ पहुँचने पर उनको शान्ति मिली।

भीमपराक्रमी भीमसेन ने देखा कि कोटिकास्य युद्ध के लिए सामने आ रहा है। तब उन्होंने ऐसे कौशल और फुरती के साथ क्षुरप्र बाण से उसके सारथी का सिर काट डाला कि कोटिकास्य को मालूम ही न हुआ। सारथी के मर जाने पर घोड़े कोटिकास्य के रथ को लेकर इधर-उधर भागने लगे। इसी बीच में भीमसेन ने पास पहुँचकर मूठदार प्रास नाम के शस्त्र से

कोटिकास्य को मार डाला। अर्जुन ने भी तीक्ष्ण भल्ल बाणों से सौवीर देश के बारहों राजकुमारों
के धनुष काटकर सिर भी काट गिराये। शिवि, इक्ष्वाकु, त्रिगर्त और सिन्धु देश के जो वीर योद्धा
महारथी अर्जुन के सामने आ गये उन्हें अर्जुन ने बाणों से मारकर गिरा दिया। पताकाओं सहित
हाथियों और ध्वजाओं सहित बड़े-बड़े रथों का, अर्जुन के बाणों से छिन्न-भिन्न होने पर, युद्ध-भूमि में
ढेर लग गया। देखते ही देखते उस युद्ध-भूमि में चारों ओर कटे हुए सिरों और धड़ों का ढेर लग
गया। मरे हुए वीरों के मांस और रक्त से तृप्त कुत्ते, गिद्ध, कंक, काकोल, भास, सियार, कौए आदि ३०
जीव चारों ओर आनन्द मनाते देख पड़ने लगे।

जब जयद्रथ की ओर के सब वीर योद्धा मार डाले गये तब वह दुर्बुद्धि डर के मारे द्रौपदी को वहीं छोड़कर भाग खड़ा हुआ। उसी भयानक युद्ध-भूमि में द्रौपदी को उतार अपनी जान बचाने के लिए वह नराधम वन की ओर भागा। धर्मराज युधिष्ठिर ने धौम्य पुरोहित के साथ खड़ी हुई द्रौपदी को जब देखा तब सहदेव से उन्हें रथ पर चढ़ा लेने के लिए कहा। सहदेव ने उसी दम बड़े भाई की आज्ञा का पालन किया।

जयद्रथ के भागने पर उसकी सेना के बचे हुए लोग भी भाग खड़े हुए। भागते हुए सैनिकों को, ललकार-ललकारकर, भीमसेन नाराच बाणों से मारकर पृथ्वी पर गिराने लगे। उस समय जयद्रथ को भागते देखकर अर्जुन ने भीमसेन से कहा—भाई, इन भगोड़े सैनिकों को मारना वृथा है। जिसके अत्याचार के कारण हमें ऐसा कष्ट उठाना पड़ा है वह जयद्रथ मुझे समर-भूमि में नहीं देख पड़ता। द्रौपदी को क्लेश पहुँचानेवाले, मूर्ख, दुष्ट, छली जयद्रथ को ही ढूँढ़ना चाहिए। इन भगोड़ों को मारना क्या तुम ठीक समझते हो?

वैशम्पायन कहते हैं कि अर्जुन के यों कहने पर भीमसेन युधिष्ठिर के पास जाकर कहने
लगे—शत्रुओं के सब श्रेष्ठ योद्धा मार डाले गये। जो कुछ बचे वे, जान लेकर इधर-उधर
भाग गये। इसलिए अब आप नकुल, सहदेव, पुरोहित धौम्य और द्रौपदी को साथ लेकर
आश्रम को लौट जाइए और द्रौपदी को ढाढ़स बँधाइए। मैं दुरात्मा जयद्रथ को जीता न ४१
छोड़ूँगा। चाहे वह पाताल में जाकर छिपे और चाहे साक्षात् इन्द्र उसकी सहायता करें;
परन्तु मैं उसे छोड़ने का नहीं। युधिष्ठिर ने कहा—भैया भीम, इसमें सन्देह नहीं कि
जयद्रथ बड़ा दुष्ट है; पर दुःशला (दुर्योधन की बहन) और यशस्विनी गान्धारी का खयाल
करके उसे जान से मत मारना।

यह सुनकर बुद्धिमती, लजीली द्रौपदी व्याकुल हो उठीं। उन्होंने कुपित होकर भीमसेन और अर्जुन से कहा—जो मेरा प्रिय करना चाहते हो तो उस दुर्बुद्धि कुल-कलङ्क नराधम को जीता न छोड़ना। शत्रु स्त्री को या राज्य को हरनेवाला हो, वह यदि हाथ जोड़कर प्राणों की भिक्षा माँगे तो भी उसे जिन्दा न छोड़ना चाहिए।

द्रौपदी की बात सुनकर भीमसेन और अर्जुन जयद्रथ के पीछे चले। महाराज युधिष्ठिर भी नकुल, सहदेव, द्रौपदी और पुरोहित धौम्य को साथ लेकर आश्रम को लौटे। आश्रम में

ऋषियों के बैठने के आसन आदि इधर-उधर उलटे-पलटे पड़े थे। मार्कण्डेय आदि ऋषि जमा होकर द्रौपदी के लिए शोक कर रहे थे। स्त्री और भाइयों सहित राजा युधिष्ठिर को आते देखकर सब तपस्वियों को बड़ा आनन्द हुआ। उन्हें मालूम हो गया कि पाण्डव लोग सिन्धु-सौवीर देश की सेना को मार-काटकर, जयद्रथ को हराकर, अपने
५० पराक्रम से द्रौपदी को फेर लाये हैं। राजा युधिष्ठिर उन मुनियों के पास बाहर ही बैठ गये। नकुल और सहदेव के साथ द्रौपदी आश्रम के भीतर चली गईं।

उधर भीम और अर्जुन को दुष्ट जयद्रथ के एक कोस के फ़ासले पर भाग जाने की ख़बर मिली। तब वे ख़ुद रथ हाँकते हुए बड़ी तेज़ी से आगे बढ़े। साथ ही अर्जुन ने एक बहुत ही अद्भुत काम यह किया कि दिव्य अस्त्र के प्रभाव से वहीं से बाण चलाकर, कोस भर आगे जा रहे, जयद्रथ के रथ के घोड़ों को मार डाला। महारथी अर्जुन में यह विशेष गुण था कि संकट या कष्ट के समय वे तनिक भी घबराते न थे। इसी से वे अस्त्रयुक्त बाण मारकर अनायास ही यह दुष्कर कर्म कर सके। डर से व्याकुल होकर जयद्रथ अकेला ही भागा जा रहा था और उसके पीछे दोनों वीर पाण्डव रथ दौड़ाये हुए जा रहे थे। जयद्रथ अपने घोड़ों का मरना देखकर बहुत ही दुखी और निराश हो गया। अर्जुन के पराक्रम और अद्भुत कार्यों को देखकर पहले से ही वह बहुत घबराया हुआ था। अब रथ के घोड़े मर जाने पर वह छिपने के लिए पैदल ही जङ्गल की ओर भागा। अर्जुन और भीमसेन इसी बीच में जयद्रथ के पास पहुँच गये।

जयद्रथ को भागते देखकर पीछा करनेवाले अर्जुन ने कहा—अरे ओ राजपुत्र, इसी पराक्रम के बल पर तुम पराई स्त्री को हरने गये थे? लौटो-लौटो, यों भागना तुम्हारे योग्य काम नहीं है। अरे शत्रुओं के बीच अपने अनुचरों को असहाय छोड़कर कहाँ भागे जा रहे हो?

अर्जुन के यों ललकारने पर भी जयद्रथ नहीं लौटा। तब "ठहर जा, ठहर जा" कहकर डाँटते हुए महाबली भीमसेन वेग से उसके पीछे दौड़े। उस समय दयालु अर्जुन ने भीमसेन से फिर कह दिया कि भाई, इसे जान से न मारना। ६०

जयद्रथ-विमोक्षण पर्व

दो सौ बहत्तर अध्याय

युधिष्ठिर के अनुरोध से जयद्रथ का छुटकारा

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, जयद्रथ ने देखा कि भीमसेन और अर्जुन, दोनों भाई, शस्त्र ताने हुए आ रहे हैं। तब वह अत्यन्त दुःखित होने पर भी जीने की आशा से, घबराहट छोड़कर, भागा। क्रोध के मारे भीमसेन का शरीर काँपने लगा। वे रथ से उतरकर बड़ी तेजी से दौड़े। जयद्रथ के पास पहुँचकर भीमसेन ने उसके बाल पकड़ लिये। फिर उस दुष्ट को ऊपर उठाकर उन्होंने पृथ्वी पर दे मारा। अब वे उसके बाल पकड़कर चाँटे और घूँसे मारने लगे। पहले तो जयद्रथ अचेत हो गया, किन्तु फिर होश में आकर उठने लगा तब भीमसेन ने उसके सिर में लात मारी। जयद्रथ पीड़ित होकर रोने लगा। क्रोधित भीमसेन उसकी छाती पर चढ़कर घुटनों और घूँसों से उसको मारने लगे। भीमसेन की मार न सह सकने के कारण वह फिर बेहोश हो गया। भीमसेन को अत्यन्त कुपित देखकर अर्जुन ने कहा—भाई, दुःशला के वैधव्य का ख़याल करके महाराज युधिष्ठिर ने जो तुमसे कहा था उसका विचार रखना। ऐसी मार न मारो कि यह दुष्ट मर जाय।

भीमसेन ने कहा—इस दुराचारी नराधम ने क्लेश पाने के अयोग्य द्रौपदी को बहुत सताया है इस कारण मेरे हाथ में आकर फिर इसका जीवित रहना ठीक नहीं है; किन्तु मैं क्या करूँ! राजा युधिष्ठिर बड़े दयालु हैं, दूसरे तुम भी नासमझी के कारण मेरे ऐसे कामों में सदा रोक-टोक करते

हो। इसी से मैं लाचार हूँ। अब भीमसेन ने अर्धचन्द्र बाण से जयद्रथ के सिर के बाल मूँड़कर पाँच चोटियाँ रख दीं। जयद्रथ चुपचाप पड़ा रहा, सिटपिटाया तक नहीं।

इस प्रकार जयद्रथ का रूप बिगाड़कर और ख़ूब तिरस्कार करके भीमसेन ने कहा—अरे मूढ़,
१० जो तू जीना चाहता है तो मैं जो कहता हूँ सो सुन। सदा सभा-समाज आदि में तुझे अपने को दास बताना होगा। यदि तुझे यह स्वीकार हो तो मैं तुझे जीता छोड़ सकता हूँ। युद्ध में जीते हुए शत्रु के साथ क्षत्रिय को ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए; यही रीति है। पीड़ित जयद्रथ ने कष्ट के मारे विजयी भीमसेन की यह शर्त मंजूर कर ली।

धरती पर लोटने और तड़पने के कारण जयद्रथ के शरीर में धूल भरी हुई थी। भीमसेन ने अचेत से जयद्रथ को बाँधकर अपने रथ पर बैठा लिया। फिर भीमसेन और अर्जुन दोनों भाई अपने आश्रम में युधिष्ठिर के पास आये। जयद्रथ की यह दुर्दशा देखकर युधिष्ठिर हँस पड़े और भीमसेन से कहने लगे—अब इसे छोड़ दो। भीमसेन ने कहा—महाराज, यह बड़ा नराधम है; यह हम लोगों का दास हो चुका है। द्रौपदी से भी इसके छुटकारे के बारे में पूछ लीजिए। तब युधिष्ठिर ने प्रेमपूर्वक भीमसेन से कहा—भैया भीम, जो तुम मुझे मानते हो तो इस दुरात्मा को झटपट छोड़ दो। तब युधिष्ठिर की ओर देखकर द्रौपदी ने भीमसेन से कहा—तुमने सिर पर पाँच चोटियाँ रखकर इसको दास बना दिया; [यह इसके कुकर्म का दण्ड हो चुका।] अब इसको छोड़ दो।

भीमसेन ने जयद्रथ के हाथ-पैर खोल दिये। बन्धन खुल जाने पर विह्वल जयद्रथ ने धर्मराज युधिष्ठिर को और उस आश्रम में रहनेवाले तपोधन वृद्ध मुनियों को प्रणाम किया। उस हालत में
२० जयद्रथ को देखकर दयालु राजा युधिष्ठिर ने उससे कहा—इस समय तुम दासभाव और बन्धन से छुटकारा पा गये। जाओ, किन्तु याद रक्खो, फिर कभी ऐसा काम न करना। तुम पराई स्त्री पर कुदृष्टि डालनेवाले और क्षुद्र विचारोंवाले पुरुष हो और वैसे ही निन्दनीय पुरुष तुम्हारे साथी थे। विचारकर देखो, तुम्हारे ऐसे अधम और धिक्कार के योग्य पुरुषों के सिवा और कौन ऐसा कुकर्म करने को तैयार होगा? वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, पापकर्म करने के कारण तेज से हीन मुर्दार जयद्रथ को देखकर युधिष्ठिर को दया आ गई। उन्होंने कृपा करके फिर उससे कहा—जयद्रथ, जाओ, अब अधर्म की ओर अपना मन न लगाना। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारी बुद्धि सदा धर्म में लगी रहे। तुम घोड़े, रथ, पैदल आदि के साथ अपने नगर को जाओ। तुम्हारा भला हो।

जयद्रथ ने चुपचाप सब बातें सुन लीं, उससे कुछ कहते न बना। लज्जा के मारे सिर झुकाकर जयद्रथ वहाँ से चल दिया। उसके हृदय में अपार दुःख था। वह वहाँ से राजधानी में नहीं गया। महाराज, पाण्डवों से अपने अपमान का बदला लेने की इच्छा से हरद्वार में

जाकर वह उमापति महादेव को प्रसन्न करने के लिए अत्यन्त घोर तपस्या करने लगा। यथासमय प्रसन्न होकर त्रिलोचन शङ्कर प्रकट हुए। उन्होंने जयद्रथ की दी हुई पूजा ग्रहण की। फिर रुद्र ने उससे वरदान माँगने के लिए कहा। तब जयद्रथ ने कहा—भगवन्, मैं यही वर चाहता हूँ कि युद्ध में पाँचों पाण्डवों को जीत सकूँ। महादेव ने कहा—पाँचों पाण्डवों को तुम नहीं हरा सकते। उन्हें न तो कोई जीत सकता है और न मार सकता है। तथापि मेरे वरदान से अर्जुन को छोड़कर अन्य चारों पाण्डवों को, केवल एक दिन, तुम हरा सकोगे। महाबाहु अर्जुन नर नामक ऋषि का अवतार हैं। इन्होंने महर्षि नारायण के साथ बदरिकाश्रम में घोर तप किया है। भगवान् नारायण उनके सहायक हैं। तीनों लोकों में कोई उन्हें जीत नहीं सकता। देवता भी उन पर आक्रमण नहीं कर सकते। मैंने उन्हें अपना दिव्य अद्वितीय पाशुपत अस्त्र दिया है। अन्य लोकपालों ने भी उन्हें अपने वज्र आदि श्रेष्ठ अस्त्र दिये हैं। ३०

अब मैं तुमसे उनके सहायक नारायण भगवान् की महिमा कहता हूँ—सुनो। प्रलयकाल उपस्थित होने पर प्रधान पुरुष देवदेव भगवान् विष्णु कालाग्नि के रूप से पर्वत, वन, समुद्र, द्वीप आदि सहित पृथ्वी को और नागलोक तथा पाताल को भस्म करने के लिए उद्यत होते हैं। उस समय, सब जगत् भस्म हो जाने पर, आकाश में अनेक रङ्ग के भयानक बादल घिर आते हैं और बिजलियाँ चमकने लगती हैं। वे बादल घोर शब्द से गरज-गरजकर रथ के धुरे के बराबर मोटी धाराओं से लगातार जल बरसते हैं। दसों दिशाओं में पानी भर जाता है और प्रलय-अग्नि बुझ जाता है। चारों ओर एकाकार जलमय समुद्र देख पड़ता है; वायु, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र आदि कुछ नहीं रह जाता; जगत् के चराचर जीव नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार चार हजार युग बीतने पर प्रलय हो जाता है।

इसी समय नारायण नाम से प्रसिद्ध, सहस्रचरण-सहस्रनेत्र सहस्रमस्तक से शोभित, इन्द्रियातीत महापुरुष सोने की इच्छा से उसी महासमुद्र के बीच सहस्र फणों से भयानक, सहस्र-

सूर्य के समान तेजोमय, कुन्द चन्द्र और कुमुदकुसुम के समान सफेद शेषनाग की शय्या पर शयन
४० करके योगनिद्रा को स्वीकार करते हैं। उस समय चारों ओर रात्रि का अँधेरा छा जाता है।
उसके बाद जब सृष्टि के आरम्भ का समय आता है और सत्वगुण की अधिकता होती है तब नारा-
यण जाग उठते हैं और अपने चारों ओर शून्य ही शून्य देखते हैं। हे जयद्रथ, पण्डितों ने नारायण
शब्द का अर्थ इस प्रकार किया है—जल का नाम 'नार' है, उस जल को 'अयन' अर्थात् निवास-
स्थान बनाने के कारण ईश्वर का ही नाम नारायण है।

जागने पर भगवान् सनातन पुरुष, प्रजा की सृष्टि के लिए, ध्यान करते हैं और वैसे ही उनकी नाभि से एक बड़ा भारी कमल प्रकट होता है। फिर सब लोकों के पितामह चार मुखवाले ब्रह्मा, नारायण के नाभि-कमल से, निकलकर उसी कमल के ऊपर एकाएक जा बैठे। सब जगत को शून्य देखकर ब्रह्मा ने पहले अपने तुल्य प्रतापी मरीचि आदि नव मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। उन मानस पुत्रों से चराचर जगत् और यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, नाग, मनुष्य आदि उत्पन्न हुए। वही प्रजापति तीन अवस्थाओं से इस सृष्टि का संचालन करते हैं—ब्रह्मा के रूप से सृष्टि करते हैं, विष्णु की पुरुष-मूर्त्ति से पालन करते हैं और रुद्ररूप से संहार करते हैं।

हे सिन्धु-नरेश, तुमने शायद वेदपाठी ब्राह्मणों के मुँह से विष्णु के अद्भुत कर्मों की महिमा
नहीं सुनी। सुनो, जब पृथ्वी और आकाश जलमय एकाकार था, तब चराचर के स्वामी भगवान्, वर्षा-
काल में जुगनू के समान, पृथ्वी को स्थापित करने के लिए इधर-उधर खोजने लगे। अन्त को यह देखकर
५० कि पृथ्वी जल में डूबी हुई है, उन्होंने उसे ऊपर निकालना चाहा। वे सोचने लगे कि कौन सा रूप
रखकर मैं जल के भीतर से पृथ्वी को निकालूँ। सोचते ही दिव्य दृष्टि के प्रभाव से उन्हें जल-
विहार की रुचि रखनेवाले वराह के रूप का स्मरण हो आया। तब भगवान्, चतुर्वेदमय यज्ञवराह का
रूप रखकर, जल के भीतर घुसे। वह रूप बहुत ही विचित्र था। वह शरीर दस योजन चौड़ा और
सौ योजन लम्बा था। वह आकाश को छूनेवाले महापर्वत के समान ऊँचा और नीले रङ्ग के
बादल के समान श्याम वर्ण चमकीला था। बड़ी और तीक्ष्ण दाढ़ बाहर निकली हुई थी।
यज्ञवराह भगवान् महामेघ के समान गरजते हुए समुद्र के भीतर घुस गये और एक दाढ़ पर
पृथ्वी को ऊपर उठा लाये। इस प्रकार पृथ्वी का उद्धार करके उन्होंने उसे उसके स्थान पर
स्थापित कर दिया।

वही महाबाहु भगवान् फिर आधे मनुष्य और आधे सिंह के आकार का विचित्र शरीर धारण करके देवताओं के वैरी दैत्यराज हिरण्यकशिपु की सभा में गये। दिति का पुत्र महाबली हिरण्यकशिपु उनका वह विचित्र रूप देखते ही, क्रोध से लाल-लाल आँखें करके, त्रिशूल तानकर, मेघ के समान गम्भीर शब्द से गरजता हुआ उनकी ओर दौड़ा। माला पहने हुए, मेघ के समान

हिरण्यकशिपु क्रोध से लाल लाल आँखें करके, त्रिशूल तानकर मेघ के समान गरजता हुआ नृसिंह की ओर दौड़ा। पृ० १२६२

श्याम वर्ण दैत्य को, झपटकर आते देख, नृसिंह भगवान् ने पकड़ लिया और तीक्ष्ण नखों से पेट फाड़-
कर उसे मार डाला। ६०

उन्हीं कमलनयन भगवान् ने, संसार का भला करने के लिए, कश्यप के वीर्य से अदिति के गर्भ में जन्म लिया। हज़ार वर्ष तक गर्भ में रहकर भगवान् ने वामनरूप से जन्म लिया। उनका रङ्ग बादल का-सा श्याम था। नेत्र चमकीले थे। वे दण्ड, कमण्डलु, जटा, यज्ञोपवीत, श्रीवत्स आदि से भूषित होकर बृहस्पति के साथ दानवेन्द्र बलि के यज्ञ की सभा में गये। उनका वामनरूप देखकर राजा बलि बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—हे विप्र, मैं तुम्हारा रूप देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। बोलो, क्या चाहते हो? मैं तुमको क्या दूँ? वामनरूपी विष्णु ने 'स्वस्ति' कहकर हँसकर कहा—हे दानवेन्द्र, मुझे मेरे पैरों से नपी हुई तीन पग पृथ्वी दीजिए। राजा बलि प्रसन्न होकर उनकी प्रार्थना पूरी करने को तैयार हो गये। तब वामन देव ने विराट रूप रखकर, बहुत बढ़कर, तीन पग से पृथ्वी और तीनों लोकों को नाप लिया। इस प्रकार सनातन देव विष्णु ने बलि से पृथ्वी और त्रिभुवन का राज्य लेकर इन्द्र को दे दिया। हे जयद्रथ, यह मैंने वामन अवतार का वृत्तान्त तुमको सुना दिया। उन विष्णु से बहुत से देवता उत्पन्न हुए और इसी कारण
यह जगत् वैष्णव कहलाता है। ७०

राजन्, वही भगवान् विष्णु सज्जनों की रक्षा और दुष्टों का दमन करने के लिए इस समय मनुष्यलोक के बीच यदुकुल में उत्पन्न हुए हैं और कृष्ण नाम से प्रसिद्ध हैं। बुद्धिमान् विद्वान् लोग उन्हें अनादि, अनन्त, अजन्मा, प्रभु और त्रिभुवनवन्दनीय देवता कहकर उनके पवित्र कर्मों का कीर्तन करते हैं। वही शंख-चक्र-गदा-श्रीवत्स-धारी, पीताम्बर-भूषित, सब अस्त्रों के जानने-वालों में श्रेष्ठ, अजित, कृष्ण भगवान् सदा अर्जुन की रक्षा करते हैं। वे कमलनयन, अतुलपरा-क्रमी, श्रीमान्, शत्रुदमन, कृष्णचन्द्र, अर्जुन के रथ पर सारथी के रूप से बैठकर उनकी सहायता और रक्षा किया करते हैं। इसी कारण देवता भी रण में अर्जुन के तेज को नहीं सह सकते। देवता भी जब उन्हें नहीं जीत सकते, तब तुच्छ मनुष्य होकर तुम कैसे उनको जीत सकोगे? इस कारण मैं तुमको यह वरदान देता हूँ कि अर्जुन को छोड़कर चारों पाण्डवों को और युधिष्ठिर की सेना को केवल एक दिन तुम जीत सकोगे।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, जयद्रथ से यों कहकर सब पापों के हरनेवाले त्रिपुरारी, दक्षयज्ञ-नाशन, पशुपति, उमापति, शङ्कर भगवान् उसी स्थान पर अन्तर्धान हो गये। उनके साथ ही अनेक अस्त्र-शस्त्र हाथ में लिए बौने, विकटरूप, कुबड़े, भयानक नेत्रों और कानोंवाले गण भी अन्तर्द्धान हो गये। पार्वती सहित शङ्कर भगवान् के चले जाने पर दुरात्मा जयद्रथ अपने नगर को चला गया। उधर
पाण्डव उसी काम्यक वन में सुख से रहने लगे। ८१

रामोपाख्यान पर्व

दो सौ तिहत्तर अध्याय

मार्कण्डेय से युधिष्ठिर का प्रश्न

जनमेजय ने पूछा—हे ऋषिश्रेष्ठ, द्रौपदी-हरण से अत्यन्त क्लेश पाने के उपरान्त पाण्डवों ने फिर क्या-क्या काम किये? वैशम्पायन ने कहा—राजन्, जयद्रथ को परास्त करके द्रौपदी को छुड़ा लाने के बाद महाराज युधिष्ठिर मुनियों के बीच में बैठकर बातचीत करने लगे। सब मुनि लोग पाण्डवों के दुख का हाल सुनकर शोक प्रकट करने लगे। इसी बीच में धर्मात्मा युधिष्ठिर ने मारकण्डेय जी से कहा—भगवन्, आप महर्षियों में श्रेष्ठ हैं। आपको भूत और भविष्यत् का सब हाल मालूम है। इसलिए आप कृपा करके मेरे प्रश्न का उत्तर देकर मेरा संशय दूर कर दीजिए। मैं समझता हूँ कि समय, दैव और होनी को कोई जीव न तो टाल सकता है और न मिथ्या कर सकता है। जो ऐसा न होता तो महाराज द्रुपद की कन्या, यज्ञवेदी से उत्पन्न और अयोनिजा, महाराज पाण्डु की पुत्रवधू, हम लोगों की पत्नी, पतिव्रता, धर्म का ज्ञान रखनेवाली द्रौपदी को पर-पुरुष कैसे हर ले जाता? जैसे पवित्र हृदयवाले मनुष्य को चोरी और बेईमानी के भाव नहीं छू सकते वैसे ही पर-पुरुष का द्रौपदी को छूना असम्भव था। द्रौपदी ने कोई पाप या निन्दित कर्म कभी नहीं किया; वे सदा ब्राह्मणों की सेवा आदि धर्मकार्यों में ही लगी रहती हैं। उन्हें मूढ़मति जयद्रथ बलपूर्वक हर ले गया। पीछे से हम लोगों ने पकड़कर उस पापी का सिर मूँड़ दिया और संग्राम में सहायकों सहित उस दुष्ट को हराया। इस प्रकार
१० उसकी सेना का संहार करके, उसको उसके कुकर्म का दण्ड देकर हम द्रौपदी को ले आये। भगवन्, इस प्रकार अचानक हमारी स्त्री हरी गई। हम वनवास के अनेक कष्ट पा रहे हैं। शिकार करके हम अपनी जीविका चला रहे हैं। वन में रहकर हमें वनवासी जीवों की हिंसा करनी पड़ती है। हमारे ही भाइयों ने कपट करके हमें देश से निकाल दिया है। इन सब कष्टों को सहते-सहते
१२ मैं बहुत ही दुःखित हो रहा हूँ। ब्रह्मन्, मैं आपसे यही पूछता हूँ कि मुझ-सा अभागा कोई और पुरुष भी पहले कभी आपने देखा या सुना है?

दो सौ चौहत्तर अध्याय

रामचन्द्र के उपाख्यान का आरम्भ

मार्कण्डेय ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, रामचन्द्र ने वनवास और स्त्री-वियोग के कारण तुमसे भी अधिक दुःख पाया है। राक्षसेन्द्र दुरात्मा महाबली रावण मायाबल का आश्रय ले, जटायु

गिद्ध को मारकर, आश्रम से रामचन्द्र की भार्या सीता को हर ले गया था। पीछे से वानर-राज सुग्रीव की सहायता से रामचन्द्र, समुद्र में सेतु बाँधकर, लङ्का में पहुँचे और तीक्ष्ण बाणों से लङ्का को तहस-नहस और वहाँ के राक्षसों को मारकर अपनी स्त्री को वहाँ से ले आये।

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, रामचन्द्र का जन्म किस वंश में हुआ था? वे कैसे शूर-वीर थे? उनका वैरी रावण किसका लड़का था? रामचन्द्र से रावण का वैर क्यों हुआ? विस्तार के साथ सब कथा मुझसे कहिए। मैं यशस्वी रामचन्द्र के चरित्र को सुनना चाहता हूँ।

मार्कण्डेय ने कहा—राजन्, इक्ष्वाकु के वंश में अज नाम के एक प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। उनके पुत्र दशरथ स्वाध्यायनिरत और पवित्रहृदय थे। दशरथ के राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नाम से प्रसिद्ध—धर्म और अर्थ के विषयों में पण्डित—चार पुत्र उत्पन्न हुए। रामचन्द्र की माता का नाम कौसल्या, भरत की माता का नाम कैकेयी और लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न की माता का नाम सुमित्रा था। रामचन्द्र की स्त्री सीता विदेहराज जनक की कन्या थीं। उन्हें विश्वकर्मा ने अपने हाथ से बनाया था। वे अयोनिजा थीं। यह रामचन्द्र और सीता के जन्म का ब्यौरा मैंने तुमसे कहा। अब रावण के जन्म का हाल सुनो। १०

रावण के पितामह महातपस्वी साक्षात् ब्रह्माजी हैं, जिन्हें सब लोग स्वयंभू, सब लोकों के प्रभु और उत्पन्न करनेवाले कहते हैं। ब्रह्मा के मानस पुत्रों में से एक का नाम पुलस्त्य था। पुलस्त्य के गो नाम की भार्या से वैश्रवण नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

वैश्रवण, पिता की सेवा छोड़कर, अपने पितामह ब्रह्मा की उपासना करने लगा। इससे पिता ने कुपित होकर, पुत्र को पीड़ा पहुँचाने के लिए, योगबल से दूसरा शरीर धारण कर लिया। इस प्रकार अपने आधे अंश से दूसरा रूप रखकर महात्मा पुलस्त्य विश्रवा नाम से प्रसिद्ध हुए। उधर ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर वैश्रवण को अमर, धनेश्वर और लोकपाल बना दिया। महादेव से वैश्रवण की मित्रता हो गई। उनके नलकूबर नाम का पुत्र भी उत्पन्न हुआ। ब्रह्माजी ने वैश्रवण को राक्षसों से बसी हुई लङ्का नाम की राजधानी और पुष्पक नाम का विमान भी दिया। वह विमान सब जगह जा सकता था। इस प्रकार ब्रह्मा ने वैश्रवण को सब यक्षों का स्वामी और राजराज बना दिया। १७

दो सौ पचहत्तर अध्याय

रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण की उत्पत्ति

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, पुलस्त्य के कुपित होने पर उनके आधे शरीर से विश्रवा नाम के जो मुनि उत्पन्न हुए वे क्रोधपूर्ण दृष्टि से कुबेर की ओर देखने लगे। राजन्, राक्षसों और

यक्षों के राजा कुबेर अपने पिता को कुपित देखकर उन्हें प्रसन्न करने का यत्न करने लगे। लङ्कानिवासी
नर-वाहन राजराज कुबेर ने पिता विश्रवा के पास—उनकी सेवा करने के लिए—राका, मालिनी और
पुष्पोत्कटा नाम की तीन राक्षसियाँ रख दीं। नाचने और गाने में चतुर वे सुन्दरी राक्षसियाँ कल्याण
की इच्छा से, परस्पर होड़ लगाकर, एक दूसरे से बढ़कर ऋषि को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगीं।
महात्मा विश्रवा ने प्रसन्न होकर तीनों राक्षसियों को, उनकी इच्छा के अनुसार, लोकपाल-सदृश प्रतापी
पुत्र दिये। मुनि के वरदान से पुष्पोत्कटा के महाबली रावण और कुम्भकर्ण नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए।
मालिनी के गर्भ से विभीषण का जन्म हुआ। राका के गर्भ से खर नाम का एक पुत्र और शूर्पणखा नाम
की एक कन्या उत्पन्न हुई।

विभीषण सब भाइयों से बढ़कर सुन्दर, धर्मात्मा और कर्मनिष्ठ थे। रावण सबमें श्रेष्ठ, बड़ा
१० उत्साही, महावीर, महाबली और पराक्रमी था। कुम्भकर्ण रजनीचर, मायावी, रौद्रमूर्त्ति, असीम बलवान्
और युद्ध करने में सबसे बढ़कर था। खर मांसाहारी, ब्राह्मणद्रोही और धनुर्विद्या में सबसे बढ़कर
निपुण था। भयङ्कर रूपवाली राक्षसी शूर्पणखा सदा सिद्ध लोगों की तपस्या में विघ्न
डाला करती थी।

राजन्! वे सब शूर, सुचरित, सुव्रत और वेदपाठी थे और अपने पिता के साथ गन्धमादन
पर्वत पर रहते थे। एक दिन उन्होंने अपने भाई नरवाहन कुबेर को परम ऐश्वर्य से भूषित होकर पिता
के पास बैठे देखा। कुबेर के ऐश्वर्य को न देख सकने के कारण अत्यन्त कुपित होकर, आप भी ऐश्वर्य
पाने के लिए, उन्होंने घोर तप करने का निश्चय किया। सब भाई ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए घोर
तप करने लगे। रावण केवल वायु भक्षण करके पञ्चाग्नि तापता हुआ एक पैर से खड़ा हज़ार वर्ष
तक तप करता रहा। कुम्भकर्ण ने यताहार और यतव्रत होकर, सिर नीचे लटकाकर, हज़ार वर्ष तक
घोर तप किया। विभीषण भी केवल एक सूखा पत्ता खाकर उपवास-पूर्वक जप में तत्पर रहकर हज़ार
वर्ष तक कठिन तप करते रहे। इन लोगों के तप करने के समय खर और शूर्पणखा, दोनों इन
लोगों की सेवा और रक्षा करते थे। हज़ार वर्ष पूरे होने पर दुर्द्धर्ष रावण ने अपना सिर काटकर
२० अग्नि में आहुति दे दी। उसके इस काम से जगत्पति ब्रह्मा बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने रावण आदि
के पास आकर उन्हें तप करने से रोका और सबसे अलग-अलग वरदान माँगने के लिए कहा।
ब्रह्मा ने कहा—हे पुत्रो, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। अब तप करना छोड़कर वरदान माँगो। अमरभाव
के सिवा तुममें से जिसका जो जी चाहे वह एक-एक वर माँग लो। हे रावण, तुमने श्रेष्ठ पद
पाने की इच्छा से अपना सिर काटकर अग्नि में आहुति दे दी है, इसलिए मैं तुमको यह वर
देता हूँ कि तुम जितने चाहोगे उतने सिर तुम्हारे हो जायँगे और उनसे तुम्हारा रूप नहीं विग-
ड़ेगा। तुम अपनी इच्छा के अनुसार जैसा चाहोगे वैसा रूप रख सकोगे। युद्ध में सब शत्रुओं
को तुम हरा सकोगे।

रावण ने कहा—भगवन्, मैं यह वरदान आपसे मागता हूँ कि गन्धर्व, देवता, असुर, यक्ष, राक्षस, नाग, किन्नर और भूतों से मेरी हार न हो। ब्रह्मा ने कहा—एक मनुष्यजाति को छोड़कर, तुमने जिनका नाम लिया उन लोगों से तुम्हें तनिक भी भय नहीं होगा। मैंने ऐसा ही विधान कर रक्खा है। मार्कण्डेयजी कहते हैं—हे युधिष्ठिर, दुर्बुद्धि दशानन ब्रह्मा से यह वर पाकर संतुष्ट हुआ। मनुष्यों को अपना आहार जानकर उसने उन्हें कुछ समझा ही नहीं। उसने सोचा, तुच्छ मनुष्यों से मुझे क्या डर है।

भगवान् ब्रह्मा वहाँ से कुम्भकर्ण के पास आये। उन्होंने उससे भी वर माँगने के लिए कहा। देवताओं की माया से मोहवश होकर उसने ब्रह्मा से बहुत समय तक सोने का वरदान माँगा। उसे वरदान देकर ब्रह्माजी विभीषण के पास गये। उनसे ब्रह्मा ने कहा—पुत्र, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ; तुम मुझसे जो चाहो सो वरदान माँग लो। ब्रह्मा के बारम्बार यों कहने पर विभीषण ने कहा—ब्रह्मन्, मैं यही वर माँगता हूँ कि घोर आपत्ति के समय भी मेरी प्रवृत्ति अधर्म की ओर न
हो और बिना सीखे ही मुझे ब्रह्मास्त्र का ज्ञान हो जाय। ब्रह्मा ने कहा—हे शत्रु-दमन, राक्षसयोनि में ३०
जन्म लेने पर भी तुम्हारी प्रवृत्ति अधर्म की ओर नहीं है, इसलिए इन वरदानों के सिवा मैं तुमको अमर-भाव भी देता हूँ।

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, रावण ने इस प्रकार ब्रह्मा से वरदान पाने पर कुबेर पर चढ़ाई की और उन्हें युद्ध में हराकर लङ्कापुरी छीन ली। कुबेरजी लङ्कापुरी को छोड़कर गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किम्पुरुष आदि के साथ गन्धमादन पर्वत पर चले गये। रावण ने बलपूर्वक उनसे पुष्पक विमान भी छीन लिया। कुबेर ने कुपित होकर रावण को शाप दिया कि अरे दुष्ट, यह विमान तुझे लेकर नहीं चलेगा। जो महापुरुष युद्ध में तुझे मारेंगे वही इस पर सवारी कर सकेंगे। मैं तेरा बड़ा भाई हूँ। तूने मेरा अनादर किया है, इस कारण शीघ्र ही तू मारा जायगा।

महाराज, धर्मात्मा विभीषण सज्जनों के अनुगामी और सुमार्ग पर चलनेवाले होने के कारण शोभा और ऐश्वर्य के अधिकारी हुए। कुबेरजी ने उन पर अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें यक्षों और राक्षसों का सेनापति बना लिया। उधर मनुष्यभक्षी महाबली राक्षसों और पिशाचों ने मिलकर रावण को अपना राजा बना लिया। इस प्रकार राज्यासन पाकर कामरूपी आकाशचारी प्रबल राक्षसराज रावण ने दैत्यों, दानवों और देवताओं के सब श्रेष्ठ पदार्थ छीन लिये। महाबली दशानन ने सब लोकों को पीड़ा पहुँचाकर रुला दिया, इसी से उसका नाम रावण पड़ा। महाराज, रावण से सब
देवता भी डरते थे। ४०

दो सौ छिहत्तर अध्याय

ब्रह्मा की आज्ञा से सब देवताओं का वानरयोनि में उत्पन्न होना

मार्कण्डेय कहते हैं कि तब रावण के सताये हुए सब ब्रह्मर्षि, देवर्षि और सिद्ध लोग अग्निदेव को आगे करके ब्रह्मा की शरण में गये। अग्नि ने ब्रह्मा से कहा—भगवन्, विश्रवा के बेटा रावण को आपके वरदान से कोई मार नहीं सकता। इस समय वह महाबली दुष्ट तरह-तरह से सब प्रजा को सता रहा है। आप ही उससे हम सबकी रक्षा कीजिए। आपके सिवा और कोई हम लोगों की रक्षा नहीं कर सकता।

ब्रह्मा ने कहा—हे अग्नि! देवता और दैत्य, कोई भी युद्ध करके रावण को हरा नहीं सकता। मैंने उस दुष्ट के दमन का उपाय पहले ही ठीक कर रक्खा है। मेरे कहने से, योद्धाओं में श्रेष्ठ, चतुर्भुज, विष्णु भगवान् मनुष्य-शरीर से पृथ्वी पर अवतार लेंगे और वही रावण को मारकर तुम्हारी सहायता करेंगे। मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, अब प्रजापति ब्रह्मा ने सब देवताओं के सामने इन्द्र से कहा—हे इन्द्र, तुम विष्णु की सहायता करने के लिए सब देवताओं के साथ पृथ्वी पर वानरों और रीछों की स्त्रियों में अपने-अपने अंश से ऐसे पुत्र उत्पन्न करो जो कामरूपी और महाबली हों।

अब देवता, गन्धर्व और दानव लोग अपने-अपने अंश से पृथ्वी पर उत्पन्न होने के लिए सलाह करने लगे। महाराज, भगवान् ब्रह्मा ने देवताओं के सामने ही दुन्दुभी नाम की गन्धर्व-कन्या से कहा—तुम देवताओं का काम बनाने के लिए पृथ्वी पर जन्म लो।

ब्रह्मा की आज्ञा पाकर दुन्दुभी ने मनुष्यलोक में जन्म लिया। कैकेयी की दासी कुबड़ी
१० मन्थरा उसी का अवतार थी। इन्द्र आदि देवताओं ने भी वानरों और रीछों की स्त्रियों में अपने अंशों
से अपने ही समान बल, वीर्य और यशवाले श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किये। वे सब पर्वतों के शिखरों को
तोड़नेवाले, वृक्षों और शिलाओं को लेकर लड़नेवाले, वज्र के समान दृढ़ शरीरवाले, बड़े बलवान्, वायु-
वेगशाली हुए। उनमें से किसी-किसी के शरीर में दस हज़ार हाथियों का बल था। वे लोग चाहे जहाँ
जा सकते थे।

महाराज, संसार के सञ्चालक ब्रह्मा ने रावण-वध के लिए यह व्यवस्था करके मन्थरा के रूप से
पृथ्वी पर जन्म लेनेवाली गन्धर्व-कन्या दुन्दुभी को उसका कर्तव्य अच्छी तरह समझा दिया। वायु के
समान वेग से चलनेवाली दुन्दुभी पृथ्वी पर जन्म लेकर, मन्थरा के रूप से इधर-उधर जाकर देव-
१६ कार्य सिद्धि के लिए लगाने-बुझाने लगी।

दो सौ सतहत्तर अध्याय

राम-लक्ष्मण के वनवास की कथा

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, आप रामचन्द्र आदि के जन्म का वृत्तान्त कह चुके। अब कृपा करके यह बताइए कि दशरथ के वीर पुत्र राम, लक्ष्मण और यशस्विनी राजनन्दिनी सीता को वन में क्यों जाना पड़ा?

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, धर्म-कर्म करने में तत्पर, वृद्धों की सेवा करनेवाले, महाराज दशरथ पुत्रों के उत्पन्न होने पर बहुत ही प्रसन्न हुए। उनके चारों महापराक्रमी पुत्र दिन-दिन बढ़कर विद्या सीखने लगे। वेद, वेदाङ्ग, धनुर्वेद आदि की पूरी शिक्षा पाकर जब चारों कुमार ब्रह्मचर्य का समय पूरा कर चुके, तब महाराज दशरथ ने प्रसन्नतापूर्वक उनके ब्याह कर दिये। रामचन्द्र को देखकर दशरथ बड़े प्रसन्न और सुखी होते थे। सबमें बड़े राम गुणों में भी श्रेष्ठ थे। बुद्धिमान् होने के कारण वे पिता को जैसे प्यारे थे वैसे ही सब प्रजा के भी हृदय को आनन्द देते थे। राजन्, रामचन्द्र की भुजाएँ घुटनों तक लम्बी थीं, चाल मस्त हाथी की सी गम्भीर थी, कन्धे बैल के से भरे हुए थे, काले घुँघराले केश थे। उनके सुन्दर शान्त स्वरूप को देखकर शत्रु भी प्रसन्न हो उठते थे। उनकी गरदन शङ्ख ऐसी थी, आँखें लाल और छाती चौड़ी थी। वे बल में इन्द्र के समान, श्रीमान्, महाबाहु, बुद्धि में बृहस्पति के समान, सब विद्याओं में पण्डित, जितेन्द्रिय, दुष्टों को दण्ड देनेवाले, साधुओं की रक्षा करनेवाले, धीर, विजयी, दुर्द्धर्ष
और अजेय थे। कौशल्या के आनन्द और कुल की कीर्ति को बढ़ानेवाले पुत्र राम को देखकर १२
राजा दशरथ को बड़ा आनन्द हुआ।

रामचन्द्र में सब राजोचित गुण और अपने को वृद्ध देखकर एक दिन राजा दशरथ ने पुरोहित से कहा—ब्रह्मन्, आज शुभ पुष्य नक्षत्र है और रात को पुण्ययोग उपस्थित होगा। मैं राम का राज्याभिषेक करना चाहता हूँ। यह ख़बर राम को देकर आप अभिषेक की सब सामग्री मँगवाइए।

कैकेयी की दासी मन्थरा ने ज्योंही राजा के ये वचन सुने त्योंही, देवकार्य का ठीक समय जानकर, वह कैकेयी के पास गई और कहने लगी—रानी, राजा ने इस समय तुम्हारे बड़े दुर्भाग्य की घोषणा की है। क्रोधित विषैला साँप गुप्त रूप से तुम्हें डसने के लिए तैयार है। इस समय सौभाग्य कौसल्या का है, जिनके पुत्र राम को राजगद्दी मिलेगी। तुम अपने को सौभाग्यशालिनी मानती हो; पर तुम्हारे पुत्र को जब राजगद्दी ही नहीं मिली, तब तुम कैसे सौभाग्यशालिनी कही जा सकती हो!

कुटिल प्रकृतिवाली मन्थरा के ये वचन सुनकर, राम के राज्याभिषेक का हाल जानकर, कैकेयी ने उसमें विघ्न डालने का निश्चय कर लिया। वह गहने पहनकर, अपूर्व रूप बनाकर,

२० एकान्त में राजा दशरथ के पास गई। उसने हँसकर मधुर स्वर से कहा—महाराज, आप सत्य-प्रतिज्ञ कहे जाते हैं। मैं इस समय आपसे वह वर माँगने आई हूँ जो आपने एक समय मुझसे माँगने के लिए कहा था, और मैंने आपसे और किसी समय माँग लेने की इच्छा प्रकट की थी। राजन्, वह वर इस समय देकर मुझे सङ्कट से बचाइए।

राजा ने कहा—प्रिये, मैं बड़ी ख़ुशी से वह वर तुमको देता हूँ; जो तुम्हारी इच्छा हो सो माँग लो। बोलो, किस अवध्य का वध किया जाय या कौन मृत्यु-दण्ड के योग्य पुरुष छोड़ दिया जाय? जो कुछ मेरी सम्पत्ति और धन है वह किसको दे दूँ? या ब्राह्मण के सिवा किसका सर्वस्व हर लूँ? मैं इस पृथ्वी पर राजराज और चारों वर्णों की रक्षा करनेवाला हूँ। जो तुम्हारी इच्छा हो उसे शीघ्र कहो, मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करने के लिए तैयार हूँ।

यह सुनकर, राजा को अपने वश में करके उन पर अपना जोर जानकर कैकेयी ने कहा—महाराज, मैं यही वर माँगती हूँ कि राम के राज्याभिषेक के लिए जो सामग्री आई है उससे मेरे पुत्र भरत का राज्याभिषेक किया जाय; और उधर राम मुनिवेष से चौदह वर्ष के लिए वन में जाकर रहें। हे युधिष्ठिर, महाराज दशरथ कैकेयी के मुँह से इस दारुण वरदान की बात सुनकर चुप रह गये। उनसे कुछ कहते न बना।

धर्मात्मा राम को जब यह हाल मालूम हुआ तब वे, पिता की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए, तुरन्त वन को चल दिये। श्रीमान् लक्ष्मण भी धनुष-बाण लेकर बड़े भाई के साथ वन को गये। जनक राजा की कन्या रामचन्द्र की भार्या सीता भी उनके साथ हो लीं। उधर राम वन को
३० गये, इधर पुत्रशोक से विह्वल राजा दशरथ ने शरीर छोड़ दिया। कैकेयी ने देखा, राम वन को चले गये और राजा की मृत्यु हो गई। तब उसने भरत को बुलाकर कहा—बेटा, राजा दशरथ स्वर्गवासी हो गये, और लक्ष्मण के साथ राम वन को चले गये। अब तुम यह निष्कण्टक राज्य लेकर सुख से प्रजा-पालन और ऐश्वर्य भोग करो। धर्मात्मा भरत ने माता के इस कथन से दुःखित होकर कहा—हे कुलनाशिनी, तुमने यह बहुत ही नीच और निष्ठुर काम किया। तुमने धन के लोभ से पति को मारा और इस कुल का सत्यानाश किया। इस प्रकार मेरे सिर पर घोर अपयश लाद कर तुमने अपनी इच्छा पूरी की। यों कहकर भरत रोने लगे।

इसके बाद भरत ने नगरवासियों और प्रजा से यह कहकर कि इस अनर्थ का कारण मैं नहीं हूँ, मेरी माता है, रामचन्द्र को वन से लौटा लाने की तैयारी की। कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी को सवारियों पर बैठाकर आगे भेज दिया और पीछे से शत्रुघ्न और वशिष्ठ, वामदेव आदि ब्राह्मणों और नगरवासियों को साथ लेकर आप भी चले। चित्रकूट पर्वत पर जाकर भरत ने लक्ष्मण सहित रामचन्द्र को धनुष लिए हुए मुनिवेष से विराजमान देखा। भरत ने रामचन्द्र से बहुत कहा, परन्तु रामचन्द्र तो पिता की प्रतिज्ञा पूरी करने

महाराज दशरथ कैकेयी के मुँह से इस दारुण वरदान की बात सुनकर चुप रह गये।—पृ० १२७०

के लिए दृढ़ निश्चय कर चुके थे, इस कारण वे लौटने के लिए राज़ी न हुए। रामचन्द्र ने भरत को लौट जाने की आज्ञा दी।

राम की खड़ाऊँ लेकर भरत लौट आये और नन्दिग्राम में रहकर राज्य का पालन करने लगे। पुरवासी लोग फिर आकर लौटने के लिए न कहें, इस आशङ्का से रामचन्द्र और आगे बढ़ गये और महावन के बीच शरभङ्ग ऋषि के
आश्रम में पहुँचे। रामचन्द्र वहाँ ४०
शरभङ्ग ऋषि का सत्कार करके, दण्डकारण्य के भीतर जाकर, परम रमणीय गोदावरी नदी के किनारे पर पहुँचे और वहीं रहने लगे। वहाँ शूर्पणखा के कारण जनस्थान में रहनेवाले खर नामक राक्षस से रामचन्द्र की शत्रुता हो गई। धर्मात्मा राघव ने तपस्वी मुनियों की रक्षा के लिए चौदह हज़ार राक्षसों सहित खर और दूषण को युद्ध में मार डाला। इस प्रकार राक्षसों को मारकर रामचन्द्र ने उस तपोवन को बाधा-विहीन कर दिया।

उन राक्षसों के मारे जाने पर और अपने नाक-ओठ कट जाने पर रक्त बहाती हुई शूर्पणखा लङ्का में अपने भाई रावण के पास गई। दुःख से विह्वल शूर्पणखा रावण के पैरों पर गिर पड़ी। सूखे हुए रक्त से उसका चेहरा और भी भयानक हो रहा था। शूर्पणखा का चेहरा बिगड़ा हुआ देखकर रावण बहुत ही कुपित हुआ। वह दाँत पीसता हुआ अपने आसन से उठ खड़ा हुआ। उसने अपने मन्त्रियों और अनुचरों को वहाँ से हटाकर एकान्त में शूर्पणखा से कहा—बहन, मेरा कुछ खयाल न करके यह मेरा अनादर किसने किया है? किसने तेरी यह दशा की है? कौन तीक्ष्ण शूल हाथ में लेकर आप अपने शरीर में भोंकना चाहता है? कौन मूर्ख सिर पर आग रखकर बेखटके सो रहा है? किसने तीक्ष्ण विषवाले साँप को लात मारी है? किसने महाबली सिंह की दाढ़ उखा-
ड़ने का दुःसाहस किया है? महाराज, यों कहते-कहते रावण के आँख, नाक, कान आदि ५०
अङ्गों से उसी तरह आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं, जिस तरह रात को जलते हुए वृक्ष के छेदों से आग की लपटें निकलती हैं।

तब रावण की बहन शूर्पणखा ने उससे रामचन्द्र के पराक्रम का हाल और खर-दूषण आदि राक्षसों के मरने का वृत्तान्त, आदि से अन्त तक, कह सुनाया। रावण ने विचारकर

कर्त्तव्य का निश्चय किया। इसके बाद नगर की रक्षा का प्रबन्ध करके वह समुद्र के ऊपर
आकाश में पहुँचा। गम्भीर जलवाले सागर की सैर करता हुआ रावण इस प्रकार त्रिकूट पर्वत
और काल पर्वत को लाँघकर भगवान् शङ्कर के प्रिय स्थान गोकर्ण क्षेत्र में पहुँचा। वहीं पर
रावण का पुराना मन्त्री मारीच राक्षस राम की डर से, जान बचाने के लिए, तपस्वी के वेष में
५६ रहता था। रावण उसके पास गया।

दो सौ अठहत्तर अध्याय

सीता-हरण की कथा

मार्कण्डेय कहते हैं—रावण को अपने यहाँ आया हुआ देखकर मारीच जल्दी से खड़ा हो गया। उसने फल-मूल आदि अर्पण करके रावण का सत्कार किया। रावण जब विश्राम कर चुका तब बुद्धिमान् मारीच ने पूछा—हे राक्षसराज, आप आज उदास क्यों हैं? आपका चेहरा मलिन क्यों है? आपकी राजधानी में कुशल-मंगल है न? आपकी सब प्रजा पहले की तरह आपके अधीन है न? यहाँ आपके आने का क्या कारण है? आज्ञा कीजिए; आपका क्या काम है? वह कैसा ही कठिन क्यों न हो, मैं उसे करने के लिए तैयार हूँ।

क्रोध से विह्वल रावण ने संक्षेप में राम की करनी कहकर अपना विचार मारीच के आगे
प्रकट किया। रावण के मुँह से सब हाल सुनकर मारीच ने कहा—राजन्, राम से भिड़ने का विचार
छोड़ दीजिए। मैं उनके बल और पराक्रम को अच्छी तरह जानता हूँ। महात्मा राम के बाण के वेग
को भला कौन सह सकता है? मेरे यों तपस्वी होने का कारण वही पुरुष श्रेष्ठ है। किस दुरात्मा ने आप-
को यह विनाश का द्वार दिखाया है? महाराज, मारीच के ये वचन सुनकर कुपित रावण ने डाँटकर
उससे कहा—जो तुम मेरा कहा न मानोगे तो मैं तुमको मार डालूँगा। यह सुनकर मारीच ने मन में
सोचा कि मुझे दोनों तरह मरना पड़ेगा, तो फिर राम के हाथ से ही क्यों न मरूँ? वही मौत अच्छी
१० है। मैं इसका कहना करके राम के हाथ से मरूँगा तो मुझे सद्गति मिलेगी। सोच-विचारकर
मारीच ने रावण से कहा—बताइए, मैं आपका कौन सा काम करूँ? इच्छा न होने पर भी,
विवश होकर, उसे मैं करूँगा।

रावण ने कहा—मारीच, तुम विचित्र [स्वर्णमय] मृग का रूप रखकर राम के आश्रम में जाओ और सीता को लुभाओ। रत्नमय रोम और वैसे ही सींगों से शोभित तुमको देखकर, तुम्हें लाने के लिए, सीता अवश्य राम को भेजेगी। राम जब आश्रम से चले जायँगे तब सीता को वश में करके मैं हर लाऊँगा। प्यारी स्त्री का वियोग होने पर, उसके दुःख से, राम अपने प्राण दे देंगे। बस, इतनी ही सहायता मैं तुमसे चाहता हूँ।

रावण के वचन सुनकर मन में दुःखित मारीच ने अपने हाथ अपना औध्र्वदैहिक कर्म (मृतक-कर्म) किया। अब वह रावण के पीछे-पीछे हो लिया। पराक्रमी राम के आश्रम के पास पहुँचकर दोनों राक्षस पहले की सलाह के अनुसार काम करने लगे। रावण ने आश्रम के पास पहुँचकर सिर मुँड़ाये हुए त्रिदण्डधारी संन्यासी का रूप रख लिया। मारीच भी विचित्र मृग बनकर उस स्थान में पहुँचा। दैव की प्रेरणा से मोहित होकर सीता ने राम से उस मृग को पकड़ लाने के लिए कहा। प्रिया का प्रिय करने के लिए रामचन्द्र धनुष लेकर झटपट उस मृग के पीछे चले। जाते समय वे सीता की रक्षा के लिए लक्ष्मण को छोड़ गये। धनुष, तर्कश, खड्ग आदि बाँधे, हाथों में गोह के चमड़े के अँगुलित्राण आदि पहने रामचन्द्र उसी तरह मृग के पीछे चले, जिस तरह रुद्रदेव तारामृग-रूपी प्रजापति के पीछे दौड़े थे। मृगरूपधारी मायावी मारीच राक्षस कभी छिप जाता था और कभी देख
पड़ता था। इस तरह वह रामचन्द्र को बहुत दूर ले गया। अन्त को राम ने जान लिया कि यह मृग २०
कोई मायावी राक्षस है। तब उन्होंने धनुष पर अमोघ बाण चढ़ाकर मृगरूपी मारीच को मारा। रामचन्द्र का बाण लगने पर मरते समय मारीच ने राम के से स्वर में आर्तनाद करके जोर से "हाय सीता! हाय लक्ष्मण!" कहा।

उस करुण वाणी को सुनते ही, राम के अनिष्ट की आशङ्का से व्याकुल होकर, सीता उसी ओर दौड़ पड़ीं। तब लक्ष्मण ने कहा—हे वैदेही, तुम किसी तरह की शङ्का न करो। महाबाहु रामचन्द्र को कौन मार सकता है? अभी दम भर में तुम रामचन्द्र को यहीं देखोगी।

लक्ष्मण की बातें सुनकर सीता को, उनके मन में पाप होने का सन्देह हुआ। ये रामचन्द्र के मरने पर मुझे प्राप्त करना चाहते हैं, इसी से राम की सहायता करने नहीं जाते। यह सोचकर वे रोने और लक्ष्मण को कठोर वचन कहने लगीं। पतिव्रता सीता का चरित्र बहुत ही शुद्ध था, परन्तु उस समय स्त्रीस्वभाव के वश होकर उन्होंने आप अपना सर्वनाश कर लिया। वे लक्ष्मण से कहने लगीं—अरे मूढ़, तू अपने हृदय में जो इच्छा रखता है वह कभी पूरी नहीं हो सकती। मैं शस्त्र लेकर अपने हाथ से अपनी हत्या कर लूँगी, पर्वत के शिखर पर से नीचे गिर पड़ूँगी, या जलती हुई आग में जल मरूँगी, परन्तु अपने पति राम को छोड़कर कभी तुझे स्वीकार नहीं करूँगी। जैसे सिंह की स्त्री सियार को नहीं स्वीकार कर सकती, वैसे ही मैं तुझ नीच प्रकृति गुणहीन को न ग्रहण करूँगी।

राम को परम प्रिय समझनेवाले, सच्चरित्र लक्ष्मण सीता की ये कठोर बातें सुनकर, हाथों से कान मूँदकर, रामचन्द्र के पास चल दिये। धनुर्द्धर लक्ष्मण राम के चरण-चिह्न देखते
हुए, सीता का खयाल छोड़कर, चले गये। इसी बीच में मौका पाकर नीच राक्षस रावण, राख में ३०
छिपी आग के समान, सन्यासी के रूप से, सीता को हर ले जाने के लिए राम के आश्रम में पहुँचा। धर्म को जाननेवाली जानकी ने [अतिथि-रूप से] आये हुए संन्यासी को देखकर उसका

सत्कार किया और खाने के लिए कन्द-मूल फल आदि दिये। रावण ने सीता के दिये हुए फल आदि को स्वीकार न करके, अपना असली रूप प्रकट करके, कहा—हे सीता, मैं राक्षसराज रावण हूँ। महासागर के उस पार मेरी राजधानी लङ्कापुरी है। वहाँ तुम नर-नारियों के बीच मेरे साथ परम शोभा पाओगी। हे सुन्दरी, तपस्वी राघव को छोड़कर तुम मेरी भार्या हो जाओ। रावण के ये दुर्वाक्य सुनकर, पतिव्रता जानकी दोनों कानों में उँगली लगाकर, कहने लगीं—ऐसा न कह, ऐसा न कह। नक्षत्रों सहित आकाश चाहे पृथ्वी पर गिर पड़े, पृथ्वी के चाहे टुकड़े-टुकड़े हो जायँ और अग्नि चाहे शीतल हो जाय, पर मैं रघुनन्दन के सिवा किसी और को नहीं भज सकती? हथिनी क्या कभी मदमत्त जङ्गली गजराज को छोड़कर शूकर को छू सकती है? जिस स्त्री ने पुष्पों से उत्पन्न मधु और बढ़िया मदिरा पी है, वह क्या कभी काँजी
४० को पी सकती है?

इस प्रकार रावण का तिरस्कार करके जानकी अपनी कुटी के भीतर चली गई। क्रोध के मारे उनके ओठ फड़कने लगे और वे अपने हाथ मींजने लगीं। रावण ने दौड़कर उन्हें रोक लिया। फिर वह दुष्ट रूखे वचनों से झिड़ककर अचेत सी सती सीता के केश पकड़कर आकाश-मार्ग में चला गया। राक्षस जब उनको इस प्रकार हरकर ले चला तब वे "हा राम! हा राम!!" कहकर जोर से चिल्लाने
४३ और रोने लगीं। पर्वत-निवासी गिद्धराज जटायु ने दूर से सीता की यह दशा देखी।

दो सौ उन्नासी अध्याय

कबन्ध-वध

मार्कण्डेय कहते हैं—अरुण का पुत्र, गिद्धों का राजा, जटायु महाराज दशरथ का मित्र था। उसके भाई का नाम सम्पाति था। जटायु ने दशरथ की बहू सीता को रावण की गोद में देखकर, कुपित होकर, राक्षसराज पर हमला किया। रावण के पास पहुँचकर जटायु ने कहा—अरे राक्षस, तू शीघ्र मैथिली को छोड़ दे। ये मेरी बहू हैं। मेरे जीते-जी तू इनको कैसे ले जा सकता है? जो तू इनको नहीं छोड़ेगा तो मैं भी तुझे जीता न रहने दूँगा। अब जटायु अपने तीक्ष्ण नखों और पङ्खों से रावण के शरीर पर प्रहार करने लगा। उसने इतनी चोटें मारीं कि रावण घायल हो गया। पर्वत से जैसे झरने झरते हैं वैसे ही रावण के शरीर से रक्त की धाराएँ बह चलीं। राम का प्रिय और हित करने की इच्छा से जटायु जब इस प्रकार रावण को हैरान करने लगा तब उसने कुपित होकर, खड्ग निकालकर, जटायु के दोनों पंख काट डाले। रावण ने इस प्रकार पर्वत के टूटे हुए शिखर के समान जटायु को मार गिराया। इसके बाद फिर वह दुष्ट राक्षस सीता को गोद में लेकर, आकाश-मार्ग से अपनी नगरी की ओर चल दिया। राह में जानकी जहाँ-जहाँ कोई आश्रम, सरोवर या नदी देखती थीं वहाँ-वहाँ अपने गहने उतारकर

अब जटायु अपने तीक्ष्ण नखों और पंखों से रावण पर प्रहार करने लगा। पृ० १२७४

फेंकती जाती थीं। एक स्थान पर पर्वत के ऊपर उन्हें पाँच बन्दर बैठे हुए देख पड़े। जानकी ने वहाँ पर अपना दिव्य वस्त्र (दुपट्टा) उतारकर फेंक दिया। वह पीले रङ्ग का कपड़ा, बादल में बिजली
की तरह, वायु से उड़कर उन वानरों के बीच में जा गिरा। आकाशगामी राक्षस शीघ्र ही विश्वकर्मा की १०
बनाई हुई अपनी लङ्कापुरी में पहुँच गया। महाराज, वह पुरी बहुत ही सुन्दर और अनेक द्वारों से शोभित थी; वह चारों ओर दीवार और खाई से अत्यन्त दुर्गम थी। राक्षसराज रावण सीता को लेकर लङ्का के भीतर चला गया।

इधर रामचन्द्र मृगरूपी मारीच को मारकर लौटे तो उन्हें राह में लक्ष्मण अपनी ओर आते देख पड़े। उनको देखकर रामचन्द्र मन में कहने लगे कि राक्षस-परिपूर्ण उस वन में सीता को अकेली छोड़कर लक्ष्मण कैसे चले आये। मृगरूपधारी राक्षस का अपने को दूर ले जाना और लक्ष्मण का चले आना सोचकर रामचन्द्र बहुत ही चिन्तित हुए। अपनी बुद्धि की निन्दा करते हुए रामचन्द्र तेज़ी के साथ लक्ष्मण के पास पहुँचकर कहने लगे—तुम यहाँ कैसे चले आये? जान पड़ता है, अब मैं जाकर सीता को जीवित न देख सकूँगा। राम के ये वचन सुनकर लक्ष्मण ने सीता के दुर्वचन कहने का सब हाल कह सुनाया। सब वृत्तान्त सुनकर अमङ्गल की आशङ्का से रामचन्द्र का हृदय मानों जलने लगा। वे तेज़ी के साथ आश्रम की ओर चले।

राह में उन्हें पर्वत के समान शरीरवाला, मृतप्राय, जटायु देख पड़ा। राक्षस समझकर, धनुष चढ़ाकर, लक्ष्मण सहित रामचन्द्र उसकी ओर दौड़े। तब तेजस्वी गिद्धराज जटायु ने राम-
लक्ष्मण से कहा तुम्हारा भला हो। मैं दशरथ का मित्र, गिद्धों का राजा, जटायु हूँ। जटायु २०
के अस्पष्ट शब्द को सुनकर राम और लक्ष्मण आपस में कहने लगे—यह कौन है, जो हमारे पिता का नाम ले रहा है। पास पहुँचकर राम और लक्ष्मण ने देखा कि वह एक पक्षी है, जिसके दोनों पङ्ख कटे हुए हैं। जटायु ने दोनों भाइयों से कहा कि सीता को छुड़ाने के लिए मैं रावण से लड़ा था, उसी ने मेरी यह दशा की है। तब रामचन्द्र ने जटायु से पूछा—रावण किस दिशा को गया है? जटायु में बोलने तक की शक्ति न थी। उसने सिर हिलाकर रावण के जाने का मार्ग बताया और प्राण छोड़ दिये। जटायु के इशारे से रामचन्द्र को मालूम हो गया कि रावण दक्षिण दिशा को गया है। अब उन्होंने लक्ष्मण के साथ अपने पिता के मित्र जटायु का दाह-कर्म किया [और तिलोदक दिया]। वहाँ से चलकर रामचन्द्र अपने आश्रम में पहुँचे। जाकर देखा, कुटी सूनी पड़ी है, आसन आदि उलटे-पलटे पड़े हैं, कलश आदि टूटे-फूटे पड़े हैं और सैकड़ों सियार इधर-उधर घूम रहे हैं।

सीता-हरण से अत्यन्त दुःखित और शोक-विह्वल होकर दोनों भाई उन्हें खोजते हुए दण्डकारण्य में दक्षिण की ओर बढ़े। उन्होंने एक जगह पर देखा, जैसे दावानल लगा हो वैसे सब जीव डरकर चिल्ला रहे हैं और मृगों के झुण्ड आगे चले जा रहे हैं! थोड़ी देर में उन्हें पर्वत

सा ऊँचा भयङ्कर कबन्ध देख पड़ा। उसके कन्धे साखू के पेड़ इतने ऊँचे और हाथ बहुत ही लम्बे थे। उसके पेट के भीतर बड़ा भारी मुँह था और उसमें बड़ी-बड़ी आँखें चमक रही थीं। उस कबन्धरूपी राक्षस ने आगे बढ़कर लक्ष्मण का हाथ पकड़ लिया। यह देखकर लक्ष्मण बहुत ही
३० घबराये और दुःखित हुए। वे रामचन्द्र से कहने लगे -यह मेरी दशा देखिए। आप राज्य से वञ्चित हुए, पिता की मृत्यु हुई, सीता को राक्षस हर ले गया, और मैं इस सङ्कट में पड़ गया! आप जब अयोध्या में सीता के साथ लौटकर जायँगे और अपने पुरखों के राज्य-सिंहासन पर बैठेंगे तब उस उत्सव को मैं अभागा न देख सकूँगा। वे धन्य हैं, जो कुश, लाई, शमी और जल से अभिषेक होने पर आपके, मेघ-मुक्त चन्द्रमण्डल के समान शोभित, मुख को देखेंगे। बुद्धिमान् लक्ष्मण इस तरह कहकर अनेक प्रकार से विलाप करने लगे।

लक्ष्मण को विलाप करते देखकर कभी न घबरानेवाले रामचन्द्र ने कहा—हे पुरुषसिंह, मेरे रहते यह दुष्ट राक्षस तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता। तुम घबराओ मत। तुम फुर्ती के साथ

इसका दाहना हाथ काट डालो, मैं इसका बायाँ हाथ काटे डालता हूँ। बस, उन्होंने पैनी तलवार से तिल के पेड़ की तरह उसका बायाँ हाथ काट डाला। बलशाली लक्ष्मण ने भी रामचन्द्र को अपने पास देखकर खड्ग से राक्षस का दाहना हाथ काट डाला। अब लक्ष्मण उसकी कोख में प्रहार करने लगे। तब वह राक्षस प्राण-हीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस समय उसके शरीर से एक दिव्य रूपवाला पुरुष निकला। प्रज्वलित सूर्य के समान वह तेजस्वी पुरुष आकाशमार्ग से जाकर विराजमान हुआ।
४० रामचन्द्र ने उससे पूछा—तुम कौन हो? यह अद्भुत घटना कैसे और किसकी इच्छा से हुई? उस पुरुष ने कहा—हे नरेन्द्र, मैं गन्धर्व हूँ। मेरा नाम विश्वावसु है। ब्राह्मण के शाप से मुझे यह राक्षसयोनि मिली थी। हे विभो, लङ्का में रहनेवाला राक्षसराज रावण सीता को हर ले गया है। इसलिए आप वानरराज सुग्रीव के पास जाइए; वे आपकी सहायता करेंगे। ऋष्यमूक पर्वत के पास पवित्र जलवाली, हंस-कारण्डव आदि पक्षियों से शोभित, पम्पा नाम की झील है। वहीं पर सुवर्ण-

मालाधारी वानरराज बाली के भाई सुग्रीव, अपने चार सचिव वानरों के साथ, रहते हैं। उनसे मिलकर आप अपने दुःख का हाल कहिए। वे भी आपके समान विपन्न हैं। वे अवश्य आपकी सहायता करेंगे। मैं इतना ही बता सकता हूँ कि वानरराज सुग्रीव को रावण का घर मालूम है और उनकी सहायता से आप जानकी के दर्शन पावेंगे। हे युधिष्ठिर, इतना कहकर वह तेजस्वी दिव्य पुरुष अन्तर्द्धान हो गया। यह दृश्य देखकर वीर राम-लक्ष्मण को बड़ा आश्चर्य हुआ। ४८

दो सौ अस्सी अध्याय

बाली का वध और सुग्रीव से रामचन्द्र की मित्रता

मार्कण्डेय कहते हैं—सीता के वियोग से व्याकुल रामचन्द्र अब थोड़ी ही दूर पर स्थित, कमल-उत्पल आदि पुष्पों से शोभित 'पम्पा' झील के पास पहुँचे। वहाँ शीतल मन्द सुगन्ध मनोहर वायु लगने से उन्हें अपनी प्रिया की प्रेम-पवित्र मूर्त्ति का स्मरण हो आया। प्रिया की याद आ जाने से कामबाण-पीड़ित रामचन्द्र विलाप करने लगे। तब लक्ष्मण ने कहा—हे आर्य, जैसे वृद्ध विद्वानों का संग करनेवाले आत्मज्ञानी पुरुष को माया नहीं सताती वैसे आपको ऐसा मोह का भाव न होना चाहिए। आपको सीता की खबर और रावण का पता मिल गया है। अब पौरुष और बुद्धि की सहायता से आप अपना कार्य सिद्ध करने का यत्न कीजिए। आइए, हम लोग पर्वत पर वानरराज सुग्रीव के पास चलें। आपका शिष्य, सहायक और सेवक मैं साथ हूँ। आप क्यों खेद करते हैं? धैर्य धरिए।

लक्ष्मण के प्रबोध-वचन सुनकर रामचन्द्र सुस्थ और कार्य में तत्पर हुए पम्पा के किनारे पहुँचकर दोनों भाइयों ने स्नान और पितरों का तर्पण किया। फिर वहाँ से चलकर वे बहुत से फल-मूल आदि से पूर्ण ऋष्यमूक पर्वत के पास पहुँचे। वहाँ पर्वत के शिखर पर उन्हें पाँच वानर देख पड़े। वानरराज सुग्रीव ने राम-लक्ष्मण को देखकर उनके पास, हिमाचल के समान विशाल शरीर-वाले, बुद्धिमान् हनुमान् को भेजा। उनसे बातचीत करने के बाद दोनों भाई सुग्रीव के पास गये। १०
वहाँ रामचन्द्र से सुग्रीव की मित्रता हो गई। रामचन्द्र ने सुग्रीव से सीता-हरण का हाल और अपना काम कह सुनाया। तब हरे जाने के समय सीता ने जो अपना कपड़ा फेंका था वह लाकर सुग्रीव ने रामचन्द्र को दिया। यह निशानी पाकर उनको निश्चय हो गया कि सीता को रावण ही हर ले गया है। अब रामचन्द्र ने अभिषेक करके सुग्रीव को पृथ्वी भर के वानरों का राजा बना दिया। हे युधिष्ठिर, इसके बाद रामचन्द्र ने युद्ध में बाली को मारने की प्रतिज्ञा की और सुग्रीव ने भी सीता का पता लगाकर उन्हें ले आना अङ्गीकार किया। इस प्रकार परस्पर विश्वास, मित्रता और प्रतिज्ञा करने के बाद राम, लक्ष्मण और अनुचरों सहित सुग्रीव किष्किन्धा पुरी में युद्ध के लिए आये।

किष्किन्धा में पहुँचकर सुग्रीव बड़े ज़ोर से जलप्रवाह की तरह गरजे। बाली उसे नहीं सह सका। वह सुग्रीव से लड़ने के लिए चला। तब उसकी स्त्री तारा ने उसे रोककर कहा—सुग्रीव का सिंहनाद सुनने से मुझे जान पड़ता है कि वह किसी बड़े बली पुरुष का सहारा पाकर, बली होकर, आया है। इसलिए तुम उससे लड़ने पुरी के बाहर मत जाओ। यह सुनकर सुवर्णमाला से भूषित बाली ने चन्द्रमुखी तारा से कहा—तुम सब जीवों के शब्दों और बोलियों को पहचानती हो। भला अपनी बुद्धि से विचारकर बताओ तो कि मेरा भाई सुग्रीव किसका आश्रय पाकर यहाँ आया है और मुझे लड़ने के लिए ललकार रहा है? चन्द्रमा के समान कान्ति-वाली बुद्धिमती तारा ने दम भर सोचकर कहा—राजन्, सुनो। महाराज दशरथ के पुत्र राम की
२० स्त्री वन में हरी गई हैं। महाधनुर्धारी रामचन्द्र ने सुग्रीव से मित्रता की है। दोनों में यह प्रतिज्ञा हुई है कि एक के शत्रु और मित्र को दूसरा भी अपना शत्रु और मित्र समझेगा। राम के छोटे भाई, सुमित्रा के पुत्र, अपराजित, महाबाहु, मेधावी लक्ष्मण भी सुग्रीव का कार्य सिद्ध करने को तैयार हैं। मैन्द, द्विविद, वायुपुत्र हनुमान् और रीछों के राजा जाम्बवान्, ये चारों सुग्रीव के सचिव महात्मा, बुद्धिमान् और बड़े बली हैं। रामचन्द्र के बल का आश्रय पाकर इन सचिवों सहित सुग्रीव तुम्हें मार सकता है।

तारा ने बाली के हित की बात कही थी, पर उसको यह सन्देह हुआ कि तारा सुग्रीव को चाहती है। वानरराज बाली ने ईर्ष्या के मारे तारा को झिड़क दिया और कुछ कठोर वचन भी कहे। इसके बाद बाली कन्दरा के द्वार से निकलकर माल्यवान् पर्वत के पास खड़े हुए सुग्रीव की ओर चला। उसने सुग्रीव से कहा—अरे कायर, मैंने कई बार तुझे जीत-कर भी, भाई समझकर, छोड़ दिया है और तू प्राण लेकर भाग चुका है। अब क्यों मौत को जल्दी बुला रहा है!

बाली के ये वचन सुनकर रामचन्द्र को मानों उपयुक्त समय की सूचना देते हुए सुग्रीव ने कहा—राजन्, तुमने मेरा राज्य और मेरी स्त्री छीन ली है, इसलिए मेरा जीना वृथा है। यही सोचकर मैं तुमसे लड़ने और मरने अथवा मारने आया हूँ। हे युधिष्ठिर,

इस तरह परस्पर बातचीत करके बाली और सुग्रीव दोनों शाल, ताल आदि के वृक्षों और शिलाओं से
घोर युद्ध करने लगे। दोनों एक दूसरे पर प्रहार करते थे। एक दूसरे को पृथ्वी पर पटकता था। दोनों ३०
इधर-उधर पैंतरे बदलकर परस्पर घूँसे मारते थे। इस प्रकार घोर संग्राम होने लगा। नकोटों और दाँतों के प्रहार से दोनों घायल हो गये; शरीर से रक्त बहने लगा। दोनों वीर फूले हुए ढाक के पेड़ों के समान जान पड़ने लगे। दोनों भाइयों का आकार-प्रकार एक सा था। इस कारण पहचान के लिए हनुमान् ने सुग्रीव के गले में फूलों की माला डाल दी। उस समय श्रीमान् सुग्रीव मेघमाला से युक्त मलय पर्वत के समान शोभायमान हुए।

सुग्रीव को चिह्नित देखकर रामचन्द्र ने धनुष चढ़ाया और बाली के हृदय को ताककर भयङ्कर बाण मारा। धनुष के चढ़ाने से जो शब्द हुआ उससे चौंककर बाली डर गया। इतने में ही रामचन्द्र का बाण लगने से उसकी छाती फट गई। वह मुँह से रक्त उगलता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। बाली ने देखा कि उसके सामने लक्ष्मण सहित रामचन्द्र खड़े हुए हैं। उसने रामचन्द्र की ओर देखकर, इस प्रकार छिपकर मारने के लिए, उनका तिरस्कार किया। फिर वह अचेत और प्राणहीन हो गया। तारा ने देखा, उसका स्वामी आकाश से गिरे हुए चन्द्रमा के समान धरती पर पड़ा हुआ है। बाली की मृत्यु हो जाने पर सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य और चन्द्रमुखी सुन्दरी तारा प्राप्त हुई। रामचन्द्र भी चौमासे भर माल्यवान् पर्वत पर रहे। सुग्रीव सदा
उनकी सेवा में रहते थे। ४०

इधर काम के वशीभूत रावण ने लङ्कापुरी में जाकर तपस्वियों के आश्रम के समान शान्तिपूर्ण और नन्दनवन के समान रमणीय अशोकवाटिका के भीतर एक मनोहर भवन में सीता को ठहरा दिया। पति की याद में सीता दुबली हो गईं। कमलनयनी सीता तापसी-वेष से दुःख सहती हुई वहाँ रहने लगीं। वे सदा उपवास करती थीं, और कभी-कभी फल-मूल खा लेती थीं। राक्षसराज रावण ने वहाँ सीता की चौकसी के लिए बहुत सी राक्षसियाँ तैनात कर दीं। वे प्रास, शूल, तलवार, परशु, मुग्दर और जलती हुई लकड़ी आदि हाथ में लिये पहरा दिया करती थीं। उनमें किसी के एक आँख थी। किसी के दो और किसी के तीन आँखें थीं। किसी के मस्तक में आँखें थीं। किसी की बहुत लम्बी जीभ थी। किसी के जीभ थी ही नहीं। किसी के तीन स्तन थे। किसी के एक ही पैर था। किसी के सिर पर तीन चोटियाँ थीं। किसी की आँखें आग की तरह चमक रही थीं। किसी के केश ऊँट के से भूरे और रूखे थे। वे राक्षसियाँ मुस्तैदी से दिन-रात सीता को घेरे रहती थीं। दारुण स्वरवाली पिशाचियाँ सदा सीता को धमकाया करती थीं। "खा लेंगी, मार डालेंगी, तिल-तिल काट डालेंगी, यह हमारे स्वामी का कहा न मानकर भी अब तक जीती है", इस तरह के कठोर वचनों से तर्जन-गर्जन करती हुई वे राक्षसियाँ सुकुमारी सीता को डरवाती थीं।

पति-वियोग के शोक से दुखी सीता लम्बी साँसें लेकर उनसे कहती थीं—बहनो, तुम जल्द मुझे
मारकर खा जाओ। मुझे तनिक भी जीने की लालसा नहीं है। मैं उन कमलनयन, नील कुञ्चित-केश-
कलाप से शोभित, हृदयवल्लभ, प्राणनाथ के बिना निराहार रहकर, ताड़ के पेड़ पर रहनेवाली नागिन
५१ की तरह, अपना शरीर सुखाकर प्राण दे दूँगी। तुम निश्चय जानो, राघव के सिवा मैं और किसी पुरुष
का मुँह नहीं देख सकती। तुम्हारा जो जी चाहे सो करो।

सीता के ये वचन सुनकर कठोर स्वरवाली राक्षसियाँ यह हाल कहने के लिए रावण के
पास गईं। केवल धर्म को जाननेवाली, प्रियवादिनी त्रिजटा राक्षसी सीता के पास रह गई।
उस समय सीता को समझाकर धीरज देती हुई वह कहने लगी—सखी सीता, तुम मुझ पर
विश्वास करो और निडर होकर मेरी बात सुनो। अविन्ध्य नाम के एक बुद्धिमान् बूढ़े राक्षस हैं।
वे राम के हितचिन्तक हैं। उन्होंने तुमसे कहने के लिए मुझसे कहा है कि तुम मेरी ओर से
समझाकर और प्रसन्न करके सीताजी से कहना कि "तुम्हारे स्वामी राम अपने भाई लक्ष्मण सहित
कुशल से हैं। वे इन्द्र के समान बली वानरराज सुग्रीव से मित्रता करके तुम्हारे उद्धार के लिए
यत्न कर रहे हैं। हे भीरु, सब लोग जिसकी निन्दा करते हैं उस पापी रावण से तुम्हें तनिक भी
डर नहीं है। नलकूबर के शाप के कारण वह तुम पर अत्याचार नहीं कर सकता। पापी
दशानन ने पहले नलकूबर की प्रेयसी, और इसी कारण अपनी बहू, रम्भा अप्सरा से बलात्कार
किया था। तब नलकूबर ने उसे शाप दिया था। उसी शाप के कारण, मृत्यु के डर से, कामी
६० रावण किसी विवश और इच्छा न रखनेवाली स्त्री पर अत्याचार नहीं कर सकता। तुम्हारे
स्वामी रामचन्द्र, लक्ष्मण के साथ, यहाँ जल्दी आवेंगे और सुग्रीव तथा उनकी सेना की सहायता
से तुम्हारा उद्धार करेंगे।" हे वैदेही, इसके सिवा मैंने भी ऐसे भयङ्कर स्वप्न देखे हैं जो रावण
और उसके कुल के नाश की सूचना देनेवाले और राक्षसों के लिए अनिष्टसूचक हैं। यह
दारुण, दुष्ट, नीच कर्म करनेवाला निशाचर अपने स्वभाव के कारण सबको डराता है। काल
ने इसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी है। रावण सदा देवताओं से स्पर्धा रखता है। मैंने जो स्वप्न
देखे हैं वे उसके विनाश के चिह्न हैं। मैंने स्वप्न में देखा है कि रावण सिर मुड़ाये, तेल से
नहाये, कीचड़ में डूब रहा है। फिर कई बार देखा कि वह गधे जुते हुए रथ पर बैठा
हुआ नाचता सा है। कुम्भकर्ण आदि राक्षसों को भी देखा है कि उनके सिर मुँड़े हुए
हैं और वे नंगे, लाल चन्दन शरीर में लगाये, लाल फूलों की माला पहने दक्षिण दिशा को जा
रहे हैं। अकेले विभीषण को मैंने देखा है कि वे सफ़ेद छत्र, सफ़ेद पगड़ी, सफ़ेद चन्दन
और मालाओं से शोभित होकर सफ़ेद पर्वत पर चढ़ रहे हैं। विभीषण के चारों मन्त्री भी
सफ़ेद चन्दन और मालाओं से भूषित होकर सफ़ेद पर्वत पर चढ़ रहे हैं। इससे जान
पड़ता है, वे भी विभीषण के साथ इस होनेवाले महाभयजनक सर्वनाश से बच जायँगे। हे

वैदेही, मैंने देखा है कि तुम्हारे स्वामी राम के बाण सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल पर छाये हुए हैं। इसका फल यह जान पड़ता है कि उनका उज्ज्वल यश सम्पूर्ण पृथ्वी पर छा जायगा। मैंने स्वप्न में लक्ष्मण को देखा है कि वे हड्डियों के ढेर पर चढ़े हुए मधु और खीर खा रहे हैं और ऐसा जान पड़ता है कि वे सब दिशाओं को जलाकर भस्म कर देंगे। तुमको भी मैंने देखा है कि तुम्हारा सारा शरीर खून से तर हो ७०
रहा है और एक बाघ तुम्हारी रक्षा कर रहा है। इसके बाद फिर मैंने तुमको उत्तर दिशा में जाते देखा है। मेरे कहे पर विश्वास करो, तुम जल्दी अपने स्वामी रामचन्द्र और लक्ष्मण से मिलकर आनन्दित होगी।

हे युधिष्ठिर; त्रिजटा के ये वचन सुनकर मृगनयनी सीता को फिर पति से मिलने की आशा हुई। इसी बीच में वे भयङ्कर रूपवाली राक्षसियाँ लौटकर आ गईं। उन्होंने देखा कि सीता पहले की तरह त्रिजटा के साथ बैठी हुई हैं। ७४

दो सौ इक्यासी अध्याय

रावण और सीता का संवाद

मार्कण्डेय कहते हैं—स्वामी के विरह से पीड़ित, मैले कपड़े पहने, केवल चूड़ामणि धारण किये, पतिव्रता सीता राक्षसियों के बीच चट्टान पर बैठी हुई दीन भाव से रो रही थीं। इसी समय युद्ध में देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, किंपुरुष आदि से न हारनेवाला रावण काम-बाण से पीड़ित होकर अशोकवाटिका में आया। वह सीता को देखकर उनके पास गया। वह बढ़िया कपड़े, मणिमय कुण्डल, विचित्र माला और मुकुट पहने, साक्षात् वसन्त के समान जान पड़ता था। सावधानी से शृंगार करने पर भी वह कल्पवृक्ष के समान नहीं, बल्कि मसान में लगे हुए पेड़ की तरह भयङ्कर जान पड़ता था। सीता के पास जाकर वह राक्षस, रोहिणी के पास स्थित, शनैश्चर ग्रह के समान जान पड़ा।

सीताजी मृगी के समान डरी हुई थीं। उनके पास जाकर कामदेव के बाणों से पीड़ित रावण कहने लगा—जानकी, अब तक तुम राम के ऊपर बहुत अनुराग दिखा चुकीं। अब मुझ पर प्रसन्न होओ और सुन्दर कपड़े-गहने पहनकर अपना शृङ्गार करो। हे सुन्दरी, मुझे स्वीकार करके मेरी सब स्त्रियों में श्रेष्ठ बनो। मेरे घर में देवताओं, गन्धर्वों, दैत्यों, और दानवों की सैकड़ों कन्याएँ तथा स्त्रियाँ हैं। हे वैदेही, चौदह करोड़ पिशाच, उनसे दूने भीमकर्मा राक्षस १०
और तिगुने यक्ष मेरी आज्ञा में रहते हैं। थोड़े से यक्ष-राक्षस ही मेरे भाई कुबेर के अधीन हैं। कुबेर की तरह मेरी सेवा में भी गन्धर्वों और अप्सराओं के झुण्ड हाज़िर रहते हैं। देखो, मैं ब्रह्मर्षि विश्रवा का पुत्र हूँ और पाँचवें लोकपाल कुबेर के समान मेरा यश भी सर्वत्र प्रसिद्ध है।

मेरे यहाँ भी इन्द्रलोक का सा ऐश्वर्य और दिव्य खाने-पीने की सामग्री है वनवास के कष्टों को भूलकर तुम भी मन्दोदरी के समान मेरी भार्या बनो।

रावण के ये वचन सुनकर, अपना मुँह फेरकर, आँसुओं से अपने पीन और उन्नत स्तनों को भिगोती हुई पतिव्रता सीता—तिनके की ओट करके—उस नीच निशाचर से कहने लगीं—हे राक्षसेश्वर, मैंने अभाग्यवश अनेक बार तेरे मुँह से ऐसे खेदजनक दुर्वचन सुने हैं। हे राक्षस,
२० तेरा भला हो। मैं तुझसे प्रार्थना करती हूँ कि तू मेरी ओर से अपना मन हटा ले। देख, मैं पतिव्रता और पराई स्त्री होने के कारण तुझे नहीं मिल सकती। हे राक्षस, इसके सिवा मनुष्य जाति की स्त्री तेरे उपयोग के योग्य भी नहीं हो सकती। विवश स्त्री पर बलात्कार करने से तुझे क्या आनन्द मिलेगा? साक्षात् प्रजापति के तुल्य, ब्रह्मा के पुत्र, ब्राह्मण तेरे पिता हैं। तू

ख़ुद लोकपाल-तुल्य होकर भी धर्म का पालन क्यों नहीं करता? महेश्वर के सखा, राज-राज, प्रभु, धनेश्वर, कुबेर को अपना भाई कहते तुझे लज्जा नहीं आती!

अब गर्दन और मुख को कपड़े से ढककर सीताजी रोने लगीं। कलेजा धड़कने के कारण उनके स्तन काँप रहे थे। रोती हुई सीता की पीठ पर पड़ी हुई चोटी काली नागिन सी जान पड़ती थी। उनके कहे हुए इन निष्ठुर वचनों को सुनकर, उनके इनकार करने पर भी, दुर्बुद्धि रावण फिर कहने लगा—हे सुन्दरी, कामदेव मेरे शरीर को भले ही जला दे, पर तुम्हारे राज़ी हुए बिना मैं अपनी इच्छा पूरी न करूँगा। मैं क्या करूँ, हम लोगों के आहार मनुष्य राम का ख़याल तुम अभी तक नहीं छोड़तीं।

हे युधिष्ठिर, राक्षसराज रावण परम सुन्दरी चारुहासिनी सीता से यों कहकर अपने घर को
३१ चला गया। शोक से दुर्बल सीता उन राक्षसियों के बीच त्रिजटा के साथ वहीं रहने लगीं।

दो सौ बयासी अध्याय

हनुमान् का सीता की ख़बर लेकर रामचन्द्र के पास जाना

मार्कण्डेय कहते हैं—इधर राम और लक्ष्मण सुग्रीव से सेवित होकर माल्यवान् पर्वत पर रहने
लगे। चौमासा बीत गया; शरद् ऋतु आने से आकाश निर्मल हो गया। राम ने देखा कि आकाश में
ग्रह-नक्षत्र-सहित चन्द्रमा शोभायमान है और शीतल, मन्द वायु कुमुद-उत्पलपद्म आदि की सुगन्ध
फैलाता हुआ डोल रहा है। पर्वत पर अचानक शीत के कारण सबेरे उठकर रामचन्द्र ने यह दृश्य
देखा तो उन्हें राक्षस के यहाँ बन्दी (होकर कष्ट पा रही) सीता का स्मरण हो आया। तब
अत्यन्त व्यथित और उदास होकर उन्होंने लक्ष्मण से कहा—भाई, तुम किष्किन्धा में सुग्रीव के
पास जाओ। वह विषय-भोग में लिप्त, स्वार्थी, कुलकलङ्क, अत्यन्त मूढ़ बानर अपनी प्रतिज्ञा को
भूल गया है। मैंने उसे राजा बनाया और सब बानर, लङ्गूर, रीछ आदि उसकी आज्ञा का
पालन करते हैं। उसी के लिए किष्किन्धा के उपवन में मैंने वानरराज बाली को मारा, किन्तु अब
वह नीच वानर मुझे कृतघ्न जान पड़ता है। मालूम होता है, वह अपनी प्रतिज्ञा को भूल गया
है, मेरी दशा का उसे ध्यान नहीं है। अथवा अपनी छोटी समझ के कारण, मेरे द्वारा अपना
उपकार हो गया देखकर, वह मेरा अनादर कर रहा है और समझता है कि मैं उसका क्या कर
लूँगा। तुम उसके पास जाओ, और जो वह काम-सुख में मोहित होने के कारण इस समय भी
मेरा काम करने का उद्योग न करे तो तुम बाली की तरह उसे भी यमपुरी को भेज देना। और
जो देखो कि वानरराज सुग्रीव हमारा काम करने के लिए तैयार है तो उसे यहाँ मेरे पास ले १०
आना। झटपट जाओ, देर मत करो।

बड़े भाई की आज्ञा का पालन करने में तत्पर लक्ष्मण, रामचन्द्र की आज्ञा पाकर, श्रेष्ठ
धनुष और बाण लेकर, किष्किन्धापुरी में गये। किसी ने उन्हें नहीं रोका, वे राजमहल के
भीतर चले गये। वानरराज सुग्रीव ने दूर से ही देखकर लक्ष्मण के क्रोध को जान लिया। स्त्री
सहित सुग्रीव ने उठकर, आगे बढ़कर, लक्ष्मण को लिया और उनकी पूजा की। अब लक्ष्मण
ने बे-खटके रामचन्द्र की सब बातें सुग्रीव को कह सुनाईं। सेवकों और स्त्री सहित सुग्रीव ने,
सब सुनने के बाद, नम्रता के साथ हाथ जोड़कर लक्ष्मण से कहा—हे रघुनाथ, मैं दुर्बुद्धि,
अकृतज्ञ अथवा निर्दय नहीं हूँ। सीता को खोजने के लिए मैं जो कुछ यत्न कर चुका हूँ सो
सुनिए। असंख्य वानर मेरी आज्ञा से, एक महीने के भीतर लौट आने का वादा करके, चारों
ओर गये हैं। वे पृथ्वी भर के पर्वत, वन, समुद्र, गाँव, नगर आदि सभी स्थानों में सीता
को खोजेंगे। इस समय महीना पूरा होने में केवल पाँच दिन रह गये हैं। पाँच दिन के
बाद आप और रामचन्द्र ख़ुशी की ख़बर सुनेंगे। हे युधिष्ठिर! सुग्रीव के मुँह से यह समाचार २०

सुनकर बुद्धिमान् लक्ष्मण सन्तुष्ट हुए। उनका क्रोध शान्त हो गया। उन्होंने सुग्रीव की बड़ाई की। इसके बाद सुग्रीव को साथ लेकर वे माल्यवान् पर्वत पर रामचन्द्र के पास गये और सुग्रीव का बताया हुआ सब हाल उनसे कह दिया।

हे युधिष्ठिर, सीता का पता लगाने के लिए गये हुए हज़ारों वानर लौट-लौटकर आने लगे। पूर्व, उत्तर और पश्चिम दिशा को जो वानर गये थे वे सब लौट आये; लेकिन जो दक्षिण दिशा को गये थे वे नहीं आये। लौटे हुए बानरों ने राम से कहा—महाराज, हम समुद्र तक पृथ्वीमण्डल में घूम आये, पर कहीं रावण व सीता को नहीं देखा। हे धर्मराज, तब सीता के वियोग से व्याकुल रामचन्द्र बड़े कष्ट से इस आशा से जीवन धारण किये रहे कि जो वानर दक्षिण दिशा को गये हैं वे आकर सीता की ख़बर देंगे।

इस तरह दो महीने बीतने पर कुछ वानरों ने फुर्ती से सुग्रीव के पास आकर कहा—राजन्, हनुमान् आदि जो वानर दक्षिण दिशा को गये थे वे आज लौट आये हैं और आपके, सदा से सुरक्षित, परम प्रिय मधुवन में घुसकर फल-फूल खा रहे हैं। वानरों के इस आनन्द-सूचक कार्य को सुनकर वानर-राज सुग्रीव ने समझ लिया कि वे अवश्य कार्य सिद्ध कर आये हैं। यह समझकर सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी समय जाकर रामचन्द्र से सब हाल कहा, और यह भी कहा कि मेरे अनुमान से वे
३० वानर अवश्य सीताजी को देख आये हैं।

अब हनुमान् आदि वानर, विश्राम करके, राम-लक्ष्मण के पास सुग्रीव की सेवा में आये। हे भरतकुलश्रेष्ठ, हनुमान् के रंग-ढंग और मुख के आकार को देखकर रामचन्द्र को निश्चय हो गया कि वे सीता को देख आये हैं। सिद्ध-मनोरथ हनुमान् आदि वानरों ने राम, लक्ष्मण और सुग्रीव को यथा-योग्य प्रणाम किया। तब धनुष-बाण धारण किए हुए रामचन्द्र ने उनसे कहा—हे वानरो, तुम लोग क्या शुभ समाचार देकर मुझे जिला लोगे? क्या तुम लोग कार्य सिद्ध कर आये हो? समर में शत्रुओं को मारकर और सीता का उद्धार करके क्या मैं फिर जाकर अयोध्या में राज्य करूँगा? देखो, संग्राम में शत्रुओं को मारे बिना और सीता का उद्धार किये बिनी स्त्री को गँवाकर और अपमानित रहकर मैं जीनाः नहीं चाहता।

अब पवन-पुत्र हनुमान् ने कहा—रामचन्द्रजी, मैं आपको प्रिय समाचार सुनाता हूँ। सीताजी को मैं देख आया हूँ। हम लोग बहुत दिनों तक पर्वत, वन खान आदि स्थानों सहित सम्पूर्ण दक्षिण दिशा में घूमते-घूमते थक गये थे। अन्त को एक बड़ी भारी कन्दरा देखकर हम लोग उसके भीतर घुस गये। वह कन्दरा कई योजन लम्बी-चौड़ी थी। उसमें बहुत अँधेरा था। चारों ओर घना दुर्गम जङ्गल था, जिसमें कीड़े-मकोड़े भरे पड़े थे। बहुत दूर तक जाने पर हमें सूर्य का प्रकाश और वहीं पर मय दानव का सुन्दर भवन देख
पड़ा। वहाँ पर तपस्विनी प्रभावती तप कर रही थी। उस तपस्विनी ने फल-मूल और ४०
खाने-पीने की अनेक स्वादिष्ठ चीजें दीं। उन चीजों के खाने-पीने से हमारे शरीर में फिर से नया बल आ गया। हम लोग उसकी बताई हुई राह से कन्दरा के बाहर निकले। फिर सीताजी को खोजते हुए सह्य, मलय और दर्दुर पर्वत को खाँगी समुद्र के पास देखा। हम लोग मलय पर्वत पर चढ़कर सीता का पता न लगने से अत्यन्त खिन्न, व्यथित, विषादयुक्त और जीवन से निराश हो गये। कई सौ योजन में फैले हुए तिमि-तिमिंगिल-नक्र आदि जल-जन्तुओं से पूर्ण भयानक महासागर को देखकर, दुःखित हो, हम लोग सोचने लगे [कि अब इस महासागर के पार किस तरह जायँगे]।

तब हम लोगों ने प्राण दे देने का इरादा कर लिया और कुछ न खाने-पीने (प्रायोपवेशन) का व्रत धारण करके वहीं पर बैठ गये। हम लोग बैठकर आपस में गिद्धों के राजा जटायु के मरने की चर्चा करने लगे। इसी समय ऊँचे पर्वत-शिखर के समान, अत्यन्त भयानक, दूसरा गरुड़ ऐसा एक पक्षी हमको देख पड़ा। हमें खा जाने के लिए, पास आकर, उस पक्षी ने कहा—तुम लोग कौन हो? मेरे भाई जटायु के सम्बन्ध में क्या बातचीत कर रहे हो? मैं जटायु का बड़ा भाई हूँ। मेरा नाम सम्पाति है। मैं पक्षियों का राजा हूँ। हम दोनों भाई एक समय आपस में लाग-डाँट करके उड़कर सूर्य-मण्डल के पास पहुँचे। सूर्य की किरणों की प्रचण्ड आँच से मेरे तो पंख जल गये, किन्तु जटायु के बच गये। पंख जल जाने के कारण मैं आकाश
से इस महापर्वत पर गिर पड़ा। ५०

सम्पाति के मुँह से यह हाल सुनकर हमने उससे कहा कि तुम्हारा भाई जटायु मारा गया। भाई के मरने की ख़बर से अत्यन्त व्याकुल और दुःखित होकर सम्पाति ने हम लोगों से कहा—भाइयो, राम कौन हैं? सीता किस कारण हरी गई? जटायु किस तरह मारा गया? हे वानरो, मैं यह सब हाल तुमसे विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ।

हे रामचन्द्र, तब मैंने आपकी विपत्ति का हाल विस्तार से कहकर अपने लोगों के प्राण-त्याग के इरादे का कारण उसे समझाया। पक्षियों के राजा सम्पाति ने सब सुनकर हमें धैर्य देते हुए कहा—मैं रावण को अच्छी तरह जानता हूँ। लङ्कापुरी उसकी राजधानी है। वह राजधानी समुद्र के उस पार त्रिकूट पर्वत की कन्दरा में है। मैं लङ्कापुरी को देख चुका हूँ। वहीं पर अवश्य जानकी होंगी।

यह सुनकर हम लोग झटपट उठ खड़े हुए और फिर महासमुद्र के उस पार जाने के विषय में सलाह करने लगे। हममें से कोई भी जब समुद्र लाँघकर लंका के भीतर जाने की हिम्मत न कर सका, तब मैं अपने पिता वायु का सहारा लेकर, जल में रहनेवाली राक्षसी को मारता हुआ, सहज ही सौ योजन लम्बे-चौड़े समुद्र को फाँदकर उस पार चला गया। वहाँ
६० लङ्का में राक्षस-राज रावण के निवास-स्थल में जा करके मैंने देखा कि पति-दर्शन की लालसा रखनेवाली, उपवास करती हुई सीता तपस्या कर रही हैं। उनके बालों की उलझकर एक चोटी बन गई है, सारे शरीर में धूल भरी हुई है और सब अङ्ग सूखकर काँटा हो गये हैं। आपके बताये हुए सब लक्षणों को देखकर जब मुझे निश्चय हो गया कि वही सीता हैं तब उनके सामने जाकर मैंने कहा—आर्ये वैदेही, मैं श्रीराम का दूत और पवन-पुत्र हनुमान् हूँ। मैं आपको देखने आकाशमार्ग से इस जगह आया हूँ। राजकुमार रामचन्द्र और लक्ष्मण सकुशल हैं। सब वानरों के राजा सुग्रीव उनके सहायक, रक्षक और मित्र हैं। राम-लक्ष्मण ने आपके कुशल-समाचार पूछे हैं। महाराज सुग्रीव ने भी, राम के मित्र के नाते, आपके कुशल-समाचार जानने की इच्छा प्रकट की है। आपके स्वामी रामचन्द्र सब वानरों के साथ शीघ्र ही यहाँ आवेंगे। देवी, आप मेरी बात पर विश्वास करें; मैं राक्षस नहीं—वानर हूँ।

तब जानकी ने दमभर सोचकर कहा—हे महाबाहो, धर्मात्मा राक्षस अविन्ध्य के कथनानुसार मैं जानती हूँ कि तुम वानर हनुमान् ही हो। उस श्रेष्ठ राक्षस से मुझे यह ख़बर मिल चुकी है कि हनुमान् आदि वानर सुग्रीव के सचिव और साथी हैं। अच्छा, अब तुम जाओ।

हे राम, इतना कहकर उन्होंने [निशानी के तौर पर] यह चूड़ामणि आपको देने के लिए मुझे दी। इसी चूड़ामणि ने अब तक सीता के जीवन को बचा रक्खा है। आपकी प्रतीति के लिए उन्होंने उस घटना का हाल भी कहा है जो चित्रकूट में हुई थी—आपने वहाँ एक कौए को मारने के लिए इषीकास्त्र का प्रयोग किया था।

महाराज, सीता से बिदा होने के बाद मैं जान-बूझकर राक्षसों के हाथ में जा फँसा। [वे मुझे पकड़कर ले गये।] अवसर पाकर लङ्कापुरी को जलाकर मैं इस पार वानरों से आ मिला। वहाँ से चलकर हम लोग आपकी सेवा में आये हैं।

हे युधिष्ठिर, तब रामचन्द्र ने प्रिय समाचार सुनानेवाले हनुमान् का बहुत आदर-सम्मान किया, उनकी बहुत बड़ाई की। ७१

दो सौ तिरासी अध्याय

रामचन्द्र का समुद्र में पुल बाँधकर उस पार जाना और लङ्कापुरी को घेरना

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, इसके बाद सुग्रीव की आज्ञा के अनुसार सब प्रधान-प्रधान वानर पर्वत पर आराम से बैठे हुए रामचन्द्र के पास पहुँचने लगे। बाली के ससुर, श्रीमान् सुषेण वानर, अत्यन्त वेगशाली हज़ार करोड़ वानरों को साथ लिये वहाँ पहुँचे। गज और गवय नाम के दोनों महाबली वानर अलग-अलग सौ-सौ करोड़ वानरों को साथ लेकर राम के पास पहुँचे। महाराज, भयङ्कर रूपवाला गवाक्ष नाम का बली लङ्गूर साठ करोड़ हज़ार लङ्गूरों और वानरों का दल साथ लेकर राम की सेवा में उपस्थित हुआ। गन्धमादन पर्वत पर रहनेवाले गन्धमादन नाम से प्रसिद्ध महाबली वानर सौ करोड़ हज़ार वानरों की सेना लेकर पहुँचे। पनस नामक बुद्धिमान्, महाबली, पराक्रमी वानरराज सत्तावन करोड़ वानरों की सेना लेकर उपस्थित हुआ। अत्यन्त पराक्रमी वृद्ध वानरराज दधिमुख, ऋक्षराज जाम्बवान् के साथ, मस्तक पर सफ़ेद टीके के चिह्न से शोभित काले रङ्ग के सौ हज़ार करोड़ रीछ लाये।

इतने ये, और अन्य अनेक वानर यूथपति रामचन्द्र का कार्य सिद्ध करने के लिए उस पर्वत पर आये। सब पर्वताकार वानर बड़े वेग से सिंह की तरह गरजते और छलाँगें मारते रामचन्द्र
के पास आ गये। कुछ वानर पर्वताकार थे। कुछ भैंसे के समान थे। कुछ का रङ्ग शरद् १०
ऋतु के बादलों का सा सफ़ेद था। कुछ का मुँह लाल था। वे उछलते-कूदते-फाँदते और चारों ओर दौड़ते देख पड़ते थे। इससे धूल ही धूल छा गई। उस अपार समुद्र के समान वानरों की सेना ने सुग्रीव की आज्ञा से उसी पर्वत पर पड़ाव डाल दिया। इस प्रकार प्रधान-प्रधान वानर-वीरों के जमा हो जाने पर शुभ तिथि-नक्षत्र-मुहूर्त्त में उस सेना को साथ लेकर सुग्रीव सहित रामचन्द्र ने युद्ध-यात्रा कर दी। ऐसा जान पड़ता था कि व्यूह बना करके जाती हुई वह सेना मानों सब लोकों को उलट-पुलट देगी। उस महासेना के अगले हिस्से में पवनपुत्र हनुमान् थे और जघनदेश (मध्यस्थान) की रक्षा निडर लक्ष्मण कर रहे थे। गोह के चमड़े के अंगुलित्र उँगलियों में पहने रघुकुलतिलक राम और लक्ष्मण उस वानर-सेना के बीच, ग्रहों के मध्यवर्ती

सूर्य और चन्द्र के समान मालूम पड़ते थे। रामचन्द्र के सामने खड़े, शाल-ताल-शिला आदि लिये हुए,
वे सब वानर उदय हो रहे सूर्य के सामने पके हुए धान के खेत से जान पड़ते थे। नल, नील, अङ्गद,
क्राथ, मैन्द और द्विविद आदि प्रधान यूथपों की अधीनता में रामचन्द्र का काम करने के लिए वह
वानरों की महासेना दक्षिण दिशा में बड़ी तेज़ी से जा रही थी। अनेक प्रकार के, लम्बे-चौड़े, बहुत फल-
मूल आदि से पूर्ण, मधु-मांस और पवित्र जल से मनोहर पहाड़ी स्थानों में निर्विघ्न पड़ाव करती हुई वह
२१ सेना खारी समुद्र के किनारे पर पहुँच गई।

तब रामचन्द्र ने सुग्रीव और अन्य प्रधान वानरों से उस समय के अनुसार पूछा कि इस समुद्र को किस तरह लाँघना चाहिए;—यह विशाल सेना किस ढङ्ग से दुस्तर समुद्र के उस पार जा सकती है? हे युधिष्ठिर, अपने को समर्थ समझकर कुछ वानरों ने कहा कि हम समुद्र को लाँघ सकते हैं। पर यह बात सब वानरों के लिए सुविधा-जनक नहीं हुई। कुछ ने नाव-डोंगी-तोंबी आदि के सहारे पार जाने की बात कही।

रामचन्द्र ने सबको समझाते हुए कहा—सब के सब वानर सौ योजन के समुद्र को नहीं लाँघ
सकते, इसलिए तुम्हारी यह सलाह ठीक नहीं है। हमारी सेना को पार पहुँचानेवाली नावें (जहाज़)
उतनी अधिक हैं नहीं, और दूसरे जल-मार्ग से व्यापार करनेवाले बैपारियों के रोज़गार में बाधा पहुँ-
चाना भी मुझ सरीखा पुरुष नहीं स्वीकार कर सकता। डोंगी-घरनई आदि के सहारे पार होना मैं इस-
लिए नहीं पसन्द करता कि उस समय फैली हुई मेरी सेना को, मौक़ा पाकर, शत्रु सहज ही नष्ट कर
सकता है। मैं इस समुद्र से ही कोई उपाय पूछने की चेष्टा करूँगा। मैं इसके तट पर अन्न-जल
३० छोड़कर जब धन्ना दूँगा, तब यह अवश्य मुझे दर्शन देगा। मुझे आशा है कि समुद्र मुझे मार्ग दे
देगा। और जो सागर राह नहीं देगा तो मैं अपने अग्निमय प्रचण्ड अप्रतिहत दिव्य अस्त्रों
से इसे सुखा दूँगा।

यों कहकर, विधिपूर्वक आचमन करके, कुशासन पर सागर के किनारे रामचन्द्र लेट रहे। तब जल-जन्तुओं सहित नद और नदियों के स्वामी रत्नाकर सागर ने रामचन्द्र को स्वप्न में दर्शन देकर कहा—"हे कौशल्यानन्दन, सुनिए।" हे युधिष्ठिर, इस प्रकार रामचन्द्र को सचेत करके मधुर स्वर में समुद्र ने कहा—मेरी भी उत्पत्ति इक्ष्वाकु के वंश से हुई है, इसलिए आप मेरे जाति-भाई हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ, कहिए, मैं आपकी क्या सहायता करूँ? तब रामचन्द्र ने कहा—हे नदियों के स्वामी, मैं पुलस्त्य-कुल-कलङ्क दुष्ट राक्षस रावण को मारने के लिए सेना साथ लेकर लङ्कापुरी पर चढ़ाई करूँगा। इसलिए तुम मुझे मार्ग दो। इस तरह माँगने से जो तुम राह न दोगे तो मैं दिव्य अस्त्र-युक्त बाणों से तुमको सुखा डालूँगा।

यह सुनकर दुःखित सागर ने हाथ जोड़कर कहा—हे राघव, मैं कभी आपके काम में विघ्न न डालूँगा। अब मेरी बात सुनकर जो कर्त्तव्य है सो कीजिए। जो मैं इस समय आपको

आज्ञा से सेना सहित आपको राह दे दूँ तो और लोग भी इसी तरह डरा-धमकाकर मुझे राह देने के लिए विवश करेंगे। आपकी सेना में विश्वकर्मा का पुत्र नल नाम का वानर है। वह ४०
बड़ा कारीगर और बलवान् है। उससे मेरे ऊपर पुल बनवा लीजिए। नल वानर मेरे ऊपर घास-फूस-काठ-चट्टान आदि जो कुछ डालेगा वह सब मैं अपने जल के ऊपर रोक-कर आपके लिए पुल बना दूँगा। इतना कहकर समुद्र अन्तर्द्धान हो गया। तब रामचन्द्र ने नल से कहा—हे नल, तुम पुल बना सकते हो, इसलिए समुद्र में सेतु बाँधो। महाराज, रामचन्द्र ने नल के द्वारा दस योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा एक सेतु बनवाया। वह पुल अब तक नलसेतु के नाम से प्रसिद्ध है। रामचन्द्र की आज्ञा मानकर समुद्र उस पर्वत-तुल्य सेतु को अब तक धारण किये हुए है।

इसी समय रावण के भाई धर्मात्मा विभीषण, चार सचिवों सहित, रामचन्द्र की शरण में आये। रामचन्द्र ने सत्कार के साथ उनको आश्रय दिया। सुग्रीव को विभीषण पर सन्देह हुआ कि वे रावण के जासूस हैं। परन्तु रामचन्द्र ने विभीषण की सचाई और चेष्टाओं को जाँचकर जान लिया कि सुग्रीव की शङ्का निर्मूल है। रामचन्द्र ने प्रसन्न होकर विभीषण का बड़ा सत्कार किया और उन्हें सब राक्षसों तथा लङ्का का राजा बना दिया। विभीषण को लक्ष्मण के सलाहकार और मित्र का पद भी दिया।

फिर विभीषण की सलाह से, उसी सेतु की राह, सेना सहित रामचन्द्र समुद्र के उस पार
एक महीने में गये। रामचन्द्र की आज्ञा से वानर लोग लङ्का में घुमकर बड़े-बड़े सुन्दर बागों को ५०
तोड़ने-फोड़ने लगे। महाराज, रावण के मन्त्री और जासूस शुक और सारण, वानर का वेष बनाये, रामचन्द्र की सेना में घुसे हुए थे। उन्हें पहचानकर विभीषण ने पकड़ लिया। जब वे दोनों राक्षस प्रमाणित हो गये तब रामचन्द्र ने अपनी सब सेना दिखाकर उन्हें छोड़ दिया। इस प्रकार लङ्कापुरी के उपवन में अपनी सब सेना को ठहरा करके रामचन्द्र ने अङ्गद को अपना दूत बनाकर रावण की सभा में भेजा।

दो सौ चौरासी अध्याय

अङ्गद का दूत-कार्य्य

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, अन्न-जल-फल-मूल आदि से परिपूर्ण लङ्का के उपवन में सेना ठहराकर रामचन्द्र सावधानी के साथ उसकी रक्षा करने लगे। उधर रावण भी शास्त्र में बताई गई विधि से युद्ध का सामान जुटाने लगा। लङ्कापुरी एक तो यों ही दुर्गम थी, दूसरे रावण ने उसे और भी दुर्गम बना दिया। लङ्का की चहारदीवारी और फाटक मज़बूत किये गये। पुरी के चारों ओर सात गहरी खाइयाँ थीं। मछली-मगर आदि जल-जीवों से पूर्ण उन खाइयों में अथाह पानी भरा हुआ था। पहली खाई में सुदृढ़ खैर की लकड़ी के शंकु भरे हुए थे। दूसरी खाई में दुर्धर्ष कपाट यन्त्र लगे हुए थे। तीसरी खाई सींग और फेककर मारे जानेवाले गोलों से और चौथी खाई साँपों और योद्धा लोगों से रक्षित थी। पाँचवीं खाई सर्जरस और धूल के मारे अगम्य थी। छठी खाई मूसल, जलती हुई लकड़ियाँ, नाराच बाण, तोमर, खड्ग, परशु और शतघ्नी आदि शस्त्रों से पूर्ण थी। सातवीं खाई मधुरस और मुद्गर आदि के कारण अगम्य थी। पुरी के सब फाटकों पर स्थिर और चलनेवाले गुप्त मोर्चे लगा दिये गये; उनमें बहुत से हाथी-घोड़े और पैदल सिपाही मौजूद थे।

रामचन्द्र की आज्ञा से दूत बनकर महाबली अङ्गद लङ्कापुरी के फाटक पर पहुँचे और बेधड़क होकर भीतर जा घुसे। कई करोड़ राक्षस वहाँ पर थे। उनके बीच से जाते हुए अङ्गद मेघों के बीच में सूर्य के समान जान पड़ने लगे। मन्त्रियों के साथ सभा में बैठे हुए रावण के पास पहुँचकर महाबली और बोलने में चतुर अङ्गद उससे इस प्रकार राम का सँदेसा कहने लगे—हे दुर्बुद्धि रावण,
१० कोशलेश महायशस्वी राघव ने जो तुझसे समयोचित वचन कहे हैं उन्हें मान ले। उन्होंने कहा है कि दुराचारी अन्यायी राजा की अनीति के कारण उसके राज्य के देश और नगर नष्ट हो जाते हैं। बलपूर्वक सीताहरण करके अकेले तूने मेरा अपराध किया है, किन्तु उसके कारण अन्य निर्दोष लोगों की भी हत्या होगी। तूने बल और घमण्ड के कारण वनवासी ऋषियों की हिंसा, देवताओं का अपमान और राजर्षियों की हत्या की है; तूने रोती हुई पराई स्त्रियों को मार डाला है। इस समय उसी करनी का फल तुझे भोगना पड़ेगा। तू युद्ध करके अब अपना पौरुष दिखा। मैं तुझे और तेरे अनुचर मन्त्रियों को अवश्य मारूँगा। मैं मनुष्य हूँ, अब तू मेरे धनुष के बल को देख। मैं तुझसे फिर कहता हूँ, तू सीता को छोड़ दे; नहीं तो जीता नहीं बचेगा। मैं पैने बाण मारकर पृथ्वी पर एक भी राक्षस न बचने दूँगा।

अङ्गद के मुँह से ये कठोर वचन सुनकर रावण को क्रोध आ गया। उसने चार राक्षसों को इशारा किया। पक्षी जैसे सिंह पर हमला करें वैसे ही उन राक्षसों ने झपटकर अङ्गद के

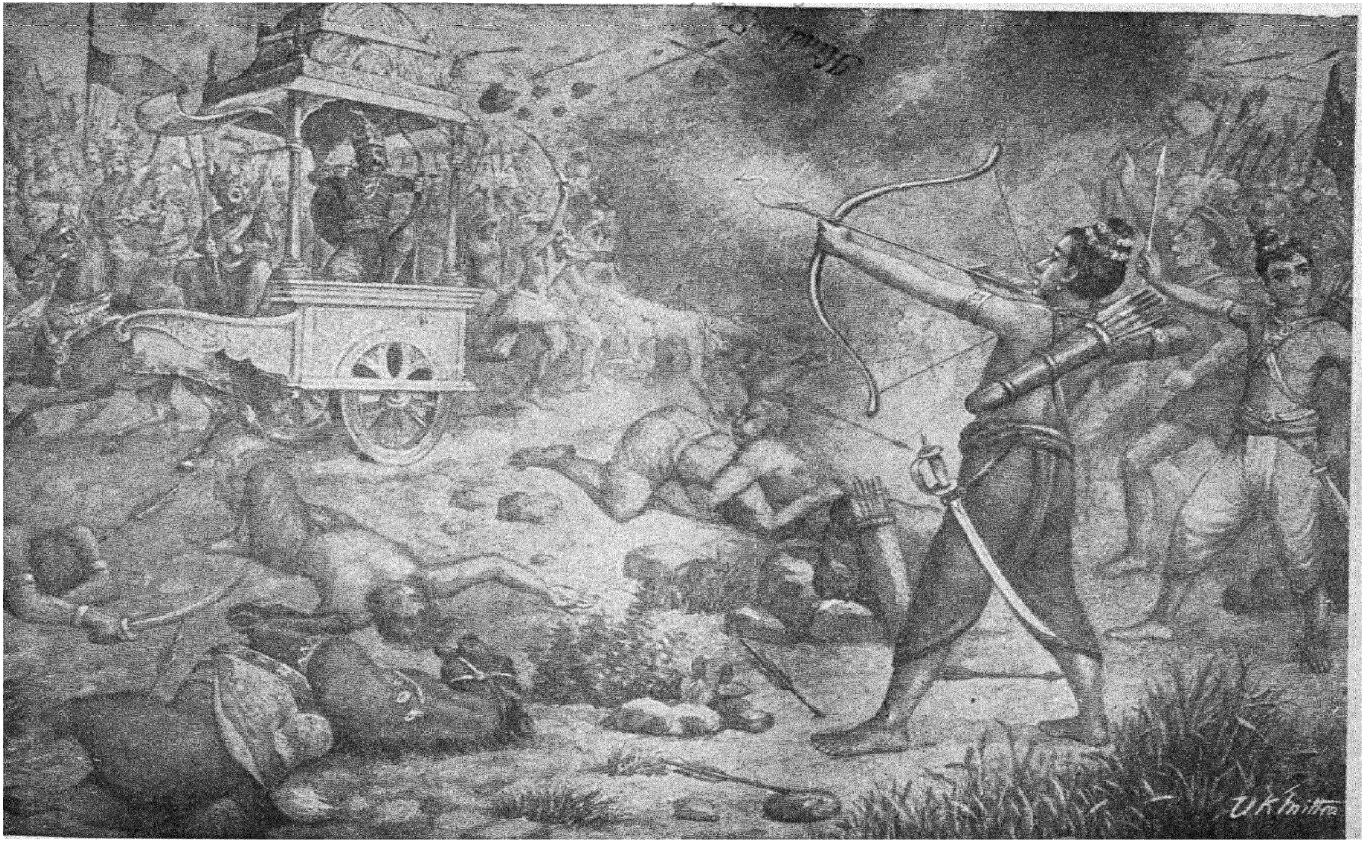

रावण शक्ति, शूल, खड्ग आदि से रामचन्द्र पर प्रहार करने लगा और वे भी तीक्ष्ण बाणों से रावण को घायल करने लगे। पृ० १२६२

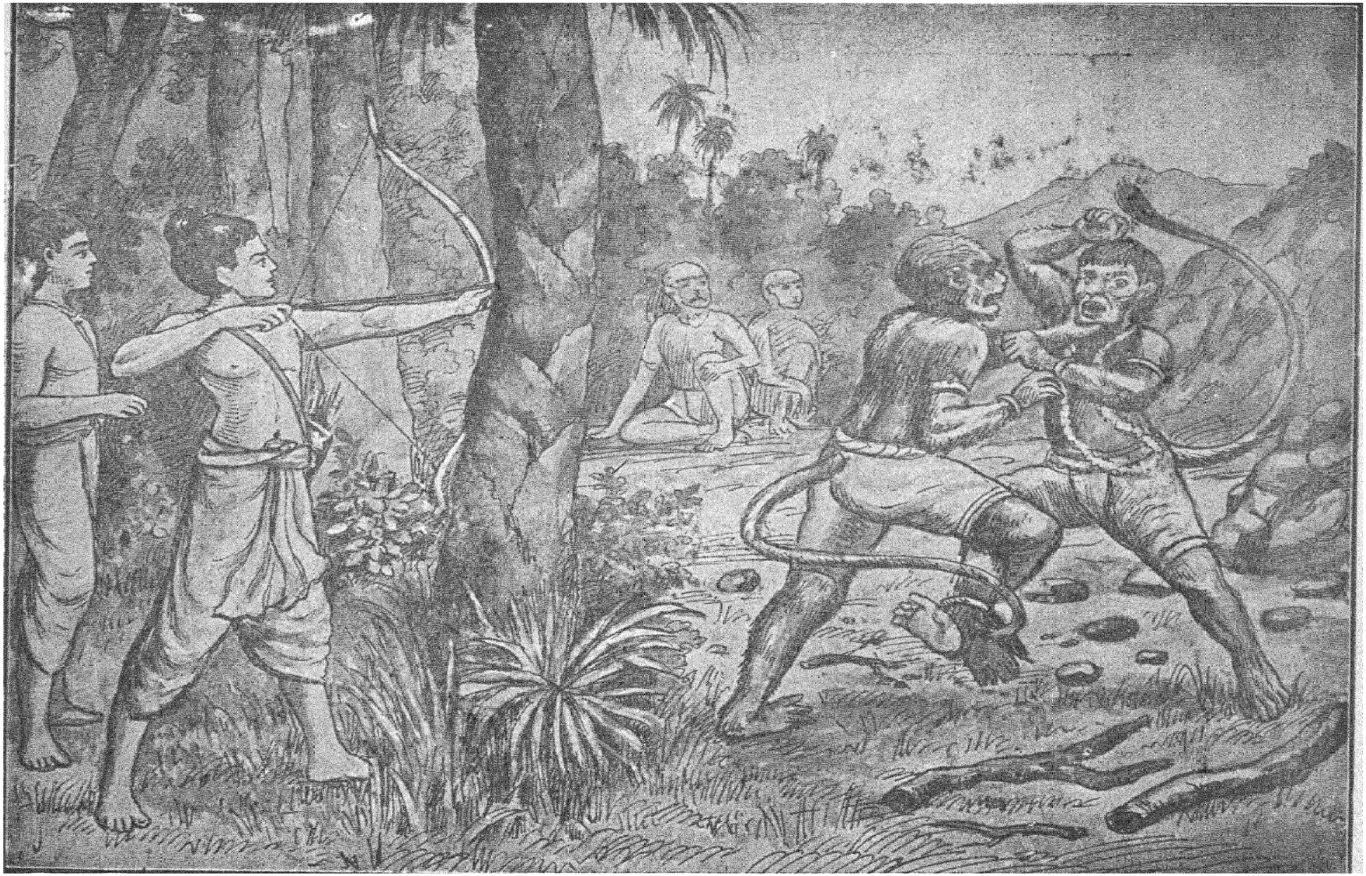

सुग्रीव को चिह्नित देखकर रामचन्द्रजी ने धनुष चढ़ाया। पृ० १२७६

हाथ-पैर पकड़ लिये। अपने शरीर में लिपटे हुए उन चारों राक्षसों को लेकर अङ्गद उछले और महल की चोटी पर चले गये। वेग से उनके उछलने पर वे राक्षस पृथ्वी पर गिर पड़े। धमक की चोट से छाती फट जाने पर वे मर गये। २०

उस महल पर से कूदते हुए लङ्कापुरी को लाँघकर युवराज अङ्गद सुबेल पर्वत पर रामचन्द्र के पास पहुँचे। उन्होंने रामचन्द्र से वहाँ का सब हाल कहा। सुनकर रामचन्द्र ने उनकी बड़ाई की। तेजस्वी अङ्गद, प्रभु के पास, बैठकर विश्राम करने लगे।

वायु-वेग से चलनेवाले वानरों ने रामचन्द्र की आज्ञा पाकर लङ्का की चहारदीवारी को खोदकर गिरा दिया। विभीषण और जाम्बवान् को साथ लेकर लक्ष्मण ने लङ्का के दुर्गम दक्षिण द्वार पर आक्रमण किया। लक्ष्मण के साथ लाल रङ्ग के युद्ध-प्रिय करोड़ों वानर लङ्का के भीतर घुस गये। घुटनों तक जिनके हाथ लटक रहे थे ऐसे चौड़ी छाती और लम्बी टाँगोवाले, धुएँ के रङ्ग के, तीन करोड़ रीछ कतार बाँधकर लक्ष्मण के साथ चले। वानरों के बार-बार उछलने-कूदने से इतनी धूल उड़ी कि सूर्यमण्डल का प्रकाश ढक गया। पके धान, मौलसिरी के फूल, सूर्य और सन के ऐसे रङ्ग के वानरों से व्याप्त होने के कारण लङ्का की दीवार विचित्र रङ्ग की जान पड़ने लगी। राक्षस जाति के बूढ़ों, बालकों और स्त्रियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वहाँ के मणिरचित खम्भों और मकानों की चोटियों को वानर तोड़ने-फोड़ने लगे। वहाँ जो यन्त्र लगे थे उन्हें तोड़-फोड़कर वानरों ने इधर-उधर
फेंक दिया। बली वानर वहाँ रक्खी हुई शतघ्नी, चक्र, लाठियाँ और गोले उठा-उठाकर लङ्का के भीतर ३०
फेंकने और हू हा करने लगे। दीवार पर रक्षा करने के लिए जो सैकड़ों राक्षस मौजूद थे उन्हें वानरों ने खदेड़कर भगा दिया।

इसके बाद अपने राजा रावण की आज्ञा पाकर कामरूपी, विकृत आकारवाले, सैकड़ों-हज़ारों राक्षसों के झुण्ड लङ्का से निकले। उन्होंने दीवार पर जाकर शस्त्र-अस्त्रों की वर्षा करके वानरों को भगा दिया। काले-कलूटे भयानक राक्षसों ने उस दीवार को वानरों से खाली करा लिया। राक्षसों के त्रिशूल लगने से बहुत से श्रेष्ठ वानर घायल होकर गिर पड़े। बहुतों को राक्षसों ने उखाड़े हुए खम्भों की मार से भगा दिया और मारकर गिरा दिया। वानर और

राक्षस परस्पर एक दूसरे के बाल पकड़कर, नकोटे मारकर, दाँतों से काटकर विकट युद्ध करने लगे। परस्पर तर्जन-गर्जन करके वानर और राक्षस ऐसा प्रचण्ड युद्ध कर रहे थे कि जब तक मरकर गिर न पड़ता था तब तक एक दूसरे को नहीं छोड़ता था। उधर रामचन्द्र भी, बादल जैसे जल बरसाते हैं वैसे, बाणों की वर्षा करके उन राक्षसों को मारने लगे। दृढ़ धनुष हाथ में लिये लक्ष्मण भी उत्साह के साथ नाराच बाणों से दुर्ग-रक्षक राक्षसों को मारकर गिराने लगे। उस दिन इस प्रकार लङ्कापुरी में उत्पात मचा करके विजयी वानरों ने राम की आज्ञा से रात्रि के समय
४१ युद्ध बन्द कर दिया।

दो सौ पचासी अध्याय

रावण आदि का द्वन्द्व युद्ध

मार्कण्डेय कहते हैं—इधर वानर-सेना ने विश्राम किया, उधर रावण की आज्ञा से पर्वण, पतन, जम्भ, खर, क्रोधवश, हरि, प्ररुज, आरुज, प्रघस आदि अनेक पिशाचों और क्षुद्र राक्षसों के समूह अदृश्य होकर प्रहार करने के लिए रामचन्द्र की सेना में आये। विभीषण ने उन्हें देखकर, अपनी माया के बल से, उनकी अन्तर्द्धान-शक्ति नष्ट कर दी। तब उन्हें सामने देखकर, दूर तक जाने की शक्ति रखनेवाले, वानर उछल-उछलकर मारने लगे और वे भी मर-मरकर आकाश से पृथ्वी पर गिरने लगे।

वानरों के द्वारा राक्षसों की हत्या न देख सकने के कारण क्रोधित रावण, सेना साथ लेकर, युद्ध करने के लिए लङ्का के बाहर निकला। दूसरे शुक्राचार्य के समान युद्धशास्त्र के पण्डित रावण ने, शुक्राचार्य के मत से, व्यूहरचना करके राक्षसों और पिशाचों के साथ वानरों की सेना पर आक्रमण किया। तब रामचन्द्र भी, बृहस्पति के मत के अनुसार, व्यूहरचना करके रावण से युद्ध करने के लिए चले। उस समय रावण के साथ रामचन्द्र का, इन्द्रजित् के साथ लक्ष्मण का, विरूपाक्ष के साथ सुग्रीव का, निखर्वट के साथ तार का, तुण्ड के साथ नल का और पटुश के साथ पनस का घोर युद्ध होने लगा। इस तरह जिसने जिसे अपने समान योद्धा
१० पाया वह उसके साथ युद्ध करके अपने बाहु-बल का परिचय देने लगा। पहले देवासुर-संग्राम में जैसी कायरों को डरानेवाली लोम-हर्षण मार-काट हुई थी, वैसी ही वानरों और राक्षसों के बीच होने लगी। रावण शक्ति, शूल, खड्ग आदि से रामचन्द्र पर प्रहार करने लगा और वे भी तीक्ष्ण बाणों से रावण को घायल करने लगे। उसी तरह लक्ष्मण भी मर्म-भेदी पैने बाणों से इन्द्रजित्

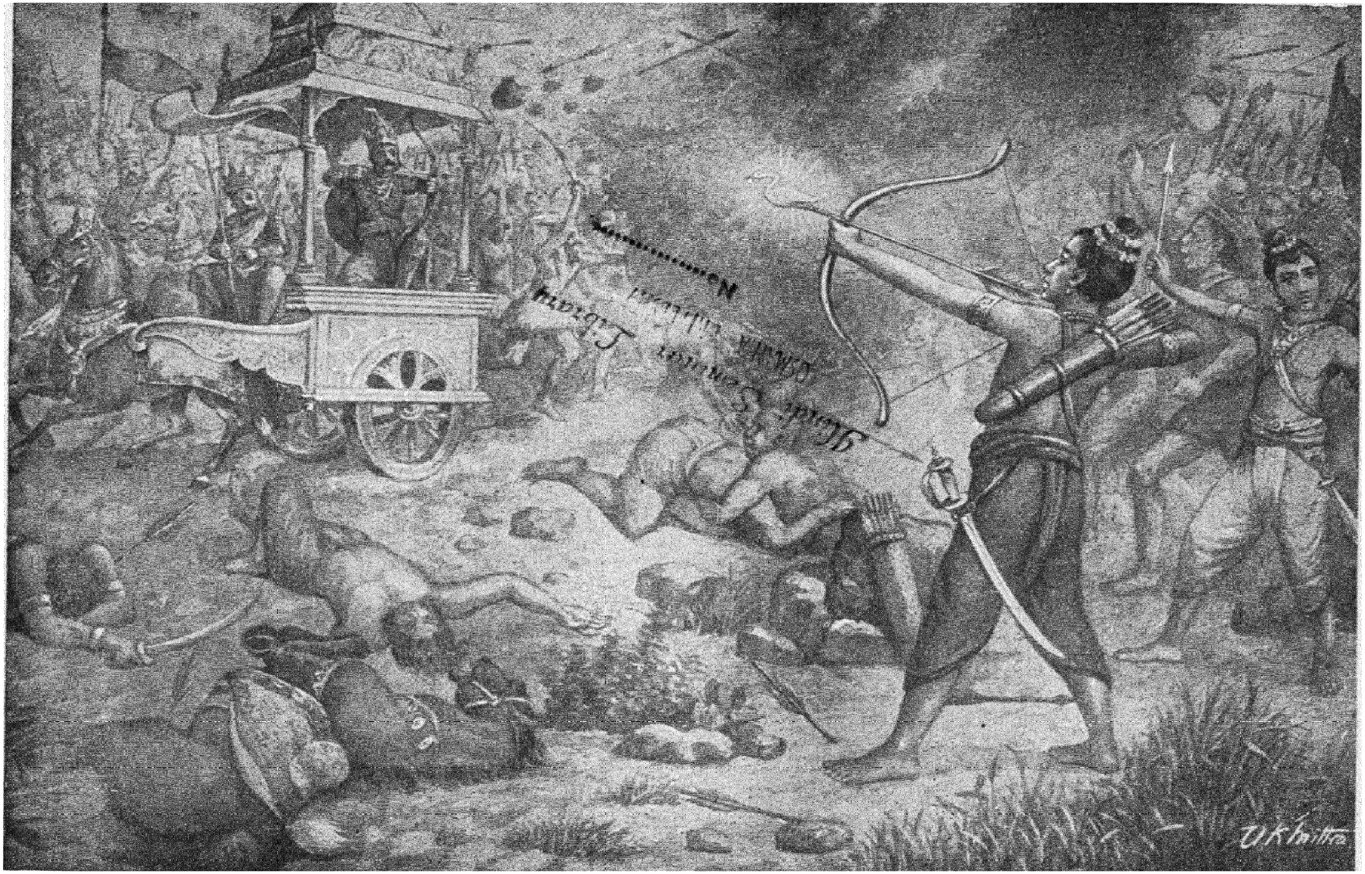

रावण शक्ति, शूल, खड्ग आदि से रामचन्द्र पर प्रहार करने लगा और वे भी तीक्ष्ण बाणों से रावण को घायल करने लगे। पृ० १२६२

को और इन्द्रजित् अनेक प्रकार के तीक्ष्ण बाणों से लक्ष्मण को मारने लगा। विभीषण और प्रहस्त दोनों परस्पर पक्षियों के पंखों से शोभित बाणों की वर्षा करने लगे। इस प्रकार वे पराक्रमी वीर ऐसा घोर युद्ध करने लगे कि उससे तीनों लोकों के निवासी पीड़ित हो उठे। १५

दो सौ छियासी अध्याय

रावण का कुम्भकर्ण को जगाकर युद्ध के लिए भेजना

मार्कण्डेय कहते हैं—प्रहस्त राक्षस ने जोर से गरजकर, एकाएक विभीषण के पास आकर, उन पर गदा चलाई। बड़े वेग से आई हुई वह गदा लगने से विभीषण तनिक भी विचलित नहीं हुए; हिमालय की तरह अटल भाव से खड़े रहे। फिर उन्होंने भी दिव्य मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके बड़ी भारी, सौ घण्टों से भूषित, शक्ति प्रहस्त के सिर पर मारी वह शक्ति वज्र की तरह वेग से प्रहस्त को लगी। उससे प्रहस्त का सिर कट गया और वह आँधी से टूटे हुए बड़े पेड़ की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा।

प्रहस्त के मारे जाने पर धूम्राक्ष राक्षस बड़े वेग से वानर सेना की ओर दौड़ा। धूम्राक्ष की मेघ-सदृश भयानक सेना को आते देख, डर के मारे, युद्ध छोड़कर वानर एकदम भाग खड़े हुए। महावीर हनुमान् वानरों को भागते देखकर युद्धभूमि में आ गये। उन्हें देखते ही सब वानर लौट आये। अब राम और रावण की सेना के वीर योद्धा एक दूसरे पर आक्रमण करके भयङ्कर युद्ध करने लगे। उस समय वीरों के रक्त से युद्धभूमि में कीच सी मच गई। धूम्राक्ष राक्षस धनुष चढ़ाकर तीक्ष्ण बाणों से वानर-सेना का नाश करने लगा। तब पवनपुत्र हनुमान् ने उस पर आक्रमण किया। पहले किसी समय १०
इन्द्र और प्रह्लाद का जैसा युद्ध हुआ था वैसा ही युद्ध वे, जय प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले, वीर भी करने लगे। धूम्राक्ष गदा, परिघ आदि शस्त्रों से हनुमान् पर प्रहार करता था और हनुमान् समूचे पेड़ उखाड़कर उनसे राक्षस पर वार करते थे।

इस प्रकार लड़ते-लड़ते हनुमान् को क्रोध आ गया। उन्होंने घोड़े, रथ और सारथी सहित धूम्राक्ष को झटपट मार डाला। धूम्राक्ष के मारे जाने पर वानरों के हौसले बढ़ गये; वे बेखटके बढ़-बढ़कर राक्षसों की सेना का नाश करने लगे। मरने से जो राक्षस बचे वे बलवान् वानरों के प्रहार से घायल और उत्साहहीन होकर भाग खड़े हुए। उन्होंने लङ्का में जाकर रावण से सब हाल कहा। महावीर वानरों के द्वारा प्रहस्त और धूम्राक्ष के मारे जाने का और उनके साथ की सब राक्षस-सेना के नष्ट होने का हाल सुनकर रावण बहुत चिन्तित हुआ। वह लम्बी साँसें लेता हुआ श्रेष्ठ सिंहासन से उठ खड़ा हुआ और कहने लगा—यह समय कुम्भकर्ण के लड़ने का है। हे युधिष्ठिर, कुम्भकर्ण सदा सोया करता था। रावण ने उसके कानों

२० के पास बड़े-बड़े बाजे बजवाकर उसे जगवाया। महाबली कुम्भकर्ण जागकर जब आसन पर
आराम से बैठ गया तब रामचन्द्र से डरे हुए रावण ने कहा—कुम्भकर्ण, तुम धन्य हो! तुम्हारी

नींद ऐसी विकट है! इस समय हम लोगों के सिर पर बड़ी भारी आपत्ति है, पर तुम्हें उसकी कुछ खबर ही नहीं। मनुष्य राम समुद्र में पुल बाँधकर वानरों की सेना के साथ लङ्का पर चढ़ आया है। वह हम लोगों का अनादर करके बड़े-बड़े वीर राक्षसों का नाश कर रहा है। मैं उसकी स्त्री सीता को वन से हर लाया था। राम समुद्र में सेतु बाँधकर उसी का उद्धार करने यहाँ आया है। उसने प्रहस्त आदि हमारे अनेक स्वजनों को मार डाला है। हे शत्रुदमन, तुम्हारे सिवा और कोई उसे नहीं मार सकता। तुम बड़े बली हो। इस समय कवच पहनकर युद्ध के लिए जाओ और राम आदि सब शत्रुओं को मारो। दूषण के छोटे भाई वज्रवेग और प्रमाथी नाम के राक्षस, बहुत से महाबली वीर सैनिकों सहित, तुम्हारे साथ जायँगे।

राक्षस-पति रावण ने कुम्भकर्ण से यों कहकर वज्रवेग और प्रमाथी को भी उनका
कर्त्तव्य बताकर उसके साथ कर दिया। रावण की आज्ञा मानकर दोनों वीर राक्षस कुम्भकर्ण के
२९ साथ, वानरों से लड़ने के लिए लंका के बाहर निकले।

दो सौ सत्तासी अध्याय

कुम्भकर्ण-वध

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, अब कुम्भकर्ण सेना और अनुचरों के साथ लङ्कापुरी से निकला।
उसने अपने सामने खड़ी हुई, विजयी वानरों की, सेना को देखा। राम को देखने की इच्छा से
कुम्भकर्ण उस सेना को देखने लगा। उसे अपने आगे धनुष चढ़ाये हुए लक्ष्मण देख पड़े। वानरों
ने आकर चारों ओर से कुम्भकर्ण को घेर लिया। कुछ वानर बड़े-बड़े वृक्ष उखाड़कर उसको मारने
लगे और कुछ वानर पास जाकर पैने नखों से नोचने लगे। अनेक प्रकार से युद्ध करते हुए वानर
शिला, वृक्ष आदि से उसे मारने लगे। तब हँसता हुआ कुम्भकर्ण उन प्रहारों से तनिक भी व्यथित
न होकर वानरों को पकड़-पकड़कर खाने लगा। महाबली चण्डबल और वज्रबाहु वानर को भी वह
खा गया। राक्षस कुम्भकर्ण के इस दुःखदायी भयानक काम को देखकर, डरकर, तार आदि वानर
ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगे। अपने सैनिक मुख्य वानरों को डरकर चिल्लाते देख वानरराज सुग्रीव
निर्भय भाव से कुम्भकर्ण की ओर दौड़े। उन्होंने दौड़कर कुम्भकर्ण के सिर पर बड़े ज़ोर से एक
शाल का वृक्ष मारा। कुम्भकर्ण के सिर पर लगने से उस वृक्ष के टुकड़े-टुकड़े हो गये, पर उससे
कुम्भकर्ण को तनिक भी व्यथा नहीं पहुँची।

शाल-वृक्ष के लगने से कुम्भकर्ण को चेत आया। उसने बड़े ज़ोर से गरजकर दोनों हाथों से १०
सुग्रीव को उठा लिया। इस प्रकार सुग्रीव को लेकर कुम्भकर्ण जब लंका की ओर चला तब
अपने मित्रों को आनन्द देनेवाले लक्ष्मण उसकी ओर दौड़े। शत्रुदमन लक्ष्मण ने पास जाकर
उसको एक सुवर्ण-पुङ्ख तीक्ष्ण बाण बड़े वेग से मारा। वह बाण कवच को काटता हुआ
कुम्भकर्ण के शरीर को फाड़कर, रक्त में भीगकर, पृथ्वी में घुस गया। उस बाण से हृदय
फट जाने पर कुम्भकर्ण ने सुग्रीव को छोड़ दिया। अब वह एक बड़ी शिला लेकर लक्ष्मण की
ओर दौड़ा। लक्ष्मण ने क्षुर बाणों से कुम्भकर्ण के दोनों हाथ काट डाले। तब वह चतुर्भुज हो
गया और उन हाथों में शिलाएँ लेकर लक्ष्मण की ओर दौड़ा। लक्ष्मण ने क्षुर बाण से उसके
चारों हाथ काट गिराये। अब वीरश्रेष्ठ कुम्भकर्ण ने माया-बल से अपने शरीर को बहुत बढ़ा
लिया। उसके अनेक सिर, हाथ और पैर हो गये। तब लक्ष्मण ने पर्वत-तुल्य कुम्भकर्ण के
शरीर में ब्रह्मास्त्र मारा। दिव्य अस्त्र लगते ही, बिजली से जले हुए वृक्ष की तरह, कुम्भकर्ण
पृथ्वी पर गिर पड़ा। वृत्रासुर के समान बली, वेगशाली, कुम्भकर्ण को मरकर पृथ्वी पर
गिरते देख सब राक्षस डर के मारे भाग खड़े हुए। २०

राक्षसों को भागते देखकर दूषण के भाई वज्रवेग और प्रमाथी ने आगे बढ़कर उन्हें
रोका। इसके बाद वे दोनों राक्षस क्रुद्ध होकर लक्ष्मण की ओर दौड़े। लक्ष्मण भी उन्हें आते

देख गरजकर उन पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। लक्ष्मण के साथ वे राक्षस लोमहर्षण युद्ध करने लगे। घड़ी भर तक उन राक्षसों के साथ लक्ष्मण का घोर युद्ध हो चुकने पर पवनपुत्र हनुमान् एक बड़ा भारी पर्वत का शिखर लेकर उनकी ओर दौड़े। हनुमान् ने वह शिला मारकर वज्रवेग को मार डाला। अब महाबली नील वानर ने बड़ी भारी शिला से प्रमाथी को भी मार गिराया। फिर राम और रावण की सेनाओं में परस्पर घोर युद्ध होने लगा। सैकड़ों वानरों को राक्षसों ने और राक्षसों
२९ को वानरों ने मारा किन्तु जितने राक्षस मारे गये उतने वानर नहीं।

दो सौ अट्ठासी अध्याय

इन्द्रजित् का युद्ध

मार्कण्डेय कहते हैं कि महाराज, राक्षसराज रावण ने जब सुना कि प्रहस्त और धूम्राक्ष की तरह कुम्भकर्ण भी वज्रवेग और प्रमाथी के साथ मारा गया, तब वह उदास होकर अपने पुत्र महावीर इन्द्रजित् (मेघनाद) से कहने लगा—पुत्र, तुम युद्ध-भूमि में जाकर राम और लक्ष्मण को मारो। पहले तुम युद्ध में इन्द्र को जीतकर पृथ्वी पर मेरा और अपना उज्ज्वल यश बढ़ा चुके हो। तुम मेरे सुपुत्र हो। हे शत्रुदमन, इस समय तुम छिपकर या आमने-सामने युद्ध करके अपने दिव्य बाणों से राम, लक्ष्मण और सुग्रीव आदि शत्रुओं को मारो। राम, लक्ष्मण और सुग्रीव कभी तुम्हारे बाणों की चोट नहीं सह सकते। उनके साथियों और वानरों की तो कुछ बात ही नहीं। प्रहस्त और कुम्भकर्ण आदि वीर राक्षस खर के वध का बदला नहीं ले सके। हे महाबाहु, अब तुम जाकर उस काम को पूरा करो। पुत्र, पहले इन्द्र को जीतकर तुमने जैसे मुझे प्रसन्न किया था, वैसे ही इस समय अपने तीक्ष्ण बाणों से शत्रुओं को और उनकी सेना को मारकर मुझे ख़ुश करो।

रावण के यों कहने पर इन्द्रजित् ने युद्ध में जाना स्वीकार कर लिया। कवच पहनकर, रथ पर बैठकर, इन्द्रजित् फुर्ती से युद्ध-भूमि को चला। उसने युद्ध के मैदान में, स्पष्ट रूप से अपना नाम सुनाकर, शुभ-लक्षण-युक्त लक्ष्मण को लड़ने के लिए ललकारा। लक्ष्मण भी धनुष-बाण लेकर उसकी ओर चले। उनके ताल ठोकने के शब्द को सुनकर सब राक्षस उसी तरह डर गये
१० जैसे सिंह के शब्द को सुनकर क्षुद्र मृग डर जाते हैं। हे युधिष्ठिर! इसके बाद जय की इच्छा और परस्पर लाग-डाँट रखनेवाले, दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता, दोनों वीर परस्पर घोर युद्ध करने लगे। बाण-युद्ध से जब इन्द्रजित् लक्ष्मण को परास्त नहीं कर सका तब वह दूसरे प्रकार के युद्ध से उन्हें हराने का यत्न करने लगा। वह बड़े वेग से तोमर नाम के शस्त्रों की वर्षा करने लगा। लक्ष्मण ने अपनी ओर आनेवाले तीक्ष्ण तोमरों को पैने बाणों से राह में ही काट गिराया। इसी बीच में

अङ्गद एक बड़ा भारी वृक्ष लेकर इन्द्रजित् की ओर दौड़े। उन्होंने बड़े जोर से वह वृक्ष उसके सिर पर दे मारा। उस प्रहार से इन्द्रजित् तनिक भी नहीं घबराया। उसने प्रास नाम का शस्त्र फेककर अङ्गद के हृदय में मारा। लक्ष्मण ने उस प्रास को अपने बाणों से बीच में ही काट डाला।

अब इन्द्रजित् ने अपने पास आये हुए अङ्गद के बायें कन्धे पर एक भारी गदा मारी; किन्तु उस चोट को अङ्गद ने कुछ भी नहीं समझा। फिर उन्होंने कुपित होकर एक बड़ा भारी शाल का वृक्ष उखाड़ लिया और वह इन्द्रजित् के ऊपर फेका। इन्द्रजित् को मारने के लिए अङ्गद के चलाये उस वृक्ष से घोड़े और सारथी सहित उसका रथ नष्ट हो गया। तब इन्द्रजित् माया-बल का आश्रय लेकर अन्तर्द्धान हो गया। महामायावी राक्षस को गुप्त होते देखकर रामचन्द्र वहाँ आ गये और इन्द्रजित् के माया-युद्ध से अपनी सेना की रक्षा करने लगे। इन्द्रजित्
गुप्त होकर तीक्ष्ण दिव्य बाणों से राम और लक्ष्मण के अङ्गों में प्रहार करने लगा। शूर-वीर राम २१
और लक्ष्मण, माया-बल से अदृश्य होकर लड़नेवाले, इन्द्रजित् से युद्ध और उसके ऊपर दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करने लगे। क्रुद्ध इन्द्रजित् ने सैकड़ों-हज़ारों बाण मारकर राम और लक्ष्मण को घायल कर दिया। अदृश्य होकर बाण मारनेवाले इन्द्रजित् को ढूँढ़ते हुए वीर वानर बड़ी-बड़ी शिलाएँ लेकर आकाश में पहुँच गये। मायावी इन्द्रजित् माया-बल से अदृश्य होकर राम, लक्ष्मण और उनके साथी वीर वानरों पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगा। बाण-वर्षा से अत्यन्त घायल राम और लक्ष्मण अचेत हो गये और आकाश से, सूर्य-चन्द्रमा के समान, पृथ्वी पर गिर पड़े। २६

दो सौ नवासी अध्याय

इन्द्रजित् का वध

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, राम और लक्ष्मण को पृथ्वी पर बेहोश होकर गिरते देख इन्द्रजित् ने वरदान में प्राप्त दिव्य बाणों से उनके अङ्गों को बाँध दिया। इन्द्रजित् ने जब बाण-जाल में बाँध दिया तब वे दोनों भाई पिंजड़े में पक्षी के समान जान पड़ने लगे। बाण-बन्धन से बँधे हुए राम-लक्ष्मण को—रक्षा करने के लिए—वानर-सेना के साथ सुषेण, मैन्द, द्विविद, कुमुद, अङ्गद, हनुमान्, नील, तार, नल और सुग्रीव ने घेर लिया। इतने में सब मायाओं और अस्त्रों के प्रतिकार को जाननेवाले विभीषण ने वहाँ पहुँचकर प्रज्ञास्त्र के प्रयोग से राम-लक्ष्मण की बेहोशी दूर कर दी। तब सुग्रीव ने दिव्य मन्त्र पढ़कर विशल्यकरणी ओषधि लगाकर दम भर में राम-लक्ष्मण के घाव अच्छे कर दिये। इस प्रकार पल भर में पुरुष-श्रेष्ठ महारथी राम और लक्ष्मण सचेत, आरोग्य और सबल होकर उठ खड़े हुए।

राम और लक्ष्मण को नीरोग देखकर विभीषण ने हाथ जोड़कर उनसे कहा—हे शत्रु-दमन, राजराज कुबेर की आज्ञा के अनुसार श्वेत पर्वत से यह दिव्य जल लेकर एक यक्ष आपके पास आया है। यक्षाधिप कुबेर के जल में यह शक्ति है कि इसे आँखों में लगा लेने से माया-बल के द्वारा छिपे हुए प्राणी देख पड़ते हैं। इसी लिए उन्होंने यह जल आपके पास भेजा है। आप जिसे यह जल देंगे वह भी इससे आँखें धोकर अदृश्य जीवों को देख सकेगा। हे युधिष्ठिर, विभीषण की सलाह से राम ने उस जल से अपनी आँखें धो डालीं। इसके बाद वीर लक्ष्मण और सुग्रीव, जाम्बवान्, हनुमान्, अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील आदि श्रेष्ठ वानरों ने भी उस जल से अपनी आँखें धोईं। [उन सबको तुरन्त ही दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई।]

उधर इन्द्रजित् युद्ध में सफलता प्राप्त करने के बाद, उसकी ख़बर देने, पिता के पास गया था। वहाँ से लौटकर वह फिर युद्धभूमि में आया। लक्ष्मण ने देखा कि इन्द्रजित् कुपित होकर फिर युद्ध करने आया है। तब वे विभीषण की सम्मति से इन्द्रजित् की ओर चले। वह कुछ अपना नित्य-कर्म करना चाहता था परन्तु विभीषण का इशारा पाकर लक्ष्मण ने उसे वह कृत्य नहीं करने दिया। कुपित लक्ष्मण बीच में ही विजयी इन्द्रजित् पर बाण बरसाने लगे। परस्पर जय पाने की इच्छा रखनेवाले दोनों वीर, इन्द्र और प्रह्लाद की तरह, आश्चर्यजनक दारुण युद्ध करने लगे। इन्द्रजित् मर्म-भेदी तीक्ष्ण बाण मारकर लक्ष्मण को घायल करने लगा, और लक्ष्मण भी उस पर अग्निमय बाण चलाने लगे। लक्ष्मण के बाणों की चोट खाकर इन्द्रजित् क्रोध से विह्वल हो उठा। उसने लक्ष्मण को विषैले साँप के समान आठ बाण मारे। राक्षस के उन बाणों को लक्ष्मण ने अपने बाणों से व्यर्थ कर दिया और फिर अग्निमय तीन बाणों से जिस तरह उस दुष्ट को मारा, सो भी सुनो। उन्होंने दो बाणों से इन्द्रजित् के—धनुष और नाराच बाण से शोभित—दोनों हाथों को काट डाला; फिर तीसरे बाण से सुन्दर नासिका और कुण्डलों से शोभित उसका सिर भी काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया। सिर और भुजाओं के कटने पर भयानक आकारवाला उसका कबन्ध रथ पर गिर पड़ा। इन्द्रजित् को मारकर लक्ष्मण ने उसके सारथी को भी मार डाला। इन्द्रजित् के घोड़े ख़ाली रथ को लेकर लङ्का में चले गये। बिना पुत्र के सूने रथ को देखकर रावण शोक से विह्वल हो गया। उसे कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान न रहा।

पुत्र शोक से मोहित रावण उस समय सीता को मार डालने के लिए तैयार हो गया। दुष्ट रावण खड्ग लेकर बड़े वेग से अशोक वाटिका की ओर दौड़ा, जहाँ पर राम के दर्शन की लालसा लगाये हुए सीता बैठी थीं। दुर्बुद्धि दशानन के पाप-विचार का हाल जानकर अविन्ध्य राक्षस ने उसके पास जाकर, समझाते हुए, कहा—महाराज, आप इस बड़े भारी समृद्ध राज्य के स्वामी हैं। स्त्री-हत्या करना आपके योग्य काम नहीं है। सीता आपकी अधीनता में क़ैद

है। मेरी समझ में यह तो बिना मारे ही मरी हुई के बराबर है, शस्त्र से इसे मारने की ज़रूरत
नहीं। आप इसके पति को ही मारिए, उसे मारना ही इसे मारना है। देवराज इन्द्र भी ३०
पराक्रम में आपके समान नहीं हैं। आप कई बार इन्द्र आदि देवताओं को युद्ध-भूमि में हरा चुके हैं, और वे डरकर भाग चुके हैं।

महाराज, अविन्ध्य ने इस तरह के अनेक युक्तिसंगत वचन कहकर रावण को शान्त कर दिया। वह उस वृद्ध सचिव का कहा मानकर, तलवार बाँधकर, युद्ध के लिए जाने को तैयार हुआ। उसने उसी
समय सारथी को रथ तैयार करके लाने की आज्ञा दी। ३४

दो सौ नब्बे अध्याय

रावण का मारा जाना

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, इन्द्रजित् के मरने से अत्यन्त क्रोधित रावण रत्न-शोभित रथ पर बैठकर लड़ने के लिए मैदान में आया। विविध शस्त्र लिए हुए भयङ्कर राक्षसों के झुण्ड उसके साथ-साथ चले। बड़े-बड़े बानरों को गिराता और मारता हुआ रावण रामचन्द्र की ओर दौड़ा। इधर से मैन्द, नल, नील, अङ्गद, हनुमान्, जाम्बवान् आदि वीर योद्धा अपनी सेना साथ लेकर रावण को रोकने के लिए आगे बढ़े। उसके सामने ही ये लोग वृक्ष-शिला आदि के प्रहार से राक्षस-सेना का नाश करने लगे।

मायावी रावण ने अपनी सेना का नाश होते देखकर राक्षसी माया प्रकट की। बाण, शक्ति, ऋष्टि आदि शस्त्र शस्त्र हाथ में लिये सैकड़ों-हज़ारों राक्षस उसके शरीर से निकलते हुए देख पड़ने लगे। रामचन्द्र ने दिव्य अस्त्र से उन राक्षसों को नष्ट कर दिया। तब राक्षसराज रावण दूसरे प्रकार की माया प्रकट करने लगा। वह रामचन्द्र के अनेक रूप रखकर लक्ष्मण की ओर और लक्ष्मण के अनेक रूप रखकर रामचन्द्र की ओर दौड़ा। राम-लक्ष्मण का रूप रक्खे हुए रावण की माया से उत्पन्न राक्षस लोग धनुष चढ़ाकर बाण बरसाते हुए राम और लक्ष्मण की ओर चले। यह माया देखकर रामचन्द्र तनिक भी नहीं घबराये और लक्ष्मण से कहने लगे—भाई, हम लोगों का रूप
रखकर अपनी ओर आनेवाले इन राक्षसों को मारो। इसके बाद राम-लक्ष्मण ने अपना रूप १०
रखनेवाले उन राक्षसों को नष्ट कर दिया।

इसी बीच में इन्द्र का सारथी मातलि, हरे घोड़ों से शोभित और सूर्य के समान प्रकाशमान, रथ लेकर राम के पास आया और कहने लगा—राघव, यह हरे घोड़ों से युक्त, विजयदायक इन्द्र का रथ है। महेन्द्र ने इस रथ पर बैठकर सैकड़ों-हज़ारों दुर्द्धर्ष दानवों को मारा है। मैं आपके सारथी का काम करूँगा। आप इस रथ पर बैठकर शीघ्र रावण को मारिए।

इन वचनों पर राम को विश्वास नहीं हुआ; वे उसे भी राक्षस की माया समझकर शङ्कित हुए। तब विभीषण ने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ, यह दुष्ट रावण की माया नहीं है। आप बेखटके इन्द्र के भेजे हुए इस रथ पर बैठिए। रामचद्र प्रसन्नता से विभीषण की बात मानकर उस रथ पर बैठे और कुपित होकर रावण को मारने के लिए उसकी ओर चले।

रामचन्द्र को रावण पर आक्रमण करते देखकर उसके अनुगामी भूत-पिशाच-राक्षस हाहाकार करने लगे। स्वर्ग में देवता प्रसन्न होकर सिंहनाद करते हुए नगाड़े बजाने लगे। उस समय रामचन्द्र
१० और रावण का ऐसा घोर युद्ध हुआ, जिसकी उपमा और किसी युद्ध से नहीं दी जा सकती। रावण ने इन्द्र के वज्र ऐसा भयङ्कर तीक्ष्ण शूल ले रामचन्द्र के ऊपर फेंका। रामचन्द्र ने तीक्ष्ण बाणों से उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। उनका यह दुष्कर कर्म देखकर रावण बहुत डरा। अब कुपित होकर वह रामचन्द्र के ऊपर हजारों तीक्ष्ण बाण, भुशुण्डी, शूल, मूसल, परश्वध, तरह-तरह की शक्तियाँ और शतघ्नियाँ बरसाने लगा। राक्षसराज रावण की अनेक प्रकार की घोर मायाओं को देखकर सब वानर बहुत डरे और चारों ओर भागने लगे।

तब रामचन्द्र ने सुन्दर पंखवाले, सुमुख, सुवर्णपुङ्ख-युक्त एक उत्तम बाण को तरकस से निकालकर ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित किया। उनको ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करते देख इन्द्र आदि देवता और किन्नर, सिद्ध, गन्धर्वगण अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने समझ लिया कि दुष्ट रावण की आयु अब बहुत थोड़ी रह गई है। रामचन्द्र ने परम तेजस्वी, अति भयंकर, ब्रह्मास्त्र-युक्त, ब्रह्मदण्ड-
२० तुल्य वह बाण रावण को मारने के लिए छोड़ा। प्रज्वलित प्रचण्ड अग्निरूप उस बाण ने जाकर रथ, घोड़े, सारथी आदि के साथ रावण को भस्म कर दिया। इस प्रकार रावण का नाश हुआ देखकर देवता, गन्धर्व, चारण आदि को बड़ी प्रसन्नता हुई। पृथिवी आदि पञ्चभूतों ने रावण को त्याग
३१ दिया, अर्थात् वह मर गया। ब्रह्मास्त्र के तेज से उसके शरीर का मांस, रक्त, और सब धातुएँ ऐसी भस्म हुईं कि उनकी राख तक न देख पड़ी।

दो सौ इक्यानबे अध्याय

रामचन्द्र का अयोध्या में लौटकर जाना और राजगद्दी पर बैठना

मार्कण्डेय ने कहा—हे युधिष्ठिर, रामचन्द्र इस प्रकार देव-द्रोही राक्षसराज रावण को मारकर लक्ष्मण और अन्य इष्ट-मित्रों के साथ बहुत प्रसन्न हुए। रावण के मरने पर देवता और ऋषि महाबाहु रामचन्द्र की जयजयकार करते हुए वहाँ आये और आशीर्वाद देकर उनकी बड़ाई करने लगे। सब देवता रामचन्द्र की स्तुति करने लगे। गन्धर्व लोग उनके ऊपर फूल बरसाने लगे। देवता, ऋषि और गन्धर्व युद्धभूमि में रामचन्द्र की पूजा और स्तुति करके अपने-अपने स्थान को चले गये। उस समय आकाश में बड़ा उत्सव सा हो गया।

शत्रुदमन राम ने रावण को मारने के बाद लङ्का का राज्य धर्मात्मा विभीषण को दे दिया। तब रावण का वृद्ध सचिव, महाबुद्धिमान्, अविन्ध्य राक्षस विभीषण के साथ रामचन्द्र के पास आया। उसके साथ जानकी भी थीं। अविन्ध्य ने बहुत ही नम्रता के साथ कहा—महात्मा रघुनन्दन, इन सच्चरित्रवाली पवित्र सीताजी को ग्रहण कीजिए। इक्ष्वाकुवंशी रामचन्द्र अविन्ध्य की बात सुनकर, रथ से उतर पड़े। उन्होंने सर्वाङ्गसुन्दरी सीता को देखा। वे आँखों में आँसू भरे, पतिवियोग से कातर, मैले कपड़े पहने, सवारी पर बैठी थीं। उनका शरीर दुर्बल और मलिन हो रहा था और सिर पर केशों के उलझ जाने से जटाएँ बँध गई थीं।

तब सीता के चरित्र पर सन्देह करके, लोकापवाद से डरकर, रामचन्द्र ने कहा—हे वैदेही, तुम्हें राक्षस के हाथ से छुड़ाकर मैं अपने कर्त्तव्य का पालन कर चुका। अब तुम्हारा जहाँ जी चाहे वहाँ जाओ। भद्रे, मुझ ऐसे पति को पाकर राक्षसके घर में तुम कष्ट न पाओ, क़ैद में ही रहकर बुड्ढी न हो १०
जाओ, इस विचार से मैंने रावण को मारा है। धर्म के मर्म को अच्छी तरह जाननेवाला मुझ सा मनुष्य पराये घर में रही हुई पत्नी को पल भर भी कैसे अपने पास रख सकता है? जानकी, तुम्हारा चरित्र चाहे शुद्ध हो चाहे न हो, परन्तु कुत्ते के जूठे किये हुए हव्य की तरह, मैं तुमको स्वीकार नहीं कर सकता।

रामचन्द्र के ये दारुण वचन सुनकर पतिव्रता और पति को ही देवता माननेवाली जानकी बहुत ही दुखी हुईं और कटे हुए केले के पेड़ की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ीं। पति के दर्शन की लालसा से पहले उनका मुख-कमल खिल गया था; किन्तु अब वह, मुँह की भाफ से मैले हो गये शीशे की तरह, मलिन हो गया। वानरों सहित लक्ष्मण, रामचन्द्र के ऐसे निठुर वचन सुनकर, मुर्दे की तरह सन्नाटे में आ गये। हे युधिष्ठिर, उस समय विशुद्धस्वरूप चतुर्मुख कमल-योनि ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, वायु, यमराज, वरुण, यक्षराज कुबेर, सप्तऋषि और महाराज दशरथ आदि सब स्वर्गवासी महापुरुष हंसयुक्त बहुमूल्य विमानों पर चढ़कर रामचन्द्र के पास आये। उस समय अन्तरिक्ष में एकत्रित देवताओं और गन्धर्वों
के तेज से आकाश-मण्डल तारागणों से शोभित सा जान पड़ने लगा। २०

तब यशस्विनी वैदेही ने उठकर उन सबके सामने रामचन्द्र से कहा—हे राजकुमार, आपने जो यह कहा उसके लिए मैं आपको दोष नहीं देती; क्योंकि मैं स्त्रियों और पुरुषों की गति अर्थात् स्वभाव को अच्छी तरह जानती हूँ। अब मैं जो कहती हूँ उसे सुनिए। सब मनुष्यों के हृदय में रहनेवाले सदागति वायुदेव अन्तर्यामी होने के कारण सबके हृदय का हाल जानते हैं। यदि मैंने मन में भी किसी प्रकार के पाप को आने दिया हो तो वे मेरे प्राणों को नष्ट कर दें। जो मैं किसी तरह से दुराचारिणी होऊँ तो वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी और आकाश, ये पञ्चतत्त्व मेरे शरीर को नष्ट कर दें। हे वीर, आपके सिवा और किसी पुरुष को मैंने स्वप्न में भी नहीं याद किया। हे देव, आप ही मेरे स्वामी हैं। देवताओं के कहने से आप मुझे ग्रहण करें।

सीता के यों कह चुकने पर, सब लोगों के सामने, पवित्र आकाशवाणी हुई जिससे वानरों को आनन्द हुआ। पहले वायु ने कहा—हे राघव, मैं सदागति वायु हूँ। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि सीता में रत्ती भर भी पाप नहीं है इसलिए तुम इन्हें ग्रहण करो। फिर अग्नि ने कहा—हे रघुनन्दन, मैं सब प्राणियों के शरीर में रहनेवाला अग्नि तुमसे सच कहता हूँ कि जानकी में कुछ भी पाप नहीं है। इसके बाद वरुण ने कहा—हे राघव, सब प्राणियों के शरीर में जो रस का अंश है, वह मुझसे उत्पन्न है। मैं कहता हूँ कि तुम जानकी को ग्रहण करो। अब प्रजापति ब्रह्मा ने कहा—हे पुत्र, तुम राजर्षियों के धर्म का पालन करनेवाले और सच्चरित्र हो, इसलिए तुम्हारा यों सीता को स्वीकार न करना कुछ विचित्र नहीं है। किन्तु अब जो मैं कहता हूँ सो सुनो।
३० हे वीर, तुमने रावण को मारकर देवता, गन्धर्व, यक्ष, नाग, दानव और महर्षि आदि का बड़ा उपकार किया है। मेरे वरदान से पापी रावण को कोई मार नहीं सकता था। किसी कारण मैं कुछ समय तक उसके किये अत्याचारों को उपेक्षा की दृष्टि से देखता रहा। इसके बाद दुरात्मा रावण अपनी मौत के लिए सीता को हर ले गया। मैं नलकूबर के शाप की सहायता से सदा सीता की रक्षा करता रहा हूँ। पहले कुबेर के पुत्र नलकूबर ने रावण को शाप दिया था कि वह किसी कामनाहीन स्त्री पर यदि बलात्कार करेगा तो उसके सिर के सौ टुकड़े हो जायँगे। इसलिए हे महातेजस्वी राघव, तुम सीता के बारे में सन्देह न करो; उन्हें ग्रहण कर लो। हे देव-तुल्य, तुमने देवताओं का बड़ा भारी काम किया है।

हे युधिष्ठिर, इसके बाद महाराज दशरथ ने कहा—पुत्र, मैं तुम्हारा पिता दशरथ हूँ। तुम्हारा भला हो। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। हे नरश्रेष्ठ, मैं तुमको आज्ञा देता हूँ, तुम जानकी को लेकर अयोध्यापुरी में जाओ, और वहाँ सुख से राज्य करो। दशरथ के ये वचन सुनकर रामचन्द्र ने कहा—महाराज, यदि आप मेरे पिता हैं तो मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मैं आपकी आज्ञा से अयोध्यापुरी में जाकर राज्य करूँगा।

मार्कण्डेय कहते हैं कि हे धर्मराज, रामचन्द्र के वचन सुनकर, अत्यन्त प्रसन्न होकर, दशरथ ने फिर कहा—हे महातेजस्वी राघव, अब चौदह वर्ष पूरे हो गये हैं। तुम शीघ्र अयोध्या में जाकर राज्य करो। इसके बाद रामचन्द्र ने सब देवताओं को प्रणाम किया। लक्ष्मण, सुग्रीव आदि इष्ट-मित्रों ने रामचन्द्र का अभिनन्दन किया। इसके बाद रामचन्द्र सीता को ग्रहण करके इन्द्राणी सहित इन्द्र के सामने शोभित हुए। फिर उन्होंने अविन्ध्य को यथेष्ट वर देकर त्रिजटा राक्षसी को धन और सम्मान
से सन्तुष्ट किया। ४०

अब इन्द्र आदि देवताओं सहित कमलयोनि ब्रह्मा ने कहा—हे कौशल्यानन्दन, तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम हमसे क्या वरदान चाहते हो? रामचन्द्र ने कहा—ब्रह्मन्, धर्म में मेरी अचल बुद्धि हो। शत्रु मुझे कभी परास्त न कर सकें। राक्षसों ने जिन वानरों को मारा है वे फिर जी उठें। ब्रह्मा ने तथास्तु कहकर ये तीनों वर दिये। अब क्या था, सब मरे हुए वानर जीकर उठ बैठे। इसके बाद जानकीजी ने भाग्यशाली हनुमान् को यह वर दिया कि हे पुत्र, जब तक रामचन्द्र की कीर्त्ति पृथ्वी पर रहेगी तब तक तुम जियोगे। मेरे प्रसाद से तुमको सदा दिव्य भोग प्राप्त होंगे।

हे युधिष्ठिर, इसके बाद इन्द्र आदि सब देवता रामचन्द्र के सामने ही अन्तर्द्धान हो गये। तब जानकी के साथ अपने इष्ट-मित्रों के बीच विराजमान रामचन्द्र को देखकर बड़ी प्रसन्नता से इन्द्र के सारथी मातलि ने कहा—हे सत्यपराक्रमी, आपने रावण को मारकर देवता, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य और असुरों का बड़ा भारी दुःख दूर कर दिया। इसलिए जब तक पृथ्वी पर प्राणी रहेंगे तब तक आपकी कीर्त्ति गाई जायगी। राजन्! रामचन्द्र से यों कहकर, उनकी पूजा करके, उनसे आज्ञा लेकर मातलि
सारथी उसी सूर्य-सदृश रथ पर बैठकर देवलोक को चला गया। ५०

अब सीता सहित जितेन्द्रिय रामचन्द्र लङ्का की रक्षा का प्रबन्ध करके लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण और अन्य असंख्य वानरों के साथ कामगामी रमणीय पुष्पक विमान पर सवार हुए। अङ्गद, हनुमान् आदि प्रधान सचिव भी उनके साथ विमान पर बैठे। आकाश-मार्ग के द्वारा उसी सेतु के ऊपर से रामचन्द्र समुद्र के इस पार आये। जहाँ समुद्र-तट पर पहले रामचन्द्र ने

सागर को प्रसन्न करने के लिए शयन किया था वहीं पर लौटते समय भी ठहरे। उन्होंने वहीं पर दूर-दूर से आये हुए वानरों को रत्न-धन आदि से सन्तुष्ट करके बिदा किया। वानर, लङ्गूर, रीछ आदि सबके चले जाने पर रामचन्द्र सुग्रीव के साथ किष्किन्धा पुरी में पहुँचे। वहाँ अङ्गद को युवराज का पद देकर फिर सुग्रीव, विभीषण आदि के साथ उसी राह से अयोध्या की ओर चले, जिस
६० राह से पहले आये थे। महाराज, रामचन्द्र जब अयोध्या के समीप पहुँच गये तब उन्होंने हनुमान् को दूत बनाकर भरत के पास भेजा। हनुमान् ने नन्दिग्राम में देखा, [राम-वियोग के शोक से पीड़ित] भरत मुनियों के से कपड़े पहने बैठे हैं। उनके आगे सिंहासन पर रामचन्द्र की खड़ाऊँ रक्खी हैं। भरत के शरीर में धूल भरी हुई है, वे किसी प्रकार के भोग की सामग्री का व्यवहार नहीं करते। इन लक्षणों से भरत को पहचानकर उन्हें राम-लक्ष्मण-सीता के आने का शुभ और प्रिय समाचार पवनसुत ने सुनाया।

अब राम-लक्ष्मण आकर भरत और शत्रुघ्न से मिले। राम-लक्ष्मण के साथ सीता को देखकर भरत-शत्रुघ्न को बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर भरत ने बड़ी प्रसन्नता के साथ अयोध्या का राज्य रामचन्द्र को सौंप दिया। कुलपुरोहित वशिष्ठ और वामदेव ने श्रवण और अभिजित् नक्षत्र के संयोग में शूरवीर रामचन्द्र को सिंहासन पर बिठाकर राज्याभिषेक किया। अभिषेक के बाद रामचन्द्र ने सुग्रीव, विभीषण और अन्य इष्ट-मित्रों को रत्न आदि देकर यथोचित सम्मान के उपरान्त बड़े कष्ट से बिदा किया। फिर राघव ने प्रीतिपूर्वक पुष्पक विमान की पूजा करके वह कुबेर को ही दे दिया। कुछ समय के बाद रामचन्द्र ने गोमती नदी के तट पर देवताओं और ऋषियों को बुलाकर विधिपूर्वक सौ अश्वमेध यज्ञ किये और उनमें जितनी चाहिए
७० उससे तिगुनी दक्षिणा ब्राह्मणों को दी।

दो सौ बानबे अध्याय

मार्कण्डेय का युधिष्ठिर को धीरज बँधाना

मार्कण्डेय कहते हैं—हे महाबाहु धर्मराज, पूर्व समय में परमतेजस्वी रामचन्द्र ने भी इसी प्रकार वन में रहकर अत्यन्त कठोर दुःख सहे हैं। इस कारण हे पुरुषसिंह, तुम शोक न करो। हे शत्रुदमन, तुम क्षत्रिय हो और इसी से प्रत्यक्ष फलदायक बाहुबल के आश्रय की राह में चल रहे हो। तुममें या तुम्हारे आचरण में रत्ती भर भी पातक नहीं देख पड़ता। राजन्, जिस मार्ग पर तुम चल रहे हो उसी मार्ग को देवताओं सहित इन्द्र और श्रेष्ठ दानव भी ग्रहण करते हैं। इन्द्र सहित सब देवताओं ने मिलकर वृत्रासुर, दुर्द्धर्ष नमुचि और दीर्घजिह्वा राक्षसी को मारा है। जो पुरुष सहायवान् है उसके सब कार्य अच्छी तरह सिद्ध होते हैं। महावीर

अर्जुन, भीमपराक्रमी भीमसेन और नवयुवक योद्धा नकुल-सहदेव जिसके भाई हैं वह युद्ध में किसे नहीं जीत सकता ? इन सहायकों के रहते तुम क्यों दुःखी होते हो ? ये तुम्हारे भाई देव-सेना सहित इन्द्र को भी संग्राम में जीत सकते हैं। तुम इन देवरूपी महाबली भाइयों की सहायता से शीघ्र ही सब शत्रुओं को जीत लोगे। देखो, सिन्धुराज जयद्रथ इसी वन में बलपूर्वक द्रौपदी को ले भागा था। किन्तु इन महाबली पुरुषों ने सहज ही उसे जीतकर द्रौपदी को छुड़ा लिया। विचार कर
देखो, रामचन्द्र का कोई सहायक न था, केवल वानर और रीछ उनके मित्र थे ; तब भी वे युद्ध १०
में रावण को मारकर सीता को उसके यहाँ से छुड़ा लाये। इससे हे कुरुश्रेष्ठ, तुम शोक न करो। तुम्हारे ऐसे महात्मा धीर पुरुष शोक से व्याकुल नहीं होते।

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, बुद्धिमान् मार्कण्डेय के इस प्रकार समझाने पर युधिष्ठिर ने
चिन्ता और शोक छोड़कर उनसे इस प्रकार कहा। १४

पतिव्रता-माहात्म्यपर्व

दो सौ तिरानबे अध्याय

महाराज अश्वपति की कन्या सावित्री का उपाख्यान

महाराज युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय से कहा—मुनिवर, मुझे अपने और भाइयों के कष्ट उठाने का या हाथ से राज्य निकल जाने का उतना शोक नहीं है, जितना द्रौपदी के लिए शोक है। जुए के समय दुष्ट कौरवों के द्वारा सताये जाने पर हमें द्रौपदी ने ही उस विपत्ति से उबारा था, उन्हीं द्रौपदी को दुष्ट जयद्रथ ने वन से हर ले जाकर घोर कष्ट दिया ! ऋषिवर, आपने इन भाग्यवती द्रौपदी के समान पतिव्रता स्त्री कहीं देखी या सुनी है ?

मार्कण्डेय ने कहा—महाराज, कुलस्त्रियों को जितना सौभाग्य प्राप्त हो सकता है उतना सौभाग्य राजकन्या पतिव्रता सावित्री ने प्राप्त किया था। उनके उस सौभाग्य की कथा मैं कहता हूँ, सुनो। मद्र देश में परम धर्मात्मा, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यव्रत, जितेन्द्रिय, यज्ञ करनेवाले, दानवीर, पुरवासी और प्रजा को प्रिय तथा सब प्राणियों के हितचिन्तक एक राजा थे। उनका नाम अश्वपति था। उनके कोई सन्तान न थी। बाल-बच्चे पैदा होने की अवस्था निकल जाने पर उन्होंने, पुत्र या कन्या की प्राप्ति के लिए, सावित्री देवी की आराधना की। वे ब्रह्मचर्य से रहकर, इन्द्रिय-दमन आदि कठोर नियमों का पालन करते हुए सावित्री देवी की प्रसन्नता के लिए अग्नि में नित्य एक लाख आहुतियाँ छोड़ते थे, और दिन के छठे भाग में थोड़ा सा भोजन कर लेते थे। उन्होंने इसी नियम से अठारह वर्ष तक देवाराधना की। अठारह वर्ष पूरे होने पर

१० सावित्री देवी उन पर प्रसन्न हुईं और अग्निहोत्र से प्रकट होकर राजा से कहने लगीं—राजन्! तुम्हारे ब्रह्मचर्य, पवित्रता, दम, नियम और अटल भक्ति से मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम

सदा धर्म-कर्म करते रहो और इस समय तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर मुझसे माँगो।

अश्वपति ने कहा—देवी, मैंने धर्म-रक्षा के लिए सन्तान की इच्छा से आपकी आराधना की है। इसलिए जो आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरी प्रार्थना यही है कि मेरे वंश को बढ़ानेवाले बहुत से पुत्र हों। आप मुझे यही वर दीजिए। ब्राह्मणों के उपदेश से मैं पुत्र को ही परम धर्म मानता हूँ। तब सावित्री देवी ने कहा—राजन्, तुम्हारा यह अभिप्राय जानकर मैं पहले ही इस विषय में भगवान् ब्रह्मा से कह चुकी हूँ। उनके प्रसाद से तुम्हारे शीघ्र ही एक तेजस्विनी कन्या उत्पन्न होगी। अब इस बारे में (पुत्र के लिए) तुम कुछ न कहना। मैं प्रसन्न होकर ब्रह्मा की आज्ञा के अनुसार तुमसे यह बात कहती हूँ।

मार्कण्डेय कहते हैं—महाराज अश्वपति सावित्री के वचन को मानकर फिर उन्हें पूजा आदि से प्रसन्न करने लगे। सावित्री के अन्तर्द्धान हो जाने पर राजा अपने रनिवास में गये।

२० इसके बाद वे पहले की तरह धर्म से प्रजा-पालन करते हुए अपने राज्य में रहने लगे। कुछ समय बीतने पर सदाचारी सुशील राजा अश्वपति की बड़ी रानी धर्मवती मालवी के गर्भ रह गया। हे भरतश्रेष्ठ, रानी मालवी का वह गर्भ शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान दिन-दिन बढ़ने लगा। यथासमय रानी के गर्भ से एक कमलनयनी कन्या उत्पन्न हुई। राजा अश्वपति ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उस कन्या के जात-कर्म आदि संस्कार किये। सावित्री मन्त्र (गायत्री) पढ़कर अग्नि में आहुति देने से प्रसन्न होकर सावित्री ने वह कन्या दी थी, इसी कारण अश्वपति की इच्छा से ब्राह्मणों ने उस कन्या का नाम सावित्री ही रक्खा। वह राजकन्या साक्षात् लक्ष्मी के समान सुन्दरी थी। कुछ दिनों में सावित्री जवान हुई। पतली कमर और विशाल नितम्बोंवाली सावित्री को लोग देवकन्या समझते थे। उस कमलनयनी कन्या का तेज ऐसा था कि किसी को उससे ब्याह करने का साहस न होता था।

एक समय किसी पर्व के दिन साक्षात् लक्ष्मी के समान सुन्दरी राजकुमारी सावित्री उपवास, स्नान, हवन, देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करने के उपरान्त पवित्र मन से इष्टदेवता के

प्रसाद की माला लेकर अपने पिता के पास गईं। पिता के चरणों में प्रणाम करने के बाद उनको
वह प्रसाद की माला देकर, हाथ जोड़कर, सावित्री उनके पास खड़ी हो गईं। अपनी ३०
देवरूपिणी कन्या को जवान देखकर और यह सोचकर कि कोई राजकुमार इससे ब्याह करने की हिम्मत नहीं करता, राजा बहुत दुःखित हुए। तब उन्होंने सावित्री से कहा—बेटी, तुम्हारे विवाह का समय आ गया है, किन्तु किसी ने अभी तक तुम्हारे लिए मुझसे प्रार्थना नहीं की। इसलिए तुम ख़ुद अपने योग्य पति ढूँढ़ लो। जिसे तुम पसन्द करो, उसके बारे में आकर मुझसे कहो। मैं विचार करके उसी के साथ तुम्हारा ब्याह कर दूँगा। ब्राह्मणों के मुँह से धर्मशास्त्रों में मैंने जो सुना है सो मैं कहता हूँ, सुनो। जो पिता कन्या का विवाह नहीं करता, जो पुरुष ऋतुकाल में गमन नहीं करता और जो मनुष्य विधवा माता की

रक्षा और पालन नहीं करता, वे तीनों संसार में निन्दनीय होते हैं। इसलिए तुम मेरी आज्ञा से शीघ्र अपने योग्य वर ढूँढ़ो। तुम वही करो, जिसमें मुझे देवताओं के समीप निन्दनीय न होना पड़े।

मार्कण्डेय कहते हैं—कन्या को यह आज्ञा देकर अश्वपति ने वृद्ध मन्त्रियों को उसके साथ जाने की आज्ञा दी। सावित्री ने लजाकर अपने पिता के चरणों में प्रणाम किया। फिर मन्त्रियों के साथ सुवर्णमय रथ पर बैठकर वे वर की खोज में चलीं। सावित्री अनेक राजर्षियों के तपोवनों में गईं और वहाँ जो माननीय वृद्ध पुरुष देख पड़े उनके चरणों में उन्होंने प्रणाम किया। इस प्रकार सब तपोवनों और तीर्थों में घूमती हुई और धन आदि देकर ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करती हुई सावित्री
अनेक स्थानों में विचरने लगीं। ४१

दो सौ चौरानवे अध्याय

राजा अश्वपति और नारद मुनि का संवाद

मार्कण्डेय कहते हैं—एक समय मद्र देश के राजा अश्वपति सभा में बैठे हुए नारद मुनि से बातचीत कर रहे थे कि इसी समय मन्त्रियों के साथ सब तीर्थों और आश्रमों में घूम कर

सावित्री आ गईं। पिता को और नारद को बैठे देखकर उन्होंने दोनों के चरणों में प्रणाम किया। अब नारद ने अश्वपति से कहा—राजन्, तुम्हारी यह कन्या कहाँ गई थी? यह कहाँ से आ रही है? महाराज, तुम्हारी कन्या जवान हो चुकी है; तुम योग्य पात्र के साथ इसका ब्याह क्यों नहीं कर देते?

अश्वपति ने कहा—ऋषिवर, मैंने इसे अपने योग्य वर खोजने के लिए भेजा था। इस समय इसी के मुँह से सुनिए कि इसने किसे अपना पति स्वीकार किया है।

मार्कण्डेय कहते हैं कि पिता के वचन सुनकर और उनकी आज्ञा पाकर सावित्री ने कहा—पिताजी, शाल्व देश में एक द्युमत्सेन नाम के राजा थे। वे बड़े ही धर्मात्मा क्षत्रिय थे। दैवकोप के कारण पीछे से उनकी आँखें जाती रहीं। उस समय उनके थोड़ी अवस्था का एक पुत्र था। मौक़ा ढूँढ़नेवाले शत्रुओं ने उन्हें अन्धा और उनके पुत्र को बालक देखकर उनका राज्य छीन लिया। वे महाराज द्युमत्सेन राज्य से भ्रष्ट होकर अपने बालक पुत्र और रानी के साथ वन में आकर तप कर रहे हैं। उनके उस पुत्र का नाम सत्यवान् है। महाराज, सत्यवान् नगर में पैदा होकर तपोवन में पले हैं। अपने योग्य
१० समझकर मैंने उन्हें मन ही मन अपना पति मान लिया है।

तब नारद ने कहा—राजन्, सावित्री ने बिना जाने ही गुणी सत्यवान् को अपना पति मान लिया, यह बहुत ही नासमझी हुई। द्युमत्सेन और उनकी स्त्री दोनों सदा सत्य वचन कहते हैं, इसी से ब्राह्मणों ने उनके बेटे का नाम सत्यवान् रक्खा है। उनको लोग चित्राश्व भी कहते हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें घोड़ों का बड़ा शौक़ है और वे लड़कपन में मिट्टी के घोड़े बनाकर, चित्र में घोड़े की शकल खींचकर, खेलते थे। यह सुनकर अश्वपति ने पूछा—नारदजी, वह राजकुमार इस समय तेज, बुद्धि, क्षमा, शूरता, पिता और माता की भक्ति आदि गुणों से युक्त तो है न? नारद ने कहा—महाराज, सत्यवान् सूर्य के समान तेजस्वी हैं, बृहस्पति के समान बुद्धिमान् हैं, महेन्द्र के समान शूर और पृथ्वी के समान क्षमावान् हैं। अश्वपति ने फिर पूछा—मुनिवर! राजकुमार सत्यवान् दाता, ब्राह्मण-भक्त, उदार, सुरूप और प्रियदर्शन हैं न? नारद ने कहा—रानी संकृति के पुत्र सत्यवान् राजा रन्तिदेव के समान दाता, उशीनर के पुत्र राजा शिवि के समान ब्राह्मण-भक्त और सत्यवादी, राजा ययाति के समान उदार और

अश्विनीकुमारों के समान सुन्दर हैं। तपस्या और चरित्र में जो श्रेष्ठ हैं उन सज्जनों का कहना है कि
महाबली और पराक्रमी सत्यवान् संयमी, दयालु, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, बन्धुओं को प्रिय, ईर्ष्याहीन,
लज्जाशील, धीर, सरल-प्रकृति, तेजस्वी और धर्म की मर्यादा को जानते और मानते हैं। राजन्, ये सब
गुण उनमें सदा स्थिर रूप से रहते हैं। २०

अश्वपति ने कहा—भगवन्, आपने मुझसे सत्यवान् के सब गुण कह दिये; अब यदि उनमें कुछ दोष हों तो वे भी कहिए। नारद ने कहा—राजन्, सत्यवान् में केवल एक दोष है, जिसने उनके सब गुणों को व्यर्थ कर दिया है। वह दोष किसी यत्न से दूर नहीं किया जा सकता। वह दोष यही है कि सब गुणों से युक्त सत्यवान् अल्पायु हैं। आज से एक वर्ष के बाद उनकी मृत्यु हो जायगी। तब राजा ने सावित्री से कहा—बेटी, तुम अपने लिए दूसरा वर खोज लो। सत्यवान् में एक बड़ा भारी दोष नारदजी बताते हैं, जिससे उनके सब गुण बेकार हो गये। वे अल्पायु हैं; एक वर्ष में उनका देहान्त हो जायगा। सावित्री ने कहा—पिताजी, एक ही बार काठ-पत्थर आदि वस्तुओं का हिस्सा उनसे अलग होता है, एक ही बार कन्या का दान होता है और एक ही बार किसी वस्तु को देने के लिए "मैंने दिया" यह संकल्प किया जाता है। पिताजी, इसलिए सत्यवान् की आयु चाहे बहुत हो और चाहे थोड़ी, वे गुणवान् हों और चाहे गुणहीन, उन्हें एक बार मैं अपना पति मान चुकी। अब दूसरे पुरुष को पति-रूप से मैं ग्रहण नहीं कर सकती। देखिए, पहले मन से निश्चय करने के बाद वाणी से कहा जाता है, पीछे कार्य के द्वारा किया जाता है। इसलिए इस विषय में मेरा मन ही प्रमाण है।

नारद ने अश्वपति से कहा—महाराज, तुम्हारी कन्या सावित्री का निश्चय अटल है। तुम
इसे इस धर्म-मार्ग के निश्चय से नहीं डिगा सकते। राजन्, सत्यवान् में जितने गुण हैं वे अन्य
पुरुष में एकत्र नहीं मिल सकते। इसलिए मैं भी कहता हूँ कि तुम सत्यवान् के साथ अपनी कन्या
का ब्याह कर दो। राजा ने कहा—हे ऋषिवर, आप ठीक कह रहे हैं कि सावित्री को उसके प्रण ३०
से टालना असम्भव है। आप मेरे गुरु हैं, इसलिए आपकी आज्ञा के अनुसार मैं सावित्री का ब्याह सत्यवान् के साथ कर दूँगा। नारद ने कहा—राजन्, तुम सत्यवान् के साथ सावित्री का ब्याह कर दो। मैं तुम्हारा सब काम बना दूँगा। तुम्हारा और तुम्हारी कन्या आदि सबका भला होगा।

मार्कण्डेय कहते हैं—नारदजी यों कहकर आकाश-मार्ग से देवलोक को चले गये। इधर राजा
अश्वपति भी कन्या के ब्याह की तैयारी करने लगे। ३३

---

*

दो सौ पञ्चानबे अध्याय

सावित्री और सत्यवान् का ब्याह

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, इसके बाद राजा अश्वपति कन्यादान का इरादा करके ब्याह का सामान जुटाने और सब तैयारियाँ करने लगे। वृद्ध ब्राह्मण, ऋत्विक्, सभासद और पुरोहित आदि सबको बुलाकर उनके साथ शुभ दिन में कन्या को लेकर राजा अश्वपति पैदल चलकर द्युमत्सेन के पवित्र आश्रम में पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, अन्धे राजा द्युमत्सेन एक शाल-वृक्ष के तले कुशासन बिछाये हुए बैठे हैं। राजर्षि अश्वपति ने उनकी विधिपूर्वक पूजा की और उन्हें अपना परिचय दिया।

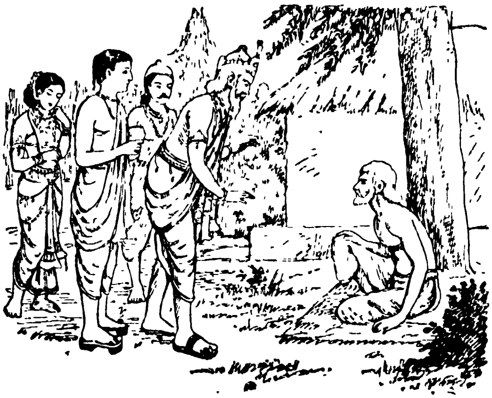

राजर्षि द्युमत्सेन ने बड़े आदर के साथ महाराज अश्वपति को अर्घ्य, पाद्य, आसन, गाय आदि देकर कुशल-प्रश्न के उपरान्त पूछा—राजन्, आप यहाँ किसलिए पधारे हैं? तब राजा अश्वपति ने सत्यवान् के साथ सावित्री के सम्बन्ध का हाल बताकर कहा—राजर्षि-श्रेष्ठ, हे धर्मज्ञ, आप मेरी इस कल्याणरूपिणी कन्या को धर्मपूर्वक अपनी बहू बनाइए। तब द्युमत्सेन ने कहा—राजन्, हम लोग राज्य से भ्रष्ट होकर वन में रहते और तप करते हैं। सदा सुख से पली हुई आपकी यह कन्या वनवास के क्लेशों को कैसे सह सकेगी? अश्वपति ने कहा—हे राजर्षि, मैं और मेरी कन्या, दोनों इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि सभी मनुष्य कभी सुख और कभी दुःख भोगते रहते हैं। मुझ ऐसे पुरुष से आप ऐसी बातें न कहिए। मैं इन बातों को अच्छी तरह सोच-समझकर प्रेम और मित्रता के भाव से यहाँ आपके पास आया हूँ। आप इस
१० प्रकार विमुख करके मेरी आशा पर पानी न फेरिए। राजन्, हम दोनों परस्पर अनुरूप और योग्य हैं। आप यह सम्बन्ध स्वीकार करके मेरी कन्या को सत्यवान् के लिए ग्रहण कीजिए। द्युमत्सेन ने कहा—राजन्, आपसे सम्बन्ध जोड़ने के लिए मेरी पहले से ही बड़ी इच्छा थी। किन्तु अपने राज्य-भ्रष्ट होने के कारण मैं आगा-पीछा कर रहा था। आप मेरी पहले की उस इच्छा को अभी पूर्ण कीजिए। आप मेरे प्रिय अतिथि हैं।

अब दोनों राजर्षियों ने सब आश्रम-निवासी ब्राह्मणों को बुलाकर विधिपूर्वक सावित्री और सत्यवान् का ब्याह कर दिया। बहुत से दहेज और अलङ्कार आदि के साथ विधिपूर्वक

कन्या-दान करके महाराज अश्वपति बहुत प्रसन्न हुए और फिर अपनी राजधानी को चल दिये। सत्यवान् सब गुणों से युक्त पत्नी पाकर प्रसन्न हुए और सावित्री अपने अनुरूप पति पाकर सन्तुष्ट हुईं। पिता के चले जाने पर सावित्री ने राजश्री पोशाक और कीमती जड़ाऊ गहने उतारकर रख दिये; वे वल्कल तथा गेरुए कपड़े पहनकर मुनि-पत्नियों की तरह रहने लगीं। सेवा, शील और सत्य आदि गुण, इन्द्रिय-दमन और सबके प्रिय कार्य करने के स्वभाव से सावित्री सबको सन्तुष्ट रखती थीं। वे हाथ-पैर दबाकर और नहला धुलाकर सास को और देवाराधना तथा वाणी के संयम से ससुर को प्रसन्न रखती थीं। वे अपने पति को भी प्रिय वचन बोलकर, सब कामों को चतुरता के साथ पूरा करके, शान्ति के साथ रहकर और एकान्त में सब तरह की सेवा करके प्रसन्न रखती थीं। विवाह के बाद इस प्रकार उस आश्रम में रहते और तपस्या करते उन लोगों ने कुछ समय बिताया। किन्तु सावित्री को दिन-रात किसी समय वह नारद की कही हुई बात नहीं भूलती थी। सत्यवान् के अल्पायु होने की चिन्ता से उन्हें कल नहीं पड़ती थी।

दो सौ छियानबे अध्याय

सावित्री का सत्यवान् के साथ आश्रम से वन जाना

मार्कण्डेय कहते हैं—इस प्रकार कई महीने बीत गये। अब [नारद का बताया हुआ] सत्यवान् के मरने का समय निकट आ गया। सावित्री को नारद के वचनों की याद हर घड़ी बनी रहती थी और वे नित्य एक-एक दिन गिनती रहती थीं। जब पतिव्रता सावित्री को हिसाब लगाने से मालूम हुआ कि पति की मृत्यु में चार दिन बाकी रह गये हैं तब उन्होंने तीन दिन का निराहार व्रत धारण कर लिया। सावित्री के उस कठोर व्रत का हाल सुनकर, उनके ससुर राजा द्युमत्सेन अत्यन्त दुखी हुए। वे सावित्री के पास जाकर समझाते हुए कहने लगे—राजकुमारी, तुमने यह अत्यन्त कठिन और तीव्र व्रत ग्रहण किया है। तीन दिन तक बिना अन्न-जल के रहना बहुत कठिन काम है।

सावित्री ने कहा—तात, आप खेद न करें। मैं यह व्रत पूरा कर लूँगी। मैंने इसका पक्का निश्चय कर लिया है। निश्चय और उद्योग से ही सब काम सिद्ध होते हैं।

द्युमत्सेन ने कहा—यह तो मैं कह नहीं सकता कि तुम यह व्रत छोड़ दो। मुझ ऐसे [बड़े-बूढ़े] को तो यही कहना चाहिए कि जिस तरह हो, तुम इस व्रत को पूरा कर लो। मार्कण्डेय कहते हैं—राजा द्युमत्सेन यह कहकर चुप हो रहे। निराहार व्रत धारण किये हुए सावित्री काठ की तरह चेष्टाहीन देख पड़ने लगीं। जिस रात के बीतने पर दूसरे दिन सत्यवान् की मृत्यु

होनेवाली थी, वह रात सावित्री ने बैठे-बैठे बड़े कष्ट से बिताई। रात बीतने पर सबेरा हुआ और
सूर्यदेव आकाश में तीन-चार हाथ ऊपर उठ आये। अब सावित्री ने यह सोचकर कि आज ही

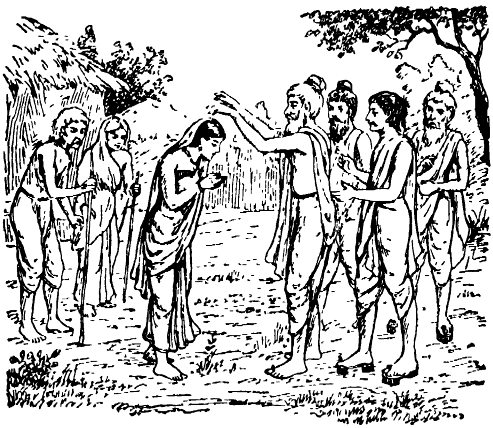

स्वामी की मृत्यु का दिन है, प्रज्वलित
अग्नि में हवन आदि—दिन के पूर्व
भाग के—कृत्य किये। इस प्रकार
१० व्रत समाप्त करने के बाद सावित्री
सास, ससुर और वृद्ध ब्राह्मणों को
प्रणाम करके हाथ जोड़कर उनके
सामने खड़ी हुई। तपोवन में
रहनेवाले ब्राह्मणों ने सावित्री को
आशीर्वाद देकर कहा—पुत्री, तुम्हारा
सौभाग्य अचल हो। मन में ध्यान
करती हुई सावित्री ने हृदय से "यही
हो" कहकर उनके दिये हुए शुभ और
हितकारी आशीर्वादों को ग्रहण किया। अत्यन्त दुःखित और चिन्तित सावित्री उसी भयानक समय
और घड़ी की राह देखने लगीं, जिसमें सत्यवान् की मृत्यु होनेवाली थी।

हे भरतश्रेष्ठ, तब एकान्त में बैठी हुई सावित्री से प्रसन्नता के साथ सास और ससुर ने कहा—बेटी, शास्त्र के उपदेश के अनुसार तुम व्रत पूरा कर चुकीं, अब भोजन का समय आ गया है, इसलिए भोजन कर लो। सावित्री ने कहा—सूर्य के अस्त होने पर कृतकृत्य होकर मैं भोजन करूँगी। मेरे हृदय में यही सङ्कल्प है और मैं यही प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ। मार्कण्डेय कहते हैं—सावित्री अपने सास-ससुर से भोजन करने के बारे में इस तरह कह रही थीं कि सत्यवान् कन्धे पर कुल्हाड़ी रखकर लकड़ी काट लाने को वन की ओर चले। तब सावित्री ने प्राणप्रिय पति से कहा—

नाथ, आज आप अकेले वन को न जाइए। मैं भी आपके साथ चलूँगी। आज आपको अकेले छोड़ने के लिए मेरा जी नहीं चाहता।

सत्यवान् ने कहा—प्रिये, तुम वन में कभी गई नहीं हो। वहाँ की राह में बड़े कष्ट मिलते
हैं। इसके सिवा तीन दिन तक निराहार रहने से तुम बहुत दुर्बल हो गई हो। इस कारण किस
तरह पैदल चल सकोगी? सावित्री ने कहा—व्रत के कारण मैं शिथिल नहीं हुई हूँ। वन जाने २०
में मुझे कुछ भी थकन न होगी। आपके साथ चलने के लिए मुझे बड़ा उत्साह है; इसलिए आप
मुझे रोकिए मत। सत्यवान् ने कहा—यदि वन को चलने की तुम्हें बड़ी ही इच्छा है तो अवश्य
मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा। किन्तु चलने से पहले तुम मेरे माता-पिता से आज्ञा ले लो, नहीं
तो मुझे दोषी होना पड़ेगा।

मार्कण्डेय कहते हैं कि तब व्रतधारिणी सावित्री ने सास और ससुर के चरणों में प्रणाम करके कहा—मेरे स्वामी फल-मूल खाकर इस समय वन को जा रहे हैं। आप लोगों की आज्ञा हो तो मैं भी उनके साथ वन को जाऊँ। आज मैं पति को छोड़ नहीं सकती। आपके पुत्र, गुरुजन और अग्निहोत्र के लिए, लकड़ी आदि सामग्री लेने वन को जा रहे हैं, इसलिए उन्हें रोकना भी ठीक नहीं है। यदि वे और किसी काम से जाते तो रोका भी जा सकता था। इसके सिवा मैं भी लगभग एक वर्ष से इस आश्रम से बाहर नहीं निकली हूँ। इसलिए फूले-फले वन की सैर करने का मुझे भी बड़ा कौतूहल हो रहा है।

द्युमत्सेन ने कहा—सावित्री का जब से ब्याह हुआ है और ये मेरी बहू हुई हैं तब से इन्होंने मुझसे कोई प्रार्थना नहीं की। इसलिए मैं इन्हें, इनकी इच्छा के अनुसार, पति के साथ वन जाने की आज्ञा देता हूँ। बेटी, राह में सावधानी से सत्यवान् की देखभाल करना। मार्कण्डेय कहते हैं—हे युधिष्ठिर, सास और ससुर से आज्ञा पाकर यशस्विनी सावित्री पति के साथ हँसती हुई वन को चलीं। परन्तु नारद के वचनों की याद से उनका हृदय धड़क ही रहा था। चारों ओर मोर आदि पक्षियों से शोभित रमणीय और विचित्र वन, पवित्र जलवाली नदी और फूले हुए वृक्षों से शोभित पर्वत आदि की शोभा देखती हुई सावित्री चली जा रही थीं और सत्यवान् मधुर वचनों से उन्हें सन्तुष्ट करते हुए सब स्थानों की सैर कराते जा रहे थे।

पति को अच्छी हालत में देखकर भी सावित्री को, मुनि के वचनों की याद के कारण, उनकी
मृत्यु पर विश्वास था। सावित्री का हृदय मानो फटा जा रहा था। वे उसी समय की राह देखती हुई
अपने पति के पीछे चली जा रही थीं। ३३

दो सौ सत्तानबे अध्याय

सावित्री का सत्यवान् को यमराज के हाथ से छुड़ाना और अनेक वरदान प्राप्त करना

मार्कण्डेय कहते हैं—स्त्री के साथ वन में पहुँचकर महाबली सत्यवान् ने पहले तो बर्तन भर फल तोड़कर इकट्ठे किये, फिर वे लकड़ियाँ काटने लगे। लकड़ी काटने में परिश्रम करने से

उनको पसीना आ गया। परिश्रम करने के कारण सत्यवान् के सिर में पीड़ा भी उत्पन्न हो गई। परिश्रम से शिथिल सत्यवान् अपनी प्यारी पत्नी के पास जाकर कहने लगे—प्रिये, लकड़ी काटने के परिश्रम से मेरे सिर में बड़ी पीड़ा हो रही है। सावित्री, मेरे सब अङ्ग ढीले हुए जा रहे हैं; हृदय में धड़कन पैदा हो गई है। मैं अपने को अस्वस्थ और बीमार सा देख रहा हूँ। जान पड़ता है, मेरे सिर में कोई शूल भोंक रहा है। हे सुन्दरी, मैं लेटना चाहता हूँ; मुझमें खड़े रहने की शक्ति नहीं है।

पतिव्रता सावित्री ने पास जाकर अपनी गोद में पति का सिर रख लिया। वहीं पर वे धरती पर बैठ गईं। वे उस समय नारदजी की बात याद करके उनकी बताई हुई घड़ी, समय और दिन का हिसाब लगाने लगीं। दम भर के बाद सावित्री ने देखा कि उनके सामने, सत्यवान् के पास, एक विकट पुरुष खड़ा हुआ है और बारम्बार सत्यवान् की ओर ताक रहा है। वह पुरुष लाल कपड़े पहने, सिर पर किरीट बाँधे, हाथ में पाश लिये और लाल-लाल आँखें निकाले हुए था। उसका तेज सूर्य के समान और रङ्ग चमकदार काला था। उस पुरुष को देखकर सावित्री का कलेजा धड़कने लगा। वे गोद से पति के सिर को
१० धीरे से हटाकर एकाएक उठ खड़ी हुईं और हाथ जोड़कर आर्त्त वाणी से कहने लगीं—आपका यह अलौकिक शरीर देखकर मैं जानती हूँ कि आप कोई देवता हैं, मनुष्य नहीं हैं। आपका जी चाहे तो कृपा करके बताइए कि आप कौन हैं और क्या करना चाहते है?

यमराज ने कहा—सावित्री, तुम पतिव्रता और तपस्विनी हो, इसी से मैं तुमसे बातचीत करता हूँ। हे शुभरूपिणी, मैं यम हूँ। तुम्हारे पति राजकुमार सत्यवान् की आयु क्षीण हो गई है। अब इन्हें मैं पाशों से बाँधकर ले जाऊँगा। यही करने के लिए मैं आया हूँ।

सावित्री ने कहा—भगवन्, सुना जाता है कि मनुष्यों के जीवात्मा को ले जाने के लिए आपके दूत आया करते हैं। फिर प्रभो, आप स्वयं क्यों मेरे स्वामी को लेने आये हैं?

मार्कण्डेय कहते हैं कि सावित्री की प्रसन्नता के लिए भगवान् यमराज अपने आने का कारण इस तरह कहने लगे—देवी, ये सत्यवान् धर्मात्मा, सुन्दर और गुणी हैं। इन्हें मेरे दूत नहीं ले जा सकते, इसलिए मैं खुद इन्हें लेने आया हूँ।

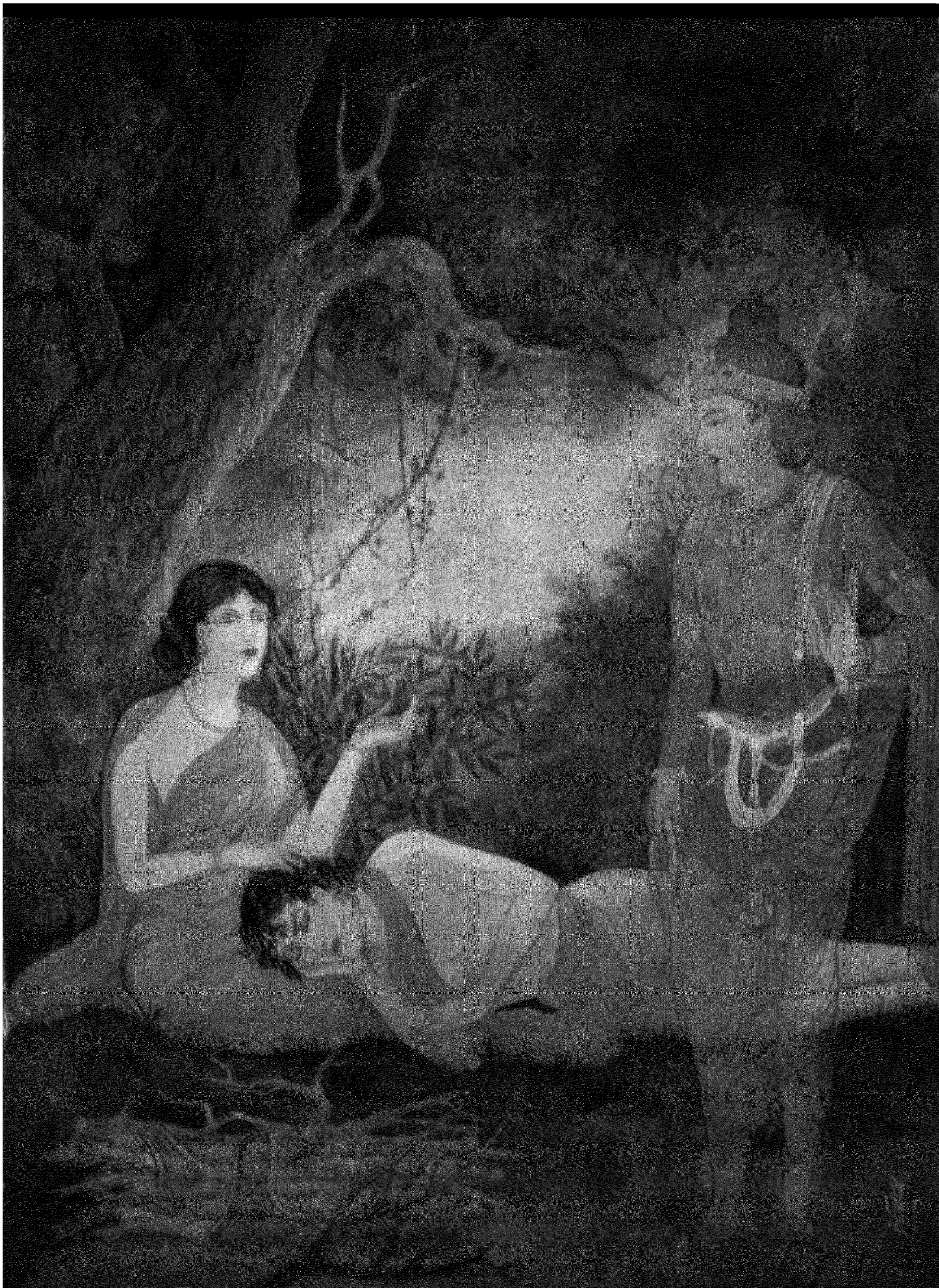

यम-सावित्री-संवाद ।—पृष्ठ १३१४

अब यमराज ने सत्यवान् के शरीर से अँगूठे की पोर भर के आकारवाले पुरुष (जीवात्मा) को पाशों से बाँधकर अपने वश में करके बाहर निकाल लिया। पुरुष के निकलते ही वह शरीर प्राणहीन, चेष्टाहीन, प्रभाहीन और श्वासहीन हो गया। वह देखने में भी डरावना जान पड़ने लगा। यमराज इस प्रकार सत्यवान् के जीवात्मा को पाशों से बाँधकर दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। दुःख से पीड़ित सावित्री भी उनके पीछे-पीछे चलीं। नियम व्रत आदि से सिद्धि को प्राप्त, भगवती, पतिव्रता को पीछे आते देखकर यमराज ने कहा—सावित्री, तुम लौट जाओ; और स्वामी के शरीर का और्ध्वदैहिक कर्म करो। तुमने अपने स्वामी का ऋण चुका दिया। जहाँ तक तुम साथ दे सकती थीं वहाँ तक दे चुकीं। २०

सावित्री ने कहा—हे धर्मराज, जहाँ कोई मेरे स्वामी को ले जाय, या मेरे स्वामी ख़ुद जहाँ जायँ, वहाँ मुझे भी जाना चाहिए। यही सनातन धर्म है। भगवन्! तपस्या, बड़े-बूढ़ों की भक्ति, पति के स्नेह, पातिव्रत्य और आपकी कृपा से मैं सब जगह जा सकती हूँ। हे पितरों के राजा, तत्त्वज्ञानी पण्डित कहते हैं कि केवल सात पग एक साथ चलने से सज्जनों में मित्रता हो जाती है। उसी मित्रता के नाते मैं आपसे कुछ कहती हूँ, सुनिए। जो लोग जितेन्द्रिय नहीं हैं वे वन में रहकर यज्ञ आदि धर्म का अनुष्ठान, ब्रह्मचर्य का पालन अथवा संन्यासधर्म का आचरण नहीं करते। जितेन्द्रिय पुरुष ही वन में या बस्ती में रहकर इन कार्यों को करते हैं। मतलब यह कि धर्म का फल आत्मज्ञान ही है। इसलिए विद्वानों ने धर्म को ही प्रधान पुरुषार्थ कहा है। भगवन्, सज्जनों के मत के अनुसार चारों आश्रमों में से एक आश्रम के धर्म का पालन करने से भी वह आत्मज्ञान मिल सकता है। हम दोनों प्राणी नैष्ठिक ब्रह्मचर्य या संन्यास की इच्छा नहीं रखते; क्योंकि ज्ञान का कारण जो धर्म है उसकी प्राप्ति गृहस्थाश्रम में भी हो सकती है। इसलिए मेरे स्वामी को ले जाकर हमारे धर्म-पालन में बाधा न डालिए।

यमराज ने कहा—हे सुन्दरी, तुम लौट जाओ। तुम्हारी ये बातें निर्दोष और युक्ति-सङ्गत हैं। इन्हें सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। तुम सत्यवान् के जीवन को छोड़कर और जो चाहे वर माँगो, मैं तुम्हें दूँगा।

सावित्री ने कहा—मेरे ससुर राज्य से भ्रष्ट होकर वन में रहते हैं; उनकी आँखें भी जाती रही हैं। मैं यही वर माँगती हूँ कि आपकी कृपा से उनकी आँखें पहले की सी हो जायँ और उन्हें श्रेष्ठ बल के साथ ही अग्नि और सूर्य का सा तेज प्राप्त हो।

यमराज ने कहा—हे सुन्दरी, तुम्हारी प्रार्थना के अनुसार वर मैं तुमको देता हूँ। तुम जैसा चाहती हो वैसा ही होगा। अब तुम लौट जाओ। मैं समझता हूँ, चलने से तुम बहुत थक गई हो। अब अपनी आत्मा को और कष्ट न दो।

सावित्री ने कहा—भगवन्, मैं अपने पति के पास हूँ; मुझे थकन या कष्ट कहाँ? क्योंकि पति ही मेरी एकमात्र निश्चित गति है। हे देवराज, आप मेरे स्वामी को जहाँ ले जायँगे वहीं मैं जाऊँगी। अब मैं आपसे और जो कुछ कहती हूँ, वह सुन लीजिए। सज्जनों का सङ्ग एक बार होना भी सबसे बढ़कर प्रार्थनीय वस्तु है। सज्जनों से एक बार मिलने से ही मित्रता हो जाती है। सज्जनों का सङ्ग कभी निष्फल नहीं जाता। इसलिए
३० सदा सत्सङ्ग में रहना चाहिए।

यमराज ने कहा—हे राजकुमारी, तुम्हारी यह बात मन के अनुकूल, हित करनेवाली और पण्डितों की बुद्धि को बढ़ानेवाली है। मैं प्रसन्न होकर तुमसे कहता हूँ कि सत्यवान् के जीवन के सिवा जो जी चाहे वह वर मुझसे माँग लो। सावित्री ने कहा—मेरे बुद्धिमान ससुर का राज्य शत्रुओं ने छीन लिया है, वह राज्य उन्हें फिर मिल जाय और उनकी बुद्धि कभी धर्म से न हटे। यह दूसरा वर मैं माँगती हूँ।

यमराज ने कहा—तुम्हारे ससुर द्युमत्सेन शीघ्र ही अपना खोया हुआ राज्य पावेंगे और वे कभी अपने धर्म से न डिगेंगे। हे राजकुमारी, तुम्हारी इच्छा पूरी हो गई, अब तुम लौट जाओ, नहीं तो तुम्हें और अधिक कष्ट सहना पड़ेगा।

सावित्री ने कहा—भगवन्, संसार के सब लोगों को आप ही नियम पर चलाते हैं और उनको उनके कर्मों का फल देते हैं। आप ही सबको दण्ड देनेवाले नियामक हैं, इसी से आपका नाम यम है। हे प्रेतराज, अब फिर जो मैं कहती हूँ उसे सुनिए। मन-वाणी-काया से किसी प्राणी के साथ द्रोह न करना (अर्थात् किसी को पीड़ा न पहुँचाना) सब पर कृपा करना और दान देना ही सज्जनों का सनातन धर्म है। इसलिए आप मुझ पर दया कीजिए। इस लोक में प्रायः अल्पायु लोग देख पड़ते हैं; क्योंकि मनुष्यों में शक्ति ही कितनी है? सज्जन लोग शरण में आये हुए शत्रुओं से भी दया का व्यवहार करते हैं, हम जैसे हीनों की तो कोई बात ही नहीं।

यमराज ने कहा—सावित्री, प्यासे को पानी से जैसे तृप्ति प्राप्त होती है, वैसे ही तुम्हारे इन वचनों से मुझे सन्तोष हुआ है। हे शुभरूपिणी, सत्यवान् के जीवन को छोड़कर जो तुम्हारी इच्छा हो वह वर फिर माँग लो।

सावित्री ने कहा—मेरे पिता महाराज अश्वपति के कोई पुत्र नहीं है। मैं आपसे तीसरा वर यही माँगती हूँ कि उनके वंश को बढ़ानेवाले श्रेष्ठ सौ पुत्र हों।

यमराज ने कहा—हे शुभरूपिणी, तुम्हारे पिता के वंश को बढ़ानेवाले तेजस्वी सौ पुत्र होंगे। हे राजकुमारी, तुम्हारा मनोरथ पूरा हो गया, अब लौट जाओ। तुम बहुत दूर तक चली आई हो।

सावित्री ने कहा—प्रभो, मैं अपने स्वामी के साथ हूँ, इसलिए यह मार्ग कुछ दूर नहीं है।
मेरा मन इससे भी दूर तक दौड़ रहा है। आप चलते ही चलते मेरी बातें सुनिए। आप सूर्य- ४०
नारायण के प्रतापी पुत्र हैं; इसी कारण पण्डित लोग आपको वैवस्वत कहते हैं। आप धर्मराज इसलिए कहलाते हैं कि आप शत्रु-मित्र का ख़याल न करके समान दृष्टि से सब प्रजा का शासन करते हैं और प्रजा भी आपकी आज्ञा के अधीन है। भगवन्, लोगों को सज्जनों पर जैसा विश्वास होता है वैसा विश्वास अपने ऊपर भी नहीं होता। इसी लिए सब लोग सज्जनों से मित्रता करना चाहते हैं। मित्रता से ही सब मनुष्यों के हृदय में विश्वास होता है; इस कारण सब लोग विशेष रूप से सज्जनों पर विश्वास करते हैं। [मतलब यह कि जब मनुष्यों पर विश्वास करने से भी मनुष्यों के इष्ट की सिद्धि होती है, तब आप धर्मराज पर विश्वास करने से अवश्य मेरा मनोरथ पूरा होना चाहिए।]

यमराज ने कहा—हे सुन्दरी, तुमने जैसे वचन कहे हैं, वैसे वचन तुम्हारे सिवा और किसी के मुँह से मैंने नहीं सुने। मैं प्रसन्न होकर तुमसे कहता हूँ कि सत्यवान् के जीवन को छोड़कर और जो चाहो वह वर मुझसे माँग लो।

सावित्री ने कहा—हे धर्मराज, सत्यवान् के वीर्य से मेरे वंश को बढ़ानेवाले, वीर्यशाली, एक सौ श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हों। मैं यही चौथा वर आपसे माँगती हूँ।

यमराज ने कहा—हे राजकुमारी, महाबली और प्रसन्न करनेवाले तुम्हारे सौ पुत्र होंगे। अब तुम लौट जाओ; क्योंकि बहुत दूर तक चली आई हो।

सावित्री ने कहा—सज्जनों का धर्मभाव सदा प्रबल रहता है [अर्थात् मैं कुल-स्त्री होने के कारण अपने पति से ही पुत्र उत्पन्न कर सकती हूँ]; वे कभी पछताते नहीं हैं [अर्थात् अब वर देकर आपको पछताना न चाहिए, किन्तु अपने वचनों का निर्वाह करना चाहिए]। सज्जनों का समागम निष्फल नहीं होता। और, सज्जनों से सज्जनों को डर भी नहीं होता। भगवन्, सज्जनों के सत्य से ही सूर्य तपते हैं। सज्जन लोग ही अपने तप (धर्म-पालन) से पृथ्वी को धारण किये हुए हैं। भूत और भविष्य की गति भी सज्जन ही हैं। सज्जनों के बीच में सज्जनों को दुःख नहीं मिलता [मतलब यह कि आप भी अपने वचन को सत्य करके मेरे दुःख को दूर कीजिए]। आर्यपुरुषों के इस सनातन आचरण का ख़याल करके सज्जन लोग परोपकार करते हैं और उसका बदला नहीं चाहते। सज्जनों की प्रसन्नता कभी निष्फल नहीं जाती। उनसे अर्थ-सिद्धि होती है; मानहानि नहीं होती। दरिद्र पुरुष प्रसन्न होकर भी प्रयोजन को पूरा नहीं कर सकता। धनवान् लोग प्रसन्न होकर प्रयोजन को तो पूरा कर देते हैं, पर उनसे मान नहीं मिलता। दुष्ट लोग प्रसन्न ही नहीं होते। किन्तु सज्जन पुरुषों में ये तीनों बातें पाई जाती हैं, अर्थात् वे प्रसन्न होकर मान के साथ मनोरथ पूरा कर देते हैं।

इसी से वे लोग सबके रक्षक हैं [मतलब यह कि आप प्रसन्न होकर सम्मान के साथ मेरा मनोरथ पूरा
५० करके मेरी रक्षा कीजिए]।

यमराज ने कहा—हे पतिव्रता सावित्री, तुम जैसे-जैसे चित्त को प्रसन्न करनेवाली, धर्मसङ्गत, अर्थयुक्त मनोहर बातें कहती हो वैसे-वैसे तुम पर मेरी भक्ति बढ़ती जाती है। अब तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर मुझसे माँग लो।

सावित्री ने कहा—पति के बिना, क्षेत्रज आदि पुत्रों के द्वारा, आपका पहले दिया हुआ सौ पुत्रों का वर सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे मदयन्ती रानी वशिष्ठ ऋषि से पुत्र उत्पन्न किया था, वैसे [नियोग के द्वारा, अन्य पुरुष से] मैं पुत्र नहीं उत्पन्न कर सकती। इससे मैं यही वर माँगती हूँ कि मेरे स्वामी सत्यवान् जी उठें। पति के बिना मैं भी मरे के समान हो रही हूँ। मैं पति के बिना कोई सुख नहीं चाहती; पति के बिना स्वर्ग का राज्य भी नहीं चाहती; पति के बिना अपार लक्ष्मी और ऐश्वर्य भी नहीं चाहती—पति के बिना जीना तक नहीं चाहती। आपने ही मुझे सौ पुत्र होने का वर दिया है और आप ही मेरे पति को लिए जाते हैं! मैं यही वर माँगती हूँ कि ये सत्यवान् जी उठें। इसी से आपका वचन सत्य होगा।

हे युधिष्ठिर, तब यमराज ने सन्तुष्ट होकर सत्यवान् के जीवात्मा को पाश के बन्धन से छोड़ दिया और सावित्री से कहा—हे सावित्री, मैंने तुम्हारे स्वामी को छोड़ दिया। ये निरोग, कृतार्थ और तुम्हारे अनुकूल रहकर—चार सौ वर्ष तक जीकर—तुम्हारे साथ सुख भोगेंगे। ये यज्ञ और धर्म का पालन करके बहुत यशस्वी होंगे। इनके, तुम्हारे गर्भ से, सौ पुत्र उत्पन्न होंगे। वे सब तुम्हारे नाम के अनुसार सावित्र कहलावेंगे। वे सब राजा, पुत्र-पौत्र-सम्पन्न और प्रसिद्ध होकर, बड़े सुख से रहेंगे। तुम्हारे पिता भी तुम्हारी माता मालवी के गर्भ से सौ पुत्र उत्पन्न करेंगे। वंश को बढ़ानेवाले, इन्द्र-तुल्य
६० वे राजकुमार मालव नाम से प्रसिद्ध होंगे।

महाप्रतापी धर्मराज सावित्री से यों कहकर अपने स्थान को चले गये। सावित्री भी स्वामी का जीवन पाकर वहाँ पर आई, जहाँ पर सत्यवान् की देह पड़ी हुई थी। स्वामी को गले से लगाकर, उनका सिर अपनी गोद में रखकर, सावित्री वहीं पृथ्वी पर बैठ गई। इतने में सत्यवान् सचेत हो उठे और परदेश से लौटकर आये हुए पुरुष की तरह अपनी प्रिया की ओर बारंबार प्रेम-पूर्ण दृष्टि से देखने लगे। सत्यवान् ने सावित्री से कहा—प्रिये, आज मैं बहुत देर तक सोता रहा। तुमने मुझे जगाया क्यों नहीं? वह मुझे पकड़कर खींचनेवाला काले रंग का पुरुष कहाँ है? सावित्री ने कहा—प्रियतम, तुम बहुत देर से मेरी गोद में सिर रक्खे सो रहे हो। जिनके बारे में तुम पूछते हो, वे सब प्राणियों का संहार करनेवाले यमराज थे। हे महाभाग, इस समय तुम सोकर विश्राम कर चुके हो। हो सके तो उठो। देखो, घनी अँधेरी भयानक रात आ गई है।

मार्कण्डेय कहते हैं कि तब सत्यवान् सोकर उठे हुए पुरुष की तरह उठकर, चारों ओर देखकर, कहने लगे—प्रिये, मुझे सब याद है कि फल भोजन करने के बाद तुमको साथ लेकर मैं आश्रम से चला था। यहाँ लकड़ी काटते-काटते मेरे सिर में दर्द होने लगा। सिर की पीड़ा के मारे मुझसे खड़े नहीं
रहा गया। तब मैं तुम्हारी गोद में सिर रखकर लेट गया। तुम्हारे अङ्ग के स्पर्श से मुझे गहरी नींद ७०
आ गई। उसके बाद मुझे एक काले रङ्ग का महाबली पुरुष देख पड़ा। मालूम नहीं, वह स्वप्न था या सत्य। प्रिये, तुमको उसका कुछ हाल मालूम हो तो कहो।

सावित्री ने कहा—नाथ, इस समय रात हो आई है; झटपट माता-पिता के पास चलना चाहिए। उठो, आश्रम को चलें। कल सबेरे मैं तुमसे सब हाल कहूँगी। वह देखो, सूर्य अस्त हो गये हैं और धीरे-धीरे घने अँधेरे के साथ रात्रि आ रही है। रात को घूमनेवाले भयङ्कर जीव प्रसन्न होकर कठोर शब्द करने लगे। इधर-उधर मृगों के दौड़ने से मुझे पत्तों की खड़क सुन पड़ती है। दक्षिण-पश्चिम दिशा में सियार बुरी तरह बोलने लगे हैं। उसे सुनकर मेरा कलेजा काँप रहा है। सत्यवान् ने कहा—प्रिये, इस भयङ्कर वन में अँधेरा फैल गया है। इसलिए तुम न तो राह देख सकोगी और न चल सकोगी। सावित्री ने कहा—नाथ, वह देखो, इस वन में आग लगने से सूखा पेड़ जल रहा है। वहाँ से आग लाकर मैं इन लकड़ियों को जला लूँगी और इन्हीं के उजाले में चली चलूँगी। तुम कुछ चिन्ता न करो। किन्तु जो तुम चलना नहीं चाहते, क्योंकि तुम्हारे शरीर की पीड़ा अभी शान्त हुई नहीं जान पड़ती, और जो अँधेरे के
मारे वन की राह तुम न जान सको, तो आज यहीं ठहर जाओ। रात बीतने पर सबेरे हम लोग अपने ८०
आश्रम को चलेंगे।

सत्यवान् ने कहा—मेरे सिर में अब पीड़ा नहीं है और शरीर भी सुस्त नहीं है। इस समय तुम्हारी सहायता से माता-पिता के पास जाने के लिए मेरा बहुत जी चाह रहा है। मैं आज तक कभी देर करके अपने आश्रम को नहीं गया; ठीक समय पर ही वन से लौट जाता था। सन्ध्या से पहले ही माता मुझे आश्रम से बाहर नहीं जाने देती थीं। दिन को भी जो मैं आश्रम से बाहर जाता हूँ तो माता-पिता बहुत चिन्तित रहते हैं; आश्रमवासी ऋषियों के साथ पिता मुझे ढूँढ़ने लगते हैं। एक दिन मुझे इसी तरह देर हो गई थी, तब दुःखित होकर माता और पिता ने मुझे बहुत बका था; कहा था कि तुम बहुत देर को आते हो। मैं इसी चिन्ता से व्याकुल हो रहा हूँ कि आज मुझे न देखकर उनकी क्या दशा हुई होगी। आज मुझे न देखकर अवश्य वे अत्यन्त दुःख पा रहे होंगे। मुझ पर स्नेह रखनेवाले वृद्ध माता-पिता ने एक रोज रात को, अत्यन्त दुःख के साथ आँखों में आँसू भरकर, मुझसे कहा था—"पुत्र, तुम्हारे बिना हम घड़ी भर भी नहीं जीते रह सकते। वन से फल-मूल लाकर तुम्हीं हमको खिलाते-पिलाते हो। हम दोनों वृद्धों की दृष्टि तुम्हीं हो। हमारा वंश तुम्हीं से चलेगा। हमको पिण्ड तुम्हीं दोगे।

हमारी कीर्त्ति तुम्हीं हो।" मेरी माता बूढ़ी हैं, पिता भी बूढ़े हैं। उन अन्धों की लकड़ी मैं ही
९० हूँ। रात को मुझे न देखने से उनकी क्या दशा होगी? मैं अपनी नींद को क्या कहूँ, जिसके कारण मेरी माता और मेरे पिता का जीवन संशय में पड़ गया। सो जाने से ही मैं इस आफ़त में पड़ गया हूँ। माता और पिता के बिना मैं भी जीना नहीं चाहता। यह निश्चय है कि मेरे अन्धे पिता व्याकुल होकर इस समय एक-एक आश्रमवासी ऋषि से मेरे बारे में पूछ रहे होंगे। हे शुभे, मुझे अपने लिए उतना सोच नहीं है, जितना अपने माता-पिता के लिए है। हाय, मेरे कारण वे इस समय बड़े दुखी हो रहे होंगे। यह निश्चय है कि वे जीते रहेंगे तो मैं भी जियूँगा और जो वे मर जायँगे तो मैं भी प्राण दे दूँगा। मेरे जीवन का उद्देश्य उनका प्रिय करना ही है।

मार्कण्डेय कहते हैं कि माता-पिता के भक्त और उनके प्यारे सत्यवान् दुःख के मारे हाथ उठाकर यों कहते हुए ज़ोर से रोने लगे। पति को शोक से विह्वल देखकर अपने हाथों से उनके आँसू पोंछकर धर्मचारिणी सावित्री कहने लगीं—यदि मैंने तप, दान, हवन आदि पुण्य-कर्म किये हैं, तो आज की रात मेरे ससुर, सास और पति के लिए सुखदायक हो। मुझे अच्छी तरह याद है कि मैं कभी हँसी में भी झूठ नहीं बोली। उस सत्य के बल से मेरी सास और ससुर आज की रात अच्छी तरह रहें। सत्यवान् ने कहा—हे सावित्री, माता और पिता को देखने के लिए मैं बहुत उत्कण्ठित हो

१०० रहा हूँ, इसलिए, अब यहाँ से चलो, देर न करो। मैं अपनी सौगन्द खाकर सच कहता हूँ, यदि मेरे माता-पिता को कुछ हो गया तो मैं जान दे दूँगा। प्रिये, जो तुम धर्म्म को मानती हो, मेरा जीवन और मेरा प्रिय करना चाहती हो तो शीघ्र मुझे आश्रम को ले चलो।

सावित्री ने उठकर अपने केशों को सँभाला और फिर दोनों हाथों से पति को उठाया। फिर इधर-उधर देखकर फलों से भरे बर्तन पर नज़र डाली। चलने के लिए तैयार होकर सावित्री ने कहा—प्रियतम, फलों को यहीं पड़ा रहने दो, कल ले जाना। राह में आपकी रक्षा के लिए यह कुल्हाड़ी मैं लिए चलती हूँ। अब सावित्री ने फल-पात्र को वृक्ष की डाली में रख दिया और वह कुल्हाड़ी

ले ली। इसके बाद अपने बायें कन्धे पर पति का हाथ रखकर, अपना दाहिना हाथ उनकी कमर में डालकर, वे धीरे-धीरे आश्रम की ओर चलीं।

सत्यवान् ने कहा—प्रिये, बार-बार आने-जाने के कारण इन राहों को मैं अच्छी तरह पहचानता हूँ। वृक्षों के बीच से चाँदनी भी आ रही है। उससे भी राह देखने में सहायता मिलेगी। जिस राह से हम लोग सबेरे आये थे और हमने फल चुने थे, उसी राह से चलो; कुछ सोच-विचार न करो। इन ढाक के पेड़ों के पास से दो राहें हो गई हैं। उत्तर ओर की राह से चलो। अब मेरी सुस्ती जाती रही, मैं सबल हो गया हूँ। माता-पिता को देखने के लिए मैं अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा हूँ—इसलिए जल्दी चलो।

हे युधिष्ठिर, सत्यवान् यों कहते हुए सावित्री के साथ जल्दी-जल्दी अपने आश्रम की ओर बढ़े। १११

दो सौ अट्ठानबे अध्याय

समय पर आश्रम में बहू-बेटे के न आने से द्युमत्सेन और उनकी पत्नी का घबराना। सावित्री और सत्यवान् का आश्रम में पहुँचना

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, इधर महापराक्रमी राजर्षि द्युमत्सेन का अन्धापन जाता रहा। आँखें पाकर वे सब कुछ देखने लगे। वे अपनी स्त्री शैब्या के साथ सब आश्रमों में जाकर पुत्र को खोजने लगे। सत्यवान का पता न पाकर वे बहुत दुःखित हुए। दोनों पति-पत्नी रात को आश्रम, नदी, वन, सरोवर आदि में जाकर पुत्र को ढूँढ़ने लगे। जो कोई शब्द सुन पड़ता था तो वे पुत्र के ख़याल से उधर देखने लगते और कहते थे कि सावित्री के साथ सत्यवान् आ रहे हैं। वे इधर-उधर पागलों की तरह दौड़े-दौड़े फिरते थे। उनके पैर फट गये; घाव हो गये और खून बहने लगा; कुश और काँटे लगने से वे घायल हो गये। आश्रमवासी ब्राह्मण लोग पास आकर उन्हें समझाने लगे और उन्हें उनके आश्रम में ले गये। वृद्ध तपस्वी लोग उनके चारों ओर बैठकर पहले के राजाओं की कथाएँ सुनाकर उन्हें दिलासा देने लगे। राज द्युमत्सेन और उनकी रानी, दोनों, को मुनियों के समझाने से ढाढ़स बँधा। पर पुत्र को देखने की लालसा और उत्कण्ठा कम नहीं हुई। पुत्र के बाल-चरित्र और सावित्री के ब्याह का वृत्तान्त स्मरण करके दोनों पति-पत्नी बहुत व्याकुल और दुःखित हुए। वे "हाय पुत्र सत्यवान्! हाय पतिव्रता सावित्री! तुम दोनों कहाँ चले गये!" कहकर अनेक प्रकार से विलाप करके रोने लगे।

तब सुवर्चा नाम के ब्राह्मण ने कहा—सत्यवान् की स्त्री तपस्विनी, जितेन्द्रिय और सदाचारिणी है, इसलिए सत्यवान् अवश्य जीवित हैं। गौतम ऋषि ने कहा—मैंने वेद और वेदाङ्ग १०

पढ़े हैं, बहुत दिनों तक तपस्या की है, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके गुरु और अग्नि की आराधना की है, एकाग्र भाव से सब व्रतों का अनुष्ठान और केवल वायु-भक्षण करके उपवास किये हैं। इस तपस्या के बल से मैं दूसरों के हृदय का हाल जान लेता हूँ। मैं सच कहता हूँ, सत्यवान् जीवित हैं। गौतम के शिष्य ने कहा—मेरे गुरु ने जो कहा है, वह झूठ नहीं हो सकता। मुझे विश्वास है कि सत्यवान् अवश्य जीते-जागते हैं। सब ऋषियों ने कहा—सावित्री में विधवा होने का कोई लक्षण नहीं है। इससे हमें विश्वास है कि सत्यवान् अवश्य जीते हैं। भरद्वाज ऋषि ने कहा—सावित्री में तप, दम और सदाचार आदि गुण देख पड़ते हैं। इस कारण मुझे निश्चय है कि सत्यवान् जीते हैं। दाल्भ्य ऋषि ने कहा—तुम्हें आँखें मिल गई हैं और सावित्री भी व्रत समाप्त करके भोजन किये बिना ही पति के साथ गई है। इससे सत्य जानो, सत्यवान् जीते हैं। आपस्तम्ब ऋषि ने कहा—सब दिशाएँ शान्त हैं और उनमें शुभ-सूचक मृग और पक्षी बोल रहे हैं। तुम्हारी बुद्धि भी राजधर्म के पालन से विमुख नहीं है। इस कारण मुझे निश्चय है कि सत्यवान् जीते हैं। धौम्य ऋषि ने कहा—आपके पुत्र सत्यवान् सब गुणों से सम्पन्न, सबके प्यारे और दीर्घायु होने के लक्षणों से युक्त हैं। इसलिए वे अवश्य जीते हैं।

मार्कण्डेय कहते हैं—सत्यवादी तपस्वियों के यों दिलासा देने पर राजा द्युमत्सेन अपने
२० पुत्र के तप आदि गुणों का खयाल करके कुछ शान्त हुए। इसी बीच में अपने पति सत्यवान् के साथ सावित्री प्रसन्नता पूर्वक आश्रम में आ गई। तब सब ब्राह्मणों ने कहा—हे राजा द्युमत्सेन, पुत्र और आँखें पाकर आप कृतार्थ हुए। हम आपकी बढ़ती चाहते हैं। आँखें मिलीं, सावित्री को पाया और पुत्र को देखा, इन तीन लाभों से आपका अभ्युदय हुआ; यह बड़े सौभाग्य की बात है। हमने जो कुछ कहा था वह सच निकला। जल्द ही बारम्बार अनेक प्रकार से आपके सुख-सौभाग्य की वृद्धि होगी।

हे युधिष्ठिर, फिर अग्नि जलाकर वे ब्राह्मण राजा द्युमत्सेन के पास बैठ गये। शैब्या, सावित्री और सत्यवान् एक ओर खड़े थे; वे भी ब्राह्मणों की आज्ञा पाकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँ बैठ गये। तब राजा के साथ बैठे हुए सब वनवासी ब्राह्मण कौतूहल के वश होकर सत्यवान से पूछने लगे—हे राजकुमार, तुम अपनी भार्या के साथ रात होने से पहले ही आश्रम में क्यों नहीं आ गये? इतनी रात को क्यों आये? आने में क्या कुछ रुकावट हो गई थी? तुमने देर लगाकर अपने पिता-माता को और हम लोगों को क्यों पीड़ा पहुँचाई? इसका कारण हम लोगों को मालूम नहीं है। सब हाल कहकर हमारा संशय दूर करो।

सत्यवान् ने कहा—मैं पिता की आज्ञा लेकर सावित्री के साथ वन को गया।
३० वहाँ लकड़ी काटते-काटते मेरे सिर में बड़े जोर से पीड़ा उठ खड़ी हुई। उस पीड़ा से बेचैन होकर मैं लेट गया, इतना ही मुझे याद है। उसके बाद मुझे नींद आ गई। मैं

इतनी देर तक और कभी नहीं सोया। इतनी रात को वहाँ से उठकर इसलिए चला आया हूँ कि आप लोग मेरे लिए चिन्तित न हों।

गौतम ने कहा—पुत्र, तुम्हारे पिता अन्धे थे, उन्हें अकस्मात् आँखें मिलने का कारण क्या है, सो तुम नहीं जानते। शायद सावित्री बता सकती हैं। हे सावित्री, तुम सब बातें जानती हो। मैं तुम्हें सावित्री के समान तेजस्विनी समझता हूँ। तुम इस अचानक होनेवाली अद्भुत घटना का कारण अवश्य जानती हो। इसलिए जो छिपाने की बात न हो तो हमारे आगे ठीक-ठीक सब हाल कहो।

सावित्री ने कहा—भगवन्, आपने जो कहा वह वैसा ही है। आप लोगों का विचार और अनुमान मिथ्या नहीं हो सकता। इसमें कुछ छिपाने की बात नहीं है। मैं इस घटना का सब हाल कहती हूँ, सुनिए। महात्मा नारद ने कहा था कि मेरे स्वामी अल्पायु हैं। आज वही, स्वामी की, मृत्यु का दिन था। इसलिए मैंने इनका साथ नहीं छोड़ा। ये वन में सिर की पीड़ा से व्याकुल होकर जब लेट रहे तब अपने अनुचरों सहित यमराज आये और इनके जीवात्मा को पाशों से बाँधकर दक्षिण दिशा को ले चले। मैं भी इनके पीछे-पीछे चली और अनेक प्रकार के विनय-वचन कहकर उनकी स्तुति करने लगी। तब उन्होंने प्रसन्न होकर ससुर को आँखें मिलना, राज्य मिलना, मेरे पिता के सौ पुत्र होना, मेरे सौ पुत्र होना और मेरे स्वामी सत्यवान् की चार सौ वर्ष की आयु होना, ये पाँच वरदान मुझे दिये। मैंने स्वामी के जीवन
की रक्षा के लिए ही तीन दिन का [निर्जल] व्रत किया था। अन्त को सुखदायक अपने कष्ट का ४१
हाल मैंने आप लोगों को सुना दिया।

ऋषियों ने कहा—हे पतिव्रता, तुम श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न, सुशीला और सत्य-व्रत करनेवाली हो। राजा द्युमत्सेन का वंश विपत्ति के बोझ से दबकर अन्धकारमय नरककुण्ड में डूबा जा रहा था; तुमने उसका उद्धार करके बड़ा भारी काम किया। मार्कण्डेय कहते हैं—इस प्रकार पतिव्रता सावित्री की बहुत बड़ाई करके, द्युमत्सेन और सत्यवान् से बिदा होकर, आये हुए
सब ऋषि अपने-अपने आश्रम को चले गये। ४४

दो सौ निन्नानबे अध्याय

राजा द्युमत्सेन को राज्य मिलना और उनके शत्रु का मारा जाना

मार्कण्डेय कहते हैं—दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होने पर सन्ध्या आदि सबेरे के कृत्य समाप्त करके सब तपस्वी फिर द्युमत्सेन के आश्रम में आये। द्युमत्सेन से बारम्बार सावित्री के

उस महाभाग्य का बखान करके भी उन महर्षियों का जी नहीं भरा। हे युधिष्ठिर, इसके बाद शाल्व देश की सब प्रजा आकर द्युमत्सेन से कहने लगी—महाराज, आपके राज्य को छीननेवाला शत्रु अपने ही मन्त्री के हाथ से मारा गया। उसकी सब सेना भी तितर-बितर हो गई है और सहायक बन्धु भी मार डाले गये हैं। आपकी प्रजा ने एकमत होकर यह निश्चय किया है कि हमारे राजा द्युमत्सेन ही, अन्धे हों या आँखोंवाले, चाहे जैसे हों, हमारे शासक हों। राजन्, यही निश्चय करके सबने हमें आपकी सेवा में भेजा है। आपकी यह चतुरङ्गिणी सेना और सवारियाँ उपस्थित हैं। हम लोग आपको लेने आये हैं। आपका भला हो। आप चलकर अपने बाप-दादे की राजगद्दी पर बैठिए। नगर में आपके विजय की घोषणा की जा चुकी है।

हे युधिष्ठिर, राजा द्युमत्सेन को जवानों की तरह सबल और दृष्टियुक्त देखकर उन लोगों को बड़ा अचरज हुआ। सबने उनके चरणों में प्रणाम किया। अब राजा द्युमत्सेन ने सब आश्रमवासी वृद्धों को प्रणाम किया और उन लोगों ने भी राजा का सत्कार किया। इस प्रकार तपस्वियों से बिदा होकर राजा द्युमत्सेन नगर को चले। शैब्या भी सावित्री के साथ ऐसी पालकी
१० पर बैठकर चलीं जिसमें कोमल बहुमूल्य बिछौने बिछे हुए थे। नगर में पहुँचने पर पुरोहितों ने प्रीतिपूर्वक द्युमत्सेन को राजगद्दी पर बिठाकर युवराज पद पर सत्यवान् का अभिषेक किया। बहुत दिनों के बाद धर्मराज के वरदान के अनुसार सावित्री के सौ पुत्र उत्पन्न हुए। वे सब कीर्त्ति को बढ़ानेवाले, शूर और रण से विमुख न होनेवाले थे। मद्र देश के राजा अश्वपति के भी मालवी रानी से महाबली सौ पुत्र पैदा हुए। सावित्री के भाइयों में भी सब गुण थे। राजन्, सावित्री ने इस प्रकार माता-पिता, सास-ससुर और पति के साथ अपने को भी विपत्ति से बचाया। हे युधिष्ठिर, सावित्री की ही तरह यह पतिव्रता, कुलकामिनी, कल्याणरूपिणी, द्रौपदी भी तुम सब भाइयों को विपत्ति और कष्ट से उबार लेंगी।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इस तरह महात्मा मार्कण्डेय के समझाने से युधिष्ठिर का शोक और सन्ताप जाता रहा। वे द्रौपदी और भाइयों के साथ सुखपूर्वक काम्यक वन

में रहने लगे। जो मनुष्य इस सावित्री के पवित्र उपाख्यान को श्रद्धा-भक्ति के साथ सुनता है उसकी सब इच्छाएँ पूरी होती हैं और वह कभी दुःख नहीं पाता। १७

कुण्डलाहरणपर्व

तीन सौ अध्याय

सूर्य का स्वप्न में कर्ण को दर्शन देना और कवच-कुण्डलों का दान देने से रोकना

जनमेजय ने कहा—वैशम्पायन जी, मैं पहले सुन चुका हूँ कि महर्षि लोमश ने, इन्द्र के कहने से, युधिष्ठिर के पास आकर कहा था कि "हे धर्मराज तुम्हारे हृदय में जो डर सदा बना रहता है और जिसके बारे में तुम किसी से कभी कुछ नहीं कहते उसे मैं (इन्द्र), अर्जुन के स्वर्ग से चले जाने पर, दूर कर दूँगा।" मैं जानना चाहता हूँ कि महात्मा युधिष्ठिर को कर्ण से वह कौन सा बड़ा डर था। और, धर्मात्मा युधिष्ठिर ने उस डर का हाल कभी किसी से कहा क्यों नहीं?

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, मैं आपके प्रश्न के अनुसार सब वृत्तान्त कहता हूँ—सुनिए। वन में रहकर पाण्डवों ने बारह वर्ष पूरे कर दिये। जब तेरहवाँ वर्ष लगा तब पाण्डवों का हित करने के लिए इन्द्रदेव कर्ण से कवच-कुण्डल माँगने को उनके पास गये। महाराज! ब्रह्मभक्त, सत्यनिष्ठ, महात्मा कर्ण रात को बहुमूल्य पलँग पर, कोमल बिछौने के ऊपर, सो रहे थे। पुत्र-स्नेह और कृपा के कारण सूर्यदेव, योगबल से वेदपाठी ब्राह्मण का रूप रखकर, स्वप्न में कर्ण को देख पड़े। उन्होंने कर्ण की भलाई के लिए समझाकर कहा—हे सत्यवादी पुत्र, मैं स्नेह के कारण तुम्हारे हित की जो बात कहता हूँ सो सुनो। पाण्डवों का १०

हित चाहनेवाले इन्द्र, ब्राह्मण का वेष धरकर, तुमसे कुण्डल माँगने आवेंगे। इन्द्र को और सारे जगत् को तुम्हारा यह स्वभाव मालूम है कि तुम सज्जनों को उनकी माँगी हुई वस्तु दे देते हो और खुद किसी से कुछ नहीं माँगते। पुत्र, तुम खासकर ब्राह्मणों को विमुख नहीं करते; वे धन या और जो कुछ माँगते हैं सो तुम उनको दे देते हो। इन्द्र तुम्हारा यह हाल जानकर तुमसे कवच और कुण्डल माँगने आवेंगे। माँगने पर तुम उन्हें कवच या कुण्डल न देकर यथा-

शक्ति अनुनय-विनय के द्वारा और कुछ माँगने के लिए राजी करना। इसी में तुम्हारी भलाई है। कुण्डल पाने के लिए वे अनेक कारण दिखाकर बहुत सी बातें बनावेंगे। तुम रत्न, स्त्रियाँ, गायें और अनेक प्रकार की सम्पत्ति देकर उन्हें टालने की चेष्टा करना। जो तुम वे कुण्डल दे दोगे, जिन्हें पहने हुए ही तुम पैदा हुए हो, तो तुम्हारी आयु घट जायगी। तब तुम्हारा मरना भी सहज हो जायगा। हे मान देनेवाले कर्ण उन कुण्डलों और कवच के प्रभाव से युद्ध-भूमि में शत्रु तुम्हें मार नहीं सकते। तुम्हारे रत्नमय कवच और कुण्डलों की उत्पत्ति अमृत से हुई है। इसलिए हे कर्ण, जो तुम जीना चाहते हो तो तुम्हें इन्द्र से कवच और कुण्डलों की
२० रक्षा करनी चाहिए।

कर्ण ने पूछा—भगवन्! आप कौन हैं, जो ब्राह्मण के वेष से स्नेह प्रकट करते हुए मुझे मेरी भलाई का उपदेश करने आये हैं? ब्राह्मणवेषधारी सूर्य ने कहा—पुत्र, मैं सूर्य हूँ। स्नेह के कारण तुम्हारे पास आया हूँ। मेरे कहे के माफ़िक़ काम करो, इसी से तुम्हारी भलाई है। कर्ण ने कहा—जब पिता सूर्यदेव मेरे हित के लिए आकर शुभ उपदेश कर रहे हैं तब अवश्य ही मेरा भला होगा। किन्तु हे वरदानी प्रभाकर, मैं भक्ति के साथ प्रसन्न करके आपसे प्रार्थना करता हूँ कि जो आपको मैं प्यारा हूँ तो आप मुझे दान देने से न रोकिए। भगवन्, सारा संसार मेरे इस व्रत को जानता है कि मैं ब्राह्मणों को, माँगने पर, अपने प्राण तक दे सकता हूँ। यदि इन्द्र पाण्डवों का हित करने की चाह से ब्राह्मण का रूप रखकर मुझसे माँगने आवेंगे तो मैं उन्हें कवच और कुण्डल अवश्य दे दूँगा। त्रिलोक में फैली हुई अपनी कीर्त्ति को मैं कभी नष्ट न होने दूँगा। मुझ ऐसे पुरुष के लिए बदनामी की जिन्दगी से मर जाना अच्छा है। [मैं अपनी जान देकर कीर्ति मोल ले सकता हूँ।] माँगने को आये हुए विप्ररूप-धारी इन्द्र को
३० मैं कवच-कुण्डल दे दूँगा। इससे मेरा नाम होगा और इन्द्र बदनाम होंगे। कीर्त्तिशाली पुरुष स्वर्ग को जाता है और कीर्त्ति से हीन पुरुष शीघ्र नष्ट हो जाता है। कीर्त्ति, माता की तरह, पुरुष की रक्षा करती है। अकीर्त्ति जीवित पुरुष को भी मुर्दे से बढ़कर बना देती है। सब लोकों के ईश्वर विधाता का यह प्राचीन वचन है कि कीर्त्ति ही मनुष्य का जीवन और आयु है। कीर्त्ति से इस लोक में मनुष्य की आयु बढ़ती है और परलोक में उसे सद्गति मिलती है। इसलिए मैं शरीर के साथ उत्पन्न कवच और कुण्डल देकर अवश्य अक्षय कीर्त्ति प्राप्त करूँगा। ब्राह्मणों को विधिपूर्वक यथेष्ट दान करना, युद्ध में दुष्कर कर्म करते हुए लड़कर मरना, शत्रुओं को जीतना और इस प्रकार अक्षय कीर्त्ति प्राप्त करना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। आप निश्चय जानिए कि प्राण देकर भी कीर्त्ति की रक्षा करना मेरे जीवन का व्रत है। इसीलिए मैं ब्राह्मण-वेषधारी
३९ इन्द्र को यश बढ़ानेवाली भिक्षा देकर अन्त को देवलोक में जाऊँगा और श्रेष्ठ गति पाऊँगा।

———

तीन सौ एक अध्याय

कवच-कुण्डल न देने के लिए सूर्य का कर्ण से फिर आग्रह करना

सूर्य ने कहा—हे कर्ण ! तुम अपना और इष्ट-मित्र, पुत्र, स्त्री, पिता-माता आदि का अहित मत करो। पुत्र ! शरीरधारी लोग शरीर को बनाये रखकर यहाँ अक्षय यश और स्वर्ग में अनन्त कीर्त्ति प्राप्त करना चाहते हैं। तुम प्राणों को तुच्छ समझकर अक्षय कीर्त्ति चाहते हो तो वह कीर्त्ति तुम्हारे प्राण ले जायगी। पिता, माता, पुत्र और अन्य सब भाई-बन्धु जीवित रहने पर ही बेटे-बेटियों को दुलराकर—हृदय से लगाकर—सुख पाते हैं। राजा लोग भी जीवित रहने पर ही पौरुष से सब काम कर सकते हैं। जो मर गया उसे कीर्त्ति से क्या लाभ होगा ? जो मरकर भस्म हो गया वह कीर्ति लेकर क्या करेगा ? जो मर गया वह अपनी कीर्त्ति को सुनने नहीं आता। जीवित पुरुष ही कीर्त्ति का सुख भोगता है। मरे हुए पुरुष की कीर्त्ति मुर्दे के गले में माला डालने की तरह व्यर्थ है। तुम मेरे भक्त हो, और अपने भक्तों की रक्षा करना मैं अपना कर्त्तव्य समझकर तुम्हारे हित के लिए यह बात कहता हूँ। हे महाबाहु, अपना भक्त समझकर तुम पर मुझे भी स्नेह हो आया है। इसलिए तुम मेरा कहा मानो। इस सम्बन्ध में एक देव-कृत रहस्य है, इसी से मैं जो तुमसे कहता हूँ वही करो। उस रहस्य को देवता भी नहीं जानते। इस कारण मैं इस समय तुम पर उस रहस्य को प्रकट नहीं करता। जब समय
आवेगा तब तुम उस रहस्य को जानोगे। सुनो, मैं फिर तुमसे कहता हूँ कि इन्द्र आकर माँगें तो १०
तुम उनको कवच और कुण्डल मत देना। आकाश में विशाखा नक्षत्र के दो तारों के बीच चन्द्रमा के समान, उन कुण्डलों से तुम्हारे मुख की शोभा होती है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि जीवित पुरुष की ही कीर्त्ति प्रशंसनीय है। इसलिए कुण्डल-कवच माँगने को जब इन्द्र तुम्हारे पास आवें तब तुम उन्हें टाल देना। हे पुत्र ! अनेक कारण दिखाकर, तरह-तरह की बातें बनाकर तुम इन्द्र की कुण्डल लेने की इच्छा को दूर कर सकते हो। हे कर्ण ! उपपत्ति, अर्थसङ्गति और माधुर्य से अलंकृत वचन कहकर इन्द्र की इस बुद्धि को उनके हृदय से हटा देना। हे पुरुषश्रेष्ठ, तुम अर्जुन से लाग-डाँट रखते हो। शूर अर्जुन के साथ तुमको युद्ध करना पड़ेगा। यदि कुण्डल तुम्हारे पास बने रहेंगे तो इन्द्र खुद बाण बनकर क्यों न अर्जुन की सहायता करें, किन्तु वे न तो तुम्हें जीत सकेंगे और न मार सकेंगे। इस कारण यदि तुम युद्ध में अर्जुन को जीतना चाहते हो तो हे कर्ण,
इन्द्र को ये शुभदायक कुण्डल कभी न देना। १८

तीन सौ दो अध्याय

सूर्य का कर्ण को इन्द्र से शत्रु-घातिनी शक्ति माँग लेने के लिए उपदेश देना

कर्ण ने कहा—हे दिवाकर, इसमें सन्देह नहीं कि मैं आपका अनन्य भक्त हूँ। आपका यह समझना बहुत ठीक है। कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे मैं आपको न अर्पण कर सकता होऊँ।

आत्मा, स्त्री, पुत्र और मित्र भी मुझे उतने प्रिय नहीं हैं जितने आप हैं। मैं आपका परम भक्त हूँ। हे भास्कर, आप जानते हैं कि महात्मा पुरुष भी अपने प्यारे भक्तों पर अपार कृपा रखते हैं। आप जानते हैं कि मेरा प्रिय भक्त कर्ण स्वर्ग के किसी और देवता की उपासना नहीं करता। यही समझकर आप मुझे मेरे हित का उपदेश कर रहे हैं। हे तीक्ष्ण किरणोंवाले देव, मैं फिर आपके चरणों में प्रणाम करके बारम्बार आपको मानता हूँ। आपकी आज्ञा के विरुद्ध मैं जो कुछ कहता हूँ उसे क्षमा कीजिए। भगवन्, मैं झूठ से जितना डरता हूँ उतना मौत से नहीं डरता। विशेष कर सज्जन ब्राह्मणों को, उनके माँगने पर, प्राण देने में भी मुझे कुछ सोच-विचार नहीं हो सकता। आपने अर्जुन से मेरे लिए डर की जो बात कही है, उसके लिए आप खेद न कीजिए। सहस्रबाहु अर्जुन के तुल्य प्रतापी और पराक्रमी अर्जुन को मैं युद्ध में अवश्य पछाड़ूँगा। आप भी मेरे दिव्य अस्त्र-बल को जानते हैं। मैंने महात्मा द्रोणाचार्य और अजेय परशुरामजी से अस्त्र-कला सीखी है।
१० भगवन्, आप मेरे इस व्रत (प्रार्थी को विमुख न करने) का अनुमोदन कीजिए। इन्द्र यदि माँगने आवेंगे तो मैं उन्हें अपने प्राण भी दे दूगा।

सूर्य ने कहा—पुत्र, इन कुण्डलों के प्रभाव से कोई प्राणी तुमको मार नहीं सकता। इन्द्र इसलिए तुम्हारे कुण्डल ले जाना चाहते हैं, जिसमें अर्जुन तुमको मार सकें। यदि तुम इन्द्र को ये शुभदायक कुण्डल देना ही चाहते हो तो तुम भी, अर्जुन को मारने के लिए, इन्द्र से अमोघ शक्ति माँग लेना। तुम प्रिय वचनों से प्रसन्न करके इन्द्र से कहना कि हे देवेश, मैं आपको दिव्य कवच और कुण्डल देता हूँ, किन्तु उसके बदले में आप भी मुझे कभी निष्फल न जानेवाली शत्रुघातिनी शक्ति दीजिए। हे कर्ण, इस शर्त पर तुम इन्द्र को अपने कुण्डल देना। उस शक्ति की सहायता से तुम युद्ध में अपने शत्रुओं का नाश कर सकोगे। वह शक्ति इन्द्र के हाथ से छूटकर शत्रुओं को बिना मारे नहीं लौटती। उसमें यह सिफ़त है कि वह सैकड़ों-हजारों शत्रुओं को मारकर फिर इन्द्र के हाथ में लौट आती है।

वैशम्पायन कहते हैं—इतना कहकर सूर्य एकाएक अन्तर्द्धान हो गये। सबेरा होने पर कर्ण सोकर उठे। जप के उपरान्त उन्होंने सूर्य से स्वप्न का सब हाल कहा। रात को जो स्वप्न

देखा था और जो बातचीत हुई थी सब, कर्ण ने कह सुनाई। सूर्यनारायण ने सुनकर कुछ मुसकराकर कहा—कर्ण, तुमने रात को जो स्वप्न देखा है वह सत्य है। शत्रुदमन कर्ण उस स्वप्न को सत्य जानकर इन्द्र के आने की और उनसे शक्ति पाने की बाट जोहने लगे। २१

तीन सौ तीन अध्याय

कर्ण के जन्म का वृत्तान्त। दुर्वासा का राजा कुन्तिभोज के यहाँ जाकर टिकना और कुन्तिभोज का कुन्ती को उनकी सेवा का काम सौंपना

जनमेजय ने कहा—भगवन्, सूर्य ने कर्ण पर जो प्रकट नहीं किया वह रहस्य क्या था? वे कुण्डल और कवच कैसे थे? उनकी उत्पत्ति कैसे हुई थी और वे कर्ण को किस तरह मिले थे? हे तपोधन, मैं यह वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ। कृपा करके कहिए।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, वह गुप्त रहस्य और कवच-कुण्डल का हाल कहता हूँ, सुनो। पहले एक समय परम तेजस्वी, लम्बे-चौड़े डीलवाले, जटा आदि बढ़ाये, दर्शनीय, निर्दोष अङ्गोंवाले, अग्नि के समान, पिङ्गलवर्ण, मधुर वचन बोलनेवाले, तपस्वी, स्वाध्याय-निरत एक ब्राह्मण महाराज कुन्तिभोज के पास गये। उन महातपस्वी ब्राह्मण ने राजा से कहा—हे शान्तिप्रिय महाराज, मैं तुम्हारे यहाँ रहकर भिक्षा-भोजन करना चाहता हूँ। हे निष्पाप, यदि तुम्हें स्वीकार हो तो मैं इन नियमों के अनुसार तुम्हारे यहाँ रहूँगा;—तुम या तुम्हारे आदमी मेरी इच्छा में कुछ रोक-टोक न कर सकेंगे। मैं अपनी इच्छा के अनुसार आ-जा सकूँगा। मेरी शय्या और आसन पर कोई बैठ नहीं सकेगा, या मेरे सोने या बैठने के समय कोई कुछ मेरी इच्छा के विरुद्ध नहीं कर सकेगा। इन नियमों से मैं आपके यहाँ रहना चाहता हूँ।

राजा कुन्तिभोज ने बहुत प्रसन्न होकर ब्राह्मणश्रेष्ठ दुर्वासा से कहा—हे द्विजवर, जैसा आप चाहते हैं वैसा ही होगा। हे महाप्राज्ञ, मेरे पृथा नाम की एक यशस्विनी कन्या है।

वह अच्छे स्वभाववाली साध्वी कन्या सदा आदर के साथ आपकी सेवा-टहल करेगी उसके स्वभाव
११ और चरित्र से आप अवश्य प्रसन्न होंगे। हे जनमेजय, दुर्वासा से यों कहकर और विधिपूर्वक
पूजा के उपरान्त उन्हें टिकाकर राजा अपनी कन्या पृथा (कुन्ती) के पास गये और कहने लगे—
बेटी, एक महात्मा ब्राह्मण मेरे घर में कुछ दिन रहना चाहते हैं; मैं उन्हें रखना स्वीकार कर चुका हूँ।
उनकी सेवा का काम मैं तुम्हें सौंपता हूँ। उनसे मैं यह कह भी चुका हूँ। अब मेरा वचन
मिथ्या न हो। वे तपस्वी, वेदपाठी, महातेजस्वी, ऐश्वर्यशाली ब्राह्मण जब जो कुछ माँगें सो तुम
श्रद्धा के साथ देना। ब्राह्मण ही परम तेज है, ब्राह्मण ही परम तप है और ब्राह्मणों को प्रणाम
करने से ही आकाश में सूर्यदेव विराजमान हैं। दण्डक वन में रहनेवाला वातापि असुर और
तालजंघ दानव दोनों, ब्राह्मणों का अनादर करने के कारण, ब्रह्मदण्ड से नष्ट हो गये। बेटी, मैं
आज तुमको ब्राह्मण की सेवा का काम सौंपता हूँ। तुम सदा नियम के साथ उनकी सेवा और
आराधना करना। पुत्री! मैं तुम्हें जानता हूँ, तुम बचपन से ही एकाग्रता के साथ ब्राह्मण,
बड़े-बूढ़े, भाई-बन्धु, मित्र, सम्बन्धी, सेवक, माता आदि के साथ और मुझसे यथोचित व्यवहार
२० करती हो। प्यारी बेटी, नगर और रनिवास के सब लोग तुम पर प्रसन्न हैं। नौकर-चाकर भी
तुमसे नाराज़ नहीं हैं। तुम बालिका और मेरी कन्या हो, इस कारण मैं क्रोधी ब्राह्मण की सेवा
का काम तुम्हें सौंपना ठीक समझता हूँ। तुम वृष्णिवंश में उत्पन्न शूरसेन की प्यारी कन्या और
वसुदेव की बहन हो। उन्होंने मुझसे प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि पहली सन्तान मुझे देंगे। इसी
कारण अब तुम मेरी बेटी हो। मैं तुम्हें अपनी सब कन्याओं में श्रेष्ठ समझता हूँ। ऐसे श्रेष्ठ
कुल में पैदा होकर तुम मेरे कुल में पली हो। तुम एक सरोवर से दूसरे सरोवर में लाई गई
कमलिनी की तरह सुख से सुख में आई हो। स्त्रियाँ, विशेष कर बुरे घरानों की स्त्रियाँ, अक्सर
लड़कपन के कारण काम को बिगाड़ देती हैं। किन्तु तुमसे मुझे ऐसी आशङ्का नहीं है। तुम
राजकुल में उत्पन्न हुई हो, तुम्हारा रूप अद्भुत है और तुममें स्त्रियों के योग्य सब श्रेष्ठ गुण
हैं। तुम दम्भ, दर्प और अभिमान छोड़कर वरदानी ब्राह्मण की सेवा करोगी तो अवश्य तुम्हारा
भला होगा परन्तु जो किसी तरह की असावधानी से ब्राह्मण को कुपित कर दोगी तो मेरा कुल, उनके
२९ क्रोध की आग से, भस्म हो जायगा।

तीन सौ चार अध्याय

कुन्ती का सावधानी से सेवा करके दुर्वासा ऋषि को प्रसन्न करना

कुन्ती ने कहा—पिताजी, मैं आपकी प्रतिज्ञा के अनुसार उन ब्राह्मण की नियमपूर्वक ठीक-ठीक सेवा-पूजा करूँगी। हे राजेन्द्र, मेरा कहना झूठ न होगा। ब्राह्मणों की पूजा और सेवा करना ही मेरा स्वभाव है और आपका प्रिय कार्य करने को ही मैं अपना परम कल्याण समझती

हूँ। वे तेजस्वी ब्राह्मण सायङ्काल, प्रातःकाल, रात, आधी रात, जिस समय आवेंगे और जो सेवा करने के लिए कहेंगे वह, उसी समय, मैं कर दूँगी। किसी तरह वे मुझे खिझा नहीं सकेंगे और न उन्हें मुझ पर नाराज़ होने का मौक़ा मिलेगा। महाराज, आपकी आज्ञा से ब्राह्मण की सेवा-टहल करके मैं आपका हित करूँगी, इसे ही मैं अपने लिए बड़ा भारी लाभ समझती हूँ। आप विश्वास कीजिए। मैं सच कहती हूँ, मेरे यहाँ रहने पर ब्राह्मण को अपनी इच्छा के विरुद्ध अप्रिय कोई कार्य न देख पड़ेगा। हे निष्पाप! आप चिन्ता न करें, मैं वही करूँगी जिसमें ब्राह्मण का प्रिय और आपका हित होगा। राजन्, ब्राह्मणों की पूजा करने से वे तार सकते हैं—रक्षा करते हैं और उनका अपमान करने से मनुष्य का विनाश हो जाता है। यह मैं जानती हूँ। मैं ब्राह्मण को सब तरह से सन्तुष्ट रक्खूँगी। मेरे कारण ब्राह्मण से आपका कुछ अनिष्ट न होगा। राजेन्द्र, पूर्व समय में शर्याति राजा की बेटी सुकन्या के अपराध से कुपित च्यवन ऋषि ने शर्याति को सङ्कट में डाल दिया था। किसी प्रकार ब्राह्मण का अपकार या अपमान करने से राजाओं का कल्याण नहीं होता। आपने ब्राह्मण के जिन नियमों को स्वीकार कर लिया है उनका पालन करती हुई मैं उनकी सेवा करूँगी। १०

यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कुन्ती को छाती से लगाकर उसकी बहुत बड़ाई की। उसके बाद जो कुछ जिस तरह करना चाहिए सो सब बताकर राजा ने कहा—हे शुभरूपिणी! तुम अपने, मेरे और कुल के हित के लिए इसी तरह सब काम करना। कोई शङ्का करने की जरूरत नहीं। ब्राह्मण भक्त महायशस्वी कुन्तिभोज यों कहकर कुन्ती को ब्राह्मण के हाथ में सौंपकर कहने लगे—ब्रह्मन्, मेरी यह कन्या अभी बालिका है; ख़ासकर सुख में पली है। इस कारण यदि इससे कोई भूल हो जाय तो आप कृपा करके क्षमा कीजिएगा। वृद्ध, बालक और तपस्वियों से यदि कुछ बड़ा अपराध भी हो जाता है तो ब्राह्मण लोग उन पर क्रोध नहीं करते। कोई बहुत बड़ा अपराध

होने पर भी ब्राह्मणों को क्षमा से काम लेना चाहिए। यथाशक्ति और उत्साह के अनुसार की हुई पूजा उन्हें स्वीकार कर लेनी चाहिए।

दुर्वासा ने कहा—ऐसा ही होगा। तब राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें एक हंस के समान उजले रङ्ग के श्रेष्ठ भवन में टिका दिया। वहाँ जाकर कुन्ती ने अग्निहोत्रशाला के पास

मुनिवर का दिव्य आसन लगा दिया। उनके लिए भोजन आदि की सामग्री भी लाकर रख दी। इस प्रकार आलस्य और अभिमान से दूर रहकर वे, देवता के समान मानकर,
२० सम्मान के साथ ऋषि की सेवा करने लगीं।

तीन सौ पाँच अध्याय

दुर्वासा मुनि का कुन्ती को वरदान देना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इसके बाद नित्य सेवा करके कुन्ती दुर्वासा मुनि को सन्तुष्ट करने लगीं। वे कभी कह तो जाते सबेरे आने के लिए किन्तु आते शाम को या बहुत रात गये। परन्तु कुन्ती सब समय बहुत सी खाने-पीने की सामग्री देकर और सेवा करके उनकी पूजा करती थीं। उस सत्कार में किसी तरह कमी न होकर दिन-दिन वृद्धि ही होती जाती थी। यहाँ तक कि दुर्वासाजी यदि खाने-पीने की सामग्री में अकारण झूठे दोष दिखाकर तिरस्कार करते या अप्रिय वचन कहते थे तो भी कुन्ती कुछ बुरा न मानती थीं। दुर्वासा कभी सोने के समय आ जाते थे, और कभी नहीं आते थे; कभी कुसमय में खाने की ऐसी चीज़ें माँग बैठते थे जिनका मिलना दुर्लभ है। किन्तु कुन्ती उसी समय 'सब तैयार है' कहकर माँगी हुई चीजें हाज़िर कर देती थीं। इस प्रकार श्रेष्ठ कन्या कुन्ती शिष्या, कन्या और बहन की तरह संयम के साथ, ऋषि की इच्छा के अनुसार सेवा करके उन्हें प्रसन्न रखती थीं।

दुर्वासा भी कुन्ती के अच्छे स्वभाव और अच्छे व्यवहार से अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उनका कुछ भला करने का विचार करने लगे।

कुन्ती के पिता कुन्तिभोज सबेरे और शाम को आकर पूछते थे—बेटी, तुम्हारी सेवा से ऋषि प्रसन्न हैं न? यशस्विनी
१० कुन्ती उत्तर देती थीं—बहुत प्रसन्न हैं। यह सुनकर महात्मा कुन्तिभोज बहुत सन्तुष्ट होते थे। हे जनमेजय, इस प्रकार जब एक साल पूरा हो गया तब तपस्वी दुर्वासा ने, कुन्ती की कुछ भी त्रुटि न पाकर, प्रसन्न होकर कहा—भद्रे, मैं तुम्हारी सेवा से बहुत प्रसन्न हूँ। इसलिए तुम मुझसे ऐसे वर माँगो जो मनुष्यों के लिए दुर्लभ हों। वे वरदान ऐसे होंगे जिनके द्वारा तुम सब कुल-स्त्रियों से बढ़कर यशस्विनी होओगी।

कुन्ती ने कहा—वेद के जाननेवालों में श्रेष्ठ हे ऋषिवर, आप और पिताजी मुझ पर प्रसन्न हैं,
यही मेरे लिए सब कुछ है ; इसी से मेरी सब इच्छाएँ पूरी हो गईं। और वरदान की ज़रूरत नहीं।
दुर्वासा ने कहा—हे सुन्दरी, यदि तुम मुझसे कोई वर नहीं लेना चाहती हो तो यह मन्त्र मुझसे ले लो ;
इसके द्वारा तुम देवताओं को बुला सकती हो। तुम इस मन्त्र के बल से जिस देवता को बुलाओगी वह,
इच्छा से हो चाहे अनिच्छा से, नौकर की तरह अवश्य तुम्हारे वश में हो जायगा।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन् कुन्ती शाप के डर से दुर्वासा की इस बात को टाल नहीं सकीं।
ऋषि ने कुन्ती को अथर्ववेद के श्रेष्ठ मन्त्रों का उपदेश करके कुन्तिभोज से कहा—राजन्, मैं तुम्हारे घर २०
से बहुत प्रसन्न होकर जाता हूँ। मैं यहाँ बड़े आराम से रहा और तुम्हारी कन्या ने बहुत अच्छी तरह
मेरी सेवा की है। इतना कहकर ऋषिजी चले गये। ब्राह्मण को अन्तर्द्धान होते देखकर राजा बहुत
विस्मित हुए। राजा ने कुन्ती की सराहना की। २३

तीन सौ छः अध्याय

कुन्ती का मन्त्र-बल की परीक्षा के लिए सूर्य का आवाहन करना

वैशम्पायन कहते हैं—दुर्वासा जब किसी काम के लिए चले गये तब, एक समय, कुन्ती उन
मन्त्रों के प्रभाव के बारे में सोचने लगीं कि दुर्वासा मुझे जो मन्त्र दे गये हैं वे कैसे हैं। मैं
उनके प्रभाव की परीक्षा शीघ्र ही करूँगी। सोचते-सोचते कुन्ती को एकाएक अपने शरीर में 'ऋतु'
के चिह्न देख पड़े और वे कन्या की दशा में ही मासिक धर्म हो जाने से लज्जित हुईं। इसके
बाद एक दिन वे महल के भीतर बढ़िया पलँग पर बैठी हुई थीं, इसी समय उन्हें पूर्व दिशा में
उदय हो रहे सूर्यनारायण देख पड़े। वे मन और दृष्टि, दोनों से आसक्त होकर सूर्य की ओर देखने
लगीं। सूर्य का तेजस्वी रूप देखकर मानों उनका जी ही नहीं भरता था। उन्हें दिव्य दृष्टि मिल
गई। उन्होंने आदित्य-मण्डल में, कुण्डल और कवच पहने हुए, दिव्य रूपधारी दिनेश के दर्शन
किये। दिव्य दृष्टि के कारण उन्हें सूर्य के तेज से तनिक भी कष्ट नहीं पहुँचा। वे मन ही मन रीझ-
कर सूर्य के रूप को एक टक निहारने लगीं। राजन्, तब उस मन्त्र की परीक्षा करने के लिए कुन्ती
के मनमें बड़ा कौतूहल उत्पन्न हुआ। उन्होंने आचमन करके, शुद्ध, हो, मन्त्र पढ़कर सूर्य का आवाहन
किया। तब सूर्य ने योगबल से अपनी दो मूर्तियाँ कर लीं। एक मूर्ति से वे संसार को उजेला और
गर्मी पहुँचाते रहे और दूसरे शरीर से झटपट कुन्ती के पास आ गये। उनका रङ्ग शहद का सा था
और उनकी गर्दन शंख ऐसी थी। महाबाहु प्रभाकर, अङ्गद और मुकुट आदि आभूषणों से शोभित रूप
रखकर, कुन्ती के पास पहुँच कर मुसकुराते हुए कहने लगे—सुन्दरी, मन्त्र-बल के कारण मैं तुम्हारे वश
में हूँ। बताओ, मैं तुम्हारा कौन सा काम करूँ? ११

कुन्ती ने कहा—भगवन्, आप जहाँ से आये हैं वहीं, कृपा करके, जाइए। मैंने निरे कौतूहल से आपको बुलाया था। अब मुझ पर प्रसन्न होकर मेरा कहा कीजिए। सूर्य ने कहा—सुन्दरी

तुम कहती हो तो मैं अवश्य चला जाऊँगा किन्तु देवता को व्यर्थ बुलाकर यों ही लौटा देना ठीक नहीं। तुमने मन में सोचा है कि मेरे, सूर्य से, सूर्य के समान कवच-कुण्डल धारण किये अद्वितीय पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हो। इसलिए हे गजगामिनी, तुम मुझे आत्म-समर्पण करो। तुम्हारी इच्छा के अनुसार श्रेष्ठ पुत्र पैदा होगा। मैं तुमसे सहवास करके, तुम्हारे कहने के अनुसार अपने स्थान को चला जाऊँगा। किन्तु जो तुम मेरा कहना न मानोगी तो मैं कुपित होकर तुमको, तुम्हारे पिता को और उस ब्राह्मण को शाप दे दूँगा। तुम्हारे मूढ़ पिता तुम्हारे इस अन्याय को नहीं जानते और उस ब्राह्मण ने भी तुम्हारे स्वभाव और चरित्र को बिना जाने तुम्हें मन्त्र दे दिया है, इससे तुम्हारे कारण मैं इन सबको भस्म कर दूँगा। हे राजकुमारी! तुम मेरी दी हुई दिव्य दृष्टि से देखो, आकाश में इन्द्र आदि देवता आश्चर्य के साथ
२० तुम्हारे द्वारा ठगे मुझको देखकर मुसकुरा रहे हैं।

राजकुमारी कुन्ती ने आकाश की ओर देखा कि वहाँ सब देवता सूर्य के समान तेजस्वी रूप से विमानों पर बैठे हुए सूर्यनारायण की ओर देख रहे हैं। यह देखकर कुन्ती लज्जा और डर के मारे अधमरी सी हो गई। उन्होंने सूर्यदेव से कहा—भगवन् आप अपने विमान पर जाइए। मैंने स्त्री-स्वभाव के कारण आपको कष्ट देने का अपराध किया है। देखिए, मेरे शरीर के देने का अधिकार मेरे माता-पिता आदि बड़े-बूढ़ों को ही है। इस कारण उसके विपरीत करके मैं धर्म को कैसे नष्ट करूँ? भगवन्, चरित्र की शुद्धता ही स्त्रियों के शरीर की रक्षा करती है और उसी से स्त्रियों का मान होता है। हे दिवाकर, मैं बालिका हूँ। बिना सोचे-समझे, मन्त्र के प्रभाव की परीक्षा के लिए, मैंने आपका आवाहन किया है। इसलिए मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

सूर्य ने कहा—हे कुन्ती, तुम बालिका हो, इसी कारण मैं तुम्हारी खुशामद कर रहा हूँ; तुमको समझा रहा हूँ। और कोई स्त्री ऐसा अपराध करती तो उसकी खुशामद न करता।

इसलिए तुम मुझे आत्मदान करो। इसी उपाय से तुम्हारा भला हो सकता है और तुम्हें शान्ति मिल सकती है। हे भामिनी! तुमने मन्त्र पढ़कर मुझे बुलाया है, इसलिए यदि यों ही, मेरा प्रसाद स्वीकार किये बिना, मुझे लौटा दोगी तो संसार में मेरी हँसी होगी और देवता भी मेरी निन्दा करेंगे। इस समय तुम मुझसे समागम करके मेरे ही समान तेजस्वी प्रतापी पुत्र प्राप्त करो। उससे संसार में तुम्हें विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। २८

तीन सौ सात अध्याय

कुन्ती में सूर्य का गर्भाधान करना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, मनस्विनी कन्या कुन्ती मधुर वचनों से बहुत विनय करके भी सूर्य को लौटा नहीं सकीं। सूर्य को टालना असाध्य समझकर, शाप से डरकर, वे सोचने लगीं कि मैं अब क्या करूँ; किस तरह निर्दोष ब्राह्मण को और पिता को सूर्य के शाप से बचाऊँ? थोड़ी अवस्थावाले सच्चरित्र बालकों को भी चाहिए कि चित्त की परवशता में मोहित होकर सूर्य ऐसे तेजस्वियों और दुर्वासा ऐसे तपस्वियों के बहुत पास न जायँ। मैं इस समय सूर्य के हाथ में पड़कर डर के मारे कैसे आत्मदान के लिए राजी होकर वह कार्य करूँ जो न करना चाहिए!

शाप के डर से व्याकुल होकर बारम्बार सोचती हुई कुन्ती ने लज्जा से सिर झुकाकर सूर्य से कहा—भगवन्, मेरे माता-पिता आदि स्वजन बड़े-बूढ़े जीते हैं; उनके रहते यह लोकविरुद्ध कार्य मैं कैसे करूँ? आपसे मिलने का यह विधि-वर्जित काम जो मैं कर डालूँगी तो संसार में मेरे कुल की बड़ी निन्दा होगी। अथवा हे सूर्यदेव यदि आप इस काम को धर्म समझते हों तो
मैं बन्धुओं के द्वारा अपना दान हुए बिना ही आपकी इच्छा पूरी कर सकती हूँ। हे परम तेजस्वी! १०
देहधारियों के धर्म, यश, कीर्त्ति और आयु का आश्रय आप ही हैं। इसलिए यदि यों आपको आत्मदान करके भी मैं सती बनी रहूँ तो आपकी इच्छा पूरी करने के लिए तैयार हूँ।

सूर्य ने कहा—सुन्दरी, जो मैं कहता हूँ सो सुनो। तुम्हारे माता-पिता, गुरुजन आदि किसी को भी तुम्हारे दान का अधिकार नहीं है। कन्या शब्द का अर्थ यह है कि वह सबकी कामना कर सकती है। इस कारण कन्या अपने दान के लिए स्वतन्त्र है। अतएव मेरी इच्छा पूरी करने से तुम्हें अधर्म न होगा। मैं लोकरक्षक और सबका हितकारी हूँ; मैं अधर्म का आचरण कैसे कर सकता हूँ? स्वभाव से सभी स्त्री और पुरुष, अपनी इच्छा के अनुसार काम करने के लिए, स्वाधीन हैं। वैवाहिक नियम का बन्धन स्वभाव के विकार से उत्पन्न हुआ है। इसलिए तुम बेखटके मुझे स्वीकार करो। मेरे समागम से, तुम्हारे एक महायशस्वी महाबाहु पुत्र उत्पन्न होगा, और तुम कन्या ही बनी रहोगी।

कुन्ती ने कहा—हे अन्धकार के शत्रु सूर्य, यदि आपसे मुझे पुत्र मिले तो वह कुण्डल
और कवच पहने हुए ही पैदा हो। वह शूर, महाबाहु और महाबली हो। सूर्य ने कहा—सुन्दरी,
तुम्हारे जो महाबाहु पुत्र होगा वह गर्भ से ही स्वाभाविक अमृतमय कवच और कुण्डल पहने पैदा
होगा। कुन्ती ने कहा—देवदेव! यदि वह पुत्र, जिसे आप मेरे गर्भ से उत्पन्न करेंगे, अमृतमय
कवच-कुण्डल पहने पैदा होगा तो आप अपनी इच्छा पूरी कर लीजिए। मैं यह भी चाहती हूँ
२० कि वह मेरा पुत्र धर्मात्मा हो और वीर्य, रूप, तेज, ओज, बल आदि में आपके ही समान हो।
सूर्य ने कहा—राजकुमारी, मेरी माता अदिति ने मुझे जो कुण्डल दिये हैं वे, और यह उत्तम कवच,
मैं तुम्हारे पुत्र को दे दूँगा। कुन्ती ने कहा—भगवन्, यदि ऐसी बात है, मेरे ऐसा पुत्र हो तो आप
मुझसे समागम कीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं—तब 'बहुत अच्छा' कहकर आकाशचारी सूर्य ने योगरूप से कुन्ती के
शरीर में प्रवेश किया और हाथ से उनकी नाभि को छू लिया। उसी समय कन्या कुन्ती सूर्य
के तेज से विह्वल और अचेत सी होकर शय्या पर गिर पड़ीं। सूर्य ने कहा—हे सुन्दर नितम्बों-
वाली, मैं ऐसा करूँगा कि तुम्हारा पुत्र सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ होगा और तुम्हारा कन्याधर्म भी
बचा रहेगा। हे जनमेजय, कुन्ती ने लज्जित होकर सङ्गम का उपक्रम कर रहे महातेजस्वी सूर्य
से कहा—जैसा आप चाहते हैं वैसा ही हो। इसके बाद कुन्तिभोज की कन्या कुन्ती मोहित और
लज्जित होकर, लता की तरह काँपती हुई, पवित्र शय्या पर गिर पड़ीं। सूर्य ने उनको अपने
तेज से मोहित करके योग-बल से गर्भाधान किया। इसके बाद सूर्य की कृपा से कुन्ती फिर
कन्या हो गईं। इस प्रकार सूर्य ने कुन्ती को दूषित नहीं होने दिया। उनके चले जाने पर
२८ कुन्ती फिर सचेत हो उठीं।

तीन सौ आठ अध्याय

कुन्ती के गर्भ से कर्ण का जन्म होना और नदी में बहाया जाना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इस प्रकार राजकुमारी कुन्ती ने माघ शुक्ल प्रतिपदा के दिन, आकाश में चन्द्रमा के समान, अपने गर्भ में सूर्य का तेज धारण किया। घरवालों के डर से बालिका कुन्ती सदा गर्भ की अवस्था को छिपाये रहती थीं; किसी को उसका हाल नहीं मालूम हुआ। कन्या के रनिवास में रहनेवाली, रक्षा के काम में निपुण, दासी के सिवा और किसी स्त्री ने कुन्ती का यह रहस्य नहीं जाना। सूर्य की कृपा से कन्या की अवस्था बिगड़ने नहीं पाई और कुन्ती ने यथा समय एक बालक उत्पन्न किया। वह विचित्र बालक उज्ज्वल कवच और मणिमय कुण्डल पहने ही पैदा हुआ। उसका तेज अपने पिता सूर्य के समान ही

था, आँखें शेर की सी और कन्धे बैल के से भरे हुए थे। वह बालक ज्योंही पैदा हुआ त्योंही दासी से सलाह करके कुन्ती ने उसको एक सन्दूक़ची में, सुन्दर सुखदायक बिछौने बिछाकर, लिटा दिया। फिर उन्होंने चारों ओर से उस सन्दूक़ची में ऐसा लेप लगा दिया जिसमें उसके भीतर पानी न जा सके। अब रोते-रोते कुन्ती ने उस सन्दूक़ची को अश्व नदी में बहा दिया। कुमारी के गर्भ-धारण को अनुचित जानकर भी, पुत्रस्नेह के कारण, उस दिव्य बालक को बहाते समय कुन्ती करुण स्वर से रोने लगीं।

१०

राजन्, अश्व नदी में उस बालक को बहाते समय आँसू बहाती हुई कुन्ती ने जो बातें कही थीं उन्हें मैं कहता हूँ, सुनो। कुन्ती ने कहा—बेटा! आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, जल आदि में रहनेवाले सब जीव तुम्हारा भला करें। मार्ग में सब प्रकार से तुम्हारा कल्याण हो। आये हुए अनिष्टकारी जीव तुम्हारी कुछ हानि न कर सकें, उनके हृदय में तुम्हारे ऊपर द्रोह का भाव न रहे, वे तुम्हें किसी तरह की बाधा न पहुँचा सकें। जल में जलेश्वर वरुण तुम्हारी रक्षा करें। आकाश में आकाशचारी और सब जगह जानेवाले वायुदेव तुम्हारी रक्षा करें। जिन्होंने दिव्य विधि से तुम ऐसा पुत्र मुझे दिया है वे तुम्हारे पिता परम तेजस्वी सूर्य सब जगह तुम्हारी रक्षा करें। आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वेदेवा, मरुद्गण, इन्द्र, दिशाएँ, दिक्पाल और लोकपाल तुम्हारी रक्षा करें। सम और विषम, सभी स्थानों और अवस्थाओं में देवगण तुम्हारी रक्षा करें। इन सहजात कुण्डलों से और कवच से मैं तुमको विदेश में भी पहचान लूँगी। बेटा, तुम्हारे जन्मदाता पिता प्रतापी सूर्य धन्य हैं, जो नदी के बीच तुमको दिव्य दृष्टि से देखेंगे। हे देवकुमार, जो तुमको अपना पुत्र बनावेगी और भूखे-प्यासे होकर तुम जिसका दूध पियोगे वह स्त्री धन्य होगी। उस स्त्री ने आज न-जाने कौन श्रेष्ठ स्वप्न देखा होगा, जो तुम ऐसे सूर्य-तुल्य तेजस्वी, दिव्य कवचधारी, दिव्य कुण्डल-भूषित, कमल-नयन, गौर-वर्ण, कमल-दल-सदृश कान्ति-युक्त, सुन्दर मस्तक और केश-कलापवाले बालक को पाकर अपना पुत्र बनावेगी। हे पुत्र, वे लोग धन्य हैं जो उस समय तुमको देखेंगे जब तुम धूल में लोटोगे, तोतली मीठी वाणी बोलोगे

२० और घुटनों के बल इधर-उधर चलोगे। हिमालय में उत्पन्न सिंह के बच्चे के समान तेजस्वी तुमको,
जवानी की अवस्था में, जो लोग देखेंगे वे धन्य हैं।

राजन्, इस तरह बहुत विलाप और सन्ताप करके कुन्ती ने वह सन्दूक़ची अश्व नदी में बहा दी। पुत्रदर्शन की उत्कण्ठा से विह्वल, पुत्र के वियोग से पीड़ित, कमल-नयनी कुन्ती पिता के डर से रात को वह सन्दूक़ची बहाकर रोती हुई, दासी के साथ, फिर उसी तरह गुप्त रूप से राजभवन में लौट आई। इधर वह सन्दूक़ची बहती हुई अश्व नदी से चर्मण्वती में, चर्मण्वती से यमुना में और यमुना से गङ्गा में पहुँची। सन्दूक़ची के भीतर बन्द वह बालक गङ्गा की लहरों में बहता हुआ चम्पापुरी के पास सूत राज्य में पहुँचा। अमृत से प्रकट वह अमृतमय दिव्य कवच और कुण्डल उस बालक की रक्षा करता रहा। असल बात यह है कि
२७ उस बालक के जीवन की रक्षा दैव कर रहा था।

तीन सौ नव अध्याय

कर्ण का सूत अधिरथ के यहाँ पालन-पोषण होना। ब्राह्मण के वेष से इन्द्र का कर्ण के पास जाना

वैशम्पायन कहते हैं—इसी समय धृतराष्ट्र के सखा, अधिरथ नाम के सूत (जिनका वहाँ राज्य था) अपनी स्त्री राधा के साथ गङ्गा के किनारे पहुँचे। उनकी स्त्री राधा पृथ्वी पर अद्वितीय रूपवती समझी जाती थी। उसके कोई बाल-बच्चा न था। वह पुत्र के लिए बहुत कुछ यत्न कर चुकी थी, पर फल कुछ नहीं हुआ। राधा ने गङ्गा-किनारे जाकर देखा कि एक सन्दूक़ची आप से ही गङ्गा की लहरों में बह रही है; उसके ऊपर दूब-अक्षत आदि माङ्गलिक पदार्थ रक्खे हैं और कुंकुम का थापा (हाथ का चिह्न) दिया हुआ है। वह सन्दूक़ची लहरों के सहारे किनारे पर आ लगी। कौतूहल के मारे राधा ने सन्दूक़ची पकड़ ली। फिर सूत अधिरथ के पास उसकी ख़बर भेजी। अधिरथ ने आकर वह सन्दूक़ची जल से बाहर निकाली। यन्त्र की सहायता से खोले जाने पर अधिरथ ने उसके भीतर एक दिव्य बालक देखा। उस बालक का तेज दोपहर के सूर्य के समान और चेहरा बहुत ही मनोहर था। वह सोने का कवच और दिव्य उज्ज्वल कुण्डल पहने था। आश्चर्य और प्रसन्नता से अधिरथ के नेत्र-कमल खिल उठे। वे उस बालक को गोद में लेकर अपनी स्त्री से कहने लगे—हे सुन्दरी, अपने जन्मभर में यह एक अत्यन्त अद्भुत पदार्थ मैंने देखा है। मैं समझता हूँ कि यह कोई देवकुमार हमारे पास आया है। मेरे कोई पुत्र न था, इसी से कृपा करके देवताओं ने यह बालक मुझे दिया है।

१० महाराज, अधिरथ ने वह बालक अपनी स्त्री राधा की गोद में दे दिया। राधा उस
कमल-कोमल, देवपुत्र, दिव्य रूपवाले बालक को गोद में लेकर बड़े यत्न से उसका पालन करने

लगी। वह पराक्रमी बालक बढ़ने लगा। इसके बाद अधिरथ के कई पुत्र उत्पन्न हुए। ब्राह्मणों ने अधिरथ के पुत्र को सुवर्णमय कवच और कुण्डल पहने देखकर उसका नाम 'वसुषेण' रक्खा। महाबली कर्ण इस प्रकार सूत-पुत्र कहलाये। उनका एक नाम वृष भी था। महाराज, अधीरथ के बड़े पुत्र कर्ण इस प्रकार अङ्ग-देश में रहकर दिन-दिन बढ़ने लगे। गुप्तचर के मुँह से कुन्ती को कर्ण का सब हाल मालूम होता रहा।

अधिरथ सूत ने कर्ण को सयाने देखकर हस्तिनापुर में भेज दिया। वहाँ वे द्रोणाचार्य के पास रहकर अस्त्र-विद्या सीखने लगे। वहीं उनकी दुर्योधन से मित्रता हो गई। द्रोणाचार्य; कृपाचार्य और परशुराम से चारों प्रकार के अस्त्र पाकर कर्ण महारथी कहलाने लगे। वे दुर्योधन से मित्रता होने के कारण सदा पाण्डवों का विरोध और अप्रिय करने की धुन में लगे रहते थे।
अर्जुन से उनकी लाग-डाँट थी और वे सदा अर्जुन से युद्ध करने की इच्छा किया करते थे। २०
महाराज, कर्ण सूर्य के वीर्य और कुन्ती के गर्भ से पैदा होकर सूत के घर में पले थे। यही सूर्य का वह गुप्त विषय था, जिसका इशारा उन्होंने स्वप्न में कर्ण को दिया था। युधिष्ठिर को कर्ण के उस कवच और कुण्डल से ही डर था। वे जानते थे कि दिव्य कवच और कुण्डलों के प्रभाव से कर्ण मारे नहीं जा सकते।

राजन्! कर्ण दोपहर के समय स्नान करके जल से बाहर निकलकर, हाथ जोड़े हुए सूर्यदेव की आराधना करते थे। उस समय ब्राह्मण लोग धन आदि के लिए उनके पास आते थे। उस समय ऐसी कोई चीज़ न थी जिसे, माँगने पर, कर्ण ब्राह्मणों को न दे सकते हों। कर्ण के इस
व्रत को इन्द्र जानते थे। उन्होंने उसी समय, ब्राह्मण के रूप से, कर्ण के पास आकर भिक्षा माँगी। २५
कर्ण ने भी उनका स्वागत किया।

तीन सौ दस अध्याय

कर्ण का इन्द्र को कवच-कुण्डल देना

वैशम्पायन कहते हैं कि कर्ण ने ब्राह्मण के वेष में इन्द्र को आये देखकर पहले उनका स्वागत किया और फिर उनका अभिप्राय जानने के लिए पूछा—भगवन्, आप मुझसे क्या चाहते हैं? सोने के गहने पहन रही सुन्दरी स्त्री, गाँव, गाय आदि जो कुछ आप माँगें, मैं दूँगा।

ब्राह्मण ने कहा—मैं सुवर्ण के गहनों से लदी हुई सुन्दरी या और कोई प्रीति बढ़ानेवाला पदार्थ तुमसे नहीं माँगता। ये चीज़ें और किसी को देना। हे धर्मात्मा, तुम यदि अपने को सत्यव्रती मानते हो तो अपने शरीर के साथ ही उत्पन्न ये कुण्डल और कवच काटकर मुझे दे दो। हे शत्रुदमन, तुम्हारी दी हुई यही भिक्षा मैं लेना चाहता हूँ। यही मेरे लिए सबसे बढ़कर लाभ होगा।

कर्ण ने कहा—हे विप्र ! घर बनाने के लिए पृथ्वी, स्त्री, गायें, जीवन भर की जीविका के लिए खेत आदि जो कुछ आप चाहें, मैं देने को तैयार हूँ; किन्तु कवच और कुण्डल मत माँगिए।

वैशम्पायन कहते हैं—इस तरह कर्ण ने बहुत प्रार्थना की किन्तु ब्राह्मण ने और कुछ लेना स्वीकार नहीं किया। जब वे ब्राह्मण और कुछ माँगने के लिए राज़ी नहीं हुए तब कर्ण ने उनसे हँसकर कहा—ब्राह्मणदेव ! देखिए, यह कवच और ये कुण्डल अमृतमय हैं और इन्हें पहने ही
१० मैं पैदा हुआ हूँ। इनके प्रभाव से त्रिभुवन का कोई वीर मुझे मार नहीं सकता। इसी कारण मैं इन दोनों चीज़ों को नहीं देना चाहता। हे द्विजश्रेष्ठ, मैं आपको पृथ्वी भर का निष्कण्टक राज्य देता हूँ, उसे ले लीजिए। मैं यदि शरीर के साथ उत्पन्न ये कुण्डल और कवच दे दूँगा तो शत्रु मुझे मार डालेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं कि जब किसी तरह भगवान् इन्द्र और कुछ लेने को राज़ी नहीं हुए तब कर्ण ने फिर हँसकर कहा—हे देवराज, मैंने पहले ही आपको पहचान लिया था। मैं आपको आपकी माँगी हुई चीज़ें दूँगा, पर साथ ही आपसे भी कुछ लूँगा। आप देवताओं के राजा और अन्य सब प्राणियों के ईश्वर हैं; इसलिए आप भी मुझे कुछ दीजिए। जो मैं यों ही कुण्डल और कवच दे दूँगा, तो मुझे शत्रु मार डालेंगे और इससे आपकी भी हँसी होगी। इसलिए बदले में कुछ देकर आप मेरे कुण्डल और कवच ले जाइए। दूसरी तरह से मैं ये चीज़ें आप को न दूँगा।

इन्द्र ने कहा—मेरे आने से पहले ही सूर्य मेरा इरादा जान गये थे। उन्हीं ने आकर तुमसे सब हाल कह दिया होगा। अच्छा, तुम जो कहते हो वह मुझे स्वीकार है। मेरे वज्र के सिवा और जो कुछ तुम चाहो वह माँग लो।

वैशम्पायन कहते हैं कि तब कर्ण ने अपना मनोरथ पूरा होते देखकर, प्रसन्न
२० होकर, इन्द्र से वही अमोघ शक्ति माँगी। कर्ण ने कहा—हे इन्द्र, मेरे कुण्डलों और कवच के बदले में आप अपनी वह शक्ति दीजिए जो सैकड़ों शत्रुओं का युद्ध में नाश कर सकती है और कभी निष्फल नहीं जाती।

राजन्, तब इन्द्र ने दमभर सोचकर कर्ण से कहा—हे कर्ण, तुम अपने कुण्डल और कवच देकर मुझसे शक्ति ले लो। वह शक्ति मैं एक शर्त पर दूँगा। वह अमोघ शक्ति मेरे हाथ से छूटकर सैकड़ों शत्रुओं को मारती है और फिर मेरे हाथ में आ जाती है, किन्तु तुम्हारे हाथ से छूटी हुई वह शक्ति तर्जन-गर्जन करके तुम्हें मारने के लिए आ रहे प्रतापी एक ही शत्रु को मारेगी और फिर मेरे पास चली आवेगी—तुम्हारे पास न रहेगी।

कर्ण ने कहा—युद्ध में गरजकर मुझ पर हमला करनेवाले एक ही शत्रु को मैं मारना चाहता हूँ। जिससे मुझे अपने प्राणों का डर होगा उसी शत्रु पर मैं वह शक्ति चलाऊँगा।

इन्द्र ने कहा—तुम युद्ध में एक बली शत्रु को अवश्य मारोगे; किन्तु जिसे तुम मारना चाहते हो उसकी रक्षा स्वयं नारायण कृष्ण कर रहे हैं। वही नारायण, जिन्हें वेदज्ञ लोग अचिन्त्य अपराजित, यज्ञवराह कहते हैं।

कर्ण ने कहा—भगवान् कृष्ण अर्जुन की रक्षा किया करें। आप मुझे एक वीर शत्रु को मारने के लिए वह अमोघ शक्ति दीजिए। हे इन्द्र, मैं कवच और कुण्डल अपने शरीर से काटकर अभी आपको देता हूँ। किन्तु मुझे यह वर दीजिए कि शरीर से कवच और कुण्डल काटने के कारण मैं कुरूप न हो जाऊँ। ३०

इन्द्र ने कहा—तुम सत्य का पालन कर रहे हो उसी के प्रभाव से न तो तुम्हारा रूप भयानक होगा और न शरीर में घाव ही होगा। हे कर्ण, तुम्हारे पिता सूर्य का जैसा रङ्ग और तेज है वैसा ही रङ्ग और तेज फिर तुम्हें प्राप्त होगा। एक बात और कहे देता हूँ। यदि तुम और शस्त्रों के रहते, प्राण-सङ्कट उपस्थित हुए बिना, असावधान होकर यह शक्ति चलाओगे तो इससे तुम्हारी ही मृत्यु हो जायगी।

कर्ण ने कहा—हे इन्द्र! मैं सच कहता हूँ, आपकी आज्ञा के अनुसार प्राण-संकट उपस्थित होने पर ही मैं इस अमोघ शक्ति का प्रयोग करूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, इसके बाद इन्द्र से वह अग्नि के समान प्रज्वलित अमोघ शक्ति लेकर कर्ण पैनी तलवार से, अपने अङ्ग से, वह कवच काटकर अलग करने लगे। कर्ण को प्रसन्नता के साथ अपने अङ्ग से कवच काटते देखकर देवता, दानव और मनुष्य आदि सब आनन्द-सूचक सिंहनाद करने लगे। तलवार से अपना सब अङ्ग काटने पर महावीर कर्ण के चेहरे पर शिकन तक नहीं पड़ी। यह देखकर देवता लोग स्वर्ग में नगाड़े बजाते हुए उन पर फूलों की वर्षा करने लगे।

अब कर्ण ने अपने शरीर पर से वह दिव्य कवच और कुण्डल काटकर इन्द्र को दे दिये। रक्त से भीगा हुआ वह कवच और कुण्डल मिल जाने से इन्द्र का मनोरथ पूरा हो गया। इस प्रकार शरीर से काटकर कवच और कुण्डल देने के कारण ही उनका नाम 'कर्ण' पड़ गया।

इन्द्र ने इस प्रकार कर्ण को छलकर और संसार में उनका यश फैलाकर हँसते हुए मन में कहा कि पाण्डवों का काम सिद्ध हो गया। अब वे अपने लोक को चले गये। इसके बाद इन्द्र के द्वारा कर्ण के छले जाने का हाल सुनकर दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र बहुत ही व्यथित और दर्पहीन हो गये। उधर कर्ण की इस दशा का वृत्तान्त सुनकर वनवासी पाण्डवों को अपार हर्ष हुआ। ४०

जनमेजय ने कहा—भगवन्, जिस समय यह घटना हुई उस समय महाबली पाण्डव किस जगह पर थे? यह प्रिय समाचार उन्हें किसने सुनाया? बारह वर्ष बीत जाने पर फिर उन्होंने क्या किया? यह सब वृत्तान्त आप मुझसे कहिए।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, पुरुषश्रेष्ठ पाण्डव सिन्धुराज जयद्रथ को खदेड़कर जब द्रौपदी का उद्धार कर चुके, और महर्षि मार्कण्डेय के मुँह से देवताओं-ऋषियों आदि के विचित्र चरित्र
४२ विस्तार के साथ सुन चुके, तब बारह वर्ष का वनवास पूरा हो चुकने पर वे रथ, अनुचर, सारथी, आश्रित ब्राह्मण, रसोइये आदि को साथ लेकर काम्यक वन से फिर द्वैत वन में चले गये।

आरणेयपर्व

तीन सौ ग्यारह अध्याय

मृग का ब्राह्मण की 'अरणी' लेकर भाग जाना

जनमेजय ने पूछा—द्रौपदी के हरण का क्लेश पाने के बाद उन्हें जयद्रथ के हाथ से छुड़ा चुकने पर फिर पाण्डवों ने क्या किया? वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, हरी गई द्रौपदी को बड़े कष्ट से पाकर महाराज युधिष्ठिर ने काम्यक वन को छोड़ दिया; वे स्वादिष्ट फल-मूलों से भरे-पुरे, विचित्र वृक्षों से मनोहर द्वैत वन में जाकर रहने लगे। वहाँ वे नियम-व्रत-धारी होकर, नियमित रूप से केवल फल-मूल आदि खाकर, द्रौपदी के साथ रहने लगे। धार्मिकश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने द्वैत वन में रहते समय एक ब्राह्मण का काम करने में पराक्रम प्रकट करके अत्यन्त क्लेश उठाया था। इसका परिणाम अच्छा हुआ था। अब मैं वही वृत्तान्त कहता हूँ, सुनो।

एक समय उस वन में रहनेवाले एक ब्राह्मण की अरणी सहित मथने की लकड़ी (अर्थात् वे दोनों लकड़ियाँ, जिन्हें रगड़कर आग पैदा की जाती थी) एक मृग के सींगो में फँस गई। राजन्, वह मृग उस लकड़ी को लिये हुए बड़े वेग से भागा। ब्राह्मण ने जब देखा कि इस तरह मृग उसकी अरणी और मथानी को लिये भागा जा रहा है, तब वह अग्निहोत्र में विघ्न पड़ने के डर से

व्याकुल होकर जल्दी से महाराज युधिष्ठिर के पास पहुँचा। महाराज, अजातशत्रु युधिष्ठिर भाइयों के साथ वन में बैठे हुए थे। इसी समय शोक से व्याकुल उस ब्राह्मण ने उनके पास आकर
कहा—हे धर्मराज, मेरी अरणी और मथानी वृक्ष में लटकी हुई थी। एक मृग आकर उस पेड़ ११
में सींग रगड़ने लगा। दैव-योग से अरणी और मथानी उसके सींगों में फँस गई। वह तेज भागनेवाला मृग मेरे आश्रम से उछलता-कूदता, छलाँगें मारता, बहुत दूर चला गया है। आप लोग उस मृग के पैरों के चिह्न देखते हुए जाकर मेरी अरणी और मथानी ला दीजिए, जिसमें अग्नि के अभाव के कारण मेरे अग्निहोत्र में विघ्न न पड़े।

यह सुनकर महाराज युधिष्ठिर दुःखित हुए। उनको ब्राह्मण पर दया आ गई। तब उन्होंने धनुष उठाकर, भाइयों को साथ ले, उस मृग का पीछा किया। थोड़ी दूर पर वह मृग देख पड़ा। वे उसके ऊपर कर्णिक, नालीक और नाराच आदि अनेक बाण चलाने लगे; किन्तु किसी तरह उस मृग को मार न सके। मृग के शिकार के लिए पाण्डवों ने बहुत यत्न किया, पर वह बचकर निकल गया और धीरे-धीरे अदृश्य हो गया। वीर पाण्डव लोग धीरे-धीरे, उसका पीछा करते-करते थकन, भूख और प्यास से व्याकुल हो गये। तब वे उस घने जङ्गल के बीच ठण्ढी छाँहवाले एक बड़े भारी बरगद के पेड़ के नीचे बैठ गये।

अब नकुल अत्यन्त दुःख के मारे, अपनी दुर्दशा को न सह सकने के कारण, कुरुराज युधिष्ठिर से कहने लगे—राजन्, हमारे कुल में कभी आलस्य के कारण धर्म और अर्थ का नाश नहीं हुआ, [सदा धर्म के पालन और अर्थ की सिद्धि पर सबकी दृष्टि रही है।] हमने कभी प्रार्थी को विमुख नहीं
किया। फिर क्या कारण है कि हम लोग ऐसे प्राणनाशक क्लेश सह रहे हैं? २१

तीन सौ बारह अध्याय

पाण्डवों से यक्ष का संवाद। चारों भाइयों का सरोवर के तट पर निर्जीव हो गिर पड़ना

युधिष्ठिर ने कहा—भाई, आपत्तियों की न कोई सीमा है, न निमित्त-फल है और न कोई कारण है। केवल प्रारब्ध ही सुख और दुःख देता है।

भीमसेन ने कहा—जब प्रातिकामी [या दुःशासन] द्रौपदी को सभा में दासी की तरह ले आया था तब मैंने उसे मार नहीं डाला, इसी से मैं ऐसे कष्ट सह रहा हूँ।

अर्जुन ने कहा—सूतपुत्र कर्ण के कठोर मर्मभेदी वचन सुनकर भी मैं कुछ नहीं बोला, इसी से मुझे ऐसे कष्ट सहने पड़े।

सहदेव ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, जब दुष्ट शकुनि ने कपट के जुए में आपको हराया था, तब उसे न मार डालने का फल यह मैं भोग रहा हूँ।

अब राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे नकुल, तुम्हारे भाई बहुत थके और प्यासे हैं। इसलिए तुम इस पेड़ पर चढ़कर चारों ओर देखो, कहीं जल या जल के पास रहनेवाले पेड़ देख पड़ते हैं या नहीं। महावीर नकुल, बड़े भाई की आज्ञा से, पेड़ पर चढ़कर चारों ओर देखकर कहने लगे—महाराज, एक जगह पर पानी के पास रहनेवाले हरे-भरे पेड़ मुझे देख पड़ते हैं और सारस पक्षी बोल रहे हैं। इसलिए वहाँ पर अवश्य कोई जलाशय है। तब सत्यव्रत राजा युधिष्ठिर ने कहा—तो फिर तुम्हीं जल्दी वहाँ पर जाकर इन तरकसों में पानी भर लाओ।

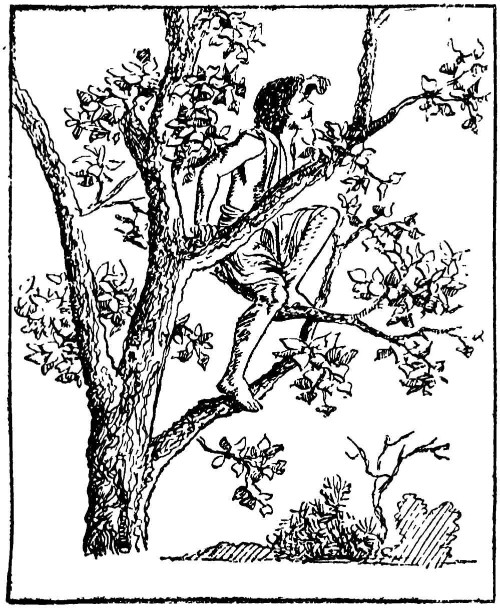

१०

बड़े भाई की आज्ञा पाकर नकुल जलाशय की तलाश में चले। जहाँ अनुमान किया था वहाँ जाने पर एक स्वच्छ जलवाला सरोवर देख पड़ा। बहुत से सारस पक्षी वहाँ कलोलें कर रहे थे। नकुल ज्योंही जल पीने को सरोवर में उतरे त्योंही आकाश से यक्ष की यह वाणी उन्हें सुन पड़ी—भैया, तुम इस सरोवर का पानी पीने का साहस न करना। मैं पहले से इस जल पर अपना अधिकार जमाए हुए हूँ। इसलिए पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो तब पानी पीना और ले जाना।

नकुल बहुत ही प्यासे थे। उसकी बात पर ध्यान न देकर ज्योंही उन्होंने वह ठण्ढा पानी पिया त्योंही वे निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

इधर नकुल को गये बहुत देर हुई तब युधिष्ठिर ने सहदेव से कहा—भैया, तुम्हारे बड़े भाई ने बड़ी देर लगा दी! तुम जाकर उन्हें ढूँढ़ो और जल ले आओ। सहदेव भी युधिष्ठिर की आज्ञा से वहाँ पर पहुँचे। नकुल की दशा देखकर उन्हें बड़ा शोक हुआ। प्यासे तो ये भी बहुत थे, चट पानी पीने के लिए सरोवर में उतर पड़े। इन्हें भी सुन पड़ा—सहदेव, तुम इस सरोवर का पानी पीने का साहस न करना। मैं पहले से ही इस पर अधिकार किये हुए हूँ। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दे लो तब पानी पीना और ले जाना। प्यास से पीड़ित सहदेव ने उन बातों की परवा न करके ज्योंही पानी पिया त्योंही वे मरकर गिर पड़े।

अब युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—अर्जुन, तुम्हारे भाइयों को गये बहुत देर हुई। तुम
जाकर उनका पता लगाओ, और जल्दी जल लाओ। तुम्हारा भला हो। तुम सदा दुःख और
सन्ताप के समय भाइयों की सहायता करते हो। बुद्धिमान् अर्जुन भी धनुष, बाण और धारदार २१
तलवार बाँधे हुए उस सरोवर के किनारे गये। वहाँ जाकर देखा कि दोनों भाई, जो जल लेने
आये थे, वहाँ मरे पड़े हैं। उनकी वह दशा देखकर अर्जुन को बड़ा दुःख हुआ। वे धनुष
पर बाण चढ़ाकर चारों ओर ताकने लगे; किन्तु उन्हें कोई प्राणी कहीं न देख पड़ा। तब थके
हुए अर्जुन ज्योंही पानी पीने को उस सरोवर में उतरे त्योंही आकाश से फिर यक्ष की यह वाणी
सुन पड़ी—हे अर्जुन, तुम क्यों पानी पीने जा रहे हो? तुम ज़बरदस्ती पानी नहीं पी सकते।
जो मेरे प्रश्नों का उत्तर दे सको तो पानी पियो और ले जाओ।

यों रोके जाने पर अर्जुन ने कहा—तुम छिपकर मना कर रहे हो; यदि सामने आकर मना
करते तो अपने बाणों से तुम्हारे टुकड़े टुकड़े कर डालता। फिर तुम मुझे मना न कर सकते।

अब प्यासे अर्जुन ने कर्णिक, नालीक, नाराच आदि अनेक बाणों से शब्दवेध-विद्या का
परिचय देते हुए दसों दिशाओं को भर दिया। यक्ष ने कहा—वृथा बाणवर्षा करने से कुछ फल ३०
न होगा। मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर जल पियो। जो ज़बरदस्ती पी लोगे तो मर जाओगे।
अर्जुन ने यक्ष का कहा न मानकर ज्योंही पानी पिया त्योंही मरकर गिर पड़े।

तब महाराज युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा—भाई! नकुल, सहदेव और अर्जुन पानी लेने
गये थे सो अभी तक नहीं लौटे। जो जाता है, लौटकर नहीं आता। अब तुम जाकर भाइयों
को खोज लाओ और जल भी लेते आओ। आज्ञा मानकर भीमसेन चले और जहाँ उनके भाई
मरे पड़े थे वहाँ पहुँचे। भाइयों की दशा देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे भी प्यास से
व्याकुल हो रहे थे। उन्होंने सोचा, किसी यक्ष या राक्षस का यह काम है। उन्होंने यह भी
समझ लिया कि आज युद्ध अवश्य करना होगा। इसलिए पानी पी लेना अच्छा समझकर वे
ज्योंही पानी पीने चले त्योंही यक्ष ने कहा—हे भीमसेन, तुम जल पीने का साहस न करना। इस
पर मेरा पहले से ही अधिकार है। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, फिर जल पियो।

वैशम्पायन कहते हैं—पराक्रमी भीमसेन ने भी यक्ष की बात पर ध्यान नहीं दिया। उसके
प्रश्नों का उत्तर दिये बिना पानी पीकर वे पृथ्वी पर गिर पड़े। चारों भाई जब वहीं रह गये तब ४०
युधिष्ठिर को बड़ी चिन्ता हुई। अब वे भी उस निर्जन, रुरु-मृग-वराह और पक्षियों से सेवित, विचित्र
वृक्षों से मनोहर, भ्रमरों के शब्द से रमणीय महावन में घुसे। वन के भीतर उन्होंने एक सरोवर देखा।
उसके चारों ओर सिन्धुवार, वेतस, केतकी, कनैर, पीपल आदि के बड़े और घने पेड़ लगे थे। उन्हें
जान पड़ा, मानों विश्वकर्मा ने उस सरोवर का दृश्य बनाया है। बहुत थके हुए होने पर भी युधिष्ठिर
किनारे पर पहुँच गये परन्तु वहाँ भाइयों की दशा देखकर उनके होश उड़ गये। ४५

तीन सौ तेरह अध्याय

धर्मराज युधिष्ठिर से प्रश्न और उत्तर

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, धर्मराज युधिष्ठिर ने सरोवर के किनारे पहुँचकर देखा कि उनके इन्द्रतुल्य भाई, प्रलयकाल में अपने लोकों से गिरे लोकपालों की तरह, पृथ्वी पर मरे पड़े हैं। अर्जुन का धनुष और बाण सब इधर-उधर पड़े थे। भीमसेन, नकुल और सहदेव की भी वही दशा थी। वे धरती पर निर्जीव पड़े थे। यह देखकर युधिष्ठिर चिन्ता से व्याकुल हो गये। वे आँखों से आँसू बहाते और लम्बी साँसें लेते हुए यों विलाप करने लगे—हे महाबाहु भीमसेन, तुमने युद्ध में गदा की चोट से दुर्योधन की जाँघें तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी। कुरुकुल की कीर्त्ति बढ़ानेवाले वीर और महात्मा तुम मरे पड़े हो। अब उस प्रतिज्ञा को कौन पूरा करेगा? मनुष्यों की बातें अक्सर झूठी हो जाती हैं परन्तु तुम लोगों की प्रतिज्ञाएँ कैसे झूठी हो गईं? हाय! अर्जुन, तुम्हारा जब जन्म हुआ था तब देवताओं ने माता से कहा था कि हे कुन्ती, तुम्हारा यह पुत्र इन्द्र से किसी बात में कम न होगा। भाई, तुम्हारे जन्म के समय उत्तर-पारियात्र पर्वत के निवासियों ने कहा था कि

यह बालक खोई हुई राजलक्ष्मी को अपने पराक्रम से प्राप्त करेगा। युद्ध में कोई इसे नहीं जीत सकेगा; यह सबको जीत लेगा। हाय, आज वही महाबली अर्जुन कैसे मृत्यु के वश हो
१० गये! ये अर्जुन आज मेरी आशाओं को मिट्टी में मिलाकर पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। हम सब भाइयों ने इन्हीं के भरोसे इतने दुःख सहे हैं। जो महाबली वीर सदा शत्रुओं का नाश करते थे, वे भीमसेन और अर्जुन आज कैसे शत्रु के वश होकर मर गये! इन्हें तो कोई भी अस्त्र नहीं मार सकता था। दोनों भाइयों—नकुल और सहदेव—को इस तरह पृथ्वी पर पड़े देखकर भी मुझ अभागे का हृदय फट नहीं जाता, इससे जान पड़ता है कि वह पत्थर का बना हुआ है। भाइयो, तुम सब पुरुषश्रेष्ठ शास्त्रज्ञ, देश और काल की जानकारी रखनेवाले, तपस्वी और अच्छे कर्म

करनेवाले होकर भी कैसे अपने योग्य कर्म किये बिना ही इस तरह पृथ्वी पर पड़े सो रहे हो ? तुम्हारे शरीर में कोई घाव भी नहीं देख पड़ता, तुमने धनुष में हाथ भी नहीं लगाया, फिर तुम किसी से न हारनेवाले लोग पृथ्वी पर इस तरह संज्ञाहीन होकर क्यों पड़े हो ?

फटकर गिरे हुए पर्वतशिखरों के समान अपने भाइयों को इस प्रकार सुख की नींद सोते देखकर महाबुद्धिमान् युधिष्ठिर बहुत दुःखित और शोक से व्याकुल हुए। उनके शरीर से पसीना बह चला। अब धर्मराज मन में भाइयों की मृत्यु के कारण को सोचने लगे। पर वे देश-कालज्ञ होने पर भी कुछ कर्त्तव्य का निश्चय न कर सके। फिर अपने चित्त को कुछ शान्त और स्थिर करके धर्मात्मा युधिष्ठिर सोचने लगे कि इन वीरों को किसने मारा। इनके शरीर पर न २०
तो कोई शस्त्र के प्रहार का चिह्न है और न यहाँ पर किसी के पैरों का कोई चिह्न ही देख पड़ता है। जान पड़ता है, किसी अलौकिक महाप्राणी ने इनका वध किया है। एकाग्र होकर मुझे इस पर विचार करना चाहिए। अथवा इस जल में ही ऐसी कोई बात हो, इसलिए मैं भी जल पियूँ तो सब हाल मालूम हो जाय। जान पड़ता है, दुष्टबुद्धि दुर्योधन ने गान्धारराज कपटी शकुनि की सहायता से मारण-विधि के द्वारा यह सरोवर बनवाया है। वह दुष्कर्मा कार्य या अकार्य का कुछ विचार नहीं रखता। ऐसा कोई कुकर्म नहीं है, जिसे वह न कर सकता हो। उस पर कौन विश्वास करेगा ? अथवा उसने अपने छिपे हुए आदमियों के द्वारा इस सरोवर के जल में विष मिलवा दिया होगा। परन्तु इस जल में यदि विष मिला होता और उससे इनकी मृत्यु हुई होती तो इनके शरीर में कुछ विकार अवश्य देख पड़ता। मरने पर भी इनके चेहरे वैसे ही प्रसन्न देख पड़ते हैं। विष से मृत्यु होती तो स्याही दौड़ जाती। इससे जान पड़ता है कि यम के सिवा और किसी का यह काम नहीं है। इन महाबली पाण्डवों से और कोई युद्ध नहीं कर सकता।

इस प्रकार निश्चय करके युधिष्ठिर भी उस सरोवर में उतरे। जैसे ही उन्होंने पानी पीना चाहा वैसे ही आकाश से यक्ष के ये वचन सुन पड़े—हे राजपुत्र, मैं सेवार और मछली खानेवाला बगला हूँ। मैंने ही तुम्हारे भाइयों की जान ली है। यदि मेरे प्रश्नों का उत्तर दिये बिना जल पियोगे तो इन चारों की तरह पाँचवें तुम भी मर जाओगे। इसलिए हे कुन्तीपुत्र, साहस न करना। मैं पहले ही इस जल पर अधिकार कर चुका हूँ। मेरे प्रश्नों का उत्तर दे लो, फिर पानी पियो। ३०

युधिष्ठिर ने कहा—यह काम पक्षी कभी नहीं कर सकता। सच बताओ, तुम रुद्र, वसु, मरुद्गण आदि देवताओं में से कौन प्रधान देवता हो ? हिमालय, पारियात्र, विन्ध्याचल और मलयाचल के समान इन पराक्रमी और तेजस्वी पुरुषों को किसने गिरा दिया है ? जो तुम्हारी यह लीला है तो तुमने बड़ा दुष्कर काम किया और तुम सब बली प्राणियों से बढ़कर हो। देवता, गन्धर्व, असुर राक्षस आदि कोई भी युद्ध में जिनका सामना नहीं कर सके उन्हीं को

गिराकर तुमने बड़ा अद्भुत काम किया। मुझे नहीं मालूम कि तुम क्या करना चाहते हो और तुम्हारा अभिप्राय क्या है। उसे जानने के लिए मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। भाइयों की मृत्यु से मैं डरा और घबराया हुआ हूँ। मेरे सिर में दर्द हो गया है। भगवन्, मैं तुमसे पूछता हूँ, बताओ, तुम कौन यहाँ पर रहते हो?

४०

यक्ष ने कहा—तुम्हारा भला हो। मैं यक्ष हूँ; जलचर पक्षी बगला नहीं हूँ। मना करने पर नहीं माने तब मैंने ही तुम्हारे इन भाइयों की जान ले ली है।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, यक्ष के अशुभ कठोर वचन सुनकर युधिष्ठिर तनिक भी नहीं डरे। इसी बीच में उन्हें वह पर्वताकार, ताड़ के पेड़ बराबर ऊँचा, विरूप नेत्रों से भयङ्कर, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी, दुर्द्धर्ष यक्ष एक वृक्ष के ऊपर देख पड़ा। वह यक्ष मेघ के समान गरजकर गम्भीर स्वर में कहने लगा—राजन्, मेरे बार-बार मना करने पर भी तुम्हारे भाइयों ने बलपूर्वक पानी लेना चाहा था, इसी से मैंने इनकी यह दशा कर दी। यदि तुम जीते रहना चाहते हो तो जल पीने का साहस न करना। क्योंकि, मैं इस जल पर पहले से ही अधिकार जमा चुका हूँ। हाँ, मेरे प्रश्नों का उत्तर दे सको तो उत्तर देने के बाद जल पियो और ले जाओ।

युधिष्ठिर ने कहा—यक्ष, तुम्हारा जिस पर अधिकार हो चुका है उस पर अधिकार करने की इच्छा मुझे नहीं है। सज्जन लोग अपने मुँह से अपनी बड़ाई नहीं करते। किन्तु तुम प्रश्न करो, मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उनका उत्तर दूँगा।

यक्ष ने पूछा—सूर्य* को कौन ऊपर उठाता है? सूर्य के चारों ओर भ्रमण करनेवाले कौन हैं? कौन सूर्य को अस्त करता है और किसमें वह स्थित है?

युधिष्ठिर ने कहा—ब्रह्म सूर्य को ऊपर उठाते हैं। देवता† उनके चारों ओर भ्रमण करते हैं। धर्म से वे अस्तगत होते हैं और सत्य में स्थित हैं।

* सूर्य = जीवात्मा। † देवता = शम, दम आदि।

यक्ष ने पूछा—मनुष्य किससे श्रोत्रिय होता है? काहे से महत् पदार्थ पाता है? किससे सहायकयुक्त और बुद्धिमान् होता है?

युधिष्ठिर ने कहा—आचार्य के मुँह से वेदार्थ-निश्चय करने से श्रोत्रिय होता है। तप (ज्ञान) से महत् पदार्थ को पाता है। धैर्य से सहायकयुक्त और वृद्धों की सेवा से बुद्धिमान् होता है।

यक्ष ने पूछा—ब्राह्मणों का देवभाव क्या है? उनकी कौन बात सज्जनों की सी है? उनका मनुष्यभाव क्या है? उनकी कौन बात असाधुओं की सी है?

युधिष्ठिर ने कहा—स्वाध्याय ब्राह्मणों का देवभाव है। तप उनकी सज्जनों की सी बात है।
मरण उनका मनुष्यभाव है। निन्दा उनकी असाधुओं की सी बात है। ५०

यक्ष ने पूछा—क्षत्रियों का देवभाव, मनुष्यभाव, साधुभाव और असाधुभाव क्या है?

युधिष्ठिर ने कहा—क्षत्रियों का देवभाव अस्त्र-शस्त्रों का व्यवहार है। डरना मनुष्यभाव है। यज्ञ करना साधुभाव है और दुखियों की रक्षा से विमुख होना असाधुभाव है।

यक्ष ने पूछा—यज्ञ का साम क्या है? यज्ञ का यजुः क्या है? यज्ञ का वरण करनेवाला क्या है? यज्ञ किसका अतिक्रमण नहीं करता?

युधिष्ठिर ने कहा—प्राण यज्ञ का साम है। मन यज्ञ का यजुः है। ऋक् यज्ञ का वरण करती है और यज्ञ उसका अतिक्रमण नहीं करता।

यक्ष ने पूछा—बोनेवालों के लिए क्या श्रेष्ठ है? काटनेवालों के लिए क्या श्रेष्ठ है? एक स्थान पर रहनेवालों के लिए क्या श्रेष्ठ है? उत्पन्न करनेवालों के लिए क्या श्रेष्ठ है?

युधिष्ठिर ने कहा—बोनेवालों के लिए वर्षा श्रेष्ठ है। काटनेवालों के लिए बीज श्रेष्ठ है। एक स्थान पर रहनेवालों के लिए गाय श्रेष्ठ है और उत्पन्न करनेवालों के लिए पुत्र श्रेष्ठ है।

यक्ष ने पूछा—कौन मनुष्य इन्द्रियों के विषयों का अनुभव करने में समर्थ, बुद्धिमान्, लोकपूजित और सब प्राणियों का सम्मत होकर श्वास लेने पर भी मुर्दे के बराबर है?

युधिष्ठिर ने कहा—जो पुरुष इन सब बातों के होने पर भी देवता, अतिथि, भृत्य, पितर और आत्मा, इन पाँच की पूजा नहीं करता—इन्हें अन्न नहीं देता—वह जीवित भी मुर्दे के बराबर है।

यक्ष ने पूछा—पृथ्वी से भी अधिक किसका गौरव है? आकाश से भी अधिक उच्च कौन है? वायु से भी अधिक शीघ्रगामी कौन है? तिनकों से भी अधिक असंख्य कौन है?

युधिष्ठिर ने कहा—माता का गौरव पृथ्वी से भी अधिक है। पिता आकाश से भी उच्च है। मन
वायु से भी अधिक शीघ्रगामी है। चिन्ता तिनकों से भी अधिक असंख्य और अनन्त है। ६०

यक्ष ने पूछा—सोने पर भी आँखें कौन नहीं मूँदता? उत्पन्न होकर भी कौन हिलता-डुलता नहीं? किसके हृदय नहीं है? कौन वेग से बढ़ता है?

युधिष्ठिर ने कहा—मछली सोने पर भी आँखें नहीं मूँदती। अण्डा उत्पन्न होकर भी हिलता-डुलता नहीं है। पत्थर के हृदय नहीं है। नदी वेग से बढ़ती है।

यक्ष ने पूछा—प्रवासी का मित्र कौन है? गृहवासी का मित्र कौन है? बीमार का कौन मित्र है? मर रहे आदमी का मित्र कौन है? हे राजेन्द्र, सब प्राणियों का अतिथि कौन है? सनातन धर्म क्या है? अमृत क्या है? यह सब जगत् क्या है?

युधिष्ठिर ने कहा—प्रवासी का मित्र साथी है। गृहवासी का मित्र भार्या है। बीमार का मित्र वैद्य है। मर रहे आदमी का मित्र दान है। अग्नि सब प्राणियों के अतिथि हैं। ज्ञानयोग सनातन धर्म है। गाय का दूध अमृत है। वायु यह सब जगत् है।

यक्ष ने पूछा—कौन अकेले विचरता है? कौन बारम्बार जन्म लेता है? हिम की दवा क्या है? बोने की प्रधान जगह क्या है?

युधिष्ठिर ने कहा—सूर्य अकेले विचरते हैं। चन्द्रमा बारम्बार जन्म लेते हैं। अग्नि हिम की दवा है। बोने की प्रधान जगह पृथ्वी है।

यक्ष ने पूछा—धर्म का अन्तिम स्थान क्या है? यश की चरम सीमा क्या है? स्वर्ग और सुख का एकमात्र आश्रय क्या है?

युधिष्ठिर ने कहा—सबके अनुकूल रहना, किसी की बुराई न करना, धर्म का
७० अन्तिम स्थान है। दान यश की चरम सीमा है। सत्य स्वर्ग का और स्वभाव या चरित्र सुख का एक मात्र आश्रय है।

यक्ष ने पूछा—मनुष्य का आत्मा क्या है? दैव-विहित सखा कौन है? उपजीविका और प्रधान आश्रय क्या है?

युधिष्ठिर ने कहा—पुत्र मनुष्य का आत्मा है। स्त्री दैव-विहित सखा है। मेघ उपजीविका है और दान प्रधान आश्रय है।

यक्ष ने पूछा—जितनी बातें धन्य समझी जाती हैं उनमें उत्तम क्या है? उत्तम धन क्या है? उत्तम लाभ क्या है? उत्तम सुख क्या है?

युधिष्ठिर ने कहा—सबके अनुकूल रहना ही धन्य बातों में उत्तम है। शास्त्र का ज्ञान उत्तम धन है। आरोग्य उत्तम लाभ है। सन्तोष उत्तम सुख है।

यक्ष ने पूछा—प्रधान धर्म क्या है? कौन धर्म सदा फलदायक होता है? किसका संयम करने से शोक नहीं रहता? किसके साथ मेल करने से फिर बिगाड़ नहीं होता?

युधिष्ठिर ने कहा—आनृशंस्य (दया) प्रधान धर्म है। वैदिक धर्म (यज्ञ आदि) सदा फलदायक होता है। मन का संयम करने से शोक नहीं करना पड़ता। साधु पुरुषों से मेल करने पर भी बिगाड़ नहीं होता।

यक्ष ने पूछा—क्या छोड़ देने से मनुष्य सबको प्रिय होता है? क्या छोड़ देने से शोक दूर हो जाता है? क्या छोड़ देने से मनुष्य सम्पन्न और सुखी होता है?

युधिष्ठिर ने कहा—अभिमान छोड़ देने से मनुष्य सबको प्यारा होता है। क्रोध का त्याग करने से शोक दूर हो जाता है। कामना का त्याग करने से सम्पन्न और लोभ छोड़ देने से मनुष्य सुखी होता है।

यक्ष ने पूछा—ब्राह्मण, नट, नचैये, सेवक और राजा को धन देने की क्या आवश्यकता है?

युधिष्ठिर ने कहा—धर्म के लिए ब्राह्मणों को, यश के लिए नटों और नचैयों को, भरण-पोषण के लिए सेवकों को और डर के लिए राजा को धन दिया जाता है। ८०

यक्ष ने पूछा—सब लोग काहे से आवृत (ढके हुए) और अप्रकाशित रहते हैं? लोग किसलिए मित्रों को छोड़ देते हैं? और, किस बात से स्वर्ग को नहीं जाते?

युधिष्ठिर ने कहा—सब लोग अज्ञान से आवृत और तमोगुण से अप्रकाशित रहते हैं? लोग लोभ के कारण मित्रों को छोड़ देते हैं और सङ्ग में फँस जाने से स्वर्ग को नहीं जाते।

यक्ष ने पूछा—मृत पुरुष कौन है? मृत राष्ट्र कौन है? मृत श्राद्ध कौन है? और, मृत यज्ञ कौन है?

युधिष्ठिर ने कहा—दरिद्र पुरुष मृत है। बिना राजा का राष्ट्र मृत है। श्रोत्रिय से हीन श्राद्ध मृत है। दक्षिणा से हीन यज्ञ मृत है।

यक्ष ने पूछा—दिशा क्या हैं? जल क्या है? अन्न क्या है? विष क्या है? श्राद्ध का समय क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर देकर जल पियो और ले जाओ।

युधिष्ठिर ने कहा—साधु लोग दिशाएँ हैं। आकाश ही जल है। धेनु ही अन्न है। प्रार्थना अर्थात् किसी से कुछ माँगना ही विष है। सत्पात्र ब्राह्मण का मिल जाना ही श्राद्ध का समय है।

यक्ष ने पूछा—तप, दम, क्षमा और लज्जा का लक्षण क्या है?

युधिष्ठिर ने कहा—अपने धर्म का पालन करते रहना ही तप है। मन का दमन ही दम है। जाड़ा-गर्मी आदि द्वन्द्वों को सहना ही क्षमा है और कुकर्म से बचे रहना ही लज्जा है।

यक्ष ने पूछा—ज्ञान, शम, दया और आर्जव के लक्षण क्या हैं?

युधिष्ठिर ने कहा—तत्त्वार्थ का बोध ही ज्ञान है। चित्त का शान्त रहना ही शम है। सबके सुखी रहने की इच्छा दया है। समचित्त होना ही आर्जव है। ९०

यक्ष ने पूछा—मनुष्य का दुर्जय शत्रु कौन है? अनन्त व्याधि क्या है? साधु कौन है? असाधु कौन है?

युधिष्ठिर ने कहा—क्रोध दुर्जय शत्रु है। लोभ अनन्त व्याधि है। सब प्राणियों का हित करनेवाला साधु है। दयाहीन पुरुष असाधु है।

यक्ष ने पूछा—राजन् ! मोह, मान, आलस्य और शोक क्या है ?

युधिष्ठिर ने कहा—धर्ममूढ़ता (धर्म के विषय में अनभिज्ञता) ही मोह है। आत्माभिमान ही मान है। धर्माचरण न करना ही आलस्य है। अज्ञान ही शोक है।

यक्ष ने पूछा—ऋषियों ने स्थिरता, धैर्य, स्नान और दान किसे कहा है ?

युधिष्ठिर ने कहा—अपने धर्म में दृढ़ता ही स्थिरता है। इन्द्रियनिग्रह ही धैर्य है। मन के मैल को मिटाना ही स्नान है। प्राणियों की रक्षा ही दान है।

यक्ष ने पूछा—पण्डित कौन है ? नास्तिक कौन है ? मुर्ख कौन है ? काम क्या है ? मत्सर क्या है ?

युधिष्ठिर ने कहा—धार्मिक पुरुष पण्डित है। मुर्ख ही नास्तिक है। संसार (जन्म-मरण) का कारण ही काम है और मन में कुढ़ना ही मत्सर है।

यक्ष ने पूछा—अहङ्कार क्या है ? दम्भ क्या है ? दैव क्या है ? पिशुनता क्या है ?

युधिष्ठिर ने कहा—महा अज्ञान ही अहङ्कार है। दिखावे के लिए धर्म का ढोंग रचना दम्भ
१०० है। दान का फल दैव है। दूसरों को दोष लगाना पिशुनता है।

यक्ष ने पूछा—धर्म, अर्थ और काम परस्पर-विरोधी हैं। इन तीनों परस्पर-विरोधियों का एकत्र समावेश कैसे होता है ?

युधिष्ठिर ने कहा—जब धर्म और भार्या, दोनों परस्पर वशवर्त्ती और सहायक होते हैं, तभी इन तीनों परस्पर-विरुद्ध बातों का एकत्र समावेश होता है।

यक्ष ने पूछा—राजन्, कौन सा काम करने से मनुष्य को अनन्त नरक में रहना पड़ता है ? मेरे इस प्रश्न का उत्तर शीघ्र दो।

युधिष्ठिर ने कहा—कुछ माँगनेवाले दरिद्र ब्राह्मण को बुलाकर पीछे से 'नहीं' कहकर जो विमुख कर देता है उसे अनन्त नरक में रहना पड़ता है। जो पुरुष वेद, शास्त्र, ब्राह्मण, देवता और बाप-दादे के धर्म को झूठा सिद्ध करता है वह अक्षय नरक को जाता है। जो धन के रहने पर भी लोभ के वश होकर न तो दान करता है और न आप भोग करता है, और कुछ देने का वादा करके पीछे नाहीं कर जाता है वह अक्षय नरक को जाता है।

यक्ष ने पूछा—कुल, चरित्र, स्वाध्याय और श्रुत आदि में कौनसी बात ब्राह्मणत्व का कारण है ?

युधिष्ठिर ने कहा—कुल, स्वाध्याय या श्रुत के ऊपर ब्राह्मणत्व नहीं निर्भर है। चरित्र ही ब्राह्मणत्व का कारण है। इसलिए ब्राह्मण को विशेष रूप से चरित्र की ही रक्षा करनी चाहिए। चरित्र जब तक नष्ट नहीं होता तब तक कुछ भी न हो तो भी ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व बना रहता है। किन्तु चरित्र में बट्टा लगते ही ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है। जो ब्राह्मण केवल पढ़ते-पढ़ाते हैं,

या केवल शास्त्रों को देखा करते हैं वे सब मूर्ख हैं, उनका वैसा करना केवल एक व्यसन है। जो ब्राह्मण क्रियावान् है वही पण्डित है। दुराचारी ब्राह्मण चारों वेद पढ़े हो तो भी वह शूद्र से भी गया-बीता १०
है। जो मन को मारकर अग्निहोत्र आदि अपने कर्म करता है वही ब्राह्मण है।

यक्ष ने पूछा—प्रिय वचन बोलनेवाला क्या पाता है? विचारकर काम करनेवाला क्या पाता है? बहुत मित्रोंवाले को क्या मिलता है? धर्मात्मा पुरुष क्या पाता है?

युधिष्ठिर ने कहा—प्रियवादी पुरुष सबका प्रेम पाता है। विचारकर काम करनेवाला दिन-दिन अभ्युदय और विजय पाता है। बहुत मित्रोंवाला व्यक्ति सुख से रहता है। धर्मात्मा पुरुष को सद्गति प्राप्त होती है।

यक्ष ने पूछा—कौन सदा आनन्द पाता है? आश्चर्य क्या है? मार्ग क्या है? वार्ता (जानने योग्य समाचार) क्या है? मेरे इन चारों प्रश्नों का ठीक उत्तर दो तो तुम्हारे मरे हुए चारों भाई जी उठें।

युधिष्ठिर ने कहा—जो पुरुष न तो ऋणी है और न परदेश में पड़ा है, वह चाहे अपने घर में पाँचवें या छठे दिन साग-पात भी पकाकर खाता हो, तो भी वही सदा आनन्द का अनुभव करता है। प्राणी नित्य मरते हैं, जो बचे हुए हैं वे यह देखकर भी सदा जीते रहने की इच्छा करते हैं, इससे बढ़कर और आश्चर्य क्या होगा? हे यक्ष, तर्क की कोई स्थिरता नहीं है (हर एक तर्क प्रबल तर्क से काटा जा सकता है), श्रुतियाँ भी जुदी-जुदी हैं, मुनि भी एक नहीं हैं जिनके वचन का प्रमाण माना जाय। धर्म का तत्त्व गुफा में निहित है अर्थात् अत्यन्त गूढ़ है। इसलिए राह वही है जिससे बड़े लोग और महापुरुष चले हैं। काल पृथ्वी-पात्र में आकाश का ढकना बन्द करके, रात-दिन के ईंधन में सूर्य की आग जलाकर, मास-ऋतु-रूपी डोई चलाकर सब प्राणियों को पकाता है, अर्थात् जीर्ण करता है, यही जानने योग्य वार्ता है।

यक्ष ने कहा—हे शत्रुदमन, तुमने मेरे सब प्रश्नों का उत्तर दे दिया। अब यह बताओ कि पुरुष कौन है? और, सबसे बढ़कर धनी कौन है?

युधिष्ठिर ने कहा—पुण्य-कर्म करने से मनुष्य की कीर्त्ति स्वर्ग तक पहुँचती है और पृथ्वी पर व्याप्त होती है। वह कीर्त्ति जब तक बनी रहती है तब तक वह पुण्यात्मा पुरुष कहलाता है। हे यक्ष, जो पुरुष भूत और भविष्य को, सुख और दुःख को, प्रिय और अप्रिय को समान २०
समझता है, वही सबसे बढ़कर धनी है।

यक्ष ने कहा—राजन्, तुमने पुरुष और धनी के लक्षण बता दिये, इसलिए तुम इन भाइयों में से जिस एक को चाहो वह जी सकता है।

युधिष्ठिर ने कहा—हे यक्ष! ये साँवले, अरुण नेत्रों और चौड़ी छातीवाले, महाबाहु नकुल जीकर शालवृक्ष की तरह उठ खड़े हों।

यक्ष ने पूछा—राजन्, तुम दस हज़ार हाथियों के बलवाले, बहुत ही प्यारे भाई भीमसेन या सब पाण्डवों में श्रेष्ठ और सबके आश्रयदाता अर्जुन को छोड़कर नकुल को जिलाने के लिए क्यों इतने व्यग्र देख पड़ते हो?

युधिष्ठिर ने कहा—धर्म का नाश होने से वह नाश करनेवालों को भी नष्ट कर डालता है। ऐसे ही धर्म की रक्षा करने से वह भी रक्षा करनेवाले की रक्षा करता है। इसलिए मैं धर्म को कभी न छोड़ूँगा। धर्म का त्याग मैं इसलिए नहीं करता, जिसमें वह हम लोगों को नष्ट न कर दे। हे यक्ष, ओछेपन को छोड़ देना ही परम धर्म और परमार्थ है। मैं यही समझता हूँ। मैं उदार भाव धारण करता हूँ। इसलिए नकुल जी उठें। सब मनुष्य मुझे धर्मात्मा जानते हैं। मैं अपने धर्म से नहीं
३० डिगूँगा। नकुल जी उठें। कुन्ती और माद्री दोनों मेरी माता हैं। मैं चाहता हूँ कि दोनों के पुत्र बने रहें। इसलिए आप नकुल को जिलाकर दोनों को पुत्रवती बनावें।

यक्ष ने कहा—तुम अर्थ और काम के विषयों में उदार हो; इसलिए हे भरतश्रेष्ठ, तुम्हारे
११३ चारों भाई अभी जी उठें।

तीन सौ चौदह अध्याय

यक्ष के अनुग्रह से चारों पाण्डवों का जी उठना

वैशम्पायन कहते हैं—तब यक्ष के यों कहते ही युधिष्ठिर के चारों भाई जीकर उठ खड़े हुए। उनकी भूख और प्यास भी दूर हो गई। राजा युधिष्ठिर ने अपराजित यक्ष को सरोवर में एक पग से खड़े देखकर कहा—भगवन्, आप कौन हैं? आप तो मुझे यक्ष नहीं जान पड़ते। इसमें सन्देह नहीं कि आप वसु, रुद्र और मरुद्गण में प्रधान अथवा देवराज इन्द्र होंगे। नहीं तो आपके द्वारा ऐसी अद्भुत घटना का होना सम्भव न था। इस पृथ्वी पर ऐसा योद्धा कौन है, जो इन सैकड़ों-हज़ारों योद्धाओं से लड़नेवाले मेरे भाइयों को मारकर गिरा सके? मेरे भाई सुख से सोये हुए पुरुष की तरह जाग उठे हैं, इनकी इन्द्रियों में किसी तरह का विकार नहीं देख पड़ता। इससे जान पड़ता है, आप हमारे कोई शुभचिन्तक या पिता होंगे।

यक्ष ने कहा—तात, मैं तुम्हारा पिता धर्म हूँ। तुम्हें बताने के लिए यहाँ आया था। यश, सत्य, दम, शौच, सरलता, लोकलज्जा, धैर्य, दान, तप और ब्रह्मचर्य मेरा शरीर है; अहिंसा, समता, शान्ति, तप, शौच और ईर्ष्या का न होना मेरी इन्द्रियाँ हैं। हे युधिष्ठिर, तुम मेरे पुत्र और मुझे बहुत प्यारे हो। बड़ी ख़ुशी की बात है कि तुम शम, दम, तितिक्षा, एकाग्रता और उपरति, इन पाँच आत्मज्ञान के साधनों में अनुरक्त हो। तुमने भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्यु को जीत लिया है। मैं तुम्हारी परीक्षा लेने आया था। इस समय तुम्हारे उदार धर्म को देखकर मैं
१० बहुत प्रसन्न हुआ। तुम्हारा भला हो, तुम मुझसे वरदान माँगो। जो कोई मेरा भक्त और अनुगत है, उसे कभी दुर्गति नहीं भोगनी पड़ती।

युधिष्ठिर ने कहा—ब्राह्मण की अरणी और मथानी लेकर मृग भाग गया था। उस ब्राह्मण के अग्निहोत्र की आग न बुझे, यही मैं पहला वर माँगता हूँ।

धर्म ने कहा—हे युधिष्ठिर, मैं तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए मृग का रूप रखकर ब्राह्मण की अरणी और मथानी ले गया था। वह अरणी और मथानी मैं तुमको देता हूँ। अब हे देवतुल्य, तुम और वर मुझसे माँगो।

युधिष्ठिर ने कहा—मैं बारह वर्ष वन में बिता चुका, अब तेरहवाँ अज्ञातवास का वर्ष आ पहुँचा है। मैं दूसरा वर यह माँगता हूँ कि इस वर्ष में कोई मनुष्य न तो हमें पहचान सके और न किसी तरह हम लोगों का पता लगा सके।

भगवान् धर्म ने 'यह वर भी दिया' कहने के उपरान्त युधिष्ठिर को आश्वास देते हुए कहा—पुत्र, तुम लोग छद्मवेष न रखकर भी चाहे सारी पृथ्वी पर घूमते रहो, किन्तु तीनों लोकों में कोई तुमको पहचान नहीं सकेगा। हे पाण्डवो, मेरी कृपा से तुम लोग विराट राजा की नगरी में अज्ञात-वास करते हुए सुख से रहोगे। तुममें से जो जिस वेष को रखना चाहेगा वह सहज ही उस वेष को रख सकेगा। यह अरणी और मथानी उस ब्राह्मण को दे दो। मैं तुम्हारी परीक्षा के लिए मृग का रूप रखकर इसे हर ले गया था। हे प्रियदर्शन युधिष्ठिर, तुम मेरे पुत्र हो, और विदुर मेरे अंश से उत्पन्न हुए हैं। तुमको वर देकर मेरा जी नहीं भरता, इसलिए और वर माँगो।

युधिष्ठिर ने कहा—हे देवदेव, आप साक्षात् सनातन देव और मेरे पिता हैं। आपके दर्शन मुझे मिल गये; इसी से मैं कृतार्थ हो गया। अब आप प्रसन्न होकर जो वर मुझको देंगे, उसे मैं ले लूँगा। मैं आपसे फिर यही माँगता हूँ कि लोभ, क्रोध और मोह मुझे अपने वश में न कर सकें। तप, दम, दान और सत्य पर सदा मेरा प्रेम बढ़ता ही रहे।

धर्म ने कहा—युधिष्ठिर, तुममें स्वभाव से ही ये सब सद्गुण विद्यमान हैं। फिर भी तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैं तुमको वर देता हूँ कि तुम विशेष रूप से इन गुणों से भूषित रहोगे।

वैशम्पायन कहते हैं—लोकरक्षक भगवान् धर्म इतना कहकर वहीं अन्तर्द्धान हो गये। सुख से सोये हुए पुरुष की तरह पाण्डव भी युधिष्ठिर के साथ अपने आश्रम में पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने ब्राह्मण को उसकी अरणी और मथानी दे दी।

जो पुरुष पाण्डवों के मरकर जीने की कथा और धर्म के साथ धर्मपुत्र की कीर्त्ति बढ़ानेवाला संवाद पढ़ता है वह जितेन्द्रिय होकर सौ वर्ष तक जीता है और पुत्र-पौत्र पाकर सुखी होता है। इस
१९ उपाख्यान को जाननेवाले पुरुषों का मन अधर्म में, मित्रों को फोड़ने में, पराया धन और पराई स्त्री लेने में या और नीच कार्यों में कभी नहीं लगता।

तीन सौ पन्द्रह अध्याय

पाण्डवों का अज्ञातवास के लिए उद्योग

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, अब सत्यपराक्रमी पाण्डव लोग धर्म की आज्ञा के अनुसार तेरहवें वर्ष में अज्ञातवास करने का विचार करने लगे। वनवास में अपने साथ रहनेवाले तपस्वियों के पास बैठकर, उनसे आज्ञा लेने की इच्छा से, हाथ जोड़कर पाण्डव-श्रेष्ठ युधिष्ठिर कहने लगे—हे मुनियो, धृतराष्ट्र के पुत्रों ने जिस तरह छल करके हमारा राज्य हर लिया है और हमारे साथ जैसा बुरा व्यवहार किया है सो सब आप लोगों को अच्छी तरह मालूम है। उन्हीं के कारण हमें बारह वर्ष तक वन में रहकर कष्ट भोगने पड़े हैं। इस समय तेरहवाँ वर्ष आ गया। इसमें हमें, प्रतिज्ञा के अनुसार, अज्ञातवास करना पड़ेगा। इसलिए आप लोग हमें आज्ञा दीजिए। दुरात्मा दुर्योधन, शकुनि और कर्ण जो हमारा पता पा जायँगे तो महाअनर्थ हो जायगा। हमारे साथ उनका वैर दृढ़ हो गया है। नगरवासियों और हमारे आत्मीयों ने भी उन्हीं का पक्ष ले रक्खा है। हे ब्राह्मणो, हम क्या फिर अपने राज्य को पाकर आप लोगों के साथ एक जगह रह सकेंगे?

यों कहते-कहते धर्मराज युधिष्ठिर शोक से विह्वल और मूर्च्छित से होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उनकी आँखों में आँसू भर आये। तब उनके भाइयों ने उनको उठाया और ब्राह्मण लोग उन्हें दिलासा देने लगे।

पुरोहित धौम्य ने युधिष्ठिर से इस प्रकार अर्थपूर्ण और युक्तिसङ्गत वचन कहे—राजन्! आप १०
विद्वान्, जितेन्द्रिय, धीर और सत्यवादी हैं। आपके समान गुणी पुरुष कभी शोक और मोह से पीड़ित नहीं होते। शत्रुओं को जीतने के लिए देवताओं को भी सैकड़ों बार दैव के दिये कष्ट भोगने पड़े हैं, उन्हें छिपकर भी रहना पड़ा है। निषध देश में, गिरिप्रस्थ पर्वत के आश्रम में, इन्द्र शत्रुदमन के लिए छिपकर रहे हैं। भगवान् विष्णु भी दैत्यों को मारने के लिए हयग्रीव होकर अदिति के गर्भ में अज्ञातभाव से बहुत दिनों तक रहे हैं। विष्णु ने वामनरूप रखकर तीन पग से जिस तरह राजा बलि का राज्य हरा है, सो तुम जानते ही हो। अग्नि ने जल के भीतर छिपकर देवताओं का कार्य सिद्ध किया है। नारायण ने शत्रुदमन के लिए प्रच्छन्न रूप से वज्र में प्रवेश करके इन्द्र का काम बनाया है। ब्रह्मर्षि और्व ने जाँघ के भीतर गुप्त रूप से रहकर देवताओं का कार्य सिद्ध किया है। इन कथाओं को तुम अच्छी तरह जानते हो। इसी तरह महातेजस्वी सूर्य ने छद्मवेष से पृथ्वी में रहकर शत्रुओं को भस्म किया है। पराक्रमी विष्णु ने दशरथ के घर में गुप्त रूप से रहकर रावण को
मारा है। सभी महात्मा बली पुरुषों ने इसी तरह छिपकर शत्रुओं को नीचा दिखाया है। तुम भी २०
इसी तरह अज्ञातवास के उपरान्त अवश्य अपने शत्रुओं को नष्ट करोगे।

धर्मात्मा युधिष्ठिर ने धौम्य के इन वचनों से सन्तुष्ट होकर, शास्त्रज्ञान और अपनी बुद्धि के बल से, अपने को सँभाला। तब महाबली भीमसेन ने उन्हें प्रसन्न और उत्साहित करने के लिए कहा—महाराज, गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले पराक्रमी अर्जुन ने उस समय आपका और धर्म का खयाल करके ही कोई साहस का काम नहीं किया। शत्रुदल को नष्ट करने में समर्थ नकुल और सहदेव को नित्य मैं ही रोकता रहा हूँ। आप हम लोगों को जब जो आज्ञा देंगे वही हम करेंगे। इसलिए आप उपाय कीजिए। हम लोग शीघ्र ही शत्रुओं को परास्त करेंगे।

भीमसेन की बात पूरी होने पर ब्राह्मणों ने पाण्डवों को आशीर्वाद दिये। फिर वे उनसे बिदा होकर अपने-अपने स्थान को चले गये। वेदज्ञ यति और मुनि लोग, पाण्डवों से फिर मिलने की इच्छा से, न्यायानुसार अपने योग्य स्थानों में रहने लगे। पुरोहित धौम्य और पाञ्चाली को साथ लेकर विद्वान् पाण्डव लोग किसी कारण वहाँ से कोस भर पर जा ठहरे।

दूसरे दिन से अज्ञातवास करना था, इसलिए पाण्डव उसकी तैयारी करने लगे। वे सभी शास्त्रों के ज्ञाता, सलाह में चतुर और सन्धि-विग्रह आदि के समय को जाननेवाले थे। वे लोग
वहाँ बैठकर आपस में सलाह करने लगे। ३१

सचित्र

हिन्दी महाभारत

महर्षि वेदव्यास-प्रणीत

महाभारत का अनुवाद

विराटपर्व

पाण्डव-प्रवेशपर्व

पहला अध्याय

अज्ञातवास के लिए युधिष्ठिर का भाइयों से सलाह करना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय ने पूछा—ब्रह्मन् मेरे पितामह पाण्डवों ने दुर्योधन के डर से किस तरह राजा विराट की राजधानी में अज्ञातवास किया? सदा सुख से रहनेवाली भाग्यवती कृष्णसेविका पतिव्रता द्रौपदी भी किस तरह वहाँ छिपकर रहीं?

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, तुम्हारे पितामह पाण्डवों ने जिस प्रकार राजा विराट की नगरी में अज्ञातवास किया, सो सुनो। धार्मिकश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर धर्मराज से, पहले कहे गये, वरदान पाकर आश्रम में गये। वहाँ उन्होंने ब्राह्मणों को अपना सब हाल कह सुनाया। फिर अरणी-सहित वह मथानी उन्होंने उस तपस्वी ब्राह्मण को दे दी।

अब महामनस्वी धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों को एकट्ठा करके कहने लगे—भाइयो, हमको अपने राज्य से निकलकर वन में रहते बारहवर्ष बीत गये। इस समय बहुत ही क्लेश देनेवाला अज्ञातवास का तेरहवाँ वर्ष लगा है। इसलिए हे अर्जुन, तुम ऐसा कोई स्थान पसन्द करो, जहाँ गुप्त रूप से एक साल तक हम रह सकें और शत्रु लोग हमारा पता न लगा पावें।

अर्जुन ने कहा—हे नरश्रेष्ठ, इसमें संदेह नहीं कि हम लोग धर्मराज के वरदान के प्रभाव से एक
१० साल इस तरह बिता देंगे कि कोई मनुष्य हमको न पहचान सकेगा। मैं अज्ञातवास के योग्य कई एक परम रमणीय सुरक्षित राज्यों के नाम गिनाता हूँ। इनमें से आप जिस राज्य में रहना पसन्द करें उसे बतावें। कुरु-देश के चारों ओर पाञ्चाल, चेदि, मत्स्य, शूरसेन, पटच्चर, दशार्ण, नवराष्ट्र, मल्ल, शाल्व, युगन्धर, बहुविस्तृत कुन्तिराष्ट्र, सुराष्ट्र, अवन्ति, [वैदेह, मगध] आदि अनेक धन-धान्य से पूर्ण रमणीय राज्य हैं। राजा विराट का राज्य भी अज्ञातवास के योग्य है। बताइए, इनमें कौन सा राज्य आपकी समझ में रहने लायक़ है? हम वहीं पर आपके साथ रहकर सुख से तेरहवाँ वर्ष बिता सकते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—हे महाबाहो, सब प्राणियों के ईश्वर भगवान् धर्म ने जो कहा है वह मिथ्या न होगा। हम लोग तेरहवाँ वर्ष छिपकर बिताने में अवश्य ही सफल होंगे। इस समय आपस में सलाह करके एक ऐसा रमणीय कल्याण-दायक स्थान रहने के लिए ठीक कर लेना चाहिए, जहाँ हम इस तेरहवें वर्ष को बेखटके बिता सकें। भाई! मत्स्य देश के राजा विराट धर्मात्मा, दाता, वृद्ध, बलवान् और हम पाण्डवों पर कृपा रखनेवाले हैं। मेरी समझ में हम लोगों को उन्हीं के यहाँ रहना चाहिए। जो तुम लोग पसन्द करो तो गुणी जगत्प्रसिद्ध राजा विराट के काम करते हुए हम लोग उन्हीं के यहाँ यह वर्ष बितावें। भाइयो, अब तुम लोग यह निश्चय करके कहो कि हममें से कौन क्या काम करके उनके यहाँ रहेगा?

२० अर्जुन ने कहा—हे नरदेव, आप राजा विराट के यहाँ रहकर क्या काम करेंगे? महाराज! आप कोमल, उदार, लज्जाशील, धार्मिक और सत्यवादी हैं। इस आपत्ति में पड़कर आप कौन सा काम करेंगे? आप पृथ्वी के अधीश्वर होकर साधारण जनों की तरह दुःख सहने में असमर्थ हैं। भला आप इस घोर आपत्ति में पड़कर किस तरह इससे उबरेंगे?

युधिष्ठिर ने कहा—अर्जुन, मैं राजा विराट के यहाँ जाकर जो काम करूँगा सो सुनो। मेरा निश्चय यह है कि मत्स्य देश के राजा विराट के पास जाकर उनकी सभा में मुख्य सभासद बनकर रहूँगा। मैं वहाँ यह प्रसिद्ध करूँगा कि मैं पाँसे के खेल (चौसर) में उस्ताद, द्यूतप्रिय, कङ्क नाम का ब्राह्मण हूँ। मैं वहाँ [बिसात बिछाकर] लाल, काली, हरी और पीली गोटें बसाऊँगा और राजा का जी बहलाने के लिए [उनके साथ] चौसर खेलूँगा। [मेरे पास दर्शनीय बढ़िया पाँसे हैं। मैं जब उन्हें फेकूँगा तब उनको देखकर सभा के सब लोग प्रसन्न होंगे। ज्योतिष, सगुन, चौसर के खेल, वेद-वेदाङ्ग, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, नीतिशास्त्र आदि के सम्बन्ध में जब जो कुछ राजा मुझसे पूछेंगे सो सब मैं उन्हें बताऊँगा। इन बातों में मेरा पूरा दख़ल है।] इस प्रकार भाई-बन्धु-मन्त्री आदि सहित राजा विराट को प्रसन्न करता हुआ मैं उनकी सभा में रहूँगा। मुझे कोई पहचान न पावेगा। यदि राजा विराट मुझसे पूछेंगे तो

कह दूँगा कि मैं पहले महाराज युधिष्ठिर का प्राण-प्रिय मित्र था। इस प्रकार [अपने को छिपाकर] मैं राजा विराट के राजधानी में रहूँगा। अब भीमसेन, तुम बताओ। तुम किस प्रकार राजा विराट के यहाँ छिपकर रहोगे? २८

दूसरा अध्याय

भीमसेन और अर्जुन की सलाह

भीमसेन ने कहा—महाराज, मैं मत्स्यराज विराट के पास जाकर कहूँगा कि मैं तरह-तरह की रसोई बनानेवाला बल्लव नाम का रसोइया हूँ। मैं रसोई बनाने में बड़ा चतुर हूँ। विराट के यहाँ मैं अनेक प्रकार की भोजन-सामग्री बनाऊँगा। पहले चतुर सुशिक्षित रसोइये महाराज विराट के लिए जो उत्तम रसोई बनाते थे उससे भी बढ़कर स्वादिष्ठ रसोई बनाकर [और ऐसी भोजन-सामग्री खिलाकर जिसे उन्होंने पहले कभी खाया न होगा] मैं उन्हें झटपट प्रसन्न कर लूँगा। रसोई बनाने के लिए बहुत सी बड़ी-बड़ी लकड़ियाँ काटकर [चीरकर] ले आऊँगा। मेरे इन कामों को देखकर महाराज प्रसन्नतापूर्वक मेरा आदर करेंगे। मैं वहाँ सब रसोइयों का मुखिया होऊँगा। सबको भोजन-सामग्री देने का काम मुझे ही सौंपा जायगा। मेरे अद्भुत काम देखकर विराट के नौकर-चाकर, राजा की तरह, मेरा मान करेंगे। इसके सिवा राजा के यहाँ बहुत से प्रतापी, कभी किसी से न हारनेवाले, शत्रुओं के लिए भयानक पहलवान होंगे। मैं उन्हें जान से न मारकर कुश्ती में पछाड़ूँगा। विराट के यहाँ रहकर मैं बली बैलों और मस्त हाथियों को महाराज के सामने ही हराकर वश में कर लूँगा। मेरे इन कामों को देखकर राजा अवश्य मुझ पर प्रसन्न होंगे और मेरा आदर करेंगे। महाराज, विराट मेरा पूर्व-परिचय जानना चाहेंगे तो कह दूँगा कि मैं पहले महाराज युधिष्ठिर के यहाँ था। वहाँ दुष्ट पशुओं का दमन करना, रसोई बनाना, मस्त हाथी आदि से क्रीड़ा करना और कुश्ती लड़ना मेरा काम था। महाराज, इस प्रकार यत्न से सदा अपनी रक्षा करता हुआ मैं विराट राजा के यहाँ एक वर्ष अज्ञातवास करूँगा। १०

युधिष्ठिर ने कहा—खाण्डव वन जलाने की इच्छा से ब्राह्मण का रूप रखकर साक्षात् अग्निदेव जिन—कृष्ण के सखा, महाबली, महाबाहु, विजयी, पुरुषश्रेष्ठ—अर्जुन के पास आये थे; जिन्होंने अकेले ही रथ पर सवार हो इन्द्र को परास्त कर तथा नागों और राक्षसों को मारकर अग्नि को तृप्त किया था; जो नागराज वासुकि की बहन को हर लाये; जो प्रधान योद्धाओं में श्रेष्ठ हैं, वे पराक्रमी अर्जुन किस प्रकार छिपकर रहेंगे? जैसे प्रतापियों में सूर्य, मनुष्यों में ब्राह्मण, साँपों में आशीविष, तेजस्वियों में अग्नि, शस्त्रों में वज्र बैलों में साँड़, पशुओं में सिंह, बरसनेवालों में मेघ, नागों में

धृतराष्ट्र, हाथियों में ऐरावत, प्रियों में पुत्र, [पक्षियों में गरुड़,] और सुहृदों में भार्या श्रेष्ठ है, वैसे ही सब धनुषधारियों में अर्जुन श्रेष्ठ हैं। ये इन्द्र और श्रीकृष्ण के समान प्रभावशाली हैं। इन्होंने
२० पाँच वर्ष तक स्वर्ग में रहकर अपने प्रभाव से वह अस्त्र-विद्या सीखी है जो मनुष्यों के लिए असाध्य है और सब दिव्य अस्त्र प्राप्त किये हैं। मैं इन्हें बारहवाँ रुद्र, तेरहवाँ आदित्य, नवाँ वसु और दसवाँ ग्रह समझता हूँ। इनकी भुजाएँ लम्बी, बराबर का बल रखनेवाली और प्रत्यञ्चा की रगड़ से कठिन हैं। जैसे पर्वतों में हिमाचल, नदियों में समुद्र, देवताओं में इन्द्र, वसुओं में अग्नि, मृगों में सिंह, और पक्षियों में गरुड़ श्रेष्ठ हैं वैसे ही सब वीरों में श्रेष्ठ अर्जुन राजा विराट के यहाँ [कौन सा रूप रखकर] क्या काम करके अज्ञातवास करेंगे ?

अर्जुन ने कहा—हे धर्मराज, मैं विराट के यहाँ जाकर अपने को नपुंसक (हिजड़ा) बताऊँगा। राजन्, मेरी कलाइयों में धनुष की डोरी की रगड़ के बड़े-बड़े घट्ठे पड़े हुए हैं। इन्हें छिपाने के लिए मैं हाथों में चूड़ियाँ पहन लूँगा। कानों में चमकीले कुण्डल, हाथों में चूड़ियाँ और सिर चोटी धारण करके मैं वहाँ अपना नाम बृहन्नला बताऊँगा। इस प्रकार स्त्री-वेश धारण करके मैं मत्स्यराज के यहाँ रहूँगा। वहाँ प्रायः स्त्रियों के कहने-सुनने योग्य क़िस्से-कहानियाँ कहकर रनिवास की स्त्रियों को और राजा को सन्तुष्ट करूँगा। रनिवास की स्त्रियों को तरह-तरह का नाच और गाना-बजाना सिखाऊँगा। राजा के आगे प्रजा का आचार-व्यवहार का वर्णन करूँगा। इस प्रकार स्त्रियों के भाव दिखाकर मायापूर्वक मैं अपने को
३० छिपाये रहूँगा। राजा के पूछने पर कहूँगा कि मैं पहले महाराज युधिष्ठिर के यहाँ द्रौपदी की सेवा करनेवाली दासी थी। धर्मराज मुझे मानते थे। हे धर्मराज, [मैं उर्वशी के शाप से सचमुच नपुंसक हो गया हूँ। तेरहवें वर्ष के बाद, इन्द्र की कृपा से, मेरा उस शाप से छुटकारा होगा।] जैसे राजा नल बनावटी रूप में छिपकर रहे थे वैसे ही मैं भी अपने को छिपाकर राजा विराट के यहाँ सुख से रहूँगा।

धार्मिकश्रेष्ठ अर्जुन वीर यों कहकर चुप हो गये। अब महाराज युधिष्ठिर ने और भाइयों
३३ से [अज्ञातवास के सम्बन्ध में] पूछा।

तीसरा अध्याय

नकुल, सहदेव और द्रौपदी की सलाह

युधिष्ठिर ने कहा—हे नकुल ! तुम सुकुमार, शूर, सुन्दर और सुख भोगने योग्य हो। इसलिए भाई, तुम राजा विराट के यहाँ कौन सा काम करते हुए अज्ञातवास करोगे ? नकुल ने कहा—महाराज, मैं अश्व-विज्ञान (घोड़ों की पहचान) और घोड़ों की रक्षा के काम में

निपुण हूँ। मैं विराट के यहाँ अश्वाध्यक्ष हो जाऊँगा। घोड़ों को सधाना और उनकी चिकित्सा करना मुझे अच्छी तरह मालूम है। मैं वहाँ अपना नाम ग्रन्थिक बताऊँगा। राजन्, आपको भी घोड़े पसन्द हैं और मुझे भी प्रिय हैं। जवान और दुष्ट घोड़े भी मेरे वश में रहेंगे। क्या ज़ीन-सवारी में और क्या रथ में वे, किसी तरह की, दुष्टता न करेंगे। उस नगर का कोई आदमी पूछेगा तो कहूँगा कि मैं पहले महाराज युधिष्ठिर के यहाँ घोड़ों की रक्षा का काम करता था। महाराज, मैं इस तरह अपने को छिपाकर विराट की राजधानी में रहूँगा।

अब युधिष्ठिर ने सहदेव से पूछा—सहदेव, तुम राजा विराट के यहाँ क्या काम करोगे?
सहदेव ने उत्तर दिया—राजन्! मैं गायों की जाँच करने, दुहने और गिनने में चतुर हूँ। मैं
राजा विराट के यहाँ अपना नाम तन्तिपाल बताकर यही काम करूँगा। [मेरी देख-रेख में गायें
रोगहीन, पुष्ट, दुधार, बहुत सन्तानवाली, चोर-व्याधि-व्याघ्र आदि से बेखटके होंगी।] पहले
आपने मुझे गोरक्षा के काम में नियुक्त किया था, इसी से मैं इस काम को अच्छी तरह कर
सकता हूँ। मैं गायों के लक्षण, आचरण और उनके शुभाशुभ को अच्छी तरह जानता हूँ। १०
महाराज, मैं ऐसे सुलक्षणवाले श्रेष्ठ बैलों को भी पहचानता हूँ, जिनके मूत्र को सूँघने
से बाँझ स्त्री के भी बच्चा उत्पन्न होता है। मैं विराट-नगर में इस, अपने प्रिय, कार्य
को करता हुआ रहूँगा। आप कुछ चिन्ता न करें। कोई मुझे पहचान न सकेगा। मैं
अपने काम से राजा विराट को सन्तुष्ट रक्खूँगा।

वह सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—द्रौपदी वहाँ क्या काम करेगी? ये तो और स्त्रियों की
तरह कोई काम करना नहीं जानतीं। ये हम लोगों को प्राणों से भी प्यारी हैं। ये माता
(कुलाचार) के समान पालनीय और बड़ी बहन (पार्वती) के समान पूजनीय हैं। ये
पतिव्रता, सुशीला, यशस्विनी, सुकुमारी, राजपुत्री द्रौपदी राजा विराट के यहाँ कैसे क्या
करके रहेंगी? जन्म से लेकर माला, गन्ध, गहने, अनेक प्रकार के कपड़े आदि उपभोग
की सामग्री के सिवा ये तो और कुछ भी नहीं जानतीं।

द्रौपदी ने कहा—महाराज, आप मेरे लिए चिन्ता न करें। बड़े लोगों के यहाँ अच्छे वंश
की ऐसी स्त्रियाँ रहा करती हैं जो स्त्रियों के शृङ्गार का काम करती हैं। वे सैरन्ध्री कहाती हैं।
राजा विराट के यहाँ मैं अपने को सैरन्ध्री बताऊँगी। लोग जानते हैं कि सैरन्ध्री पतिव्रता और
अच्छी जाति की होती हैं। मैं राजभवन में आप अपनी रक्षा कर लूँगी। [कहूँगी कि मेरे
कुछ नियम हैं, उनका मैं पालन करती हूँ। उन्हीं नियमों से मैं अपनी रक्षा करूँगी।] मैं
अपने को केशों का शृङ्गार करने में निपुण बताऊँगी। कोई पूछेगा तो कहूँगी कि मैं पहले
महाराज युधिष्ठिर के यहाँ द्रौपदी के पास रहती थी। मैं यशस्विनी महारानी सुदेष्णा के पास २०
रहूँगी। वे सदा मेरी रक्षा करेंगी। वे अवश्य मुझे रख लेंगी।

युधिष्ठिर ने कहा—द्रौपदी, तुम भले घर की बेटी हो, तुम अपने योग्य ही बात कही है। तुम पतिव्रता हो। तुम पाप को जानती ही नहीं। देखो, ऐसी सावधानी से वहाँ रहना जिसमें कोई
२१ तुमको पहचान न सके और हमारे पापी शत्रु फिर सुखी होने का मौक़ा न पा जायँ।

चौथा अध्याय

धौम्य पुरोहित का पाण्डवों को उपदेश देना

युधिष्ठिर ने कहा—विराट के यहाँ रहकर तुम लोग जो काम करोगे उन्हें कह चुके और मैं जो करूँगा सो भी कह चुका। मेरी सलाह यह है कि अब हमारे पुरोहित धौम्य, रसोइये आदि के साथ, महाराज द्रुपद के यहाँ जाकर रहें और वहाँ हमारे अग्निहोत्र के अग्नि की रक्षा करें। इन्द्रसेन आदि हमारे अनुचर, ख़ाली रथ ले जाकर, द्वारकापुरी में ठहरें। ये द्रौपदी की सेवा करनेवाली स्त्रियाँ पाञ्चाल देश को ही जायँ। कोई हमारे बारे में पूछे तो सब यही कह दें कि पाण्डव तो अचानक हम लोगों को, और अपने आश्रित ब्राह्मणों को, छोड़कर द्वैत वन से न जाने कहाँ चले गये। उनके सम्बन्ध में हम कुछ नहीं जानते।

वैशम्पायन कहते हैं—इस प्रकार अलग-अलग अपने कामों का निश्चय और सलाह करके पाण्डवों ने पुरोहित धौम्य को बुलाया। महर्षि धौम्य सब धर्मों के विशेष जानकार थे। उन्होंने पाण्डवों के पास आकर यों उपदेश दिया—हे पाण्डवो! तुमने सुहृद्, सवारी, ब्राह्मण, शस्त्र, अग्निहोत्र आदि के सम्बन्ध में अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। अब मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ—एकाग्र होकर सुनो। धर्मराज और अर्जुन, तुम सदा द्रौपदी की रक्षा करना। हे पाण्डवो, तुम लोक-व्यवहार को अच्छी तरह जानते हो। किन्तु जानी हुई बात के बारे में भी अनुराग-वश उपदेश करना हितचिन्तक सुहृदों का कर्तव्य है। यही सनातन धर्म है। इसी से अर्थ और काम की प्राप्ति होती है। इसी से मैं तुमको, कर्त्तव्य के बारे में, उपदेश करता हूँ
१० हे राजकुमारो, मैं बताता हूँ कि राजाओं के यहाँ किस तरह रहना चाहिए। मेरे उपदेश के अनुसार वहाँ रहने से तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होगा। तुम्हें वहाँ एक वर्ष छिपकर रहना होगा। तुम लोग मान के योग्य हो। तुम्हें नौकर के रूप में रहना पड़ेगा, इसलिए सम्भव है कि तुम वहाँ यथोचित सम्मान न पा सको। [सब सहने पर] चौदहवें वर्ष तुम्हें सुख मिलेगा। जो लोग राजाओं के यहाँ की सब बातों को और नियमों को अच्छी तरह जानते हैं उन्हें भी मन मारकर वहाँ कष्ट से रहना पड़ता है। हे पाण्डवो! [राजा शस्त्रमय और मनुष्य-रूपधारी अग्नि है। इसलिए] पहले द्वारपाल के द्वारा निवेदन करके, राजा की आज्ञा मिलने पर, उसके पास जाना और उसके दर्शन करना चाहिए। राजा के यहाँ सम्मान पाकर भी उसके

गुप्त विषयों के जानने की चेष्टा न करनी चाहिए। जहाँ पर बैठने से अपमान की आशङ्का
न हो वहीं बैठना चाहिए। राजा को अपने अनुकूल समझकर उसकी आज्ञा के बिना
उसकी सवारी, पलँग, आसन, हाथी या रथ पर कभी न बैठना चाहिए। जो इस नियम
का पालन करता है वही राजा के यहाँ रह सकता है। राजा के यहाँ वही व्यक्ति ठहर सकता
है जो ऐसे स्थान पर बैठे-उठे जहाँ बैठने के लिए राजा से कोई चुग़ली न कर सके। बिना पूछे
राजा को कोई सलाह न देनी चाहिए। चुपचाप रहना और उपयुक्त अवसर पर राजा का
सत्कार करना चाहिए। झूठ बोलनेवाले मनुष्य को राजा लोग अच्छी दृष्टि से नहीं देखते;
यहाँ तक कि मिथ्यावादी मन्त्री का भी अपमान करते हैं। बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि राजा
की स्त्रियों से, रनिवास में जाने-आनेवालों से, राजा से द्वेष रखनेवालों से और राजा की बुराई करने-
वालों से मेल-जोल न करे। छोटे से छोटा काम भी राजा से पूछकर ही करे। राजदरबार में
ऐसा आचरण करनेवाले को कभी विपत्ति का खटका नहीं होता। उच्च पद पर स्थित व्यक्ति को
भी राजा के पूछे बिना या राजा के द्वारा नियुक्त हुए बिना—अपने पद का ख़याल रखकर—
जन्मान्ध का सा व्यवहार करना चाहिए। राजा के पुत्र, पोता, भाई आदि स्वजन भी अगर २०
मर्यादा का उल्लङ्घन करते हैं तो राजा लोग उनका आदर नहीं करते। अग्नि और देवता
समझकर राजा की सेवा करनी चाहिए। [वह सब प्राणियों का भरण-पोषण और रक्षण
करता है।] जो कोई मिथ्या उपचार के द्वारा राजा की सेवा करता है वह प्राणों से हाथ धो
बैठता है। राजा जो आज्ञा करे उसे—आलस्य, गर्व और क्रोध से बचकर—पूर्ण करना चाहिए।
कर्तव्य-अकर्तव्य के निर्णय के अवसर पर जो प्रिय और हित हो वही उसके आगे कहना चाहिए।
जहाँ प्रिय और हित वचन दुर्लभ हो वहाँ हित की बात ही कहनी चाहिए। राजा की आज्ञा या
उसकी बात का अनादर न करना चाहिए। राजा के सम्बन्ध में अप्रिय और अहित वचन
कभी न कहना चाहिए। बुद्धिमान् को चाहिए कि वह अपने को राजा का प्रियपात्र न समझकर
उसकी सेवा करे; राजा का प्रिय और हित करने में सावधानी से सचेष्ट रहे। जो व्यक्ति
राजा के अनिष्ट की चेष्टा से दूर रहता है, अनधिकार चर्चा नहीं करता और राजा का अहित चाहने-
वालों से अलग रहता है वही राजा के पास रहने का अधिकारी है। बुद्धिमान् पुरुष को राजा के
दाहने या बायें बैठना चाहिए; क्योंकि राजा के पीछे अस्त्र-शस्त्र-धारी सैनिकों का स्थान होता है
[और आगे का स्थान ख़ाली पड़ा रहता है। राजदरबार में विनीत भाव से बैठना चाहिए]।
राजा के आगे बैठना मना है। राजा के पुरस्कार आदि देते समय, बिना बुलाये, लेने को न पहुँचना
चाहिए। राजा की किसी झूठ बात को भी किसी के आगे प्रकट करना ठीक नहीं; क्योंकि वैसा
करने से राजा कुपित हो जाते हैं। राजा के आगे अपनी पण्डिताई न छाँटनी चाहिए; क्योंकि ३०
जो लोग ऐसा करते हैं उनको राजा लोग अनादर की दृष्टि से देखते हैं। राजा के आगे

अपने शूर और बुद्धिमान् होने का गर्व करना भी ठीक नहीं। जो लोग सावधानी से राजा का प्रिय कार्य और हित करते हैं वही राजा के प्यारे होते और तरह-तरह के ऐश्वर्य-सुख पा सकते हैं। दुर्लभ ऐश्वर्य और कृपा-दृष्टि प्राप्त हो जाने पर राजा के हितकर प्रिय कामों में भूल-चूक न होने दे। जिस राजा के कोप से अनिष्ट और प्रसन्नता से ऐश्वर्य प्राप्त होता है उस राजा का अप्रिय करने का साहस कौन बुद्धिमान् पुरुष करेगा ?

पाण्डवो, राजा के आगे बक-बक करना, हाथ-पैर हिलाना या ज़ोर से चञ्चलता प्रकट करना कभी उचित नहीं। सदा स्थिर होकर बैठना चाहिए। धीरे से थूके, छींके या अधोवायु छोड़े। बहुत हँसी के द्वारा मूर्खता, या बिलकुल हँसी दबाकर गम्भीरता, प्रकट न करके मृदु हास्य करना ठीक है। जो मान के लाभ से प्रसन्न और अपमान से दुःखी नहीं होता, सदा सावधान रहता है, वही राजसभा में रह सकता है। जो बुद्धिमान् सचिव राजा या राजपुत्र की स्तुति करता है वही सदा राजा को प्यारा रहता है। जो कृपापात्र सचिव किसी कारण राजदण्ड पाकर भी राजा के प्रति द्वेष का भाव नहीं प्रकट करता, उसे फिर भी
४० पहले का ऐश्वर्य और अनुग्रह प्राप्त हो जाता है। जो कोई जिस राजा के राज्य में रहे या राजा के आश्रय में जीविका पावे उसे, क्या राजा के सामने और क्या उसके पीछे, उसकी बड़ाई ही करनी चाहिए। जो सचिव बलपूर्वक या हठ के साथ राजा से ऐश्वर्य की प्रार्थना करता है वह अपने पद पर बहुत दिन तक नहीं रह सकता; उलटा उसके प्राणों पर सङ्कट आ पड़ता है। यदि किसी बुद्धिमान् को राजा से धन-मान प्राप्त हो जाय तो इसी की प्राप्ति के लिए, वह किसी और को राजा से न मिला दे; बल्कि किसी बहाने टाल दे। युद्ध में अथवा अन्य देशवालों के साथ बातचीत के समय राजा की अपेक्षा अपनी शूरता या चतुराई ख़ूब दिखलावे। इससे राजा प्रसन्न होगा। जो पुरुष बलवान्, उत्साही, शूर, सत्यवादी, शान्तस्वभाव, जितेन्द्रिय और छाया के समान अनुगत रहता है वही राजा के यहाँ रहने योग्य है। राजा यदि किसी और आदमी को कोई काम करने की आज्ञा दे तो पहले ही उठकर आप उस कार्य के करने को उद्यत हो जानेवाला पुरुष राजा को प्यारा होता है। जो कोई राजा के द्वारा किसी गुप्त या प्रकट कार्य के लिए नियुक्त होने पर उसे करने से मुँह नहीं मोड़ता, वही राजा के यहाँ रह सकता है। जो कोई घर-बार छोड़कर परदेश में पड़े रहने पर भी घरवालों की याद तक नहीं करता, [अपनी उन्नति के लिए दृढ़ सङ्कल्प रखता है, मन को वश में रखता है, सुस्ती को पास नहीं फटकने देता, भूख और प्यास के कष्ट सहता है] और दुःख सहकर सुख प्राप्त करने की इच्छा रखता है, वही राजा के पास रह सकता है। राजा के समान पहनावा और सजावट करना ठीक नहीं। राजा के आगे ऊँचे आसन पर न बैठे। अपने साथ राजा जो सलाह करे उसे और के आगे प्रकट न कर दे। कोई काम करने के लिए राजा के द्वारा नियुक्त होने पर धन

की लालसा (रिशवत लेने की इच्छा) न करनी चाहिए। क्योंकि उसके द्वारा धन कमाने की चेष्टा में वध और बन्धन दोनों की आशङ्का है। राजा प्रसन्न होकर सवारी, कपड़े, गहने आदि जो कुछ दे, उसी का व्यवहार सदा राजा के सामने करना अधिक हितकारी है।* ५०

मैंने यह राजाओं के यहाँ रहने की रीति तुमको बता दी। इस तरह सब सहनशील होकर एक वर्ष बिताओ। फिर अपना राज्य पाकर इच्छानुसार व्यवहार करना।

युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ, आपने हमको बड़े हितकारी उपदेश दिये हैं। माता कुन्ती और महाबुद्धिमान् चाचा विदुर के सिवा हमको ऐसा उपदेश देनेवाला और कोई नहीं। अब आप वही उपाय कीजिए जिससे हमारा इस दुःखसागर से उद्धार हो।

वैशम्पायन कहते हैं—इस प्रकार युधिष्ठिर के कहने पर महर्षि धौम्य ने यात्रा-समय के स्वस्ति-कर्म का सब सामान ठीक-ठीक किया। युधिष्ठिर के विजय और राज्य प्राप्त करने के लिए अग्नि जलाकर मन्त्र पढ़कर, धौम्य ने हवन किया। उस अग्निकुण्ड की और तपस्वी ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा करके, द्रौपदी को आगे करके, पाण्डव वहाँ से चल पड़े।

इसके बाद पाण्डवों के पुरोहित महर्षि धौम्यजी पाण्डवों के अग्निहोत्र लेकर पाञ्चाल देश की ओर गये। पाण्डवों के अनुचर इन्द्रसेन आदि, रथ-घोड़े आदि लेकर यादवों की द्वारका-पुरी में गये और वहाँ बड़े सुख से रहने लगे। ५८

पाँचवाँ अध्याय

पाण्डवों का विराटनगर के पास पहुँचना

वैशम्पायन कहते हैं—इसके बाद पाण्डव लोग अपना राज्य पाने की आशा से [बारह वर्ष वनवास करके, उक्त वन से विराटनगर के लिए, चल दिये।] गोह के चमड़े के अङ्गुलित्राण

---

* देखो, क्षत्रिय राजा, साँप और बहुज्ञ ब्राह्मण, ये दुर्बल हों, तो भी बुद्धिमान् पुरुष को इनका अपमान न करना चाहिए। अपमान करने से ये तीनों भस्म कर देते हैं। राजा के यहाँ रहनेवाले को चाहिए कि उसी पद को चाहे जिसको चाहनेवाला कोई प्रबल प्रतिद्वन्द्वी न हो। सदा मधुरभाषी रहे। कटुवादी न हो। जाड़े-गरमी, रात-दिन का ख़याल न करके राजा की आज्ञा का पालन करने के लिए सदा तैयार रहे। तभी राजाओं के यहाँ टिक सकता है। लोभ छोड़कर, धीर बनकर, चतुरता से रहनेवाला मनुष्य राजा को प्रिय होता है। अगर अपने से हीन को राजा धन आदि देकर सम्मानित करे तो भी बुरा न मानना चाहिए। राजाओं का ऐसा स्वभाव ही होता है कि वे ज़रा-ज़रा सी बात पर खुश होकर लाखों दे डालते हैं। सदा स्नान करके साफ़ कपड़े पहनकर दरबार में जाना चाहिए। सारांश यह कि भक्ति के साथ, सत्यवादी और जितेन्द्रिय रहकर बुद्धिमान्, धीर और विज्ञ पुरुष राजा के पास रहे। ऐसे राजा का ही आश्रय लेना चाहिए जो कृतज्ञ हो, समझदार हो, उच्च और उदार विचारोंवाला हो, जितेन्द्रिय हो, जिसकी बढ़ती हो रही हो और जो अपने स्थान में स्थित हो। इस प्रकार विवेक के साथ काम करने से लोगों का राजाओं के यहाँ अभ्युदय होता है।

पहने और धनुष, खड्ग, तरकस तथा अनेक शस्त्र बाँधे हुए पैदल चलते-चलते यमुना नदी के दक्षिण तट पर पहुँचे। वे वीर कभी पहाड़ों पर और कभी जङ्गलों में शिकार करते थे। [अनेक दर्शनीय मनोहर स्थानों में रहते और वन के अद्भुत वृक्ष, पशु, पक्षी आदि की सैर करते] पाण्डव लोग अपने को शिकारी बताते हुए दशार्ण देश के उत्तर, पाञ्चाल देश के दक्षिण, यकृल्लोम और शूरसेन देश के बीच होकर मत्स्य-राज्य में पहुँचे। अस्त्र-शस्त्र बाँधे, बाल बढ़ाये, पाण्डव लोग मलिन शरीर होने के कारण सचमुच शिकारी ही जँचते थे।

तब द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा—महाराज, ये अनाज के खेत और बहुत से मार्ग देखकर मैं समझती हूँ कि विराट की राजधानी अभी दूर है। मैं बहुत थक गई हूँ। इसलिए यह रात यहीं ठहरकर बिताइए। इस पर युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—हे अर्जुन, हम इसी समय इस वन को लाँघकर राजधानी में पहुँचना चाहते हैं। इसलिए तुम द्रौपदी को उठाकर ले चलो। वैशम्पायन कहते हैं—तब गजराज के समान बलवान् अर्जुन ने, युधिष्ठिर की आज्ञा से, द्रौपदी को उठा लिया। उनको लिये हुए अर्जुन शीघ्र ही नगर के समीप पहुँच गये। वहाँ उन्होंने द्रौपदी को उतार दिया।

नगर के पास पहुँचकर युधिष्ठिर ने कहा—हे अर्जुन, हम लोग इन अस्त्र-शस्त्रों को कहाँ, किसके पास, रखकर नगर में जावें? [इनका सुरक्षित रहना आवश्यक है।] यदि हम शस्त्र लिये हुए बस्ती में जायँगे तो नगरवासी हमें देखकर
१० घबरावेंगे। और इस गाण्डीव धनुष को तो सभी पहचानते हैं। इसे लेकर नगर में जाने से हम लोग पहचान लिये जायँगे। हममें से यदि एक आदमी भी पहचान लिया गया तो, प्रतिज्ञा के अनुसार, हम सबको फिर बारह वर्ष वनवास करना पड़ेगा।

अर्जुन ने कहा—हे नरश्रेष्ठ, यह जो पर्वत-शिखर के पास मसान है, उस पर एक शमी का वृक्ष देख पड़ता है। इसकी शाखाएँ बड़ी-बड़ी हैं। इस पर किसी का चढ़ना भी सहज नहीं। यह स्थान सिंह-साँप आदि भयानक जानवरों से पूर्ण जङ्गल से घिरा हुआ है। खासकर इस

प्रेत-भूमि के पास ऐसा कोई मनुष्य नहीं देख पड़ता जो इस वृक्ष पर अस्त्र-शस्त्र रखते समय हम लोगों को देख ले। मैं समझता हूँ, इस शमी के पेड़ पर अपने शस्त्र आदि रखकर नगर में हम सुखपूर्वक विचर सकेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, युधिष्ठिर से यों कहकर महावीर अर्जुन उस वृक्ष पर
अस्त्र-शस्त्र रखने का उद्योग करने लगे। अकेले अर्जुन ने रथ पर बैठकर जिसकी सहायता से
देवता, नाग और मनुष्य आदि को हराकर बड़े-बड़े देशों को जीत लिया था उस गम्भीर शब्दवाले,
शत्रुनाशक, महाभयङ्कर गाण्डीव धनुष की डोरी उन्होंने उतार दी। शत्रुदमन युधिष्ठिर ने जिस
धनुष के द्वारा कुरुक्षेत्र की रक्षा की थी उस धनुष की अक्षय डोरी उन्होंने भी उतार ली। एकाकी २०
भीमसेन ने अपने जिस धनुष के द्वारा दिग्विजय के समय शत्रुओं को मार भगाया था और
पाञ्चाल देश को जीता था, वज्रपात या पर्वत के फटने के समान जिसके टङ्कार को सुनकर शत्रु
लोग रण-भूमि से भाग जाते थे, जिसके बल से भीमसेन ने महाबली सिन्धुराज जयद्रथ को नीचा
दिखाया था, उस धनुष की प्रत्यञ्चा इस समय भीमसेन ने उतार ली। रूप और कुल में अपनी
उपमा न रखने के कारण नकुल नाम से प्रसिद्ध, मितभाषण करनेवाले, माद्री के पुत्र ने जिस धनुष की सहायता से दिग्विजय के समय पश्चिमी देशों को जीता था उस धनुष की डोरी इस समय उन्होंने भी उतार डाली। दया-दाक्षिण्य आदि गुणों से शोभित सहदेव ने जिस धनुष की सहायता से दिग्विजय में दक्षिण के राजाओं को जीता था उस धनुष की डोरी इस समय उन्होंने उतार दी।

जब वे धनुष, खड्ग, महामूल्य तरकस और तीक्ष्ण धारवाले तीर आदि एक जगह जमा हो गये तब धर्मराज ने नकुल से कहा—हे वीर, तुम इस शमी के पेड़ पर चढ़कर इन हथियारों को उसमें [सुरक्षित स्थान पर] रख दो। युधिष्ठिर की आज्ञा से उस वृक्ष पर चढ़कर नकुल ने वे सब शस्त्र ऐसी जगह पर (खोड़र में) पाश से बाँधकर रख दिये जो सुरक्षित, दृढ़ और गुप्त थी तथा जहाँ पर वर्षा का पानी न पहुँच

३० सकता था। फिर यह सोचकर कि मुर्दे की गन्ध पाकर कोई मनुष्य इस स्थान पर न आवेगा, उन्होंने उस पेड़ की डाल में एक मुर्दा बाँध दिया। इसके बाद वहाँ जो लोग गाय, भेड़-बकरी आदि चरानेवाले घूमा करते थे उनमें पाण्डवों ने यह बात फैला दी कि हम लोगों ने, अपने कुल की रीति के अनुसार, अपनी एक सौ अस्सी वर्ष की अवस्थावाली बुढ़िया माता का मृत शरीर इस पेड़ में बाँध दिया है।

अब युधिष्ठिर ने—किसी आपत्ति के समय परस्पर पुकारने के लिए—जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्बल, ये पाण्डवों के पाँच कल्पित नाम रख लिए। फिर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, अज्ञातवास में तेरहवाँ वर्ष बिताने के लिए, द्रौपदी और भाइयों सहित महा-
३६ राज युधिष्ठिर राजा विराट की राजधानी में पहुँचे।

छठा अध्याय

धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा देवी की स्तुति

वैशम्पायन कहते हैं कि विराट नगर के भीतर जाते समय महाराज युधिष्ठिर अपने मन में त्रिभुवन की ईश्वरी दुर्गा देवी की स्तुति इस तरह करने लगे—यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होनेवाली हे नारायण की श्रेष्ठ प्रिया [योगमाया], हे नन्द गोप के वंश में उत्पन्न होनेवाली, मङ्गलमयी, कुल को बढ़ानेवाली, कंस दैत्य को मारनेवाली, असुरों का नाश करनेवाली, भगवती, वासुदेव कृष्ण की बहन, कंस के द्वारा शिला पर पटकी जाने पर आकाश को चली जानेवाली, दिव्य माला, दिव्य वस्त्र और खड्ग खेटक आदि शस्त्र धारण करनेवाली, तुमको प्रणाम है। हे पृथ्वी का भार उतारनेवाली शुभ-रूपिणी, जो लोग तुम्हारा स्मरण करते हैं उन्हें तुम पाप और सङ्कट से, दलदल में फँसी हुई दुर्बल गाय की तरह, उबार लेती हो।

भाइयों सहित राजा युधिष्ठिर देवी के दर्शन पाने की इच्छा से बारम्बार अनेक प्रकार से इस तरह देवी की स्तुति करने लगे—हे बाल सूर्य के समान प्रभावाली, हे पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली, हे वरदायिनी, हे कुमारी, हे ब्रह्मचारिणी, तुमको प्रणाम है। हे चार भुजा और चार मुखवाली, हे पीन नितम्बों और स्तनोंवाली, तुम नीलम आदि मणियों से जड़े हुए कङ्कण पहने हो। तुम बाजूबन्द आदि बढ़िया गहने पहने हुए हो। तुम्हारी शोभा विष्णु-प्रिया लक्ष्मी के समान है। हे आकाशचारिणी, ब्रह्मचर्य ही तुम्हारा उज्ज्वल स्वरूप है। मेघ या कृष्णचन्द्र के समान तुम्हारा श्यामवर्ण है। सङ्कर्षण के समान तुम्हारा मुखमण्डल है। इन्द्र की ध्वजा के समान ऊँचे और लम्बे तुम्हारे हाथ हैं। तुम अपने हाथों में पान-पात्र, कमल, घण्टा, पाश, धनुष, चक्र आदि धारण किये हो [और दो हाथों से वर और अभय देती हो]। तुम्हारे कानों में
११ सुवर्ण के कुण्डल शोभायमान हैं। मुखमण्डल चन्द्र के समान कान्तिपूर्ण है। तुम्हारे केश परम

रमणीय हैं और मस्तक पर बड़ा विचित्र मुकुट शोभा को बढ़ा रहा है। हे भगवती, तुम नागराज की करधनी पहने विषैले नागों से घिरे मन्दराचल के समान जान पड़ती हो। मयूरपुच्छ की ऊँची ध्वजा से तुम्हारी मूर्ति बहुत ही शोभायमान है। हे देवी, तुमने कुमारी-व्रत धारण करके देवलोक को पवित्र किया है। इसी से देवता तुम्हारी स्तुति और पूजा करते हैं। त्रिलोकी की रक्षा करने के लिए तुमने प्रचण्ड उपद्रवी महापराक्रमी महिषासुर का संहार किया है। तुम्हारा नाम जया और विजया है; तुम युद्ध में विजय देती हो। मुझ पर दया करो। मेरा कल्याण करो। प्रसन्न होकर मुझे भी इस समय विजय दो। हे वर देनेवाली, हे सर्वमङ्गला! पर्वतराज विन्ध्याचल में तुम नित्य निवास करती हो। हे काली, हे महाकाली, हे पशु, मांस और मदिरा पर प्रीति रखनेवाली! तुम वर देनेवाली और इच्छानुसार विचरनेवाली हो। यात्रा के समय भूत तुम्हारे पीछे-पीछे चलते हैं। हे पृथ्वी का भार उतारनेवाली भगवती! जो मनुष्य प्रातःकाल तुम्हारा स्मरण करते और प्रणाम करते हैं, उन्हें पुत्र या धन आदि का मिलना दुर्लभ नहीं रहता। हे दुर्गा! तुम अपने जनों को दुर्ग (सङ्कट) से उबार लेती हो, इसी से लोग तुमको दुर्गा कहते हैं। दुर्गम मार्ग में सङ्कट में पड़े हुए, महासागर में डूब रहे, डाकुओं के हाथ में पड़े हुए मनुष्यों को बचानेवाली तुम्हीं हो। हे भगवती! वन में, सागर आदि में, दुर्गम स्थानों में विपत्ति में पड़े हुए मनुष्य तुम्हारा स्मरण करते ही सङ्कट से छुटकारा पा जाते हैं। कीर्त्ति, लक्ष्मी, धृति, सिद्धि, लज्जा, विद्या, सन्तान, बुद्धि, सन्ध्या, रात्रि, प्रभा, निद्रा, ज्योत्स्ना, कान्ति, क्षमा और दया आदि सब तुम्हीं हो। तुम्हारी पूजा करने से लोग बन्धन, मोह, पुत्रनाश, धन-क्षय, व्याधि, मृत्यु और सब प्रकार के डर से छुटकारा पा जाते हैं। [तुम देवी-देवताओं की ईश्वरी, सत्यरूपिणी, शरणागत जनों की रक्षा करनेवाली और भक्तों पर प्यार रखनेवाली हो।] मैं राज्य से भ्रष्ट होकर तुम्हारी शरण में आया हूँ और तुमको प्रणाम कर रहा हूँ। कृपा करके मेरी रक्षा करो।

युधिष्ठिर के मुँह से अपनी स्तुति सुनकर देवी बहुत प्रसन्न हुई। राजा युधिष्ठिर के आगे प्रकट होकर उन्होंने कहा—राजन्, सुनो, मेरी कृपा से शीघ्रही युद्ध में तुम्हें विजय प्राप्त होगी। हे महाबाहु, मेरे प्रसाद से कौरवों को हराकर, भाइयों के साथ, प्रसन्नतापूर्वक तुम निष्कण्टक राज्य भोगोगे और पृथ्वी का पालन करोगे। तुम्हें सुख और आरोग्य प्राप्त होगा। राजन् जो लोग तुम्हारी की हुई यह स्तुति पढ़ेंगे उन्हें भी प्रसन्न होकर मैं राज्य, बड़ी आयु, सुन्दर नीरोग शरीर और पुत्र आदि दूँगी। हे धर्मराज! जो लोग परदेश में, नगर में, युद्ध में, शत्रुओं के बीच में, दुर्गम मार्गों में, गहन वनों में, पर्वत और सागर आदि सङ्कट के स्थानों में तुम्हारी तरह मुझे स्मरण करेंगे उन्हें इस लोक में कुछ भी दुर्लभ न होगा। हे पाण्डवो, जो लोग भक्तिपूर्वक इस स्तोत्र को पढ़ें या सुनेंगे उनके सब काम सिद्ध हो जायँगे। पुत्रो, मेरे प्रसाद से विराटनगर में रहते समय, तुम्हारे शत्रु कौरव या विराट-नगर के लोग, कोई तुमको न पहचान सकेगा। वर देनेवाली देवी इस प्रकार कहकर, रक्षा करके, पाण्डवों के सामने वहीं अन्तर्द्धान हो गई।

सातवाँ अध्याय

छद्म-वेषधारी युधिष्ठिर का विराट की सभा में जाना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय! तीक्ष्ण विषवाले नाग की तरह दुर्द्धर्ष, कौरव-वंशवर्धन, महानुभाव, महायशस्वी, महाराज युधिष्ठिर वैदूर्यमणि और सुवर्ण की बनी हुई चौसर की गोटें कपड़े से लपेटकर, बगल में दबाकर, [ब्राह्मण के वेष से] यशस्वी राजा विराट की सभा में पहुँचे। अपूर्व रूप और बल से युक्त देव-सदृश महाराज युधिष्ठिर मेघमाला से ढके हुए सूर्य के समान, राख से ढकी हुई आग के समान, शोभायमान हो रहे थे। मेघों से ढके हुए चन्द्रमा के समान महात्मा युधिष्ठिर को सभा में आते देखकर राजा विराट अपने मन्त्री, ब्राह्मण, सूत और अन्य सभासदों से कहने लगे—हे सभासदो, ये कौन महापुरुष हैं, जो आते ही किसी राजा के समान मेरी सभा को निहार रहे हैं? इनका वेष तो ब्राह्मणों का सा है, किन्तु ये मुझे ब्राह्मण नहीं जान पड़ते। आकार-प्रकार से तो ये कोई राजा जान पड़ते हैं। इनके साथ दास, रथ, घोड़े आदि कुछ नहीं हैं, तो भी ये इन्द्र के समान शोभायमान हैं। जैसे मस्त हाथी बेखटके कमलिनी के पास जाते वैसे ही ये, बिना किसी सङ्कोच के, मेरी सभा में आ रहे हैं।

राजा विराट अपनी सभा में इस तरह तर्क-वितर्क कर रहे थे कि धर्मराज युधिष्ठिर ने उनके पास पहुँचकर कहा—महाराज, मैं ब्राह्मण हूँ। सर्वस्व नष्ट होने से मैं जीविका के लिए आपके पास आया हूँ। मैं यहाँ रहकर, आपकी इच्छा के अनुसार सब काम करके, आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। युधिष्ठिर के मधुर वचन सुनकर राजा विराट बहुत प्रसन्न हुए। स्वागत-प्रश्न और प्रणाम करने के उपरान्त युधिष्ठिर को सादर ग्रहण

धर्मराज युधिष्ठिर ने उनके पास पहुँच कर कहा—महाराज मैं ब्राह्मण हूँ।—पृ० १३७२

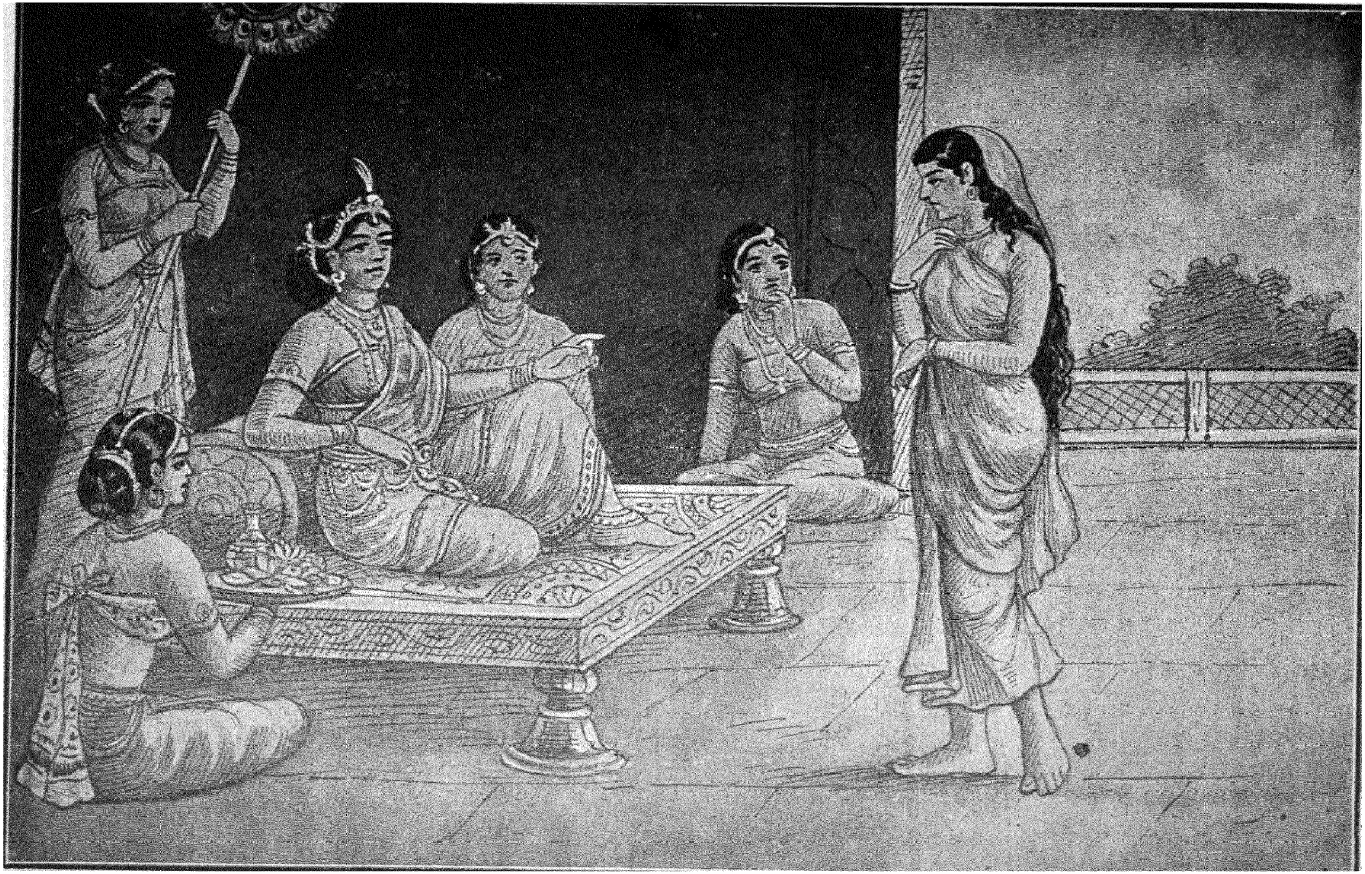

रानी सुदेष्णा ने कहा—हे सुन्दरी, तुमने जो कहा वह तुम ऐसी स्त्री के योग्य कभी नहीं हो सकता—पृ० १३७५

करके विराट ने पूछा—भगवन्, तुम इस समय किसके राज्य से आ रहे हो? तुम्हारा नाम और गोत्र क्या है? तुम क्या-क्या काम कर सकते हो?

युधिष्ठिर ने कहा—मैं ब्राह्मण हूँ। मेरा नाम कङ्क और गोत्र वैयाघ्रपद है। मैं पहले महाराज युधिष्ठिर का प्रिय सखा था। मैं चौसर खेलने में बड़ा निपुण हूँ।

राजा विराट ने कहा—मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करने के लिए तैयार हूँ। तुम चाहो तो इस मत्स्य देश का शासन करो। मैं तुम्हारे वश में हूँ क्योंकि द्यूत-क्रीड़ा में निपुण लोग मुझे बहुत ही प्यारे हैं। हे देवतुल्य महापुरुष, तुम सब तरह इस राज्य के पाने योग्य हो।

युधिष्ठिर ने कहा—महाराज, मेरी एक प्रार्थना और है। वह यह कि मैं अपने से हीन पुरुष के साथ कभी जुआ न खेलूँगा और हारे हुए व्यक्ति को उसका जीता हुआ धन नहीं लौटाऊँगा। आप यह प्रार्थना स्वीकार करें तो मैं यहाँ रह सकता हूँ। राजा विराट ने कहा—मुझे तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार है। इसके सिवा तुम्हारा अप्रिय और अहित करनेवाला यदि ब्राह्मण होगा तो उसे मैं अपने देश से निकाल दूँगा; यदि अन्य किसी वर्ण का आदमी होगा तो उसे प्राणदण्ड दूँगा। युधिष्ठिर से यों कहकर राजा ने अपने सभासदों से कहा—हे सभासदो और पुरवासियो, सुनो। आज से ब्राह्मण-श्रेष्ठ कङ्क को मैं अपने प्रिय सखा का पद देता हूँ। इन्हें आज से मैं राज-काज की बातों में अपने ही समान अधिकार देता हूँ। और हे कङ्क, तुम आज से मेरे प्रियसखा हुए। मैं जिस तरह की सवारी पर चढ़ता हूँ उसी तरह की सवारी पर तुम भी चढ़ सकोगे। इच्छानुसार तुम भी मेरे ही समान भोजन, कपड़े, गहने आदि का उपभोग कर सकोगे। तुमको मेरे रनिवास में भी जाने का अधिकार होगा। कोई आदमी जीविका के लिए तुम्हारे पास आकर प्रार्थना करे तो तुम मुझे उसकी सूचना देना। मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार तत्काल उसका प्रबन्ध कर दूँगा। मुझसे तुम किसी तरह का सङ्कोच न करना।

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय, नरश्रेष्ठ युधिष्ठिर इस प्रकार मत्स्यराज विराट से मिलकर, परम आदर पाकर, बड़े सुख से वहाँ रहने लगे। युधिष्ठिर के वहाँ जाकर रहने का वृत्तान्त किसी को मालूम नहीं हुआ। १८

आठवाँ अध्याय

भीमसेन का राजा विराट के यहाँ जाना

वैशम्पायन कहते हैं कि फिर महाबली, सिंह-सदृश, सूर्य के समान तेजस्वी, सुदृढ़ शरीरवाले भीमसेन, हाथों में खुली हुई पैनी तलवार, मन्थदण्ड (या चिमटा) और कलछी लिए हुए, रसोइये, के वेष से राजा विराट की सभा में पहुँचे। अपने पास उपस्थित भीमसेन को देखकर विराट ने अपने सभासदों और नगरवासियों से कहा—यह जो सूर्य के समान तेजस्वी,

रूपवान्, सिंह के से ऊँचे कन्धोंवाला, नया आदमी देख पड़ता है सो कौन है ? मैं बहुत सोच-विचार कर भी यहाँ इस पुरुष के आने का अभिप्राय नहीं समझ सकता। इसलिए तुम शीघ्र पास जाकर पूछो कि यह कौन है और किसलिए आया है। देखने से यह गन्धर्व-राज या इन्द्र जान पड़ता है। कोई भी हो, मैं इसकी इच्छा पूरी करूँगा।

राजा विराट की आज्ञा से उन लोगों ने चटपट भीमसेन के पास जाकर राजा की इच्छा प्रकट की। विराट के पास पहुँचकर भीमसेन ने बेधड़क होकर यों कहा—महाराज, मैं रसोइया (सूपकार) हूँ। मेरा नाम बल्लव है। मैं बहुत ही उत्तम और अपूर्व रसोई बना सकता हूँ। आप मुझे अपने यहाँ रख लीजिए।

राजा विराट ने कहा—हे बल्लव ! तुम्हारा रूप, शोभा और विक्रम देखने से तो तुम कोई श्रेष्ठ राजा जान पड़ते हो; रसोइया नहीं जान पड़ते। भीमसेन ने कहा—महाराज, मैं [शूद्र वर्ण का] सूपकार हूँ। मैं पहले युधिष्ठिर के यहाँ रसोइया और भण्डारे का मालिक था। मैं भोजन बनाने की कला में तो निपुण हूँ ही, इसके सिवा मेरे समान बलवान् पहलवान भी दुर्लभ है। मैं सदा मस्त हाथी और शेर से कुश्ती लड़ा करता था। अब आपके यहाँ
१० रहकर अपने कामों से आपको सन्तुष्ट करने की इच्छा है। विराट ने कहा—बल्लव, मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करता हूँ। तुम आज से मेरे यहाँ की पाकशाला और भण्डारे के मालिक हुए। लेकिन यह काम तो तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम तो समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी भर का शासन कर सकते हो। ख़ैर, तुम अपनी इच्छा से यही काम पसन्द करते हो, इसलिए मैं भी तुमको अपने यहाँ की पाकशाला के प्रधान कर्मचारी का पद देता हूँ।

इस प्रकार राजा विराट के यहाँ आश्रय पाकर भीमसेन भी बड़े सुख से रहने लगे। वहाँ का
१५ या बाहर का कोई आदमी उनका असली परिचय नहीं पा सका।

———

नवाँ अध्याय

द्रौपदी का विराट के रनिवास में जाना

वैशम्पायन कहते हैं—फिर कजरारे नेत्रोंवाली परम सुन्दरी द्रौपदी विराट के महल के पास पहुँचीं। उनका रङ्ग साँवला था। कोमल काले घुँघराले बालों की चोटी बँधी हुई थी। वे केवल एक मैली सी धोती पहने थीं। इस प्रकार सैरन्ध्री का वेष बनाये वे दीन भाव से वहाँ पर पहुँचीं। उन्हें देखकर पुरवासी नर-नारी जल्दी से उनके पास जा-जाकर पूछने लगे—तुम कौन हो? क्या करना चाहती हो? द्रौपदी ने कहा—मैं सैरन्ध्री हूँ। जो मेरा भरण-पोषण करेंगे मैं उनका काम करूँगी। इसी लिए मैं इस नगर में आई हूँ।

द्रौपदी के यों कहने पर भी उनके रूप-लावण्य को देखकर और मीठी वाणी सुनकर नगरवासियों को विश्वास न हुआ कि यह कोई पेट पालने की चिन्ता में आई हुई अनाथ दासी है। उसी समय केकय-राजकुमारी राजा विराट की प्यारी रानी सुदेष्णा महल पर खड़ी नगर की सैर कर रही थीं। उन्होंने द्रौपदी को देखा। द्रौपदी को ऐसी परम सुन्दरी, अकेली और एकमात्र मैली धोती पहने देखकर रानी ने अपने पास बुलवाया और पूछा—भद्रे, तुम कौन हो? क्या काम करना चाहती हो?

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, द्रौपदी ने कहा—मैं सैरन्ध्री हूँ। जो कोई मुझे अपने यहाँ आश्रय देगा उसका काम मैं मन लगाकर करूँगी। इसी इच्छा से मैं इस नगर में आई हूँ। रानी सुदेष्णा ने कहा—हे सुन्दरी, तुमने जो कहा वह तुम ऐसी स्त्री के योग्य कभी नहीं हो सकता। बल्कि तुम्हीं बहुत सी दासियों की स्वामिनी होने योग्य हो। तुम्हारे गुल्फ (गट्टे) गूढ़ हैं; तुम्हारी जाँघें बराबर हैं; नाभि गहरी; नाक, आँखें, कान, स्तन, नख और घोंटी ऊँची है; हथेलियों, तलवों, आँखों के कोयों और मुख-मण्डल का रङ्ग गुलाबी है। तुम्हारी

१० वाणी हंस की सी है। केश बड़े मनोहर हैं। स्तन और नितम्ब मोटे हैं। पलकों के रोएँ कुटिल
हैं। ओठ कुँदरू के रङ्ग के हैं। कमर पतली है। गरदन शङ्ख के समान बनी है। नसें छिपी
हुई हैं। शरीर का रङ्ग साँवला है। मुख-मण्डल पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर है। क्या तुम
किसी दानव, गन्धर्व, किन्नर या नाग की कन्या हो? या तुम वनदेवी हो या कोई अप्सरा?
तुम काश्मीर देश की घोड़ी के समान [शानवाली] हो। शरद ऋतु के कमल के समान विशाल
नेत्रोंवाली, शरद ऋतु के कमल के समान सुगन्ध से पूर्ण, महालक्ष्मी सी जान पड़ती हो। तुम्हारा
रूप बहुत ही मनोहर है। इसलिए हे सुन्दरी, ठीक-ठीक बताओ, तुम कौन हो? तुम किसी तरह
दासी होने योग्य नहीं। तुम क्या यक्ष-कन्या, देव-कन्या, गन्धर्व-कन्या, अप्सरा, नाग-वधू, विद्या-
धरी, किन्नरी या चन्द्रमा की प्यारी स्त्री रोहिणी हो? तुम क्या अलम्बुषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीका,
मालिनी आदि अप्सराओं में से कोई हो? तुम इन्द्राणी, वरुण की स्त्री, विश्वकर्मा की स्त्री,
ब्राह्मणी या कोई प्रसिद्ध देव-कन्या हो? बताओ, तुम कौन हो?

द्रौपदी ने कहा—रानीजी! मैं देवी, गन्धर्व-पत्नी, असुर-पत्नी या किन्नरी आदि
में से कोई नहीं हूँ। आप से सच कहती हूँ, मैं तो सैरन्ध्री हूँ। मैं बाल सँवारना, अङ्गराग
(उबटन) लगाना, मल्लिका-कमल-चम्पा आदि सुगन्धित फूलों के गजरे बनाना जानती हूँ।
मैं पहले कृष्ण की प्यारी रानी सत्यभामा और कुरु-कुल की एकमात्र सुन्दरी, पाण्डवों की गुणवती
भार्या द्रौपदी की दासी रह चुकी हूँ। सत्यभामा और द्रौपदी के यहाँ उत्तम भोजन-वस्त्र
२० पाकर मैं बड़े सुख से रहती थी। देवी द्रौपदी ने मेरा नाम मालिनी रखा था। वे मुझे
अपने प्राणों से प्यारी सखी समझती थीं। रानीजी, इस समय आश्रय के लिए मैं आपके
पास आई हूँ।

रानी सुदेष्णा ने द्रौपदी की बातें सुनकर कहा—हे सुन्दरी, मैं तुम्हें बड़ी खुशी से अपने पास रख सकती हूँ; किन्तु मुझे यह डर है कि तुमको देखकर कहीं महाराज का चित्त चञ्चल न हो उठे। जब ये रनिवास की स्त्रियाँ भी मोहित होकर एकटक तुम्हीं को ताक रही हैं, और महल के भीतर वृक्ष तक तुम्हें देखने के लिए झुके से पड़ रहे हैं, तब तुम्हारे रूप को देखकर किस पुरुष का चित्त चलायमान न हो उठेगा? हे सुन्दरी, इसमें सन्देह नहीं कि महाराज विराट तुम्हारे अलौकिक रूप-लावण्य को देखकर मुझे छोड़ तुम्हीं पर आसक्त हो जायँगे। मुझे विश्वास है कि तुम जिस पुरुष की ओर अनुराग की दृष्टि से प्रसन्न होकर देख दोगी, या जो पुरुष सदा तुमको देखेगा वह अवश्य कामदेव के वश में हो जायगा। जैसे कोई मूर्ख पेड़ पर चढ़कर अपने गिरने का सामान करे [या जिस डाल पर खड़ा हो उसे ही काटने को तैयार हो] वैसे ही मेरे लिए तुमको राजमहल में आश्रय देना भी है। जैसे कर्कटी अपने नाश के लिए ही गर्भवती होती है वैसे ही मेरा तुमको अपने पास रखना होगा।

द्रौपदी ने कहा—रानीजी, राजा विराट या और कोई पुरुष मुझे प्राप्त नहीं कर सकता। क्योंकि पाँच नौजवान गन्धर्व मेरे स्वामी हैं। वे महाबली हैं और सदा [गुप्त रूप से] मेरी ३० रक्षा किया करते हैं। जो कोई मुझे अपनी जूठन नहीं खिलाता और मुझसे पैर नहीं धुलवाता उस पर मेरे स्वामी गन्धर्व बहुत प्रसन्न रहते हैं। जो पुरुष साधारण स्त्री की तरह जानकर मुझे प्राप्त करना चाहता है उसे मेरे स्वामी गन्धर्व उसी रात को मार डालते हैं। कोई पुरुष मेरे धर्म को नष्ट नहीं कर सकता। यद्यपि मेरे प्रियतम बली गन्धर्व इस समय बड़े सङ्कट में पड़े हुए हैं, तो भी वे गुप्त रूप से सदा मेरी रक्षा किया करते हैं।

यह सुनकर सुदेष्णा ने कहा—हे सुन्दरी, जो तुम्हारा ऐसा चरित्र है तो तुम यहाँ आराम से रहो; मैं तुमको अपने यहाँ स्थान देती हूँ। तुम्हें किसी की जूठन छूनी [या खानी] नहीं पड़ेगी। तुम किसी के पैर भी न धोना। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम प्रसन्नतापूर्वक मेरे यहाँ रहो।

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, पतिव्रता द्रौपदी विराट की रानी सुदेष्णा से यों आश्वास और आश्रय पाकर वहाँ सुख से रहने लगीं। उन्हें भी कोई नहीं जान सका। ३७

दसवाँ अध्याय

सहदेव का राजा विराट के यहाँ उपस्थित होना

वैशम्पायन कहते हैं—पाण्डु के पुत्र सहदेव भी गोपाल के वेष में, ग्वालों की भाषा का अभ्यास करके, विराट राजा के पास गये। सहदेव राजभवन के पास, गोशाला के निकट, जाकर खड़े हुए। उन्हें देखकर राजा विराट को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा के भेजे हुए लोग सहदेव के पास आकर उनको विराट के पास ले गये। रूपवान् सहदेव को देखकर विराट ने उनका यथोचित आदर करके कहा—हे श्रेष्ठ पुरुष, तुमको पहले मैंने कभी नहीं देखा। तुम कौन हो? किसके पुत्र हो? कहाँ से, किस इरादे से, यहाँ आये हो? सब हाल कहो।

सहदेव ने मेघ के समान गम्भीर स्वर से कहा—महाराज, मैं गोपाल वैश्य हूँ। मुझको तन्ति-पाल और अरिष्टनेमि भी कहते हैं। मैं पहले महाराज युधिष्ठिर के यहाँ गायों की रक्षा किया करता था। अब पाण्डवों का कहीं पता नहीं है। इसी से जीविका-हीन होकर मैं आपके यहाँ आया हूँ। आप क्षत्रियों में श्रेष्ठ हैं। आपके पास रहकर वही अपना पहले का काम करना चाहता हूँ। और कोई काम करना, या आपको छोड़कर और किसी के आश्रय में रहना, मुझे पसन्द नहीं। मैं इस काम में बहुत निपुण हूँ। मुझे आश्रय दीजिए।

इस पर विराट ने कहा—हे शत्रुदमन, तुम ठीक-ठीक अपना परिचय दो। तुम्हारे रूप-रङ्ग से मुझे स्पष्ट जान पड़ता है कि तुम ब्राह्मण अथवा समुद्र पर्यन्त पृथ्वी-मण्डल के स्वामी कोई प्रतापी क्षत्रिय

हो। वैश्य की वृत्ति कभी तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम किस राजा के राज्य से आये हो? किस-किस काम में निपुण हो? मेरे यहाँ किस तरह रहोगे? क्या वेतन लोगे?

सहदेव ने कहा—पाण्डव पाँच भाई थे। उनमें बड़े युधिष्ठिर के अस्सी हज़ार, भीमसेन के दस हज़ार और अर्जुन के बीस हज़ार गायें थीं। मैं उन सब गायों का पालन और गिनती
१० करता था। मुझे लोग तन्तिपाल कहते थे। मैं दस योजन तक फैली हुई गायों की गिनती कर सकता हूँ। गायों की सम्बन्ध की सब बातें मैं जानता हूँ। उनके सम्बन्ध में भूत, भविष्य, वर्त्तमान कुछ भी ऐसा नहीं जो मैं न जानता होऊँ। महात्मा युधिष्ठिर मेरे सब गुणों को जानते थे और मुझपर बहुत प्रसन्न रहते थे। जिस उपाय से गायों का वंश बढ़ता है और वे रोगों से बची रहती हैं सो मैं अच्छी तरह जानता हूँ। ये सब काम मुझे अच्छी तरह मालूम हैं। राजन् जिनके मूत्र को सूँघकर बाँझ स्त्री के गर्भ रह जाता है उन उत्तम लक्षणोंवाले बैलों की भी मुझे पहचान है।

राजा विराट ने कहा—मेरी गोशाला और पशुशाला में अनेक गुणों से युक्त बहुत से पशु हैं। उनमें से किसमें कौन सा गुण है, यह अभी तक मालूम नहीं हुआ। मैं उन पशुओं को तुम्हें सौंपता हूँ। पशुओं की रक्षा करनेवाले जितने कर्मचारी मेरे यहाँ हैं उनका सरदार भी तुमको बनाता हूँ। तुम प्रसन्नता के साथ यह काम स्वीकार करो।

इस प्रकार अपना परिचय देकर सहदेव राजा विराट के यहाँ सुख से रहने लगे। राजा भी उन्हें, उनकी इच्छा के अनुसार, वेतन देकर सन्तुष्ट रखने लगे। वहाँ पर
१६ कोई भी सहदेव को पहचान नहीं सका।

ग्यारहवाँ अध्याय

अर्जुन का राजा विराट के यहाँ जाना

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय! अब परम सुन्दर, ऊँचे डील-डौलवाले, महाबाहु, मस्त हाथी के समान पराक्रमी अर्जुन भी स्त्रियों के समान कानों में कुण्डल, हाथों में चूड़ियाँ, कङ्कन और बाजू आदि पहने, बड़ी-बड़ी लटें खोले विराट की सभा के पास पहुँचे। उनके प्रत्येक पग रखने पर पृथ्वी मानों काँप उठती थी। अपने को नपुंसक के वेष में छिपाये हुए तेजस्वी इन्द्र-पुत्र अर्जुन को देखकर राजा विराट ने सभासदों से कहा—यह कौन है? कहाँ से आया है? मैंने न तो कभी इसे कहीं देखा और न इसके बारे में कुछ सुना है। सभासदों ने कहा—महाराज, हम भी इसको नहीं जानते।

इतने में नपुंसक-वेषधारी अर्जुन राजा विराट की सभा में पहुँचे। उन्हें देखकर विस्मित विराट ने कहा—हे महात्मा! तुम बलवान्, मस्त हाथी के समान पराक्रमी, साँवले, मनोहर

अर्जुन रनिवास में रहकर राजकुमारी उत्तरा को नाचने और गाने बजाने की शिक्षा देने लगे।—पृ० १३७९

जवान देख पड़ते हो। चूड़ी, कङ्कन, बाजू, कुण्डल, वेणी आदि धारण करने पर भी तुम्हारी शोभा कम नहीं है। तुम्हारा देव-सदृश रूप देखने से तुम नपुंसक नहीं जान पड़ते। तुम मेरी आज्ञा से रथ पर चढ़कर अपनी इच्छा के अनुसार सैर करो। आज से तुम मेरे पुत्रों के अथवा मेरे ही तुल्य हुए। मैं वृद्ध हो गया हूँ, इस कारण राज्य का पालन करने में असमर्थ हूँ। इसलिए अब तुम्हीं मत्स्य देश का शासन करो।

अर्जुन ने कहा—महाराज [मैं तो नपुंसक हूँ।] मेरा नाम बृहन्नला है। नाचना और गाना-बजाना मैंने बहुत अच्छी तरह सीखा है। आप मुझे देवी उत्तरा को नाचना-गाना सिखाने के लिए अपने यहाँ रख लीजिए। जिस कारण से मेरी यह दशा हुई है उसे याद करके छाती फटने लगती है। मेरे माता-पिता कोई नहीं है। मैं पहले पाण्डवों के यहाँ रहता था। इस समय उन लोगों के ग़ायब हो जाने से आपके यहाँ आश्रय पाने की आशा से आया हूँ। राजा विराट ने कहा—बृहन्नला, मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करता हूँ। तुम मेरी बेटी उत्तरा और उसकी सखियों को नाचने-गाने की कला सिखाओ। किन्तु मेरी समझ में तुम इस काम के योग्य नहीं हो। तुम तो समुद्र पर्यन्त पृथ्वी-मण्डल के शासक होने योग्य हो। १०

वैशम्पायन कहते हैं—इसके बाद अर्जुन को नाचने, गाने और बजाने में चतुर देखकर, मन्त्रियों से सलाह करके, राजा विराट ने स्त्रियों से उनकी परीक्षा कराई। फिर स्त्रियों से जाँच करवाने पर जब निश्चय हो गया कि अर्जुन नपुंसक हैं तब उन्हें रनिवास में भेज दिया। अर्जुन रनिवास में रहकर राजकुमारी उत्तरा को, उसकी सखियों और दासियों को, नाचने और गाने-बजाने की शिक्षा देने लगे। कुछ ही दिनों में वे उनको बहुत प्यारे हो गये। राजन्, इस तरह स्त्रियों के बीच में राजा विराट के अन्तःपुर में अर्जुन रहने लगे। रनिवास के भीतर या बाहर कोई आदमी उनको नहीं पहचान सका। १४

—

बारहवाँ अध्याय

नकुल का राजा विराट के यहाँ जाना

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय, [इसके बाद परम सुन्दर नकुल विराट की सभा में पहुँचे ।] मेघमण्डली से निकले हुए सूर्य के समान तेजस्वी नकुल को राजा विराट [और उनके सभासदों] ने देखा । नकुल महाराज विराट के घोड़ों को देखते चले आ रहे थे । राजा विराट ने अपने नौकरों से कहा—यह देवतुल्य पुरुष कहाँ से आ रहा है? यह मेरे घोड़ों को बड़े ध्यान से देखता आ रहा है, इससे यह घोड़ों के बारे में अधिक जानकारी रखनेवाला आदमी जान पड़ता है । तुम लोग शीघ्र इसे मेरे पास लाओ ।

राजा के सेवक जब नकुल को लाकर राजसभा में पहुँचे तब नकुल ने कहा—राजन्, आपकी जय हो । घोड़ों के बारे में मुझे पूरी जानकारी है । [मेरा नाम ग्रन्थिक है ।] मैं आपकी अश्व-शाला में रहकर घोड़ों की देख-रेख का काम करना चाहता हूँ । [आप वेतन नियत करके मुझे अपने यहाँ रख लीजिए ।]

राजा विराट ने कहा—ग्रन्थिक, मैं तुमको अपनी घुड़साल का प्रधान कर्मचारी बनाता हूँ। जितना धन चाहो उतना तुमको मिलेगा । अब ठीक-ठीक बताओ कि तुम इस समय कहाँ से क्यों आये हो ? पहले तुम कहाँ थे ? किस-किस काम में तुम होशियार हो ?

नकुल ने कहा—राजन्, पाण्डवों मे सबसे बड़े महाराज युधिष्ठिर ने पहले मुझे अपने यहाँ घोड़ों की देख-रेख के लिए नौकर रख लिया था । मैं घोड़ों की प्रकृति पहचानना, घोड़ों को शिक्षा देना, उनकी चिकित्सा करना और दुष्ट घोड़ों को वश में करना बहुत अच्छी तरह जानता हूँ । इन कामों में मैं पूरा उस्ताद हूँ । मेरे पास रहनेवाले घोड़े मेहनत करने से थकते नहीं और तेज चलते हैं । घोड़ों की कौन कहे घोड़ियाँ भी मेरे शासन में रहने से किसी तरह का ऐब नहीं करतीं । युधिष्ठिर और अन्य लोग मुझे ग्रन्थिक नाम से पुकारते थे ।

राजा विराट ने कहा—मेरे घोड़े, साईस, सारथी, सवार आदि सब अश्व-शाला के लोग आज से तुम्हारे अधीन हुए । हे वीरश्रेष्ठ, जो तुम यही काम पसन्द करते हो तो करो । तुम जितना धन चाहोगे उतना दिया जायगा । मैं तो तुमको इस काम के योग्य नहीं समझता, तुम चक्रवर्त्ती राजा होने योग्य हो । राजा युधिष्ठिर के यहाँ तुम्हारा जैसा आदर-सत्कार होता था वैसा ही मेरे यहाँ होगा । मुझे खेद है कि महाराज युधिष्ठिर इस समय बिना नौकर-चाकरों के वन-वन मारे-मारे फिरते हैं ।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, गन्धर्वराज सदृश सुन्दर नकुल भी राजा विराट से इस तरह आदर पाकर उनके यहाँ रहने लगे । उन्हें भी कोई नहीं पहचान सका । जनमेजय,

इस प्रकार समुद्र पर्यन्त पृथ्वी-मण्डल के मालिक होने पर भी सत्यपरायण पाँचों पाण्डव, प्रिया द्रौपदी सहित, राजा विराट के यहाँ रहने लगे। प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए पराई सेवा का दुःख और अज्ञातवास का कष्ट उन्हें स्वीकार करना पड़ा। १३

समय-पालनपर्व

तेरहवाँ अध्याय

भीमसेन के हाथ से जीमूत पहलवान का वध

जनमेजय ने पूछा—भगवन् विराट के नगर में रहकर वेष बदले हुए महापराक्रमी पाण्डवों ने इसके उपरान्त क्या किया? वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, भगवान् धर्म और महाराज तृणबिन्दु के प्रसाद से अज्ञात होकर, विराट राजा के यहाँ उन्हें प्रसन्न करते हुए, पाण्डव अज्ञातवास का समय बिताने लगे। महाराज युधिष्ठिर राजा विराट की सभा के मुख्य सभासद हुए। राजा, राजपुत्र और सब सभासदों को वे परम प्रिय थे। चौसर खेलने में वे बड़े ही होशियार थे। लोग जैसे डोरी से बँधे हुए पक्षियों को लेकर, अपनी इच्छा के अनुसार चला-फिराकर, खेलते हैं वैसे ही चौसर के पासों पर महाराज युधिष्ठिर का अधिकार था। वे नित्य चौसर के खेल में बहुत सा धन जीतकर गुप्त रूप से अपने भाइयों को देते थे [जिसमें वे सुख से रहें]। भीमसेन विराट के यहाँ रसोई-घर के मालिक थे। वे नित्य अनेक उत्तम भोजन की सामग्रियाँ, स्वादिष्ठ मांस आदि अपने भाइयों को खिलाते-पिलाते थे। अर्जुन नपुंसक-वेष से रनिवास में रहकर इनाम में जो पुराने उतारे हुए कपड़े पाते थे उन्हें, छिपकर, अपने भाइयों को देते थे। गोप-वेषधारी सहदेव दूध-दही-घी आदि चीज़ें अपने भाइयों को लाकर देते थे। नकुल भी घोड़ों की सेवा आदि कामों से प्रसन्न राजा विराट से इनाम और तनख्वाह में जो द्रव्य पाते थे सो अपने भाइयों को देते थे। इस प्रकार पाँचों भाई [लोगों की नज़र बचाकर] १०
परस्पर सहायता करते रहते थे। पतिव्रता तपस्विनी द्रौपदी भी सबसे छिपाकर नित्य अपने पतियों को [किसी न किसी बहाने] देख लिया करती थीं।

महारथी पाण्डव इस प्रकार परस्पर सहायता करते हुए, छिपे-छिपे, विराट के यहाँ रहने लगे। दुष्ट दुर्योधन पता न पा जाय, इस डर से शङ्कित पाँचों भाई सदा अपने को छिपाये रखने की धुन में रहते थे [और द्रौपदी की रक्षा पर भी सदा गुप्त रूप से दृष्टि रखते थे]। चौथा महीना लगने पर मत्स्यदेश की राजधानी में एक बड़ा भारी ब्रह्मा का मेला हुआ। यह मेला बहुत दिनों से प्रचलित था। मत्स्यदेश की प्रजा इस मेले को बहुत पसन्द करती थी। ब्रह्मा और शङ्कर की सभा का सा राजा का दरबार लगा। ख़ूब जमाव होने लगा। अपना-

अपना बल और कौशल दिखाने को बड़े-बड़े बली, महाकाय पहलवान और वीर चारों ओर से आने लगे। वे अनेकों बार इस उत्सव के अवसर पर आकर मत्स्यराज को अपना बाहु-बल और उस्तादी दिखा चुके थे। उनमें सबसे अधिक बलवान् जीमूत नाम का पहलवान था। वह अखाड़े में खड़ा होकर बाहर से आये हुए, और राजा के यहाँ रहनेवाले, पहलवानों तथा वीरों को भिड़ने के लिए बार-बार ललकारने लगा। किन्तु किसी को उससे लड़ने के लिए सामने जाने का साहस नहीं हुआ। जब कोई पहलवान जीमूत से भिड़ने को तैयार न हुआ तब राजा विराट ने अपने रसोइये बल्लव (भीमसेन) को बुलवाया। उन्होंने भीमसेन को उस पहलवान से युद्ध करने की आज्ञा दी। आज्ञा पाकर भीमसेन बड़े असमञ्जस में पड़े। वे सोचने लगे कि अगर नहीं लड़ता हूँ तो राजा नाराज़

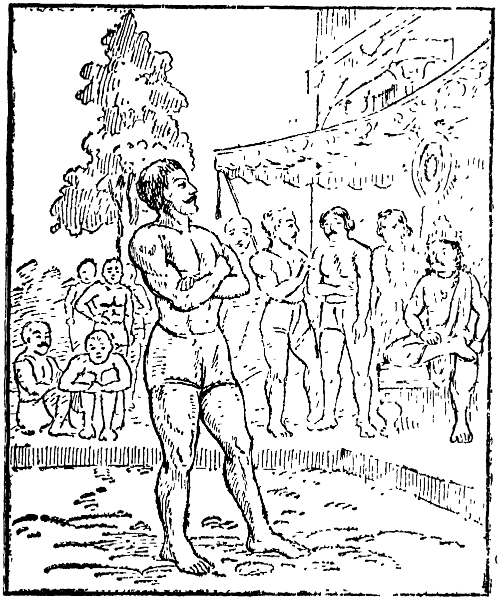

२० होंगे, और जो लड़ता हूँ तो कहीं कोई मेरा बल देखकर मुझे पहचान न ले! [अन्त को भीमसेन ने युधिष्ठिर का इशारा पाकर लड़ना ही ठीक समझा।]

सिंह के समान गर्वीले भीमसेन, विराट से आज्ञा लेकर, अखाड़े में आये। अब उन्होंने लँगोट बाँधा। उन्हें देखकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। तब महाबली भीमसेन ने वृत्रासुर सदृश महापराक्रमी जीमूत को लड़ने के लिए ललकारा। फिर वे दोनों परम पराक्रमी वीर दो मस्त गजराजों की तरह बड़े उत्साह से भिड़ गये। परस्पर जय चाहनेवाले दोनों वीर पुरुष, सिंह के समान गरज-गरजकर, प्रसन्नतापूर्वक लड़ने लगे। दोनों के परस्पर प्रहार करने से वज्रपात या पहाड़ फटने का सा भयङ्कर शब्द होने लगा। वे परस्पर जय की इच्छा से एक दूसरे पर चोट करने का मौक़ा देखते हुए लड़ रहे थे। कभी हाथ मारते थे; कभी घूँसे की चोट करते थे; कभी एक में भिड़कर परस्पर एक दूसरे को रेल ले जाते थे; कभी ज़मीन पर गिराकर रगड़ते थे; कभी ऊपर उठा लेते थे; कभी छाती पर घूँसे जमाते थे; कभी कन्धों पर रख लेते थे; कभी दाँव करके नीचे पकड़ लाते थे; कभी गरज-गरजकर वज्रसदृश चपेटा मारते थे;

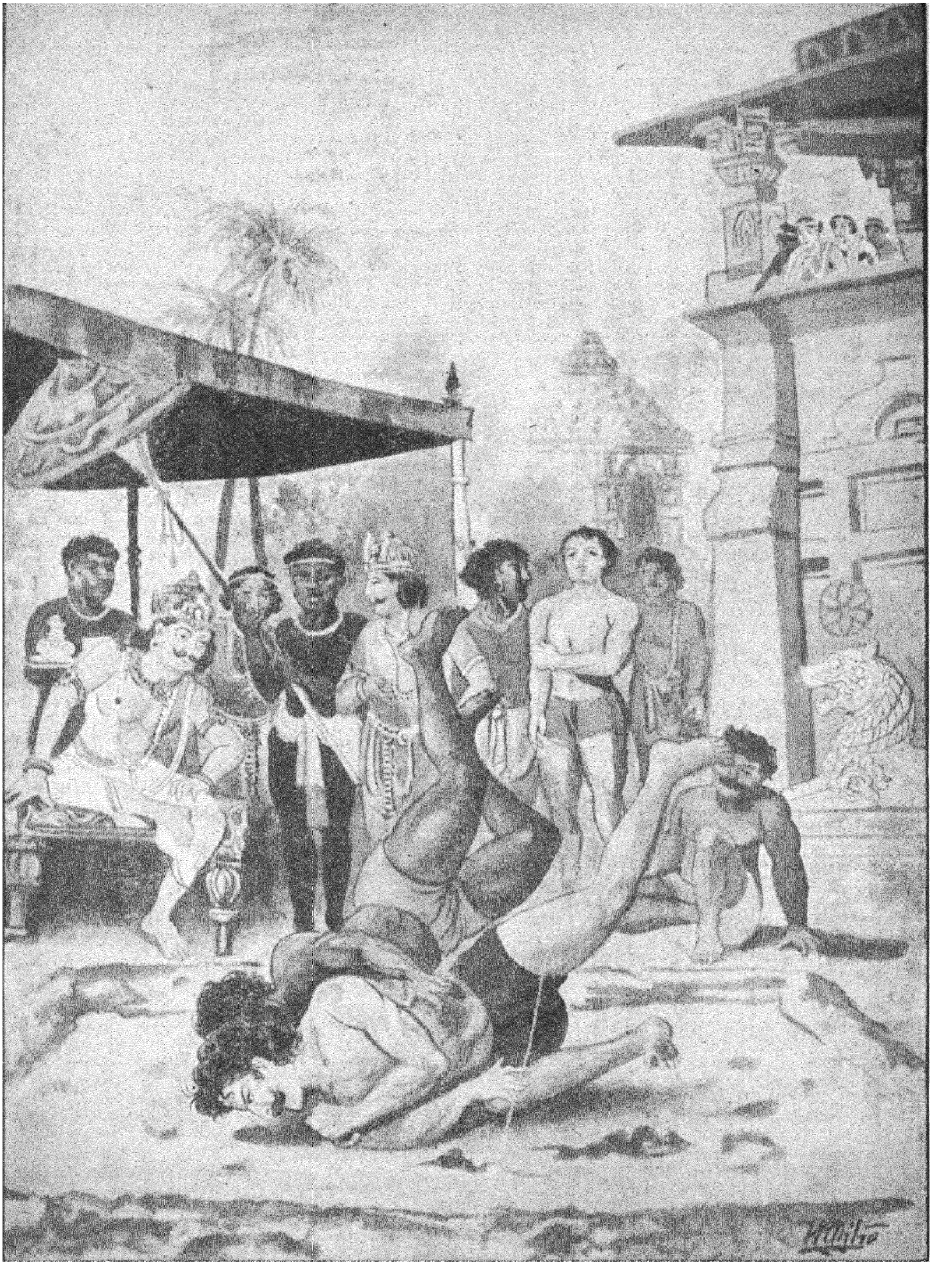

महाबाहु भीमसेन ने सैकड़ों बार घुमाकर उसे पृथ्वी पर पटक दिया ।—पृ० १३८३

कभी उँगलियों से, नाख़ूनों से वार करते थे; कभी लातें मारते थे; कभी जाँघ से जाँघ लड़ाते
और कभी सिर से सिर भिड़ाकर ज़ोर करते थे। इस तरह वे कुश्ती लड़ने लगे। वे दोनों
वीर एक दूसरे को खींचते, रेलते और नीचे गिराने का यत्न करते थे। फिर परस्पर भिड़कर ३०
झुमककर लोहे के बेलन सरीखे हाथ से हाथ मिलाकर भिड़ गये। तब शत्रुनाशन महाबली
भीमसेन ने, हाथी पर सिंह की भाँति, झपटकर शत्रु पर हमला किया। ज़ोर से गरजकर
उन्होंने जीमूत को उठा लिया। वे उसे सिर के ऊपर घुमाने लगे। यह देखकर सब पहलवानों
और नगर-निवासी दर्शकों को बड़ा आश्चर्य हुआ। महाबाहु भीमसेन ने सैकड़ों बार घुमाकर
उसे पृथ्वी पर पटक दिया। उसे पटककर वे ऊपर से रगड़ने लगे।

इस तरह बड़ा प्रसिद्ध पहलवान जीमूत जब भीमसेन के हाथ से मारा गया तब राजा
विराट, उनके भाई-बन्धु और दर्शक बहुत ही प्रसन्न हुए। राजा विराट ने प्रसन्न होकर भीम-
सेन को बहुत सा धन दिया। महावीर भीमसेन ने इसी तरह धीरे-धीरे सब पहलवानों और
वीरों को हरा दिया। कुछ दिन में वे महाराज विराट के बहुत ही प्यारे हो गये। जब विराट
ने देखा कि उनके राज्य में भीमसेन के समान वीर दूसरा नहीं है तब वे सिंह, बाघ और मस्त
हाथियों के साथ भीमसेन को भिड़वाने लगे। कुछ दिन के बाद राजा की आज्ञा से रनिवास ४०
में जाकर स्त्रियों के आगे सिंह, हाथी आदि प्रबल पशुओं से युद्ध करके भीमसेन अपनी वीरता
दिखाने लगे। अर्जुन भी सङ्गीत और नाच के द्वारा राजा विराट को और रनिवास की स्त्रियों
को सन्तुष्ट रखने लगे। नकुल घोड़ों को अपने क़ाबू में रखकर और सुशिक्षित प्रशंसनीय बना-
कर राजा से बहुत सा धन और सम्मान पाने लगे। सहदेव ने दुष्ट बैलों को सीधा कर लिया।
यह देखकर राजा विराट उन पर भी बहुत ख़ुश हुए। बहुत सा धन देखकर राजा ने उनका सत्कार
किया। किन्तु महारथी पाण्डवों को इस प्रकार असह्य क्लेश उठाते देखकर द्रौपदी बहुत दुःखित होकर
लम्बी साँसें लेने लगती थीं। राजन्, पुरुषश्रेष्ठ पाण्डव इस तरह छिपे रहकर राजा विराट के काम
करते हुए वहाँ सुख से रहने लगे। ४६

कीचकवध पर्व

चौदहवाँ अध्याय

कीचक का द्रौपदी पर मोहित होना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महारथी पाण्डवों ने इस तरह छिपे रहकर विराट राजा के यहाँ दस महीने बिताये; परन्तु द्रौपदी के दुःख की हद नहीं थी। क्योंकि वे स्वयं दासियों पर प्रभुता करने योग्य होकर भी विराट की रानी सुदेष्णा की सेवा किया करती थीं। अपने काम और

अपने चाल-चलन से वे रानी को बहुत प्यारी थीं। रनिवास की और स्त्रियाँ भी उन्हें स्नेह की दृष्टि से देखती थीं।

एक दिन परम सुन्दरी द्रौपदी रनिवास में देवी के समान बैठी थीं। इसी समय राजा विराट का साला और सेनापति महाबली कीचक भीतर आया। द्रौपदी को देखते ही वह कामदेव के वश हो गया। उनको पाने की इच्छा से अधीर और काम की आग से तप्त कीचक अपनी बहन सुदेष्णा के पास पहुँचा। उसने मुस्कराकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—बहन, यह परम रूप-लावण्यमयी स्त्री कौन है? किसकी स्त्री है? कहाँ से आई है? मैंने पहले कभी राजा विराट के रनिवास में इस त्रिभुवन-सुन्दरी को नहीं देखा। मदिरा जैसे अपनी महक से ही मन को मतवाला बना देती है वैसे ही यह मुझे अपने रूप से विह्वल कर रही है। यह मुझे अपने वश में किये लेती है और मेरे मन को मथे डालती है। इसे देखकर मैं कामदेव के बाणों से घायल हो गया हूँ। इसका मिलना ही उसकी एकमात्र औषध है। रानी, इस स्त्री का अलौकिक रूप है; यह तुम्हारी दासी होने योग्य कभी नहीं है। मैं चाहता हूँ कि यह मेरे ऊपर और जो कुछ मेरा है उसके ऊपर प्रभुत्व करे। अनेक हाथी-रथ घोड़ों से युक्त, जनपरिपूर्ण, समृद्धि-युक्त, खाने-पीने की चीज़ों से भरा, सुवर्ण-रत्न के गहनों से पूर्ण, मेरा मनोहर महल इस सुन्दरी के रूप से शोभित हो।

१० इस प्रकार सुदेष्णा से कहकर द्रौपदी से मिलने के लिए दुष्ट कीचक उनके पास गया। जैसे वन में विचरनेवाला क्षुद्र सियार सिंह-कन्या के प्रेम की इच्छा करे वैसे ही द्रौपदी से मिलने की उत्कण्ठा से आकुल कीचक उनके पास पहुँचा। पास जाकर उसने द्रौपदी से पूछा—सुन्दरी, तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? यहाँ कहाँ से आई हो? हे शुभरूपिणी, तुम्हारे समान सुन्दर शरीर और रमणीय रूपवाली स्त्री आज तक मैंने नहीं देखी-सुनी। हे चन्द्रमुखी, तुम्हारा अनुपम रूपशाली मनोहर मुख-मण्डल अपनी शोभा से कलङ्क-रहित चन्द्रमण्डल को भी नीचा दिखा

रहा है। तुम्हारे सलोने नेत्र कमलदल के समान विशाल और हृदय को हरनेवाले हैं। तुम्हारी वाणी कोयल की तान को मात करती है। तुम्हारी ऐसी असाधारण रूपवाली, सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्री मैंने पृथ्वी पर कहीं नहीं देखी। सुन्दरी, तुम क्या कमलवासिनी लक्ष्मी हो? या भूति, ह्री, श्री, कीर्त्ति अथवा कान्ति में से कोई हो? अथवा अत्यन्त रूपवती साक्षात् कामदेव की स्त्री रति हो? निर्मल चाँदनी के समान तुम्हारे शरीर की कान्ति, कोमल पलकोंवाली आँखें, और मन्द मुसकान से शोभित सलोना मुखचन्द्र देखकर पृथ्वी पर ऐसा कौन वीर धीर पुरुष है जो कामदेव के बाणों का निशाना न बन जाय? हे निर्दोष अङ्गोंवाली सुन्दरी! तुम्हारे ये हार आदि आभूषणों से अलङ्कृत, कमल-कली के आकारवाले, घने और उभरे हुए स्तन कामदेव के तीक्ष्ण अङ्कुशों की
तरह मुझे सता रहे हैं। हे मनोहर मुस्कानवाली सुन्दरी! तुम्हारी यह त्रिवलीयुक्त, स्तनों के २१
बोझ से झुकी हुई, मुट्ठी में आजानेवाली कमर और नदी-तट सदृश निर्मल जङ्घाएँ देखकर मैं काम की कठिन व्याधि से पीड़ित हो रहा हूँ। हे सुन्दरी! अधिक क्या कहूँ, दावानल के समान असह्य काम की आग तुम्हारे मिलने की चाह से और अधिक भड़ककर मुझे जला रही है। इसलिए हे प्रिये, तुम आत्मसमर्पणरूप जल की वर्षा करनेवाले समागम-रूपी मेघ के द्वारा इस बढ़ रही काम की आग को शीघ्र बुझाओ। हे चन्द्रमुखी, तुम्हारे सङ्गम की इच्छा की सहायता से और भी पैने होकर ये कामदेव के कठोर बाण मेरे हृदय को मथ रहे हैं—मेरे हृदय को फाड़कर तीव्र वेग से भीतर घुसे जा रहे हैं। इसलिए हे सुन्दरी, तुम आत्मसमर्पण करके मुझे बचा लो। हे गजराजगामिनी! तुम तरह-तरह के विचित्र कपड़े, गहने, फूल-माला आदि पहन करके मेरे साथ इच्छापूर्वक भोग-विलास करो। मेरी और अपनी इच्छा पूरी करो। हे सुन्दरी, तुम सम्पूर्ण भोग-सुखों के योग्य हो। ऐसा होना ही स्वाभाविक होगा। फिर तुम क्यों क्लेश के साथ व्यर्थ समय बिता रही हो? मेरे साथ रहकर सब भोग-सुखों की अधिकारिणी बनो। अमृत
के समान स्वादिष्ठ भोजन-पान करती हुई सौभाग्य का सुख भोगो। हे मनोहर मुखवाली! भोग-विलास ३०
के बिना तुम्हारी यह मनोहर जवानी, भुवन-मोहन रूप और रुचिर शरीरशोभा, बिना पहनी हुई माला की तरह, बिलकुल बेकार हुई जा रही है। हे मनोहर मुसकानवाली, तुम्हारे लिए मैं अपनी पहले की स्त्रियों को छोड़ दूँगा। वे सब तुम्हारी दासी होकर रहेंगी। और, मैं भी सदा तुम्हारी आज्ञा का पालन करनेवाला बेदाम का सेवक हो जाऊँगा।

द्रौपदी ने कहा—हे सूतपुत्र, मैं हीन वंश में उत्पन्न चोटी गूँधने का काम करनेवाली दासी सैरन्ध्री हूँ। मुझको लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं और उनका यह भाव ही ठीक है। इसलिए मुझसे ऐसी बातें करना और मुझे इस दृष्टि से देखना कभी तुम्हारे योग्य काम नहीं। फिर मैं तो पराई स्त्री हूँ। मैं स्वभाव से ही दया के योग्य हूँ। तुम धर्मात्मा हो; धर्म का पालन करो। पराई स्त्री से अपने को प्रसन्न करने की इच्छा मत करो। कुकर्म का त्याग ही

सज्जनों का नित्य-व्रत है। पापी लोग, लोभ और मोह के वश होकर, घोर अयश के भागी होते हैं। उन्हें दारुण भय प्राप्त होता है।

दुष्ट बुद्धिवाला कीचक यह जानता था कि पराई स्त्री को प्राप्त करने की चेष्टा बुरी होती है। उसमें प्राण तक चले जाते हैं। वह सब दोषों की खान है। किन्तु वह काम के वश हो रहा था। इसलिए द्रौपदी के यों कहने का उस पर कुछ भी असर न हुआ।

४१ कीचक कहने लगा—हे सुमुखी, मैं तुम्हारे कारण कामदेव के अत्यन्त अधीन हो रहा हूँ। ऐसी दशा में मेरी बात न मानना कभी तुम्हें उचित नहीं। अधिक क्या कहूँ, मैं केवल तुम्हारे ही अधीन हूँ और ऐसे प्रिय वचन कहकर तुमसे प्रार्थना कर रहा हूँ। इस समय जो मेरा कहा न मानोगी तो पीछे तुम पछतावे की आग में जलोगी। हे पतली कमरवाली, मैं इस मत्स्य राज्य का स्वामी हूँ। इस देश की प्रजा मेरे ही बाहु-बल के प्रभाव से इस राज्य में सुख से रहती है। मैं पृथ्वीमण्डल भर में अद्वितीय पराक्रमी हूँ। रूप, जवानी, सौभाग्य और श्रेष्ठ भोग भोगने में मेरे समान कोई पुरुष इस पृथ्वी पर नहीं है। तुम चाहो तो मुझे स्वीकार करके सब प्रकार के श्रेष्ठ भोग प्राप्त कर सकती हो। फिर क्यों यह निन्दित दासी का काम कर रही हो? प्रिये, मैं तुमको यह राज्य देता हूँ। तुम स्वामिनी होकर इस राज्य-सुख को भोगो। मुझे भजकर अनेक श्रेष्ठ भोग और ऐश्वर्य की अधिकारिणी बनो।

कीचक के मुँह से ऐसी निन्दित बातें सुनकर पतिव्रता द्रौपदी बहुत ही व्यथित हुई फिर उसे बारम्बार धिक्कार देती हुई द्रौपदी ने कहा—हे सूतपुत्र, मोह के वश होकर अपने जीवन को सङ्कट में न डालो। जो न मानोगे तो अपनी मौत अपने आप बुलाओगे। देखो, पाँच महाबली गन्धर्व मेरे स्वामी हैं। वे सदा अदृश्यरूप से मेरी रक्षा किया करते हैं। तुम मुझे नहीं पा सकते। मेरे पति गन्धर्व कुपित होकर तुमको मार डालेंगे। आपही अपना नाश मत करो,
५० कहे देती हूँ! तुम उस राह में जाना चाहते हो जिसमें कोई पुरुष नहीं जा सकता। जैसे कोई नासमझ छोटा बालक नदी को तैरकर पार करना चाहे वैसा ही तुम्हारा यह दुष्ट विचार है। देखो, ऐसा दुष्ट विचार करके अगर तुम पाताल में, अन्तरिक्ष में, या समुद्र-पार में भी भागकर जाओगे तो उन बदला लेने में समर्थ, आकाशचारी गन्धर्वों के हाथ से किसी तरह नहीं बचोगे। जैसे कोई रोग-पीड़ित पुरुष अपनी मौत चाहता हो वैसे ही तुम मुझे चाह रहे हो। जैसे माँ की गोद में पड़ा हुआ बालक आकाश के चन्द्रमा को पकड़ना चाहे वैसे ही तुम मुझे पाने की वृथा इच्छा कर रहे हो। यदि उन गन्धर्वों की प्रिया मुझको प्राप्त करना चाहोगे तो किसी तरह जीते न बचोगे। याद रक्खो, इस ख़याल को छोड़ देने में ही तुम्हारी जिन्दगी है। न
५४ मानोगे तो मरोगे।

सुदेष्णा ने कहा—तुम शीघ्र कीचक के घर जाकर पीने योग्य उत्तम मदिरा ले आओ।—पृ० १३८७

पन्द्रहवाँ अध्याय

रानी सुदेष्णा का द्रौपदी को कीचक के घर भेजना

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, द्रौपदी के स्वीकार न करने पर कामदेव के बाणों से पीड़ित और मोह को प्राप्त कीचक अपनी बहन सुदेष्णा रानी के पास जाकर कहने लगा—बहन, ऐसा उपाय करो जिसमें यह गजराजगामिनी सैरन्ध्री शीघ्र मुझे मिले। अगर यह न होगा तो मैं अपनी जान दे दूँगा।

[पहले तो सुदेष्णा ने समझा-बुझाकर भाई को इस पाप-कर्म से रोकना चाहा, पर जब उसने किसी तरह न माना तब] सुदेष्णा ने कहा—अच्छा, तुम किसी पर्व के अवसर पर अपने घर में मदिरा और अनेक प्रकार की भोजन की सामग्री बनवाना। मैं मदिरा लाने के बहाने सैरन्ध्री को तुम्हारे पास भेजूँगी। उसी अवसर पर, निर्विघ्न निर्जन स्थान में, उसे इस प्रकार समझाना-बुझाना जिसमें वह तुम पर रीझ जाय।

[अपने स्वार्थ के विचार से भाई की प्रार्थना पूरी करने के लिए सुदेष्णा ने यह उपाय निकाला। सुदेष्णा का उत्तर सुनने से कीचक को कुछ ढाढ़स बँधा।] वह उसी समय वहाँ से अपने घर चला गया। [कीचक के सिर पर तो मौत सवार थी।] उसने चटपट होशियार रसोइये से राजभोग के योग्य उत्तम भोजन-सामग्री और अनेक प्रकार का मांस बनवाया। उत्तम मदिरा भी मँगवाकर रक्खी। इस प्रकार सब तैयारी करके उसने अपनी बहन को खबर दी। रानी सुदेष्णा ने द्रौपदी को बुलाकर कहा—सैरन्ध्री, मैं प्यास के मारे व्याकुल हो रही हूँ। इसलिए तुम शीघ्र कीचक के घर जाकर पीने योग्य उत्तम मदिरा ले आओ। १०

द्रौपदी ने कहा—रानीजी, कीचक बड़ा निर्लज्ज है। इस कारण मैं उसके घर न जा सकूँगी। मैं पतियों की इच्छा के विरुद्ध काम करनेवाली या अपनी इच्छा के माफ़िक़ काम करनेवाली होकर आपके यहाँ न रह सकूँगी। आपके घर में रहने से पहले मैंने जो नियम आपसे स्वीकार कराये थे, उन्हें आप भूली न होंगी। कामदेव के वश मदान्ध कीचक मुझे देखते ही मेरा सतीत्व नष्ट करने को तैयार हो जायगा। इस कारण मैं किसी तरह उसके पास नहीं जा सकती। रानीजी, आपके यहाँ बहुत सी दासियाँ हैं; उनमें से किसी को भेज दीजिए।

सुदेष्णा ने [हुकूमत जताकर] कहा—सैरन्ध्री, मैं तुम्हीं को भेजूँगी। कीचक कभी तुम्हारा अपमान न करेगा। तुम वृथा शङ्का करती हो।

अब रानी ने सोने का बर्तन द्रौपदी के हाथ में दे दिया। लाचार द्रौपदी को स्वीकार करना पड़ा। परमेश्वर को और धर्म को अपना सहायक समझकर, आँखों में आँसू भरे, डर से विह्वल द्रौपदी कीचक के घर की ओर चलीं। जाते समय पल भर

मन में सूर्य की आराधना करके द्रौपदी ने कहा—पतियों के सिवा भूलकर भी पल भर के लिए भी मैंने और किसी पुरुष को अपने हृदय में कभी स्थान नहीं दिया। मेरे इसी सतीत्व के प्रभाव से कीचक मेरे धर्म को नष्ट न कर सके। वैशम्पायन कहते हैं कि सबके सब कामों के साक्षी, अन्तर्यामी, लोकप्रकाशक भगवान् सूर्य ने द्रौपदी के हृदय का हाल जानकर अलक्षित
२० रूप से उनकी रक्षा करने के लिए एक राक्षस को नियुक्त कर दिया। वह राक्षस सब समय रक्षा करने के लिए द्रौपदी के साथ हो लिया।

पतिव्रता द्रौपदी, डर से चकित मृगी की तरह, कीचक के घर पहुँचीं। नदी के पार जाने की इच्छा रखनेवाला आदमी जैसे नाव को देखकर आनन्दित होता है, वैसे ही द्रौपदी को देख-
२१ कर दुष्ट कीचक प्रसन्न हुआ और शीघ्र ही आसन से उठ खड़ा हुआ।

सोलहवाँ अध्याय

राजा विराट की सभा में द्रौपदी का भागकर जाना और वहीं पर कीचक का उनको लात मारना

कीचक ने कहा—सुन्दरी ! आओ, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। तुम यहाँ तक मजे में आई हो न ? आज का प्रातःकाल मेरे लिए बड़ा आनन्ददायक हुआ। आओ, मैं और यह भवन तुम्हारा ही है। मेरी और इस भवन की तुम स्वामिनी हो। अपना अधिकार पाकर मेरा प्रिय करो। मेरे नौकर-चाकर तुम्हारे लिए अनेक देशों की बनी सुवर्णमाला, कुण्डल, जड़ाऊ गहने, रेशमी कपड़े आदि भोग की सामग्रियाँ लावेंगे। सुन्दर कोमल सफ़ेद बिछौनेवाली सेज मैंने तुम्हारे लिए बिछवा रक्खी है। उस पर मेरे साथ चलकर मदिरा पियो [और इच्छा पूरी करो। मैं तुम्हारे योग्य स्वामी हूँ]।

द्रौपदी ने कहा—रानी सुदेष्णा ने मुझे मदिरा लाने के लिए तुम्हारे पास भेजा है। उन्होंने मुझसे कहा है 'मैं बहुत ही प्यासी हो रही हूँ। तुम चटपट जाकर पीने योग्य उत्तम मदिरा ले आओ। [इसी लिए मैं आई हूँ। मुझे शीघ्र मदिरा दो; मैं जाऊँ।]

"हे सुन्दरी रानी के लिए मदिरा दूसरी दासियाँ ले जायँगी। [तुम कहाँ जाओगी ? तुम तो मेरे लिए आई हो।]" यों कहकर दुष्ट कीचक ने द्रौपदी का दाहना हाथ पकड़ लिया। तब द्रौपदी ने क्रोध से उसका हाथ झटककर कहा—रे दुष्ट, मैं कभी अपने पतियों के सिवा पर-पुरुष का स्मरण नहीं करती; अपने स्वामियों के प्रतिकूल मार्ग में पैर नहीं रखती। देख, आज उस पुण्य के बल तेरी दुर्गति होगी।

इस पर भी दुष्ट कीचक ने अपना बुरा विचार नहीं छोड़ा। उसने बलपूर्वक लपककर द्रौपदी की चादर का कोना पकड़ लिया। इससे क्रोध के मारे द्रौपदी का

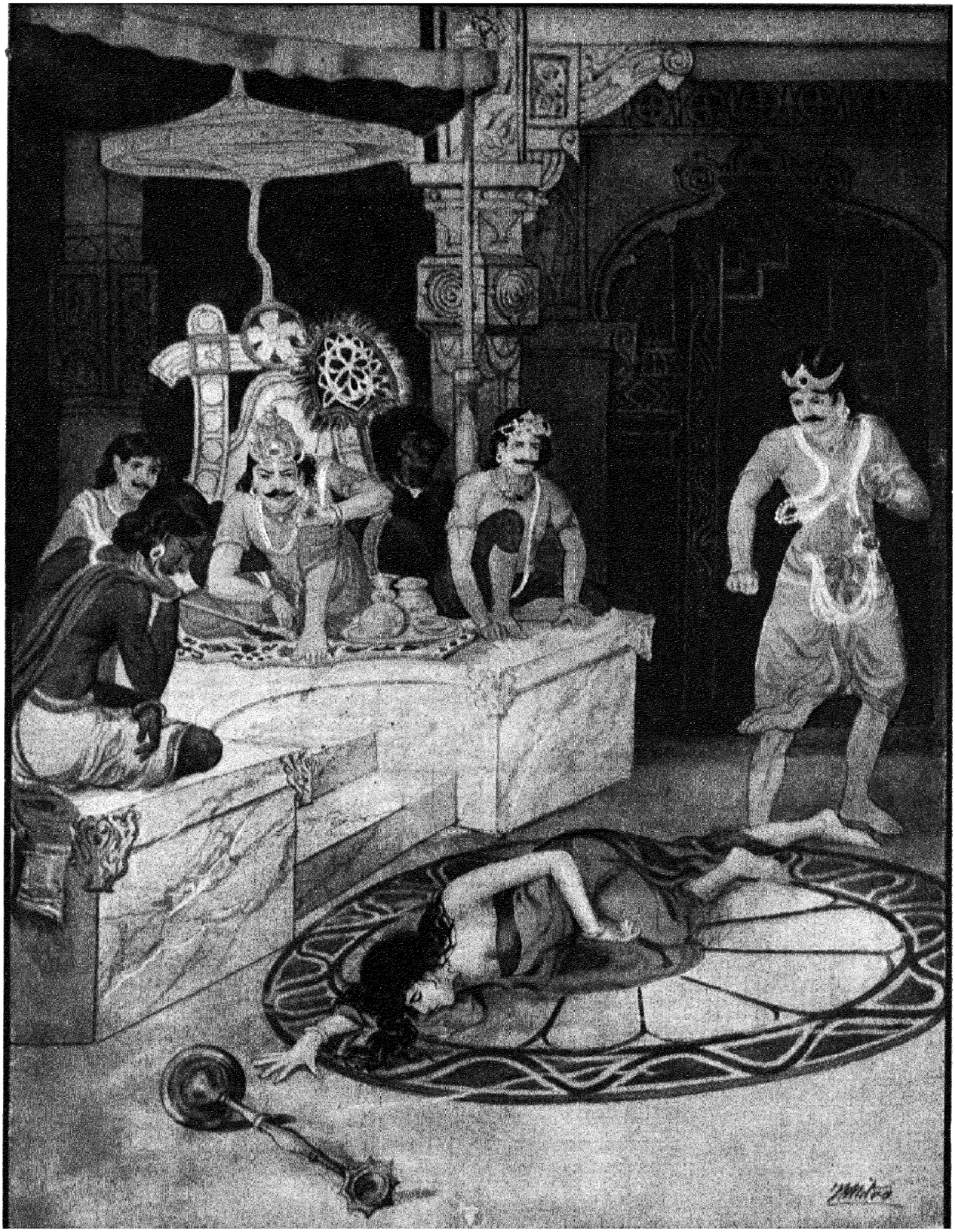

कीचक ने झोंटा पकड़ कर द्रौपदी को धरती पर गिरा दिया और लात मारी।—पृ० १३८९

शरीर काँपने लगा। वे जल्दी-जल्दी लम्बी और गरम साँसें छोड़ने लगीं। झटका देकर द्रौपदी ने उसे (उसी राक्षस की सहायता से) पृथ्वी पर गिरा दिया। कीचक महाबली होने पर भी कटे हुए पेड़ की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा।

इसके बाद आश्रय की इच्छा से काँपती हुई द्रौपदी राजसभा को भागीं, जहाँ राजा युधिष्ठिर बैठे हुए थे। कीचक भी उठकर उनके पीछे दौड़ता हुआ राजसभा में पहुँचा। वहाँ जाकर उसने, राजा विराट के सामने ही, झोंटा पकड़कर द्रौपदी को धरती पर गिरा दिया और लात
मारी। इसी समय सूर्य के भेजे हुए राक्षस ने अलक्षित रूप से कीचक को दूर फेंक दिया। १०
वह चक्कर खाकर अचेत होकर, कटे हुए पेड़ की तरह, धरती पर गिर पड़ा। भीमसेन और युधिष्ठिर दोनों सभा में मौजूद थे। अपनी आँखों के आगे कीचक के हाथों अपनी प्यारी पत्नी पाञ्चाली का यों अपमान होते देखकर क्रोध के मारे दोनों वीर अधीर हो उठे। महाबली भीमसेन कीचक को मारने के लिए ग़ुस्से के मारे दाँत से दाँत पीसने लगे। उनकी आँखें अङ्गारे की तरह लाल हो गईं। पलकों के रोएँ खड़े हो गये। माथे में पसीना निकल आया और बल पड़ गये। क्रोध से विह्वल भीमसेन बार-बार माथे से पसीना पोंछते हुए सामने के एक पेड़ की ओर ताकने लगे मानों वे उस पेड़ को उखाड़कर उससे कीचक को मार डालना चाहते हों। वे उठना ही चाहते थे की धर्मराज युधिष्ठिर ने, अपने प्रकट हो पड़ने के डर से, पैर के अँगूठे से भीमसेन के पैर का अँगूठा दबा दिया। इस प्रकार इशारे से रोक करके युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा—बल्लव, तुम क्या लकड़ी के लिए इस पेड़ को देख रहे हो? यदि तुमको ईंधन की जरूरत हो तो बाहर जाकर ले आओ। अपने क्रोध के वेग को दबाकर
भीमसेन चुपचाप बैठे रहे। द्रौपदी ने सभा में अपने स्वामियों के मलिन-मुख की ओर देखा। २०
किन्तु प्रतिज्ञा के अनुसार अपने को छिपाकर, कुटिल कोपपूर्ण कटाक्ष से मानों दसों दिशाओं को जला देंगी, इस तरह सब ओर देखती हुई द्रौपदी ने विराट से कहा—महाराज, मैं उन महापुरुषों की स्त्री हूँ जिनके वैरी पृथ्वी पर सुख की नींद नहीं सो सकते, वे महापुरुष सत्यवादी, ब्राह्मण-भक्त, सदा दान और ध्यान में लगे रहते हैं; वे कभी किसी से कुछ नहीं माँगते और उनके युद्ध के नगाड़े की ध्वनि तथा उनके धनुष की टङ्कार सदा सुन पड़ती है। महाराज, मैं उन महापुरुषों की स्त्री हूँ जो बड़े तेजस्वी और पराक्रमी हैं; वे लोग अभिमानी होने पर भी शान्तिशील हैं; यदि धर्म-पाश का बन्धन न हो तो वे तीनों लोकों का नाश कर सकते हैं; तथा शरणागत की रक्षा और दीन की सहायता करने में वे सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। दुष्ट कीचक ने लात मारकर मुझ मानिनी का अपमान किया! हाय! इस समय वे छिपे हुए महारथी कहाँ हैं? दुष्ट कीचक ने मुझे लात मारी, और महाबली तेजस्वी होकर भी उन्होंने नामर्द की तरह चुपचाप सहज ही सब सह लिया! वे किसी तरह मेरी रक्षा करने के लिए तैयार नहीं हुए! उनका वह तेज, बल

और क्रोध कहाँ चला गया? कीचक ने बिना किसी अपराध के मुझे लात मारी, और विराट देश के
३० राजा आप चुपचाप देखते रहे, अपना राज-धर्म आपने नष्ट होने दिया! [मैं अकेली असहाय अबला क्या कर सकती हूँ?] महाराज विराट! आपने राजा की हैसियत से दुष्ट कीचक को कुछ दण्ड नहीं दिया! [यह राजा का या उसके सभासदों का उचित काम या धर्म नहीं है।] यह तो दस्यु-धर्म हुआ। महाराज, सभा में आपके सामने मुझे लात मारकर कीचक ने बड़ा भारी अन्याय और अत्याचार किया है। इस पर आप और आपके सभासद विचार करें। कीचक को तो धर्म का ज्ञान है ही नहीं, किन्तु राजा विराट और उनके सभासद भी धर्म के ज्ञान से शून्य हैं।

श्रेष्ठ सुन्दरी द्रौपदी आँखों में आँसू भरकर अनेक प्रकार से जब भर्त्सना करने लगीं तब राजा विराट ने, जो कि महाबली कीचक से दबते थे, कहा—देखो, तुम दोनों ने मेरे पीछे आपस में झगड़ा किया है। इस कारण, सब हाल जाने बिना, मैं कैसे विचार कर सकता या दण्ड दे सकता हूँ। वैशम्पायन कहते हैं कि सभासदों ने सब वृत्तान्त विशेष रूप से जानकर साधुवाद के साथ द्रौपदी का समुचित सम्मान किया और कीचक की निन्दा की। सब कहने लगे—यह विशाल नेत्रोंवाली स्त्री ऐसी सर्वाङ्गसुन्दरी और सुलक्षणों से युक्त है कि देव-कन्या सी जान पड़ती है। मनुष्यलोक में ऐसी सर्वाङ्गसुन्दरी श्रेष्ठ स्त्री दूसरी नहीं है। अधिक क्या कहें, यह रूपवती जिस भाग्यशाली पुरुष की स्त्री है उसे और क्या चाहिए; उसके लिए शोक का विषय कुछ नहीं है।

महाराज! सभासद इस तरह अनेक प्रकार से द्रौपदी की बड़ाई करने लगे। क्रोध और खेद के मारे युधिष्ठिर के माथे में पसीने की बूँदें निकल आईं। उन्होंने अपनी प्यारी स्त्री
४० द्रौपदी से कहा—हे सैरन्ध्री, तुम रनिवास में रानी सुदेष्णा के पास जाओ। [यहाँ ठहरने की ज़रूरत नहीं।] वीरपत्नियाँ अपने पतियों का मुँह देखकर उनके लिए असह्य क्लेश भी सह लेती हैं। वे अनेक कष्ट झेलकर स्वामियों की सेवा और भलाई करती हैं और निःसन्देह अन्त में पतिलोक

पाती हैं। जान पड़ता है, सूर्य के समान प्रतापी और तेजस्वी तुम्हारे स्वामी गन्धर्व यह समझकर ही चुप हैं कि क्रोध करने का समय अभी नहीं आया। इसी से वे [तुम्हारी सहायता करने को] तैयार नहीं होते। हे सैरन्ध्री, तुम्हें समय का ज्ञान नहीं है। इसी कारण तुम नटी की तरह रो-पीटकर सभासदों के चौसर के खेल में विघ्न डाल रही हो। जाओ, समय उपस्थित होने पर तुम्हारे स्वामी गन्धर्व इस अपमान का बदला लेकर तुम्हारा दुःख दूर करेंगे। सैरन्ध्री ने कहा—जान पड़ता है, मेरे स्वामी अत्यन्त शोचनीय अवस्था में हैं; क्योंकि उनके बड़े भाई को हर घड़ी जुआ खेलने का शौक़ है, तथापि मैं उनके लिए सदा धर्म-पालन करती हूँ। वे किसी समय अवश्य ही अप्रियकारी दुष्टों का नाश करेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं—द्रौपदी की आँखें लाल हो रही थीं। बाल बिखरे हुए थे। इसी हीन वेष से वे उसी समय रनिवास की ओर, सुदेष्णा के पास, वहाँ से चल दीं। रोना बन्द होने पर उनका चेहरा मेघों से मुक्त चन्द्रबिम्ब के समान जान पड़ा। राजा विराट की रानी ने उन्हें अकस्मात् इस वेष से आते देखकर पूछा—भद्रे, तुम किसलिए रो रही हो? क्या किसी ने तुमको सताया है? बताओ, किसने तुम्हारा अप्रिय किया है?

द्रौपदी ने कहा—आपकी आज्ञा से मदिरा लेने को मैं कीचक के घर गई थी। [उस दुष्ट ने वहाँ मेरा धर्म नष्ट करना चाहा। वहाँ से भागकर जान बचाने के लिए] मैं राजसभा में गई। वहाँ राजा के सामने ही लात मारकर उसने मेरा अपमान किया है। सुदेष्णा ने कहा—सुन्दरी! कीचक ने तुम्हारा मिलना अत्यन्त असम्भव जानकर भी, मान और मद से ज्ञानशून्य हो, तुम्हें लात मारी है। तुम कहो तो मैं अभी उसे प्राण-दण्ड दिलाऊँ। द्रौपदी ने कहा—उसने जिन गन्धर्वों का अपराध किया है वही उसे मारेंगे। दुष्ट कीचक आज या कल अवश्य मारा जायगा। ५१

सत्रहवाँ अध्याय

द्रौपदी का छिपकर भीमसेन के पास जाना

वैशम्पायन कहते हैं—इस तरह अपमानित होकर यशस्विनी द्रौपदी, कीचक के मरने की इच्छा करती हुई, अपने रहने के घर में आई। हाथ और कपड़े धोकर विधिपूर्वक शुद्ध होने के उपरान्त द्रौपदी बैठकर इस दुःख के दूर करने का उपाय सोचने लगीं। उस समय भी उनकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। वे सोचने लगीं—क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किस उपाय से मेरा यह काम हो सकता है? कुछ देर तक सोचने के बाद द्रौपदी ने निश्चय किया कि महाबाहु भीमसेन के सिवा और कोई इस समय मेरे जी के काँटे को न निकाल सकेगा, इसलिए उन्हीं की शरण में जाऊँ। विशाल नेत्रोंवाली यशस्विनी मानिनी द्रौपदी, सनाथ होने पर भी अनाथ की तरह शरण चाहती हुई, आधी रात के समय बिछौने से उठ खड़ी हुई। [उनका हृदय क्रोध

और क्षोभ से व्याकुल हो रहा था, इसी से उन्हें नींद नहीं आई।] वे [छिपकर फुर्ती से] भीमसेन के रहने के घर में पहुँचीं। घर के भीतर घुसकर द्रौपदी ने देखा कि सिंह की तरह खर्राटे लेते हुए भीमसेन सो रहे हैं। उस समय भीमसेन और द्रौपदी के शरीर की कान्ति से वह कमरा मानों जगमगा उठा और अधिक विस्तृत सा हो गया।

द्रौपदी ने करुण स्वर से कहा—हे नाथ, पापी कीचक अभी जीता ही है, फिर तुम कैसे
१० सुख की नींद सो रहे हो? त्रिभुवनसुन्दरी द्रौपदी यों कहकर, जैसे जवान गाय साँड़ के पास कामातुर भाव से जाती है वैसे, भीमसेन के पास गईं। गोमती नदी के किनारे पर बड़े भारी साखू के पेड़ से जैसे लता लिपटी हुई हो वैसे द्रौपदी दोनों कोमल हाथों से भीमसेन से लिपट गईं। सिंहनी जैसे दुर्गम कन्दरा में सोते हुए सिंह को जगावे वैसे द्रौपदी भीमसेन को जगाने लगीं। हथिनी जैसे सूँड़ से अपने स्वामी गजराज को लिपटाती है वैसे भीमसेन को लिपटाकर, गान्धार स्वर में बजती हुई वीणा की तरह मनोहर, अमृतधारा के समान, मधुर वाक्यों से द्रौपदी ने कहा—

नाथ! उठो, उठो। मुर्दे की तरह निर्जीव भाव से सोते न रहो। सिवा मुर्दे के और किसकी स्त्री का यों अपमान करके पापी लोग जीते रह सकते हैं?

द्रौपदी के वचन सुनकर भीमसेन जाग उठे। सुन्दर सजे हुए पलँग पर बैठकर उन्होंने द्रौपदी से कहा—प्रिये, तुम क्यों इस तरह शीघ्रता करके बिहाल सी मेरे पास आई हो? तुम ऐसी उदास क्यों हो? तुम्हारा चेहरा क्यों पीला पड़ गया है? कहो, क्या बात है? किसने तुम्हारा अप्रिय किया है? तुम्हें क्या दुःख है? मैं सुनकर उसके बारे में अपना कर्तव्य निश्चित करूँगा। देखो, सभी बातों में तुम मुझ पर विश्वास किया करती हो। मैं ही तुम्हारी सब तरह की विपत्तियों को दूर करता हूँ। इसलिए शीघ्र अपने जी का हाल कहकर, और
१२ लोगों की आँख खुलने के पहले ही, अपने शयन-गृह को चली जाओ।

अठारहवाँ अध्याय

द्रौपदी का भीमसेन से अपना दुःख कहना

द्रौपदी ने कहा—जिसके स्वामी युधिष्ठिर हैं वह बिना शोक के कब रह सकती है? उसको सुख की सम्भावना ही कहाँ? तुम मेरे दुःख का सब हाल जानकर भी अजान की तरह क्या पूछ रहे हो? सोचकर देखो, जुआ खेलने के समय दुःशासन दासी कहकर मुझे भरी सभा में खींच लाया था, वह याद करके अब तक मेरे हृदय में आग सी लग जाती है। मेरे सिवा और कौन राजकुमारी वैसा दुस्सह दुःख सहकर जीती रह सकती? वनवास के समय दुरात्मा जयद्रथ ने जैसा मेरा अपमान किया था उसे ही कौन राजकुमारी सह सकती? इस समय धूर्त राजा विराट के सामने अधम कीचक ने मुझे लात मारी। इस अपमान को भी मेरे सिवा और कोई राजकुमारी नहीं सह सकती और न फिर जी सकती। हे भीमसेन, मैं बार-बार अनेक प्रकार से क्लेश पा रही हूँ। यह देखकर भी तुम मेरे दुःख का कारण नहीं जान पाते तो फिर मेरा जीना ही व्यर्थ है।

हे पुरुषसिंह, विराट का साला और सेनापति दुष्ट कीचक मुझे सैरन्ध्री के वेष से रनिवास में रहते देखकर नित्य ही 'मेरी प्रिया बनो, मेरी प्रिया बनो' कहा करता है। उसके ये कुवाक्य सुनकर पके हुए फल की तरह मेरा हृदय टूक-टूक हो जाता है। जिनकी करतूत से
मुझे ऐसे घोर क्लेश मिल रहे हैं उन अपने जुआरी बड़े भाई युधिष्ठिर की निन्दा करो। उनके १०
सिवा और कौन विज्ञ पुरुष जुए में अपना राज्य और सर्वस्व हार सकता है? कौन यों सब हारकर मुनिवेष से वनवासी हो सकता है? यदि वे नित्य शाम-सबेरे हज़ार-हज़ार निष्क (अशर्फियाँ) या और बहुत-सा धन बदकर खेलते तो भी उनकी अक्षय सम्पत्ति कभी घट नहीं सकती थी। वे इस समय जुए में सब हारकर, श्रीभ्रष्ट होकर, मूढ़ की तरह चुपचाप समय बिता रहे हैं। चिन्ता किया करते हैं, पर कुछ उपाय नहीं करते।

हाय! जिनके गले में सोने की साँकलें पड़ी रहती थीं, ऐसे दस हज़ार हाथी जिनकी सवारी के साथ चलते थे, इन्द्रप्रस्थ में रहते समय सैकड़ों-हज़ारों राजा जिनकी ताबेदारी में हाजिर रहते थे; जिनके यहाँ हजारों दास-दासियाँ सोने के थालों में भोजन-सामग्री लिए अतिथियों को भोजन कराती रहती थीं, उन युधिष्ठिर की जीविका का उपाय इस समय राजसभा में जुआ खेलना-खेलाना है! जो नित्य ब्राह्मणों को लाखों की संख्या में धन और सुवर्ण का दान करते थे; जगमगाते हुए जड़ाऊ कुण्डल कानों में पहने सूत-मागध लोग प्रातःकाल और सन्ध्या
के समय जिनके गुण गाते थे; तप और स्वाध्याय में निरत बहुत से ऋषि जिनके सभासद थे और २०
उन ऋषियों का भरपूर सत्कार होता था; जिनके यहाँ नित्य-व्रत-स्नान-निरत अट्ठासी हज़ार गृहस्थ

ब्राह्मण और दान न लेनेवाले दस हज़ार ऊर्द्ध्वरेता यति पलते थे और उनमें से हर एक की सेवा
के लिए तीस-तीस दासियाँ नियुक्त थीं, वही ये सन्तोषी सत्यवादी युधिष्ठिर महाराज [आज
जुए से होनेवाले महा अनर्थ में पड़कर पराये दिये अन्न से अपना पेट पाल रहे] हैं। करुणा,
दया, न्याय, क्षमा, सत्य, विनय आदि अनेक उदार गुणों के आधार होकर, जो सदा यथाविधि
भोजन वस्त्र आदि देकर, अपने राज्य के अनाथ, अन्धे, अपाहिज, बूढ़े लोगों की सहायता करते
हुए उनकी दुर्दशा दूर करने में तत्पर थे; जो सबको समान दृष्टि से देखते थे और जिसको जो
मिलना चाहिए उसे वही धर्मानुसार बाँट देते थे; वही युधिष्ठिर आज ऐसी दुर्दशा को प्राप्त होकर,
चौसर खेलनेवाले कंक के नाम से पुकारे जाकर, राजा विराट के मुसाहब बन रहे हैं! इन्द्रप्रस्थ में
रहते समय सैकड़ों-हज़ारों राजा जिनको 'कर' देते थे और अनेक प्रकार के उपहार लाकर भेंट
करते थे, वही युधिष्ठिर आज दूसरे की सहायता से अपना पालन कर रहे हैं! पहले सब
नरपति जिनकी आज्ञा मानते थे वही आज पराधीन और दूसरों की आज्ञा मानने के लिए बाध्य
हो रहे हैं! जिनके सूर्य के समान प्रताप से सारा पृथ्वी-मण्डल तप रहा था वही आज मत्स्यराज
के सभासद हैं! मुनिगण और राजा लोग सभा-मण्डप में बैठकर जिनकी उपासना करते थे वही
आज दूसरे की खुशामद कर रहे हैं! उनकी ऐसी दशा देखकर किसका हृदय शोक की आग से
३० न जलने लगेगा? दूसरे का आश्रय लेना जिनके लिए सर्वथा निषिद्ध है वही महामति युधिष्ठिर
दूसरे के आश्रय में रहकर जीवन बिता रहे हैं, यह देखकर किसका हृदय व्याकुल न हो उठेगा?
हे वीर! सोचकर देखो, सब लोग जिनकी सेवा में लगे हुए थे वही आज दूसरे की सेवा कर
रहे हैं! इस तरह के अनेक दुःखों से अत्यन्त पीड़ित होकर मैं अनाथ की तरह शोकसागर में
३१ डूब रही हूँ; तो भी तुम मेरा दुःख नहीं देखते।

उन्नीसवाँ अध्याय

द्रौपदी का फिर खेद प्रकट करना

द्रौपदी ने कहा—हे भीम, मेरे दुःख की सीमा नहीं है। मैं तुमसे और एक अपने जी का दुःख कहती हूँ। तुम मुझे इसके लिए दोष न देना; क्योंकि मैं बहुत ही दुःखित होने के कारण ये बातें कह रही हूँ। सोचकर देखो, तुम बल्लव नाम रखकर अपने लिए अयोग्य रसोइये का काम कर रहे हो। तुम्हारी यह दशा देखकर मेरे हृदय में शोक बढ़ रहा है। लोग तुमको रसोइया और विराट का नौकर जानते हैं, इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या हो सकती है? रसोई का काम कर चुकने के बाद विराट की सेवा के लिए जब तुम सभा में बैठते हो और लोग तुम्हें बल्लव कहा करते हैं, तब मेरा हृदय फटने लगता है। प्रसन्नचित्त राजा विराट जब तुमको हाथियों से लड़ा देते हैं तब रनिवास की स्त्रियाँ हँसा करती हैं; किन्तु

मेरा हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठता है। तुम जब रनिवास में सुदेष्णा के सामने सिंह, बाघ और भैंसों के साथ भिड़ जाते हो तब मुझे बहुत दुःख होता है। एक दिन ऐसी ही व्याकुलता की दशा में साथवाली स्त्रियों ने मुझे सँभाल लिया। तब सुदेष्णा ने कहा—सुन्दरी सैरन्ध्री रसोइया (सूपकार) बल्लव को महा बलवानों के साथ भिड़ते देखकर ही मुर्दा सी हो जाती है। इससे बल्लव के ऊपर इसका सहवास-सुलभ अनुराग जान पड़ता है। सैरन्ध्री स्वभाव से ही परम सुन्दरी है, और बल्लव भी बहुत ही सुन्दर जवान है। स्त्रियों की चित्त की गति को जानना
बहुत ही कठिन है। अच्छी जोड़ी मिली है। फिर ये दोनों तो साथ ही राजभवन में १०
आये हैं। इस कारण इसमें सन्देह नहीं कि बल्लव सैरन्ध्री को प्रिय है और इसी लिए ऐसे समय इसकी यह दशा हो जाती है। यह कहकर रानी सुदेष्णा मुझे अक्सर झिड़का करती हैं। मैं यदि क्रोध दिखाती हूँ तो उनका सन्देह और भी दृढ़ होता है। इससे भी मेरे अन्तःकरण में बहुत व्यथा पहुँचती है। एक तो महाराज युधिष्ठिर की दशा और दुःख देखकर मैं व्यथित हो रही हूँ, उस पर तुम भी महाबली होकर ऐसा दुःख भोग रहे हो। इन कारणों से मैं जीवित रहना नहीं चाहती।

कैसे कष्ट की बात है! जिन्होंने अकेले ही मनुष्यों और देवताओं को जीत लिया, वही अर्जुन राजा विराट की कन्याओं को नाचना-गाना सिखाते हैं! जिन्होंने अपने प्रभाव से खाण्डव वन भस्म कराकर अग्नि को तृप्त किया वही अर्जुन आज, कुएँ में पड़ी आग की तरह, रनिवास में छिपे हुए हैं। जिनके डर से शत्रु सदा घबराये रहते थे, वही अर्जुन इस समय लोक निन्दित हिजड़े का वेष बनाये हुए हैं! जिनके बेलन के समान हाथ धनुष की डोरी की रगड़ से कठिन हो रहे थे वही अर्जुन इस समय उन हाथों में चूड़ियाँ पहनकर दुःख भोग रहे हैं। जिनके धनुष की डोरी के शब्द को सुनकर शत्रुओं के कलेजे काँप उठते थे, वही अर्जुन इस समय रनिवास में औरतों के बीच गाते हैं और उनका वह गाना सुनकर स्त्रियाँ ख़ुश होती हैं। जिनके मस्तक पर जड़ाऊ किरीट दमकता था उन्हीं अर्जुन के सिर पर आज औरतों की सी चोटी है। उन्हें चोटी लटकाये औरतों के बीच देखकर मेरा हृदय दुःख के मारे टुकड़े-
टुकड़े होने लगता है। सम्पूर्ण दिव्य अस्त्रों और विद्याओं के ज्ञाता वीर अर्जुन इस समय कानों २०
में कुण्डल पहनकर स्त्रियों में रहते हैं। महासागर जैसे अपनी तटभूमि को लाँघ नहीं सकता वैसे ही हज़ारों वीर राजा युद्ध में जिन तक पहुँच नहीं सकते थे; जिनके रथ के पहियों की घरघराहट से सारा पृथ्वी-मण्डल काँप उठता था, वही अर्जुन आज कन्या के अन्तःपुर में अपने को छिपाये नचैये के रूप से विराट की सेवा कर रहे हैं। जिनके जन्म लेने पर आर्या कुन्ती ने सब शोक भुला दिये थे वही अर्जुन इस समय स्त्रियों के चूड़ी-कुण्डल आदि गहने पहनकर मुझे अत्यन्त शोक से व्याकुल कर रहे हैं। पृथ्वी भर पर जिनकी बराबरी करनेवाला पराक्रमी

धनुर्द्धर नहीं है, वही अर्जुन कन्याओं के बीच में बैठकर गाया करते हैं। शूरता, वीरता, धर्म
और सत्य आदि गुणों से जो सबके प्यारे हैं वही अर्जुन स्त्री-वेषधारी हैं! यह देखकर मेरी
छाती फट जाती है। जब मैं उन देवरूपी अर्जुन को, हथिनियों के झुण्ड में स्थित गजराज की
तरह, [नाट्यशाला में] राजा विराट की उपासना करते देखती हूँ तब मुझे चारों ओर अँधेरा
३० देख पड़ता है। हाय! आर्या कुन्ती यह कुछ नहीं जानतीं कि अर्जुन और जुआ खेलनेवाले महा-
राज युधिष्ठिर ऐसे दुःख में पड़े हुए हैं।

हे नाथ, छोटे भाई सहदेव को देखो। वे गोप-वेष धारण करके अपने अयोग्य ग्वाले
का काम कर रहे हैं। उनकी यह दशा देखकर मैं पीली पड़ती जा रही हूँ। मुझे शान्ति तो
क्या मिलेगी, सहदेव की दशा का ध्यान करके मुझे नींद तक नहीं आती। सत्यपराक्रमी सहदेव
का ऐसा कुछ पाप मुझे नहीं देख पड़ता जिससे वे ऐसी विपत्ति में पड़ें। हे भरत-कुलतिलक
सहदेव को गोप-वेष से राजा विराट के यहाँ रहते देखकर मैं बहुत ही दुखी होती हूँ। उनको
कपड़े-गहने आदि पहनकर गोपों के आगे-आगे चलकर प्रसन्नतापूर्वक विराट की सभा में जाते और
उनको सन्तुष्ट की चेष्टा करते देखकर मुझे बुखार सा चढ़ आता है। हे वीर, आर्या कुन्ती सदा मेरे
आगे सहदेव की सच्चरित्रता और सुशीलता की बड़ाई किया करती थीं। सहदेव जब हम लोगों
के साथ वन चलने को तैयार हुए तब पुत्रवत्सला कुन्ती ने उनको छाती से लगाकर, आँखों में
आँसू भरकर, कहा था कि "द्रौपदी! सहदेव बहुत ही शरमीले, प्रियवादी, धर्मनिष्ठ, बड़े-बूढ़ों
और राजा की सेवा में अनुराग रखनेवाले, शूर, सुकुमार और मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। इसलिए
४० तुम सदा इनकी देख-भाल रखना और अपने हाथ से खिलाना-पिलाना।" हाय! आज उन्हीं सह-
देव को गोपाल बनकर, चमड़े पर लेटकर, समय बिताना पड़ता है! यह देखकर भी मैं कैसे
जीती रहने की इच्छा करूँ?

हा! काल की कैसी कुटिल गति है! रूप, बुद्धि और अस्त्रविद्या, ये तीनों गुण जिनमें समान
रूप से सर्वोत्तम भाव से वर्त्तमान हैं वही नकुल आज राजा विराट के साईस हैं। जिन्हें देखते ही शत्रु
लोग घबरा जाते थे वे नकुल आज राजा विराट के सामने उनके घोड़ों को तेज़ चलना सिखाते हैं!
हे भीम! युधिष्ठिर के कारण मैं इसी तरह के अनेकों दुःख भोग रही हूँ। तब भी तुम
किस तरह मुझे सुखी समझ रहे हो? इन दुःखों के सिवा मुझे और भी अनेकों
दुःख सहने पड़ते हैं। उन्हें भी तुम्हारे आगे कहती हूँ—सुनो। तुम लोगों के जीते रहते
४७ सैकड़ों प्रकार के क्लेश और दुःख मेरे शरीर को सुखा रहे हैं। इससे बढ़कर सन्ताप की बात
और क्या हो सकती है?

———

बीसवाँ अध्याय

द्रौपदी का और भी अपने दुःख कहना

द्रौपदी ने कहा—हे शत्रु-तापन, यद्यपि मैंने राजघराने में जन्म लिया है, तो भी मुझे कैसी विडम्बना सहनी पड़ रही है। जुए के शौक़ीन युधिष्ठिर के कारण मुझे सैरन्ध्री बनकर विराट राजा के यहाँ सुदेष्णा की सेवा करनी पड़ी। किन्तु मैं यही सोचकर स्वामियों के अभ्युदय के समय की राह देख रही हूँ कि यदि दुःख आता है तो उसका अन्त भी होता है—अर्थसिद्धि या जय-पराजय सदा स्थिरता से बनी नहीं रहती—विपत्ति और सम्पत्ति सदा पहिये की तरह फिरा करती हैं और जो आज पराजय का कारण है वही कल जय का कारण बन सकता है।

तात्पर्य यह कि मेरे इस प्रकार जीते ही मृत्युतुल्य होने का हाल क्या तुम नहीं जानते? सुना है जो लोग दान करनेवाले हैं उनको भी समय पड़ने पर, दूसरों से माँगना पड़ता है, और जो लोग दूसरों को मारने और नष्ट करनेवाले हैं उनको भी कालवश होकर कभी मरना और हीन अवस्था में जाना पड़ता है। इसी से कहना पड़ता है कि दैव के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। दैव के कामों को उलट देना भी दुःसाध्य है। यही समझकर मैं दैव के अनुकूल होने की राह देख रही हूँ। जल पहले जहाँ पर होता है, वहाँ से हटकर भी फिर वहीं आ जाता है। यही समझकर मैं भले दिन आने के समय की बाट जोह रही हूँ। सुनीति द्वारा रक्षित पदार्थ और द्रव्य भी, दैव के प्रतिकूल होने से, नष्ट हो जाते हैं। इसलिए जो ज्ञानी पुरुष हैं वे दैव के अनुकूल होने के लिए यत्न करते हैं। मैं इस समय तुम्हारे आगे यह अपनी करुणा-
जनक दुःख की गाथा क्यों कह रही हूँ, सो कहती हूँ, सुनो। देखो, मैं महाराज पाण्डु के पुत्रों १०
की रानी और प्रतापी राजा द्रुपद की बेटी हूँ; तो भी ऐसी दुर्दशा में पड़ी हूँ। मेरे सिवा और कौन राजकुमारी या स्त्री ऐसी दुर्दशा से जीना चाहेगी! मेरा यह क्लेश कुरु, पाञ्चाल और पाण्डवों के लिए लज्जा की बात है। भाई, ससुर और पुत्रोंवाली होकर कौन स्त्री इस तरह दुःख भोगने के लिए विवश हुई होगी? जान पड़ता है, मैंने बचपन में विधाता का कोई बड़ा अपराध किया था, जिसके कारण इस समय ऐसी विपत्ति में पड़ी हुई हूँ। हे भरतश्रेष्ठ! देखो, मेरी रङ्गत कैसी फीकी पड़ गई है! बड़े-बड़े दुःख सहकर भी मेरी जो दशा नहीं हुई थी, वही दशा आज यहाँ हो रही है। हे भीमसेन, यह तुमसे छिपा नहीं है कि पहले मैं कैसे-कैसे सुख भोगती थी। वही मैं इस समय दासी होकर सेवावृत्ति से पेट पाल रही हूँ! फिर बताओ, मुझे किस तरह शान्ति मिल सकती है? प्रचण्ड धनुष धारण करनेवाले महाबाहु अर्जुन भी जब राख से ढकी हुई आग की तरह रनिवास में छिपे हैं तब मुझे यह सब दैव की लीला माननी पड़ती है। दैव के द्वारा प्रेरित प्राणियों की गति को कोई नहीं जान सकता। तुम लोगों की ऐसी दशा होगी, इसका किसी को खयाल भी न था।

हे वीर, समय का प्रतिकूल होना देखो। इन्द्रतुल्य तुम लोग सदा अनुराग-पूर्ण दृष्टि से
२० मेरी ओर ताका करते थे; वही मैं आज दूसरों की मुँहताज हो रही हूँ। तुम लोगों के जीते जी
मैं बिलकुल ही अयोग्य दशा को प्राप्त हो रही हूँ। सारी पृथ्वी जिसके अधीन थी वही मैं आज,
दैव के प्रतिकूल होने से, सुदेष्णा के अधीन रहकर डरती हुई उनकी सेवा कर रही हूँ। पहले
अनेकों दासियाँ मेरे आगे और पीछे चलती थीं, वही मैं आज सुदेष्णा के पीछे चलकर दासी-धर्म
निबाहती हूँ। आर्या कुन्ती के सिवा और किसी के लिए, यहाँ तक कि अपने लिए भी, मैंने
अङ्गराग का मसाला नहीं घिसा; वही मैं सुदेष्णा के लिए चन्दन घिसकर उनकी देह में लगाती
हूँ। यह दुःख मुझे असह्य हो उठा है। देखो, काम करने से मेरी हथेलियाँ कैसी कड़ी हो गई
हैं। ऐसे घट्ठे मेरी हथेलियों में पहले कभी नहीं पड़े।

अपने हाथों के घट्ठे दिखाकर द्रौपदी फिर कहने लगीं—मैं आर्या कुन्ती को और तुम लोगों को कभी उतना नहीं डरी जितना कि मुझे विराट से दबना पड़ता है। मुझे दासी के वेष में भयभीत भाव से विराट के सामने खड़े होना पड़ता है। मेरे सिवा और कोई दासी यदि चन्दन रगड़ती है तो वह विराट को पसन्द नहीं आता। [इस कारण सदा मुझे यह डर लगा रहता है कि चन्दन अच्छी तरह महीन पिसा है या नहीं।]

वैशम्पायन कहते हैं—इस प्रकार दुःख का वर्णन करके पतिव्रता द्रौपदी ने करुण दृष्टि से भीमसेन की ओर देखा। फिर वे धीरे-धीरे रोने लगीं। बार-बार गर्म लम्बी साँसें छोड़कर भीमसेन के हृदय को विदीर्ण करती हुई द्रौपदी ने आँसुओं के मारे गद्गद स्वर में कहा—जान पड़ता है, मैंने देवताओं का कोई बड़ा भारी अपराध किया है, इसी से अत्यन्त अभागिन की तरह घोर कष्ट सहकर भी मैं
जी रही हूँ। तब महावीर भीमसेन ने काम करने से कड़े पड़ गये द्रौपदी के हाथों को हाथ में
३१ लेकर, और एक हाथ से उनके आँसू पोंछकर, उन्हें ढाढ़स बँधाया। हृदय में घोर दुःख भरा
होने के कारण उनकी भी आँखों से आँसू बहने लगे।

इक्कीसवाँ अध्याय

भीमसेन और द्रौपदी की बातचीत

भीमसेन ने कहा—तुम्हारे लाल और कोमल हाथ ऐसे कड़े हो गये हैं, उनमें ढट्ठे पड़ गये हैं! मेरे बाहुबल और अर्जुन के गाण्डीव धनुष को धिक्कार है! महाराज युधिष्ठिर उपयुक्त समय की राह देख रहे हैं; नहीं तो मैं विराट की सभा में ही गजराज की तरह लात मारकर दुरात्मा कीचक का सिर ज़मीन में घुसेड़ देता। मैंने तो उसी घड़ी सारे मत्स्यराज का विध्वंस करना विचारा था जिस समय उस पापी ने तुम्हें लात मारी थी। लेकिन युधिष्ठिर ने आँख के इशारे से मुझे रोक दिया। मैं इस समय युधिष्ठिर के इशारे का ख़याल करके चुप हूँ। एक तो हम लोगों का राज-पाट छिन गया है; दूसरे अभी तक कर्ण, शकुनि, दुर्योधन, दुःशासन आदि दुष्ट वैरी जीते हैं; ये दोनों बातें काँटे की तरह मेरे हृदय में खटका करती हैं। इनके ख़याल से मेरा शरीर जला करता है। हे प्रियतमे, धर्म को न छोड़कर क्रोध को त्यागो। महाराज युधिष्ठिर अगर किसी तरह तुम्हारी इन तिरस्कार की बातों को सुन पावेंगे तो वे अवश्य ही प्राण छोड़ देंगे। उनका परलोकवास होने पर अर्जुन, नकुल और सहदेव भी जीते नहीं रह सकते। इन लोगों के विरह में मैं भी किसी तरह जीता नहीं रह सकता।

देखो, पहले के समय में महातपस्वी च्यवन ऋषि तप करते-करते वन में वल्मीकरूप हो
गये थे; उस समय उनकी सहधर्मिणी राजकुमारी सुकन्या ने उनकी सेवा की और उनका साथ १०
दिया। अनुपम रूपवती नारायणी चन्द्रसेना हज़ार वर्ष के वृद्ध की स्त्री होकर उनकी अनुगामिनी रहीं। महाराज जनक की कन्या सीता देवी को राक्षस हर ले गया, उन्हें अनेक कष्ट दिये, तो भी उन्होंने वनवासी स्वामी के साथ रहने की उत्कण्ठा नहीं छोड़ी। पाञ्चाली! रूप और जवानी से शोभित लोपामुद्रा, अलौकिक सुख-भोग की लालसा छोड़कर, अगस्त्य ऋषि की सहधर्मिणी बनीं। द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् की पत्नी पतिव्रता सावित्री का हाल तुमसे छिपा नहीं है। उन्होंने यमलोक तक अपने स्वामी का हाथ नहीं छोड़ा। हे सुन्दरी, ये सब राजकन्याएँ जैसी रूपवती और पतिव्रता थीं, वैसी ही तुम भी हो। तुम में सभी श्रेष्ठ गुण वर्त्तमान हैं। इसलिए और थोड़े समय तक ठहर जाओ। और एक महीने के लगभग बाक़ी है। तेरहवाँ वर्ष पूरा होते ही तुम राजरानी हो जाओगी।

द्रौपदी ने कहा—प्यारे भीमसेन, मैं अत्यन्त पीड़ित और दुःखित होने के कारण ही इस तरह रो रही हूँ। युधिष्ठिर की शिकायत नहीं करती। अब इस समय बीती हुई बातों पर विचार करना व्यर्थ है। वह उपाय करो, जिससे अपने ऊपर आई हुई यह आपत्ति टल जाय। राजरानी सुदेष्णा सदा शङ्कित रहती हैं कि उनके पति राजा विराट कहीं मेरे ऊपर आसक्त न हो

२० जायँ [कहीं इस तरह रानी को अपने रूप का अपमान या पराभव न देखना पड़े]। राजा का
साला और सेनापति कीचक स्वभाव से ही बुरे हृदय का और दुर्बुद्धि है। रानी की उक्त
आशङ्का को जानकर वह सदा मुझसे अपनी प्रणयिनी होने के लिए कहा करता है। पहले पहल
उसके यों कहने पर मैं क्रोध प्रकट करती थी। अन्त को क्रोध का वेग रोककर मैंने उससे
कहा—अरे दुष्ट, अपने जीवन की रक्षा कर। [क्यों अपने प्राण देना चाहता है?] मैं महा-
बली पाँच गन्धर्वों की पत्नी हूँ। वे क्रोधित होंगे तो तुझे शीघ्र ही अपने इस दुःसाहस के
कारण यमपुरी देखनी पड़ेगी। इस पर उस दुष्ट ने उत्तर दिया—हे सुहासिनी, मैं गन्धर्वों से
नहीं डरता। युद्ध में आये हुए सैकड़ों गन्धर्वों को मैं सहज ही मौत के मुँह में भेज सकता
हूँ। इसलिए हे भीरु, तुम डर छोड़कर मेरी भार्या बनो।

मैंने फिर कामान्ध कीचक से कहा—रे दुराचारी, तू किसी तरह उन गन्धर्वों से नहीं
लड़ सकता। मैं अच्छे कुल की, सुशील और धर्म को डरनेवाली हूँ। मैं कभी किसी के मरने
की इच्छा नहीं करती। इसी से तू अभी तक जीवित है। ये बातें सुनकर वह दुष्ट ज़ोर से
हँसने लगा। आज सुदेष्णा ने, कीचक की सलाह से, अपने लिए मदिरा लाने को मुझे उसी के
घर भेजा। मैं जाती नहीं थी; रानी ने भाई को प्रसन्न करने के लिए मुझे समझा-बुझाकर भेज
दिया। मैं कीचक के घर गई। वह दुष्ट मुझे देखते ही [अनेक प्रकार के प्रलोभन दिखाकर]
३० खुशामद करने लगा। मेरे राज़ी न होने पर वह बलात्कार करने पर तैयार हुआ। उसके इस
इरादे को जानकर मैं वहाँ से भागी और शरण की इच्छा से सभा में गई। किन्तु उस पापी ने
वहीं जाकर राजा के सामने मुझे लात मारी। राजा विराट, कङ्क (युधिष्ठिर), विराट के और
और सभासद, सचिव और सब नगरवासी चुपचाप बैठे देखते रहे। मैंने राजा को और कङ्क
को कठिन वचन भी कहे किन्तु कुछ फल नहीं हुआ। राजा विराट ने न तो उसको दण्ड दिया
और न मना किया। कीचक राजा विराट का प्रधान सहायक है। राजा और रानी, दोनों
उस पर भरोसा और अनुराग रखते हैं। कुचाली कीचक जैसा पर-स्त्रीगामी, लम्पट और विवेक-
हीन है वैसा ही क्रूर, धर्मत्यागी और बहादुरी का घमण्ड रखता है। वह पापी राजा से बहुत
सा द्रव्य पाकर भी सन्तुष्ट नहीं होता, सदा औरों का धन हड़प करने की धुन में लगा रहता है।
वह सताये गये दुःखियों के आर्त्तनाद पर ध्यान नहीं देता। वह सहज ही सुचाल छोड़कर मन-
माने बुरे काम करता है। मैंने बारम्बार उसे डाँटा है। इसलिए वह दुष्ट, पापी, कामान्ध,
बेहूदा कीचक अब की जो मुझको देख पावेगा और सतावेगा, तो मैं उसी घड़ी अपनी जान दे
दूँगी। तुम लोग धर्म्मरक्षा की दीक्षा लिये हुए हो। यदि मेरी जान जाती रही तो अवश्य
ही तुमको घोर अधर्म्म होगा। मतलब यह है कि कोरी प्रतिज्ञा के पालन का ख़याल रखने से तुम
४० अपनी भार्या की रक्षा न कर सकोगे। भार्या की रक्षा हुए बिना सन्तान की रक्षा नहीं होने की।

[सोचकर देखो, सन्तान की रक्षा कितना आवश्यक कर्त्तव्य है ।] सन्तान की रक्षा से आत्मा की रक्षा होती है; क्योंकि पुरुष आप ही पुत्र-रूप से फिर जन्म लेता है इसी लिए विज्ञ पुरुषों ने भार्या का एक नाम जाया रक्खा है । पति पुत्र-रूप से मेरे गर्भ में जन्म लेगा, यही सङ्कल्प करके स्त्री को स्वामी की सेवा करनी चाहिए । वर्णाश्रम धर्म के अच्छे जानकार ब्राह्मणों से मैंने सुना है कि शत्रु को दण्ड देने से बढ़कर क्षत्रिय का और धर्म नहीं है । [इसलिए प्रतिज्ञा-पालन के अनुरोध से भयङ्कर शत्रु कीचक को यथोचित दण्ड न दिया जायगा तो तुम लोगों के सर्वोत्तम धर्म की विशेष हानि होगी ।] हे महाबली, दुष्ट कीचक ने धर्मराज युधिष्ठिर के और तुम्हारे आगे ही मुझे लात मारी है । तुमने पहले भयानक जटासुर से जैसे मेरी रक्षा की है, और भाइयों के सहायता से जयद्रथ को जैसे नीचा दिखाया है, वैसे ही इस समय पापी कीचक को मारो । हे भरत-कुलतिलक ! कामान्ध पापी कीचक, राजा को प्रिय होने के कारण, मेरे लिए अनेक विपत्तियों की जड़ हो गया है । पत्थर पर पटके गए मिट्टी के घड़े की तरह तुम इसी घड़ी उसे चूर-चूर कर डालो । जो सूर्योदय के समय तक वह जीता रहेगा तो मैं विष पीकर प्राण दे दूँगी । कीचक के वशीभूत होकर जीते रहने की अपेक्षा तुम्हारे सामने मर जाना ही मुझे अच्छा जान पड़ता है ।

वैशम्पायन कहते हैं—इस प्रकार करुणाजनक दीन वचन कहकर, भीमसेन की छाती पर सिर रखकर, द्रौपदी रोने लगीं । भीमसेन ने दुःख से पीड़ित सुन्दरी द्रौपदी को गले से लगा लिया । फिर युक्तिपूर्ण वचनों से द्रौपदी को दिलासा देकर अपने हाथ से भीमसेन ने उनके
आँसू पोंछे । वे क्रोध के मारे ओठ चाटने लगे, मानों कीचक उनके सामने ही खड़ा हो । इसके ७१
बाद दुःखित द्रौपदी से भीमसेन ने कहा ।

बाईसवाँ अध्याय

द्रौपदी से भीमसेन की सलाह। कीचक का मारा जाना

भीमसेन ने कहा—प्रिये, मैं वही करूँगा जो तुम कह रही हो। दुष्ट कीचक को भाई-बन्धुवों सहित मार डालूँगा। हे मधुरहासिनी, तुम कल सन्ध्या के समय कीचक से मिलना और बेधड़क उससे मिलने के लिए राज़ी होकर एक स्थान निश्चित कर लेना। राजा विराट की जो नाट्यशाला है, वहाँ कन्याएं दिन को नृत्य आदि करके रात को अपने-अपने घर चली जाती हैं। वहाँ मज़बूत पलँग पर बढ़िया सेज भी लगी हुई है। ऐसा उपाय करो कि उस नाट्यशाला में रात को कीचक किसी तरह पहुँच जाय। [वहाँ मैं स्त्री-वेष में छिपा हुआ बैठा रहूँगा।] मैं उसे, वहीं पर मारकर, उसके मरे हुए पुरखों के पास भेज दूँगा। सावधान, कीचक से मिलकर बाधा और बातें करते तुमको कोई देख न ले।

वैशम्पायन कहते हैं—इस प्रकार बातचीत करके दुःख के मारे आँसू बहाते हुए भीमसेन और द्रौपदी दोनों उस भयानक रात के बीतने और सबेरा होने की राह देखने लगे। दूसरे दिन सबेरे कीचक राजभवन में गया। वहाँ द्रौपदी को देखकर कहने लगा—सैरन्ध्री, सभा के बीच महाराज के सामने ही मैंने तुमको गिराकर लात मारी, तो भी कोई तुम्हारी रक्षा नहीं कर सका। मैं बहुत ही बली हूँ, इसी कारण मेरे हमले से तुम्हें बचाने की किसी को हिम्मत नहीं हुई। मैं इस राज्य का सेनापति हूँ। सारी सेना मेरा हुक्म मानती है। असल में मैं ही मत्स्यराज्य का स्वामी हूँ। विराट तो कहने भर को मत्स्यदेश के राजा कहलाते हैं। हे पतली कमरवाली, तुम मुझ पर प्रेम करके परम सुख भोगो। हम लोगों का परस्पर मिलन होने पर मैं जन्म भर तुम्हारे चरणों का सेवक बना रहूँगा। तुम्हें इसी घड़ी असंख्य सुवर्ण-मुद्रा और
१० अनमोल रत्न दूँगा। तुम्हारी सेवा के लिए हज़ारों दास-दासियाँ नियुक्त कर दूँगा। [तुम्हारी सवारी के लिए] सुन्दर रथ तैयार रहेगा जिसमें खच्चरियाँ जुती होंगी।

द्रौपदी ने कहा—कीचक, हम लोगों के मिलने में अब कुछ खटका नहीं है। डर इतना ही है कि जो यह बात प्रसिद्ध हो जायगी तो वे यशस्वी गन्धर्व सुन लेंगे। इसलिए जो तुम यह प्रतिज्ञा करने को राज़ी हो कि हम दोनों के इस गुप्त मिलन को तुम्हारे भाई या मित्र कोई न जान सकेंगे, तो मैं तुम्हारा कहा करने को तैयार हूँ। कीचक ने प्रसन्नता प्रकट करके कहा—हे सुन्दरी, तुम जैसा कह रही हो वैसा ही होगा। सुन्दरी, मैं तुमसे मिलने के लिए अकेला तुम्हारे उस सूने घर में आऊँगा जहाँ तुम रात को सोती हो। तब तो वे सूर्य के समान तेजस्वी गन्धर्व कुछ हाल न जान सकेंगे। द्रौपदी ने कहा—नहीं जी, ऐसा न करो। मत्स्य-राज की स्थापित की हुई नाट्यशाला में दिन को कन्याएँ नाच-गाकर रात के समय अपने-अपने

घर चली जाती हैं। उस निर्जन स्थान को अवश्य ही गन्धर्व न जानते होंगे। इसलिए तुम घोर अँधेरी रात के समय वहाँ मुझसे मिलने आओ तो हम दोनों लोक-लाज से बच जायँ।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज जनमेजय, कीचक से यों बातचीत हो चुकने पर द्रौपदी को वह आधा दिन एक महीने के बराबर जान पड़ने लगा। उधर कामबाण-पीड़ित दुष्ट कीचक खुशी के मारे फूला नहीं समाता था। उसे नहीं मालूम हुआ कि द्रौपदी उसके लिए साक्षात् मृत्यु है। वह द्रौपदी से वादा करके अपने घर गया और चन्दन, माला, गहने आदि से अपने शरीर की शोभा
बढ़ाने में लग गया। उस समय विशाल नेत्रोंवाली द्रौपदी की याद आने से रात होने में जो थोड़ा सा २०
समय बाक़ी था वह कीचक को बहुत ही अधिक जान पड़ने लगा। जैसे दीपक बुझने से पहले ख़ूब जगमगा उठता है, वैसे ही उस समय कीचक बहुत आनन्दित और शोभित हुआ। दुष्ट कीचक काम-विह्वल और मिलने की खुशी में उन्मत्त सा हो उठा। द्रौपदी की बातों पर उसको पूरा विश्वास था। इस ख़याल में वह इतना मग्न हो गया कि दिन कब बीत गया, इसकी भी उसको खबर नहीं हुई।

अब सन्ध्या का समय आ गया। पतिव्रता ने द्रौपदी ने रसोई-घर में जाकर भीमसेन से कहा—हे शत्रुदमन, तुम्हारी आज्ञा से मैंने कीचक को नाट्यशाला में बुलाया है। वह दुष्ट रात को वहाँ अकेला जायगा, उसी समय तुम उसको मार डालना। वह दुष्ट बड़ी शेखी से हर घड़ी गन्धर्वों (पाण्डवों) का अनादर किया करता है; इसलिए तुम आज ही उसे मार डालो। गजराज जैसे सहज ही कमल के पेड़ को उखाड़कर रौंद डालता है, वैसे ही तुम उसे मारकर मेरा दुःख [दूर करो; मेरे आँसू पोंछो, वंश की मर्यादा बनाओ और अपना कल्याण करो।

भीमसेन ने कहा—पाञ्चाली, प्रसन्नता की बात है कि तुम बिना किसी विघ्न के सब काम ठीक कर आई हो। यहाँ आकर तुमने मुझे यह प्रिय संवाद दिया, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। हे कल्याणी, मैं यही खबर सुनना चाहता था। इसके सिवा मुझे और कोई सहायता न चाहिए।
पहले हिडिम्ब दानव को मारते समय मुझे जैसी प्रसन्नता हुई थी वैसी ही प्रसन्नता इस समय ३०
भी, तुम्हारे मुँह से यह शुभ संवाद सुनकर, हुई है। मैं इस समय तुम्हारे आगे सत्य, धर्म और प्यारे भाइयों की सौगन्द खाकर कहता हूँ कि जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा था वैसे ही मैं दुष्ट कीचक को एकान्त में या सबके सामने, जहाँ मिलेगा, मार डालूँगा। इसके लिए यदि मत्स्यराज के [वीर लड़ने] आवेंगे तो उन्हें भी मारूँगा। अन्त को दुष्ट दुर्योधन को मारकर पृथ्वीमण्डल का राज्य अपने हाथ में लूँगा। राजा युधिष्ठिर राजा विराट की सेवा भले ही करते रहें, पर मैं यह काम अवश्य करूँगा।

द्रौपदी ने कहा—स्वामी, सब का सावधानी से करना। मेरे लिए तुमको प्रतिज्ञा न तोड़नी पड़े। गुप्त रूप से ही कीचक को मारना, कोई जानने न पावे।

भीमसेन ने कहा—हे भीरु, तुम जैसा कहती हो मैं वैसा ही करूँगा। मैं आज शाम को छिपकर अनधिकार-चेष्टा करनेवाले उस दुरात्मा के मस्तक को वैसे ही कुचल डालूँगा जैसे हाथी बेल के फल के टुकड़े-टुकड़े कर डालता है। मैं उसको, भाई-बन्धुओं सहित, मार डालूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—फिर रात होने पर भीमसेन नाट्यशाला में गये। मृग का शिकार करने की इच्छा रखनेवाले सिंह के समान वे छिपकर, घात लगाकर, बैठ रहे। दुर्बुद्धि कीचक भी मनमाना शृङ्गार करके—साज-सामान करके—सैरन्ध्री से मिलने को उसी समय वहाँ पहुँचा। भीम पराक्रमवाले भीमसेन जिस सूने स्थान में बैठे हुए उसकी राह देख रहे थे उसे
४१ ही द्रौपदी के मिलने का स्थान समझकर कामान्ध कीचक उसके भीतर गया। उसे क्या मालूम था कि द्रौपदी के अपमान से उत्पन्न क्रोध की आग से प्रज्वलित भीमसेन, साक्षात् मृत्यु की तरह, वहाँ लेटे हुए हैं। भीतर जाकर, पास पहुँचकर [जलते हुए अग्निकुण्ड में गिरने के लिए उतारू पतङ्ग या सिंह को छूनेवाले पशु की तरह] कीचक ने द्रौपदी के धोखे भीमसेन के शरीर पर हाथ रक्खा। उसका हृदय आनन्द में मत्त हो उठा। उसने हँसकर कहा—प्रिये, आज मैं तुम्हारे लिए बहुत सी अनमोल सामग्री—धन-रत्न-कपड़े-गहने आदि—निकालकर रख आया हूँ। मेरे घर में सैकड़ों दास-दासियाँ हैं, रूप-लावण्यवती युवती स्त्रियाँ हैं। अनेक मणि-रत्न आदि मेरे रनिवास की शोभा बढ़ाते हैं। तुम्हारे समागम की लालसा से वह रनिवास छोड़कर मैं यहाँ आया हूँ। हे सुन्दरी, मेरे अन्तःपुर में रहनेवाली स्त्रियाँ मुझको अद्वितीय सुन्दर और प्रियदर्शन कहकर सदा मेरी बड़ाई किया करती हैं।

भीमसेन ने कहा—मेरा परम सौभाग्य है कि तुम ऐसे प्रियदर्शन हो। तुम्हारी यह अपनी प्रशंसा भी ठीक है! किन्तु तुमने पहले कभी ऐसे कोमल स्पर्शसुख का अनुभव न किया होगा। अहा! तुम तो बड़े कामकलानिपुण हो! अच्छे रसिकशिरोमणि हो! कैसे स्पर्शरस के जानकार हो! तुम्हारे सदृश स्त्रियों को रिझानेवाला दूसरा नहीं है। वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, परम-पराक्रमी भीमसेन यों कहकर एकाएक उछल पड़े और फिर हँसकर अपने को प्रकट करते हुए कहने लगे—रे पापी! सिंह जैसे गजराज पर हमला करता है, वैसे ही मैं तुझे खींचकर, तेरी
५० बहन के सामने ही तुझे धरती पर पटककर, रगड़ूँगा। तेरे मर जाने पर सैरन्ध्री बेखटके हो जायगी, और उसके स्वामी गन्धर्व भी सन्तुष्ट होंगे।

महाबली भीमसेन ने यों कहकर चटपट उसके बाल पकड़ लिये। श्रेष्ठ बलवान् कीचक ने भी उसी घड़ी अपने बाल छुड़ाकर वेग से भीमसेन को भुजाओं में भर लिया। इस तरह क्रोध से भरे दोनों वीर परस्पर भिड़ गये। बसन्त ऋतु में हथिनी के लिए काम से उन्मत्त दो गजराज जैसे परस्पर युद्ध करें, या पहले बाली और सुग्रीव ने जैसा दारुण युद्ध किया था, वैसे ही वे दोनों भयानक युद्ध करने लगे। दोनों को समान रूप से जय की इच्छा थी, दोनों ही

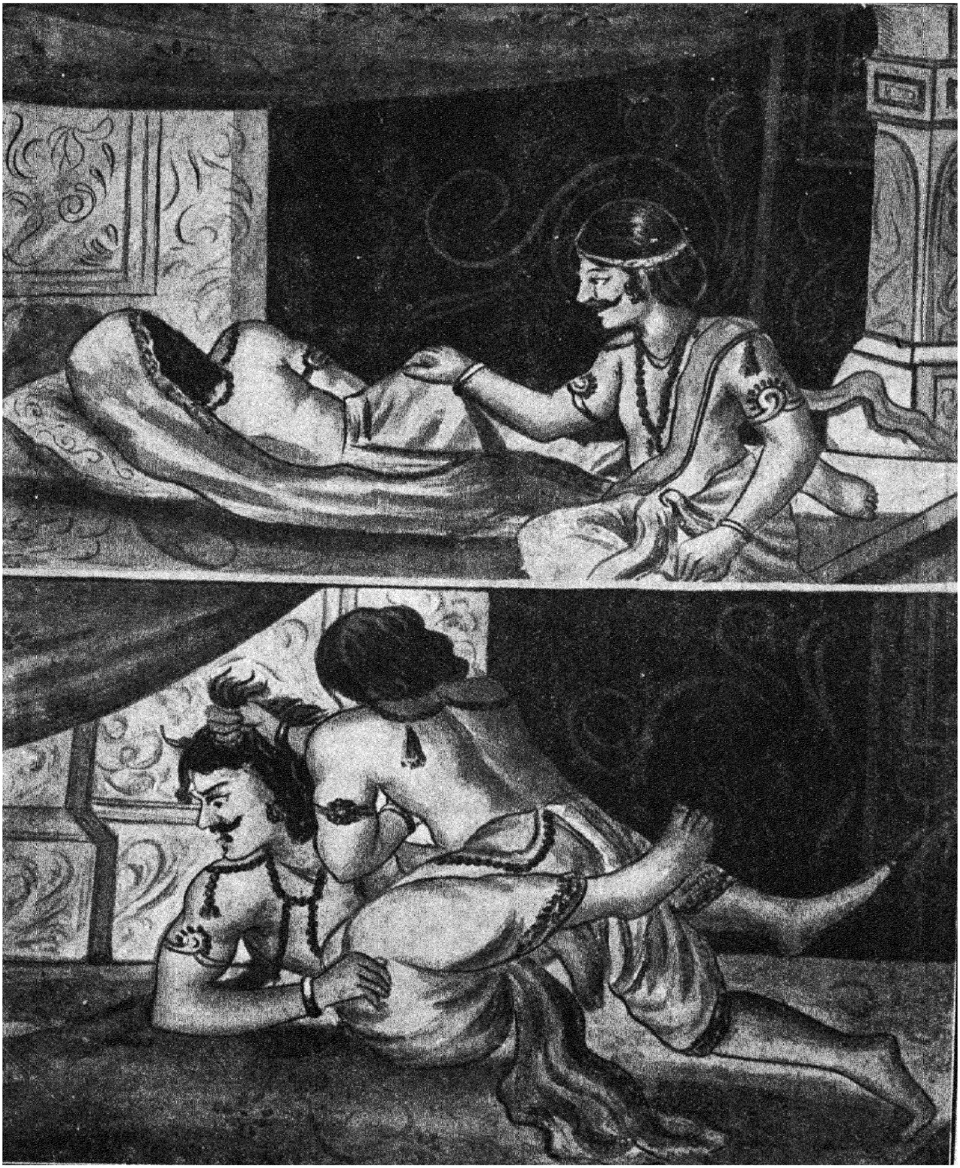

कीचक ने द्रौपदी के धोखे भीमसेन के शरीर पर हाथ रक्खा। —पृ० १४०४
कीचक की छाती पर चढ़कर भीमसेन उसे बार बार जोर से रगड़ने लगे।—पृ० १४०५

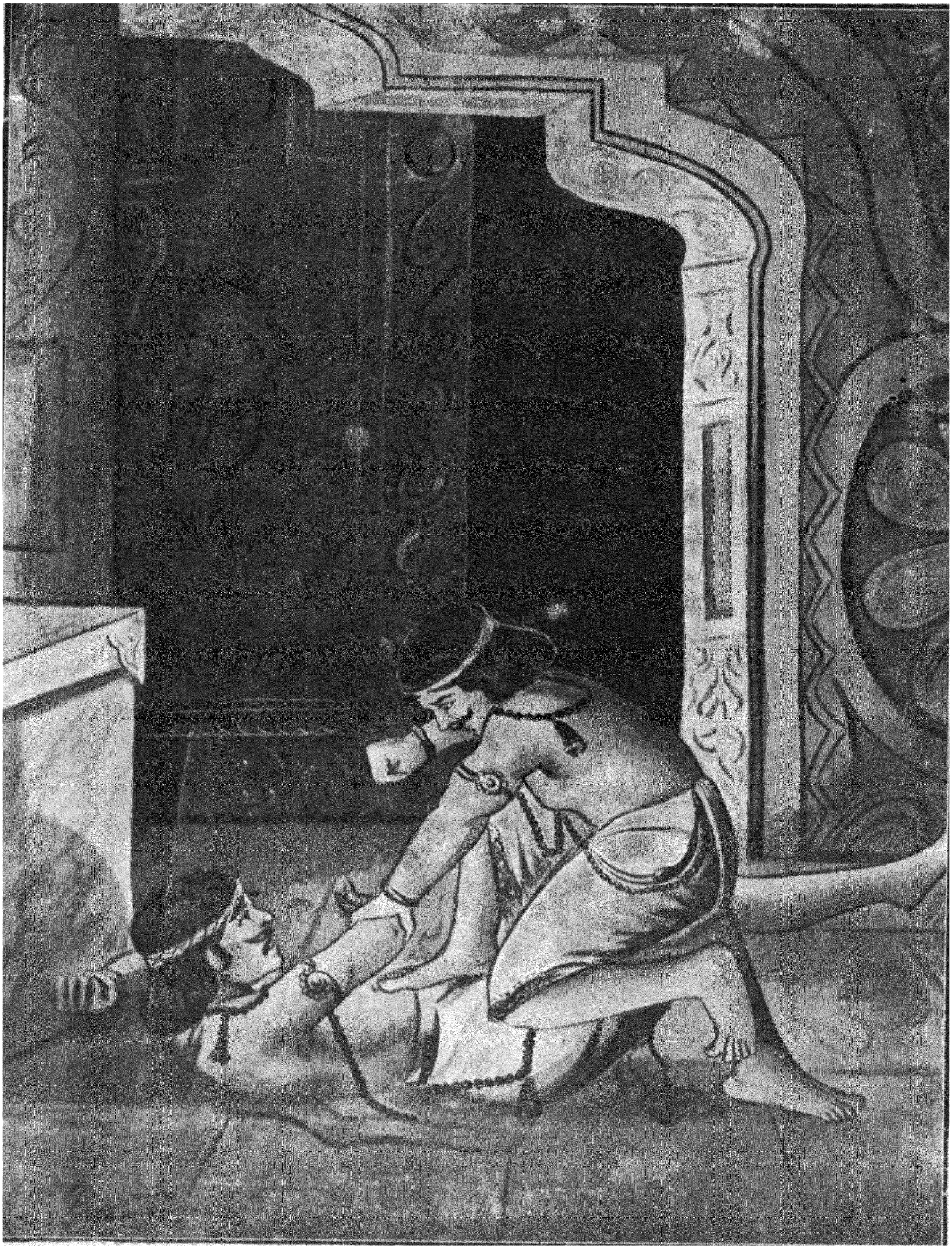

भीमसेन ने हाथों से कीचक की छाती की हड्डियाँ और पसलियाँ तोड़ दीं।--पृ० १४०५

क्रोध से भरे हुए थे। तीक्ष्ण विषवाले पाँच सिर के नागों के समान भयङ्कर भुजाएँ उठाकर
दोनों ही परस्पर नखों और दाँतों से प्रहार करने लगे। कीचक महावेग से प्रहार करता था, पर
प्रतिज्ञा में स्थिर प्रतापी भीमसेन पग भर भी अपने स्थान से नहीं हटते थे। वे परस्पर खींचकर,
लिपटकर नखों और दाँतों के प्रहार करते थे। ऐसा जान पड़ता था कि दो बली साँड़
अथवा दो क्रोधित सिंह भिड़कर युद्ध कर रहे हैं। जिसके मद बह रहा हो ऐसा क्रोधित गज-
राज जैसे दूसरे गजराज पर झपटे वैसे ही कीचक एकाएक भीमसेन पर झपटा। इस प्रकार ६०
बलपूर्वक कीचक के हमला करने पर भीमसेन ने भी झपटकर वैसे ही उस पर चोट की। किन्तु
कीचक ने बलपूर्वक रेलकर भीमसेन को हटा दिया। उन दोनों के हाथ मारने से बाँस फटने
का सा भयानक शब्द होने लगा।

अब भीमसेन ने बलपूर्वक कीचक को खींचकर इस तरह विचलित कर दिया जिस तरह
आँधी किसी बड़े पेड़ को हिलाकर ढीला कर देती है। कीचक लड़ते-लड़ते थककर यद्यपि बेदम
सा हो गया था, तो भी वह भरसक भीमसेन को खींचने लगा। क्रोध के मारे भिड़कर भीम-
सेन को कुछ विचलित कर, घुटनों की मार से उसने पृथ्वी पर गिरा दिया। एकाएक गिरकर
भीमसेन तुरन्त वेग से दण्डपाणि यमराज की तरह उठ खड़े हुए। इस तरह पराक्रम से उन्मत्त
दोनों प्रबल वीर सुनसान रात के समय उस निर्जन स्थान में लड़ रहे थे। वे एक दूसरे को
खींचकर गरजते हुए बार-बार जय पाने की इच्छा से भिड़ जाते थे। उनके गरजने और धमा-
चौकड़ी मचाने से वह नाट्यशाला का ऊँचा महल काँप रहा था। पराक्रमी भीमसेन ने मौका
पाकर कीचक की छाती में दोनों हाथों से प्रहार किया। क्रोधित कीचक उस प्रहार से पहले तो
विचलित नहीं हुआ किन्तु कुछ ही देर भीमसेन के वेग को सहकर वह बेदम हो गया और धरती
पर गिर पड़ा। उसकी छाती पर चढ़कर भीमसेन उसे बार-बार ज़ोर से रगड़ने लगे। कीचक ७०
अचेत हो गया। क्रोधित भीमसेन लम्बी साँसें छोड़ते हुए उसको लथेड़ने लगे। माँस का लोभी
सिंह जैसे गरजकर हाथी का शिकार करता हो वैसी ही भीमसेन की शोभा हुई।

कीचक को बहुत ही थका हुआ जानकर, पशु को जैसे रस्सी से बाँधते हैं वैसे, उसके दोनों हाथ बाँधकर भीमसेन घुमाने लगे। कीचक चीखकर एकदम बेहोश हो गया। तब द्रौपदी का क्रोध शान्त करने के लिए कीचक को पटककर भीमसेन दोनों हाथों से उसका गला घोंटने लगे। अन्त को घुटने की चोट से उन्होंने उसकी कमर तोड़ डाली। हाथों से छाती की हड्डियाँ और पसलियाँ तोड़ दीं। इस प्रकार प्रहार करके भीमसेन ने उसे पशु की मौत मार डाला। जब कीचक सिसक रहा था तब उसके शरीर को धरती पर लथेड़कर भीमसेन कहने लगे—आज सैरन्ध्री के जी का काँटा निकालकर मैं भाई से उऋण हुआ; आज मुझे शान्ति मिली। भीमसेन के प्रहार से कीचक के प्राण निकल गये। उसकी आँखें ऊपर चढ़ गईं,

८० कपड़े और गहने इधर-उधर गिर पड़े। देह ऐंठकर लकड़ी हो गई। क्रोध के मारे हाथ मलते
हुए भीमसेन ने फिर कीचक की लोथ पर आक्रमण करके, महादेव ने जैसे गजासुर के सब अङ्ग
शरीर के भीतर घुसेड़ दिये थे वैसे ही, हाथ-पाँव आदि सब अङ्ग शरीर के भीतर घुसेड़कर उसे
एक मांस का लोंदा बना दिया। फिर द्रौपदी को बुलाकर भीमसेन ने कहा—"प्रिये! देखो,
इस लम्पट को मैंने कैसी दुर्गति कर डाली है।" अब भीमसेन ने कीचक की लाश पर कई
लातें मारीं और आग जलाकर द्रौपदी को उसकी दुर्दशा दिखाकर कहा—पाञ्चाली, अब और
भी जो कोई तुम्हारी इच्छा करेगा उसकी ऐसी ही दशा करूँगा।

द्रौपदी की प्रसन्नता के लिए वैसा कठिन कर्म करके, प्रिया से बिदा होकर, महावीर भीम-
सेन फुर्ती से पाकशाला को लौट गये। कीचक के मरने से द्रौपदी का दुःख शान्त हो गया,
विपत्ति मिट गई। द्रौपदी ने नाट्यशाला के रक्षकों के पास जाकर कहा—"लम्पट कीचक मेरे
स्वामी गन्धर्वों के हाथ से मारा गया है; भीतर नाट्यशाला में मरा पड़ा है। जी चाहे तो जाकर
९० देख आओ।" यह सुनते ही पहरेदार लोग मशालें जलाकर देखने के लिए नाट्यशाला के भीतर
गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि ख़ून से तर, मांस का लोंदा बना हुआ, कीचक मरा पड़ा
है। उसकी यह दशा देखकर उन लोगों को दुःख भी हुआ और आश्चर्य भी। वे आपस में कहने
लगे—मनुष्य तो कभी ऐसा अद्भुत काम नहीं कर सकता। देखो, इसके हाथ, पाँव, गर्दन आदि
९३ अङ्ग-प्रत्यङ्ग न-जाने कहाँ चले गये हैं। अतएव निःसन्देह इसको गन्धर्वों ने ही मारा है।

तेईसवाँ अध्याय

मरघट में उपकीचकों का मारा जाना

वैशम्पायन कहते हैं—यह ख़बर पाकर कीचक के भाई-बन्धु वहाँ पर आ गये। वे कीचक की यह दशा देख, उसे चारों ओर से घेरकर, विलाप करने लगे। महाराज, थल पर लाकर रक्खे गये कछुए की तरह कीचक की लोथ के मांस-पिण्ड को देखकर डर के मारे उन सबके रोंगटे खड़े हो गये। इन्द्र के हाथ से मरे हुए वृत्रासुर के समान, भीमसेन के हाथ से मरे हुए कीचक का अन्त्येष्टिसंस्कार करने के लिए वे लोग तैयारियाँ करने लगे। इसी समय उन्होंने देखा कि पतिव्रता द्रौपदी सामने का खम्बा पकड़े खड़ी हैं। उन्हें देखकर कीचक के भाई उपकीचक कहने लगे—यही पापिन तो कीचक की मौत का कारण है। इसलिए इसे शीघ्र मार डालो; अथवा यों समझो कि कीचक का प्रिय करना हम सबका कर्त्तव्य है इसलिए इस दुष्टा को उसके साथ ही चिता पर रखकर जला दो। अब उन सबने विराट के पास जाकर कहा—महाराज, सैरन्ध्री ही कीचक की मृत्यु का कारण है। इसलिए आज्ञा दीजिए, हम सब उसे भाई कीचक

कीचक-वध

की लाश के साथ जला दें। उनके पराक्रम से डरकर राजा ने उन्हें आज्ञा दे दी। तब कीचक के भाई डरी हुई द्रौपदी को बाँधकर, कीचक की लाश के बराबर बिठाकर, मसान की ओर ले चले। महाराज! महाबली स्वामियों की पत्नी द्रौपदी, बिलकुल अनाथ की तरह शरण की प्रार्थना करती हुई, ज़ोर से रो-रोकर कहने लगीं—जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्बल, ये पाँचों मेरे स्वामी मेरी पुकार पर ध्यान दें। ये सूतपुत्र मुझे ज़बर्दस्ती जलाने के लिए मसान की ओर लिये जा रहे हैं। जो महावीर गन्धर्व संग्राम के समय वज्रपात के सदृश भयानक प्रत्यञ्चा के शब्द और रथ के पहियों की घरघराहट से चारों दिशाओं को डर से व्याकुल कर देते हैं वे मेरी पुकार सुनें। सूतपुत्र मुझे जलाने के लिए मसान की ओर लिये जा रहे हैं।

भीमसेन उस समय बिस्तर पर लेटे हुए थे। एकाएक द्रौपदी का आर्त्तनाद सुन पड़ते ही वे चट उठ बैठे और कहने लगे कि भीरु, सूतपुत्रों से तुम डरो मत। तुम्हारी पुकार मैंने सुन ली है। अब क्या था, वे कीचक के भाइयों को मारने के लिए तैयार हो गये। देखते ही देखते उनका शरीर मानों बहुत अधिक बढ़ गया। उन्होंने अपना वेष बदल डाला। फिर वे दरवाज़े से न जाकर, दीवार पर चढ़कर, उसे अनायास लाँघ गये। राजभवन के बाहर कूदकर वे मसान की ओर दौड़े। नगर की चहारदीवारी लाँघकर दौड़ते हुए वे सूतपुत्रों के सामने पहुँचे। ताड़ ऐसा ऊँचा और बहुत ही मोटा, ऊपर से सूखा, एक विशाल वृक्ष चिता के पास ही लगा हुआ था। उसे भीमसेन ने अपने बाहुबल के प्रभाव से उखाड़ लिया। उस वृक्ष को कन्धे पर रखकर और कभी घुमाते हुए भीमसेन, दण्ड हाथ में लिये यमराज की तरह, उपकीचकों को मारने के लिए वेग से दौड़े। भीमसेन की जाँघों के वेग से राह में लगे हुए पीपल, बरगद, ढाक आदि के पेड़ उखड़-उखड़कर टूट-टूटकर गिरने लगे।

क्रोधित सिंह के समान भयानक भीमसेन को अकस्मात् आते देख, गन्धर्व जानकर, सूतपुत्र बहुत ही घबराये। अपने बचने का कोई उपाय न सूझ पड़ने के कारण डर से व्याकुल

उदास सूतपुत्रों के हृदय धड़कने लगे। वे परस्पर कहने लगे—"वह देखो, बड़ा भारी वृक्ष कन्धे पर रक्खे, मृत्यु की तरह, दौड़ता हुआ गन्धर्व हम लोगों की ओर आ रहा है। इसलिए इस विपत्ति की जड़ सैरन्ध्री को जल्द छोड़ दो।" द्रौपदी को छोड़कर वे लोग नगर की ओर भागे। यह देखकर भीमसेन ने उनका पीछा किया। इन्द्र ने दानवों को जैसे दल मल डाला था, वैसे ही महाबली कालरूप भीमसेन ने उसी वृक्ष से एक सौ पाँच उपकीचकों को उसी दम मार डाला। इसके बाद रोती हुई द्रौपदी के पास जाकर, बन्धन काटकर, दिलासा देते हुए भीमसेन ने कहा—हे भीरु, जो लोग बिना किसी अपराध के तुम्हें क्लेश देंगे वे यों ही मृत्यु के मुँह में पड़ेंगे। अब तुम्हें कुछ डर नहीं है। तुम आनन्द से नगर के भीतर जाओ। मैं भी
३० दूसरी राह से पाकशाला में जाता हूँ।

वैशम्पायन कहते हैं—इस प्रकार भीमसेन के हाथ से उपकीचक मारे गये और उनकी पड़ी हुई लोथों से वह मसान की भूमि, टूटे हुए पेड़ों से पूर्ण, महावन के समान जान पड़ने लगी। बालक-बूढ़े-जवान सब नगरवासी यह हाल सुनकर मसान में जमा होने लगे। वे इस अद्भुत
३४ घटना को देखकर आश्चर्य के मारे सन्नाटे में आ गये।

चौबीसवाँ अध्याय

रानी सुदेष्णा, द्रौपदी और बृहन्नला का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं कि इसके बाद सब नगरनिवासियों ने राजा विराट के पास आकर कहा—महाराज, गन्धर्वों के हाथ से बड़े वीर सूतपुत्र मारे गये। वज्रपात से फटे हुए पर्वत-शिखर के समान वे पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। छुटकारा पाकर सैरन्ध्री भी घर को लौट आई है। जान पड़ता है, आपका यह राज्य शीघ्र नष्ट हो जायगा; क्योंकि सैरन्ध्री का रूप-लावण्य असाधारण है, गन्धर्व भी महापराक्रमी हैं और पुरुषों की प्रवृत्ति भी स्वभाव से स्त्री-सङ्ग की ओर हुआ करती है। इसलिए यथोचित नीति का आश्रय लेकर सैरन्ध्री के हाथ से हम सबको बचाइए। राजा विराट ने कहा—"तुम लोग इस समय जाकर सूतपुत्रों का दाहकर्म करो। आग जलाकर, उसमें घी और सुगन्धित पदार्थ आदि छोड़कर, एक ही चिता पर रखकर सबको जला दो।" सबको बिदा करके घबराये हुए राजा विराट रनिवास में गये। वहाँ उन्होंने सुदेष्णा से कहा—प्रिये, ज्योंही सैरन्ध्री आवे त्योंही तुम मेरी ओर से उससे कहना कि हे सुन्दरी, तुम्हारा भला हो। तुम्हारा जहाँ जी चाहे वहाँ जाओ। गन्धर्वों का पराक्रम देखकर महाराज विराट बहुत डर गये हैं। किन्तु स्वयं गन्धर्व तुम्हारी रक्षा करते हैं, इसलिए राजा को तुमसे यह कहने
१० का साहस नहीं होता। स्त्रियों से स्त्रियों के कहने में कुछ दोष नहीं, इससे मैं स्वयं तुमसे कहती हूँ।

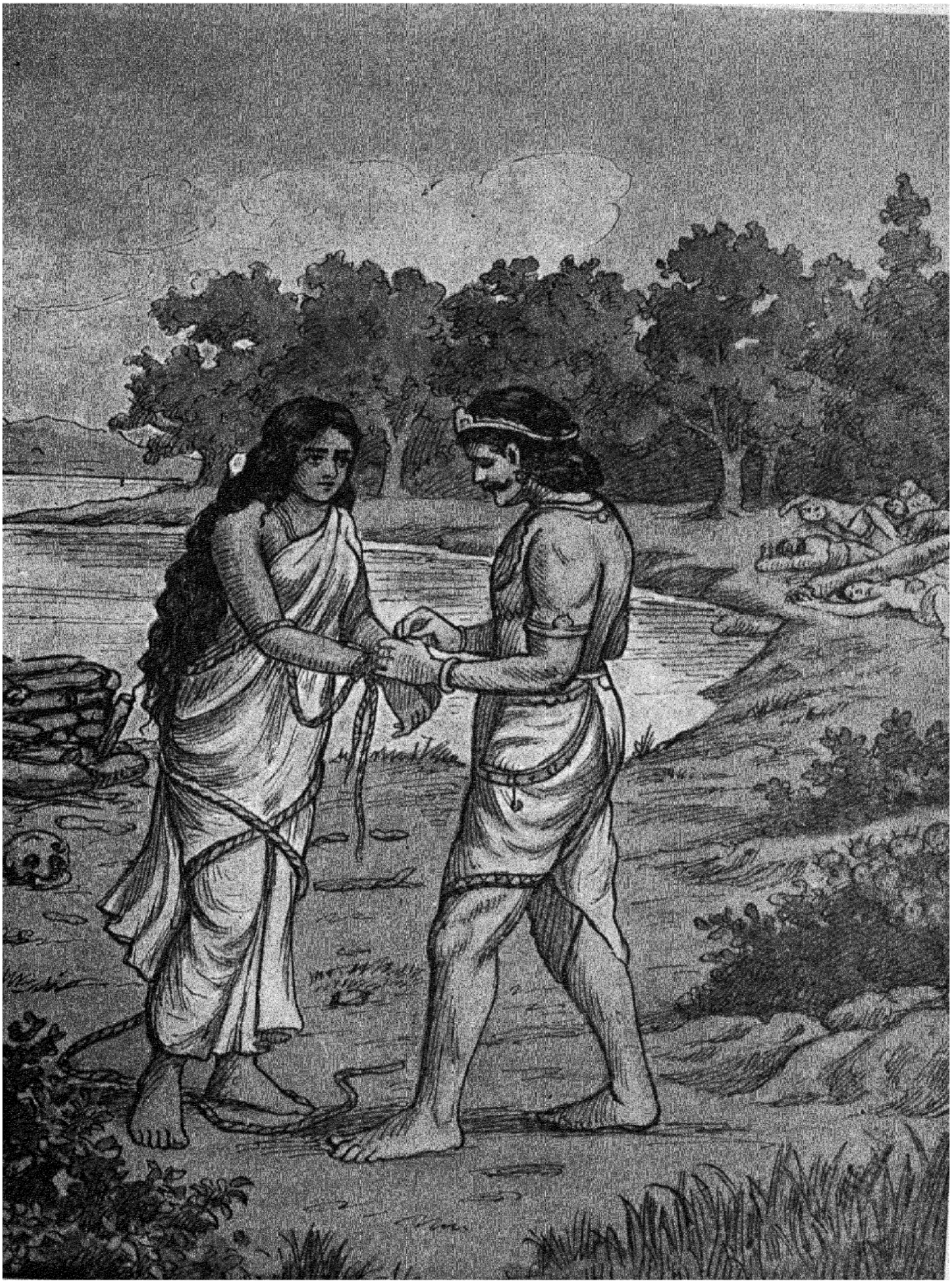

द्रौपदी का बन्ध-विमोचन

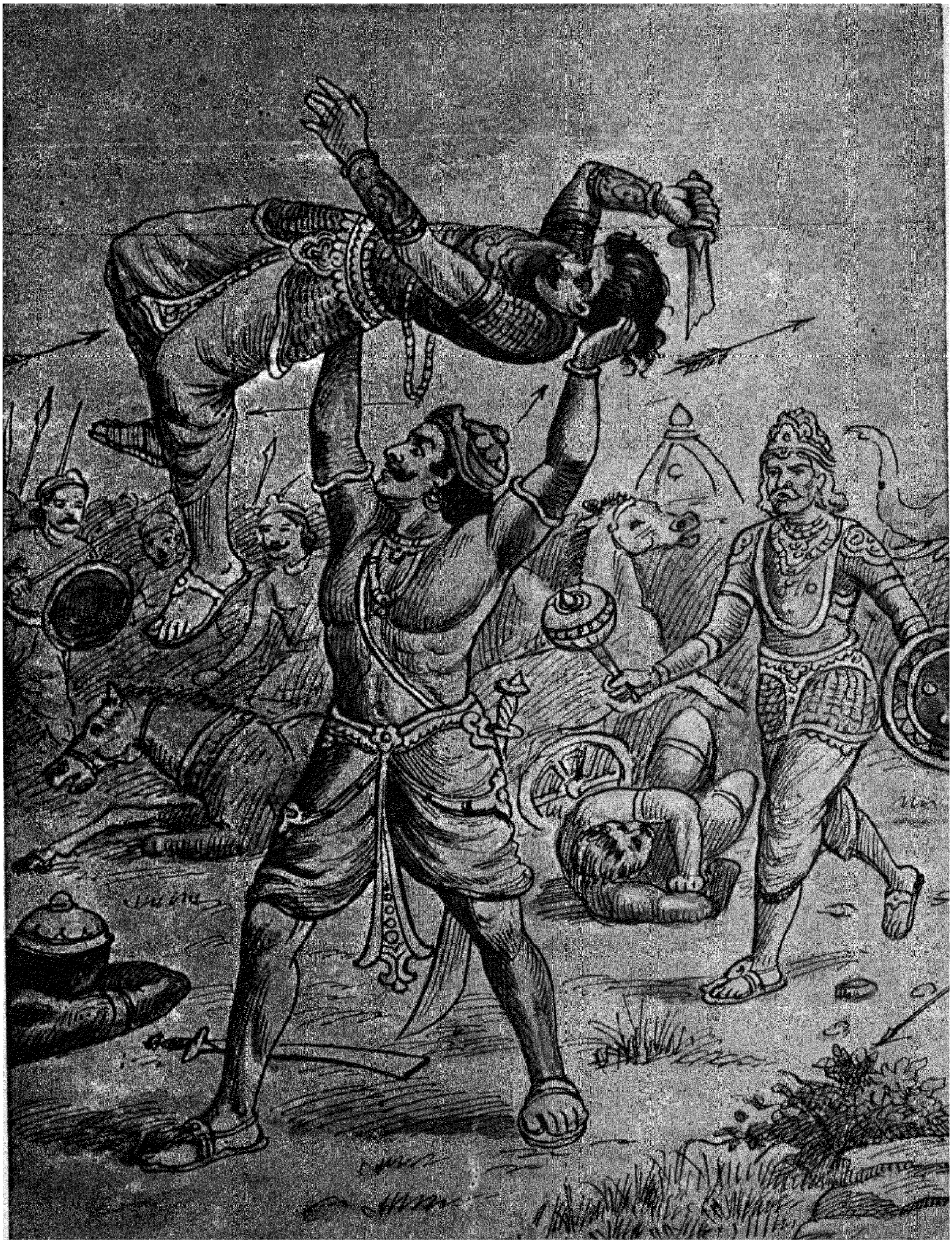

सुशर्मा-वध

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! इधर सूतपुत्रों के हाथ से छुटकारा पाकर, हाथ-पाँव और कपड़े धोकर, द्रौपदी नगर के भीतर घुसीं। सिंह की सताई मृगी जैसे छुटकारा पाकर प्रसन्न हो वैसे ही द्रौपदी भी भीमसेन की सहायता से छुटकारा पाकर परम प्रसन्न हुई। नगरनिवासी लोग उन्हें देखते ही गन्धर्वों के डर से इधर-उधर भागने लगे। कोई-कोई आँखें मूँदकर खड़े रहे। नगर के भीतर पाकशाला के फाटक पर मस्त हाथी की तरह खड़े भीमसेन को देखकर द्रौपदी ने, इशारे के तौर पर, यह कहकर अपनी कृतज्ञता जताई कि जिन गन्धर्वराज ने इस विपत्ति से मुझे छुड़ाया है उनको मैं प्रणाम करती हूँ। भीमसेन ने भी इसके उत्तर में उसी तरह इशारे के तौर पर कहा—पहले से ही पुरुष (गन्धर्व) जिसके वश में होकर यहाँ निवास करते हैं उसी (सैरन्ध्री) के वाक्य सुनकर इस समय वे उरिन हो गये। अब आनन्द से रहें।

वैशम्पायन कहते हैं—द्रौपदी जब नाट्यशाला के समीप पहुँचीं तब उन्हें देखकर राजघराने की लड़कियाँ बृहन्नला (अर्जुन) को साथ लेकर, बाहर आईं और द्रौपदी से कहने लगीं—हे सैरन्ध्री, बड़े भाग्य की बात है कि तुम शत्रु के हाथ से छुटकारा पाकर सकुशल यहाँ लौट आईं। जो लोग बिना अपराध के तुमको क्लेश देने का यत्न कर रहे थे वे सूतगण भी सौभाग्य-वश मारे गये।

बृहन्नला ने कहा—सैरन्ध्री, इस विपत्ति से तुम्हारा छुटकारा किस तरह हुआ और दुष्ट
सूतपुत्र कैसे मारे गये? इसका ब्योरा सुनने को मेरा जी चाहता है। सैरन्ध्री ने कहा—बृहन्नला, २०
अब सैरन्ध्री का दुःख सुनकर तुम क्या करोगी? तुम रनिवास में सुख से रहती हो। सैरन्ध्री कैसे-कैसे दुःख भोग रही है, सो तुम क्या जानोगी? हे कल्याणी, जान पड़ता है कि तुम यह प्रश्न दिल्लगी के लिए कर रही हो! बृहन्नला ने कहा—भद्रे, नपुंसक योनि को पाकर बृहन्नला जिन क्लेशों को सह रही है उन्हें तुम नहीं जानतीं। तुम्हें दुःख सहते देखकर भला किसे क्लेश

न होगा? हम सब एक ही जगह रहते हैं तो भी कोई किसी के हृदय का हाल नहीं जानता—इस कारण, तुम भी मेरे जी के दुःख को नहीं जान सकतीं।

वैशम्पायन कहते हैं—अब उन कन्याओं के साथ द्रौपदी राजभवन में पहुँचीं। वे जब सुदेष्णा के पास गईं तब, विराट के कहने के अनुसार, सुदेष्णा ने कहा—सैरन्ध्रो, तुम्हारा भला हो। तुम्हारा जहाँ जी चाहे वहा जाओ; क्योंकि गन्धर्वों द्वारा पराभव होने की आशङ्का से महाराज तुमसे बहुत डर गये हैं। हे कल्याणी, तुम्हारा अलौकिक रूप है और गुण भी तुममें वैसे ही हैं। पुरुषों की प्रवृत्ति विषय-भोग की ओर अधिक हुआ करती है। उधर तुम्हारे स्वामी गन्धर्व बड़े क्रोधी हैं। [इसलिए यहाँ तुम्हारे रहने से हम लोग किसी तरह चैन से नहीं रह सकते।] सैरन्ध्री ने कहा—भद्रे, केवल तेरह दिन और मुझे राजा अपने यहाँ रहने दें। तेरह दिन के बाद गन्धर्वों का मनोरथ पूरा हो जायगा। वे मुझे ले जायँगे। वे तुम्हारा और राजा का प्रिय भी करेंगे। भाई-बन्धुओं सहित राजा की सब तरह भलाई करने में वे कुछ भी कसर न
३० रख छोड़ेंगे।

गोहरणपर्व

पचीसवाँ अध्याय

दुर्योधन के पास जाकर उसके जासूसों का कीचकवध का वृत्तान्त कहना

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, इस तरह कीचक और उपकीचकों के मारे जाने पर सब लोग अत्यन्त शङ्कित, चिन्तित और विस्मित हुए। क्या राजा विराट की राजधानी में और क्या अन्य नगरों में, सर्वत्र यही चर्चा होने लगी कि दुरात्मा कीचक अपनी शूरवीरता के प्रभाव से महाराज विराट का परम प्रिय सेनापति था। वह परस्त्रीगामी और पापी था। गन्धर्वों की प्यारी स्त्री को प्राप्त करने की चेष्टा करने के कारण वह उन्हीं के हाथों मारा गया।

पाण्डवों का पता लगाने के लिए राजा दुर्योधन ने पहले से ही बहुत से गुप्तचर इधर-उधर भेज रक्खे थे। बहुत से गाँवों, राज्यों और नगरों में पता लगाने पर भी वे पाण्डवों को नहीं पा सके; अन्त को हस्तिनापुर लौट आये। द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, महात्मा भीष्म, महारथी त्रिगर्तनरेश और अन्य भाइयों के साथ सभा-मण्डप में बैठे हुए दुर्योधन के सामने जाकर
८ उन्होंने कहा—महाराज, हम लोगों ने बड़े यत्न के साथ पाण्डवों की खोज की है। लता झाड़ियों से दुर्गम, अनेक वृक्ष-युक्त, सिंह-साँप आदि भयानक जीवों से परिपूर्ण जङ्गलों में, पहाड़ों के शिखरों पर, अनेक नगरों में, मनुष्यों की भीड़भाड़वाले स्थानों में, सब जगह जाकर बड़ी चतुराई से हमने पाण्डवों का पता लगाया। किन्तु हमें किसी तरह कुछ पता नहीं मिला

कि पाण्डव लोग कब किधर से कहाँ चले गये। राजन्, एक दिन हमने पाण्डवों के सारथियों को खाली रथ लेकर द्वारकापुरी की ओर जाते देखा था। उनका पीछा करते हुए हम लोग द्वारका तक चले गये। किन्तु द्रौपदी या पाण्डव कहीं नहीं देख पड़े और न उनका कुछ पता ही मिला। मतलब यह कि हम इतने दिन तक परिश्रम करके भी नहीं जान सके कि आपके शत्रु पाण्डव कहाँ गये हैं और क्या कर रहे हैं। जान पड़ता है, वे अब इस संसार में नहीं हैं। इसलिए अब आप निष्कण्टक होकर राज्यशासन कीजिए या आज्ञा दीजिए तो हम फिर जाकर पाण्डवों का पता लगावें। राजन्, हम आपको एक प्रिय संवाद देते हैं। वह यह कि जिसके प्रबल परा-
क्रम से त्रिगर्त देश का सर्वनाश हुआ है वह मत्स्यराज का साला और सेनापति क्रूर कीचक और
उसके भाई उपकीचक मार डाले गये। एक सुन्दरी सैरन्ध्री के कारण महाबली गन्धर्वों २०
ने रात को छिपकर उन्हें मार डाला। यह प्रिय समाचार सुनकर और शत्रुओं के
लापता होने का हाल जानकर आप अपने को कृतकृत्य समझिए। अब विचार करके जो २२
अपना कर्त्तव्य आपको जान पड़े वह कीजिए।

छब्बीसवाँ अध्याय

पाण्डवों का पता लगाने के बारे में दुर्योधन आदि का सलाह करना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज! जासूसों से यह समाचार पाकर, पल भर सोचकर, राजा दुर्योधन ने अपने सभासदों से कहा—कार्य की गति को ठीक-ठीक जान लेना असम्भव है। इस-लिए हे सभासदो, अच्छी तरह से सोचकर देखो कि इस समय पाण्डव कहाँ हैं। यही उनके अज्ञातवास का वर्ष है। इस वर्ष का भी अधिक समय बीत गया है, बहुत ही थोड़ा समय बाक़ी है। यह समय बीतते ही सत्यवादी पाण्डव प्रतिज्ञा के बन्धन से छुटकारा पाकर, मस्त गजराज की तरह, क्रोधित साँप की तरह, कौरवों पर आक्रमण करेंगे। इस कारण शीघ्र ही प्रतिकार की ऐसी चेष्टा करो, जिससे देशकालज्ञ चतुर पाण्डवों को फिर वन मे जाना पड़े और मेरा यह राज्य सदा के लिए अक्षय और निष्कण्टक हो जाय।

इस पर कर्ण ने कहा—हे राजन्! अब और धूर्त्त, कार्यकुशल, नम्र जासूसों को भेजिए। वे अपना वेष बदलकर सम्पन्न नगरों में, भीड़भाड़ के जमघटों में, सिद्धगण-सेवित एकान्त और रमणीय
स्थानों में, तीर्थों तथा अन्य स्थानों में जाकर पाण्डवों की खोज करें। जो लोग पाण्डवों को विशेष रूप १०
से जानते-पहचानते हैं वे अपने को बहुत ही छिपाकर नदी, कुञ्ज, तीर्थ, गाँव, नगर, रमणीय आश्रम, पहाड़, गुफा आदि स्थानों में जाकर छिपे हुए पाण्डवों का पता लगावें।

इसके बाद दुःशासन ने बड़े भाई दुर्योधन से कहा—महाराज, जासूसों में जो लोग हमारे अधिक विश्वासपात्र हैं उन्हें, उनके योग्य पुरस्कार देकर, फिर पाण्डवों का पता लगाने को

भेजिए। और, कर्ण ने जो उपाय बताया है उसे हम सभी ठीक समझते हैं। अन्यान्य जासूस, कर्ण के बताये हुए स्थानों में जाकर, पाण्डवों के रहने का रङ्ग-ढङ्ग और काम काज देखें। मेरी समझ में पाण्डव या तो कहीं बहुत ही गुप्त रूप से रहते हैं और या समुद्र-पार चले गये हैं; अथवा घने जङ्गल में भयानक खूनी जानवर उनको खा गये हैं; या घोर दुर्दशा में पड़कर दुःखित हो उन्होंने स्वयं अपनी जान दे दी है। इसलिए हे कुरुश्रेष्ठ, आप व्याकुल न होकर हृदय में उत्साह लावें
१८ और अपने कर्तव्य का ध्यान रखकर काम करें।

सत्ताईसवाँ अध्याय

द्रोणाचार्य्य की सलाह

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज! इसके बाद यथार्थ सूक्ष्म तत्त्व के जाननेवाले, महापराक्रमी द्रोणाचार्य ने कहा—देखो, पाण्डव लोग शूर, विद्वान्, बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, धर्म पर निष्ठा रखनेवाले और कृतज्ञ हैं। इस कारण ऐसे वीर पाण्डवों का नाश या पराभव होना असम्भव है। बड़े पाण्डव युधिष्ठिर नीति, धर्म और अर्थ के तत्त्व को बहुत अच्छी तरह जानते हैं; और भाइयों की उनपर पिता के समान भक्ति है। वे भी अपने भाइयों को बहुत ही स्नेह की दृष्टि से देखते हैं। इस कारण यह सम्भव नहीं कि असाधारण नीतिज्ञ युधिष्ठिर अपने ऐसे आज्ञाकारी विनीत भाइयों की भलाई के लिए यत्न न करें। अनुभव और ज्ञान की दृष्टि से मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि पाण्डवों का नाश कभी नहीं हुआ। वे केवल यत्न के साथ भाग्योदय के शुभ समय की राह देख रहे हैं। जितने समय तक उन्होंने वन में रहने की प्रतिज्ञा की है उसके समाप्त होने के पहले ही तुमको जो करना हो सो कर लो। इस समय पाण्डवों के रहने के स्थान का पता लगाने में ही श्रेय है। किन्तु वे तपस्वी, शूर, दुर्ज्ञेय, और दुर्द्धर्ष हैं तथा तेजस्वी युधिष्ठिर स्वभाव से ही विशुद्ध-हृदय, नीतिमान् और सत्यपरायण हैं। इसलिए साधारण लोग उनका पता न लगा सकेंगे। जो ब्राह्मण जाति के जासूस अनुभवी और अपने काम में
१० चतुर हैं—पाण्डवों के आकार-प्रकार और स्वभाव से भली भाँति परिचित हैं—उन्हें फिर पाण्डवों का पता लगाने के लिए भेजो।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

भीष्म पितामह की सलाह

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज! द्रोणाचार्य की बातें समाप्त होने पर देश-कालज्ञ, सब धर्मों के जानकार, भरतकुल के पितामह, भीष्मजी ने द्रोणाचार्य के कथन की पुष्टि करके कहा—

हे कौरवो, सब विषयों के ज्ञाता इन द्रोणाचार्य ने पाण्डवों के बारे में जो कुछ कहा सो धर्म-
सङ्गत, साधुसम्मत और आदरणीय है। मैं बिना किसी सन्देह के इनकी बातों का अनुमोदन
करता हूँ। सब सुलक्षणों से युक्त, सच्चरित्र, सदाचारी; बड़े-बूढ़ों की बात मानकर चलनेवाले
पाँचों पाण्डव वीर पुरुष, पराक्रमी, क्षत्रियों के धर्म में दृढ़ और श्रीकृष्णचन्द्र के कहे में हैं। वे
सज्जनों के मार्ग पर आरूढ़ हैं। इस कारण वे किसी तरह नष्ट होनेवाले या हिम्मत हारनेवाले
नहीं हैं। मुझे जान पड़ता है कि समय-पालन के जानकार पाण्डव अपने बाहुबल और धर्म के
प्रभाव से अच्छी तरह रक्षित रहकर अज्ञातवास का समय बिता रहे हैं। हे भरतश्रेष्ठ, मैं
उनका पता लगाने के लिए जो उपाय बताता हूँ उसे ध्यान देकर सुनो। सुनीति के जाननेवाले
लोग जिन नीतियों से काम लेते हैं, वे बड़ी कठिन होती हैं। और लोग सहज में उनके प्रयोजन
को नहीं समझ सकते। पाण्डवों के बारे में स्थिर बुद्धि से विचार करके जो मुझे युक्तिसङ्गत
जान पड़ रहा है, वही कहता हूँ। तुम्हारा अनिष्ट या युधिष्ठिर की भलाई की चाह मेरे इस
कथन का कारण नहीं है। भले लोगों को ही नीति का उपदेश देना चाहिए; अपात्र को उसका
उपदेश मैं नहीं दे सकता—फिर अनीति की सलाह तो किसी को न दे। बड़े-बूढ़ों के अनु- १०
शासन का विचार रखनेवाले, सत्यपरायण, धर्मात्मा लोग सभा में बैठकर ठीक बात ही कहते
हैं। यही उनका कर्त्तव्य और धर्म होता है। तुम्हारे अन्यान्य सभासद युधिष्ठिर के इस [illegible]
अज्ञात होकर रहने का जिस प्रकार अनुमान प्रकट करते हैं, उसे मैं नहीं मानता। भैया दुर्यो-
धन, युधिष्ठिर जिस नगर या जनपद में रहते होंगे वहाँ के राजाओं का अमङ्गल किसी तरह
नहीं हो सकता। राजा युधिष्ठिर जहाँ रहते होंगे वहाँ के सब लोग दानी, प्रिय वचन बोलने-
वाले, लोकलज्जा का ख़याल रखनेवाले, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, हट्टे-कट्टे, विशुद्धहृदय और अपने
धर्म पर सदा अनुराग रखते होंगे। वे कभी ईर्ष्या-परवश, पराई बढ़ती देखकर कुढ़नेवाले, अभिमानी
या मात्सर्ययुक्त नहीं होंगे। युधिष्ठिर के निवासस्थान में सदा वेदपाठ की ध्वनि सुन पड़ती होगी;
पूर्णाहुति और बहुत सी दक्षिणावाले अनेक प्रकार के यज्ञ होते होंगे। ठीक समय पर खूब
पानी बरसता होगा। पृथ्वी अन्न से हरी-भरी और भयरहित होगी। सब अन्न रसीले होंगे।
फलों में गुण होंगे। पुष्पमालाएँ सुगन्धित होंगी। लोगों के वचन शुभ शब्दों से युक्त
होंगे। शीतल, मन्द, सुगन्ध हवा बहती होगी। कोई किसी का विरोधी न होगा। भय २०
नाम लेने को न होगा। गाय आदि उपयोगी पशु सबल होंगे और उनकी बढ़ती होगी। गोरस
अत्यन्त स्वादिष्ठ और स्वास्थ्य बढ़ानेवाला होगा। खाने-पीने की सामग्रियाँ रसीली और पथ्य
होंगी। शब्द, रूप, रस, गन्ध आदि इन्द्रियों के विषय सब गुणों से युक्त और उत्तम होंगे।
सभी वस्तुएँ देखने में प्यारी लगनेवाली होंगी। वहाँ के द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) लगा-
तार अपने-अपने धर्म का पालन करते होंगे। वहाँ की प्रजा परस्पर प्रेम रखनेवाली, सदा २५

सन्तुष्ट, शुद्ध चरित्रवाली, अकाल मृत्यु से बची हुई, देवताओं और अतिथियों के पूजन-सत्कार में निरत, दान देनेवाली और शुभ कार्यों में रुचि रखनेवाली होगी ; वहाँ की प्रजा उत्साहपूर्ण, स्वधर्म-निरत, पाप और बुराइयों से द्वेष रखनेवाली, नित्य यज्ञ करनेवाली, झूठ न बोलनेवाली, मङ्गलयुक्त, शुभ इच्छा रखनेवाली और परोपकार करने के लिए सदा उत्कण्ठित होगी। राजन्! महाराज युधिष्ठिर में सत्य, धैर्य, दाननिष्ठा, शान्ति, क्षमा, लोकलज्जा, शोभा, कीर्त्ति, महानुभावता, दया और सरलता आदि सद्गुण सदा वर्त्तमान हैं। उन बुद्धिमान् महात्मा युधिष्ठिर को अच्छी तरह ब्राह्मण विद्वान् भी नहीं जान सकते, फिर साधारण मनुष्य किस तरह जान सकेंगे? इसलिए हे राजन्, जिन सद्गुणों और सुलक्षणों से युक्त स्थानों का उल्लेख मैंने किया है वैसे ही स्थानों में कहीं पर बुद्धिमान् युधिष्ठिर, वेष बदले हुए, रहते होंगे। मैं इतना ही कह सकता हूँ। इसके सिवा और तरह का अनुमान करने को मेरा जी नहीं चाहता। हे कौरव! अब यदि मेरी बात पर, जो मैंने युधिष्ठिर के
३३ अज्ञातवास के सम्बन्ध में कही है, तुम्हें श्रद्धा हो तो अच्छी तरह विचार करके जो अपने लिए हित समझो वह करने का उपाय करो।

उनतीसवाँ अध्याय

कृपाचार्य की सलाह

वैशम्पायन कहते हैं कि अब कृपाचार्य ने कहा—तात दुर्योधन! कुरुवंश के वृद्ध पितामह भीष्म ने पाण्डवों के बारे में जो कुछ कहा वह युक्तिसङ्गत, धर्म और अर्थ के अनुकूल, कारणयुक्त और मनोहर भी है। मैं भी भीष्म के समान कहता हूँ, सुनो। इस समय पाण्डवों के गुप्त रहन-सहन और अज्ञातवास के बारे में विचार करना और पता लगाना जैसे आवश्यक है वैसे ही नीति का आश्रय लेकर यथोचित रूप से हित का विचार भी करना चाहिए! राजन्! देश-काल का अच्छा और पूरा ज्ञान रखनेवाले पाण्डवों की कौन कहे, बुद्धिमान् लोग साधारण शत्रु को भी, कभी तुच्छ या साधारण नहीं समझते। महात्मा पाण्डव अवश्य ही कहीं छिपे हुए अज्ञातवास का समय बिता रहे हैं। किन्तु अब उनके प्रकट होने का समय समीप आ गया है। महात्मा, महाबली, परमतेजस्वी पाण्डव प्रतिज्ञा की अवधि पूरी होते ही बड़े उत्साह के साथ आकर उपस्थित होंगे। उस समय, यदि आवश्यक हो तो, ऐसा उपाय करना चाहिए जिसमें उनके साथ सहज ही समझौता किया जा सके। पहले से ही कोष और बल (सेना) को बढ़ाकर नीति का मार्ग ग्रहण करना अच्छा होगा। भैया, दुर्योधन, मुझे तो यही ठीक जान पड़ता है कि तुम पहले अपने और अपने मित्रों के बल को जानने का यत्न करो। पहले यह ज्ञात करो कि उत्तम, मध्यम और निकृष्ट, सब प्रकार की सेना तुम्हारे अधीन और अनुकूल है

या नहीं। इसके बाद शत्रुओं से सुलह करना या लड़ाई ठानना, जो उचित समझो सो करो। १०
साम (समझाना), दान (धन आदि देना), भेद (फोड़ना) और दण्ड के द्वारा, 'कर' लेकर, उचित रूप से आक्रमण (चढ़ाई) करके शत्रुओं को, हेलमेल और आश्वास के द्वारा मित्रों को और सादर भाषण तथा पुरस्कार (इनाम) आदि के द्वारा सब सेना को अपनी मुट्ठी में करना तुम्हारा पहला और प्रधान कर्त्तव्य है। इस प्रकार अपना ख़ज़ाना और बल बढ़ा लेने पर अवश्य ही तुम सफलता और विजय पाने में समर्थ होगे। राजन्, इस प्रकार कोष और बल बढ़ाकर तुम अपने को समृद्धिशाली बना लोगे तो तुमसे कम सहायक और धन रखनेवाले पाण्डव हों या और कोई प्रबल शत्रु हो, सबसे युद्ध कर सकोगे। मतलब यह कि धर्म के अनुसार इन सब कामों को कर लोगे तो यथासमय सदा के लिए सुख के अधिकारी बन जाओगे। १४

तीसवाँ अध्याय

विराटनगर के लिए सुशर्मा आदि की युद्ध-यात्रा

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, [पहले दुरात्मा कीचक ने मत्स्य और शाल्व देश की सेना को साथ लेकर भाई-बन्धुओं सहित त्रिगर्त्त देश के राजा सुशर्मा को कई बार हराया था।] इस समय उपयुक्त अवसर देखकर सुशर्मा ने कर्ण की ओर देखा और दुर्योधन से कहा—महाराज, मत्स्यनरेश विराट ने कीचक की सहायता से कई बार मेरे राज्य पर चढ़ाई करके मुझे हराया है। इस समय वह दुरात्मा क्रूर कीचक बली गन्धर्वों के हाथ से मार डाला गया है। अब राजा विराट का घमण्ड घट गया है; आश्रय जाता रहा है। अब वे निरुत्साह हो गये होंगे। इसलिए यदि आप, कौरवगण और वीर कर्ण पसन्द करें तो इसी समय मत्स्यदेश पर चढ़ाई कर देनी चाहिए। राजन्, हम लोग कौरवों की और त्रिगर्त्तराज्य की सेना लेकर बहुत धान्य से परिपूर्ण मत्स्यराज्य में पहुँचकर राजा विराट को जीत लेंगे। फिर बलपूर्वक राज्य को पीड़ित करके रत्न, धन और बहुत सा गोधन आदि लूट लेंगे; या सारा राज्य, लूटकर, आपस में बाँट लिया जायगा। इस तरह आपका भी बल और ख़ज़ाना बढ़ जायगा। १०

सुशर्मा की बात सुनकर कर्ण ने दुर्योधन से कहा—महाराज! सुशर्मा ने समय के अनुकूल, हमारे हित की ही, बात कही है। चढ़ाई करने के लिए यही समय ठीक है। हम लोग विभाग के अनुसार दोनों राज्यों की सम्मिलित सेना साथ लेकर इसी दम युद्ध के लिए कूच कर दें। मैं तो इस समय यही ठीक समझता हूँ। तुम्हारी क्या राय है? विज्ञश्रेष्ठ कुरुवृद्ध पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य की राय लेकर मत्स्यराज्य पर चढ़ाई कर देनी चाहिए। धन, बल और पौरुष से हीन पाण्डवों को व्यर्थ खोजने का क्या प्रयोजन है? वे सदा के लिए देश

छोड़कर भाग गये हैं, अथवा यमपुरी पहुँच गये हैं। इसलिए हम लोग बेखटके पाण्डवों का पीछा छोड़कर विराट के नगर पर चढ़ाई कर सकते हैं। [वहाँ अवश्य हमारी जीत होगी और] हम धन, रत्न, गोधन आदि लूट लावेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं—कर्ण की सलाह को पसन्द करके राजा दुर्योधन ने अपने भाई दुःशासन
२० को तुरन्त आज्ञा दी कि तुम लोग बड़े-बूढ़ों से सलाह करके युद्ध के लिए सेना को तैयार करो। महारथी सुशर्मा अपनी सेना, सवारी और त्रिगर्त देश के वीरों को साथ लेकर पहले विराट राज्य में पहुँचे। वहाँ गोपालों से बढ़िया गायें छीन लें और धन-रत्न आदि लूटें। हम और किसी दिन, सङ्गठित रूप में, विराट नगरी पर चढ़ाई करने के लिए कूच करेंगे।

जनमेजय! इस प्रकार निश्चय हो चुकने पर, कृष्णपक्ष की सप्तमी के दिन, आग्नेय (पूर्व-दक्षिण) कोण की ओर यात्रा करके महारथी सुशर्मा विराट के राज्य में घुसा। वहाँ जाकर उसने गायें
२७ छीनकर अपने अधिकार में कर लीं। दूसरे दिन अष्टमी को कौरवों ने भी अपनी सेना साथ लेकर यात्रा की। वहाँ पहुँचकर वे भी गायों को लूटने लगे।

इकतीसवाँ अध्याय

युद्ध के लिए राजा विराट की तैयारी

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इधर परम तेजस्वी होने पर भी छिपे हुए पाण्डवों ने राजा विराट के यहाँ, उनके काम करते हुए, अज्ञातवास का समय सकुशल समाप्त कर दिया। जब कीचक [भाइयों समेत] मारा गया तब विराट को शत्रु मान मर्दन करनेवाले पाण्डवों का ही भरोसा रह गया। जनमेजय, जिस समय पाण्डवों के अज्ञातवास का वर्ष समाप्त हुआ उसी समय त्रिगर्त देश का राजा सुशर्मा विराटनगरी में पहुँचकर उनके गोधन को छीनने लगा। तब गोपाल राजसभा में गया। वहाँ महाप्रभावशाली मत्स्यराज बैठे हुए थे। उनके आस-पास शूरवीर योद्धा, मन्त्री और पुरुषश्रेष्ठ पाँचों पाण्डव अपने-अपने स्थान पर बैठे हुए थे। सभा में बैठे हुए राज्यरक्षक महाराज विराट के पास पहुँचकर, प्रणाम करके, गोपाल ने कहा—राजन्, त्रिगर्त देश के सिपाही हमें हराकर आपकी असंख्य गायें हरे लिये जा रहे हैं। आप गायों को छुड़ाना चाहते हों तो कोई उपाय कीजिए।

गोपाल के मुँह से यह सुनते ही राजा ने हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, इन चार अङ्गोंवाली
१० मत्स्यदेश की सेना को सजने की आज्ञा दे दी। राजा और राजपुत्र शूरों के योग्य कवच आदि पहनने लगे। मत्स्यराज के प्यारे भाई शतानीक ने फ़ौलाद का बना सोने का कामदार कवच पहना। उनके छोटे भाई मदिराक्ष ने सोने के पत्तरों से मढ़ा हुआ कवच पहना। वह कवच

इतना दृढ़ था कि किसी शस्त्र की चोट से कट नहीं सकता था। राजा विराट ने भी सैकड़ों सूर्य-चिह्नों से युक्त, सैकड़ों हीरों से चमचमा रहा, दुर्भेद कवच पहन लिया। विराट के एक कुँअर ने सूर्य का दिया हुआ, सूर्य के समान प्रकाशमान, सैकड़ों नील कमलों से शोभित, सुवर्णखचित कवच पहना। विराट के बड़े बेटे शङ्ख ने लोहे का सुदृढ़ सफ़ेद कवच पहना। उस पर सैकड़ों नेत्र-चिह्न बने हुए थे। इस प्रकार वे देवरूपी सैकड़ों बली वीर युद्ध करने के लिए सजधजकर अपने-अपने रथ पर पहुँच गये। रथों का सफ़ेद रङ्ग था। उनमें तरह-तरह की विचित्र कारीगरी देख पड़ती थी। उनमें [अच्छी नस्ल के] घोड़े जुते थे। उन घोड़ों की पीठ पर सोने की जाली पड़ी हुई थी। विराट के, चन्द्रमा और सूर्य के समान प्रकाशित, सोने से मढ़े, दिव्य रथ पर ध्वजा-पताका फहराने लगी। और-और क्षत्रियों के रथों पर भी सुवर्णमण्डित, अनेक प्रकार के चिह्नों से अलङ्कृत, झण्डे झूमने लगे।

मत्स्यराज ने अब अपने छोटे भाई शतानीक से कहा—भाई! कङ्क, बल्लव, ग्रन्थिक और २०
तन्तिपाल भी युद्ध कर सकते हैं। तुम इन्हें भी ध्वजा-पताका आदि से युक्त रथ और अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र दो। ये भी हम लोगों की तरह विचित्र, सुदृढ़ होने पर भी पहनने में तकलीफ़ न देनेवाले, कवच पहन लें। राजा विराट की आज्ञा पाकर शतानीक ने उसी समय पाण्डवों के लिए सुन्दर रथ मँगा दिये। राजभक्त सारथी लोग उसी घड़ी राजा की आज्ञा से रथ सजाकर ले आये। शत्रुदलनकारी, युद्धविशारद, परम तेजस्वी, अपने को छिपाये हुए, कुरुकुलतिलक, चारों पाण्डव राजा की
आज्ञा से तुरन्त रथों पर चढ़कर प्रसन्नता के साथ चले। पहाड़ ऐसे ऊँचे, बली, भयानक आकार- ३०
वाले, मस्त, साठ वर्ष की आयुवाले सधे हुए हज़ार हाथी राजा की सेना के साथ चले। आठ हज़ार रथ, साठ हज़ार घोड़े साथ लेकर मत्स्यदेश के प्रधान वीर, और राजा विराट के भाई-बेटे, संग्राम के लिए चले। ये सब अच्छी जीविकावाले, चतुर और मुखिया थे। जनमेजय, गायों की रक्षा करने के लिए राजा विराट की विशाल चतुरङ्गिणी सेना चली। [हाथियों, घोड़ों और रथों का शब्द आकाश तक गूँज उठा।] गायों को छुड़ाने के लिए जाती हुई विराट की सेना
बहुत भली मालूम हुई। ३५

बत्तीसवाँ अध्याय

सुशर्मा और राजा विराट का युद्ध

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महाबली मत्स्यदेश के सिपाहियों ने नगर से बाहर निकलकर शत्रुओं का पीछा किया। वे चौथे पहर शत्रुओं के पास पहुँच गये। वहाँ व्यूह-रचना करके उन्होंने, गोधन हरकर ले जानेवाले, त्रिगर्त्त देश के वीरों पर आक्रमण किया। गोधन को ले जाने की इच्छा सबको थी। इसी से त्रिगर्त्त और मत्स्यदेश की सेना संग्राम करने लगी।

दोनों ओर के युद्धचतुर प्रधान-प्रधान योद्धा, मस्त हाथियों पर चढ़े हुए, बारम्बार अंकुश मारकर उन्हें प्रबल वेग से बढ़ाते हुए शत्रु-सेना की ओर चले।

महाराज! सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहे थे, इसी समय दोनों ओर की सेना परस्पर मारने [और जय पाने] की आशा से यमपुर को जीवों से भरनेवाला, रोमाञ्चकारी, देवासुर-संग्राम के समान, घोर युद्ध करने लगी। सैनिकों के परस्पर आक्रमण से बड़ी धूल उड़ी। धूल में कुछ सूझ न पड़ने के कारण पक्षी पृथ्वी पर गिरने लगे। बाणों की वर्षा से सूर्यमण्डल छिप गया। उस समय जान पड़ने लगा कि आकाशमण्डल में जुगनू चमक रहे हैं। धनुर्द्धर वीर योद्धा दाहने और बायें सुवर्णमण्डित धनुषों को चढ़ाने लगे। रथ पर सवार लोग रथ के सवारों से, पैदल पैदलों से, घोड़ों के सवार घुड़सवारों से और हाथियों के सवार हाथियों के सवारों से
११ युद्ध करने लगे। राजन्! पराक्रमी वीर तलवार, कुठार, लोहदण्ड, शक्ति और तोमर आदि शस्त्रों से परस्पर लड़कर जय पाने का यत्न करने लगे। दोनों पक्षों का बल समान होने के कारण कोई किसी को विमुख नहीं कर सका। युद्धभूमि में घायल और मरे हुए सिपाहियों के कटे हुए अङ्गों के ढेर लग गये। क्रोध के मारे कोई ओठ चबा रहा था, उसका सिर उसी दशा में कटकर गिर पड़ा। किसी की नाक बहुत अच्छी थी; कोई कुण्डल पहने हुए था और किसी के बाल अच्छे सँवारे हुए थे। उनके मुण्ड उस विशेषता सहित कटकर गिर गये। साखू के लट्ठे के समान लम्बे वीरों के शरीर इधर-उधर कटे-छटे पड़े हुए थे। हाथियों की सूँड़ के समान कटी चन्दन-चर्चित भुजाएँ समरभूमि में पड़ी हुई थीं। इतना रक्त बहा कि समरभूमि की धूल कीचड़ हो गई।

इस प्रकार घोर संग्राम ठन जाने पर अनेक लोग मूर्च्छित हो गये। रक्त और मांस के लोभी आकाशचारी गिद्ध, योद्धाओं की लगातार बाणवर्षा से गतिरहित और देखने की शक्ति से हीन होकर, ध्वजा आदि पर बैठ-बैठ जाते थे। परस्पर नाश करने के लिए उद्यत युद्ध-प्रिय वीर पुरुष एक-दूसरे को मारते और मरते थे। कोई किसी को युद्ध-भूमि से हटा नहीं सका। महारथी शतानीक ने शत्रुपक्ष के एक सौ और विशालाक्ष ने चार सौ सैनिकों को मारा। इस प्रकार उन दोनों वीरों ने शत्रुओं के रथों को खोजते हुए सेना के भीतर घुसकर उसके छक्के छुड़ा दिये। वीर लोग विपक्षी वीरों के बाल खींचकर, उनके रथों पर आक्रमण कर, घोर
२० संग्राम कर रहे थे। सूर्यदत्त राजा विराट के आगे थे और मदिराक्ष पीछे। राजा विराट ने शत्रु-पक्ष के पाँच सौ रथी, पाँच महारथी और आठ सौ घुड़सवार मारे। इस तरह चारों ओर फिरकर शत्रुसेना का संहार करते हुए राजा विराट ने सुवर्णमण्डित रथ पर चढ़े हुए सुशर्मा पर आक्रमण किया। वे दोनों महाबली पराक्रमी वीर, मैदान में दो साँड़ों के समान, परस्पर स्पर्धा-पूर्वक लड़ने लगे।

अब युद्धचतुर सुशर्मा मत्स्यराज विराट को ललकारकर परस्पर युद्ध करने लगा। वर्षाकाल के बादलों के समान गरज-गरजकर वे दोनों वीर शक्ति, खड्ग आदि शस्त्रों की और बाणों की वर्षा करने लगे। राजा विराट ने सुशर्मा को दस बाण और उसके घोड़ों को पाँच-पाँच बाण मारे। सब शस्त्रों के ज्ञाता युद्धनिपुण सुशर्मा ने भी विराट के ऊपर पाँच सौ बाण चलाये। राजन्, इस प्रकार सब हथियारों से लैस दोनों राजाओं ने ऐसा भयङ्कर युद्ध किया कि दोनों ओर के वीरों के दौड़ने से उड़ी हुई धूल चारों दिशाओं में छा गई। कौन कहाँ पर है, यह कोई नहीं जान सकता था। ३०

तेंतीसवाँ अध्याय

विराट का हारना, छुटकारा और फिर सुशर्मा का परास्त होना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इस प्रकार बेहद धूल और गहरा अँधेरा पृथ्वी पर छा गया। सैनिकों ने उस अँधेरे से व्याकुल होकर थोड़ी देर के लिए युद्ध बन्द कर दिया। कुछ देर बाद सब अँधेरे को हटाकर चन्द्रदेव प्रकट हुए। उजेला हो जाने से क्षत्रिय लोग फिर घोर संग्राम करने लगे। किन्तु धूल फिर उठी। उससे पहले से दूना अँधेरा छा गया। उस अँधेरे में कोई किसी को देख नहीं सकता था। अपने छोटे भाई सुधर्मा के साथ त्रिगर्त्तनरेश सुशर्मा ने, रथियों की सेना लेकर, राजा विराट पर हमला किया। विराट पर आक्रमण करने के लिए शीघ्र रथ से उतरकर, गदा हाथ में लेकर, दोनों भाई शत्रुपक्ष के रथों को चूर्ण करने लगे। इधर दोनों पक्षों के वीर भी पैनी तलवारें, परशु, भाला, आदि बहुत से शस्त्र लेकर एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे। त्रिगर्त्तराज सुशर्मा ने बड़े पराक्रम से राजा विराट की सेना को मथ डाला और हरा दिया। अन्त को वह राजा विराट की ओर झपटा। पास जाकर उसने विराट के रथ के दो घोड़ों को, रथ की रक्षा करनेवाले आसपास के सिपाहियों को और सारथी को मार डाला। इस प्रकार रथहीन विराट को पकड़कर, अपने रथ पर बिठाकर, सुशर्मा अपने नगर की ओर चला। यह देखकर विराट की सेना बहुत डरी। त्रिगर्त्त देश की सेना के पराक्रम से अत्यन्त पीड़ित होकर मत्स्यदेश के सिपाही युद्धभूमि से इधर-उधर भागने लगे। १०

उन्हें युद्ध से विमुख और डरा हुआ देखकर महाराज युधिष्ठिर ने शत्रुदमन भीमसेन से कहा—हे महाबाहु, त्रिगर्त्तराज सुशर्मा मत्स्यनरेश विराट को पकड़े लिये जा रहा है। तुम उनको शत्रु के हाथ से छुड़ा लो। देखो, वे क़ैद न होने पावें। हम राजा विराट के यहाँ अपनी सब इच्छाएँ पूरी करते हुए बड़े सुख से रहे हैं। इसलिए अब तुम महाराज विराट को छुड़ाकर उस उपकार का उचित बदला चुकाओ।

भीमसेन ने कहा—महाराज, मैं आपकी आज्ञा से अभी विराट को शत्रु के हाथ से छुड़ा दूँगा। आप भाइयों के साथ खड़े-खड़े देखिए। मैं इस बड़ी-बड़ी डालोंवाले गदा-सदृश वृक्ष को उखाड़कर उसी के द्वारा शत्रुओं का नाश करूँगा। वैशम्पायन कहते हैं कि मस्त हाथी के समान महापराक्रमी भीमसेन को उस वृक्ष की ओर ताकते देखकर युधिष्ठिर ने कहा—भीम, तुम ऐसा साहस मत करो। यदि वृक्ष उखाड़कर, मनुष्य की शक्ति के बाहर काम करके, युद्ध करोगे तो अभी सब लोग जान जायँगे कि तुम भीम हो। इसलिए अभी वृक्ष न उखाड़कर धनुष, शक्ति, खड्ग, फरसा आदि मनुष्यों के लड़ने के शस्त्रों से ही युद्ध करो। इस प्रकार अलक्षित रूप से लड़कर महाराज विराट को छुड़ाओ जिसमें कोई तुमको पहचान न सके। महाबली नकुल और सहदेव आसपास रहकर तुम्हारे रथ की रक्षा करेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं—तब महाबली भीमसेन [युधिष्ठिर की आज्ञा से] धनुष लेकर बादलों की तरह लगातार बाण वर्षा करते हुए बड़े वेग से सुशर्मा की ओर झपटे। भीमसेन ने राजा विराट की ओर देखकर कहा कि तनिक ठहर जाइए। यमराज के समान भीमसेन को अपने पीछे आते देखकर, अपने भाइयों के साथ, सुशर्मा भी लौट पड़ा। अब सुशर्मा और भीमसेन से घोर युद्ध होने लगा। महारथी भीमसेन ने पल भर में विपक्ष के हज़ारों रथों, सवारों समेत घोड़ों, हाथियों और प्रधान योद्धाओं को मार डाला। फिर हाथ में गदा लेकर वे पैदल सेना का संहार करने लगे। शूरवीर सुशर्मा ने अपने भाई को सङ्कट में फँसा देखकर सोचा कि अरे यहाँ तो मेरी सेना भी बुरी तरह से मारी गई।

अब धनुष चढ़ाकर सुशर्मा भी लगातार पैने बाण बरसाने लगा। तब पाण्डव लोग विकट क्रोध से त्रिगर्त्त-सेना की ओर बढ़कर बाणों की वर्षा करने लगे। [अपनी ओर से] पाण्डवों को युद्ध करते देखकर विराट का कुँअर भी बड़े उत्साह से लड़ने लगा। महाराज युधिष्ठिर ने एक हज़ार, भीमसेन ने सात हज़ार, नकुल ने सात सौ और सहदेव ने तीन सौ शत्रुसेना के सिपाही मारे। इसके उपरान्त महावीर सहदेव, युधिष्ठिर की आज्ञा से, शस्त्र लेकर सुशर्मा की ओर दौड़े। राजा युधिष्ठिर ने भी त्रिगर्त्तों की सेना को तहस-नहस करके सुशर्मा पर हमला किया। उसने भी अत्यन्त क्रोधित होकर युधिष्ठिर को नौ बाण और उनके चारों घोड़ों को चार बाण मारे। राजन्, अब भीमसेन ने सुशर्मा के सामने जाकर उसके घोड़ों को मार डाला। उसकी रक्षा के लिए पीछे जो सहायक सैनिक थे उन्हें मारकर भीमसेन ने सारथी को भी मार गिराया। रथ का चक्ररक्षक मदिराक्ष, सुशर्मा को रथहीन देखकर, भीम पर प्रहार करने लगा। इतने में महाबली राजा विराट सुशर्मा के रथ से उतर पड़े। यद्यपि वे बुड्ढे थे तो भी सुशर्मा की ही गदा लेकर फुर्ती से उसकी ओर झपटे। वे जवान की तरह गदा हाथ में लेकर युद्धभूमि में पैंतरे बदलने लगे।

अब सुशर्मा को भागते देखकर भीमसेन ने कहा—हे राजपुत्र, लौटो। इस तरह युद्ध से पीठ दिखाकर भागना तुम्हें उचित नहीं। क्या इसी बिरते पर तुम महाराज विराट की गायें छीनने आये थे? अब अपने साथियों को छोड़कर युद्धभूमि से क्यों भागते हो? महाबली भीमसेन के ये वचन सुनकर सुशर्मा फिर लौट पड़ा। "ठहरो, ठहरो" कहकर वह भीमसेन की ओर लपका। भीमपराक्रमी भीमसेन तुरन्त रथ से उतरकर सुशर्मा को मारने के लिए इस तरह झपटे जिस तरह सिंह किसी क्षुद्र मृग की ओर चले। लपककर उन्होंने भागनेवाले सुशर्मा के बाल पकड़ लिए और क्रोध के मारे झटका देकर उसे पृथ्वी पर पटक दिया। भीमसेन ने सुशर्मा को पृथ्वी पर ख़ूब रगड़ा और उसके सिर पर लात मारी। दर्द के मारे वह चिल्लाने लगा, फिर कोहनी और छाती पर घुटने मारकर भीमसेन ने उसे अधमरा कर डाला। भीमसेन के प्रबल प्रहार से पीड़ित सुशर्मा बेहोश हो गया। यह देखकर त्रिगर्त्तदेश के सैनिक प्राण लेकर इधर-उधर भागने लगे। इस प्रकार अपने बाहुबल से
त्रिगर्त्तराज सुशर्मा को परास्त कर, विराट को छुड़ाकर, और छिनी हुई गायें फेरकर व्रतधारी महारथी ५०
पाण्डव एक स्थान पर एकत्र हुए।

भीमसेन ने कहा—मैं इस पापी दुराचारी सुशर्मा को जीता छोड़ना नहीं चाहता। किन्तु राजा विराट बड़े दयालु हैं। इसलिए मैं क्या कर सकता हूँ। फिर भीमसेन ने अचेत पड़े हुए धूलि-धूसरित सुशर्मा को, गर्दन पकड़कर, रथ में रख लिया। दिखाने के लिए युधिष्ठिर के पास ले जाने का विचार करके भीमसेन वहाँ से चल दिये। युधिष्ठिर के पास जाकर भीमसेन ने उन्हें सुशर्मा की दशा दिखाई। पुरुषसिंह महाराज युधिष्ठिर ने त्रिगर्त्तराज सुशर्मा की यह दशा देख हँसकर भीमसेन से कहा—हे वीर, तुम इस नराधम को छोड़ दो। तब भीमसेन ने सुशर्मा से कहा—रे मूढ़, जो तू जीना चाहता है तो मेरी बात सुन। आज सभा के बीच तुझे यह स्वीकार करना होगा कि तू महाराज विराट का दास है। तभी मैं तुझे छोड़ूँगा। यही सनातन नियम है कि युद्ध में हारे हुए मनुष्य को विजयी का दासत्व स्वीकार करना पड़ता है।

अब युधिष्ठिर ने स्नेह के साथ भीमसेन से कहा—भैया, इस पापी को छोड़ दो। इसके दासत्व स्वीकार करने का प्रमाण तो हमीं लोग हैं। फिर उन्होंने सुशर्मा से कहा—तुमको दासभाव से छुटकारा दिया जाता है। फिर कभी ऐसा काम करने का साहस न करना।

चौंतीसवाँ अध्याय

विराटकृत पाण्डवों का सम्मान

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, युधिष्ठिर के यों कहने पर सुशर्मा ने लज्जा से सिर झुका लिया। उसने विराट के पास जाकर उनको प्रणाम किया। फिर वहाँ से वह चम्पत हो गया। सुशर्मा को

छोड़कर राजा विराट और पाण्डवों ने वहीं, समरभूमि में, सुखपूर्वक वह रात बिताई। फिर राजा विराट ने अलौकिक पराक्रमी पाण्डवों को बहुत सा धन देकर सम्मानित किया और कहा—आज तुम्हीं लोगों के पराक्रम से मैं जीता-जागता बच गया हूँ। मेरे यहाँ जितने रत्न हैं वे और सारा मत्स्यराज्य तुम्हारा है। तुम मेरे सब ऐश्वर्य का भोग और राज्य का पालन करो। मैं अपनी इच्छा से तुम्हें अलंकृत कन्याएँ और धन-रत्न-राज्य आदि देता हूँ।

वैशम्पायन कहते हैं कि तब पाण्डवों में से हर एक भाई ने हाथ जोड़कर राजा विराट से कहा—"महाराज, हम आपके वचनों का अभिनन्दन करते हैं। महाराज, बड़े सन्तोष की बात है कि आप शत्रु के हाथ से छुटकारा पा गये"। तब महाराज विराट ने सन्तुष्ट होकर युधिष्ठिर से कहा—हे
१० महाभाग, आओ, मैं आपको मत्स्यदेश की राजगद्दी पर बिठाऊँ। मैं आपकी इच्छाएँ पूरी करता हूँ जो बड़ी दुर्लभ हैं क्योंकि आप हमसे सब कुछ पाने के अधिकारी हैं। मैं आपको मणिमोती आदि अनेक रत्न और गोधन दूँगा। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आज आपकी ही कृपा से मैंने अपने बाल-बच्चों का मुँह देखा और राज्य पाया। हे वीर, इस महाभय को उपस्थित करनेवाले शत्रु सुशर्मा को अपने वश में करके उसके हाथ से मुझे छुटकारा देनेवाले आप ही हैं।

युधिष्ठिर ने फिर राजा विराट से कहा—हे मत्स्यराज, आपके मधुर वचन सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आप सबके साथ ऐसा ही सरल व्यवहार करके सदा अनुपम सुख भोगते रहिए। राजन्, मैं चाहता हूँ कि आपके दूत शीघ्र नगर में जाकर इष्ट-मित्रों को यह प्रिय समाचार सुनावें और सर्वत्र आपकी जय-घोषणा कर दें।

युधिष्ठिर की इच्छा से विराट ने दूतों को आज्ञा दी कि तुम लोग नगर में जाकर मेरी जीत का हाल सुना दो। गहने पहने हुए कुमारियाँ, वेश्याएँ और बाजे बजानेवाले लोग आगे से लेने के लिए
१९ यहाँ आवें। रात को ही वे दूत विराट की आज्ञा से प्रसन्नतापूर्वक राजधानी को चल दिये। सूर्योदय के समय नगर में पहुँचकर उन्होंने विराट के जितने की घोषणा कर दी।

———

पैंतीसवाँ अध्याय

कौरवों का मत्स्यराज की राजधानी में पहुँचकर गायें छीन ले जाना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, जिस समय राजा विराट ने अपनी गायों को छुड़ाने के लिए सुशर्मा का पीछा किया उसी समय इधर दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि, दुःशासन, विविंशति, विकर्ण, चित्रसेन, दुर्मुख, दुस्सह और अन्य महारथी कौरव मत्स्यराज पर चढ़ आये। उनके रथों से वह नगर चारों ओर घिर गया। उन्होंने गोपालों को मारकर भगा दिया और साठ पजार गायें छीन लीं। उस भयङ्कर चढ़ाई में महारथियों की

मार से पीड़ित और व्याकुल गायों और गोपालों के आर्त्तनाद से चारों दिशाएँ पूर्ण हो उठीं। तब अत्यन्त डरा हुआ गोपालों का मुखिया, रथ पर चढ़कर, आर्त्तनाद करता हुआ नगर की ओर भागा। फिर नगर में प्रवेश करके, रथ से उतरकर, खबर देने के लिए वह राजभवन में पहुँचा। वहाँ वीर होने का दम भरनेवाला, राजा विराट का पुत्र, उत्तर उसे देख पड़ा। उसने उत्तर कुमार से कहा—राजकुमार, कौरव लोग आपकी साठ हज़ार गायें हरे

लिये जाते हैं। उन गायों को उनसे छीन १०
लाने के लिए अभी चलिए। राजकुमार, अपने हित के लिए आप ख़ुद उठिए। महाराज आपको ही राज्य और राजधानी की रक्षा तथा देख-रेख का भार सौंप गये हैं। सभा में महाराज आपके विषय में कहा करते हैं कि मेरा पुत्र मेरे ही समान शूर, वंश की बात रखनेवाला, शस्त्रविद्या में निपुण, युद्धचतुर और महापराक्रमी है। हे राजकुमार, इस समय महाराज का आपके बारे में वह कहना सच होना चाहिए। आप अपने विचित्र धनुष से छूटे हुए, सुवर्णपुङ्ख, तीक्ष्ण बाणों से शत्रुओं को मार कर सब गायें छीन लाइए। शीघ्र ही आपके रथ में चाँदी के रङ्ग के सफ़ेद घोड़े जोते जायँ और सिंह के चिह्न से युक्त ऊँची ध्वजा फहराने लगे। आप युद्ध-भूमि में पहुँचकर बाणों की ऐसी वर्षा कीजिए कि शत्रुओं की राह रुक जाय और आकाश में सूर्य का मण्डल छिप जाय। इन्द्र जैसे असुरों को परास्त करते हैं वैसे ही आप कौरवों को परास्त करके यश प्राप्त कीजिए और सफलमनोरथ हो कर राजधानी को लौटिए। हे राजपुत्र, महाराज अर्जुन जैसे पाण्डवों के आश्रयस्थल हैं वैसे ही आप भी सब मत्स्यदेश की प्रजा के आश्रयस्थल हैं। इस कारण इस समय वह उपाय तुरन्त कीजिए जिसमें राज्य की और सब प्रजा की रक्षा हो।

वैशम्पायन कहते हैं—रनिवास में स्त्रियों के बीच स्थित राजकुमार उत्तर, गोप के ये वचन सुनकर, अपनी बड़ाई करता हुआ बोला। २२

छत्तीसवाँ अध्याय

उत्तरकुमार और द्रौपदी की बातचीत

उत्तर ने कहा—जो मुझे घोड़े चलाने की विद्या में निपुण सारथी मिल जाय तो मैं अभी सुदृढ़ धनुष लेकर युद्ध करने जाऊँ। किन्तु मुझे ऐसा कोई आदमी नहीं देख पड़ता जो मेरा सारथी हो सके। इसलिए चटपट एक योग्य सारथी ढूँढ़ो। पहले अट्ठाईस रात्रि, अर्थात् एक महीने, तक लगातार जो महायुद्ध हुआ था उसमें मेरा सारथी मर चुका है। इस समय कोई होशियार सारथी मिल जाय तो मैं शीघ्र ही ऊँची-ऊँची ध्वजाओं से शोभित और हाथी-घोड़े-रथ आदि से पूर्ण शत्रु-सेना में घुस-कर दुर्योधन, भीष्म, कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा आदि महारथियों को हरा सकता हूँ, और अपनी गायें इसी घड़ी फेर ला सकता हूँ। राज्य से सेनाओं के बाहर जाने की खबर पाकर कौरव लोग सब गायों को हरे लिये जा रहे हैं। मैं जो वहाँ उपस्थित होता तो क्या वे ऐसा काम कर सकते थे? ख़ैर, अब सही। कौरव लोग आज मेरे पराक्रम को देखें। मेरा युद्ध देखकर वे सोचने लगेंगे कि स्वयं अर्जुन ही क्या क्रुद्ध होकर युद्ध करने आये हैं!

वैशम्पायन कहते हैं कि राजपुत्र उत्तर की बातें सुनकर अर्जुन ने एकान्त में अपनी प्यारी
१० द्रौपदी से कहा—हे कल्याणी, तुम मेरे कहने से शीघ्र जाकर राजकुमार उत्तर से कहो कि बृहन्नला जब पाण्डवों के यहाँ था तब वह पाण्डवों के सारथी का काम करके बड़ी बड़ाई पा चुका है। घोर संग्राम में उसने बड़ी होशियारी से अपना काम किया था। इसलिए तुम बृहन्नला को इस समय अपना सारथी बना लो।

विराट का कुँअर उत्तर, स्त्रियों के बीच में, अर्जुन का नाम ले-लेकर बार-बार अपनी बड़ाई कर रहा था; यह द्रौपदी से नहीं सहा गया। स्त्रियों के बीच में बैठे हुए राजकुमार उत्तर के पास जाकर, कुछ लज्जा के भाव से, द्रौपदी ने धीरे-धीरे कहा—हे राजपुत्र, आप जिन मस्त हाथी के तुल्य बली और सुन्दर बृहन्नला को देखते हैं वे पहले अर्जुन के सारथी रह चुके हैं। ये नपुंसक होने पर भी उन्हीं वीर अर्जुन के शिष्य हैं और धनुर्विद्या में किसी तरह उनसे कम नहीं

हैं। मैं जब पाण्डवों के यहाँ थी तब से इनके बारे में अच्छी तरह जानती हूँ। अर्जुन ने जब अग्नि को खाण्डव वन जलाने के लिए दिया था और इन्द्र से घोर युद्ध किया था तब ये बृहन्नला ही उनके सारथी थे। खाण्डवप्रस्थ में अर्जुन ने इन्हीं के सारथी होने के बल से विजय पाई थी।

यह सुनकर उत्तर ने कहा—हे सैरन्ध्री, यह नपुंसक युवक जिस तरह का आदमी है सो
तुम अच्छी तरह जानती हो। किन्तु मैं स्वयं बृहन्नला से सारथी बनने के लिए नहीं कह सकता। २०
द्रौपदी ने कहा—हे राजकुमार, बृहन्नला आपकी बहन उत्तरा की बात को अवश्य मानेंगे। जो बृहन्नला आपके सारथी हों तो आप, अवश्य कौरवों को हराकर, अपनी गायें फेरकर राजधानी को लौट सकते हैं। यह सुनकर उत्तर ने उत्तरा से कहा—बहन, जाओ, बृहन्नला को जल्द बुला लाओ। भाई के कहने
से उत्तरा उसी समय नाट्यशाला में बृहन्नला के पास गई। २४

सैंतीसवाँ अध्याय

राकुमारी उत्तरा और बृहन्नला का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं—पतली कमर और सुडौल अङ्गोंवाली राजकुमारी उत्तरा की जाँघें हाथी की सूँड़ के समान थीं। वह सोने की माला और बढ़िया करधनी पहने हुए, भाई के कहने से, अर्जुन के पास गई। उसकी बत्तीसी बहुत बढ़िया थी। मेघ के पास विराजमान बिजली या गजराज के पास खड़ी हुई हथिनी के समान, बृहन्नला के पास खड़ी हुई, उत्तरा की शोभा हुई। उसको देखकर अर्जुन ने मुसकाकर पूछा—राजकुमारी, आज तुम्हारा चेहरा उदास क्यों है? तुम किसलिए आई हो?

सखियों के सामने स्नेह के साथ उत्तरा ने कहा—बृहन्नला, कौरव लोग हमारे राज्य की सब गायें छीनकर लिए जा रहे हैं। मेरे वीर भाई उत्तर कौरवों को हराने के लिए जायँगे। थोड़े दिन हुए, एक युद्ध में उनका सारथी मारा जा चुका है। इस समय ऐसा कोई आदमी नहीं जो उनके सारथी का काम करे। उन्हें सारथी की खोज करते देखकर सैरन्ध्री ने तुम्हारे
इस काम में चतुर होने का उल्लेख कर कहा कि तुम सारथी के काम में बड़े निपुण हो। १०

बृहन्नला, तुम पहले अर्जुन के सारथी रह चुके हो। अर्जुन तुमको बहुत मानते थे। उन्हें तुम्हारी सहायता से ही सारी पृथ्वी पर विजय मिली थी। इस समय तुम, मेरे कहने से, मेरे भाई के सारथी बन जाओ। कौरव हमारी गायें लेकर अब बहुत दूर निकल गये होंगे। बृहन्नला, जो तुम मेरे इस स्नेहपूर्ण अनुरोध को न मानोगे तो मैं अपनी जान दे दूँगी।

सुन्दरी उत्तरा के ये वचन सुनकर परम तेजस्वी अर्जुन उसी समय राजपुत्र उत्तर के पास पहुँचे। हथिनी जैसे गजराज के पीछे चले वैसे विशाल नेत्रोंवाली उत्तरा भी गजराजगामी अर्जुन के पीछे चली। अर्जुन को दूर से ही देखकर राजकुमार उत्तर कहने लगा—बृहन्नला, सैरन्ध्री के मुँह से मैंने सुना कि पहले तुम अर्जुन के प्रिय सारथी थे। उन्होंने तुम्हारी सहायता से खाण्डव वन देकर अग्नि को तृप्त किया था—सारी पृथ्वी को जीत लिया था। इस समय तुम वैसे ही मेरे सारथी बनो। मैं हरी गई गायें छीनने के लिए कौरवों से युद्ध करूँगा।

२० अर्जुन ने कहा—हे राजपुत्र, युद्ध के बीच सारथी का काम भला मैं कैसे कर सकता हूँ! हाँ, जो गाने-बजाने अथवा नाचने के लिए कहो तो वह सब मैं कर सकता हूँ। मुझमें सारथी का काम करने की शक्ति नहीं है।

उत्तर ने कहा—बृहन्नला, तुम फिर आकर गवैये-नचैये का काम कर लेना। इस समय मेरे रथ में उत्तम घोड़े जोतकर होशियारी से सारथी का काम करो।

वैशम्पायन कहते हैं—शत्रुदमन अर्जुन यद्यपि उत्तरा के मुँह से सब हाल सुन चुके थे तो भी, राजपुत्र के साथ, बार-बार अपने को नपुंसक और युद्ध में सारथी का काम करने में असमर्थ बताकर, दिल्लगी करने लगे। अन्त में सारथी का काम करने के लिए राजी होकर अर्जुन कवच पहनने लगे। उन्हें उलटा कवच पहनते देखकर विशाल नेत्रोंवाली कुमारियाँ हँसने लगीं। अर्जुन को उलटा कवच पहनते देख उत्तर कुमार ने स्वयं उन्हें बढ़िया कवच पहना दिया। अब उत्तर ने स्वयं दिव्य कवच पहना, धनुष लिया और भरे हुए तरकस बाँधे। जिस उत्तम रथ पर सिंहचिह्नयुक्त ध्वजा फहरा रही थी उस पर बैठकर उत्तर कुमार युद्ध के लिए रवाना हुआ।

उसी समय उत्तरा और अन्य कुमारियों ने अर्जुन से कहा—बृहन्नला ! यदि भीष्म, द्रोण आदि महारथी योद्धा हार जायँ तो तुम उनके मनोहर महीन विचित्र कपड़े अवश्य लेते आना। हम खेलने के लिए उनकी गुड़िया बनावेंगी। अर्जुन ने हँसकर कहा—यदि राजकुमार उत्तर युद्ध ३०
में उन महारथियों को हरा देंगे तो मैं उनके बढ़िया कपड़े तुम्हारे लिए लेता आऊँगा।

अब अर्जुन ने रथ हाँक दिया। रथ को लेकर घोड़े तेजी से कौरव-सेना की ओर चल पड़े। उस समय व्रत और आचार में निरत ब्राह्मण लोग बृहन्नला-सहित राजकुमार उत्तर को रथ पर चढ़े देख, प्रसन्नतापूर्वक प्रदक्षिणा करके, उन्हें जय प्राप्त करने के आशिर्वाद देने लगे। स्त्रियाँ और कन्याएँ मङ्गलाचरण करके कहने लगीं—हे बृहन्नला, पहले खाण्डवदहन के समय महाबली अर्जुन को जैसे यश, विजय और मङ्गल प्राप्त हुआ था वैसे ही तुम लोगों को भी कल्याण प्राप्त हो। ३४

अड़तीसवाँ अध्याय

उत्तर का डरना और अर्जुन का ढाढ़स बँधाना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, निडर राजकुमार उत्तर राजधानी से निकलकर सारथी (अर्जुन) से कहने लगा—बृहन्नला, झटपट कौरवों के पास मेरा रथ ले चलो। मैं सब कौरवों को जीतकर, गायें फेरकर, अभी अपनी नगरी को लौटा आता हूँ। यह सुनकर अर्जुन तेजी के साथ घोड़ों को चलाने लगे। घोड़ों के गले में सोने की मालाएँ पड़ी थीं। हवा की तरह तेज़ चलनेवाले घोड़े ऐसी तेज़ी से जाने लगे, मानों आकाश में उड़ते चले जा रहे हों। कुछ दूर जाकर उत्तर और बृहन्नला दोनों उसी मसान के पासवाले शमी वृक्ष के पास पहुँचे।

वहाँ से उन्हें उमड़े हुए समुद्र के समान कौरवों की असंख्य सेना देख पड़ने लगी। उन सैनिकों के पैरों से उड़ी हुई धूल ऐसी छाई हुई थी कि किसी को कुछ नहीं सूझ पड़ता था। उस धूल में वह सेना ऐसी जान पड़ती थी, मानों बहुत वृक्षोंवाला बड़ा भारी जङ्गल आकाश में चल-फिर रहा हो। घोड़े-हाथी-रथ आदि से परिपूर्ण और कर्ण, दुर्योधन, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य अश्वत्थामा, भीष्म आदि महारथी

वीरों ने सुरक्षित उस विशाल कौरव-सेना को देखते ही राजकुमार उत्तर का हृदय डर के मारे धड़कने लगा। उसके रोंगटे खड़े हो गये। उसने घबराकर कहा—बृहन्नला, सारथी! कौरवों से युद्ध करने की मुझे हिम्मत नहीं पड़ती। यह देखो, मेरे रोंगटे खड़े हो आये हैं।
१० इस सेना में अनेकों योद्धा हैं। देवता भी इस सेना पर हमला करने की हिम्मत नहीं कर सकते। भयानक धनुष चढ़ाये महारथी योद्धा खड़े हुए हैं। असंख्य हाथी-घोड़े-रथ आदि में भरी, भयानक, कौरवों की सेना के भीतर मैं नहीं जा सकता। बृहन्नला, कौरव-सेना के वीरों को देखकर मेरा जी घबरा रहा है। मैं इस सेना के विरुद्ध हथियार कैसे उठाऊँगा! दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, विविंशति, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त और बाह्लीक आदि युद्ध-विद्या में चतुर, महावीर, महारथी शस्त्र लिये जहाँ खड़े हैं वहाँ जाकर, उनके सामने, मैं कैसे शस्त्र उठाऊँगा! इन लोगों के साथ युद्ध करने की कौन कहे, इन्हें देखने से ही मेरा कलेजा धड़क रहा है। मुझे तो मूर्च्छा आना चाहती है।

वैशम्पायन कहते हैं कि अपने सारथी बुद्धिमान् अर्जुन के आगे [उनके पौरुष और पराक्रम का हाल कुछ जानने के कारण] मूर्खतावश यों खेद और घबराहट प्रकट करके राजकुमार उत्तर ने कहा—हे बृहन्नला, पिताजी मुझे सूने घर में अकेला छोड़, सब सेना, सामन्तों और सहायकों को साथ लेकर, त्रिगर्त्तराज सुशर्मा से युद्ध करने चले गये हैं। ऐसा कोई वीर योद्धा नहीं जो यहाँ पर इस समय मेरी सहायता करे। खासकर मैं अभी बालक हूँ; मुझे तो परिश्रम करने का अभ्यास ही नहीं है। इस कारण अस्त्र-शस्त्र की विद्या को अच्छी तरह जाननेवाले इन अगणित कौरव वीरों से मेरा अकेले युद्ध करना किसी तरह उचित नहीं है। इसलिए तुम अभी मेरा रथ नगर को लौटा ले चलो।

बृहन्नला ने कहा—हे महाबाहु, शत्रुओं ने अभी आपको कुछ हानि या कष्ट नहीं पहुँचाया; फिर आप अभी से क्यों इस तरह घबराकर—कायरता प्रकट कर—शत्रुओं के हर्ष को बढ़ा रहे हैं? युद्ध से पहले ही हिम्मत क्यों हारते हैं? कौरवों ने अभी ऐसा कौन काम किया है जिससे आप इतना घबरा रहे हैं? आपने ही मुझे कौरवों की सेना के बीच रथ ले चलने की आज्ञा दी है, इस कारण मैं गोधन हरनेवाले आततायी कौरवों की अनेक ध्वजा-पताकाओं से
२० शोभित सेना के बीच आपको अवश्य ले चलूँगा। घर से चलते समय रनिवास की स्त्रियों और पुरुषों के आगे वैसे अद्भुत पौरुष की डींग हाँककर और शत्रुओं के हाथ से अपने राज्य की गायें छीन लाने की प्रतिज्ञा करके आप इस समय क्यों युद्ध से भाग रहे हैं? यदि आप अपनी गायें शत्रुओं से छिने बिना घर को लौट जायँगे तो सब स्त्री-पुरुष और वीर आपको हँसेंगे। इसलिए आप हिम्मत बाँधिए। सैरन्ध्री ने सबके सामने ही मेरे सारथी के काम की बहुत बड़ाई की है। इस कारण मैं गायों को शत्रुओं से छिने बिना घर लौटकर नहीं जा सकता। मैं

अर्जुन ने पीछे से जाकर उत्तर के केश पकड़ लिये। — पृ० १४२९

सैरन्ध्री की की हुई बड़ाई, उत्तरा के अनुरोध और आपकी आज्ञा के ख़याल से ही यहाँ आया हूँ। इसलिए कौरवों से युद्ध ठाने बिना कैसे रह सकता हूँ ?

"बृहन्नला, कौरव लोग भले ही मत्स्यराज का [धन और] गोधन हर ले जायँ, स्त्रियाँ और पुरुष सब भले ही मेरी हँसी उड़ावें, सब गायें न रहें और नगर भले ही ख़ाली हो जाय, पिताजी भले ही मेरा तिरस्कार करें किन्तु मैं किसी तरह कौरव वीरों से युद्ध नहीं कर सकता।" यों कहकर और धनुष-बाण छोड़कर उत्तर कुमार रथ से कूदकर भाग खड़ा हुआ। उसने अपने मान-अपमान की कुछ परवा नहीं की। तब अर्जुन ने कहा—हे राजपुत्र, युद्ध से डरकर भागना क्षत्रिय का धर्म नहीं है। यों डरकर भागने की अपेक्षा युद्ध में मर जाना ही क्षत्रिय के लिए अच्छा है।

वैशम्पायन कहते हैं—अब अर्जुन तुरन्त रथ से उतर पड़े। वे तेज़ी के साथ उत्तर
कुँअर को पकड़ लाने के लिए उसके पीछे दौड़े। उस समय उनकी लम्बी चोटी हिलने लगी ३०
और लाल कपड़े फहराने लगे। यह दृश्य देखकर कौरव-पक्ष के कुछ लोग हँसने लगे। इस तरह उत्तर के पीछे तेज़ी के साथ अर्जुन को दौड़ते देखकर कौरव लोग परस्पर कहने लगे कि राख में छिपी हुई आग के समान अपने को छिपाये हुए यह पुरुष कौन है। इसके शरीर का कुछ हिस्सा पुरुष का सा और कुछ हिस्सा स्त्री का सा देख पड़ता है। इसका वेष तो हीजड़ों का सा है, पर इसकी [बहुत सी] बातें अर्जुन से मिलती-जुलती हैं। इसका मस्तक ऊँचा है, गरदन मोटी है, भुजाएँ बेलन के समान दृढ़ और मोटी हैं। इसकी चाल और पराक्रम अर्जुन के समान जँचता है। इसलिए ये अवश्य अर्जुन होंगे। जैसे देवताओं में इन्द्र श्रेष्ठ हैं वैसे ही मनुष्यों में वीर अर्जुन श्रेष्ठ हैं। अर्जुन के सिवा और कौन मनुष्य हम लोगों के सामने अकेले आने की हिम्मत कर सकता है? जान पड़ता है, जनशून्य विराट की राजधानी में राजकुमार उत्तर अकेला ही था। लड़कपन के मारे अपने पौरुष को न जानने के कारण राजकुमार उत्तर अपने यहाँ छिपे हुए अर्जुन को अपना सारथी बनाकर युद्ध में आया था; इस समय हम लोगों को देखकर डर के मारे व्याकुल होकर भागा जा रहा है और अर्जुन उसे पकड़ने के लिए उसका पीछा कर रहे हैं।

वैशम्पायन कहते हैं—अपने को छिपाये हुए अर्जुन को देखकर कौरव लोग इस प्रकार तर्क-वितर्क करने लगे; पर कुछ निश्चय न कर सके। उधर उत्तर सौ क़दम भी भागकर गया
न होगा कि अर्जुन ने पीछे से जाकर उसके केश पकड़ लिये। तब उत्तर गिड़गिड़ाकर दीन ४०
भाव से कहने लगा—बृहन्नला, तुम तुरन्त रथ लौटाकर ले चलो। जीवन रहने पर मनुष्य भले दिन देख सकता है। मैं तुमको एक सौ निष्क (अशर्फ़ियाँ) सोने में जड़ी हुई चमकदार आठ वैदूर्य मणियाँ, सुवर्ण-दण्ड-शोभित और अच्छे घोड़ों से अलंकृत अनेक रथ और दस सजे हुए मस्त हाथी दूँगा। तुम मुझको छोड़ दो। वैशम्पायन कहते हैं—इस तरह बहुत विलाप करके

उत्तर कुमार अचेत सा हो गया। मुसकाते हुए अर्जुन उसे रथ के पास ले गये। डर से व्याकुल और अचेत-सदृश राजकुमार उत्तर से अर्जुन ने कहा—हे शत्रुओं का नाश करनेवाले वीर कुमार, यदि शत्रुओं से युद्ध करने की हिम्मत तुममें नहीं है तो तुम मेरे सारथी बनकर रथ हाँको। मैं अपने बाहुबल से तुम्हारी रक्षा और शत्रुओं से युद्ध करूँगा। तुम घबराओ मत। हे पुरुषसिंह! तुम क्षत्रिय हो, फिर भी शत्रुओं के बीच खड़े होकर क्यों खेद कर रहे हो? मैं कौरवों से युद्ध करूँगा और उन्हें हराकर उनसे तुम्हारी गायें छीन लाऊँगा। तुम मेरे सारथी बनो।

कभी किसी से न हारनेवाले अर्जुन ने विराट के पुत्र उत्तर को, यों दिलासा देकर, रथ पर
५१ बिठाया। फिर वे भी रथ पर सवार होकर आगे बढ़े।

उनतालीसवाँ अध्याय

कौरवों का अर्जुन के सम्बन्ध में बातचीत करना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, नपुंसक-वेषधारी पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन को उत्तर के साथ रथ पर चढ़कर उस मसानवाले शमीवृक्ष की ओर जाते देख—उनके कारण—भीष्म, द्रोण आदि महारथी और कौरव लोग मन में बहुत डर गये। सबको एकाएक उत्साहहीन और अनेक भयङ्कर उत्पात होते देखकर द्रोणाचार्य ने कहा—देखो, लगातार कङ्कड़ और धूल उड़ाती हुई आँधी बड़े वेग से चल रही है। आकाशमण्डल में धूल छा जाने से अँधेरा हो गया है। अद्भुत आकार के रूखे बादल आकाश में दीख रहे हैं। अकस्मात् तलवारें म्यान से निकली पड़ती हैं। और-और शस्त्र भी स्थान-भ्रष्ट हो रहे हैं। सियार-सियारियों के झुण्ड भयङ्कर और अशुभ शब्द कर रहे हैं। दारुण दिग्दाह (आकाश में लाली) दिखाई दे रहा है। घोड़ों की आँखों से आँसू बह रहे हैं। बिना हिलाये ही ध्वजाएँ हिल रही हैं और टूट-टूटकर गिर रही हैं। हे वीरो, इसी तरह के और भी असगुन देख पड़ते हैं। जान पड़ता है, आज यहाँ कोई बहुत ही भयानक घटना होनेवाली है। इस कारण तुम लोग सावधानी के साथ अपनी और गायों की रक्षा का यत्न करो। व्यूह बना करके अपने सैनिकों की रक्षा करो। यह नपुंसक-वेषधारी मनुष्य निस्सन्देह सर्वश्रेष्ठ वीर, शस्त्रविशारद, अर्जुन ही है। हे भीष्म! जिनकी ध्वजा में हनुमान् हैं, वृक्ष-विशेष जिनका नाम है, वे इन्द्र सुत—अङ्गना-वेषधारी—किरीटी आज दुर्योधन को जीतकर गायें ले जायँगे।
१० इस (राजा) की रक्षा करो। ये वीरश्रेष्ठ अर्जुन देवताओं और दैत्यों से भी युद्ध करने से मुँह मोड़नेवाले नहीं। इन्द्र से इन्होंने अच्छी तरह अस्त्र-शस्त्र की विद्या सीख ली है। ख़ासकर वनवास में इनको जो दुःख सहने पड़े हैं उनसे ये अत्यन्त कुपित हो रहे हैं। इससे इस समय युद्ध किये बिना ये कभी न मानेंगे। इधर हम लोगों में ऐसा कोई वीर योद्धा

नहीं जो इनका सामना कर सके। सुना है, अर्जुन हिमालय पर अपनी युद्धचातुरी से किरातवेष-धारी भगवान् शङ्कर को सन्तुष्ट कर चुके हैं।

कर्ण ने कहा—आचार्य, आप सदा अर्जुन के गुणों का बखान और हम लोगों की निन्दा किया करते हैं। किन्तु असल में अर्जुन का पौरुष और युद्धकौशल मेरे तथा महाराज दुर्योधन के पौरुष और युद्धकौशल के सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं है।

दुर्योधन ने कहा—हे अङ्गराज कर्ण, यह नपुंसक वेष-धारी मनुष्य यदि सचमुच अर्जुन है तो अवश्य हम लोगों का मनोरथ पूरा होगा; क्योंकि पाण्डव बारह वर्ष वनवास के बाद एक वर्ष तक अज्ञातवास करने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं। अभी वह अज्ञातवास का वर्ष पूरा नहीं हुआ। इसी बीच में यदि अर्जुन प्रकट हो गये तो फिर पाण्डवों को, प्रतिज्ञा के अनुसार, बारह वर्ष तक वन में रहना पड़ेगा। और, कोई नपुंसक के वेष से युद्ध करने आया है तो अवश्य अभी हम तीक्ष्ण बाणों से उसे मार डालेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं—दुर्योधन के ऐसे उत्साह प्रकट करनेवाले वचन सुनकर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और अश्वत्थामा आदि वीर उसकी प्रशंसा करने लगे। १७

चालीसवाँ अध्याय

अर्जुन का उत्तर से शमीवृक्ष पर चढ़कर अस्त्र-शस्त्र उतारने के लिए कहना।

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, इधर राजकुमार उत्तर को सुकुमार और युद्ध-कौशल से निपट अनाड़ी जानकर, शमीवृक्ष के पास पहुँचकर, अर्जुन ने कहा—हे उत्तर कुमार, तुम मेरी आज्ञा से चटपट इस शमीवृक्ष पर चढ़ जाओ और इसके ऊपर रक्खे हुए दिव्य धनुषों को उतार लाओ। मैं जब युद्धभूमि में पहुँचकर हाथी-घोड़े आदि को मारने और शत्रुओं को परास्त करने लगूँगा तब तुम्हारे ये कमजोर धनुष कभी मेरे हाथ के झटकों को—मेरे बल-वीर्य को—न सह सकेंगे; इनके टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। इसलिए तुम शीघ्र इस घने पत्तोंवाले शमी के पेड़ पर चढ़ जाओ। इसके ऊपर महाराज युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव के बढ़िया धनुष, बाण और दिव्य कवच रक्खे हुए हैं। इसी वृक्ष के ऊपर महावीर अर्जुन का दिव्य गाण्डीव धनुष रक्खा हुआ है। वह एक ही गाण्डीव धनुष हजारों धनुषों के बराबर है। वह हाथों के जोर को सहनेवाला, लचीला, सब शस्त्रों में श्रेष्ठ, सुवर्णमण्डित और लम्बा-चौड़ा है। न उसमें कोई गाँठ है, न कोई व्रण (कहीं से कटा-फटा)। उसका बोझ बहुत अधिक है। वह देखने में मनोहर है। महाराज युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव के धनुष भी ऐसे ही दिव्य, दृढ़ और इन्हीं ८
श्रेष्ठ गुणों से युक्त हैं।

इकतालीसवाँ अध्याय

उत्तर का वृक्ष पर चढ़कर शस्त्रों का देखना

उत्तर ने कहा—हे बृहन्नला, मैंने सुना है कि इस पेड़ पर एक मुर्दा बँधा हुआ है। मैं राजकुमार होकर उसे कैसे छू सकता हूँ? मन्त्र और व्रत के जाननेवाले क्षत्रिय के बालक को ऐसी अशुद्ध वस्तु न छूनी चाहिए। मैं इस मुर्दे को छूकर मुर्दा ढोनेवाले के समान अपवित्र हो जाऊँगा, फिर तुम मुझे कैसे छुओगे?

अर्जुन ने कहा—उत्तर, तुम शंका न करो। इसे छूने से तुम अपवित्र नहीं हो सकते। वह मुर्दा नहीं, धनुष है। राजकुमार, तुम अच्छे वंश में उत्पन्न हो, खासकर राजा विराट के पुत्र हो। जो

वह शस्त्रों की गठरी न होती, मुर्दा होता, तो मैं कभी तुमसे उसे छूने के लिए न कहता।

राजपुत्र उत्तर को लाचार होकर रथ से उतरना पड़ा। वह उस शमीवृक्ष पर चढ़ गया। शत्रुनाशन अर्जुन रथ पर बैठे थे। उन्होंने कहा—तुम झटपट इस गठरी को नीचे उतारकर उसका बेठन खोलो। अर्जुन की आज्ञा से उत्तर ने वह शस्त्रों की गठरी [जो लम्बी होने के कारण मुर्दे के आकार की थी] उतारी। उतारकर ऊपर का बेठन खोला। अर्जुन के और अन्य पाण्डवों के धनुष देखकर उत्तर को बड़ा आश्चर्य हुआ। जैसे उदय होते ही ग्रह आकाश में जगमगा उठते हैं वैसे ही उन धनुष की चमक वहाँ पर छा गई। फुफकारनेवाले अजगर के समान
१२ फैले हुए धनुषों को देखकर उत्तर का कलेजा काँप उठा और रोंगटे खड़े हो गये। इसके बाद, हर एक धनुष को छूकर, उत्तर, उनके बारे में अर्जुन से पूछने लगा।

———

बयालीसवाँ अध्याय

उत्तर का अस्त्रों के बारे में पूछना

उत्तर ने पूछा—यह सैकड़ों-हज़ारों-करोड़ों सुवर्ण-बिन्दुओं से शोभित धनुष किसका है? सोने के पत्तरों से मढ़ा हुआ, आसपास जड़े हुए रत्नों से मनोहर और अत्यन्त सुखदायक 'पकड़'-

वाला यह धनुष किसका है? यह धनुष किसका है, जिसकी पीठ पर सोने के बने इन्द्रगोप कीट (बीरबहूटी) अत्यन्त शोभा बढ़ा रहे हैं? यह धनुष किसका है, जिस पर अनेक पक्षियों की मूर्त्तियाँ अङ्कित हैं? और यह धनुष किसका है, जिसकी पीठ पर उज्ज्वल प्रभावाले तीन सूर्य चमक रहे हैं? देखिए, इस सुवर्णमय तरकस में ये एक हज़ार नाराच बाण किसके हैं? इन विचित्र बाणों की नोकें चाँदी से मढ़ी हुई चमक रही हैं, और ये बाण रोमयुक्त हैं। ये गिद्ध के परों से शोभित, लोहे के बने, हल्दी के रङ्ग से रँगे, चिकने और चौड़े बाण किसके धनुष को शोभित करते थे? यह काला सा धनुष किसका है जिसमें पाँच शेरों के चिह्न बने हुए हैं और सुअर के कान के आकार के दस अद्भुत बाण जिसके द्वारा चलाये जाते हैं? ये चौड़े, लम्बे, अर्धचन्द्राकार सात सौ नाराच बाण किसके हैं? जिनका आगे का हिस्सा तोते की तरह है,
पिछला हिस्सा लोहे का है, और 'फल' ख़ूब पना है, वे ये सुवर्णपुङ्ख बाण किसके हैं? ये भारी १०
बोझ को सहनेवाले, शत्रुओं के छक्के छुड़ानेवाले, लम्बे, शिलीमुख बाण किसके हैं? यह बाघ के चमड़े की म्यान में रखा हुआ, सोने की मूठवाला, बहुत से घुँघरुओं से शोभित दिव्य खड्ग किसका है? यह गोचर्म की म्यान में रक्खी हुई, निर्मल, बहुत बोझ को सहनेवाली, सोने की मूठ से शोभित, निषध देश की बनी तलवार किसकी है? यह सुवर्ण से अलंकृत, धारदार, लम्बी, देखने में सुन्दर, निर्मल, बकरे की खाल की म्यान में रक्खी हुई, नीले रङ्ग की, चमकदार तलवार किस महावीर की है? यह आग की ज्वाला के समान, तपे हुए कुन्दन की सी चमकीली, चिकनी, भारी तलवार किसकी है? और यह सोने की बूँदों से शोभित, छूने में साँप की खाल के समान चिकनी और ठण्डी, शत्रुओं के शरीर को काट डालनेवाली तलवार किसकी है? बृहन्नला! इस सामग्री
को देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है। मुझे इन शस्त्रों का सब हाल बताओ। १८

तेंतालीसवाँ अध्याय

अर्जुन का दिया हुआ अस्त्रों का परिचय

बृहन्नला (अर्जुन) ने कहा—हे राजकुमार, तुमने पहले जिस शत्रु सेना को चौपट करनेवाले धनुष के बारे में पूछा है वही सब धनुषों में श्रेष्ठ जगत्प्रसिद्ध अर्जुन का गाण्डीव धनुष है। अर्जुन ने इसी धनुष की सहायता से अकेले ही सब देवताओं, दैत्यों और मनुष्यों को हराया है। देवताओं, दैत्यों, और गन्धर्वों ने इस परम श्रेष्ठ धनुष की सैकड़ों-हज़ारों वर्ष तक आराधना की है। इस धनुष को पहले ब्रह्मा ने हज़ार वर्ष तक धारण किया है। उनके बाद प्रजापति ने डेढ़ हज़ार वर्ष तक, फिर इन्द्र ने पचासी हज़ार वर्ष तक, फिर चन्द्रमा ने पाँच सौ वर्ष तक इसे धारण किया है। चन्द्रमा से यह धनुष वरुणदेव को मिला। उन्होंने अपने पास सौ वर्ष तक रखकर यह दिव्य धनुष अर्जुन को दिया। अर्जुन के पास यह धनुष पैंसठ वर्ष से है। यह दिव्य धनुष अर्जुन

के पास आकर, देवलोक और मनुष्यलोक में पूजित होकर, बड़ी शोभा को प्राप्त हुआ है। वह
दूसरा सुवर्णमय धनुष महावीर भीमसेन का है, जिसके आसपास अनेक कारीगरियों के नमूने देख
पड़ते हैं। भीमसेन ने दिग्विजय के समय इसी धनुष से पूर्व दिशा के वीरों को जीता था। हे
उत्तर, वह तीसरा 'इन्द्रगोप'-चिह्न-युक्त मनोहर धनुष महाराज युधिष्ठिर का है। वह चौथा धनुष,
१० जिस पर तीन सूर्य बने हुए चमक रहे हैं, महावीर नकुल का है। वह पाँचवाँ धनुष, जिस पर
सुवर्णमय विचित्र अनेक पक्षी बने हुए हैं, वीरवर सहदेव का है। ये जो पैनी धारवाले हज़ार
नाराच बाण देख रहे हो, सो अर्जुन के हैं। इनसे अर्जुन युद्ध करते थे। ये नाराच बहुत ही
शीघ्रगामी और अक्षय हैं। ये युद्ध के समय प्रज्वलित हो उठते हैं, और शत्रुओं को मारने के
लिए चलाये जाते हैं। ये चौड़े, लम्बे, अर्धचन्द्राकार बाण भीमसेन के हैं। ये पीले रङ्ग के पाँच
सिंहों के चिह्न से युक्त बाण नकुल के हैं। बुद्धिमान् नकुल ने इन सुवर्णपुङ्ख बाणों से पश्चिम
दिशा के राजाओं को जीता है। ये सूर्य के समान चमकीले, परशु के आकार के, बाण वीर
सहदेव के हैं। ये तीक्ष्ण, पीले रङ्ग के, सुवर्णपुङ्खशोभित, तीन गाँठोंवाले, दिव्य बाण महाराज
युधिष्ठिर के हैं। और, ये बहुत लम्बे और मज़बूत शिलीमुख बाण महावीर अर्जुन के हैं। राज-
१० कुमार, इस बाघ की खाल की म्यान में शत्रुओं को डरवानेवाला भीमसेन का दिव्य खड्ग है।
वह सोने की मूठवाली, पैनी, बढ़िया म्यानवाली तलवार महाराज युधिष्ठिर की है। बकरे के चमड़े
की म्यान में वह बहुत मजबूत और तीक्ष्ण तलवार नकुल की है। गोचर्म की म्यान में रक्खी
२३ हुई दिव्य तलवार सहदेव की है और वह शत्रुओं के सिर काटनेवाला खड्ग अर्जुन का है।

चवालीसवाँ अध्याय

अर्जुन का दिया हुआ अपना और अपने भाइयों का परिचय

[सब शस्त्रों को देखकर आश्चर्य के साथ] उत्तर कुमार ने कहा—बृहन्नला, महात्मा पाण्डवों के सुवर्णमय धनुष, बाण और खड्ग तो ये सब हैं, किन्तु युधिष्ठिर आदि पाचों पाण्डव इस समय कहाँ हैं? वे कौरवों से जुए में सर्वस्व हारकर, राज्य से भ्रष्ट होकर, कहाँ गये? हम लोग तो यह कुछ भी नहीं जानते। सुना है, जगत्प्रसिद्ध स्त्रीरत्न द्रौपदी भी उनके साथ वन को गई थीं। वे द्रौपदी इस समय कहाँ हैं?

अर्जुन ने कहा—हे राजकुमार, कुन्ती का पुत्र अर्जुन मैं ही हूँ। धर्मराज युधिष्ठिर इस समय तुम्हारे पिता की सभा के मुख्य मुसाहब कङ्क के नाम से प्रसिद्ध हैं। बल्लव नाम से प्रसिद्ध होकर रसोइये का काम करनेवाले ही महावीर भीमसेन हैं। नकुल ग्रन्थिक नाम से प्रसिद्ध होकर तुम्हारे पिता के यहाँ घोड़ों की देखरेख और शिक्षा का काम करते हैं। तुम्हारे पिता के यहाँ तन्तिपाल के नाम से प्रसिद्ध गोप के वेष में अपने को छिपाये जो पुरुष है वही सहदेव हैं।

और, जिनके कारण दुष्ट कीचक और उसके भाई उपकीचक मारे गये हैं वे सैरन्ध्री के वेष से तुम्हारे यहाँ रहनेवाली स्त्री द्रौपदी हैं। यह सुनकर उत्तर ने कहा—मैंने पहले अर्जुन के दस नाम सुने हैं। आप यदि वे दसों नाम बता सकें तो मुझे आपकी बातों पर विश्वास हो। अर्जुन ने कहा—हे राजकुमार, तुमने पहले मेरे जो दस नाम सुने हैं उन्हें मैं कहता हूँ, मन लगाकर सुनो। अर्जुन, फाल्गुन, जिष्णु, किरीटी, श्वेतवाहन, बीभत्सु, विजय, कृष्ण, सव्यसाची और धनञ्जय, यही मेरे दस नाम हैं। उत्तर ने कहा—हे अर्जुन! बताइए, आपने ये विजय आदि दस नाम क्यों धारण किये हैं? मैंने सुना है, अर्जुन के ये दस नाम सार्थक हैं। इसलिए यदि आप इन नामों के पड़ने का ११
कारण बतला सकें तो मैं आपकी बातों पर विश्वास करूँगा।

अर्जुन ने कहा—मैं सब जनपदों (नगरों और देशों) को जीतकर, धन लेकर उसी के बीच रहता हूँ—सम्पत्तिमान् हूँ—इसी से लोग मुझे धनञ्जय कहते हैं। मैं संग्राम में जाता हूँ तो युद्ध करनेवाले वीरों को हराकर विजय प्राप्त किये बिना नहीं लौटता, इसी से मेरा नाम विजय है। युद्ध के समय मेरे रथ में सफ़ेद रङ्ग के बढ़िया घोड़े जोते जाते हैं, इसी से मैं श्वेतवाहन नाम से प्रसिद्ध हूँ। हिमालय पहाड़ पर उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में मेरा जन्म हुआ है, इसी से मेरा नाम फाल्गुन है। जिस समय मैंने बड़े पराक्रमी दानवों से घोर युद्ध किया था उस समय इन्द्र ने प्रसन्न होकर मेरे मस्तक पर सूर्य-सदृश प्रकाशमान किरीट मुकुट पहना दिया था, इससे मेरा नाम किरीटी है। मैं युद्धस्थल में कभी बीभत्स (घृणा के योग्य) काम नहीं करता, इसी से देवता और मनुष्य मुझे बीभत्सु कहते हैं। मैं बायें और दाहने दोनों हाथों से, समान रूप से, गाण्डीव धनुष खींचकर बाण चला सकता हूँ, इसी से मेरा नाम सव्यसाची है। इस पृथ्वीमण्डल पर मेरे ऐसे रङ्ग का आदमी अत्यन्त दुर्लभ है, और मैं सदा निर्मल काम करता हूँ, इसी से मेरा नाम अर्जुन है। इन्द्र के अंश से उत्पन्न मैं, अत्यन्त दुर्द्धर्ष, पराक्रमी शत्रु को भी जीतकर अपने वश में कर लेता २०
हूँ इसी से मेरा नाम जिष्णु है। विशुद्ध कृष्ण वर्ण का बालक स्वभाव से ही लोगों को प्यारा होता है; मेरा रङ्ग भी साँवला है, इसी से पिता ने मेरा नाम कृष्ण रक्खा था।

वैशम्पायन कहते हैं कि तब विराट के पुत्र उत्तर ने अर्जुन के पास जाकर [उनके पैरों पर गिरकर] प्रणाम किया। फिर राजकुमार ने नम्रता के साथ कहा—हे महाबाहु, हे पुरुषश्रेष्ठ! आज आपका परिचय पाकर मैं कृतार्थ हो गया। हे धनञ्जय, मेरा एक नाम भूमिञ्जय भी है। मैंने अब तक बिना जाने जो कुछ अनुचित बात आपको कही हो उस अपराध को क्षमा कीजिएगा। आप पहले जिन दुष्कर कामों को कर चुके हैं उन्हें स्मरण करके इस समय मुझे बड़ा उत्साह हो रहा है। अब मुझे रत्ती भर भी डर नहीं है। मैं आपको देखकर और आपका
परिचय पाकर बहुत प्रसन्न हो रहा हूँ। २५

पैंतालीसवाँ अध्याय

युद्ध करने के लिए अर्जुन की तैयारी

उत्तर ने कहा—हे वीर, मैं आपका सारथी बनता हूँ। आप रथ पर विराजिए। आज्ञा दीजिए, आपका रथ किधर ले चलूँ। मैं बिना सेना के भी आपके साथ समरभूमि में चलूँगा। अर्जुन ने कहा—हे पुरुषसिंह, मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। अब तुम डरो मत। मैं अकेला ही तुम्हारे शत्रुओं का नाश करूँगा। तुम धीरज के साथ देखो, मैं लड़ाई के मैदान में कैसा पराक्रम दिखाता हूँ। इस समय तुम शीघ्र मेरे रथ पर ये तरकस रख दो और निर्मल दिव्य खड्ग ले लो।

वैशम्पायन कहते हैं कि अर्जुन के वचन सुनकर सब काम करके [अन्य चारों पाण्डवों के शस्त्र उसी वृक्ष पर रखकर] उत्तर नीचे उतर आया। अब अर्जुन ने कहा—हे उत्तर मैं युद्ध में कौरवों को हराकर तुम्हारी सब गायें लौटा लाऊँगा। मेरी विशाल भुजाएँ चहार-दीवारी और फाटकबन्दी की तरह तुम्हारे नगर की रक्षा करेंगी। दम भर में मेरे धनुष की डोरी का और युद्ध के डङ्के का शब्द तुम्हारे नगर में गूँज उठेगा। गाण्डीव धनुष लेकर, रथ पर चढ़कर, मैं जब लड़ाई के मैदान में पहुँचूँगा तब शत्रु लोग कभी तुमको परास्त न कर सकेंगे। इसलिए तुम शङ्का न करो।

उत्तर ने कहा—हे अद्वितीय वीर, मैं शत्रुओं के दल से अब बिलकुल नहीं डरता। आपके बल और पराक्रम को मैंने अच्छी तरह जान लिया। निःसन्देह आप युद्ध में कृष्णचन्द्र और
१० इन्द्र के समान पराक्रम दिखा सकते हैं। वीरवर, मैं इस चिन्ता से बहुत ही व्यग्र हो रहा हूँ कि आप किस कर्म के कारण नपुंसक हो गये हैं। मेरी बुद्धि मन्द है। इस कारण मैं इस विषय में बहुत विचार करके भी कुछ निश्चय नहीं कर पाता। जान पड़ता है, आप नपुंसकवेषधारी भगवान् शङ्कर, या गन्धर्वराज चित्ररथ अथवा इन्द्र होंगे।

अर्जुन ने कहा—हे राजकुमार, मैं सचमुच में नपुंसक नहीं हूँ। बड़े भाई की आज्ञा से मैंने एक वर्ष तक इस तरह के व्रत का नियम किया है। अब उस व्रत का समय बीत गया। यह सुनकर उत्तर ने कहा—हे नरश्रेष्ठ, मेरे मन में जो तर्क हुआ था वह झूठ नहीं है। इस समय आपने मुझ पर बड़ी कृपा की जो सच्ची बात बताकर मेरा सन्देह दूर कर दिया। असल में नपुंसक का ऐसा आकार कभी नहीं हो सकता। आपको पाकर मैं सहाययुक्त हुआ। यहाँ तक कि अब देवताओं से युद्ध करने के लिए भी मेरा चित्त उत्साहित हो रहा है। मेरा सब डर जाता रहा। आज्ञा दीजिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ। होशियार सारथी से मैंने रथ चलाने का का काम सीखा है। हे पुरुषश्रेष्ठ, कृष्ण के दारुक सारथी और इन्द्र के मातलि सारथी की तरह मैं रथ चलाने की विद्या में निपुण हूँ। इस रथ के ये घोड़े दमदार हैं; ये कभी थकते नहीं। इस रथ के धुरे में दाहिनी ओर जो घोड़ा जुता है, चलते समय जिसके पैर पृथ्वी पर पड़ते नहीं देख पड़ते,

वह श्रीकृष्ण के रथ के सुग्रीव नामक घोड़े के तुल्य है। जो घोड़ा रथ के धुरे में बाईं ओर जुता हुआ है वह श्रीकृष्ण के रथ के मेघपुष्प नामक घोड़े के समान है। जो घोड़ा सुवर्ण के जाल से शोभित होकर बाईं ओर लगा है वह श्रीकृष्ण के रथ के शैव्य नामक घोड़े के समान बलवान् और शीघ्रगामी है। जो घोड़ा दाहिनी ओर लगा है वह श्रीकृष्ण के रथ के बलाहक नामक घोड़े से भी तेज चलता है। इसलिए ये घोड़े सहज ही आपको लेकर युद्धभूमि में विचर सकेंगे। अब आप रथ पर चढ़कर शत्रुओं से युद्ध कीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं—तब महाबाहु अर्जुन ने हाथों से चूड़ियाँ आदि उतार कर सोने का कवच पहन लिया। फिर कुटिल केशों के जूरे को समेटकर ऊपर से कपड़ा बाँधा। अब वे पवित्रचित्त हो, पूर्वमुख होकर, उस दिव्य रथ पर चढ़े। रथ पर बैठकर अर्जुन ने अपने दिव्य अस्त्रों का स्मरण किया। स्मरण करते ही सब अस्त्र अर्जुन के पास आकर, हाथ जोड़कर, प्रणाम करके कहने लगे—हे पाण्डव, हम सब आपके आज्ञाकारी उपस्थित हैं। आज्ञा दीजिए, क्या करें। प्रसन्नहृदय अर्जुन ने वन्दना और अभिनन्दन करके उन अस्त्रों से कहा—आप सब मेरे हृदय में प्रकट हों।

अब अर्जुन ने शीघ्रता के साथ गाण्डीव धनुष पर डोरी चढ़ाई। किसी भारी पहाड़ पर दूसरा भारी पहाड़ पटकने से जैसा भयानक शब्द हो वैसे ही गाण्डीव धनुष के शब्द से दिशाएँ परिपूर्ण हो गईं। पृथ्वी भर पर वह घोर शब्द गूँज उठा। उस समय तेज हवा चलने लगी। चारों दिशाओं में घना अँधेरा छा गया। बार-बार वेग से घोर शब्द के साथ उल्कापात होने लगे। रथों के झण्डे हिलने और वृक्ष उखड़-उखड़कर गिरने लगे। वज्रपात के समान वह, गाण्डीव धनुष का, महाभयङ्कर शब्द सुनकर कौरवों ने समझ लिया कि यह अर्जुन के गाण्डीव धनुष का ही शब्द है।

उत्तर कुमार ने अर्जुन से कहा—हे पाण्डवश्रेष्ठ, आप तो असहाय अकेले हैं और महारथी महाकाय कौरव बहुत से हैं। उनके सहायक भी बहुत से हैं। मुझे चिन्ता हो रही है कि ऐसी दशा में आप किस तरह इन अस्त्र-शस्त्रज्ञ वीरों को परास्त कर सकेंगे। इसी से डर के मारे मैं आपके आगे खड़ा हूँ। यह सुनकर हँसते हुए अर्जुन कहने लगे—हे उत्तर, तुम तनिक भी न डरो।

देखो, "घोषयात्रा" के समय दुर्योधन को छुड़ाने के लिए जब मैंने महाबली गन्धर्वों से युद्ध किया था तब कौन मेरी सहायता करनेवाला था ? जब खाण्डव वन में मैंने देव-सेना के साथ घोर युद्ध किया था तब कौन मेरा सहायक था ? जब इन्द्र का कार्य सिद्ध करने के लिए पराक्रमी पौलोम और निवातकवच दानवों से मैंने युद्ध किया था तब किसने मेरी सहायता की थी ? जब द्रौपदी के स्वयंवर में राजाओं के साथ मैंने युद्ध किया था तब किसने मुझे सहायता दी थी ? हे उत्तर ! मैंने गुरु द्रोणाचार्य, इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, कृपाचार्य, कृष्णचन्द्र और पिनाक धनुष धारण करनेवाले शङ्कर से अस्त्रविद्या सीखी है। फिर इन कौरवों के साथ मैं युद्ध क्यों न कर सकूँगा ?
४१ अब तुम घबराहट छोड़कर शीघ्र मेरा रथ चलाओ।

छियालीसवाँ अध्याय

अर्जुन की तैयारी और द्रोणाचार्य का कौरवों से होनेवाले असगुनों का वर्णन करना

वैशम्पायन कहते हैं—अब महावीर अर्जुन ने उत्तर को अपना सारथी बनाकर शमीवृक्ष की प्रदक्षिणा की, अपने सब शस्त्र लिये और रथ पर से सिंह-चिह्न-युक्त ध्वजा हटाकर शमी के पेड़-तले रख दी। इसके बाद उन्होंने विश्वकर्मा के बनाये हुए, दिव्य, मायामय, भयङ्कर पूँछ-वाले वानर की मूर्त्ति से शोभित, अग्नि के दिये हुए अपने रथ के झण्डे को स्मरण किया। उनकी इच्छा को जानकर भगवान् अग्नि ने वानर-चिह्न-युक्त ध्वजा पर भूतगण को स्थापित कर

दिया। वह विचित्र ध्वजा, और सब युद्ध-सामग्री के साथ, आकाश से अर्जुन के रथ पर गिरी। अर्जुन ने उस ध्वजा समेत रथ की प्रदक्षिणा की। अब वे वानर-चिह्न-युक्त ध्वजा से शोभित रथ पर सवार हुए। उँगलियों में गोह के चमड़े के अङ्गुलित्राण पहने, गाण्डीव धनुष लिये हुए अर्जुन युद्ध करने के लिए तैयार हुए। शत्रु-नाशक अर्जुन शत्रुओं के रोंगटे खड़े कर देनेवाला शङ्ख बजाने लगे। अर्जुन का दारुण शङ्खनाद सुनकर वेगशाली घोड़े ऐसे डरे कि मुँह के बल पृथ्वी पर गिर पड़े और उत्तर बेहोश सा होकर रथ के ऊपर बैठ गया। अर्जुन ने खुद घोड़ों को, रास अपने हाथ

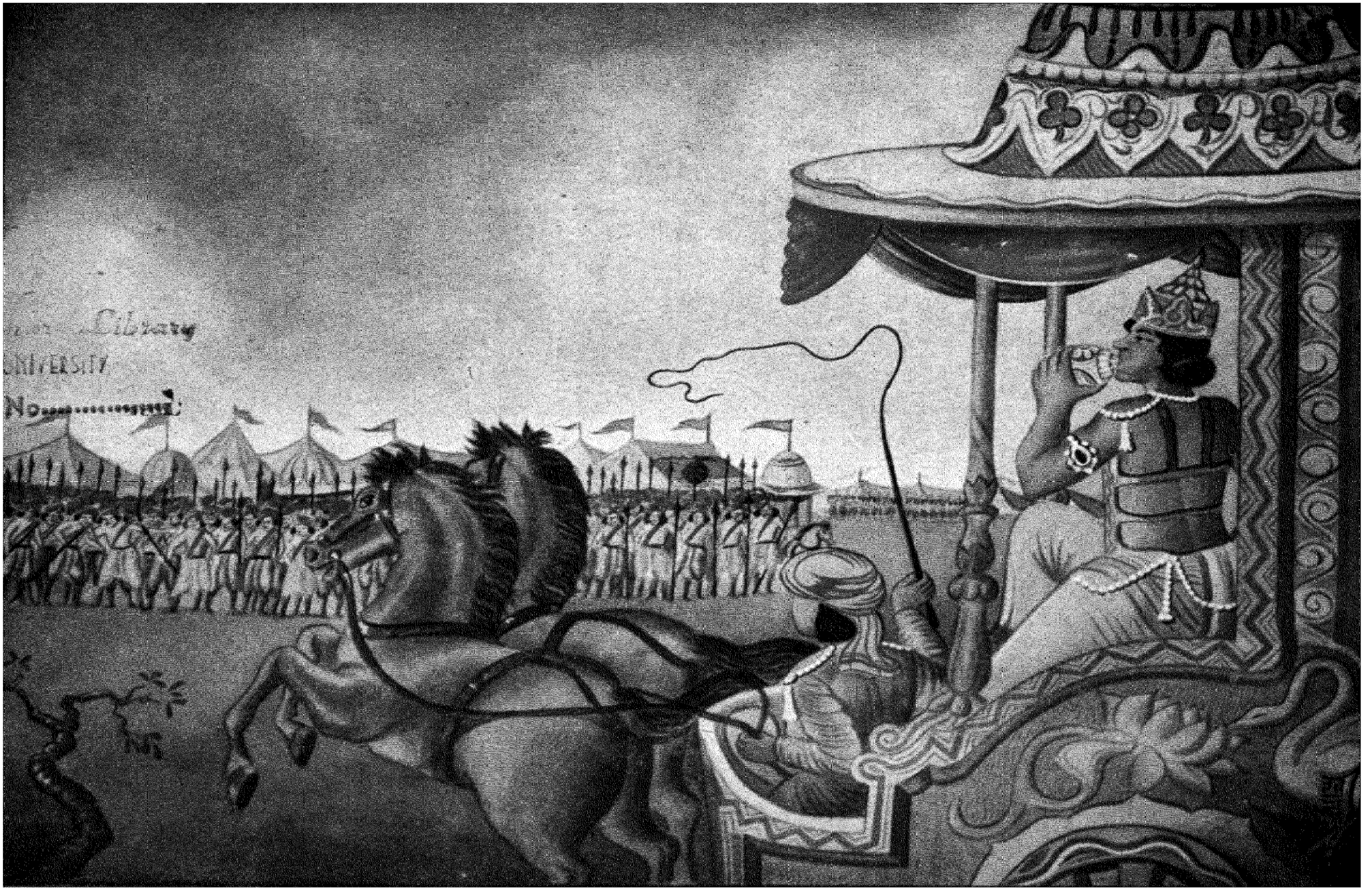

"शत्रु-नाशन अर्जुन शत्रुओं के रोंगटे खड़े कर देनेवाला शङ्ख बजाने लगे"।—पृ० १४३८

में लेकर, उठाया। फिर उत्तर को गले से लगाकर दिलासा देते हुए अर्जुन कहने लगे— १०
राजकुमार, डरो नहीं। हे पुरुषसिंह, तुम क्षत्रिय होकर किस लिए शत्रुओं के बीच में यों खेद कर रहे हो? तुम बहुत से शंखों का शब्द, युद्ध के नगाड़ों का शब्द और युद्ध के हाथियों का चिग्घाड़ना सुन चुके हो; फिर क्यों इस समय साधारण आदमी की तरह घबरा रहे हो? तुम्हारे चेहरे पर क्यों हवाइयाँ उड़ रही हैं?

उत्तर ने कहा—हे महाबाहु, यह सच है कि मैंने बहुत से शङ्खों, नगाड़ों और युद्ध के मस्त हाथियों का शब्द सुना है; किन्तु इससे पहले कभी ऐसा प्रचण्ड शङ्खनाद, रथ की घरघराहट, प्रत्यञ्चा का कानों को बहरा कर देनेवाला शब्द और ध्वजा पर स्थित भूतों का घोर गर्जन नहीं सुना। ऐसी विचित्र और भयानक ध्वजा भी कभी नहीं देखी। इन अमानुष अद्भुत शब्दों को सुनने से मेरा हृदय अत्यन्त व्यथित हो रहा है। मुझे दिशाओं का ज्ञान नहीं रहा। इस विशाल ध्वजा से सब दिशाएँ छिप सी गई हैं। मुझे कुछ नहीं सूझ पड़ता। गाण्डीव धनुष के शब्द से मैं बहरा सा हो रहा हूँ। तब अर्जुन ने फिर कहा—हे उत्तर, तुम दृढ़ता के साथ घोड़ों की रास
पकड़ो और सँभलकर अपने स्थान पर बैठो। सावधान हो जाओ, मैं फिर शङ्ख बजाता हूँ। २०

वैशम्पायन कहते हैं—अब अर्जुन ने दुबारा शङ्ख बजाया। उससे पर्वत मानों फटने लगे। शत्रु घबराने लगे। मित्रों को प्रसन्नता हुई। पहाड़ों की कन्दराएँ प्रतिध्वनित हो उठीं। दिशाओं में वह शब्द गूँज गया। पृथ्वी काँप उठी। इन अद्भुत घटनाओं को देखकर उत्तर फिर भी मोहित सा हो गया। रथ पर बैठे घबराये हुए उत्तर को अर्जुन ने फिर तरह-तरह से समझाया और दिलासा दिया।

उधर इन बातों को देख-सुनकर द्रोणाचार्य कौरवों से कहने लगे—हे कौरवो! मेघगर्जन के समान गम्भीर, रथ के पहियों की, घरघराहट से पृथ्वी को कँपानेवाले ये अर्जुन ही हैं। ऐसी गम्भीर और त्रासजनक शंखध्वनि अर्जुन के सिवा और किसी की नहीं हो सकती। देखो, हम लोगों के सब अस्त्र-शस्त्र प्रभाहीन हो रहे हैं और हम लोगों के घोड़े उत्साहहीन और उदास देख पड़ते हैं। हमारे यहाँ के अग्निहोत्र के अग्नि प्रकाशहीन हो रहे हैं। प्रकाशपूर्ण वस्तुएँ भी निस्तेज हो रही हैं। सूर्य की ओर मुँह उठाकर मृग अशुभ और घोर शब्द कर रहे हैं। कौए उड़-उड़कर हमारे रथों की ध्वजाओं पर बैठ जाते हैं। ये सब हमारी दाहनी ओर असगुन होकर महाभय की सूचना दे रहे हैं। बिना ही मारे सियार रोते हुए हमारी सेना के भीतर घुस रहे हैं। ये सब बातें आनेवाले महाभय और अमङ्गल की सूचना दे रही हैं। [महाभय की सूचना देते हुए कौए आकाश में कठोर शब्द कर रहे हैं।] मैं तुम लोगों के रोंगटे खड़े देख रहा हूँ। इस समय सूर्य आदि ज्योतिर्मय पिण्डों का तेज फीका पड़ गया है। शुभ मृग और पक्षी प्रतिकूल देख पड़ रहे हैं। ये तरह-तरह के उत्पात के चिह्न देखकर मुझे जान पड़ता है कि आज क्षत्रियों का नाश

३० होगा और युद्ध में हम लोगों का विनाश होना भी सम्भव है। वह देखो, प्रज्वलित उल्कापात को
देखकर हमारी सेना के लोग बहुत ही डर गये हैं। हमारे वाहन दुःखित होकर लगातार आँसू
बहा रहे हैं। सैनिकों के ऊपर और चारों ओर गिद्ध मड़रा रहे हैं। हे दुर्योधन, आज तुम
अपने सैनिकों को अर्जुन के बाणों से पीड़ित देखकर अत्यन्त दुःखी होगे। देखो, हमारे सिपाही
उत्साहहीन होकर हारे हुए सैनिकों से भी बढ़कर उदास हो रहे हैं। युद्ध के लिए कोई उत्साहित
नहीं देख पड़ता। सभी के चेहरे उतरे हुए और चित्त घबराये हुए हैं। इस कारण गायों को
३१ घेरकर बीच में कर लो और व्यूह बना करके सावधान हो जाओ।

सैंतालीसवाँ अध्याय

दुर्योधन का उत्तर और युद्ध का निश्चय

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज! अब राजा दुर्योधन ने भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य से कहा—मैं इस बारे में बारम्बार कह चुका हूँ और फिर भी कहता हूँ कि जुआ खेलते समय हम कौरवों और पाण्डवों में यह शर्त हुई थी कि जो लोग हारेंगे उन्हें बारह वर्ष तक वनवास और तेरहवें वर्ष अज्ञातवास करना पड़ेगा। अभी पाण्डवों का वह समय पूरा नहीं हुआ। अज्ञातवास के तेरहवें वर्ष में अभी कुछ बाक़ी हैं। इसलिए अज्ञातवास का समय पूरा होने के पहले ही यदि अर्जुन आये हैं तो पाण्डवों को फिर बारह वर्ष वन में बिताने पड़ेंगे। उन्होंने लोभ के मारे प्रतिज्ञा को तोड़ा है, या हमी भूलते हैं! ठीक-ठीक क्या बात है, सो पितामह भीष्म को मालूम होगी। किसी विषय में दुविधा होने पर सदैव संशय हुआ करता है। कोई विषय अपनी समझ से निश्चित होने पर भी और का और प्रमाणित हो जाता है। धर्मात्मा लोग भी स्वार्थ सोचने के समय भ्रम में पड़ सकते हैं। मतलब यह कि पाण्डवों के अज्ञातवास का समय समाप्त हो चुका है या नहीं, इस बारे में मुझे बहुत सन्देह हो रहा है। इस विषय में पितामह भीष्म ही ठीक बता सकते हैं।

हम लोग यहाँ मत्स्यदेश की सेना से युद्ध करने के लिए आये हैं। यदि मत्स्यदेश की
सेना के साथ हमसे लड़ने अर्जुन आये हैं तो इसमें हमारा कोई अपराध नहीं। मत्स्यदेश के
राजा ने त्रिगर्त्तदेश को बहुत हानि पहुँचाई है। त्रिगर्त्तराज ने, डर के मारे व्याकुल होकर, हमसे
सहायता माँगी। हमने उसको सहायता देना स्वीकार करके उनसे वादा किया कि पहले वे लोग
जाकर सप्तमी को तीसरे पहर राजा विराट की [दक्षिण ओर की] गोशाला पर आक्रमण करें और
१० गायें छीन लें। जब राजा विराट उनके साथ युद्ध करने को चल देंगे तब हम भी अष्टमी को,
सूर्योदय होते ही, विराट के यहाँ पहुँचकर [उत्तर ओर की] गोशाला पर आक्रमण करेंगे और गायें
छीनेंगे। इस समय उसी नियम के अनुसार हम मत्स्यदेश की सेना से युद्ध करने आये हैं।

जान पड़ता है, त्रिगर्त्तदेश की सेना राजा विराट की गायों को हरे लिये आती होगी;
अथवा जो वे युद्ध में हार गये होंगे तो भी आकर हम लोगों से मिलकर मत्स्यदेश की सेना से
युद्ध करेंगे; या यह सामने से राजा विराट ही हमसे लड़ने आ रहे हैं। उन्होंने त्रिगर्त्तसेना को जीत
लिया है, और अपनी सेना-सहित आ रहे हैं। विराट की ओर का यह कोई बड़ा पराक्रमी
वीर हमें जीतने के लिए आ रहा है। अस्तु, चाहे राजा विराट हों, और चाहे अर्जुन, हम लोग
युद्ध अवश्य करेंगे। मैं तो प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। फिर इस अर्जुन के आने पर ये पितामह भीष्म,
गुरु द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, विकर्ण, अश्वत्थामा आदि श्रेष्ठ महारथी लोग अपने रथों पर घबराये
हुए से क्यों बैठे हैं? युद्ध के सिवा और किसी तरह कल्याण नहीं है, यह सोचकर युद्ध के
लिए सब लोग तैयार हो जायँ। चाहे इन्द्र-सहित देवता हों और चाहे स्वयं यमराज, उनसे युद्ध
अवश्य किया जायगा। कोई हमसे गायें छीनने आवेगा तो हम उससे युद्ध करेंगे। बिना युद्ध
किये कौन हस्तिनापुर जा सकता है? [विपक्षी] पैदल हो चाहे घोड़े का सवार, युद्ध-क्षेत्र में
सामना होने पर, कोई मेरे बाणों से नहीं बचेगा।

दुर्योधन की सम्मति सुनकर कर्ण ने कहा—इस समय द्रोणाचार्य की बातों पर ध्यान न
देकर युद्ध की नीति का विधान करना चाहिए। आचार्य पाण्डवों के मत को जानते हैं, इसी से २०
इस तरह की बातें कहकर डरवा रहे हैं। आचार्य को अर्जुन बहुत प्यारे हैं। मुझे तो ऐसा ही
जान पड़ता है। इसी से अर्जुन को आते देखकर ही वे उनकी बड़ाई कर रहे हैं। अर्जुन के घोड़ों
का हिनहिनाना सुनकर ही आचार्य के डर जाने से सब गड़बड़ हो जायगा। इससे ऐसा प्रबन्ध
करना चाहिए जिसमें इस विदेश में, वन के बीच, विपत्ति में पड़ी हमारी सेना (वसन्त में) भ्रान्त
या विपथगामिनी न हो जाय। आचार्य स्वीकार करते हैं कि पाण्डवों पर उन्हें विशेष प्रीति है।
[सम्भव है, अपना मतलब सिद्ध करने के लिए पाण्डव लोग द्रोणाचार्य को तुम्हारे यहाँ छोड़
गये हों;] नहीं तो केवल घोड़ों का हिनहिनाना सुनकर कौन आदमी शत्रु की बड़ाई करने लगेगा?
अपने स्थान में रहते समय या रवाना होते समय हिनहिनाना तो घोड़ों का स्वभाव ही है। हवा
भी सदा चला करती है। नित्य इन्द्रदेव वर्षा किया करते हैं। आकाश में मेघों के प्रकट होते
ही बिजली कड़का करती है। इसमें डर की क्या बात है? इसमें अर्जुन की क्या अलौकिक
वीरता देख पड़ती है? अर्जुन की इतनी बड़ाई आचार्य किसलिए कर रहे हैं? इसका कारण
अर्जुन की भलाई करने की इच्छा या हमारे प्रति आचार्य का द्वेष और रोष का भाव ही हो सकता
है। आचार्य लोग करुणापूर्ण, प्राज्ञ और विनाश को ही देखनेवाले होते हैं। इसलिए घोर
महायुद्ध के अवसर पर इनसे उस बारे में कुछ न पूछना चाहिए। ये लोग विचित्र महलों, सभा
या उपवन आदि स्थानों में विचित्र बातों का वर्णन करके पाण्डित्य दिखा सकते हैं। लोगों के
सामने अनेक प्रकार के अलौकिक काम दिखाना, यज्ञ कराना, शिक्षा देना और सन्धि के

३० अवसर पर निपुणता दिखाना इनका काम है। दूसरे के दोषों की खोज, लोक-चरित्र के ज्ञान, हाथी-
घोड़े-ऊँट-रथ आदि की सवारी, बैल-खच्चर-बकरी-भेड़ आदि की चिकित्सा का ज्ञान, सड़कों और नगर
के द्वारों की बनावट का ज्ञान और रसोई बनाने के दोषों को जानना—इन्हीं कामों में आचार्य-पण्डित
निपुण होते हैं और इन्हीं बातों में इनसे राय लेनी चाहिए। शत्रुओं के गुणों का बखान करनेवाले
आचार्यों और पण्डितों की बात पर ध्यान न देकर इस समय उसी नीति को ग्रहण करना चाहिए
जिससे शत्रु का नाश हो। सेना की नाकेबन्दी करके बीच में सब गायें कर लो। सुरक्षित
३४ व्यूह-रचना के बीच में डटकर हम शत्रुओं से युद्ध करेंगे।

अड़तालीसवाँ अध्याय

कर्ण की उक्ति। अर्जुन को मारने की उमङ्ग

कर्ण ने कहा—मुझे सभी वीर योद्धा डरे, घबराये और युद्ध से विमुख हुए देख पड़ रहे हैं। यह आनेवाला पुरुष विराट हो चाहे अर्जुन [डरने की क्या बात है?] मैं इसे वैसे ही रोक लूँगा जैसे तटभूमि समुद्र को रोक रखती है। मेरे धनुष से छूटे हुए, विषैले साँप-सदृश, तीक्ष्ण बाण खाली नहीं लौटते। चिड़ियाँ जैसे वृक्ष पर जगह-जगह बैठ जाती हैं, वैसे ही मेरे सुवर्ण-मण्डित बाण अर्जुन के शरीर में भर जायँगे। शत्रु लोग इसी घड़ी धनुष से छूटे हुए मेरे बाणों का और ताल ठोंकने का, डंके के शब्द के समान, गम्भीर शब्द सुनेंगे। तेरह वर्ष बीतने पर युद्ध में मुझे परास्त करने के लिए अर्जुन अत्यन्त उत्सुक हैं इसलिए इस युद्ध में वह बड़ी उमङ्ग के साथ मुझसे लड़ेगा। महावीर अर्जुन मेरे बाणों की चोट सहने में समर्थ है। महापराक्रमी धनुर्द्धर अर्जुन त्रिलोकप्रसिद्ध हैं और मैं भी उससे किसी बात में कम नहीं हूँ। मेरे सुवर्णमण्डित बाण आज आकाश में छा जायँगे, जिससे आकाशमण्डल जुगनुओं से जगमगाता सा जान पड़ेगा।

मैं आज महायुद्ध में अर्जुन को मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा और दुर्योधन के ऋण
१० से उरिन हो जाऊँगा। आज बीच राह में ही कटे हुए बाणों के टुकड़े आकाश में उड़ते हुए
पक्षियों के समान शोभा देंगे। जैसे अंकुश से गजराज पीड़ित होता है वैसे ही आज मेरे तीक्ष्ण
बाण इन्द्र के समान तेजस्वी और दृढ़ अर्जुन को व्यथित करेंगे। गरुड़ जैसे सहज ही विषैले
साँप को पकड़ लेते हैं वैसे ही आज मैं सब अस्त्रों को जाननेवाले महारथी अर्जुन को क़ाबू में
कर लूँगा। जैसे बिजली से शोभित मेघ पानी बरसा करके प्रबल आग को बुझा देते हैं वैसे ही
मैं आज रथ पर चढ़कर अपने बाणों की वर्षा से शत्रु-क्षयकारी पराक्रमी अर्जुन को नष्ट करूँगा।
जैसे साँप बाँबी में घुस जाते हैं वैसे ही आज मेरे बाण अर्जुन के शरीर में घुसेंगे। पर्वत जैसे
कनैर के फूलों से शोभित हो वैसे ही आज अर्जुन का शरीर मेरे तीक्ष्ण सुवर्णपुङ्ख बाणों से
शोभित होगा। मैंने महर्षिश्रेष्ठ परशुराम से अस्त्र-शस्त्र चलाने की विद्या सीखी है। उन अस्त्रों

के बल से और अपने पौरुष के प्रभाव से मैं इन्द्र से भी भिड़ सकता हूँ। आज अर्जुन की ध्वजा के ऊपर स्थित वानर मेरे भल्ल नामक बाण की चोट से अत्यन्त व्यथित होकर भयानक शब्द करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ेगा। अर्जुन के साथी और लोग भी मेरे बाणों से पीड़ित होंगे और
आकाश को गुंजा देनेवाला घोर शब्द करते हुए इधर-उधर भाग जायँगे। अर्जुन को रथ से २०
नीचे गिराकर आज मैं दुर्योधन के हृदय में बहुत दिनों से चुभे हुए काँटे को जड़ से उखाड़कर फेंक दूँगा। घोड़ों के मरने और रथ के टूटने से पुरुषार्थी अर्जुन को कौरव आज क्रोधित साँप की तरह लम्बी साँसें छोड़ते देखेंगे। कौरव लोग चाहे गायें लेकर चले जायँ और चाहे अपने
रथों पर बैठकर मेरे और अर्जुन के इस घोर युद्ध को देखें। २३

उनचासवाँ अध्याय

कृपाचार्य की सम्मति

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, कर्ण की ये बातें सुनकर नीति-शास्त्र के ज्ञाता, और कौरवों के आचार्य, कृपाचार्य ने कहा—हे राधा के पुत्र कर्ण, तुमको युद्ध बहुत पसन्द है। किन्तु तुम यह नहीं सोचते कि अपना काम कैसे बनेगा और आगे चलकर उसका क्या फल होगा। शास्त्र में बहुत प्रकार के कपटयुद्धों का उल्लेख है। किन्तु पण्डितों ने उन युद्धों को पापयुद्ध माना है। देखो, देश और काल का विचार करके युद्ध करने से जय प्राप्त होती है। परस्पर की अनुकूलता और सम्मति से काम करने पर वह ठीक होता है। जो देश और समय उपयुक्त नहीं है उसमें युद्ध करने से अनर्थ उपस्थित होता है। जैसे कोई रथ बनानेवाला रथ लाकर कहे कि यह रथ बहुत ही सुदृढ़ है, इस पर बैठकर युद्ध करने से तुम देवताओं को भी जीत सकते हो, तो केवल उसके इस कहने पर भरोसा करके कोई बुद्धिमान् युद्ध करने के लिए तैयार न हो जायगा; वैसे ही केवल तुम्हारे कहने पर भरोसा करके, देश-काल आदि का विचार न करके, हम लोगों का युद्ध के लिए तैयार हो जाना ठीक नहीं। सब बातों पर अच्छी तरह विचार करके देखने से मुझको इस समय यहाँ अर्जुन के साथ युद्ध करना किसी तरह अच्छा नहीं जँचता। अर्जुन अकेले ही युद्ध में शत्रुओं को नीचा दिखा सकते हैं। उन्होंने अकेले ही उत्तर-कुरु देश पर विजय प्राप्त की है, अकेले ही खाण्डव वन देकर अग्नि को तृप्त किया है और अकेले ही पाँच वर्ष तक ब्रह्मचर्य-पालन करते हुए उग्र तप किया है। अर्जुन ने अकेले ही सुभद्रा को हर लाकर द्वन्द्व-युद्ध के लिए बलराम को ललकारा है। महावीर अर्जुन ने अकेले ही किरात-रूप-धारी भगवान् शङ्कर से युद्ध किया है। वन में जब जयद्रथ द्रौपदी को हर ले चला था तब अर्जुन ने अकेले ही उसको हराया और द्रौपदी को उसके हाथ से छुड़ाया है। अर्जुन ने अकेले ही स्वर्ग में पाँच वर्ष तक रहकर इन्द्र से सब अस्त्र सीखे हैं। उन्होंने अकेले ही सब शत्रुओं को

जीतकर कुरुवंश का यश बढ़ाया है। उन महावीर ने अकेले ही संग्राम में अजेय सेना-सहित
गन्धवराज चित्ररथ को हराया है। स्वयंवर में अर्जुन ने अकेले ही सब वीर क्षत्रियों को
जीतकर द्रौपदी को प्राप्त किया, [उस समय तुम कहाँ चले गये थे ?] अर्जुन ने अकेले ही
उन निवातकवच और कालकेय नाम के राक्षसों को मारा है, जिन्हें देवता भी नहीं मार सकते
१० थे। महावीर अर्जुन ने अकेले ही अपने पौरुष से ऐसे बड़े-बड़े अलौकिक काम किये हैं। किन्तु
कर्ण, तुमने अकेले कब कौन सा ऐसा बड़ा और अलौकिक काम किया है ? श्रेष्ठ वीर अर्जुन
ने सब राजाओं को जिस ख़ूबी से हराया है उसे देखने से जान पड़ता है कि स्वयं इन्द्र भी उनसे
लोहा नहीं ले सकते। जो उनसे युद्ध करना चाहे उसके (पागलपन) की चिकित्सा होनी चाहिए।
हे सूतपुत्र, तुम [महातेजस्वी अर्जुन के साथ युद्ध करने की इच्छा प्रकट करके मानों] दाहना
हाथ बढ़ाकर क्रोधित विषैले नाग के मुँह में उँगली डालना और उसके दाँत उखाड़ना चाहते हो।
तुम अकेले, अंकुश हाथ में लिये बिना, महावन में स्थित मस्त हाथी के ऊपर चढ़कर नगर के
भीतर जाना चाहते हो। तुम देह में घी पोतकर, वल्कल पहनकर, घी, मेदा, चर्बी आदि की
आहुतियों से प्रज्वलित आग के भीतर होकर चलना चाहते हो। अपने अङ्गों को बन्धन से जकड़-
कर, गले में बड़ी भारी शिला बाँधकर, दोनों हाथों से पैरता हुआ कौन पुरुष समुद्र के पार जा
सकता है ? जिसने अस्त्र-शिक्षा नहीं पाई वह दुर्बल पुरुष यदि अद्वितीय अस्त्र-निपुण किसी
बलवान् पुरुष से लड़ना चाहे तो वह उसकी दुर्बुद्धि नहीं तो क्या है ? हम लोगों के द्वारा
छले गये अर्जुन इस समय, तेरह वर्ष वन में रहकर, प्रतिज्ञा के बन्धन से छूट गये हैं। बन्धन से
छूटे हुए सिंह की तरह क्या वे हमारा नाश न कर डालेंगे ? कुएँ में छिपी हुई आग के समान यहाँ
एकान्त में ठहरे हुए महावीर अर्जुन के पास आकर हम बड़े भारी डर और सङ्कट में पड़ गये
हैं। इसलिए हम लोग मिलकर अर्जुन से युद्ध करें। हम लोग अस्त्र-शस्त्र-धारी सैनिकों की
२० व्यूहरचना करके युद्ध करें। द्रोण, दुर्योधन, भीष्म, अश्वत्थामा, तुम और मैं, ये छहों महारथी
मिलकर यदि इन्द्र-सदृश पराक्रमी अर्जुन के साथ युद्ध करेंगे। तभी सामना कर सकेंगे। हे कर्ण, तुम
अकेले अर्जुन के साथ भिड़ने का साहस भूलकर भी न करना। पहले देवताओं और असुरों का जैसा
२१ समर हुआ था वैसा ही घोर युद्ध इस समय अर्जुन के साथ हम लोगों का होगा।

पचासवाँ अध्याय

अश्वत्थामा के वचन

अब अश्वत्थामा ने [दुर्योधन की ओर, देखकर] कहा—हे कर्ण, न तो अभी गायों पर हमारा अधिकार हुआ है और न हम लोग मत्स्यदेश की सीमा के बाहर जा सके हैं; हस्तिनापुर जाना तो दूर की बात है। फिर तुम क्यों इस प्रकार अपनी लड़ाई—घमण्ड की बातें—कर रहे हो ?

जो पण्डित, महाबली और पराक्रमी पुरुष हैं वे अनेक युद्धों में जय और बहुत सा धन पाकर तथा प्रबल सेना को जीतकर भी इस तरह डींग नहीं मारते। आग चुपकी रहकर ही सब चीज़ों को भस्म कर देती है, सूर्यदेव चुपके रहकर ही सब लोकों में उजाला पहुँचाते हैं और पृथ्वी भी चुपचाप सब लोकों को धारण किये हुए है। विधाता ने चारों वर्णों की वृत्ति निश्चित कर दी है। उन्हीं वृत्तियों से उन्हें धनोपार्जन करना चाहिए। उन्हें करने से वे दोषी नहीं होते। ब्राह्मणों को स्वाध्यायपाठ में लगे रहकर यज्ञ करना-कराना चाहिए। क्षत्रियों को धनुष-बाण धारण करके यज्ञ करना चाहिए; उन्हें यज्ञ कराने का अधिकार नहीं। वैश्यों को महाजनी, गोपालन और खेती के द्वारा धन-उपार्जन करके यज्ञ, दान आदि करना चाहिए। शूद्रों को विनीत भाव से ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों की सेवा ठीक-ठीक करनी चाहिए। महानुभाव पुरुष धर्म के अनुसार सारी पृथ्वी के राजा होकर भी गुरुजनों का, वे गुणहीन ही क्यों न हों, अपमान नहीं करते। इन निर्दय नीच प्रवृत्तिवाले दुर्योधन के सिवा और कौन क्षत्रिय कपट के जुए से राज्य पाकर सन्तुष्ट हो सकता है ? कौन आदमी बहेलिये की तरह छल और धोखेबाज़ी से धन-वैभव प्राप्त करके अपनी बड़ाई करेगा ? जिनका राज्य-वैभव तुमने हर लिया है उन पाण्डवों में से युधिष्ठिर,
भीम, अर्जुन, नकुल या सहदेव, किसको तुमने आमने-सामने युद्ध में हराया है ? कौन सा युद्ध १०
करके तुमने पहले इन्द्रप्रस्थ के राज्य पर अधिकार किया था ? किस युद्ध में हराकर तुम एकवस्त्रधारिणी, रजस्वला, द्रौपदी को सभा में ले आये थे ? सारस्रूप काष्ठ की इच्छा रखनेवाला जैसे चन्दन के पेड़ को काटता है वैसे ही तुमने धन के लोभ से धर्म की जड़ काट डाली है। तुमने कपट का जुआ खेलकर जो द्रौपदी के अपमान का तुच्छ कर्म किया है वही इस अनर्थ की जड़ है। उस समय महात्मा विदुर ने तुमसे क्या कहा था कि यह जुआ विनाश की जड़ है। उस बात को याद करो। मनुष्यों की कौन कहे, यथाशक्ति कीड़े-मकोड़े और चींटियों तक को क्रोध होता है। मनुष्य के भी सहने की एक हद होती है। द्रौपदी के उन क्लेशों को अर्जुन कभी नहीं सह सकते। कौरवों के नाश के लिए ही अर्जुन ने जन्म लिया है। तुम ऐसे समझदार और बुद्धिमान् होकर आचार्य (द्रोण) को ऐसी बातें कह रहे हो ! अर्जुन हम लोगों का नाश करके अपने वैर का बदला अवश्य चुकावेंगे। देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस आदि किसी के साथ युद्ध करने से अर्जुन पीछे नहीं हट सकते। समरभूमि में क्रुद्ध होकर अर्जुन जिस पर हमला करेंगे वह, वह गरुड़ के वेग से टूटे हुए वृक्ष की तरह, मरकर गिर पड़ेगा। हे कर्ण, बल और पराक्रम में अर्जुन तुमसे कई बातों में श्रेष्ठ हैं। वे धनुर्विद्या में इन्द्र के समान और युद्ध में श्रीकृष्ण के तुल्य हैं। उनकी बड़ाई कौन न करेगा ? ऐसा अर्जुन के समान दूसरा वीर पुरुष कौन है जो दैवबल के द्वारा देवताओं से और बाहुबल के द्वारा मनुष्यों
से युद्ध कर सके और अस्त्रों के द्वारा अस्त्रों को नष्ट कर सके ? २०

आचार्य लोग शिष्य के ऊपर पुत्र का सा स्नेह रखते हैं। इसी कारण महात्मा
द्रोणाचार्य की प्रीति अर्जुन पर रहती है। हे दुर्योधन ! तुम जैसे जुआ खेले, जैसे द्रौपदी को
सभा में ले आये और जैसे इन्द्रप्रस्थ का राज्य तुमने हर लिया, वैसे ही इस समय तुम अर्जुन
के साथ युद्ध करो। क्षत्रियधर्म में निपुण, छल करके जुआ खेलनेवाले, तुम्हारे मामा गान्धार-
राज शकुनि इस समय युद्ध करें। अर्जुन के गाण्डीव धनुष से तीक्ष्ण बाण ही फेंके जाते
हैं, पाँसे नहीं। अर्जुन के गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाण पहाड़ को भी फाड़ सकते हैं; वे
व्यर्थ नहीं जाते। प्रबल आँधी, मृत्यु और आग, ये जड़-मूल से नष्ट चाहे न करें, किन्तु कुपित
अर्जुन नाम-निशान तक बाक़ी न छोड़ेंगे। तुमने जैसे शकुनि के द्वारा रक्षित होकर सभा में
जुआ खेला था वैसे ही इस समय शकुनि की सहायता से अर्जुन से लड़ो। और-और योद्धा
भी अपनी इच्छा के अनुसार युद्ध करें। मैं तो अर्जुन के साथ कभी युद्ध न करूँगा। हाँ,
२८ जो स्वयं विराट आवें तो मैं उनके साथ युद्ध करूँगा।

इक्यावनवाँ अध्याय

पितामह भीष्म की सलाह

भीष्म ने कहा—हे दुर्योधन, अश्वत्थामा और कृपाचार्य ठीक कह रहे हैं। और कर्ण
केवल क्षत्रियधर्म का ख़याल करके युद्ध करना चाहते हैं। समझदार को अपने आचार्य का अप-
मान न करना चाहिए। मेरी राय है कि देश और काल दोनों को देखकर युद्ध करना चाहिए।
जिसके पाँच-पाँच शत्रु सूर्य के समान तेजस्वी वीर हों और फिर उनका अभ्युदय हो रहा हो तो
इस दशा में भला किस बुद्धिमान् की बुद्धि ठिकाने रह सकती है ? धर्मात्मा पुरुष भी स्वार्थ के
कारण व्याकुल हो जाते हैं। हे दुर्योधन, तुम्हें पसन्द हो तो मैं इस बारे में अपनी सलाह देता
हूँ, सुनो। उत्साहित करने के लिए ही कर्ण ने युद्ध की इच्छा प्रकट की है। इसलिए द्रोणा-
चार्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामा आदि को क्षमा करना चाहिए। इस समय बड़ा भारी काम
करना है। अर्जुन के आ जाने से इस समय आपस में विरोध करना ठीक नहीं। जैसे सूर्य में
प्रभा नित्य है वैसे ही आप लोग अस्त्रविद्या में कुशल हैं। और जैसे चन्द्रमा में चाँदनी सदा
बनी रहती है इसी तरह आप जैसे आचार्यों में ब्राह्मणत्व और ब्रह्मास्त्र दोनों स्थित हैं। भरतकुल
के आचार्य द्रोण, कृपाचार्य और अश्वत्थामा के सिवा और कहीं चारों वेदों तथा क्षत्रिय-तेज का
एकत्र समावेश नहीं देख पड़ता। वेदान्त, पुराण और इतिहास के ज्ञान में परशुराम के सिवा
१० और कौन द्रोणाचार्य से अधिक है ? बुद्धिमानों का कहना है कि सैनिकों के लिए जितनी
विपत्तियाँ हो सकती हैं उनमें 'भेद' ही सबसे बढ़कर है। इसलिए आचार्यपुत्र क्षमा करें। यह
भेद का समय नहीं है। सबका मिलकर अर्जुन से लड़ना ही ठीक है।

अश्वत्थामा ने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ, आप हमारे पूजनीय हैं । आपका हमसे क्षमा के लिए कहना ठीक नहीं । गुरु (द्रोण) ने क्रोध के आवेश में अर्जुन के गुणों का बखान किया था । न्याय यही है कि शत्रु के भी गुणों का वर्णन करना चाहिए और गुरु के भी दोषों को नहीं छिपाना चाहिए। सब तरह सब यत्नों से पुत्र और शिष्य को हित का उपदेश करना चाहिए।

दुर्योधन ने कहा—हे आचार्य, क्षमा कीजिए। आपके सन्तुष्ट रहने से ही हम सबका भला होगा। वैशम्पायन जी कहते हैं कि इसके बाद दुर्योधन, कर्ण, भीष्म और कृपाचार्य, ये सब महात्मा द्रोण को मनाने लगे। तब द्रोणाचार्य ने कहा—मैं तो महात्मा भीष्म के वचन सुन कर ही प्रसन्न हो गया। उन्होंने भीष्म से कहा—हे पितामह, इस समय वह नीति सोचनी चाहिए जिससे अर्जुन दुर्योधन पर आक्रमण न कर सकें [और महाराज दुर्योधन शत्रु के हाथ में न पड़ जायँ]। प्रतिज्ञा के अनुसार तेरहवाँ वर्ष पूरा हुए बिना कभी अर्जुन प्रकट नहीं हो सकते। महावीर अर्जुन आज गायें लौटाये बिना कभी न मानेंगे। इसलिए ऐसा उपाय करो, जिसमें अर्जुन महाराज दुर्योधन को और उनकी सेना को नष्ट न कर सकें। पहले दुर्योधन ने प्रतिज्ञा-पालन के विषय में जो कुछ कहा था उसे याद करके, आप अपना मत प्रकट कीजिए। २२

बावनवाँ अध्याय

पितामह भीष्म की सम्मति

भीष्म ने कहा—काष्ठा, कला, मुहूर्त्त, दिन, पक्ष, महीना, ग्रह, नक्षत्र, ऋतु और वर्ष ये सब कालचक्र (वर्ष) के छोटे और बड़े अंश हैं। समय के बढ़ने-घटने से और नक्षत्र-मण्डल की गति के कुछ व्यतिक्रम से हर पाँचवें वर्ष दो महीने अधिमास (मलमास) के बढ़ते हैं। उन्हीं मलमासों को जोड़कर आज तेरह वर्ष पूरे होकर पाँच महीने छः दिन अधिक हो गये हैं। पाण्डवों ने जो प्रतिज्ञा की थी वह पूरी हो चुकी, इसी से अर्जुन तुम्हारे सामने आये हैं। पाँचों पाण्डव धर्म और अर्थ के जानकार हैं; खासकर युधिष्ठिर उनके मुखिया हैं। इसलिए वे धर्म के विषय में अपराधी कैसे हो सकते हैं? वे लोभहीन हैं और कठिन साधना कर चुके हैं। वे अधर्म करके राज्य पाने की आशा नहीं रखते। वे धर्म के बन्धन में बँधे हुए हैं, इसी लिए क्षात्र धर्म से विचलित नहीं हुए; नहीं तो वे उसी समय अपना पराक्रम दिखला देते। वे मौत के मुँह में सहज ही जा सकते हैं, पर झूठ की राह में पैर नहीं बढ़ा सकते। जिस वस्तु पर उनका हक़ है उसको वे पुरुषश्रेष्ठ कभी नहीं छोड़ सकते। यदि इन्द्र भी वह वस्तु न देना चाहें तो वे यथासमय वह वस्तु ले ही लेंगे। उन लोगों में ऐसी ही शक्ति है। इस १०

समय हम लोगों के श्रेष्ठ शस्त्रधारी अर्जुन से युद्ध करना होगा। इसलिए तुम लोग झटपट सज्जन-सम्मत कल्याणकर कार्य करो। हाथ से मौक़ा न जाने पावे। हे दुर्योधन, युद्ध में यह निश्चय नहीं कि हमारी ही जीत होगी। युद्ध में एक जीतता है तो दूसरा हारता है। इसमें चिन्ता की बात क्या है? अर्जुन सिर पर आ गये हैं, इसलिए इस समय जी चाहे तो युद्ध करो, नहीं तो धर्म के अनुसार राज्य देकर सन्धि कर लो।

दुर्योधन ने कहा—पितामह, मैं पाण्डवों को राज्य कभी न दूँगा। आप तुरन्त युद्ध की तैयारी कीजिए। भीष्म ने कहा—हे दुर्योधन, मैं जो कहता हूँ उसे सुनो और जी चाहे तो उस पर ध्यान दो। तुम इस सारी सेना के झटपट चार विभाग कर डालो। एक दल के साथ तुम अपनी राजधानी को चले जाओ। सेना का दूसरा दल सब गायों को लेकर जाय। उसके बाद बची हुई आधी सेना साथ लेकर कृपाचार्य, कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा और मैं, हम सब—अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर—अर्जुन के साथ युद्ध करेंगे। राजा विराट या स्वयं इन्द्र भी आ जायँ तो मैं [अर्जुन को] वैसे ही रोक रक्खूँगा जैसे तटभूमि समुद्र के वेग को रोके रहती है।

वैशम्पायन कहते हैं—सब लोगों ने महात्मा भीष्म की इस सम्मति का अनुमोदन किया।
२० कुरुपति दुर्योधन ने भीष्म की आज्ञा से ही सब काम किया। पितामह ने पहले दुर्योधन को रवाना
कर दिया, फिर गायें भेज दीं। फिर सेनापतियों को तैनात करके, व्यूहरचना करने के लिए, वे
द्रोण से कहने लगे—हे आचार्य, आप बीच में रहिए। अश्वत्थामा बायें बाज़ू की ओर कृपाचार्य दाहने
२३ बाज़ू की रक्षा करें। सूतपुत्र कर्ण आगे बढ़कर अर्जुन को रोकने के लिए तैयार रहेंगे, और मैं
सबके पीछे रहकर सँभाले रहूँगा।

तिरपनवाँ अध्याय

कौरव-दल पर अर्जुन का आक्रमण

वैशम्पायन कहते हैं—राजन, रथ के पहियों की घरघराहट से चारों दिशाओं को पूर्ण करते हुए महावीर अर्जुन एकाएक कौरव-सेना के बीच में आ पहुँचे। कौरवों को उनकी ध्वजा का ऊपरी हिस्सा स्पष्ट देख पड़ने लगा। गाण्डीव का और रथ के पहियों का शब्द साफ़ सुन पड़ने लगा। [आये हुए अर्जुन को देखकर] गुरु द्रोणाचार्य कहने लगे—वह देखो, दूर से ही अर्जुन के रथ की पताका देख पड़ती है; रथ के पहियों का शब्द भी सुन पड़ता है। [ध्वजा के अग्रभाग में स्थित] वानर महाभयङ्कर शब्द कर [के सैनिकों को दहला] रहा है। रथ पर बैठे हुए अर्जुन बार-बार धनुष की डोरी बजा रहे हैं। देखो, ये दो बाण एक साथ आकर मेरे पैरों

के पास गिरे, और दो बाण मेरे कान के पास से होकर चले गये। पहले दो बाणों से अर्जुन ने मुझे प्रणाम किया है। दुबारा के दोनों बाणों द्वारा उन्होंने मुझसे युद्ध के लिए अनुमति माँगी है। उन्होंने वनवास के समय कठिन साधना की है; जो हो, बहुत दिनों के बाद [प्रिय शिष्य] अर्जुन को आज देखा है। बाण, मनोहर तल-त्राण, तरकस, शङ्ख, कवच, किरीट, खड्ग और धनुष धारण किये रथ पर स्थित अर्जुन इस समय प्रज्वलित अग्नि के समान जान पड़ते हैं।

अर्जुन ने [कौरवों को युद्धभूमि में स्थित देखकर उत्तर से] कहा—कुमार, जितनी दूरी पर बाण जाकर गिरता है उतने फ़ासले पर ले चलकर मेरा रथ खड़ा कर दो। मैं देखना चाहता हूँ कि इस सेना
में कुरुकुलाधम दुर्योधन कहाँ है। इस १०
समय अन्य योद्धाओं के साथ युद्ध करने की ज़रूरत नहीं। एक उस अभिमानी दुर्योधन के हारने से ही सब हार जायँगे। वह देखो आचार्य द्रोण हैं, उनके पीछे अश्वत्थामा हैं। वे कृपाचार्य हैं, वह कर्ण है। वे [सबके पीछे] भीष्म हैं। यहाँ पर मुझे दुर्योधन नहीं देख पड़ता। जान पड़ता है, वह गायें लेकर प्राण बचाकर दक्षिण-मार्ग से भागा जा रहा है। व्यर्थ संग्राम की ज़रूरत नहीं। इस कुरु-सेना को छोड़कर उसी के पीछे चलो। उस हराने से सहज ही हम सब गायों को फेर लेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं—तब उत्तर कुमार ने, अर्जुन के कहे अनुसार, उस ओर घोड़ों को हाँका जिधर दुर्योधन जा रहा था। अर्जुन का मतलब समझकर कृपाचार्य ने द्रोणाचार्य से कहा—आचार्य, महाराज दुर्योधन पर आक्रमण करने को अर्जुन जा रहे हैं। इस समय हम सबको मिलकर महाराज दुर्योधन की रक्षा करनी चाहिए। इन्द्र, श्रीकृष्ण, अश्वत्थामा और आपके सिवा कोई भी अकेला क्रुद्ध अर्जुन से युद्ध नहीं कर सकता। गायें अथवा बहुत सा धन लेकर हम क्या करेंगे? इस समय हमें दुर्योधन की ही रक्षा करनी चाहिए। यदि हम सहायता न करेंगे तो महाराज दुर्योधन शीघ्र ही, बिना मल्लाह की नाव की तरह, अर्जुन के बाहुबल के समुद्र में डूब जायँगे।

इधर अर्जुन ने वहाँ पहुँचकर ज़ोर से सबको अपना नाम सुना दिया। इसके बाद वे कौरव-सेना पर टीड़ीदल के समान असंख्य तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे। अर्जुन के बाणों से सारी पृथ्वी और आकाशमण्डल छा गया। कौरवों की सेना अत्यन्त व्याकुल हो गई; किन्तु कोई भागा नहीं, बल्कि वे सब मन ही मन अर्जुन के लगातार बाण बरसाने की बड़ाई करने लगे। इसी अवसर पर अर्जुन ने शत्रुओं के रोंगटे खड़े कर देनेवाला शंख बजाया और गाण्डीव धनुष की डोरी का शब्द किया। ध्वजा के ऊपर स्थित भूतगण भी भयङ्कर शब्द करने लगे। शंखनाद, रथ के पहियों की घरघराहट, गाण्डीव की टङ्कार और ध्वजा पर स्थित अलौकिक भूतों की कराल किलकारियों से पृथ्वीमण्डल काँप उठा। गायें डरकर पूँछ उठाकर दक्षिण दिशा [अपने नगर] की ओर लौट पड़ीं। [अर्जुन ने गोपालों से कहा—गायें लेकर तुम नगर को जाओ। तब वे लोग गायें लेकर नगर की ओर लौट पड़े।]

चौवनवाँ अध्याय

कर्ण का हारकर युद्धक्षेत्र से भागना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, धनुष धारण करनेवाले वीरों में प्रधान अर्जुन शत्रुओं को हराकर, गायों को छुड़ाकर, युद्ध करने के लिए फिर दुर्योधन की ओर बढ़े। कौरवों की सेना के लोगों ने जब देखा कि गायें राजा विराट की राजधानी को लौटी जा रही हैं और अर्जुन सफलता प्राप्त करके दुर्योधन की ओर बढ़े जा रहे हैं, तब वे एकाएक अर्जुन को रोकने के लिए उनकी ओर झपटे। बहुतेरी विचित्र ध्वजाओं से शोभित कौरव-सेना के व्यूह को देखकर महावीर अर्जुन ने उत्तर से कहा—हे राजकुमार, सुनहरी लगामोंवाले इन सफ़ेद घोड़ों को तुरन्त इस ओर बढ़ाओ, तो सहज ही इस कौरवों के व्यूह के पास पहुँचें। वह देखो, सूतपुत्र कर्ण मुझसे युद्ध करने के लिए तैयार खड़ा है। यह दुरात्मा, दुर्योधन का आश्रय पाकर, बल के घमण्ड पर फूला हुआ है। तुम शीघ्र मेरा रथ इसके पास ले चलो।

तब विराटकुमार उत्तर, वायु के समान तेज़, सफ़ेद घोड़ों को बढ़ाकर शत्रुसेना का नाश करते हुए युद्ध के मैदान में पहुँचे। उधर चित्रसेन आदि वीर भी कर्ण की सहायता के लिए अर्जुन के ऊपर बाण बरसाने लगे। पुरुषश्रेष्ठ वीर अर्जुन धनुष से छूटे हुए बाणों की आग से, महावन के समान, शत्रुसेना को भस्म करने लगे। इस प्रकार घोर संग्राम छिड़ जाने पर रथ पर चढ़ा हुआ विकर्ण अर्जुन के पास आकर उन पर बाण चलाने लगा। तब शत्रुनाशन अर्जुन ने भी दृढ़ डोरीवाले सुनहरे धनुष को चढ़ाकर ऐसे बाण मारे कि विकर्ण बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा; उसके रथ की ध्वजा भी कटकर गिर पड़ी। होश आने पर विकर्ण प्राण लेकर फुर्ती के साथ युद्ध-भूमि से भाग गया।

[विकर्ण के भाग जाने पर महावीर अर्जुन के इस अलौकिक काम को देखकर] अत्यन्त क्रोधित हो शत्रुन्तप नाम का वीर सामने आया, और अर्जुन पर बाणों की वर्षा करने लगा। उसके बाणों के प्रहार से अर्जुन को बड़ा क्रोध चढ़ आया। उन्होंने उसी समय उसको पाँच और सारथी को दस बाण मारे। अर्जुन के बाणों से घायल शत्रुन्तप, पर्वत के शिखर पर से आँधी से टूटकर गिरे हुए वृक्ष की तरह, युद्धभूमि में गिर पड़ा। महावीर अर्जुन के बाणों से पीड़ित और वीर भी, आँधी से काँपते हुए महावन की तरह, काँपने लगे। जो वीर इन्द्र के समान पराक्रमी, लोह-कवच-धारी, हिमालय पर उत्पन्न गजराजों के समान डील-डौलवाले थे वे अर्जुन के बाणों से मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे। गर्मियों में धूप के समय प्रचण्ड आग जैसे इधर-उधर वन को जलाती फिरती है वैसे ही पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन शत्रुओं को चौपट करते हुए इधर-उधर विचरने लगे। वसन्त ऋतु में हवा जैसे वृक्षों के पत्तों को गिराती है और बादलों को इधर-उधर हटा देती है वैसे ही महाबली अर्जुन ने दम भर में शत्रु-सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया। अब उन्होंने शीघ्र जाकर उन घोड़ों को मार डाला जो कर्ण के भाई के रथ में जुते हुए थे। साथ ही एक तीक्ष्ण बाण से उसका सिर भी काट गिराया।

अपने भाई का मारा जाना देखकर कर्ण को बड़ा क्रोध हुआ। सिंह जैसे किसी साँड़ की ओर झपटे वैसे ही पराक्रमी कर्ण अर्जुन की ओर दौड़ा। पास पहुँचकर, बारह बाण मारकर, कर्ण ने अर्जुन को और उनके घोड़ों को घायल किया। इसके सिवा अर्जुन के सारथी उत्तर
के हाथ में भी घाव कर दिया। तब गरुड़ जैसे महावेग से साँप के ऊपर हमला करें वैसे ही २०
अर्जुन आक्रमण करने के लिए कर्ण के सामने आये। कौरव लोग उन महाउत्साही वीरों का युद्ध देखने के लिए वहाँ पर आ गये। प्रधान योद्धा अर्जुन ने कुपित होकर इतने बाण मारे कि क्षण भर में कर्ण, उनका रथ और उनके घोड़े सब छिप गये। भीष्म आदि महायोद्धा भी अपने रथ, घोड़े, हाथी आदि वाहनों-सहित अर्जुन के बाणों से छिप गये। वीर कर्ण ने भी अपने बाणों से अर्जुन के बाणों को बीच में ही काट डाला। तब धनुष-बाण धारण किये हुए कर्ण प्रज्वलित अग्नि के समान शोभित हुआ। उसको इस प्रकार अद्भुत कर्म करके निडर खड़े देखकर कौरव लोग अत्यन्त आनन्द के मारे तालियाँ पीटकर, शङ्ख-नगाड़े आदि बाजे बजाकर, बड़ाई करने लगे। फिर कर्ण ने गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुन की ओर देखकर सिंहनाद किया। तब अर्जुन ने कर्ण को उसके रथ, सारथी और घोड़ों समेत बाणों से पीड़ित किया। इसके सिवा भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और अश्वत्थामा पर भी अर्जुन बाणों की विकट वर्षा करने लगे। कर्ण ने भी बाणों की वर्षा करके अर्जुन को छा लिया। किन्तु अर्जुन ने शीघ्र ही उन बाणों को काट डाला। तब रथ पर सवार वे दोनों वीर मेघ के भीतर
से निकले हुए चन्द्रमा और सूर्य के समान जान पड़ने लगे। ३०

अब कर्ण ने फुर्ती के साथ अर्जुन के घोड़ों को बाणों से घायल करके उनके सारथी पर और ध्वजा पर तीन-तीन बाण मारे। सूर्यनारायण जैसे एकदम अपनी किरणें जगत् में फैला देते हैं वैसे ही क्रुद्ध वीर अर्जुन ने, सोकर उठे सिंह की तरह गरजकर, बाणों की वर्षा से कर्ण के रथ को छिपा दिया। फिर तरकस से भल्ल बाण निकालकर उनके प्रहार से कर्ण को विह्वल कर दिया। अर्जुन के तीक्ष्ण बाण कर्ण की भुजा, सिर, जाँघ, मस्तक, गरदन आदि सब अङ्गों में घुस गये। तब जैसे एक हाथी दूसरे हाथी से हारकर जी छोड़कर भाग जाता है वैसे ही महावीर कर्ण, वज्रप्रहार से भी कठिन बाणों की चोट
३६ से अत्यन्त व्यथित होकर, युद्धभूमि छोड़कर भाग गया।

पचपनवाँ अध्याय

अर्जुन का अन्य वीरों के साथ युद्ध करने जाना

वैशम्पायन कहते हैं—कर्ण के भाग जाने पर, अपनी-अपनी सेना साथ लिये हुए, दुर्योधन आदि वीर अर्जुन पर आक्रमण करके चारों ओर से बाणों की वर्षा करने लगे। तटभूमि जैसे समुद्र के वेग को रोकती है वैसे हँसते हुए निडर अर्जुन ने उस कौरव-सेना के वेग को रोक लिया। अब वे अपने दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करने लगे। जैसे सूर्य की किरणें पृथ्वी पर सर्वत्र फैल जाती हैं वैसे ही गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाण दसों दिशाओं में छा गये। अर्जुन अपने पैने बाणों से शत्रुओं के रथों को तोड़ने और उनके हाथी-घोड़े आदि वाहनों को घायल करने लगे। रथ चलाने की विद्या में उत्तर की निपुणता, घोड़ों की चाल, अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग का कौशल और अर्जुन की अत्यन्त विचित्र शक्ति देखकर कौरव उनकी बहुत-बहुत बड़ाई करने लगे। उस समय उन्हें जान पड़ने लगा कि प्रलयकाल की भयानक आग सारी प्रजा को भस्म कर रही है। कहने का मतलब यह कि उस समय अर्जुन का रूप ऐसा था कि शत्रु लोग उन्हें आँख भरकर देख नहीं सकते थे।

पहाड़ पर ठहरे हुए बादलों पर सूर्य की किरणें पड़ने से जैसी शोभा होती है, फूले हुए अशोक के फूलों से वनभूमि जैसी मनोहर शोभा धारण करती है, वैसे ही अर्जुन के बाणों से घायल कौरवों की सेना शोभा दे रही थी। अर्जुन के बाण शत्रुओं की सोन-चम्पे की माला, छत्र, पताका आदि को काटकर आकाश में ले जाते थे और वे हवा के कारण आकाश-मार्ग में कुछ
१० देर तक ठहरे रहते थे। अर्जुन के बाणों से 'जोत' कट जाने पर, 'जोड़ी' से अलग होकर, डर से बिचककर, घोड़े रथों को इधर-उधर घसीटते फिरते थे। अर्जुन ने हाथियों को, बाणों से अङ्ग-प्रत्यङ्ग छिन्न-भिन्न करके, युद्धभूमि में गिरा दिया था। उन हाथियों की लोथों से व्याप्त युद्धभूमि बादलों से घिरे आकाश के समान जान पड़ने लगी। राजन्, प्रलय के समान

प्रज्वलित कालाग्नि जैसे चराचर जगत् को जलाता है वैसे ही अर्जुन अपने अस्त्रों के प्रभाव और बाहु-बल से शत्रु-सेना का नाश कर रहे थे।

अर्जुन के अस्त्रों को प्रभा देखकर और गाण्डीव का शब्द तथा ध्वजा पर स्थित भूतों एवं वानर का भयानक नाद सुनकर कौरव पक्ष के योद्धा बहुत ही डर गये। शत्रुओं को, नज़र पड़ते ही, अर्जुन मार-मारकर गिराने लगे। उनके पीछे पहुँचकर साहसी अर्जुन एकाएक बाणों की वर्षा करने लगे। उनके बाण सूर्य की किरणों के समान बहुत ही तीक्ष्ण और असंख्य थे। विपक्षियों ने अर्जुन के रथ को उसी दम पहचान लिया। जिस तरह अर्जुन के बाण शत्रुओं की
छाती को चीरकर निकल जाते थे उसी तरह उनका रथ भी फौज को चीरता जा रहा था। जैसे २१
अनन्त फनोंवाला नागराज महासमुद्र के भीतर क्रीड़ा करे वैसे ही महावीर अर्जुन शत्रु-सेना को विचलित कर रहे थे। [उन्होंने इतने बाणों की वर्षा की कि बाणों से शत्रुओं के अङ्ग भर गये—बिलकुल खाली जगह नहीं रही, और मुर्दों तथा घायलों के ढेर से युद्धभूमि में रथ का आगे बढ़ना कठिन हो गया।] सब लोग गाण्डीव धनुष का अद्भुत शब्द सुनकर बहुत ही विस्मित हुए। बाणों से ढके हुए हाथी ऐसे देख पड़ते थे जैसे किरणों के पड़ने से काले-काले बादल देख पड़ें। चारों ओर फिरकर दाहने, बायें और बीच में लगातार अर्जुन के बाणों की वर्षा करते रहने से उनके धनुष का एक मण्डल सा देख पड़ रहा था। आँखें जैसे रूपहीन पदार्थ पर कभी नहीं पड़तीं वैसे ही अर्जुन के बाण निशाने को छोड़कर अन्यत्र नहीं गिरते थे। जैसे हज़ार हाथी एक साथ चलें और ख़ूब चौड़ी राह साफ़ होती जाय वैसे ही युद्धभूमि में अर्जुन के रथ का मार्ग भी, उनकी बाण-वर्षा से, साफ़ होता जाता था। घायल शत्रुओं ने समझा कि अर्जुन को जय दिलाने के लिए सब देवताओं-सहित साक्षात् इन्द्र आकर यह युद्ध कर रहे हैं। कोई कहने लगा, साक्षात् यमराज ही अर्जुन का रूप रखकर प्रजा का नाश कर रहे हैं। जो कौरव-सेना अर्जुन
के बाणों से घायल नहीं हुई थी वह भी, अर्जुन का अलौकिक कार्य देखकर, सुस्त हो गई। पकी ३०
हुई फ़सल के सिरे जैसे झुक जाते हैं वैसे ही अर्जुन के डर से उत्साहहीन शत्रुओं के सिर झुकने लगे। अर्जुन के तेज और फुर्ती ने कौरव-पक्ष के तेज और उत्साह को कम कर दिया। आँधी के समान अर्जुन ने शत्रुओं के जङ्गल को मथकर रक्त-प्रवाह से पृथ्वी को लाल कर दिया। रक्त से सनी हुई धूल के कण हवा में उड़ने से सूर्य की किरणें भी लाल-लाल देख पड़ने लगीं। उस समय अकाश सन्ध्याकाल की ललाई से लाल सा जान पड़ने लगा। सूर्य भी अस्ताचल पर पहुँचकर लौट पड़ते हैं परन्तु अर्जुन युद्ध से हटते न देख पड़ते थे। महाशूर पराक्रमी अर्जुन युद्ध में डटी हुई शत्रु-पक्ष की सेना के ऊपर दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करने लगे। उन्होंने द्रोणाचार्य को तिहत्तर क्षुरप्र बाण मारकर दुःसह को दस, अश्वत्थामा को आठ, दुःशासन को बारह, कृपाचार्य को तीन, भीष्म को साठ और दुर्योधन को एक सौ बाण मारे। फिर शत्रुदमन अर्जुन ने कर्णी नामक

बाण कर्ण के कान में मारा तथा उसके सारथी और घोड़ों को मारकर उसका रथ काट डाला। कर्ण के
घोड़ों को और सारथी को नष्ट देखकर सैनिक लोग डर कर चारों ओर भागने लगे।

इसी समय अर्जुन के अभिप्राय को जानकर विराट के पुत्र ने कहा—हे पाण्डव,
४० आप किस सेना की ओर जाना चाहते हैं? आज्ञा दीजिए, मैं उधर ही रथ ले चलूँ। अर्जुन

ने कहा—वह जो लाल घोड़ों और नीली पताकावाले रथ पर सवार हैं उनका नाम कृपाचार्य है। मैं उनके पास चलकर अपना युद्ध-कौशल और फुर्ती दिखाना चाहता हूँ। और, जिनकी ध्वजा के दण्ड में सोने का कमण्डलु शोभा पा रहा है वही धनुर्द्धर पुरुषों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य हैं। वे मेरे और अन्य सब योद्धाओं के मान्य तथा पूजनीय हैं। मैं इस समय विधिपूर्वक उनकी प्रदक्षिणा करूँगा; दाहनी ओर से उनके चारों ओर रथ घुमा दो। आचार्य पहले प्रहार करेंगे तभी मैं उन पर चोट करूँगा। ऐसा करने से वे मुझ पर कुपित नहीं होंगे। और, वह जो धनुष के चिह्न से युक्त ध्वजावाले रथ पर आचार्य के पास ही उपस्थित हैं,
वही महारथी अश्वत्थामा हैं। वे भी हम सबके पूज्य हैं। उनके समीप रथ पहुँचने पर तुम
घोड़ों को रोक लेना। जिसकी ध्वजा में पताका-युद्ध हाथी का चिह्न देख पड़ता है और प्रधान-
प्रधान योद्धा चारों ओर से जिसकी रक्षा कर रहे हैं वही रथ पर स्थित महामानी दुर्योधन है।
५० यह बड़ा भारी योद्धा और फुर्ती में द्रोणाचार्य का प्रिय शिष्य कहा जाता है। तुम उसके
सामने मेरा रथ ले चलना। मैं उसे अपनी फुर्ती और युद्ध-कौशल दिखाऊँगा। जिसकी
ध्वजा के सिरे पर हाथी अङ्कित है वह तुम्हारा पूर्वपरिचित सूतपुत्र कर्ण है। वह सदा मुझसे
लागडाँट रखता है। इसके पास पहुँचकर तुम सावधान रहना। वह देखो, जिनके रथ पर
सूर्य-तारागण के चिह्न से युक्त नीली ध्वजा फहरा रही है, जिनके मस्तक पर सफ़ेद छत्र देख पड़ता
है, जो मेघों के समीपवर्ती सूर्य के समान सब सेना के आगे खड़े हैं, जो चन्द्रमा और सूर्य के
समान प्रभापूर्ण सोने का कवच, शिरस्त्राण (टोप) और दस्ताने पहने हैं, वही हम सबके
पितामह भीष्म हैं। ये महावीर पुरुष दुर्योधन के वश में हैं, यह देखकर हमारा जी कुढ़ता है।

सबसे पीछे हम उनके पास चलेंगे। पितामह भीष्म हमारे काम में विघ्न नहीं डालेंगे। मैं जब पितामह से युद्ध करूँगा तब तुम सावधान होकर घोड़ों की रास सँभाले रहना।

अर्जुन के ये वचन सुनकर उत्तर कुमार उनके रथ को उस जगह पर ले गया जहाँ पर कृपाचार्य जी, अर्जुन से युद्ध करने के लिए, खड़े थे। ६०

छप्पनवाँ अध्याय

युद्ध से पहले

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्! धनुर्द्धर पुरुषों में श्रेष्ठ कौरव-सेना के वीर, आगे बढ़ने से, उस समय मन्द वायु के द्वारा सञ्चालित वर्षाकाल की मेघमाला के समान देख पड़ने लगे। उनके समीप उत्तम घोड़ों पर सवार योद्धा लोग आगे बढ़ने लगे। क़तार की क़तार हाथियों पर विचित्र कवच पहने हुए वीर बैठे थे। उन हाथियों पर सुन्दर मूल्यवान झूलें और रक्षा के लिए सोने के जाल पड़े थे। महावत लोग तोमर और अंकुश आदि के प्रहार से उन हाथियों को आगे बढ़ा रहे थे।

इसी समय कृपाचार्य और अर्जुन का भयानक युद्ध देखने के लिए अश्विनीकुमार और विश्वेदेवा आदि देवताओं के साथ, दिव्य विमान पर बैठे हुए, इन्द्र आकाशमार्ग में आ गये। देवता, यक्ष, गन्धर्व और नागों के मणिरत्न-खचित असंख्य विमान आकाश में, मेघ से छुटे हुए ग्रहों के समान, शोभा देने लगे। उनमें इन्द्र का, चाहे जहाँ जाने की शक्ति रखनेवाला, सब रत्नों से अलंकृत विमान और भी अधिक शोभित हुआ। आकाशमण्डल में वसु, रुद्र आदि तैंतीस देवता, गन्धर्व, राक्षस, नाग, सिद्ध, महर्षि और पितरों की भीड़ हो गई। राजा वसुमना, बलाक्ष, सुप्रतर्दन, अष्टक, शिवि, ययाति, नहुष, गय, मनु, पुरु, रघु, भानु, कृशाश्व, सगर और नल आदि स्वर्ग-वासी नरेश भी उस समय आकाश में आ गये। अग्नि, ईश, सोम, वरुण, प्रजापति, धाता, विधाता, कुबेर, यम, उग्रसेन, अलम्बुष और १०

तुम्बुरु आदि दिक्पालों तथा गन्धर्वों के विमान भी आकाश में अपनी-अपनी जगह पर स्थित हुए। तात्पर्य यह कि उस समय कौरवों के साथ अर्जुन का युद्ध-कौशल देखने के लिए देवता, सिद्ध और महर्षि, सभी आ गये। वसन्त के प्रारम्भ में फूले हुए वृक्षों की सुगन्ध से जैसे दिशाएँ महक उठती हैं वैसे ही देवताओं की दिव्य मालाओं की बढ़िया सुगन्ध चारों ओर भर गई। आकाश में देवताओं के कपड़े, ध्वजा, छत्र, चँवर और जड़ाऊ गहने इधर-उधर शोभा देने लगे। उस समय पृथ्वी पर की सब धूल बैठ गई; चारों ओर तेज और प्रकाश की किरणें फैल गईं। मनोहर सुगन्धयुक्त पवन चलकर योद्धाओं की सेवा करने लगा। देवताओं के उज्ज्वल रत्नों और विमानों से विभूषित आकाशमण्डल की बड़ी शोभा हुई। देवगणयुक्त, विमान पर बैठे, कमलों की माला पहने, इन्द्र युद्ध-भूमि में बारम्बार अपने पुत्र अर्जुन को स्नेह की दृष्टि से देखने लगे। बार-बार
१९ देखकर भी मानों उनका जी नहीं भरता था।

सत्तावनवाँ अध्याय

कृपाचार्य और अर्जुन का युद्ध

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, महावीर अर्जुन ने कौरवों की सेना को व्यूहरचना करके युद्ध के लिए तैयार देखकर उत्तर से कहा—हे राजपुत्र, जिनकी ध्वजा में सोने की वेदी का चिह्न देख पड़ता है उनकी दाहनी ओर होकर जाने से तुम कृपाचार्य के पास पहुँच सकोगे। अर्जुन के कहने के अनुसार उत्तर ने बड़े वेग से उन सफ़ेद घोड़ों को हाँका। वहाँ से वह कौरवों की सेना के पास रथ ले गया। फिर वहाँ से रथ को लौटाया और अपनी रथ हाँकने की विद्या दिखाते हुए उसी दम बाईं ओर से घूमकर कौरव-सेना को भ्रम में डाल दिया। इस प्रकार घूम-फिरकर उत्तर ने कृपाचार्य के पास अर्जुन का रथ पहुँचा दिया। रथ के ऊपर से कृपाचार्य के रथ की प्रदक्षिणा करके अर्जुन उनके सामने जा पहुँचे।

कृपाचार्य के पास पहुँचकर अर्जुन ने, अपना नाम सुनाकर, बड़े ज़ोर से अपना 'देवदत्त' शङ्ख बजाया। वह पहाड़ के फटने का सा घोर शंखनाद मानों आकाश में भर गया और वहाँ से लौटकर शत्रुओं के कानों में गूँज उठा। सब कौरव और उनके सैनिक यह कहकर शंख की बड़ाई करने लगे कि अहो बड़ा आश्चर्य है! यह शंख अर्जुन के ज़ोर से बजाने पर भी फट नहीं गया! अर्जुन
१० का शंखनाद सुनकर कृपाचार्य कुपित हो उठे। अर्जुन से युद्ध करने का विचार करके उन्होंने भी अपना शंख बड़े ज़ोर से बजाया। फिर वे धनुष-बाण लेकर भयानक सिंहनाद करने लगे। सूर्य के समान तेजस्वी दोनों वीर शरद् ऋतु की घनघटा के समान शोभित हुए।

अब महाबली कृपाचार्य ने शत्रुदमन अर्जुन को मर्मभेदी पैने दस बाण मारे। महावीर अर्जुन भी जगत्प्रसिद्ध गाण्डीव धनुष खींचकर कृपाचार्य के ऊपर मर्मभेदी नाराच बाण छोड़ने लगे।

कृपाचार्य ने अपने पैने बाणों से अर्जुन के चलाये, रक्त पीनेवाले, नाराच बाणों के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर महावीर अर्जुन ने अत्यन्त क्रोधित हो पैंतड़े बदलकर अपने विचित्र बाणों से चारों दिशाओं को व्याप्त कर दिया और कृपाचार्य के ऊपर सैकड़ों बाण चलाये। आग की लौ के समान प्रज्वलित अर्जुन के बाणों से घायल कृपाचार्य ने भी कुपित होकर अर्जुन के ऊपर दस हज़ार बाण
चलाये और विकट सिंहनाद किया। महावीर अर्जुन ने भी अत्यन्त तीक्ष्ण चार बाण मारकर कृपाचार्य २१
के रथ के चारों घोड़ों को घायल कर दिया। आग उगलते हुए साँपों के समान अर्जुन के बाण लगने से घोड़े घबराकर उछल पड़े। कृपाचार्य रथ से नीचे गिर पड़े। अर्जुन ने उस समय, मौक़ा पाकर भी, आचार्य के गौरव की रक्षा के लिए वार नहीं किया। कुपित कृपाचार्य ने जल्दी से दूसरे रथ पर चढ़कर अर्जुन को दस बाण मारे। अर्जुन ने तीक्ष्ण भल्ल बाण से कृपाचार्य का धनुष काट डाला और दूसरा तीक्ष्ण बाण मारकर उनके कवच को काट डाला, पर शरीर में कोई घाव नहीं किया। अर्जुन के बाण से कवच कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब कृपाचार्य की शोभा केंचुल छोड़नेवाले नागराज की तरह हुई। उन्होंने दूसरा धनुष लेकर उस पर डोरी चढ़ाई; अर्जुन ने और एक तीक्ष्ण बाण से उसे भी काट डाला। इसी तरह अर्जुन ने कृपाचार्य के कई धनुष फुर्ती के
साथ काट डाले। ३०

बार-बार धनुष कट जाने से कुपित कृपाचार्य ने अर्जुन के ऊपर एक वज्र-सदृश सुवर्ण-भूषित शक्ति चलाई। आकाशमार्ग से आती हुई, सुवर्ण-भूषित, महा उल्का ऐसी चमकदार उस शक्ति को अपनी ओर आते देख अर्जुन ने दस बाण मारकर उसके दस टुकड़े कर डाले। वह शक्ति टुकड़े-टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। तब कृपाचार्य ने फिर धनुष लेकर अर्जुन को तीक्ष्ण दस बाण मारे। महातेजस्वी अर्जुन ने बहुत ही कुपित होकर कृपाचार्य को अग्नि के समान प्रज्वलित तेरह बाण मारे। उन्होंने एक बाण से रथ का धुरा, चार बाणों से चारों घोड़े, छठे बाण से सारथी का सिर, तीन बाणों से रथ के तीनों वेणु, दो बाणों से जुआ और बारहवें भल्ल बाण से ध्वजा काट डाली। फिर हँसते हुए अर्जुन ने वज्रसदृश तेरहवाँ बाण कृपाचार्य की छाती में मारा।

धनुष और रथ कटने से, घोड़ों और सारथी के मारे जाने से, कृपाचार्य बहुत ही कुपित हुए। उन्होंने एक गदा उठाकर अर्जुन के ऊपर चलाई। महातेजस्वी अर्जुन ने बाणों से उसको भी व्यर्थ
कर दिया। तब अन्य अनेक योद्धा कृपाचार्य की सहायता के लिए, चारों ओर से आकर ४०
अर्जुन पर बाणों की वर्षा करने लगे। अब विराटपुत्र उत्तर ने बाईं ओर 'यमकमण्डल' से रथ चलाकर उन योद्धाओं की चेष्टा निष्फल कर दी। सब योद्धा लोग डरकर, कृपाचार्य को लेकर,
बड़े वेग से वहाँ से हट गये। ४३

अट्ठावनवाँ अध्याय

द्रोणाचार्य और अर्जुन का युद्ध

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, कृपाचार्य के हट जाने पर द्रोणाचार्य धनुष-बाण लेकर अर्जुन के सामने आये। सुवर्णमय रथ पर सवार गुरु को आते देख अर्जुन ने उत्तर से कहा—राजकुमार, जिनके ऊँचे ध्वजदण्ड पर बहुत पताकाओं से शोभित सोने की वेदी देख पड़ती है, जिनके श्रेष्ठ रथ में मूँगे के रङ्ग के सुन्दर सधे हुए घोड़े जुते हुए हैं, वे योद्धाओं में श्रेष्ठ, महाबाहु, महातेजस्वी, सुरूपवान्, बलवान, शुक्राचार्य के समान बुद्धिमान्, बृहस्पति के समान नीति के जानकार, चारों वेदों के ज्ञाता, ब्रह्मचर्य-क्षमा-दम-सत्य-सरलता आदि सद्गुणों से भूषित, सब दिव्य अस्त्रों के प्रयोग और उपसंहार के जाननेवाले सम्पूर्ण धनुर्वेद के ज्ञाता, भरद्वाज के पुत्र द्रोणाचार्य हैं। मैं इन महातेजस्वी महात्मा से युद्ध करना चाहता हूँ; मुझे तुम इनके पास ले चलो।

वैशम्पायन कहते हैं—उत्तर ने अर्जुन के कहने से सुवर्ण-भूषित घोड़ों को द्रोणाचार्य की ओर हाँका। महारथी पाण्डव अर्जुन को, मस्त गजराज की तरह, अपनी ओर आते देखकर द्रोणाचार्य भी उनके सामने चले। उस समय सैकड़ों डङ्कों की शब्द की तरह गम्भीर शङ्खनाद सुन पड़ने लगा। उमड़े हुए समुद्र की तरह सेना उमड़ पड़ी। युद्धभूमि में वायु के समान शीघ्रगामी, राजहंसों के समान सफ़ेद और लाल रङ्ग के घोड़े आमने-सामने आ गये। उन घोड़ों को देखकर लोग घबरा गये। आचार्य और शिष्य दोनों ही महाबली, महावीर और अस्त्र-विद्या में निपुण थे। उन वीर्यशाली वीरों को परस्पर युद्ध करने के लिए आमने-सामने देखकर बड़ी भारी कौरवों की सेना मानों काँप उठी। तब महापराक्रमी अर्जुन ने मुसकाकर आचार्य को प्रणाम किया और नम्रतापूर्वक कहा—युद्ध में दुर्जय हे आचार्य, हम लोग अब तक वनवास में थे; अब अपने वैरियों से बदला लेना चाहते हैं। इसलिए आप हम लोगों पर कोप न कीजिएगा। हे निष्पाप, मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि जब तक आप पहले प्रहार न करेंगे तब तक मैं आप पर वार नहीं करूँगा। इसलिए आप पहले प्रहार कीजिए।

तब द्रोणाचार्य ने अर्जुन के ऊपर बहुत से बाण चलाये। अर्जुन ने फुर्ती के साथ बीच में ही उन बाणों को काट डाला। फिर द्रोणाचार्य ने मानों वीरवर अर्जुन के क्रोध को प्रज्वलित करने के लिए ही हज़ारों बाणों से उनके घोड़ों को और रथ को ढक दिया। इस प्रकार महावीर द्रोणाचार्य और अर्जुन का युद्ध होने लगा। दोनों ही वीर प्रसिद्ध कर्म करनेवाले, वायु के समान वेगवाले, युद्धचतुर और महातेजस्वी थे। दोनों के ही बाणों की वर्षा से अन्यान्य नरपति और योद्धा मोहित से हो गये। सब लोग महावीर अर्जुन को शाबाशी देने लगे। वे कहने लगे—अर्जुन के सिवा द्रोणाचार्य से और कौन युद्ध कर सकता है। हाय, क्षत्रिय-धर्म कैसा भयानक है! अर्जुन अपने ही गुरु द्रोणाचार्य से युद्ध कर रहे हैं!

उधर महावीर द्रोण और अर्जुन दोनों परस्पर पास जाकर, कुपित होकर, तीक्ष्ण बाणों
की वर्षा से एक दूसरे को ढक देने की चेष्टा करने लगे। क्रोधित द्रोणाचार्य अपना विकट धनुष
चढ़ाकर बाणों से अर्जुन को घायल करने लगे। द्रोणाचार्य के चलाये चमकीले तेज़ बाणों से
सूर्य की प्रभा छिप गई। जैसे मेघ वर्षा की बूँदों से पहाड़ को छा लेते हैं वैसे ही महावीर अर्जुन
पर द्रोणाचार्य तीक्ष्ण बाणों की वर्षा कर रहे थे। प्रसन्नचित्त अर्जुन गाण्डीव धनुष चढ़ाकर सुवर्ण- ३०
मण्डित विचित्र बाणों से द्रोणाचार्य के बाण की वर्षा को रोकने लगे। अर्जुन के धनुष से निकले
हुए बाण-जाल अद्भुत काम कर रहे थे। रथ पर सवार अर्जुन, इधर-उधर विचरकर, चारों
ओर अस्त्र-विद्या का प्रभाव दिखा रहे थे। उस समय आकाशमण्डल में बाण ही बाण छा गये।
द्रोणाचार्य मानों कुहरे के भीतर छिपकर अदृश्य हो गये। चारों ओर आग लगने से जैसा पहाड़
देख पड़ता है वैसे ही अर्जुन के बाणों से छाये हुए द्रोणाचार्य जान पड़ने लगे।

युद्धचतुर द्रोणाचार्य, अपने रथ को अर्जुन के बाणों से छिपा हुआ देख, अपना धनुष
खींचकर बाणों की वर्षा करने लगे। उस समय द्रोणाचार्य का धनुष अग्नि-चक्र के समान देख
पड़ने लगा, और धनुष का शब्द मेघों के गरजने के समान सुन पड़ने लगा। जब द्रोणाचार्य अपने
बाणों से अर्जुन के बाणों को काटते थे तब उनकी टक्कर से जलते हुए बाँस की पोरों के फटने
का सा शब्द होता था। द्रोणाचार्य ने अपने विचित्र धनुष से निकले हुए सुवर्णपुंख बाणों से सब
दिशाओं को और सूर्य की प्रभा को ढक दिया। उन्होंने इतने बाण चलाये कि उनसे आकाश भर गया। ४०

इस प्रकार अर्जुन और द्रोणाचार्य के बाणों से आकाशमण्डल अनेक उल्काओं से व्याप्त
सा जान पड़ने लगा। दोनों वीरों के कङ्कपत्र-भूषित बाण आकाशचारी हंसों की पाँति के
समान सुहावने जान पड़ते थे। वृत्रासुर और इन्द्र का जैसा भयङ्कर युद्ध हुआ था, वैसा
ही महात्मा द्रोणाचार्य और अर्जुन का घोर संग्राम हो रहा था। जैसे दो बड़े-बड़े गजराज
भिड़कर विशाल दाँतों से परस्पर आक्रमण करते हैं वैसे ही युद्धचतुर दोनों वीर कुपित होकर दिव्य
अस्त्रों से एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे।

फिर पराक्रमी अर्जुन ने सब दर्शकों के सामने द्रोणाचार्य के चलाये हुए, पर्वतशिला को
भी तोड़ डालने की शक्ति रखनेवाले तीक्ष्ण बाणों को व्यर्थ करके अपने विचित्र बाणों से आकाश-
मण्डल को व्याप्त कर दिया। द्रोणाचार्य भी कुपित और विजय पाने की इच्छा रखनेवाले
अर्जुन के उद्योग को देखकर अपने तेज़ बाणों से उनके बाणों को लौटाने लगे। उन क्रुद्ध पुरुष- ५०
सिंहों का युद्ध देवासुर-संग्राम के समान भयानक हो उठा। आचार्य ने जब इन्द्र, वायु और
अग्नि के दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया तब महावीर अर्जुन ने उन अस्त्रों को अपने दिव्य
अस्त्रों से शान्त कर दिया। पर्वत के ऊपर लगातार वज्रपात होने से जैसा भयानक शब्द होता
है वैसा ही भयङ्कर शब्द सैनिकों के शरीरों पर अर्जुन के बाण गिरने से हो रहा था। महाराज,

उस समय रथ के घोड़े और हाथी खून से तर होकर फूले हुए ढाक के पेड़ों के समान देख पड़े। द्रोण और अर्जुन के उस युद्ध में वीरों के बिजायठ आदि गहनों से युक्त हाथ और अन्य अङ्ग, विचित्र रथ, सुवर्णमय कवच तथा ध्वजाएँ कट-कटकर गिर रही थीं। अर्जुन के बाणों से पीड़ित योद्धा लोग प्राणहीन होकर गिर रहे थे। यह देखकर सब सेना के लोग घबराकर व्याकुल हो उठे। उस समय दोनों महावीर अपने-अपने धनुष को मण्डलाकार खींचकर बाणों के द्वारा प्राणपण से एक दूसरे को घायल करने की, छा देने की, चेष्टा कर रहे थे। हे भरतश्रेष्ठ, इस
६० प्रकार राजा बलि और इन्द्र का सा वह द्रोण और अर्जुन का भयानक युद्ध हो रहा था। तब

आकाशमार्ग में स्थित देवता द्रोण और अर्जुन की बड़ाई करते हुए कहने लगे—देवताओं और दानवों को परास्त करनेवाले, महावीर, दृढ़मुष्टि, दुर्द्धर्ष अर्जुन से युद्ध करके महावीर द्रोणाचार्य बड़ा दुष्कर कर्म कर रहे हैं। वीरवर द्रोणाचार्य भी अर्जुन की सावधानी, अस्त्रविद्या की जानकारी, फुर्ती और दूर पर निशाना मारने के अभ्यास आदि को देखकर चकरा गये। क्रोधित अर्जुन को दोनों हाथों से दिव्य गाण्डीव धनुष खींचकर टिड्डी-दल के समान बाणों की वर्षा करते देख सब लोग उनकी बड़ाई करते हुए शाबाशी देने लगे। अर्जुन ने इस प्रकार लगातार बाण बरसाये कि उन बाणों के भीतर हवा भी न जा सकती थी। किसी को यह न जान पड़ता था कि वे कब बाण लेते हैं, कब धनुष पर चढ़ाते हैं और कब छोड़ते हैं। अर्जुन के गाण्डीव धनुष से निकले हुए लाखों बाणों ने एकदम आकर द्रोणाचार्य के रथ को सब ओर से छा लिया। द्रोणाचार्य जब इस प्रकार अर्जुन के बाणों में छिप गये तब कौरवों
७० की सेना में हाहाकार मच गया। अर्जुन की यह फुर्ती देखकर देवताओं सहित इन्द्र, गन्धर्व और अप्सराओं के झुण्ड उनकी बहुत-बहुत बड़ाई करने लगे।

रथों के अधिपति आचार्यपुत्र अश्वत्थामा भी अर्जुन के इस काम की मन ही मन बड़ाई करने लगे। अब कुपित होकर वे अर्जुन के सामने आ गये। बहुत से रथों से अर्जुन की गति को रोककर वे बरसनेवाले मेघ की तरह अर्जुन पर बाणों की वर्षा करने लगे। तब अर्जुन अश्वत्थामा

की ओर फिरे। उनकी गति रोकने में प्रवृत्त होकर अर्जुन ने द्रोणाचार्य को जाने का अवसर दे दिया। ध्वजा और कवच कट जाने पर द्रोणाचार्य बड़े वेग से वहाँ से हट गये। ७६

उनसठवाँ अध्याय

अश्वत्थामा से अर्जुन का युद्ध

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, इसके बाद महावीर अश्वत्थामा हवा के समान वेग से अर्जुन की ओर चले। उनको प्रबल आँधी की तरह अपनी ओर आते देखकर अर्जुन भी उन पर लगातार बाण चलाने लगे। अब इन्द्र और वृत्रासुर की तरह दोनों वीरों का घोर युद्ध होने लगा। उस समय सूर्य का तेज फीका पड़ गया। हवा का चलना एकदम बन्द हो गया। आकाश में बाण ही बाण व्याप्त हो जाने से अँधेरा फैल गया। जलते हुए बाँस की पोरें फटने का सा बाणों के परस्पर टकराने का 'चटचट' शब्द सुन पड़ने लगा। अर्जुन ने अश्वत्थामा के घोड़ों को इतने बाण मारे कि वे बहुत ही पीड़ित और व्याकुल होकर यह जानने में असमर्थ हो गये कि उन्हें किधर जाना होगा। इधर महापराक्रमी अश्वत्थामा ने मौक़ा पाकर तीक्ष्ण क्षुर बाण से गाण्डीव धनुष की डोरी काट डाली। अश्वत्थामा के इस अलौकिक काम को देखकर देवता उनकी बड़ाई करने लगे। इधर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म और कर्ण ने भी अश्वत्थामा को ख़ूब शाबाशी दी। फिर अश्वत्थामा ने अपना श्रेष्ठ धनुष खींचकर अर्जुन के हृदय में अनेक बाण मारे। महाबाहु अर्जुन ने हँसते हुए उन प्रहारों को सह लिया। उन्होंने गाण्डीव को जोर से झुकाकर उस पर दूसरी डोरी चढ़ाई। जैसे यूथपति गजराज किसी मस्त हाथी से युद्ध करे वैसे ही अर्जुन फिर गाण्डीव धनुष लेकर अश्वत्थामा से
भिड़ गये। दोनों वीरों के बाण क्रुद्ध साँपों की तरह प्रज्वलित थे। उनके द्वारा लड़नेवाले दोनों महा- १०
वीरों के युद्ध को कौरव लोग अचरज के साथ देखने लगे। अश्वत्थामा अर्जुन को ताककर लगातार बाण बरसा रहे थे; इसलिए उनके तरकस ख़ाली हो गये; परन्तु महावीर अर्जुन के तरकस अक्षय थे, इसलिए वे ख़ाली नहीं हुए। इसी कारण युद्धचतुर अर्जुन पहाड़ की तरह अटल भाव से युद्ध-भूमि में डटे रहे किन्तु अश्वत्थामा को हट जाना पड़ा।

अब अपने धनुष को चढ़ाकर वीर कर्ण फिर अर्जुन के सामने आया और लगातार भयङ्कर बाण बरसाने लगा। उस समय युद्ध-भूमि में घोर कोलाहल और हाहाकार सुन पड़ने लगा। वीर अर्जुन अपना गाण्डीव धनुष चढ़ाकर इधर-उधर देख रहे थे; इसी समय कर्ण को युद्ध-भूमि में अपने आगे आते देख उनके हृदय में क्रोध की आग प्रचण्ड रूप से भड़क उठी। क्रोध और बदला लेने की वृत्ति के वशीभूत अर्जुन आँखें तरेरकर कर्ण की ओर देखने लगे। इसी अवसर में कौरव-सेना के बहुत से सिपाही अश्वत्थामा के हज़ारों बाणों को युद्ध-भूमि से उठाकर उनके पास ले गये। इधर शत्रुदमन अर्जुन लाल-लाल आँखें करके द्वन्द्वयुद्ध की इच्छा से कर्ण की ओर बढ़े। २१

साठवाँ अध्याय

कर्ण का हारकर भागना

अर्जुन ने कहा—रे कर्ण, पहले कौरवों की सभा में तूने शेखी के साथ कहा था कि पृथ्वी पर मेरे समान कोई योद्धा नहीं है। अब यह युद्ध का समय आ गया। आ, मुझसे युद्ध कर। तुझे अपने पराक्रम की थाह लग जायगी और फिर तू कभी इस तरह किसी का अपमान न करेगा। हे राधा के पुत्र, तूने धर्म का खयाल न करके सदा निरे कठोर वचन कहे हैं। इस समय तेरा वह बुरा इरादा पूरा होना कठिन जान पड़ता है। तूने मेरे पीछे दुर्योधन आदि कौरवों से जो बातें कही हैं—जो डींग मारी है—उन्हें इस समय मेरे साथ, कौरवों के आगे, पूरा करके दिखा। जिस समय दुष्ट कौरव भरी सभा में द्रौपदी का अपमान कर रहे थे उस समय तू बड़े आनन्द से द्रौपदी की दुर्दशा देख रहा था। इस समय तू उसका उचित फल पावेगा। मैं उस समय धर्म—प्रतिज्ञा—के बन्धन में बँधा हुआ था, इससे सब कुछ सहता रहा। इस समय अपने उसी कोप को मैं सफल करूँगा। रे दुष्टबुद्धि, बारह वर्ष वन में रहकर हम लोगों ने जिन कठिन क्लेशों को सहा है उनका बदला तुझे आज मिलेगा। रे दुराचारी, कौरवपक्ष के योद्धा लोग आज तेरे पराक्रम को देखें। आ, मुझसे युद्ध कर।

कर्ण ने कहा- हे अर्जुन, जो तुम मुँह से कह रहे हो उसे कर दिखाओ। तभी तुम्हारी बहादुरी है। सभी जानते हैं कि तुम डींग बहुत हाँकते हो। तुम्हारे इस जबानी पराक्रम को देखकर जान पड़ता है कि तुम जो पहले बैठे बैठे द्रौपदी की दुर्दशा देखते रहे थे—कुछ कर
१० नहीं सके थे—उसका कारण तुम्हारी असमर्थता ही थी। धर्मपास में बँधे रहने के कारण पहले तुम जैसे अपनी शक्ति नहीं दिखा सके थे वैसे ही इस समय भी तुम मेरे सामने बँधे हुए हो; मेरे आगे कुछ शक्ति नहीं प्रकट कर सकते। इस समय जो तुम अपने को बन्धन से मुक्त समझ रहे हो, सो यह तुम्हारी नासमझी है। प्रतिज्ञा के बन्धन में बँधे रहने के कारण तुमने वनवास में जो बहुत से क्लेश सहे हैं उन्हीं का खयाल करके तुम इस समय मुझसे लड़ने को तैयार हो। जो हो, हे अर्जुन! इस समय स्वयं इन्द्र भी आकर तुम्हारी ओर से लड़ें तो भी मेरा बाल बाँका नहीं कर सकते। हे अर्जुन, शीघ्र ही तुम्हारी युद्ध की साध मिट जायगी। तुम आज युद्ध में मेरे बल और पराक्रम को देख लोगे।

अर्जुन ने कहा—रे सूत-पुत्र! तू अभी-अभी मेरे आगे से लड़ता-लड़ता, जान लेकर, भाग चुका है इसी से जिन्दा बच गया है। इधर तेरा भाई भी मेरे हाथ से मर चुका है। रे निर्लज्ज, कायर! भाई को मरवाकर और युद्ध-भूमि से भागकर तेरे सिवा और कौन पुरुष भले आदमियों के आगे ऐसी डींग हाँकेगा!

वैशम्पायन कहते हैं—किसी से न हारनेवाले अर्जुन यों कहते-कहते कर्ण के सामने मर्मभेदी बाण बरसाते हुए पहुँच गये। तब महारथी कर्ण प्रसन्नतापूर्वक, अर्जुन की बाण-वर्षा को रोककर, उनके ऊपर वर्षाकाल के मेघ के समान लगातार तीक्ष्ण बाण बरसाने लगा। वे बाण चारों ओर छा गये। अर्जुन के दस्ताने कट गये और घोड़े भी घायल हो गये। यद्यपि अर्जुन का कोई सहायक न था तो भी वे विचलित नहीं हुए। उन्होंने पैने बाण मारकर कर्ण का तरकस काट डाला। महावीर कर्ण ने दूसरे
तरकस से पैने बाण निकालकर अर्जुन के हाथों में मारे। इस चोट से अर्जुन की मुट्ठी ढीली पड़ गई; २०
पर उन्होंने कर्ण का धनुष काट डाला। इससे कर्ण ने एक भयानक शक्ति उठाकर अर्जुन पर चलाई किन्तु उसको अर्जुन ने बाणों से व्यर्थ कर दिया।

अब कर्ण की असंख्य सेना प्रचण्ड वेग से अर्जुन की ओर दौड़ पड़ी। अर्जुन ने गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाणों से बहुतों को मार गिराया। फिर कान तक धनुष खींचकर बाण चलाकर उन्होंने कर्ण के घोड़ों को घायल कर डाला। घोड़े उसी समय मरकर गिर पड़े। अब महातेजस्वी अर्जुन ने एक अग्नि के समान प्रज्वलित तीक्ष्ण बाण कर्ण की छाती में ताककर मारा। वह बाण कवच को तोड़कर कर्ण के हृदय में छिद गया। इससे मूर्छित होकर कर्ण पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह एकदम बेहोश हो गया। कुछ देर बाद कर्ण को होश आया। बड़े दर्द के मारे वह युद्ध-भूमि छोड़कर

उत्तर की ओर भागा। यह देखकर महावीर अर्जुन और उत्तर, दोनों जोर से हँसने लगे। २७

इकसठवाँ अध्याय

दुःशासन आदि योद्धाओं का हारना

वैशम्पायन कहते हैं कि कर्ण को हराकर अर्जुन ने उत्तर से कहा—हे राजकुमार, वह देखो जिस जगह पर सुवर्णमय तालवृक्ष के चिह्न से युक्त ध्वजावाले रथ पर हमारे पितामह, देव, तुल्य, भीष्मजी, मुझसे युद्ध करने के लिए खड़े हैं उस जगह तुम मुझे ले चलो। ब्राह्मणों की चोट

से उत्तर राजकुमार घायल हो रहा था। हाथी घोड़े-रथ आदि से भरी हुई उस सेना को देखकर वह डरकर कहने लगा—हे वीर, मैं इस समय आपके रथ के घोड़ों की रास सँभालने में असमर्थ हो रहा हूँ। मेरा शरीर सुस्त और चित्त विह्वल हो रहा है। आपके और कौरव पक्ष के वीरों के अस्त्र-शस्त्रों के प्रभाव से जहाँ देखो तहाँ रक्त की नदियाँ बहने लगी हैं। चर्बी, रक्त और मेदा की दुर्गन्धि से मैं अचेत-सा होता जाता हूँ। इन अलौकिक घटनाओं को देखकर मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है। मैंने युद्ध-भूमि में कभी ऐसा वीरों का जमघट नहीं देखा; गदाओं के शब्द, शंखनाद, सिंहनाद, हाथी-घोड़ों के दारुण शब्द और वज्रपात तुल्य गाण्डीव धनुष के भयानक शब्द से मेरे कान बहरे से हुए जा रहे हैं, स्मरणशक्ति काम नहीं देती। अलातचक्र (जलती हुई लकड़ी घुमाने से जो आग का चक्कर सा बन जाता है उस) के समान गाण्डीव धनुष को आप लगातार घुमा रहे हैं। उसे देखकर मेरी आँखें चौंधिया रही हैं और हृदय फटा सा जा रहा है। क्रोधित शङ्कर के समान आपकी भयङ्कर मूर्त्ति और महाभुजाओं को देखकर मैं बहुत ही डर रहा हूँ। मुझे कुछ भी नहीं जान पड़ता कि आप कब तरकस से बाण निकालते हैं, कब धनुष पर चढ़ाते और कब छोड़ते हैं। युद्ध में आपकी फुर्ती देखकर मैं अचेत सा हो रहा हूँ। मुझे सारी पृथ्वी काँपती सी जान पड़ती है। इस समय मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि मैं घोड़ों की रास सँभालूँ, और चाबुक मारकर उन्हें हाँकूँ।

अर्जुन ने कहा—हे नरश्रेष्ठ, तुम डरो नहीं। तुम सुप्रसिद्ध मत्स्यराज के वंश में उत्पन्न हुए हो। तुमने युद्ध-भूमि में बड़े-बड़े अद्भुत काम किये हैं। इस समय क्यों तुम इस तरह सुस्त होकर जी छोड़ देते हो? हिम्मत बाँधकर घोड़ों की रास पकड़ो और तुरन्त मेरे रथ को पितामह भीष्म के पास ले चलो। मैं युद्ध में कौशल और फुर्ती के साथ उनके धनुष की डोरी काट डालूँगा। जैसे मेघमण्डल से बिजली निकलती है वैसे ही आज समर में मेरे धनुष से दिव्य अस्त्र प्रकट होंगे। मेरे इस सुवर्ण-मण्डित गाण्डीव धनुष को देखकर और इसके दक्षिण पार्श्व से बाण बरस रहे हैं या वाम पार्श्व से, यह जानने में असमर्थ होकर आज कौरव लोग मन ही मन अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करेंगे। आज मैं शत्रु-सेना-रूपी भयानक नदी में घुसकर उसे मथ डालूँगा। वह नदी परलोक को जाती है। शत्रुओं के रथ उसमें आवर्त (भँवर) के समान हैं। हाथी उसमें ग्राह के समान हैं। जल की जगह उसमें रक्त बहता है। शाखाओं के समान हाथ-पैर-पीठ-सिर आदि अङ्गों से युक्त इस कौरवसेना के जङ्गल को आज मैं सहज ही काटूँगा। मैं जब कौरव-सेना को जीतने के लिए चलूँगा तब दावानल के समान मुझे कोई रोक न सकेगा। मैं आज तुमको अपनी विचित्र अस्त्रशिक्षा का कौशल दिखाऊँगा। इस समय यह मेरा रथ कड़ी भूमि पर पहुँच गया है, इसलिए सावधान होकर बैठो और रथ हाँको। आज मैं आकाश की तरह ऊँचे महापर्वत को भी अपने बाणों से चूर-चूर कर डालूँगा। मैंने पहले इन्द्र की आज्ञा से उनके

शत्रु महाबली लाखों पौलोम और कालकञ्ज नाम के दानवों को मारा है। इन्द्र से मैंने मजबूत मुट्ठी से धनुष को पकड़ना और भगवान् ब्रह्मा से शस्त्र या बाण चलाने की फुर्ती सीखी है। मैंने भगवान् रुद्र से रौद्र (पाशुपत) अस्त्र, वरुण से वारुण अस्त्र, अग्नि से आग्नेय अस्त्र, वायु से वायव्य अस्त्र और इन्द्र से वज्र आदि महाअस्त्र प्राप्त किये हैं। प्रबल जलधारा जैसे कमजोर कगारों को काट-काटकर गिरा देती है वैसे ही मैं समुद्र पार के रहनेवाले साठ हजार हिरण्यपुरवासियों को जीतने में समर्थ हूँ। आज देख लेना कि मैं कुरुकुल का नाश कर दूँगा। मैं अकेला ही अस्त्ररूप अग्नि से इस कौरव-वन को जला दूँगा जिसमें ध्वजाएँ ही वृक्ष हैं, पैदल योद्धा ही घास-फूस हैं और
रथ ही सिंह हैं। हे उत्तर, तुम तनिक भी न डरो। आज मैं पुरुषसिंह महारथियों से रक्षित १२
कौरव-वन को जड़ से उखाड़ डालूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—महावीर अर्जुन के यों दिलासा देने पर राजकुमार उत्तर, सँभलकर, भीष्म पितामह के बाहु-बल से सुरक्षित कौरव-सेना के भीतर अर्जुन के रथ को ले चला। विकट युद्ध करनेवाले भीष्म ने जब देखा कि महाबाहु अर्जुन कौरवों को जीतने के लिए उन्हीं की ओर आ रहे हैं तब वे उनकी राह रोककर सामने डट गये। अर्जुन ने उनकी ओर फिरकर उसी दम उनके रथ की ध्वजा का दण्ड काट डाला। इसी बीच में दुःशासन, विकर्ण, दुःसह और विविंशति, इन चारों वीरों ने आकर एकाएक अर्जुन पर हमला किया। दुःशासन ने उत्तर के ऊपर एक भल्ल नाम का बाण चलाया। साथ ही और एक तीक्ष्ण बाण छाती में मारकर अर्जुन को घायल कर दिया। तब अर्जुन ने तीक्ष्ण धारवाले गृध्र-पत्र-भूषित बाण से दुःशासन का धनुष काट डाला। साथ ही हृदय में पाँच बाण मारकर उसको घायल कर दिया। अर्जुन के बाणों से पीड़ित हो, युद्ध छोड़कर, दुःशासन
भाग गया। तब महावीर विकर्ण अर्जुन के ४०

ऊपर गृध्रपत्र भूषित तीक्ष्ण बाण बरसाने लगा। अर्जुन ने शीघ्र ही एक अत्यन्त तीक्ष्ण बाण विकर्ण के मस्तक में मारा। उसके लगते ही वह बेहोश होकर रथ से नीचे गिर पड़ा। दुःसह और विविंशति दोनों, विकर्ण की जान बचाने के लिए, अर्जुन के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे।

महावीर अर्जुन ने भी गृध्रपत्र-भूषित पैने बाणों से उनके घोड़ों को मारा और उन्हें भी घायल कर दिया। उन दोनों वीरों के पार्श्वरक्षक सैनिक उसी दम उन्हें दूसरे रथों पर बिठाकर वहाँ से हटा ले गये। अब विजयी, अचूक निशानेबाज अर्जुन [शत्रुओं के हृदय में भय का संचार
४६ करते हुए] युद्ध-भूमि में विचरने लगे।

बासठवाँ अध्याय

सब महारथियों का मिलकर अर्जुन से लड़ना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, तब कौरवपक्ष के सब महारथी मिलकर अर्जुन पर बाण बरसाने लगे। महावीर अर्जुन ने भी, कुहरे से ढके हुए पहाड़ की तरह, अपने बाणों से उन महारथियों को छा दिया। हाथियों की चिग्घाड़, घोड़ों का हिनहिनाना, नगाड़ों और शङ्खों का शब्द, इन सब शब्दों के एकत्र होने से युद्ध-भूमि में विकट कोलाहल होने लगा। अर्जुन के विकट बाण हाथियों, घोड़ों और वीरों के कवचों को काटते हुए नजर आते थे। जैसे शरद् ऋतु के स्वच्छ नीले आकाश में दोपहर के समय सूर्य देव अपनी तीक्ष्ण किरणें फैलाते देख पड़ते हैं, वैसे ही महातेजस्वी वीर अर्जुन युद्धभूमि में लगातार

असंख्य बाण बरसा रहे थे। तब रथी रथों पर से और सवार घोड़ों पर से कूदकर डरके मारे जान लेकर भागने लगे। पैदल योद्धा भी डरकर इधर-उधर भागने लगे। अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से वीरों के ताँबे, चाँदी और लोहे के कवच कट-कटकर पृथ्वी पर गिर रहे थे। उन कवचों पर बाण लगने से भयंकर शब्द होता था। हाथी, घोड़े, रथ आदि के ऊपर बैठकर लड़नेवाले वीरों की लाशों से युद्ध-भूमि रँग गई। उस समय ऐसा जान पड़ने लगा, जैसे धनुष हाथ में लिये अर्जुन युद्ध-भूमि में चारों ओर नाचते फिर रहे हों। बिजली कड़कने के समान भयङ्कर गाण्डीव
१० धनुष का शब्द सुनकर डर के मारे सिपाही इधर-उधर भागने लगे। युद्ध-भूमि में कुण्डल-पगड़ी आदि से भूषित, विचित्र मालाओं से अलंकृत वीरों के कटे हुए असंख्य सिर ही सिर देख पड़ते

थे। अर्जुन के बाणों से कटे हुए वीरों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग और मुट्ठी में धनुष पकड़े हुए भुजाएँ चारों ओर युद्ध के मैदान की भयानकता बढ़ा रही थीं। हे भरतश्रेष्ठ, बाणों से कट-कटकर गिरनेवाले वीरों के सिरों को देखकर जान पड़ता था कि आकाशमण्डल से लगातार शिलाएँ बरस रही हैं।

भयानक पराक्रमी महावीर अर्जुन विवश होकर तेरह वर्ष तक सब अत्याचार सहते रहे थे इस समय [उपयुक्त अवसर पाकर] वे अपना पराक्रम दिखाते हुए, धृतराष्ट्र के पुत्रों पर प्रहार करके, बदला चुकाने लगे। अर्जुन के क्रोध की आग शत्रुपक्ष की सेना को भस्म कर रही थी। धनुष धारण करनेवाले योद्धा लोग अर्जुन के बाणों की आग में अपने सिपाहियों को स्वाहा होते देख दुर्योधन के सामने ही सुस्त हो गये। विजयी महावीर अर्जुन ने युद्ध-भूमि में कौरवपक्ष की सेना को भयाकुल करके महारथियों को युद्ध से भगा दिया। शत्रुसेना का संहार करके अर्जुन ने युद्ध-भूमि में रक्त की दुस्तर नदी बहा दी। कवच-पगड़ी आदि सामान उसमें बहा जा रहा था। कुत्ते, गीदड़, गिद्ध, कौए आदि मांसभोजी पशु-पक्षी शब्द करते हुए उस नदी के पास घूम रहे थे। ऐसा जान पड़ता था कि [वह प्रलयकाल की नदी है।] उसमें हड्डियाँ सेवार की जगह, धनुष डोंगियों की जगह, मोतियों की मालाएँ भयङ्कर लहरों की जगह, केश घास की जगह, गहने बुलबुलों की जगह, हाथी कछुओं तथा घड़ियालों की जगह, तीक्ष्ण धारवाले शस्त्र ग्राहों की जगह, बाण भँवरों की जगह और रथ टापुओं की जगह हैं। शङ्ख और नगाड़ों का शब्द ही इस नदी का शब्द था। उस समय किसी को यह न जान पड़ता था कि महावीर अर्जुन कब बाण निकालते हैं। कब धनुष पर चढ़ाते हैं, कब गाण्डीव धनुष खींचते और कब बाण छोड़ते हैं। २२

तिरसठवाँ अध्याय

सब महारथियों का अर्जुन से हारकर भागना

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय! तब दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, विविंशति, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि सब महारथी अर्जुन को मारने के लिए धनुष चढ़ा-चढ़ाकर उनकी ओर चले। उधर सूर्य के समान प्रतापी और प्रभावशाली अर्जुन, फहराती हुई पताका से शोभित रथ पर चढ़कर, उक्त महावीरों की ओर बढ़े। थोड़ी ही दूर पर खड़े कृपाचार्य, कर्ण और महारथी द्रोण ने अर्जुन के ऊपर, वर्षाकाल के बादलों की तरह, ऐसी बाणों की वर्षा की कि अर्जुन का शरीर कहीं पर दो अंगुल भर भी कोरा नहीं रह गया। सब जगह बाणों के घाव थे। तब महारथी अर्जुन ने हँसते-हँसते धनुष पर ऐन्द्र अस्त्र चढ़ाया। उस अस्त्र का तेज सूर्य के समान था। अर्जुन ने उसी अस्त्र से कौरवपक्ष के सब वीरों को परास्त कर दिया। उस समय अर्जुन के हाथ में गाण्डीव धनुष वैसा ही लगता था जैसे मेघों में बिजली, पहाड़ पर आग अथवा आकाश में इन्द्रधनुष हो। वर्षाऋतु में जैसे मेघों में प्रकट होकर बिजली सब दिशाओं को और १०

पृथ्वी को प्रकाशित कर देती है, वैसे ही अर्जुन के हाथ में शोभित गाण्डीव धनुष ने युद्ध-भूमि को प्रकाशित कर दिया। यह दृश्य देखकर कौरवपक्ष के हाथी-घोड़े आदि वाहन और रथों पर बैठे हुए वीर मोहित से हो गये। योद्धा लोग विह्वल हो उठे। उनके हाथों से धनुष गिर पड़े। अनेक सैनिक किङ्कर्तव्यविमूढ़ से होकर युद्ध से भाग गये। तब जीवन से निराश योद्धा लोग डर के मारे
१४ युद्ध-भूमि छोड़कर इधर-उधर भागने लगे।

चौंसठवाँ अध्याय

भीष्म पितामह का अर्जुन से हारना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, अपने पक्ष के वीरों को विनष्ट और युद्ध से भागते देखकर भरतकुल के पितामह महावीर भीष्म बड़े वेग से अर्जुन का सामना करने को उनके आगे आये। पितामह का धनुष दृढ़ और उज्ज्वल था। उनके बाण भी मर्मस्थल पर चोट पहुँचानेवाले और पैने थे। सूर्य का उदय होने पर सुमेरु पर्वत की जैसी शोभा होती है वैसी ही शोभा सफ़ेद छत्र सिर पर रहने से भीष्म की थी। पितामह ने पहले शङ्ख बजा करके धृतराष्ट्र के पुत्रों को प्रसन्न किया, और फिर दाहिनी ओर से अर्जुन पर आक्रमण किया। शत्रुदमन अर्जुन ने भी उन पर आक्रमण कर दिया। फुफकार मारनेवाले विषैले साँप के समान आठ बाण भीष्म ने अर्जुन की ध्वजा पर मारे। उन बाणों से ध्वजा के ऊपर स्थित वानर और अन्य भूतगण घायल हुए। यह देखकर अर्जुन को क्रोध आ गया। उन्होंने भल्ल बाण से भीष्म के छत्र और ध्वजा को काटकर गिरा दिया। फिर उनके रथ के घोड़ों, पार्श्वरक्षक सैनिकों और सारथी को भी मार डाला। यद्यपि भीष्म ने पहचान लिया था कि वे उनके प्रिय पौत्र अर्जुन हैं, तो भी अर्जुन के बाणों से अपने छत्र, ध्वजा आदि के कटने से वे ऐसे क्रुद्ध हो उठे कि अर्जुन को नष्ट करने के लिए दिव्य अस्त्रों
१० का प्रयोग करने लगे। अर्जुन भी अपने पूज्य पितामह पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। तब जैसा युद्ध राजा बलि और इन्द्र से हुआ था वैसा ही घोर युद्ध अर्जुन और भीष्म से होने लगा। कौरवपक्ष के योद्धा और सैनिक, चकित से होकर, दोनों श्रेष्ठ वीरों का संग्राम देखने लगे। दोनों वीरों के चलाये हुए भल्ल बाण आकाश में जाकर, वर्षाकाल में जुगनुओं के समान, मालूम होते थे। महावीर अर्जुन बाण चढ़ाते समय फुर्ती के साथ कभी बायें हाथ में और कभी दाहने हाथ में गाण्डीव धनुष ले लेते थे; इससे वह धनुष अग्निचक्र के समान जान पड़ता था। बादल जैसे बूँदों से पहाड़ को पाट देते हैं वैसे ही महावीर अर्जुन ने असंख्य बाणों से भीष्म को छिपा दिया। युद्धचतुर भीष्म ने दम भर में अर्जुन के असंख्य बाणों के जाल को काट डाला। कट जाने से उन बाणों का, उनके रथ के पास, ढेर लग गया। अपने रथ पर बैठे हुए अर्जुन फिर भीष्म पर बाण बरसाने लगे। अर्जुन के सुवर्णपुङ्ख-शोभित असंख्य बाण टाँड़ी दल की तरह

भीष्म पितामह की ओर चल पड़े। महाबाहु भीष्म ने फिर भी अपने पैने बाणों से उन बाणों को व्यर्थ कर दिया। अर्जुन से युद्ध करके भीष्म पितामह सचमुच बड़ा कठिन काम कर रहे थे। क्योंकि भीष्म बूढ़े थे, और अर्जुन थे नौजवान और फुर्तीले। श्रीकृष्ण द्रोणाचार्य और कुरु पितामह [बालब्रह्मचारी] भीष्म के सिवा और कौन वीर अजेय अर्जुन के वेग को रोक सकता था! २१

महाराज, फिर वे दोनों कुरुकुल के वीर परस्पर अस्त्र-शस्त्र चलाकर युद्धक्रीड़ा करने लगे। उनके उस अद्भुत युद्ध और दिव्य अस्त्रों को देखकर लोगों के अचरज का ठिकाना न रहा। वे परस्पर प्राजापत्य, ऐन्द्र, आग्नेय, पाशुपत, कौबेर, वारुण, याम्य, वायव्य आदि दिव्य अस्त्रों का प्रयोग कर रहे थे। उस समय कोई "शाबाश अर्जुन!" कहता था, और कोई "धन्य भीष्म" कहता था। चारों ओर यही सुन पड़ता था कि हमने भीष्म और अर्जुन का सा दारुण युद्ध और कभी नहीं देखा।

फिर सब अस्त्रों के ज्ञाता दोनों वीर परस्पर प्रहार करते हुए अपने अपने युद्ध-कौशल और अस्त्रशिक्षा का परिचय देने लगे। इसी बीच में अर्जुन ने एक पैने बाण से भीष्म का धनुष काट डाला। भीष्म ने कुपित होकर दूसरा धनुष लिया। उस पर डोरी चढ़ाकर वे अर्जुन के ऊपर असंख्य बाण बरसाने लगे। फिर वे दोनों महाबली वीर ऐसी फुर्ती के साथ बाण बरसाने लगे कि उनमें से कौन अधिक फुर्तीला है—यह जानना कठिन ही नहीं, असम्भव हो गया। एक दूसरे पर लगातार बाण-वर्षा कर उन्होंने दसों दिशाओं को छा दिया। खड़े-खड़े युद्ध देखनेवाले चकित हो उठे। फिर महावीर अर्जुन ने भीष्म के रथ की ३० रक्षा करनेवाले सैनिकों को मारकर गिरा दिया। अर्जुन के गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाण आकाश में पहुँचकर हंसों की क़तार के समान देख पड़े।

इन्द्र आदि देवता, आकाशमार्ग में अपने विमानों पर बैठे हुए, अर्जुन के अस्त्र-शस्त्र चलाने के कौशल को देख रहे थे। प्रतापी गन्धर्वराज चित्रसेन अर्जुन के रण-कौशल और फुर्ती को देखकर बहुत ख़ुश हुआ। उसने इन्द्र से कहा—देखिए, अर्जुन के चलाये हुए बाण मानों एक साथ मिलकर दौड़ते जा रहे हैं। अर्जुन का रण-कौशल अद्भुत है। मनुष्यलोक में और कोई इन दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करना नहीं जानता। नहीं जान पड़ता कि महावीर अर्जुन कब बाण निकालते हैं, कब चढ़ाते हैं, कब छोड़ते और कब गाण्डीव धनुष को खींचते हैं। दोपहर ४० के सूर्य की ओर जैसे कोई देख नहीं सकता, वैसे ही परम प्रतापी तेजस्वी अर्जुन और भीष्म की ओर कोई सैनिक आँख भरकर नहीं देख सकता। ये दोनों वीर अपने अपूर्व कर्मों से संसार में प्रसिद्ध हैं। दोनों का पराक्रम भयानक और अनन्त है। दोनों ही दुर्जय हैं। चित्रसेन के मुँह से इस प्रकार भीष्म और अर्जुन की बड़ाई सुनकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और दोनों वीरों के मस्तक पर दिव्य फूलों की वर्षा करने लगे।

अब भीष्मजी अर्जुन के बायें भाग पर जाकर बाण चलाने लगे। तब हँसते हुए महावीर अर्जुन ने तीक्ष्ण धारवाले एक बाण से भीष्म का वह धनुष भी काट डाला। ऊपर से उनकी छाती में अर्जुन ने बहुत ही तीक्ष्ण दस बाण भी मारे। अर्जुन के बाण लगने से महाबाहु भीष्म बहुत ही व्यथित हुए। वे रथ का धुरा पकड़े हुए देर तक अचेत से हो गये। सारथी ने जब उन्हें अचेत देखा तब, उनके इस उपदेश को याद करके कि सारथी को रथी की और रथी को सारथी की रक्षा करनी
४९ चाहिए, वह उनको बचाने के लिए युद्धभूमि से रथ हटा ले गया।

पैंसठवाँ अध्याय

दुर्योधन से अर्जुन का युद्ध

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्! महारथी भीष्म जब युद्ध से हट गये तब दुर्योधन, धनुष हाथ में लेकर, सिंहनाद करता हुआ अर्जुन के सामने आया। शत्रु-सेना में निर्भय भाव से विचरते हुए उग्र तेजवाले अर्जुन को देखकर दुर्योधन ने, कान तक धनुष तानकर, एक भल्ल बाण उनके माथे में मारा। मस्तक में वह भल्ल बाण लगने से, एक शिखरवाले नीले रङ्ग के गिरिराज के समान, अर्जुन की शोभा हुई। अर्जुन के मस्तक से रक्त की धारा बहने लगी। उससे वह सुवर्ण-मण्डित भल्ल बाण चमक उठा। [महापराक्रमी अर्जुन उस बाण के लगने से क्रोध के मारे अधीर हो उठे।] तब वे गाण्डीव धनुष

पर [विष और अग्नि के समान दुर्द्धर्ष प्राणनाशक] बाण चढ़ाकर दुर्योधन पर प्रहार करने लगे। दुर्योधन भी उन पर लगातार बाण बरसाने लगा। इस प्रकार जिस समय अर्जुन और दुर्योधन से युद्ध हो रहा था उसी समय वीर विकर्ण भी पहाड़-सदृश ऊँचे एक मस्त हाथी पर चढ़कर बड़े वेग से अर्जुन की ओर चला। इस हाथी के चारों पैरों की रक्षा के लिए एक-एक रथ तैनात था। अर्जुन ने इस हाथी के मस्तक को ताककर, कान तक धनुष की डोरी खींचकर एक बाण चला दिया। इन्द्र के हाथ से छूटा हुआ वज्र जैसे किसी पहाड़ को फाड़ डाले

वैसे ही अर्जुन का चलाया हुआ वह बाण उस हाथी के मस्तक को फाड़कर पृथ्वी में घुस गया। उस प्रहार से वह हाथी बहुत ही पीड़ित होकर काँपकर उसी दम पृथ्वी पर गिर पड़ा और मर गया। यह देखकर विकर्ण बहुत ही डरा। वह हाथी की पीठ पर से कूदकर, जल्दी से एक सौ आठ पग भागकर, विविंशति के रथ
पर सवार हो गया। १०

फिर अर्जुन ने वैसा ही एक बाण मारकर दुर्योधन के हृदय में घाव कर दिया। अब वे अन्य योद्धाओं पर लगातार बाण बरसाने लगे। योद्धा लोग अर्जुन के बाणों से घायल होकर वहाँ से इधर-उधर भागने लगे। इन अद्भुत कर्मों को देख-सुनकर दुर्योधन घबरा गया और उस स्थान से भागने लगा। उस भयङ्कर वेषवाले, घायल, रक्त से भीगे हुए दुर्योधन को युद्ध-भूमि से भागते देखकर अर्जुन ने धिक्कार देते हुए कहा—दुर्योधन, तू युद्ध-भूमि से भागकर अपनी भारी कीर्ति को मिट्टी में मिला रहा है। देख, तू अभी तक राज्य से भ्रष्ट नहीं हुआ और तेरे राज्य-भ्रष्ट होने की घोषणा भी अभी नहीं हुई है। मैं यहाँ महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा से ही युद्ध करने आया हूँ। इसलिए लौटकर मेरे सामने आ। पहले की सब बातें याद कर। तू यदि युद्ध-भूमि से भागा जा रहा है तो तेरा दुर्योधन नाम व्यर्थ है। इस समय मुझे तेरे आगे-पीछे या आस-पास कोई रक्षक अथवा सहायक नहीं देख पड़ता। अच्छी बात है,
शीघ्र यहाँ से भागकर अपने प्राणों की रक्षा कर। १८

छाछठवाँ अध्याय

युद्ध का अन्त। अर्जुन की विजय

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, मस्त हाथी जैसे अंकुश की चोट खाकर लौटे वैसे ही अर्जुन के ये वचन सुनकर दुर्योधन लौट पड़ा। वह रथ पर चढ़कर फिर अर्जुन के सामने आया। साँप जैसे लात की चोट नहीं सह सकता वैसे ही अर्जुन के तिरस्कारपूर्ण वचन दुर्योधन से नहीं सहे गये। कर्ण ने बहुत ही घायल दुर्योधन को फिर युद्ध के लिए लौटते देखा।

तब उसने स्वस्थ होकर, दुर्योधन के उत्तर ओर से जाकर, अर्जुन पर आक्रमण किया। महारथी भीष्म भी लौटकर, दुर्योधन के पश्चिम ओर पहुँचकर, उसका बचाव करने लगे। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विविंशति और दुःशासन आदि योद्धा भी दुर्योधन की सहायता के लिए, धनुष बाण ले-लेकर, शीघ्र ही अर्जुन के सामने पहुँच गये। हंस (सूर्य) जैसे आती हुई मेघ-माला के सामने उपस्थित हो वैसे ही महावेगशाली कौरव योद्धाओं की सेना के प्रवाह को फिरते देखकर अर्जुन उत्साह के साथ उनके सामने आये। जैसे मेघ चारों ओर से घेरकर पहाड़ पर पानी बरसाते हैं वैसे ही वह कौरवों की सेना अर्जुन को चारों ओर से घेरकर उन पर लगातार बाणों और शस्त्रों की वर्षा करने लगी।

अब महावीर अर्जुन ने एक अस्त्र चलाकर कौरवों के अस्त्र-शस्त्रों को बेकाम कर दिया। फिर उन्होंने अव्यर्थ सम्मोहन अस्त्र प्रकट किया। उस अस्त्र का प्रयोग करते ही सब दिशाओं में बाण ही बाण देख पड़ने लगे। अर्जुन के गाण्डीव धनुष की प्रचण्ड टङ्कार से कौरवों के हृदय व्यथित होने लगे। फिर अर्जुन ने भयानक शब्दवाला महाशङ्ख बजाया।
१० उसका शब्द दसों दिशाओं, पृथ्वी और आकाश में गूज उठा। अर्जुन के शङ्खनाद और अस्त्र के प्रभाव से कौरव-पक्ष के सब वीर बेहोश हो गये। अचेत हो जाने के कारण उनके हाथों से धनुष-बाण गिर पड़े। वे निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर गये। उस समय अर्जुन को उत्तरा की बात याद आ गई। उन्होंने उत्तर से कहा—हे वीर, इस समय कौरव-पक्ष के सब वीर बेहोश हो गये हैं। इसलिए तुम झटपट जाकर द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के सफ़ेद कपड़े, कर्ण के पीले रङ्ग के कपड़े और अश्वत्थामा तथा दुर्योधन के नीले रङ्ग के कपड़े ले आओ। पितामह भीष्म इस सम्मोहन अस्त्र के संहार की युक्ति जानते हैं; इसी से, जान पड़ता है, वे अचेत नहीं हुए। इसलिए तुम उनके रथ की बाईं ओर से सावधानी के साथ इन वीरों के कपड़े लेने को जाओ।

अब राजा विराट के पुत्र उत्तर ने घोड़ों की रास छोड़ दी। वह रथ से उतरकर द्रोण आदि वीरों के पास गया और महारथियों के कपड़े लेकर वहाँ से फिर अर्जुन के रथ पर आ गया।

अब उसने उन सुवर्ण-माला-भूषित सफ़ेद घोड़ों को हाँका। वे घोड़े उसी समय समरभूमि को छोड़कर लौट पड़े। इसी समय पराक्रमी भीष्मजी वेग से अर्जुन के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे। तब अर्जुन ने मुड़कर तीक्ष्ण बाणों से उनके रथ के घोड़ों को मार डाला और उनके हृदय में दस बाण मारकर उन्हें मूर्च्छित कर दिया। इस प्रकार महावीर अर्जुन भीष्म को बाण मारकर और उनके सारथी को घायल करके कौरव-सेना के रथों के घेरे से बाहर निकले। उस समय उनकी शोभा मेघों से निकले हुए सूर्य के समान हुई।

अब कौरव-पक्ष के वीरों को होश आया। उन्होंने देखा कि इन्द्र-तुल्य प्रतापी अर्जुन युद्ध समाप्त करके अलग खड़े हैं। यह देखकर घबराया हुआ दुर्योधन अपनी ओर के वीरों से कहने लगा—आप लोग अर्जुन को क्यों छोड़े देते हैं? इस प्रकार घेरकर अर्जुन पर प्रहार कीजिए कि वह यहाँ से निकलकर न जा सके।

यह सुनकर पितामह भीष्म हँसकर बोले—भैया दुर्योधन, अभी तक तुम्हारा बल और बुद्धि कहाँ चली गई थी? जब तुम लोग अचेत हो गये थे, और तुम्हारे विचित्र धनुष और बाण हाथ २०
से छूटकर पृथ्वी पर गिर पड़े थे, तब अर्जुन ने तुम्हारे साथ कोई क्रूर व्यवहार नहीं किया। अवसर पाकर भी, धर्म के विचार से, उन्होंने किसी की हत्या नहीं की। अर्जुन धर्मात्मा हैं, उनका मन कभी पाप की ओर नहीं जाता। त्रैलोक्य के राज्य के लिए भी वे अपने धर्म का त्याग न करेंगे। यही कारण है कि आज के युद्ध में तुम लोगों की जान बच गई। हे कुरुकुलवीर, अब तुम शीघ्र अपने देश को लौट चलो, अर्जुन को विराट की गायें लेकर जाने दो। वृथा मोह में न पड़कर इस समय ऐसा उपाय सोचो, जिसमें स्वार्थ की हानि न हो।

वैशम्पायन कहते हैं—पितामह से अपने हित के वचन सुनकर, मनोरथ पूरा न होने से लम्बी साँसें लेता हुआ, मानी क्रोधी दुर्योधन चुप रह गया। भीष्म के हित-वाक्य सुनकर और अभ्युदय को प्राप्त अग्निरूपी अर्जुन के तेज को देखकर और-और वीर पुरुषों ने भी युद्ध से हटना ही अच्छा समझा। वे दुर्योधन की रक्षा करते हुए लौटने को तैयार हो गये।

श्रेष्ठ कुरुवीरों को लौटने के लिए तैयार देखकर अर्जुन ने पहले की तरह फिर बाणों से उन्हें प्रणाम किया। अर्जुन ने माथा नवाकर और बाणों के द्वारा भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य को प्रणाम करके एक विचित्र बाण से दुर्योधन के सिर का मुकुट काट डाला। फिर अन्य वीरों से इसी प्रकार चलते समय का सम्भाषण करके उन्होंने अपने गाण्डीव धनुष के शब्द से त्रिभुवन को प्रतिध्वनित कर दिया। अर्जुन के 'देवदत्त' शङ्ख के शब्द से शत्रुओं के हृदय मानों फटने लगे। अर्जुन की सुवर्ण-जाल-भूषित ध्वजा को देखकर शत्रुओं के हृदय डर के मारे व्याकुल हो उठे। अब अर्जुन ने उत्तर से कहा—चलो, घोड़ों को लौटाओ। तुम्हारी सब गायें लौट गईं।

देवता लोग भी कौरवों के साथ अकेले अर्जुन का अद्भुत युद्ध देखकर मन ही मन उनके
३० अद्भुत पराक्रम को सोचते और उसी की चर्चा करते हुए प्रसन्नता से अपने-अपने लोक को गये।

सड़सठवाँ अध्याय

उत्तर और अर्जुन का नगर में जाना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, युद्ध में इस तरह कौरवों को हराकर अर्जुन ने महाराज विराट की गायें लौटा लीं। कौरवों के भाग जाने पर कुरुसेना के कुछ विदेशी सिपाही घबराये हुए, पास के वन से निकलकर, हाथ जोड़कर अर्जुन के पास आये। वे डरे हुए थे। उनके बाल बिखरे हुए थे। वे भूख और प्यास के मारे व्याकुल हो रहे थे। उन्होंने [शरण में आकर] कहा—हे अर्जुन, हम आपके अनुगत हैं। आज्ञा दीजिए, हम आपकी क्या सेवा करें?

अर्जुन ने कहा—मैं तुम लोगों को अभय देता हूँ। तुम्हारा भला हो। मैं दुखी को और शरणागत को कभी नहीं मारता। उन सैनिकों ने अर्जुन से अभयदान पाकर प्रणाम किया और आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी आयु और यश बढ़े। इस प्रकार विमुख और शरणागत शत्रुओं को अभय देकर, मस्त हाथी की तरह, विजयी अर्जुन विराटनगरी की ओर चले। फिर कौरवों की सेना के वीरों को अर्जुन पर आक्रमण करने की हिम्मत नहीं पड़ी।

मेघमाला के समान उमड़ी हुई कौरव-सेना को शत्रुदमन अर्जुन ने [आँधी की तरह] भगाकर उत्तर को गले लगाया और कहा—कुमार, तुम तो यह जान गये हो कि पाण्डव लोग तुम्हारे पिता के यहाँ रहते हैं; किन्तु नगर में जाकर अभी यह बात प्रकट न करना। यदि वहाँ जाकर तुम एकाएक यह खबर दे दोगे तो डर के मारे राजा विराट के मर जाने की आशङ्का है।
१० कुमार, तुम पिता के आगे जाकर कहना कि तुम्हीं ने कौरवों को हराकर उनसे गायें छीन ली हैं।

उत्तर ने कहा—हे वीर, आपने जो यह अद्भुत काम किया है उसे करने की शक्ति मुझमें नहीं है। मैं इस समय इतना ही अङ्गीकार कर सकता हूँ कि आप जब तक अनुमति न देंगे तब तक आपकी बात पिता के आगे प्रकट न करूँगा। बाणों के लगने से घायल अर्जुन अब उसी

शमीवृक्ष के नीचे पहुँचे। तब अग्नि के समान प्रभाशाली महावानर और भूतगण दैवी माया के के साथ स्वर्ग को चले गये। अब वही पहले की सिंहचिह्नयुक्त ध्वजा उस रथ पर लगा दी गई। अर्जुन की आज्ञा से उत्तर ने वे तरकस बाण, धनुष आदि दिव्य शस्त्र फिर उसी पेड़ पर उसी तरह रख दिये। अब प्रसन्नतापूर्वक वह, वीर अर्जुन के साथ, मत्स्यनगर को चला। अर्जुन फिर वही वेणीधारी बृहन्नला का वेष बनाकर सारथी बन गये।

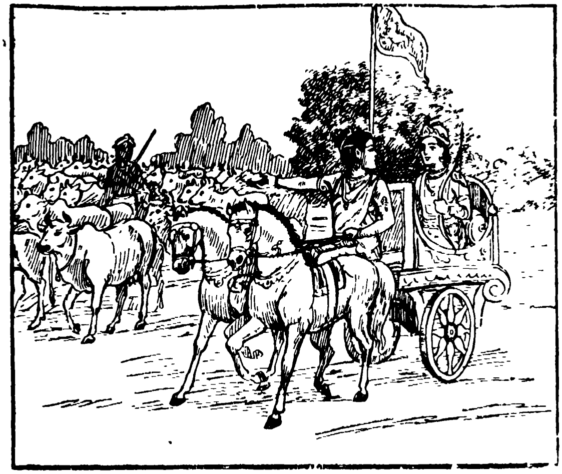

इधर उत्साह-हीन कौरव लोग दीन भाव से हस्तिनापुर की ओर लौट चले। नगर में प्रवेश करते समय अर्जुन ने उत्तर से कहा—
हे राजकुमार! देखो, तुम्हारी सब गायें गोपों के साथ लौटी आ रही हैं। अब इन ग्वालों को आज्ञा
दो कि ये गायों और घोड़ों को नहलाकर, पानी पिलाकर, नगर के भीतर जायँ और तुम्हारी विजय के
समाचार की घोषणा कर दें। हम लोग उस पहर चलेंगे। वैशम्पायन कहते हैं—अर्जुन के यों कहने २०
पर उत्तर ने जल्दी से दूतों और गोपों को आज्ञा दी कि तुम लोग नगर में जाकर खबर दो कि शत्रु
खदेड़ दिये गये और उनसे गायें छीन ली गईं। अब अर्जुन और उत्तर अपना पहले का वेष बनाकर,
सारथी और रथी बनकर, नगर के भीतर गये। २३

अड़सठवाँ अध्याय

विराट का युधिष्ठिर को पाँसे खींचकर मारना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! संग्राम में त्रिगर्त-नरेश को हराकर, बहुत सा धन और गोधन छीनकर, राजा विराट चारों पाण्डवों के साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने नगर में आये। सब प्रजा और ब्राह्मण लोग विराट को आगे से लेने के लिए आये। उन्होंने राजा विराट की जयध्वनि की। राजा ने भी उनका अभिनन्दन किया। [रनिवास के पास पहुँचकर] राजा ने सबको बिदा कर दिया। विराटदेश की विशाल सेना के स्वामी राजा विराट ने रनिवास में जाकर पूछा कि प्यारे कुमार उत्तर कहाँ गये हैं। रानी और राजकुमारियों ने कहा—महाराज, आपकी उत्तर ओर की गोशाला की सब गायों को भीष्म, कृप, कर्ण आदि

महारथी कौरव हर ले गये हैं। यह खबर पाते ही कुपित होकर साहस के साथ विजय पाने के लिए, केवल बृहन्नला को साथ ले, राजकुमार उनसे लड़ने गये हैं। यह खबर पाकर राजा विराट को बड़ा खेद हुआ। उन्होंने उसी समय मन्त्रियों को बुलाकर कहा—हे मन्त्रियो, मुझे जान पड़ता है, कौरव लोग त्रिगर्त-नरेश के भाग जाने की खबर पाकर कभी वहाँ नहीं ठहरेंगे। ख़ैर, जो लोग इस युद्ध से लौटकर आये हैं और घायल नहीं हैं वे योद्धा, उत्तर के प्राणों की रक्षा के लिए, बहुत सी सेना लेकर अभी जायँ।

यह आज्ञा देकर मत्स्यराज विराट ने सैनिकों से कहा—तुम हाथी, घोड़े, रथ आदि पर सवार होकर अभी युद्ध-भूमि में जाकर देखो कि उत्तर कुमार जीवित हैं या नहीं। इसी दम आकर मुझे यह खबर दो। मैं तो समझता हूँ कि जब एक नपुंसक सारथी बनकर गया है तब अवश्य ही कुमार अब जीते न होंगे। वैशम्पायन कहते हैं कि विराट के ये वचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर मुसकाये और बोले—महाराज, बृहन्नला राजकुमार का सारथी बनकर गया है तो कभी कोई आपकी गायें हरकर नहीं ले जा सकता। जब बृहन्नला सारथी है तब राजकुमार उत्तर के लिए योद्धाओं समेत कौरवों को जीत लेना कुछ कठिन काम नहीं; इस दशा में यदि देवता, असुर, सिद्ध और यक्ष भी सामना करेंगे तो कुंअर उनके भी छक्के छुड़ा देंगे।

वैशम्पायन कहते हैं कि इसी बीच में उत्तर के भेजे हुए दूतों ने राजसभा में आकर राजकुमार की जीत का समाचार दिया। मन्त्री ने विराट को विजय की खबर सुनाकर कहा—राजन्! राजकुमार उत्तर सब कौरवों को हराकर, सब गायें छीनकर, सारथी के साथ राज़ी-ख़ुशी से लौटे आ रहे हैं। तब राजा युधिष्ठिर ने कहा—राजन्, आज भाग्यबल से कौरव हराये गये और आपकी गायें लौट आई हैं। जो हो, यह कुछ बड़े आश्चर्य की बात नहीं हुई जो आपके कुमार ने कौरवों को परास्त कर दिया। बृहन्नला जिसका सारथी है उसे जीतना ही चाहिए।

वैशम्पायन कहते हैं कि प्रसन्नता के मारे विराट के शरीर में रोमाञ्च हो आया। उन्होंने ख़बर लानेवाले दूतों को बहुत सा पुरस्कार देकर मन्त्रियों से कहा—अभी सड़कों पर पताकाएँ

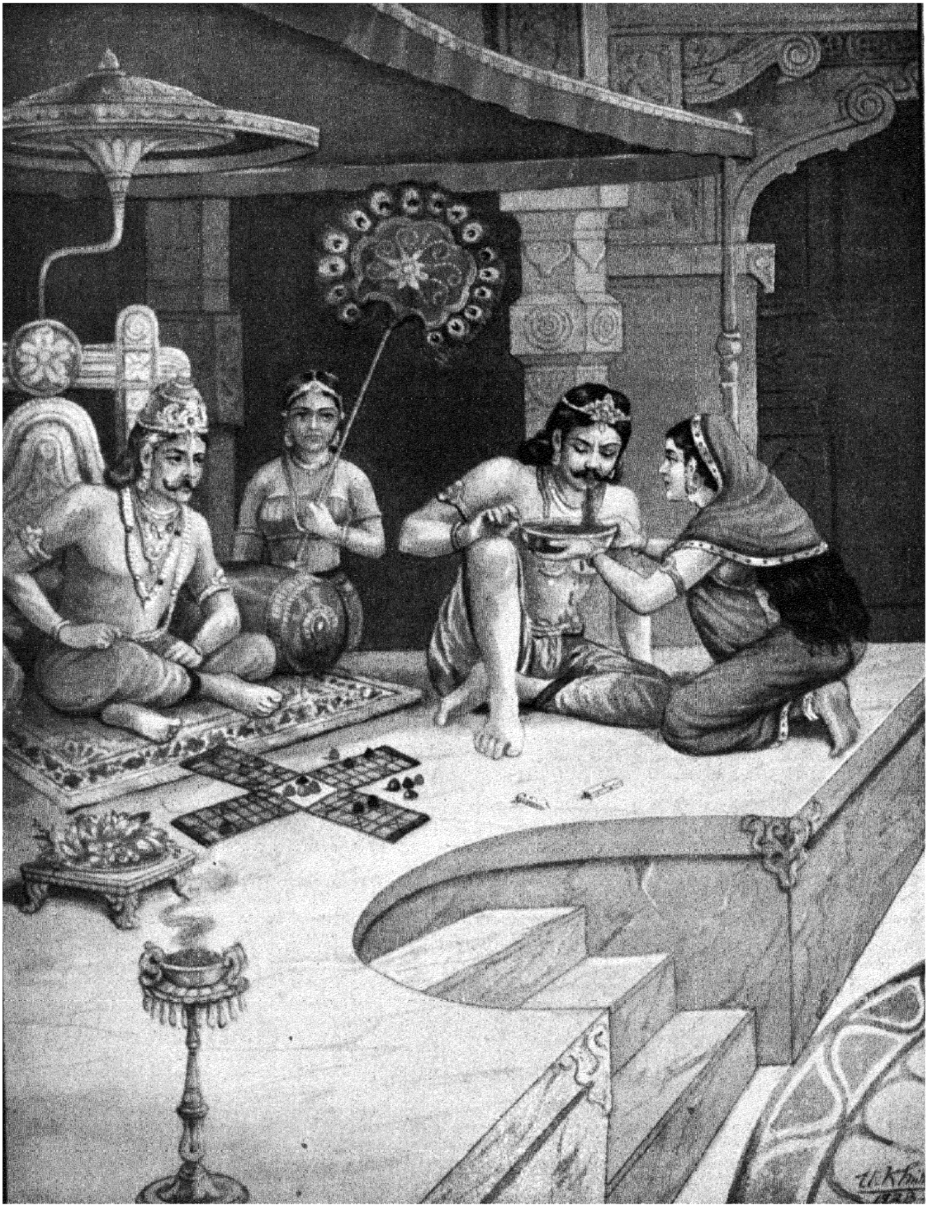

यों झपट कर विराट ने अपने हाथ के पाँसे धर्मराज के मुँह पर खींच कर मारे। .... द्रौपदी ने सोने के कटोरे में पानी से वह रक्त धो दिया।—पृ० १४७८

फहराने की आज्ञा दो। फूल-माला आदि से देवताओं की पूजा कराओ। योद्धा लोग, शृङ्गार किये हुए वेश्याएँ, बालक और बाजेवाले आगे से जाकर मेरे पुत्र का सम्मान करें। बढ़िया हाथी पर बैठकर, चौराहों पर जाकर, ढिढ़ोरा पीटनेवाला मेरी विजय की घोषणा करें। कुमारियासहित उत्तरा कुमारी, सुन्दर पोशाक और गहने पहनकर, उत्तर की अगवानी के लिए जायँ।

वैशम्पायन कहते हैं—राजा की आज्ञा से नगर में सब जगह नगाड़े, तुरही, शङ्ख आदि मङ्गल-
सूचक बाजे बजने लगे। मनोहर वेष बनाये स्त्रियाँ उत्तर की अगवानी के लिए चलीं। सूत और
बन्दीजन राजकुमार को लेने के लिए नगर से बाहर निकले। इन सबको जाने की आज्ञा देकर महाप्राज्ञ
विराट ने सैरन्ध्री को बुलाकर कहा—हे सैरन्ध्री, चौसर और पाँसे ले आओ। मैं इस समय चौसर
खेलूँगा। यह सुनकर पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने कहा—राजन्, मैंने बड़ों से सुन रक्खा है कि हर्ष में मग्न ३०
और धूर्त पुरुष के साथ जुआ न खेलना चाहिए। मैं इस समय आपको अत्यन्त प्रसन्न देख रहा हूँ।
इसी से आपके साथ खेलने को मेरा जी नहीं चाहता। मैं न खेलूँगा। और जो आज्ञा हो उसे मैं,
आपकी प्रसन्नता के लिए, करने को तैयार हूँ।

राजा विराट ने कहा—हे कङ्क, जुआ खेले बिना मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। जो मैंने जुआ ही न खेला तो स्त्री, गाय और अन्य प्रकार की सम्पत्ति की रक्षा किस काम की! [जुआ खेलने में मेरा सर्वस्व चला जाय तो भी मुझे क्लेश नहीं हो सकता। इसलिए आओ, चौसर खेलें।] कङ्क ने कहा—महाराज, जुआ खेलने में अनेक दोष हैं। जुआ खेलने से इस समय आपका क्या उपकार होगा? मैं तो समझता हूँ कि इस समय जुआ न खेलना ही ठीक है। आपने सुना होगा कि पाण्डव युधिष्ठिर इस जुए के कारण ही देवता-सदृश भाइयों को और अपने विपुल साम्राज्य को खो बैठे हैं। इसी से जुआ खेलना मुझे पसन्द नहीं। अथवा, जो आपकी ऐसी ही इच्छा हुई है तो कहिए, मैं इस समय आपके साथ चौसर खेलूँ।

विराट के अधिक आग्रह से चौसर का खेल होने लगा। विराट ने राजा युधिष्ठिर से कहा—"हे कङ्क, देखो, आज मेरे बेटे ने ऐसे-ऐसे बड़े कौरव-वीरों को युद्ध में

सहज ही हरा दिया।" युधिष्ठिर ने फिर वही बात कही कि महाराज, बृहन्नला जिसका सारथी है वह अवश्य युद्ध में जय प्राप्त करेगा। युधिष्ठिर के मुँह से बारम्बार यही बात सुनकर राजा विराट को क्रोध चढ़ आया। उन्होंने कुपित होकर कहा—हे कङ्क! युद्ध में मेरा बेटा उत्तर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि कौरव-वीरों को क्यों नहीं हरा सकता? हे अधम ब्राह्मण, तुम एक नपुंसक की तुलना मेरे पुत्र के साथ कर रहे हो! तुम्हें यह ज्ञान नहीं कि क्या कहना चाहिए और क्या न कहना चाहिए। अनुचित तुलना करके इस समय तुम मेरा अपमान कर रहे हो। खैर,
४० सखा समझकर मैं तुम्हारे अपराध को क्षमा किये देता हूँ किन्तु जीते रहने की इच्छा हो तो फिर कभी ऐसी बात न कहना।

युधिष्ठिर ने कहा—महाराज! आचार्य द्रोण, पितामह भीष्म, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन और अन्य महारथी यदि साक्षात् इन्द्र को भी साथ लेकर समरभूमि में आवें तो बृहन्नला उनका सामना कर सकता है। बृहन्नला के सिवा और कोई उन महारथियों से युद्ध नहीं कर सकता। बाहु-बल में बृहन्नला के समान वीर न कोई हुआ है और न होगा। अत्यन्त घोर संग्राम में बृहन्नला का हृदय आनन्दित और उत्साहित हो उठता है। जो मनुष्य सब देवताओं, दानवों और मनुष्यों को अकेला एक साथ सहज ही जीत सकता है उसकी सहायता पाकर युद्ध में विजयी कौन नहीं हो सकता?

"कङ्क! मैं बार-बार तुम्हें मना करता हूँ, तो भी तुम चुप नहीं रहते। जान पड़ता है, कोई दण्ड देनेवाला न होने से कोई भी धर्ममार्ग में नहीं चलता। देखो, मैं फिर कहता हूँ, तुम ऐसी बात अब कभी न कहना।" यों डपटकर विराट ने अपने हाथ के पाँसे धर्मराज के मुँह पर खींचकर मारे। पाँसे लगने से युधिष्ठिर की नाक से रक्त की धारा बह चली। परन्तु वह रक्त पृथ्वी पर नहीं गिरने पाया, युधिष्ठिर ने उसे अपने हाथ में ले लिया। द्रौपदी पास ही खड़ी थीं। युधिष्ठिर ने उनकी ओर देखा। वे उनका अभिप्राय समझकर उसी समय जल से भरा सोने का बर्तन ले आईं। उन्होंने पानी से वह रक्त धो दिया।

उधर चन्दन-माला आदि से अलङ्कृत और सम्मानित होकर उत्तर प्रसन्नतापूर्वक नगर में
५० आया। नगर की और राज्य की प्रजा ने उसका अभिनन्दन किया। इस प्रकार राजभवन के द्वार पर पहुँचकर उत्तर ने पिता के पास खबर देने के लिए द्वारपाल को भेजा।

राजकुमार की आज्ञा से द्वारपाल ने विराट के पास जाकर कहा—महाराज, विजयी राजकुमार, बृहन्नला के साथ, द्वार पर आ गये हैं। पुत्र के आने की खबर से अत्यन्त प्रसन्न होकर विराट ने कहा—हे द्वारपाल, तुम उन दोनों को अभी मेरे पास ले आओ। उन्हें देखने के लिए मैं उत्कण्ठित हो रहा हूँ। तब धर्मराज युधिष्ठिर ने चुपके से द्वारपाल के कान में कहा—तुम जाकर अकेले उत्तर को यहाँ ले आओ। बृहन्नला यहाँ न आने पावे; क्योंकि उसकी प्रतिज्ञा

है कि जो कोई युद्ध के सिवा अन्य समय मेरे (युधिष्ठिर के) शरीर में घाव करेगा या मेरा ख़ून निकालेगा, उसे वह कभी जीता न रहने देगा। इस कारण यदि बृहन्नला यहाँ आकर मेरे शरीर से रक्त बहता देखेगा तो मन्त्री-सेना-वाहन आदि सहित राजा विराट को मार डालेगा।

वैशम्पायन कहते हैं—इसी समय उत्तर ने सभा-भवन में जाकर पिता के चरणों की वन्दना करके कङ्क को भी प्रणाम किया। उत्तर ने देखा कि युधिष्ठिर ख़ून से तर और पीड़ित होकर पृथ्वी पर बैठे हुए हैं। सैरन्ध्री उनकी सेवा कर रही है। इससे घबराकर उत्तर ने पिता से पूछा—राजन्, किस आदमी ने इनको मारा है? यह पाप किसने किया है?

विराट ने कहा—बेटा, तुमने बड़े-बड़े वीर पुरुषों को परास्त किया है, यह ख़बर पाकर मैं प्रसन्न होकर तुम्हारी बड़ाई कर रहा था। किन्तु ये उस पर ध्यान न देकर बार-बार बृहन्नला की बड़ाई करने
लगे। इससे नाराज़ होकर मैंने ही इन्हें मारा है। ६०

उत्तर ने कहा—महाराज, इन्हें मारकर आपने बड़ा अनुचित काम किया। अब इन्हें इसी दम मना लीजिए; नहीं तो ब्रह्मतेज से आप जड़मूल से भस्म हो जायँगे।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, यह सुनकर विराट बहुत घबरा गये। उन्होंने राख में छिपी हुई आग के समान महातेजस्वी धर्मराज युधिष्ठिर के आगे हाथ जोड़कर उनसे क्षमा-प्रार्थना की। युधिष्ठिर ने कहा—राजन्, मैं तो बहुत पहले ही क्षमा कर चुका। मुझे इस समय आपके ऊपर तनिक भी क्रोध नहीं है। जो मेरा ख़ून नाक से पृथ्वी पर गिर पड़ता तो अवश्य ही आप राज्यसहित नष्ट हो जाते। यद्यपि आपने बिना अपराध के मुझे मारा है तो भी उसके लिए मैं आपको अपराधी नहीं समझता। यह प्रसिद्ध है कि बलवान् स्वामी लोग एकाएक अपने भृत्यों के ऊपर कुपित हो बैठते हैं।

वैशम्पायन कहते हैं—युधिष्ठिर की नाक से ख़ून टपकना बन्द होने पर बृहन्नला ने सभा में आकर राजा विराट को और कङ्क को प्रणाम किया। महाराज विराट बृहन्नला का अभिनन्दन करके उसके सामने ही युद्ध से लौटे हुए उत्तर कुमार की बड़ाई करने लगे। वे कहने लगे—बेटा, तुमसे आज मैं पुत्रवाला हुआ। तुम्हारे समान पुत्र मेरे न हुआ है और न होगा। पुत्र, लगातार युद्ध करके भी कभी न थकने या घबरानेवाले महारथी कर्ण से तुम किस तरह भिड़े? सारे
संसार में जिनके समान कोई योद्धा नहीं है उन भीष्म से तुमने किस तरह युद्ध किया? वृष्णि- ७०
वंशी यादव, कौरव और अन्यान्य क्षत्रियकुलों के आचार्य, सब अस्त्रों के जाननेवाले, महाबली द्रोणाचार्य से तुमने कैसे युद्ध किया? सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, महाशूर, अश्वत्थामा से तुम कैसे लड़े? युद्ध-भूमि में जिन्हें देखकर योद्धा लोग उस बैपारी की तरह सन्नाटे में आ जाते हैं जिसका सर्वस्व लुट गया हो, उन कृपाचार्य से तुम कैसे लड़े? जो बाण से पहाड़ को तोड़ सकते हैं उन राजपुत्र दुर्योधन से तुमने कैसे युद्ध किया? जो हो, महापराक्रमी कौरव मेरी सब

गायें हर ले गये थे; मांसभोजी सिंह जिस तरह शिकार को छीन लेता है उसी तरह तुम युद्ध में उन्हें
७६ हराकर गायों को फेर लाये। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि बलवान् शत्रुओं को नीचा देखना पड़ा।

उनहत्तरवाँ अध्याय

उत्तर का उत्तर

उत्तर ने कहा—पिताजी, मैंने स्वयं न तो उन शत्रुओं को परास्त किया और न मैं गायें ही लौटाकर लाया हूँ। एक देवपुत्र ने आकर यह अद्भुत काम किया है। मैं शत्रुसेना से डरकर भागा था; उन देवपुत्र ने आकर मुझे रोका। उन्होंने खुद रथ पर बैठकर कौरवों को परास्त किया और गायें लौटा लीं। अकेले ही उन्होंने अपने पैने बाणों से कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, भीष्म और दुर्योधन, इन छः महारथियों को हरा दिया। यह देख दुर्योधन और विकर्ण आदि डरकर भागने लगे। तब उन्हीं देवकुमार ने दुर्योधन से कहा—हे कुरुराज दुर्योधन, कहाँ भागे जा रहे हो? भागकर हस्तिनापुर में भी तुम छुटकारा न पा सकोगे। इस समय अपना बल-वीर्य दिखाकर, युद्ध करके, अपनी जान बचाने की चेष्टा करो। भागकर तो तुम किसी तरह बच नहीं सकते। युद्ध में जीत जाओगे तो सारी पृथ्वी के चक्रवर्ती राजा बनोगे और मारे जाओगे तो स्वर्गलोक में जाकर सुख भोगोगे।

ये बातें सुनकर दुर्योधन क्रोध से अधीर हो उठे। वे अपने सचिवों और सहायकों सहित वज्रसदृश बाणों की वर्षा करते और क्रोधित साँप की तरह फुफकारते हुए लौट पड़े। दुर्योधन की वह भयानक सूरत देखकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये, हृदय धड़कने लगा। परन्तु उन सिंह के समान पराक्रमी साहसी देवकुमार ने हँसते-हँसते अकेले ही उन छहों महारथियों को हरा दिया। उन्हें अचेत करके उनके कपड़े भी ले लिये। सिंह जैसे मृगों के झुण्ड को मारकर भगा देता है वैसे ही वे बली देवपुत्र सेना सहित कौरव
११ वीरों को भगा करके उनका उपहास करने लगे।

राजा विराट ने कहा—बेटा, कौरवों को हराकर मेरे गोधन को लौटाने और तुम्हें बचानेवाले महायशस्वी महाबाहु महावीर वे देवपुत्र इस समय कहाँ हैं? उनको देखने और उनका सम्मान करने के लिए मैं अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा हूँ।

उत्तर ने कहा—महाराज, वे तो इस समय अन्तर्द्धान हो गये हैं। शायद कल या परसों फिर यहाँ आकर प्रकट हों। वैशम्पायन कहते हैं—उस समय महाराज विराट को नक़ली वेष बनाये हुए अर्जुन का हाल कुछ भी न मालूम हुआ।

इसके बाद महावीर अर्जुन, विराट राजा से आज्ञा लेकर, राजकुमारी उत्तरा के पास गये। वहाँ उन्होंने वे सब कपड़े उत्तरा को दे दिये। उन मूल्यवान् रङ्ग-बिरङ्गे नये कपड़ों को पाकर राजकुमारी उत्तरा परम प्रसन्न हुई। फिर अर्जुन ने राजकुमार के साथ एकान्त में सलाह करके आगे के लिए अपना कर्त्तव्य निश्चित किया और युधिष्ठिर के पास जाकर उनसे सब निवेदन किया। अन्त को पाँचों पाण्डव मिलकर प्रसन्नतापूर्वक, उत्तर के साथ जो सलाह की थी उसी के अनुसार, कार्य करने को तैयार हुए। १९

वैवाहिकपर्व

सत्तरवाँ अध्याय

पाण्डवों का प्रकट होना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! इसके बाद तीसरे दिन प्रतिज्ञा के बन्धन से मुक्त पाँचों पाण्डव, नहा-धोकर, सफ़ेद कपड़े और अनेक प्रकार के गहने पहनकर, राजा विराट की सभा में आये [वहाँ आकर महाराज युधिष्ठिर राजा विराट के सिंहासन पर बैठ गये।] द्वार पर जैसे मस्त हाथी की शोभा होती है, घर में वेदी पर जैसे अग्नि की शोभा होती है, वैसे ही विराट की सभा में श्रेष्ठ आसनों पर प्रभावशाली पाँचों पाण्डव शोभायमान हुए। इसी समय महाराज विराट राज-काज करने को राजसभा में आये। वहाँ अग्नि के समान तेजस्वी पाण्डवों को [अपने] श्रेष्ठ आसन पर बैठे देखकर वे क्रुद्ध हो गये। फिर पल भर सोचकर इन्होंने, देवमण्डली के बीच में बैठे हुए इन्द्र के समान तेजस्वी धर्मराज युधिष्ठिर से कहा—हे कङ्क, मैंने जुआ खेलने के लिए तुमको अपना मुख्य मुसाहब बनाकर सभा में रक्खा था। इस समय तुम बढ़िया कपड़े-गहने पहनकर इस राजसिंहासन पर क्यों बैठ गये हो?

वैशम्पायन कहते हैं कि विराट के वचन सुनकर, मुसकाते हुए अर्जुन ने, दिल्लगी के तौर पर कहा—राजन्! ये इन्द्र के भी आधे आसन पर बैठने की योग्यता रखनेवाले, स्वाध्याय-संपन्न, यज्ञनिरत, दृढ़व्रत, धर्मस्वरूप, अलौकिक बुद्धिवाले, तपस्वी, नगर और जनपद में रहनेवाली सभी १०

प्रजा को प्यारे, महर्षितुल्य, महातेजस्वी, महापुरुष, जगत्प्रसिद्ध, कुरुकुलतिलक महाराज युधिष्ठिर
हैं। देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, किन्नर, नाग आदि किसी को इनके समान अस्त्र-विद्या का ज्ञान
नहीं है। ये बलवान्, गम्भीर, कार्य-चतुर, सत्यवादी और जितेन्द्रिय हैं। धन का सञ्चय करने
में ये इन्द्र और यक्षराज कुबेर के समान हैं। ये महातेजस्वी महाराज मनु के समान प्रजा पर कृपा
रखते और उसका प्रतिपाल करते हैं। सूर्य की प्रभा के समान इनकी कांति से सब दिशाएँ उज्ज्वल
हो रही हैं। ये जब अपने राज्य में, कुरुकुल में, रहते थे तब महावेगशाली, सुवर्ण-मालाओं से भूषित,
दस हजार मस्त हाथी और बढ़िया घोड़ों से युक्त सुवर्ण-भूषित तीस हजार रथ इनकी सवारी के पीछे
चलते थे। जैसे महर्षि लोग इन्द्र की उपासना करते हैं वैसे ही उज्ज्वल मणिमय कुण्डल पहनने
२० वाले आठ सौ सूत और मागध एकत्र होकर इनके गुण गाते और इनकी स्तुति करते थे। राजन्, कुबेर
की सेवा देवता जैसे अनुचरों के समान करते हैं वैसे ही कुरुवंश के वीर और अन्य क्षत्रिय राजा इनकी
सेवा और आराधना करते थे। इन्होंने स्वाधीन या पराधीन सभी राजाओं को बनियों की तरह अपने
अधीन करके उनसे 'कर' लिया है। इन सच्चरित्र और दृढ़व्रत महात्मा से अट्ठासी हजार स्नातक ब्राह्मणों
की जीविका चलती थी। प्रजा के जो लोग वृद्ध, अनाथ, लँगड़े-अपाहिज, दीन थे उनका पालन ये
अपने पुत्र के समान करते थे। ये बड़े ही धर्मात्मा, क्रोधरहित और जितेन्द्रिय हैं। इनकी सम्पत्ति और
प्रताप को देखकर अपने अनुचरों सहित दुर्योधन, कर्ण और शकुनि सदा जला करते हैं। उन्हें घड़ी
२८ भर भी चैन नहीं मिलता। महाराज, ऐसे असंख्य गुणों से युक्त महाराज युधिष्ठिर राजा के सिंहा-
सन पर बैठने के योग्य क्यों नहीं हैं?

इकहत्तरवाँ अध्याय

पाण्डवों से विराट की बातचीत और परिचय

विराट ने कहा—जो यही राजा युधिष्ठिर हैं तो इनके और भाई भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव कहाँ हैं? इनकी पत्नी यशस्विनी द्रौपदी कहाँ है? यह तो किसी को मालूम ही नहीं कि दुर्योधन से जुए में हारकर स्त्रीसहित पाँचों पाण्डव कहाँ चले गये हैं।

अर्जुन ने कहा—राजन्, आपके यहाँ जो बल्लव नाम से प्रसिद्ध होकर रसोइये का काम करते थे वही ये पराक्रमी भीमसेन हैं। यही द्रौपदी का प्रिय करने के लिए गन्धमादन पर्वत पर जाकर क्रोधित यक्षों को मारकर सुगन्धित दिव्य और सौगन्धिक कमल ले आये थे। दुरात्मा कीचक को मारनेवाले पराक्रमी गन्धर्व यही हैं। इन्हीं ने आपके रनिवास में बाघ, भालू, जङ्गली सुअर आदि [खूनी जानवरों] से लड़कर उन्हें मारा है। आपके घोड़ों की देखरेख करनेवाले अश्वपाल ग्रन्थिक ही वीरश्रेष्ठ नकुल हैं। आपके यहाँ गोपालन के कार्य में नियुक्त तन्तिपाल ही सहदेव हैं। जिनके लिए कीचक और उपकीचक का वध हुआ है वह परमसुन्दरी, पतिव्रता, कमलनयनी,

कृशाङ्गी, चारुहासिनी सैरन्ध्री ही महाराज द्रुपदकी कन्या द्रौपदी हैं। और मैं, भीमसेन से छोटा तथा नकुल सहदेव से बड़ा, अर्जुन हूँ। महाराज, बच्चा जैसे गर्भ में अच्छी तरह रहता है वैसे ही हम लोग आपके यहाँ वर्ष भर बड़े सुख से अज्ञातवास में रहे हैं। १०

वैशम्पायन कहते हैं कि अर्जुन जब इस तरह अपना और भाइयों का परिचय दे चुके तब राजकुमार उत्तर फिर [सबके सामने] अपने पिता को उन लोगों का परिचय इस प्रकार देने लगा—महाराज, वह जो सुवर्ण सदृश गोरे रङ्ग के, सिंह के समान रोबीले, ऊँची नाक और लाल रङ्ग के बड़े नेत्रोंवाले महापुरुष देख पड़ते हैं वही महाराज युधिष्ठिर हैं। वह मस्त हाथी की तरह चलनेवाले, तपे हुए सोने के रङ्गवाले, ऊँचे कन्धों और लम्बी भुजाओं से शोभित महापुरुष ही महाबली भीमसेन हैं। इनके पास ही वह जो मस्त हाथी और सिंह के समान, साँवले, गजराजगामी, युवा पुरुष खड़े हैं वही अद्वितीय योद्धा अर्जुन हैं। महाराज युधिष्ठिर के पास इन्द्र और विष्णु के समान जो बैठे हुए हैं, मनुष्यलोक में रूप-लावण्य, बल और शील में जिनके समान और कोई नहीं है वही नकुल और सहदेव हैं। और, वह जो साक्षात् पार्वती या लक्ष्मी के समान सुन्दरी, नीले कमल के रङ्गवाली, देववधू सी शोभायमान स्त्री इन लोगों के पास बैठी हैं वही यशस्विनी द्रौपदी हैं।

वैशम्पायन कहते हैं कि पिता के सामने इस प्रकार पाण्डवों का परिचय देकर राजकुमार उत्तर अन्त को इस तरह अर्जुन के बल और विक्रम का बखान करने लगा—महाराज, इन्हीं अर्जुन ने मृगों का संहार करनेवाले सिंह की तरह शत्रुओं का नाश किया है। ये रथों, हाथियों और घोड़ों का विनाश करते हुए बेखटके युद्ध-भूमि में विचरे हैं। इनके एक ही बाण की चोट खाकर बड़े-बड़े हाथी, दोनों दाँत पृथ्वी पर टेककर, गिर पड़े और मर गये हैं। इन्हीं ने युद्ध में कौरव-पक्ष के सब वीरों को हराया है और यही आपकी गायें उनसे छीन लाये हैं। इन्हीं के शङ्खनाद २० से मेरे दोनों कान बहरे से हो गये हैं।

यह सुनकर प्रतापी महाराज विराट बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—तो प्रतापी पाण्डवों को प्रसन्न करने का अब यह अवसर प्राप्त हुआ है। इस कारण जो तुम्हारी सलाह हो तो कहो, मैं अर्जुन को तुम्हारी बहन उत्तरा देकर सन्तुष्ट कर दूँ। उत्तर ने कहा—महाराज, मेरी समझ में महात्मा पाण्डव सर्वथा हमारे पूज्य और माननीय हैं। उन्हें पूजा और मान देने का ठीक समय भी आ पहुँचा है। इसलिए अब आप अवश्य सत्कार के योग्य भाग्यवान् पाण्डवों का उचित सत्कार और सम्मान कीजिए।

विराट ने कहा—मैं भी युद्ध में शत्रुओं के हाथ पड़ गया था। भीमसेन ने ही मुझे छुड़ाया है और मेरी गायें शत्रुओं से छीनी हैं। मतलब यह कि हम लोगों ने इन्हीं पाण्डवों के बाहुबल से युद्ध में विजय पाई है। इसलिए आओ, हम लोग मन्त्रियों और नगरवासियों सहित युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डवों को मनावें। आशा है, हमने बिना जाने-पहचाने जो कुछ कहा-सुना है उसे धर्मात्मा महाराज युधिष्ठिर क्षमा कर देंगे।

अब प्रसन्नहृदय राजा विराट पहले महाराज युधिष्ठिर के पास गये। सत्कारपूर्वक शिष्टाचार के साथ उन्होंने राजा युधिष्ठिर को राजदण्ड, कोष और नगरीसहित अपना सारा राज्य अर्पण कर दिया। महाप्रतापी राजा विराट ने फिर बारम्बार अपने सौभाग्य का बखान करते हुए पाँचों पाण्डवों के मस्तक सूँघकर उन्हें हृदय से लगाया। पाण्डवों को बारम्बार देखकर भी वे किसी तरह तृप्त न हुए। अब राजा विराट ने प्रसन्नतापूर्वक राजा युधिष्ठिर से कहा—बड़े भाग्य और प्रसन्नता की बात है कि आप लोग बिना किसी विघ्नबाधा के वन से यहाँ आकर वर्ष भर अज्ञातवास में सकुशल रहे। दुष्ट दुर्योधन आदि को आप लोगों का पता नहीं लगा। राज्य आदि मेरी जो कुछ सम्पत्ति है सो सब आप ही लोगों की है। आप बिना किसी शङ्का से उसे ग्रहण कीजिए। वीरवर अर्जुन कुमारी उत्तरा के योग्य पात्र हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि वे उसे स्वीकार करें।

यह सुनकर युधिष्ठिर ने अर्जुन की ओर देखा। तब अर्जुन ने विराट से कहा—राजन्, मत्स्यकुल से भरतवंश का सम्बन्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। मैं आपकी इस इच्छा का अनुमोदन करता हुआ आपकी कन्या को अपने बेटे अभिमन्यु के लिए ग्रहण करता हूँ। वह मेरी बहू होगी।

बहत्तरवाँ अध्याय

उत्तरा का ब्याह

[अर्जुन के वचन सुनकर] राजा विराट ने पूछा—हे अर्जुन, तुमने मेरी उत्तरा को स्त्री रूप से ग्रहण करना क्यों अस्वीकार कर दिया ? अर्जुन ने कहा—राजन्, मैं लगातार आपके रनिवास में आपकी बेटी के साथ रहा हूँ। आपकी कन्या ने, गुप्त या प्रकट, सभी बातों में

मुझ पर पिता के समान विश्वास किया है। मैं उसे अत्यन्त स्नेह के साथ नाचना-गाना आदि सिखाता था और वह मुझे पूजनीय गुरु के समान मानती थी। मैं उस सयानी कुमारी के साथ एक साल तक रह चुका हूँ। यदि मैं इस समय उससे ब्याह कर लूँगा तो आपको और अन्य लोगों को मेरे चरित्र के बारे में सन्देह होगा। महाराज! मैंने निर्दोष चित्त से, जितेन्द्रिय रहकर, आपकी कन्या को शिक्षा दी है। वह अगर मेरे बेटे की स्त्री होगी तो किसी को आपकी कन्या पर, मेरे पुत्र पर या मेरे चरित्र पर किसी प्रकार का दोष लगाने का मौका नहीं मिलेगा। हे शत्रुदमन, मैं बदनामी (लोकापवाद) से बहुत डरता हूँ। इसी कारण उत्तरा को स्त्रीरूप से न ग्रहण करके पुत्रवधू के रूप से स्वीकार करता हूँ। श्रीकृष्ण का भानजा, देवकुमार-सदृश तेजस्वी, प्रतापी, वीर, मेरा पुत्र अभिमन्यु आपका दामाद और उत्तरा का पति होने के लिए सब तरह उपयुक्त है।

विराट ने कहा—हे अर्जुन, तुम बड़े धर्मात्मा हो। उत्तरा से ब्याह न करना तुम्हारे ही
योग्य बात है। अब तुम जो कुछ ठीक समझो सो करो। तुम्हारे साथ सम्बन्ध हो जाने से १०
मैं अपने को कृतार्थ समझता हूँ। मेरी सब इच्छाएँ पूरी हो गईं।

वैशम्पायन कहते हैं—इसके बाद महाराज युधिष्ठिर ने भी परस्पर के इस प्रशंसनीय सम्बन्ध का अनुमोदन किया। राजा विराट के और पाण्डवों के जो इष्ट-मित्र नातेदार थे, उनके यहाँ उसी समय यह ख़बर और ब्याह का न्यौता लेकर दूत रवाना हुए। धर्मराज युधिष्ठिर ने उसी समय एक दूत के द्वारा यह समाचार कृष्णचन्द्र के पास भेजा।

इसके बाद ही यह ख़बर सब जगह फैल गई कि अज्ञातवास का तेरहवाँ वर्ष बिताकर इस समय पाँचों पाण्डव राजा विराट के नगर में हैं। अर्जुन ने अभिमन्यु, कृष्णचन्द्र और बलभद्र आदि सब यादवों को ले आने के लिए दूत भेज दिये। महात्मा काशिराज और महाराज शैब्य, दोनों ही महाराज युधिष्ठिर के प्रिय मित्र थे। वे यह समाचार और निमन्त्रण पाकर, एक-एक अक्षौहिणी सेना साथ लेकर, विराट की राजधानी में आ गये। महाबली राजा द्रुपद भी एक अक्षौहिणी सेना लेकर आये। उनके साथ द्रौपदी के पाँचों पुत्र, शिखण्डी और धृष्टद्युम्न भी आये। ये सब यज्ञ करनेवाले, स्वाध्यायनिरत और एक-एक अक्षौहिणी सेना के अधिपति थे। परम धार्मिक राजा विराट ने अनेक देशों से आये हुए सब राजाओं का यथोचित स्वागत-सत्कार किया। राजाओं के साथ उनके असंख्य सेवक, सेना और वाहन भी आये। अभिमन्यु
को कन्या देने के आनन्द में राजा विराट मग्न हो रहे थे। २०

अब आनर्तदेश (द्वारका) से श्रीकृष्ण, बलभद्र, कृतवर्मा, हार्दिक्य, युयुधान, सात्यकि, अनाधृष्टि, अक्रूर, साम्ब, बलभद्र के पुत्र निशठ आदि यादव—अभिमन्यु और सुभद्रा को साथ लेकर—आये। पाण्डवों के सारथी इन्द्रसेन आदि भी एक वर्ष के बाद पाण्डवों के दिव्य रथ लेकर

आनर्त्त देश से विराट की राजधानी में आये। श्रीकृष्ण के साथ दस हज़ार हाथी, एक लाख घोड़े, दस लाख रथ, एक निखर्व पैदल और वृष्णि, अन्धक, भोज आदि वंशों के अनेक महाप्रतापी योद्धा यादव आये। श्रीकृष्ण ने आकर पाण्डवों को राजाओं के योग्य बहुत-सा धन, रत्न, दासी-दास और तरह-तरह के कपड़े दिये।

इसके बाद शुभ लग्न में विधिपूर्वक विवाह हुआ। शंख, नगाड़े, तुरही आदि बाजे
बजने लगे। तरह-तरह के मृगों और पशुओं के मांस पकाये गये। अनेक प्रकार की
मदिराएँ और पीने की चीज़ें लाई गईं। गानवाले, प्राचीन आख्यान सुनानेवाले, नट,
वैतालिक, सूत मागध-बन्दीजन आदि आकर अपनी-अपनी कलाएँ दिखाने लगे। सब
मिलकर पाण्डवों की, श्रीकृष्ण की और राजा विराट की प्रशंसा और स्तुति करने लगे।
मणि-कुण्डल आदि अनेक गहनों से सजी हुई मत्स्य-नरेश के परिवार की स्त्रियाँ इन्द्रकन्या
३२ के समान गहनों और कपड़ों से शोभित उत्तरा कुमारी को साथ लेकर वहाँ पर आईं। उन
स्त्रियों के आगे मूल्यवान् वस्त्र-आभूषणों से शोभित रानी सुदेष्णा थीं; किन्तु यशस्विनी द्रौपदी
के रूप के आगे सबकी शोभा फीकी जँचती थी।

अभिमन्यु की स्त्री के रूप में राजकुमारी उत्तरा को ग्रहण करके महावीर अर्जुन प्रतापी इन्द्र के समान शोभित हुए। उत्तरा को पुत्रवधू बनाकर महाराज युधिष्ठिर परम प्रसन्न हुए। जनार्दन कृष्णचन्द्र ही सब कामों में अगुआ थे। बहुत अच्छी तरह हँसी-खुशी के साथ अभिमन्यु का ब्याह हुआ। राजा विराट ने प्रज्वलित अग्नि में पहले हवन किया और ब्राह्मणों की पूजा की। फिर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक दहेज (यौतुक) के रूप में अपने दामाद को वायु के समान शीघ्रगामी सात हज़ार घोड़े, दो सौ उत्तम हाथी, बहुत सा धन-रत्न देकर राज्य, सेना और कोष सहित अपना शरीर तक अर्पण कर दिया।

इस प्रकार ब्याह का काम समाप्त होने पर राजा युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को श्रीकृष्ण का
दिया हुआ सब धन, हज़ार गायें, रत्न, तरह-तरह के कपड़े, गहने, सवारियाँ, पलँग, खाने और
पीने की सामग्रियाँ दीं। हे भरतश्रेष्ठ, उस समय विराट की राजधानी हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों से परि-
४० पूर्ण होने के कारण उस महान् उत्सव से बहुत सुहावनी लगी।

विराटपर्व
समाप्त

मत्स्यवंश के परिवार की स्त्रियाँ सुशोभित उत्तरा को साथ लेकर विवाह-मण्डप में आईं। पृ० १४८३

सचित्र हिंदी महाभारत

महर्षि वेदव्यास-प्रणीत
महाभारत का अनुवाद
उद्योगपर्व

सेनोद्योगपर्व
पहला अध्याय

श्रीकृष्ण की सलाह

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, भाई-बन्धुओं सहित युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने आनन्द के साथ अभिमन्यु के ब्याह का सब काम-काज करके उस रात को विश्राम किया। दूसरे दिन सबेरे उठकर वे लोग प्रसन्नता से राजा विराट की सभा में पहुँचे। उस सभा में सब ओर आसन बिछे हुए थे। उसमें चारों ओर मणियों और रत्नों की पच्चीकारी की हुई थी, और फूल-मालाओं की सुगन्ध महक रही थी। उस समृद्धिशालिनी सभा में पहुँचकर पहले विराट और द्रुपद दोनों महाराज श्रेष्ठ आसनों पर बैठे, क्योंकि ये दोनों वृद्ध और राजाओं के माननीय थे। अब वसुदेव सहित बलराम और श्रीकृष्ण भी आसनों पर विराजमान हुए। सात्यकि और बलदेव पाञ्चाल-राज द्रुपद के पास और श्रीकृष्ण तथा युधिष्ठिर राजा विराट के पास बैठे। इनके सिवा एक ओर भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रुपद के पुत्र और दूसरी ओर साम्ब, प्रद्युम्न, अभिमन्यु, पिताओं के सदृश रूप और बल से युक्त द्रौपदी के पाँचों पुत्र और विराट के पुत्र सुवर्णशोभित

रमणीय आसनों पर विराजमान हुए। साफ़ कपड़ों और गहनों से शोभित सब लोगों के बैठने से वह राजसभा ग्रहों से शोभित निर्मल आकाश के समान जान पड़ने लगी।

समय के योग्य बातचीत कर चुकने पर वे सब राजा और राजकुमार चिन्तित भाव से, श्रीकृष्ण की ओर देखते हुए, थोड़ी देर चुपचाप बैठे रहे। तब मौक़ा देखकर, पाण्डवों का

काम सिद्ध करने के लिए जमा किये हुए उन राजाओं से, श्रीकृष्ण इस प्रकार अर्थयुक्त, फलदायक वचन कहने लगे—हे नरेन्द्रगण, धर्मराज युधिष्ठिर को गान्धारराज शकुनि ने जिस तरह कपट के जुए में हराया और उन्हें राज्य से भ्रष्ट किया तथा फिर जिस तरह वनवास की शर्त लगा करके जुआ खेला गया, सो सब
१० आप लोगों को अच्छी तरह मालूम है। आप यह भी जानते हैं कि अन्त को अन्तिम अज्ञातवास का वर्ष सत्यव्रत युधिष्ठिर ने श्रेष्ठ भाइयों के साथ बड़े क्लेश से किस तरह बिताया। ये पाण्डव सहज ही सारी पृथ्वी को जीत सकते थे, पर सत्य का खयाल करके बारह वर्ष तक वन में रहे। वहाँ इन्होंने अनेक कष्ट सहे। अत्यन्त बली होने पर भी इन्हें दूसरों के सेवक बनकर बड़े कष्ट से तेरहवाँ वर्ष बिताना पड़ा। सत्य में अत्यन्त निष्ठा होने के कारण ही इन्होंने इस उग्र व्रत का पालन किया है। इसलिए आप लोग इस समय वह उपाय सोचिए, जिसमें धर्मराज युधिष्ठिर और दुर्योधन, दोनों का भला हो, और जिससे कौरवों तथा पाण्डवों को यश, धर्म और न्याय प्राप्त हो। ये महात्मा धर्मराज अधर्म से देवताओं का राज्य भी नहीं लेना चाहेंगे। धर्म और अर्थ में बाधा न पड़े तो ये किसी एक गाँव का राज्य पाकर भी सन्तोष कर लेंगे। धृतराष्ट्र के पुत्रों ने जिस तरह छल करके इनके पिता का राज्य इनसे छीन लिया है, जिस तरह धोखा दे करके इन्हें असह्य कष्ट दिया है, सो सब आप सब राजाओं को मालूम है। [महाराज युधिष्ठिर बड़े ही सज्जन हैं।] दुर्योधन आदि ने छल से इनका राज्य ले लिया और इन्हें कष्ट दिया; कुछ सामने युद्ध में लड़कर, पराक्रम प्रकट करके, इनसे राज्य नहीं लिया है। तो भी राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ उनकी भलाई ही चाहते हैं। पाँचों पाण्डव पिता का राज्य भी नहीं

चाहते, ये तो वही राज्य चाहते हैं जो इन्होंने स्वयं अपने बाहुबल से अन्य राजाओं को जीतकर प्राप्त किया था। परन्तु इनके राज्यलोभी शत्रु ऐसे दुराचारी हैं कि लड़कपन से ही बलपूर्वक अनेक बुरे उपायों से इन्हें मार डालने की धुन में लगे रहे हैं। इन बातों को भी आप लोग अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए अब आप लोग कौरवों के बढ़े हुए राज्य-लोभ को, युधिष्ठिर की धर्मनिष्ठा को और दोनों पक्षों के परस्पर सम्बन्ध को अच्छी तरह विचारकर, मिलकर और अलग-अलग, अपनी सम्मति दीजिए। ये पाण्डव सदा से सत्यनिष्ठ हैं और नियम के अनुसार अपनी प्रतिज्ञा का भी पालन कर चुके हैं। इसलिए अब जो शत्रु लोग आधा राज्य न देकर फिर छल-कपट या बेईमानी का २०
बरताव करें तो ये धृतराष्ट्र के पुत्रों को अवश्य मार डालेंगे। कौरवों के इष्ट-मित्र और स्वजन यदि उनकी सहायता करेंगे, उनके साथ मिलकर युद्ध ठानेंगे और इन्हें राज्य प्राप्त करने में बाधा देंगे तो उन्हें भी पाण्डव अवश्य मारेंगे। यह सच है कि पाण्डव संख्या में शत्रुओं से कम हैं, पर मेरी समझ में ये शत्रुओं को मारने में सब तरह समर्थ हैं। इनके भी सहायक इष्ट मित्र अनेक हैं; उनकी सहायता से ये अवश्य शत्रुओं को मारकर राज्य लेने का यत्न करेंगे। दुर्योधन का मत ठीक-ठीक नहीं जान पड़ता कि वह क्या करना चाहता है। दूसरे पक्ष के जी का हाल जाने बिना हम लोग ठीक सलाह नहीं कर सकते कि हमारा कर्त्तव्य क्या है। इसलिए मेरी राय तो यह है कि पहले कोई ऐसा पुरुष यहाँ से दूत बनाकर कौरवों के पास भेजा जाय जो वे लोग, अच्छे स्वभाव का, कुलीन, धर्मात्मा, श्रेष्ठ और सावधान हो। वह ऐसा पुरुष हो जो उन्हें समझाकर इस पर राजी कर सके कि वे युधिष्ठिर को आधा राज्य दे दें।

महाराज! श्रीकृष्ण के इन धर्मार्थयुक्त, पक्षपात-रहित, मधुर वचनों को सुनकर बलदेवजी ने उनकी बड़ाई की और फिर आप अपना अभिप्राय प्रकट किया। २६

दूसरा अध्याय

बलदेवजी की सलाह

बलदेवजी ने कहा—हे राजाओ, श्रीकृष्ण ने जो राजा युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनों के हित के लिए धर्मार्थयुक्त वचन कहे, सो आप लोग सुन चुके। इस समय वीर पाण्डव आधा राज्य प्राप्त करने के लिए यत्न कर रहे हैं। इन्हें आधा राज्य दे देने से दुर्योधन, हम लोगों के साथ, सुखी होकर अत्यन्त आनन्द प्राप्त करेंगे। सद्व्यवहार के साथ कौरवों से आधा राज्य पाने पर पाण्डव लोग शान्त हो जायँगे और सुख से रहेंगे। दुर्योधन आदि को भी इसी में शान्ति मिलेगी और इसी में प्रजा का हित होगा। मैं चाहता हूँ कि कोई पुरुष दोनों पक्षों में मेल कराने के लिए जाकर दुर्योधन के मन की बात मालूम करे और कौरवों से युधिष्ठिर का अभिप्राय कहे।

वह पुरुष कौरवों की सभा में जाकर कुरुवीर भीष्म, महानुभाव धृतराष्ट्र, द्रोण, अश्वत्थामा, विदुर, कृपाचार्य, गान्धारराज शकुनि, कर्ण तथा और भी बल एवं शास्त्र के ज्ञान में बड़े, अपने-अपने धर्म में स्थित, लोकवीर, अनुभवी, सब कुरुवंशी और धृतराष्ट्र के सब पुत्र, पुरवासी तथा वृद्ध पुरुष जब एकत्र हों तब उनसे मिले। फिर उन सबके आगे नम्रता के साथ युधिष्ठिर का सँदेसा कहे और ऐसा यत्न करे, जिसमें धर्मराज का प्रयोजन सिद्ध हो जाय। मेरी राय में, किसी हालत में, कौरवों को क्रुद्ध करना अच्छा न होगा; क्योंकि उन्होंने बलपूर्वक युधिष्ठिर के राज्य को हड़प कर लिया है और वे इस समय प्रबल हो रहे हैं। युधिष्ठिर को जुए का शौक़ था। इन्हें द्यूत में फँसाकर इनका राज्य उन्होंने छीन लिया है। युधिष्ठिर द्यूतक्रीड़ा में निपुण नहीं हैं; उस समय इनके इष्ट-मित्रों ने इन्हें मना भी किया; किन्तु इन्होंने नहीं माना और पाँसे के खेल में निपुण शकुनि के कहने पर उसके साथ खेलना स्वीकार करके उसे खेलने के लिए ललकारा। कर्ण, दुर्योधन आदि अनेक पुरुष
१० वहाँ पर ऐसे थे, जिन्हें ये सहज ही खेल में जीत सकते थे; किन्तु इन्होंने शकुनि से ही खेलना स्वीकार कर लिया। उसने इन्हें कपट-पाँसों के खेल में जीत लिया। धूर्त शकुनि के साथ खेलने में हर बार इनकी हार के पाँसे गिरने लगे, तब भी ये नहीं चेते; ज़िद करके इन्होंने अपना सर्वस्व आप ही हार दिया। इसलिए इसमें शकुनि का कुछ अपराध नहीं है। इस कारण इनके दूत को धृतराष्ट्र के पास जाकर नम्रता के साथ सामनीति-युक्त वचन कहने चाहिए। इस उपाय से इनका दूत दुर्योधन को अपने माफ़िक़ बनाकर आधा राज्य देने के लिए राज़ी कर सकेगा। मैं कहता हूँ, तुम लोग युद्ध की इच्छा मत प्रकट करो, समझा-बुझाकर ही दुर्योधन से काम निकालो। सामनीति से सिद्ध हुआ प्रयोजन अच्छा होता है। युद्ध ठानने से अन्याय होगा। युधिष्ठिर युद्ध करना भी नहीं चाहते और उसमें किसी का भला भी न होगा।

वैशम्पायन कहते हैं—बलदेवजी की ये बातें सुनकर शिनिवीर सात्यकि कुपित होकर अपने
१५ आसन से उठ खड़े हुए और बलदेवजी के कथन की निन्दा करते हुए बोले।

तीसरा अध्याय

सात्यकि की सम्मति

सात्यकि ने कहा—हे वीर, पुरुष का आत्मा जैसा होता है वैसी ही बातें वह करता है। आपका अन्तरात्मा जैसा है वैसे ही वचन आप कह रहे हैं। संसार में शूरवीर और कायर दोनों तरह के आदमी हैं। मनुष्यों में दृढ़ता के साथ ये दोनों पक्ष देख पड़ते हैं। जैसे एक ही वृक्ष में एक शाखा फली हुई और एक शाखा फलों से ख़ाली देख पड़ती है, वैसे ही एक ही वंश में शूर और कायर दोनों प्रकार के पुरुष होते हैं। हे बलदेवजी, मैं आपके इस कथन की निन्दा

नहीं करता; मैं तो उनकी निन्दा करता हूँ जो लोग चुपचाप आपकी इन बातों को सुन रहे हैं। ऐसा कौन है, जो सभा के बीच में बेधड़क होकर धर्मराज का रत्ती भर भी दोष कह सके? जुए में धर्मराज की श्रद्धा नहीं थी और ये उसमें निपुण भी नहीं हैं। ऐसे महात्मा धर्मराज को जुए में धूर्त कौरवों ने अपने यहाँ बुलाकर अधर्म से जीता है। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि उन्होंने इन्हें धर्म से जीता? यदि धर्मराज अपने घर में भाइयों के साथ खेल रहे होते, और उस समय दुर्योधन आदि वहाँ जाकर इन्हें जीत लेते तो वह उनकी जीत धर्म-सङ्गत मानी जा सकती थी। किन्तु उन्होंने तो महात्मा धर्मराज को सदा क्षत्रियधर्म में तत्पर जानकर अपने यहाँ बुलाकर बेईमानी से जीता है। तब उनकी भलाई कैसे हो सकती है? महाराज युधिष्ठिर इस समय वनवास की प्रतिज्ञा पूरी करके बाप-दादे के राज्य के अधिकारी हो

चुके हैं। फिर ये क्यों नम्रता के साथ भीख सी माँगेंगे? जो ये पराये धन की चाह करें, तो भी इन्हें शत्रुओं से भीख सी माँगना कभी उचित नहीं। पाण्डवों ने यद्यपि वन में रहकर प्रतिज्ञा पूरी कर ली है, तो भी कौरव लोग कहते हैं कि पाण्डव लोग अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर सके—बीच में ही हमने उनका पता लगा लिया है। ऐसी दशा में कौरवों
को धार्मिक या राज्य हड़प लेने की इच्छा न रखनेवाला कैसे कहा जा सकता है? १०
महात्मा, भीष्म, द्रोणाचार्य और विदुर के बारम्बार समझाने पर भी कौरव लोग पाण्डवों को उनके पिता का राज्य नहीं देना चाहते। इसलिए अब मैं उन्हीं को युद्ध में अपने पैने बाणों से घायल और विनीत बनाकर महात्मा युधिष्ठिर के पैरों पर गिराऊँगा इतने पर भी यदि वे धर्मराज के पैरों पर न गिरेंगे—शरण में न आवेंगे—तो मैं उन्हें मारकर दुनिया से हटा दूँगा। पहाड़ जैसे वज्र के वेग को नहीं सह सकते वैसे ही कौरव लोग कुपित सात्यकि के बाणों के वेग को युद्ध में नहीं सह सकेंगे। पृथ्वी पर ऐसा कौन है, जो गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुन के, चक्रधारी श्रीकृष्ण के, दुर्द्धर्ष भीम के और मेरे पराक्रम को सह सकता है? जीवन की इच्छा रखनेवाला कौन योद्धा यमराज और मृत्युके सदृश नकुल और सहदेव, धृष्टद्युम्न, पिताओं के

समान पराक्रमी द्रौपदी के पाँचों पुत्रों, महाबली अभिमन्यु, उत्कट कालानलतुल्य वीर गद, प्रद्युम्न और साम्ब का सामना कर सकता है ? इसलिए हम सब मिलकर, शकुनि और कर्ण सहित दुर्योधन को युद्ध में मारकर, युधिष्ठिर को राजगद्दी पर बिठावेंगे। आततायी अधर्मी शत्रुओं
२० को मारने में अधर्म नहीं होता। शत्रुओं से याचना करना ही अधर्म और अयश का काम है। इसलिए दुर्योधन के मन में जो बात है उसे ही आप लोग सावधान होकर करें। दुर्योधन युद्ध के बिना राज्य देना नहीं चाहता। यह निश्चय है कि इस समय या तो राजा युधिष्ठिर को आधा राज्य
२१ मिले, और या कौरव लोग युद्ध में मारे जायँ।

चौथा अध्याय

द्रुपद की मन्त्रणा

द्रुपद ने कहा—हे महाबाहो, जैसा तुम कह रहे हो वैसा ही होगा, इसमें सन्देह नहीं। दुर्योधन कभी समझाने-बुझाने से राज्य न देगा। उससे मिठी बातचीत करना व्यर्थ है। पुत्र-वत्सल धृतराष्ट्र भी उसी की हाँ में हाँ मिलावेंगे। भीष्म और द्रोणाचार्य दुर्योधन का अन्न खाते हैं, इसलिए उसके विरुद्ध कुछ न कह सकेंगे। कर्ण और शकुनि, मूर्खता के कारण, दुर्योधन की हाँ में हाँ मिलावेंगे। इस कारण बलदेव की राय मेरी समझ में युक्तिसङ्गत नहीं है। न्यायनिष्ठ पुरुष को सबसे पहले सामनीति का ही प्रयोग करना चाहिए, यह बात ठीक है; परन्तु दुर्योधन ऐसा पुरुष नहीं कि उससे नम्र वचन कहे जायँ। मैं ख़ूब समझता हूँ कि पाप बुद्धिवाला दुर्योधन नम्रता के व्यवहार से कभी राज्य देने को राज़ी न होगा। उससे नम्रता और कोमलता का व्यवहार करना वैसा ही है, जैसे कोई गधे को पुचकारे और गाय या बैल को डण्डों से मारे। वह पापी समझाने-बुझानेवाले नम्र पुरुषों को शक्तिहीन और कायर समझता है। निर्बुद्धि पुरुष का स्वभाव यह होता है कि वह कोमलता के व्यवहार से और सिर पर चढ़ जाता है [उसे यह नहीं जान पड़ता कि वह कोमलता का व्यवहार उसी के हित और अर्थ-सिद्धि के लिए किया जा रहा है]। इसलिए हम लोगों को सन्धि की चेष्टा छोड़कर युद्ध के लिए ही उद्योग करना चाहिए। हम लोग सैन्य-संग्रह करें और अपने मित्र राजाओं के पास रण-निमन्त्रण के लिए दूतों को भेजें। हमारे दूत झटपट शल्य, धृष्टकेतु, जयत्सेन और केकयनरेश आदि के पास जायँ और उन्हें हमारी सहायता के लिए सेना सहित आने का सँदेसा दें। यह निश्चय है कि दुष्ट दुर्योधन भी इसी तरह अपनी सहायता के लिए सब राजाओं के पास दूत भेजेगा। क्षत्रिय-धर्म के अनुसार सज्जन राजा लोग उसी पक्ष की सहायता करते हैं, जिसका निमन्त्रण पहले पहुँचता
१० है। इसलिए, मेरी राय यह है कि, तुम शीघ्रता करो, जिसमें तुम्हारा ही निमन्त्रण पहले पहुँचे। हम लोगों को बहुत बड़ा काम करना है।

पहले महाबली शल्य और उनके साथी सामन्त राजाओं के पास शीघ्र दूत भेजो। फिर पूर्व समुद्र के समीप रहनेवाले राजा भगदत्त के पास दूत भेजो। इसी प्रकार अमितौजा, उग्र, हार्दिक्य, अन्धक, दीर्घप्रज्ञ, शूर, रोचमान, प्रतापी बृहन्त, सेनाबिन्दु, सेनजित्, प्रतिविन्ध्य, चित्रवर्मा, सुवास्तु, वाह्लीक, मुञ्जकेश, चेदीश्वर सुपार्श्व, सुबाहु, पौरव, शकनरेश, पह्लवनरेश, दरदनरेश, सुशर्मा, नदीज, कर्णवेष्ट, नील, वीरधर्मा पराक्रमी दुर्जय दन्तवक्र, रुक्मी, जनमेजय, आषाढ़, वायुवेग, पूर्वपाली, भूरितेजा, देवक, पुत्रों सहित एकलव्य, करूषदेश के राजा लोग, वीर्यशाली क्षेमधूर्ति, काम्बोजदेश के राजा लोग, ऋषिकदेश के नरेश, पश्चिम अनूप देश के नरपतिगण, जयत्सेन, काश्य, पञ्चनद प्रदेश के नरेशगण, दुर्द्धर्ष राजा क्राथ के पुत्र, पहाड़ी राजा लोग, जनक राजा के पुत्र, सुशर्मा, मणिमान्, योतिमत्सक, पांशुराष्ट्र के राजा, वीर्यवान् धृष्टकेतु, तुण्ड, २० दण्डधार, वीर्यशाली बृहत्सेन, अपराजित निषादराज, श्रेणिमान्, वसुमान्, बृहद्बल, महौजा, शत्रुदमन राजा बाहुक, राजकुमार सहित पराक्रमी समुद्रसेन, उद्भव, क्षेमक, वाटधान, श्रुतायु, दृढ़ायु, बली शाल्वपुत्र, कुमार, महायोद्धा कलिङ्गराज आदि इन सब राजाओं के पास शीघ्र दूत भेजो।

ये मेरे पुरोहित ब्राह्मण विद्वान् और चतुर हैं। इनको दूत बनाकर धृतराष्ट्र के पास भेजो। जो कुछ कहना है सो इन्हें बता दो। ये दुर्योधन, भीष्म, महारथी द्रोणाचार्य और धृतराष्ट्र से तुम्हारा सँदेसा जाकर कहेंगे। २६

पाँचवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का प्रस्थान, दूतों का भेजा जाना और राजाओं का आना

[वैशम्पायन कहते हैं कि द्रुपद के यों कह चुकने पर वृष्णिकुलावतंस] श्रीकृष्ण ने कहा—महाराज युधिष्ठिर का प्रयोजन सिद्ध होने के बारे में महाराज द्रुपद ने जो कुछ कहा सो सोमक-वंश के योग्य और युक्तिसङ्गत है। हम लोग यदि श्रेष्ठ नीति को मानकर चलना और कल्याण प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें इसी के अनुसार काम करना चाहिए। अपनी भलाई के लिए हमें सबसे पहले राजाओं के पास अवश्य अपने दूत भेजने चाहिएँ। जो हम ऐसा न करेंगे तो बड़ी मूर्खता होगी। किन्तु कौरव और पाण्डव दोनों ही हमारे समान सम्बन्धी हैं। दोनों का व्यवहार हमारे साथ एक सा है। [किसी ने यादवों का अपमान या यादवों से अशिष्ट व्यवहार कभी नहीं किया।] हम और आप सब लोग यहाँ, इस समय, अभिमन्यु के विवाह के निमन्त्रण में आये हैं। इस समय ब्याह हो गया है, हम लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने घर को लौट जायँगे। अवस्था और ज्ञान में आप हमसे और सब राजाओं से बड़े हैं। हम सब शिष्य की तरह आपके

उपदेश के अनुसार ही काम करेंगे। आप आचार्य द्रोण और कृपाचार्य के सखा हैं; धृतराष्ट्र भी आपको बहुत मानते हैं। आप ही पाण्डवों की ओर से उनके प्रयोजन को सिद्ध करनेवाला सँदेसा, किसी आदमी के हाथ, कौरवों के पास कहला भेजिए। आप जो कुछ कहला भेजेंगे वही हम सबको स्वीकार होगा। जो आपका कहा मानकर दुर्योधन न्यायानुसार पाण्डवों से मेल कर लेगा तो भाइयों का परस्पर विरोध और स्वजनों का नाश न होगा। और, जो शेखी के मारे दुर्योधन आपका कहा न माने—आधा राज्य देने के लिए राज़ी न हो—तो पहले अन्य राजाओं और इष्ट-मित्रों के पास रण का निमन्त्रण भेजकर पीछे से हमें भी बुलाइएगा। तब मूढ़ मन्दबुद्धि दुर्योधन अपने मन्त्रियों और
१० भाइयों के साथ कुपित अर्जुन के हाथ से अवश्य मारा जायगा।

वैशम्पायन कहते हैं—इसके बाद राजा विराट ने अनुचरों और बान्धवों सहित श्रीकृष्ण का सत्कार करके उन्हें द्वारका जाने के लिए बिदा कर दिया। उनके द्वारका जाने पर युधिष्ठिर आदि पाण्डव और राजा विराट युद्ध की तैयारियाँ करने लगे। राजा विराट और राजा द्रुपद ने अपने भाई-बन्धुओं के साथ सलाह करके सब राजाओं के पास रण का निमन्त्रण भेजा। राजा विराट, राजा द्रुपद और पाण्डवों का निमन्त्रण पाकर राजा लोग प्रसन्नतापूर्वक अपनी-अपनी सेना साथ लेकर विराट की राजधानी में आने लगे। उधर यह ख़बर पाकर धृतराष्ट्र के बेटे दुर्योधन आदि भी अनेक राजाओं को, उनकी सेना के साथ, बुलाकर अपने यहाँ जमा करने लगे।

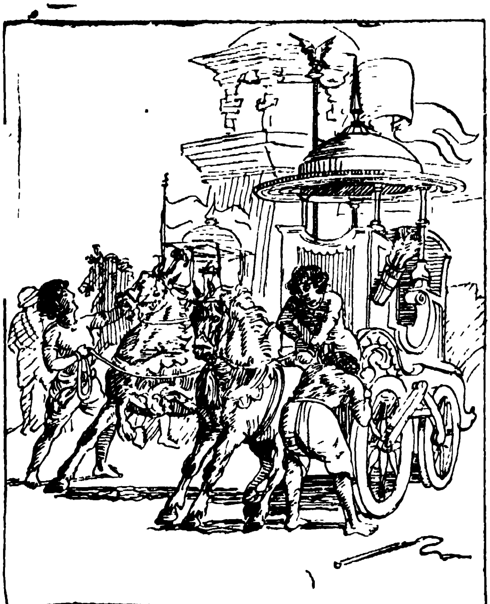

इस प्रकार दूर-दूर के देशों से राजा लोग आकर इकट्ठे होने लगे। कौरवों और पाण्डवों के लिए युद्धयात्रा करनेवाले राजाओं की चतुरंगिणी सेना ही सेना पृथ्वी में देख पड़ने लगी। वीर राजाओं की अपार सेना पर्वतों और वनों सहित पृथ्वी को कँपाती हुई सी चली। इसके बाद पाञ्चालराज द्रुपद ने, युधिष्ठिर की सलाह से, ज्ञान और अवस्था में वृद्ध
१८ अपने पुरोहित को दूत बनाकर कौरवों के पास भेजा।

छठा अध्याय

राजा द्रुपद का अपने पुरोहित को दूतकार्य का उपदेश देना

राजा द्रुपद ने पुरोहित से कहा—ब्रह्मन्, सब चीज़ों में प्राणी और प्राणियों में बुद्धिमान् जीव श्रेष्ठ हैं। बुद्धिमानों में मनुष्य और मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। उनमें भी वेदपाठी विद्वान् और उनमें भी अनुभवी पुरुष श्रेष्ठ हैं। उनमें अनुभव के अनुसार काम करनेवाले और उनमें भी ब्रह्मज्ञानी लोग श्रेष्ठ समझे जाते हैं। मैं आपको अनुभवी लोगों में श्रेष्ठ समझता हूँ। आपका कुल अच्छा है, अवस्था भी कम नहीं है और ज्ञानवान् भी आप ख़ासे हैं। बुद्धि में आप बृहस्पति और शुक्राचार्य के समान हैं। आप कौरव दुर्योधन और युधिष्ठिर के चरित्र तथा स्वभाव को बहुत अच्छी तरह जानते हैं। धृतराष्ट्र की जानकारी में ही दुर्योधन आदि ने पाण्डवों से राज्य छीन लिया है। विदुर के समझाने-बुझाने पर भी धृतराष्ट्र अपने पुत्र की ही तरफ़दारी करते हैं। धूर्त शकुनि ने जान-बूझकर [बेईमानी करने के लिए] युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए बुलाया था। शकुनि जानता था कि युधिष्ठिर क्षत्रिय के धर्म का पालन करनेवाले, सरल-हृदय और पाँसे के खेल में अनभिज्ञ हैं। इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर को धोखा देकर उन लोगों ने राज्य ले लिया है; इस कारण यह निश्चय है कि वे [सीधी तरह ख़ुद] किसी तरह युधिष्ठिर को राज्य नहीं देंगे। फिर भी आप कुरुसभा में जाकर धृतराष्ट्र से धर्मसङ्गत वचन कहिएगा। आपकी न्याययुक्त बातें सुनकर अवश्य ही दुर्योधन के पक्ष के योद्धाओं के मन उसकी ओर से फिर जायँगे। महात्मा विदुर भी आपके कथन का समर्थन करेंगे। वे भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि को भी फोड़कर आपके अनुकूल बनाने की चेष्टा करेंगे। इस प्रकार मन्त्रियों में परस्पर फूट पैदा होने पर, और योद्धाओं के विमुख होने पर, उनमें फिर मेल और सम्मति उत्पन्न
करने के लिए कौरवों को विशेष उद्योग करना पड़ेगा। उस समय यही उनका मुख्य काम हो १०
जायगा। वे लोग जब इस काम में उलझ जायँगे तब हमें सैन्य-संग्रह करने का सुभीता मिल जायगा। पाण्डव लोग इसी अवसर में सुखपूर्वक युद्ध का सामान और सेना जमा कर लेंगे। कौरवों में जब आपस में फूट पड़ जायगी, सबकी एक सलाह न होगी, और आप भी सन्धि का प्रस्ताव लेकर देर तक वहाँ ठहरे रहेंगे, तब कौरव लोग कुछ तो सुभीता न होने के कारण और कुछ असावधान रहने के कारण अच्छी तरह जुटकर सेना और युद्ध का सामान जमा नहीं कर सकेंगे। इस समय मुझे यही अपना प्रधान प्रयोजन जान पड़ता है।

राजा धृतराष्ट्र भी आपके वचनों को धर्मसङ्गत और युक्तियुक्त देखकर आपके प्रस्ताव पर अवश्य अपनी श्रद्धा प्रकट करेंगे। आप धर्मज्ञ हैं; आप भी कौरवों के साथ धर्मसङ्गत व्यवहार करके, दयालु पुरुषों के आगे पाण्डवों के क्लेशों का वर्णन करके और वृद्ध कुरुवंशियों के आगे

पूर्वपुरुषों के द्वारा पालन किये गये कुलधर्म का बखान करके अनायास उन सबके मन को दुर्योधन के प्रतिकूल बना सकेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे उपाय से आप भेद-नीति फैलाने में सफलता प्राप्त कर सकेंगे। आप वृद्ध, वेदज्ञ, ब्राह्मण और फिर दूत हैं; इसलिए आपको कौरवों से तनिक भी डर नहीं है। आज पुष्य योग और जय मुहूर्त है। युधिष्ठिर का प्रयोजन सिद्ध करने के लिए आप शीघ्र कौरवों के यहाँ जाने को तैयार हूजिए।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, द्रुपद के ये उपदेशयुक्त वचन सुनकर नीति-शास्त्र के प्रयोजनों में निपुण, विश्वासपात्र, सच्चरित्र पुरोहित, पाण्डवों का हित करने के लिए, अपने
१९ शिष्यों के साथ हस्तिनापुर में, कौरवों के पास गये।

सातवाँ अध्याय

रण-निमन्त्रण देने के लिए श्रीकृष्ण के पास दुर्योधन और अर्जुन का जाना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, द्रुपद के पुरोहित इस प्रकार दूत बनकर हस्तिनापुर को पधारे। इसके बाद पाण्डवों ने अन्य अनेक दूतों को सब देशों के राजाओं के पास भेजा। दूतों को और-और जगह भेजकर अर्जुन ख़ुद द्वारकापुरी में श्रीकृष्ण के पास गये। राजन्! जब

वृष्णि, अन्धक, भोजवंश के असंख्य यादवों सहित श्रीकृष्ण और बलदेव विराट नगरी से द्वारकापुरी को गये थे, तभी गुप्त दूतों के द्वारा राजा दुर्योधन को पाण्डवों के जी का सब हाल मालूम हो गया था। उसको जब श्रीकृष्ण के द्वारका जाने का हाल मालूम हुआ तब वह, उसी दिन, हवा के समान शीघ्रगामी श्रेष्ठ घोड़ों की सवारी से बहुत थोड़ी सी सेना साथ ले द्वारका की ओर चल दिया। उसी दिन दैवयोग से अर्जुन भी फुर्ती से रमणीय द्वारका को गये। पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन और दुर्योधन ने एक साथ द्वारका में पहुँचकर, श्रीकृष्ण के भवन में जाकर, देखा

कि वे पलँग पर पड़े सो रहे हैं। दुर्योधन पहले पहुँचा। श्रीकृष्ण को सोते देखकर वह उनके
सिरहाने एक मूल्यवान् आसन पर जा बैठा। इसके बाद महावीर अर्जुन भी पहुँचे और श्रीकृष्ण
को सोते देख वे उनके पैरों के पास हाथ जोड़कर नम्रभाव से बैठ गये। जागते ही श्रीकृष्ण
ने आँखें खोलकर अपने सामने बैठे हुए अर्जुन को देखा। [फिर मुड़कर देखने पर उन्हें अपने
सिरहाने श्रेष्ठ आसन पर बैठा हुआ गर्वित दुर्योधन देख पड़ा।]

श्रीकृष्ण ने दोनों का सत्कार और स्वागत किया। इसके बाद उनसे आने का कारण १०
पूछा। तब मुसकाकर दुर्योधन ने श्रीकृष्ण से कहा—हम भाइयों के इस युद्ध में आप मुझे
सहायता दीजिए। यद्यपि मैं और अर्जुन दोनों ही आपके समान मित्र और समान सम्बन्धी
हैं तथापि मैं आपके पास पहले आया हूँ। सज्जनों का नियम है कि वे पहले आये हुए का
पक्ष लिया करते हैं। आप इस समय पृथ्वी पर सब सज्जनों में श्रेष्ठ और उनके माननीय हैं।
इसलिए सज्जनों के सदाचार का पालन कीजिए।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे दुर्योधन, यह सच है कि आप पहले आये हैं, किन्तु मैंने पहले अर्जुन
को ही देखा है। इसलिए मैं दोनों की सहायता करूँगा। यह बात प्रसिद्ध है कि बालकों की ही
इच्छा पहले पूरी की जाती है; इसलिए आपसे पहले अर्जुन की इच्छा ही पूरी करनी चाहिए। मैं अपनी
ओर से दो प्रकार की सहायताओं का प्रस्ताव करता हूँ। उनमें से अर्जुन जिसे चाहें उसे ले लें। मेरे
पास एक अर्बुद (दस करोड़) नारायण नाम से प्रसिद्ध, मेरे ही समान दृढ़शरीरवाले बली, गोपों की
सेना है। उन योद्धाओं की नारायणी सेना एक ओर से लड़ेगी और एक ओर, युद्ध न करने का प्रण
करके, निहत्था मैं रहूँगा। हे अर्जुन, इन दोनों प्रकार की सहायताओं में से जिसे तुम पसन्द करो,
उसे ले लो। धर्म के अनुसार तुम्हीं को पहले अपनी इच्छा के अनुसार माँगने का अधिकार है,
[क्योंकि तुम दुर्योधन से छोटे हो। जो चाहो, पसन्द कर लो।] २०

वैशम्पायन कहते हैं—श्रीकृष्ण के निहत्थे और युद्ध से विमुख रहने की बात सुनकर भी अर्जुन
ने उन्हीं को माँग लिया। अपनी इच्छा से यदुवंश में उत्पन्न शत्रुनाशन नारायण को सबके आगे
अर्जुन ने जब अपने पक्ष में ले लिया तब दुर्योधन ने वह नारायणी सेना माँग ली। इस प्रकार दस
करोड़ योद्धा पाकर और श्रीकृष्ण को युद्ध से विमुख जानकर दुर्योधन को बड़ा सन्तोष हुआ। अब
दुर्योधन बलदेवजी के पास गया। वहाँ पहुँचकर दुर्योधन ने उनको अपने आने का सब कारण
बताया। बलदेवजी ने कहा—हे दुर्योधन, मैंने विराट के राजधानी में, भरी सभा में, श्रीकृष्ण के
ऊपर एक तरह से दबाव डालकर बारम्बार यह कहा था कि कौरव और पाण्डव दोनों ही हमारे लिए
एक से हैं—दोनों का सम्बन्ध समान है। किन्तु वह बात श्रीकृष्ण ने नहीं मानी। मैं श्रीकृष्ण के बिना
घड़ी भर भी नहीं रह सकता। इसलिए मैं यह निश्चय कर चुका हूँ कि न तो अर्जुन की सहायता
करूँगा और न दुर्योधन की। श्रीकृष्ण के खयाल से ही मैंने यह निश्चय कर लिया है। अब तुम

जाओ, क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध करो। सब राजाओं के माननीय भरतवंश में तुम्हारा जन्म हुआ
१० है और तुम स्वयं भी श्रेष्ठ पुरुष हो।

वैशम्पायन कहते हैं—बलदेवजी के ये वचन सुनकर उनके गले लगकर, और श्रीकृष्ण के युद्ध न करने की प्रतिज्ञा के कारण अपनी जीत का निश्चय करके, दुर्योधन कृतवर्मा यादव के पास गया। उसने अपनी एक अक्षौहिणी सेना दुर्योधन को दे दी। उस भयानक सेना को साथ लिए प्रसन्नता से दुर्योधन अपने इष्ट-मित्रों को आनन्दित करता हुआ हस्तिनापुर को गया। उसके चले जाने पर पीताम्बरधारी श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा—अर्जुन, तुमने मुझे युद्ध से विमुख जानकर भी क्या समझकर अपने पक्ष में लिया?

अर्जुन ने कहा—हे यदुनन्दन, आपका यश त्रिभुवन में व्याप्त है और आप धृतराष्ट्र के सब पुत्रों को अकेले मार सकते हैं। परन्तु मैं अकेला ही उन सब शत्रुओं को मारकर यशस्वी बनना चाहता हूँ। [मुझे विश्वास है कि मैं अकेला ही सब शत्रुओं को मार सकता हूँ।] इसी से मैंने आपको निहत्था और युद्ध से विमुख देखकर प्रसन्नता के साथ अपने पक्ष में लिया है। बहुत दिनों से मेरी इच्छा थी कि इस महायुद्ध में आप मेरे सारथी बनें, सो मेरी यह इच्छा आप अवश्य पूरी कीजिए। श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन, सब तरह यह तुम्हारे योग्य ही है कि तुम मेरी बराबरी का दावा रखते हो। मैं इस युद्ध में सारथी बनकर तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा। इसके बाद श्रीकृष्ण को साथ लेकर प्रसन्न अर्जुन अनेक श्रेष्ठ यादवों के साथ
३९ युधिष्ठिर के पास हस्तिनापुर को लौट आये।

आठवाँ अध्याय

शल्य का आना, रास्ते में उनका सत्कार और दुर्योधन तथा युधिष्ठिर को उनका वचन देना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महाबली शल्य को जब दूतों के द्वारा इस युद्ध का समाचार मिला तब वे अपने महारथी पुत्रों को साथ लेकर पाण्डवों के पास चले। दो-दो कोस पर उनकी सेना का पड़ाव पड़ता था। महापराक्रमी शल्य के साथ भी एक अक्षौहिणी सेना थी। विचित्र कवच, ध्वजा और धनुष, विचित्र आभूषण, रथ और वाहन तथा विचित्र माला और वस्त्र आदि से शोभित एवं अपने देश का पहनावा पहने सैकड़ों-हज़ारों वीरश्रेष्ठ क्षत्रिय महाराज शल्य के सेनापति थे। अपनी विशाल सेना से सबको डरवाते और पृथ्वी को कम्पायमान करते हुए शल्य उस सेना को, धीरे-धीरे विश्राम कराते हुए, युधिष्ठिर के पास ले चले।

दुर्योधन ने जब शल्य के रवाना होने का हाल सुना तब उसने रास्ते में उनके ठहरने के लिए जगह-जगह पर सुन्दर स्थान बनवा दिये। शल्य के सत्कार के लिए, दुर्योधन की आज्ञा

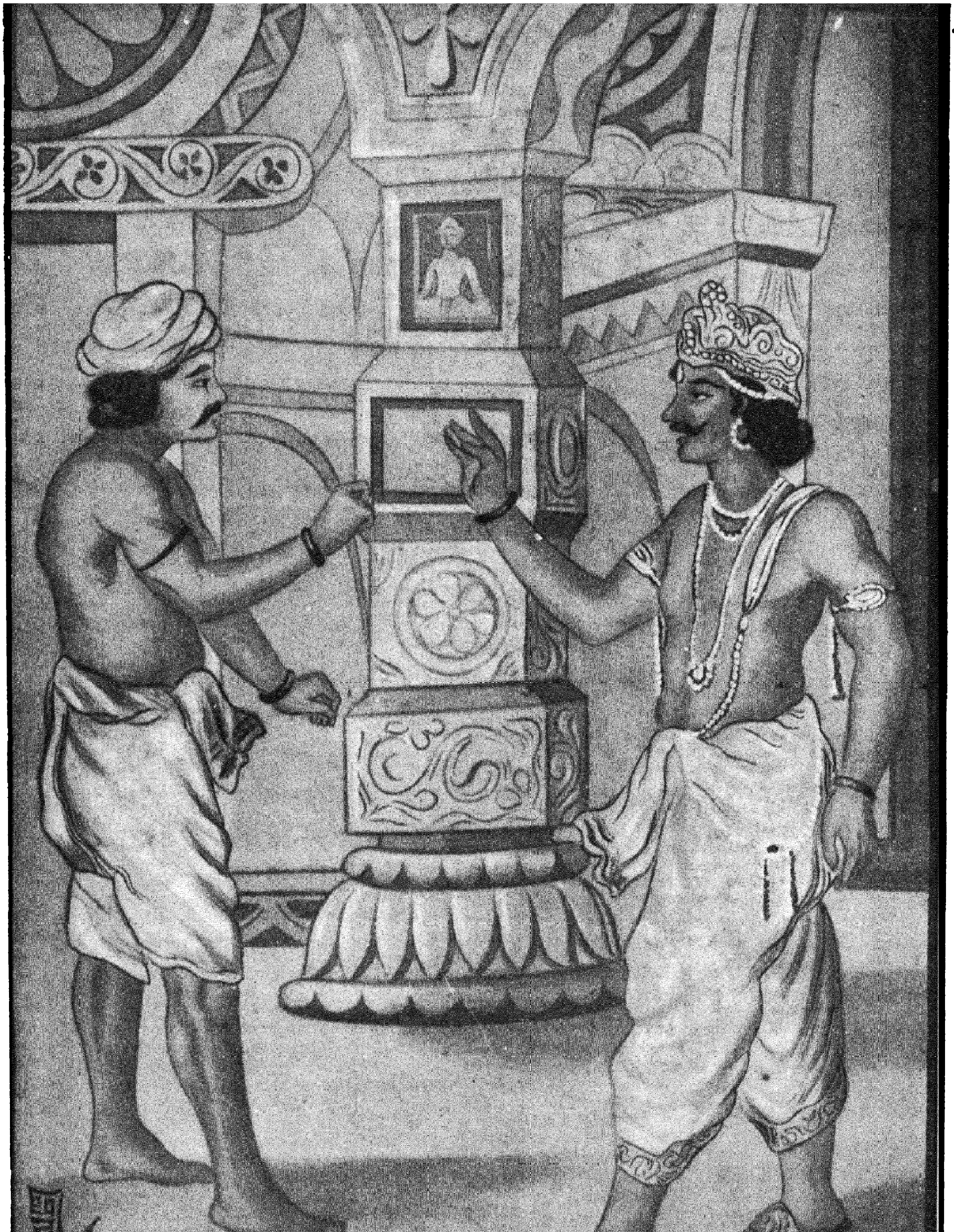

उद्योग पर्व—७ वां अध्याय ।—पृ० ५५

से, बढ़िया कारीगरों ने रमणीय स्थानों में रत्नमण्डित सुसज्जित सभाभवन बना दिये। उनमें
मनोरञ्जन के लिए बहुत सी चीज़ें रख दी गईं। माला, मांस, स्वादिष्ट खाने-पीने की सामग्री, कुएँ,
अनेक आकार की बावलियाँ और जल के भीतर बने हुए घर उन स्थानों में थे। हर एक देश में, हर १०
एक सभा में, दुर्योधन के आदमियों ने, शल्य की सेवा और सत्कार बढ़ चढ़कर किया।

मद्रराज शल्य इस प्रकार विश्राम और सुख भोगते हुए एक सभाभवन में पहुँचे। वह सभाभवन देवताओं के निवासभवन के समान अलौकिक सुखदायक पदार्थों से भरा हुआ था। उस स्थान को और वहाँ की सामग्री को देखकर शल्य बहुत प्रसन्न हुए। तरह-तरह के सत्कारों से सन्तुष्ट शल्य इन्द्र को भी अपने से कम सुखी समझने लगे। तब क्षत्रियश्रेष्ठ शल्य ने प्रसन्न होकर वहाँ उपस्थित कर्मचारियों से पूछा—युधिष्ठिर के किन आदमियों ने राह में ये ठहरने के [पड़ाव और रहने के] स्थान बनाए हैं? मैं उन्हें पुरस्कार पाने के योग्य समझता हूँ। उन्हें ले आओ। मैं इनाम दूँगा। मुझे आशा है कि युधिष्ठिर मेरे इस विचार का अनुमोदन करेंगे।

दुर्योधन छिपा हुआ शल्य के साथ ही था। नौकरों ने विस्मित होकर दुर्योधन से सब हाल कहा—दुर्योधन को जब यह मालूम हुआ कि मामा शल्य इतने प्रसन्न हैं और प्राण तक देने को तैयार हैं, तब वह बहुत प्रसन्न हुआ। वह प्रकाश्य रूप से शल्य के पास जाकर उनसे मिला। दुर्योधन को देखकर और यह जानकर कि सब ख़ातिर उसी की ओर से की गई है, शल्य ने प्रसन्न होकर उसे गले लगा लिया और कहा—जो तुम्हारी इच्छा हो वह माँग लो।

दुर्योधन ने कहा—मामाजी, मुझे मेरी इच्छा के अनुसार वरदान देकर अपने वचन को सत्य कीजिए। मैं यही वर माँगता हूँ कि आप मेरी ओर रहें और मेरी सारी सेना का सञ्चालन करके युद्ध करें।

वैशम्पायन कहते हैं कि शल्य ने उसका अनुरोध स्वीकार करके कहा—कहो, मैं अब तुम्हारा और क्या प्रिय करूँ? दुर्योधन ने बारम्बार यही कहा कि आपने मेरी सब इच्छाएँ पूरी कर दीं। [अब और कुछ न चाहिए।] तब फिर शल्य ने कहा—

२० दुर्योधन, अब तुम अपने नगर को जाओ। मैं युधिष्ठिर से मिलने उनके पास जाऊँगा। उनसे
मिलकर तुम्हारे पास जल्द पहुँचूँगा। युधिष्ठिर से मिलना मेरा अवश्य कर्त्तव्य है।

दुर्योधन ने कहा—युधिष्ठिर से मिलकर शीघ्र आइएगा। हम लोग आपके ही अधीन
हैं। मुझे जो वरदान आप दे चुके हैं उसे न भूलिएगा। शल्य ने कहा—हे वीर, तुम्हारा भला
हो, अब तुम अपने नगर को जाओ। विश्वास रक्खो, मैं शीघ्र ही लौटकर आ जाऊँगा।
वैशम्पायन कहते हैं—इसके बाद दोनों परस्पर गले लगकर मिले। दुर्योधन तो शल्य से बिदा
होकर अपनी राजधानी को लौट गया और मद्रराज शल्य पाण्डवों से दुर्योधन की यह चालाकी
बताने को उनके पास गये।

मत्स्यराज विराट की राजधानी के उपप्लव्य प्रदेश में पहुँचकर, सेना की छावनी के भीतर
जाकर, शल्य ने पाण्डवों से भेंट की। बहुत दिनों के बाद मामा शल्य को आये देखकर युधिष्ठिर
आदि पाण्डव अपने आसनों से उठ बैठे। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, अपने भानजे नकुल और
सहदेव आदि से मिलकर शल्य को बड़ी प्रसन्नता हुई। धर्मात्मा युधिष्ठिर ने पुरोहित के द्वारा
गाय, पाद्य, अर्घ्य आदि देकर, हाथ जोड़कर, शल्य से कहा—राजन्, हम आपका स्वागत करते
हैं। यह आसन लीजिए और बैठिए।

पाण्डवों के बीच में उस सुवर्णमय आसन पर बैठकर शल्य ने युधिष्ठिर से कहा—राजन्,
तुम सब प्रकार से सकुशल हो न? बड़े भाग्य की बात है कि तुमने द्रौपदी और भाइयों सहित
३० निर्जन वन में रहकर, घोर अज्ञातवास बिताकर, दुष्कर काम करते हुए अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली।
हे भरतश्रेष्ठ, राज्य से भ्रष्ट पुरुष को दुःख के सिवा सुख कहाँ? पर अब दुर्योधन के दिये हुए तुम्हारे
दुःखों का अन्त हो गया। अब तुम शत्रुओं को शीघ्र मारकर अपनी सहनशीलता का फल सुख
भोगोगे। महाराज, तुम संसार के हाल को अच्छी तरह जानते हो इसी कारण संसार से मिलने
वाले दुःखों से तुम्हारे चित्त में कुछ विकार नहीं पैदा होता। अब तुम पूर्वज राजर्षियों के अनुयायी
बनकर दान, सत्य और तप में विशेष रूप से अपनी बुद्धि को लगाओ। लोगों को आश्चर्य में
डालनेवाले क्षमा, दमन, सत्य और अहिंसा आदि सद्गुण तुममें सदा स्थिर रूप से हैं। तुम
कोमलप्रकृति, उदार ब्राह्मणभक्त, जितेन्द्रिय और धर्मात्मा हो। संसार जिनका साक्षी है, ऐसे
अनेक प्रकार के धर्मों को तुम अच्छी तरह जानते हो। सांसारिक विषयों को भी तुम बहुत
अच्छी तरह जानते हो। तुम्हारे राजा होने पर सब प्रजा फिर आनन्दित होगी। बड़े भाग्य की
बात है कि तुमने इस वनवास के कष्टदायक व्रत को पूरा कर लिया। बड़ी बात है कि मैं इस
समय भाइयों सहित तुम धर्मात्मा को सब कष्टों से मुक्त और धर्म में दृढ़ देख रहा हूँ।

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्! अब महाराज शल्य ने दुर्योधन से मिलने का, उसकी की
हुई अपनी सेवा और सत्कार का और अपने दिये हुए वरदान का सब हाल युधिष्ठिर से कहा।

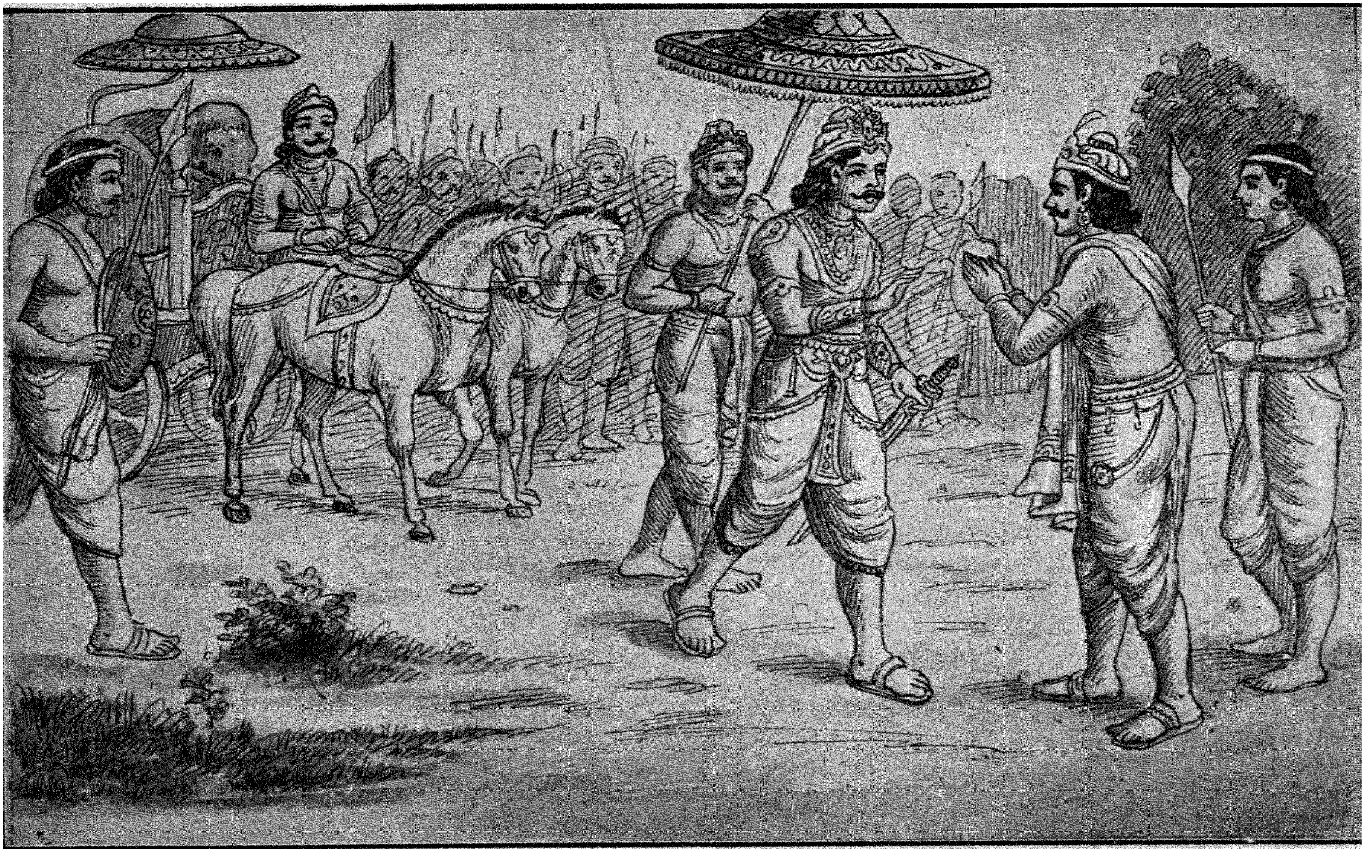

मामा शल्य को आये देखकर युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ कर, शल्य से कहा।—पृ० १५००

देवता और ऋषियों का नहुष के पास आना।--पृ० १५०८

तब धर्मराज ने शल्य से कहा—मामाजी, आपने प्रसन्न होकर जो कुछ किया वह बहुत अच्छा किया।
हे वीर, आपने दुर्योधन से जो वादा कर लिया सो बहुत ठीक किया। किन्तु एक बात मैं भी आपसे ४०
चाहता हूँ। अकर्तव्य होने पर भी आप मेरी भलाई के लिए वह काम अवश्य करें। सुनिए, आप युद्ध में
श्रीकृष्ण के समान हैं। जिस समय कर्ण और अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध होगा उस समय आपको अवश्य कर्ण
का सारथी बनना पड़ेगा; क्योंकि रथ हाँकने की कला में आप श्रीकृष्ण से कम नहीं हैं। इसलिए जो
आप मेरा हित करना चाहते हैं तो उस समय, हमारी जीत होने के लिए, अर्जुन की सहायता कीजिएगा;
अर्थात् कर्ण [के मुख पर उसकी निन्दा करके उस] का उत्साह कम करते जाइएगा। [इस प्रकार
तेज घट जाने से कर्ण को मारना अर्जुन के लिए सहज हो जायगा।] यद्यपि यह काम अनु-
चित है, तो भी आपको करना पड़ेगा।

शल्य ने कहा—वत्स, तुम्हारा भला हो। तुम वीर कर्ण का तेज हरने के लिए जो
कहते हो, वह मैं अवश्य करूँगा। कर्ण मुझे श्रीकृष्ण के समान [रथी और सारथी] सम-
झता है, इसलिए युद्ध में वह अवश्य मुझे अपना सारथी बनावेगा। सच कहता हूँ, मैं उस युद्ध
में उसके विरुद्ध ऐसे कठोर वचन कहूँगा जिनसे उसका दर्प, उत्साह और तेज घट जायगा।
तब अर्जुन उसे सहज ही मार लेंगे। मतलब यह कि तुमने जो मुझसे कहा है उसे मैं
अवश्य करूँगा। इसके सिवा और भी जो कुछ तुम्हारा प्रिय और भलाई मुझसे हो सकेगी उसे
मैं करूँगा। द्यूतक्रीड़ा के कारण द्रौपदी ने और तुमने जो दुःख पाये हैं, कर्ण के मुँह से जो
कठोर वचन सुने हैं, दमयन्ती की तरह द्रौपदी ने जटासुर और कीचक के द्वारा जो क्लेश पाये ५०
हैं, उन दुःखों के बदले में इस समय तुम्हें सुख मिलेंगे। उन दुःखों के लिए तुम खेद न करो।
संसार में दैव बड़ा प्रबल है। हे युधिष्ठिर, बड़े बड़े महात्माओं और देवताओं को भी संसार में
दुःख भोगने पड़े हैं। सुना जाता है कि इन्द्र ने देवताओं के राजा होकर भी इन्द्राणी के साथ
बड़ा दुःख पाया है। फिर मनुष्यों की बात ही क्या है। ५४

नवाँ अध्याय

वृत्रासुर की कथा

युधिष्ठिर ने कहा—मामाजी, इन्द्र को किसलिए घोर दुःख सहना पड़ा ? कृपा कर कहिए। सुनने के लिए मेरा जी चाहता है।

शल्य ने कहा—हे तात, इन्द्राणी सहित इन्द्र को जैसे दुःख प्राप्त हुआ, वह प्राचीन इतिहास मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। पूर्व समय में एक त्वष्टा नाम के महातपस्वी, देवताओं में श्रेष्ठ, प्रजापति थे। उन्होंने इन्द्र के द्रोह से, उनका अनिष्ट करने के लिए, तीन सिर का एक पुत्र पैदा-

किया। उसके तीनों मुख सूर्य, चन्द्र और अग्नि के समान थे। महातेजस्वी विश्वरूप त्रिशिरा ने इन्द्र का पद छीन लेना चाहा। वे एक मुख से वेदपाठ, दूसरे मुख से सुरा-पान और तीसरे मुख से मानों सब दिशाओं को पी जायँगे, इस तरह चारों ओर देख रहे थे। महातेजस्वी विश्वरूप स्वभाव से ही तपस्वी, कोमल-प्रकृति, जितेन्द्रिय और धर्मनिष्ठ थे। वे इन्द्र-पद प्राप्त करने की इच्छा से अत्यन्त कठिन तप करने लगे।

महातेजस्वी त्रिशिरा के सत्य और तप के बल को देखकर इन्द्र को बड़ा खेद हुआ। वे सोचने लगे कि यह कहीं इन्द्र न हो जाय। उन्होंने सोचा, क्या उपाय करना चाहिए, जिससे विश्वरूप यह महातप करना छोड़कर भोगों में आसक्त हो जाय। तप के द्वारा बढ़कर यह त्रिशिरा सब भुवनों के राज्य पर अधिकार कर लेगा। हे भरत श्रेष्ठ, बुद्धिमान् इन्द्र ने बहुत सोचकर त्वष्टा के पुत्र त्रिशिरा को लुभाने और तप के भ्रष्ट करने के लिए अप्सराओं को आज्ञा दी। इन्द्र ने उनसे कहा—तुम इसी दम मनोहर हार आदि गहने पहनकर, अच्छी तरह बन-ठनकर, त्रिशिरा के पास जाओ और अपने हाव-
१२ भाव, सौन्दर्य आदि से उसे ऐसा लुभाओ कि वह तप छोड़कर भोग में लग जाय। हे अप्सराओ,
त्रिशिरा के डर से मैं घबरा गया हूँ। तुम मेरा डर और घबराहट दूर करो।

अप्सराओं ने कहा—हे देवराज, हम त्रिशिरा को लुभाने का ऐसा उपाय करेंगी कि आपको उससे रत्ती भर भी डर नहीं रह जायगा। अपनी दृष्टि से सब लोकों को मानों भस्म कर देंगे,—इस तरह तप में लगे हुए तपोनिधि त्रिशिरा को लुभाने के लिए हम सब जाती हैं। हम उन्हें अपने वश में करके आपका डर दूर कर देंगी। महाराज, इसके बाद सब अप्सराएँ इन्द्र की आज्ञा से त्रिशिरा के पास गईं और उन्हें लुभाने के लिए मनोहर नाच, हाव-भाव, सुन्दरता आदि दिखाने लगीं। महातपस्वी त्रिशिरा इन्द्रियदमन करके भरे हुए समुद्र के समान अटल भाव से बैठे हुए थे, इसलिए वे अप्सराओं के प्रलोभन दिखाने पर भी न तो विचलित हुए, और न यह समझकर हर्षित ही हुए कि मुझे मेरे तप का फल मिल गया। इस प्रकार कार्य

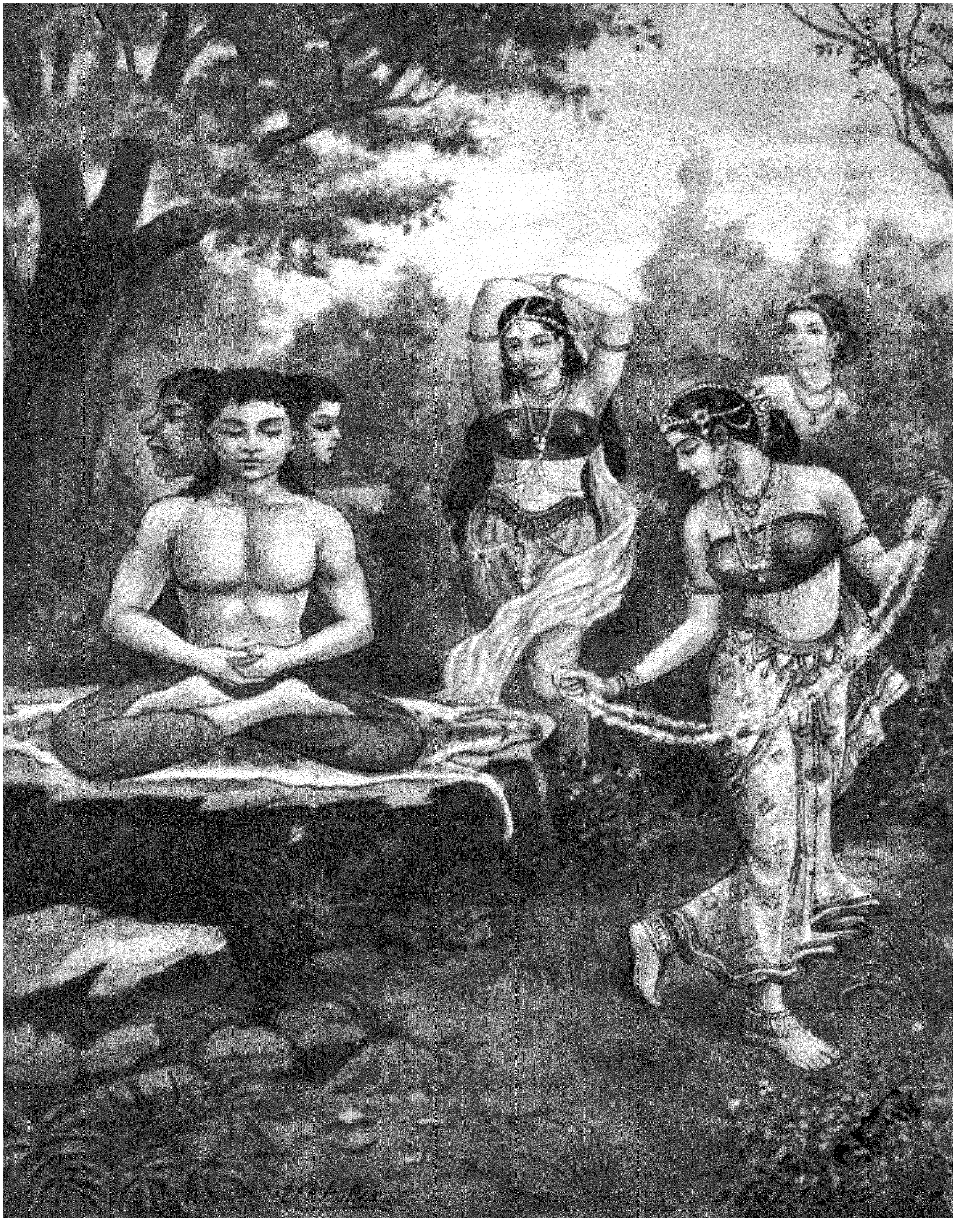

उद्योग पर्ब्ब—८ वां अध्याय ।—पृ० ९६

सिद्ध न होने पर अप्सराएँ इन्द्र के पास लौट गईं और हाथ जोड़कर कहने लगीं—भगवन्, हम किसी उपाय से दुर्द्धर्ष तपस्वी त्रिशिरा के चित्त को चलायमान नहीं कर सकीं। हे महाभाग, उनका धैर्य अटल है। अब आप अपना जो कर्तव्य समझिए सो कीजिए।

तब यथोचित सम्मान के साथ अप्सराओं को बिदा करके इन्द्र, त्रिशिरा के मारने का, उपाय सोचने लगे। कुछ देर तक सोचकर उन्होंने निश्चय किया कि वज्र-प्रहार करने से त्रिशिरा अवश्य मारा २०
जा सकता है। दुर्बल शत्रु की जड़ जब दृढ़ हो रही हो तब प्रबल पुरुष को उसकी ओर से लापरवा न रहना चाहिए। इस प्रकार शास्त्र के कथन पर विचार करके उन्होंने त्रिशिरा को मार डालने का निश्चय किया। इन्द्र ने कुपित होकर अग्नितुल्य घोररूप, भयानक वज्र त्रिशिरा के ऊपर चलाया। वज्र की चोट से त्रिशिरा, कटकर गिरे हुए पर्वतशिखिर की तरह, पृथ्वी पर गिर पड़े। महाराज, इस तरह त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को वज्र से मार डालने पर भी इन्द्र को शान्ति नहीं मिली। क्योंकि वज्रपात से मरकर भी त्रिशिरा जीवित से ही तेजस्वी देख पड़ रहे थे। यह बड़ा अद्भुत दृश्य था कि उनके तीनों सिर, जीवित की तरह, वैसे ही बने हुए थे; उनका तेज वैसा ही बना हुआ था। उस तेज से पीड़ित इन्द्र डर के मारे चिन्ता करने लगे। इसी समय कन्धे पर कुल्हाड़ी रक्खे एक बढ़ई वहाँ पर आया जहाँ विश्वरूप का शरीर पड़ा था। डरे हुए इन्द्र ने बढ़ई को बुलाकर कहा—तुम इसी दम, मेरे कहने से, इस लाश के तीनों सिर धड़ से अलग कर दो।

बढ़ई ने कहा—इस लाश के कन्धे बड़े मोटे और दृढ़ हैं, ये मेरी कुल्हाड़ी से न कटेंगे। काटूँगा तो कुल्हाड़ी बेकाम हो जायगी। इसके सिवा मरे आदमी पर शस्त्र चलाने को सज्जनों
ने बुरा बतलाया है। इन्द्र ने कहा—तुम डरो नहीं, शीघ्र मेरी आज्ञा मानो। मेरे प्रसाद से तुम्हारी ३०
यह कुल्हाड़ी वज्र के तुल्य दृढ़ और पैनी हो जायगी। बढ़ई ने कहा—आप कौन हैं? किसलिए यह भयङ्कर काम कराना चाहते हैं? मैं जानना चाहता हूँ, बताइए। इन्द्र ने कहा—मैं देवताओं का राजा इन्द्र हूँ। हे बढ़ई, मेरा कहा करने में कुछ सोच-विचार मत करो। बढ़ई ने नम्रता के साथ हाथ जोड़कर कहा—देवराज, इस क्रूर कर्म से तुम्हें लज्जा नहीं आती? इस ऋषिपुत्र को मारने में तुम ब्रह्महत्या से नहीं डरे?

इन्द्र ने कहा—मैं कठिन [तप] धर्म करके पीछे इस पाप से छुटकारा पा लूँगा। यह महावीर्य तपस्वी मेरा शत्रु है। मैं इसे वज्र से मार चुका हूँ, पर अभी तक डर और घबराहट बनी हुई है। इसलिए तुम जल्दी से इसके तीनों सिर काट डालो। मैं तुम्हें यह वर देता हूँ कि अब लोग तुम्हें यज्ञ में मारे गये पशु का सिर, यज्ञ के भाग में, देंगे।

तब बढ़ई ने, इन्द्र की आज्ञा पाकर, कुल्हाड़ी से त्रिशिरा के तीनों सिर काट डाले। उन सिरों के कटने पर छिद्रों से कपिञ्जल (पपीहा), तीतर और कलविंक (गौरैया) नाम के तीन

प्रकार के पक्षी निकले। विश्वरूप जिस मुँह से वेद-पाठ और सोम-पान करते थे, उससे कपिञ्जल
४० पक्षी निकले। जिस मुँह से वे मानों सब दिशाओं को पी लेंगे, ऐसी दृष्टि से देखते थे, उस मुँह से तीतर निकले। मदिरा पीने के मुँह से कलविङ्क और श्येन पक्षी (बाज) प्रकट हुए। यों त्रिशिरा के सिर कट जाने पर निश्चिन्त और निर्भय होकर, अपने को कृतार्थ मानकर, इन्द्र अपने लोक को चले गये। बढ़ई भी अपने स्थान को चला गया।

उधर प्रजापति त्वष्टा को जब इन्द्र के हाथ से अपने बेटे के मारे जाने का हाल मालूम हुआ तब क्रोध के मारे उनकी आँखें लाल हो गईं। उन्होंने कहा—मेरा पुत्र क्षमा, दम और जितेन्द्रियता के साथ तपस्या कर रहा था। उसे बिना अपराध के इन्द्र ने मार डाला है, इसलिए अब मैं इन्द्र को मारने के लिए वृत्रासुर को उत्पन्न करता हूँ। इस समय सब लोक और दुरात्मा, पापबुद्धि इन्द्र भी मेरे तपोबल को देखें। क्रुद्ध होकर तपस्वी, यशस्वी त्वष्टा ने आचमन करके अग्नि में आहुति छोड़ी, उसी से भयङ्कर वृत्रासुर उत्पन्न हुआ। त्वष्टा ने उससे कहा—हे इन्द्रशत्रु, मेरे तप के प्रभाव से तुम बढ़ो।

वृत्रासुर का तेज सूर्य और अग्नि के समान था; वह उसी समय बढ़कर आकाश को छूने लगा। वृत्रासुर ने त्वष्टा से कहा—आज्ञा दीजिए, मैं क्या करूँ?

त्वष्टा ने कहा कि तुम इन्द्र को मार डालो। उनके यों कहने पर महाबली वृत्रासुर तुरन्त देव-
पुरी में पहुँचा। कुपित वृत्रासुर ने घोर युद्ध करते-करते इन्द्र को अपने विशाल मुख के भीतर रख लिया।
५१ देवताओं ने घबराकर उसे मारने के लिए प्रबल जृम्भिका (जँभाई) को उत्पन्न किया। वृत्र ने जँभाते
समय ज्योंही मुँह खोला त्योंही उससे इन्द्र, सब अङ्ग समेटकर, बाहर निकल आये। यह देखकर
देवता बहुत प्रसन्न हुए। तभी से सब जीवित प्राणी जँभाई लेते हैं।

इसके बाद फिर वृत्रासुर और इन्द्र का घोर युद्ध होने लगा। बहुत दिनों तक लगातार युद्ध होता रहा। अब वृत्रासुर, त्वष्टा की तपस्या के प्रभाव से, अत्यन्त बढ़ने लगा। यह

देखकर इन्द्र बहुत घबराये, और युद्धभूमि छोड़कर भाग खड़े हुए। त्वष्टा के तपोबल से पीड़ित देवता लोग किंकर्त्तव्यविमूढ़ और व्याकुल होकर मुनियों के साथ मन्दराचल के शिखर पर आकर इन्द्र से मिले। वहाँ पर वे सब वृत्रासुर के मारने का उपाय सोचने लगे। अन्त को सब लोग
अव्यय विष्णु भगवान् का ध्यान करने लगे। ५९

दसवाँ अध्याय

इन्द्र और वृत्रासुर का मेल

इन्द्र ने कहा—हे देवताओ, महाबली वृत्रासुर ने सब जगत् को अपने अधिकार में कर लिया है। इस समय उसके समान समर्थ और उसे मार सकनेवाला कोई नहीं देख पड़ता। पहले मैं समर्थ था, परन्तु अब असमर्थ हो गया हूँ। मैं तो तुम लोगों का भला चाहता हूँ; परन्तु मैं तुम्हारा भला कैसे करूँ? मैं वृत्रासुर को अपने से प्रबल समझता हूँ। वह तेजस्वी, बड़े डील-डौलवाला और युद्ध में बड़ा पराक्रमी है; वह चाहे तो देवता, दैत्य, मनुष्य आदि सहित त्रिभुवन को खड़े-खड़े लील ले। इसलिए हे देवताओ, मैंने जो निश्चय किया है सो सुनो। हम लोग विष्णुलोक को चलें। वहाँ महात्मा विष्णु से मिलकर, सलाह करके, हम वृत्रासुर के वध का उपाय जान सकेंगे।

इन्द्र के यों कहने पर वृत्रासुर के डर से विह्वल सब देवता और ऋषि लोग त्रिभुवनेश्वर विष्णु की शरण में गये और उसकी स्तुति करने लगे। देवता बोले—हे नारायण, पहले वामन अवतार लेकर अपने तीनों लोकों को तीन पग में नाप लिया है। आपने ही युद्ध में दैत्यों को मारा और देवताओं को अमृत पिलाया है। महादैत्य बलि को बाँधकर आपने ही इन्द्र को देवताओं का राजा बनाया है। आप सब देवताओं के प्रभु और सब जगत् में व्याप्त हैं। हे महादेव, आप वह देव हैं जिनकी सब लोक वन्दना करते हैं। हे शत्रुदमन, इस समय वृत्रासुर ने सब जगत् को अपने अधिकार में कर लिया है। इन्द्र-सहित हम सब देवताओं की गति या आश्रय आप ही हैं। इस समय वृत्रासुर से हमें बचाइए।

विष्णु ने कहा—देवताओ, मुझे तुम्हारी भलाई करनी चाहिए। इसलिए मैं तुम्हें ऐसा
उपाय बताता हूँ जिससे तुम उस शत्रु को मार सकोगे। तुम लोग ऋषियों और गन्धर्वों को १०
साथ लेकर विश्वरूपधारी वृत्रासुर के पास जाओ। वहाँ उसके साथ साम-नीति का व्यवहार करो। तब तुम उसको जीत सकोगे। मैं इन्द्र के श्रेष्ठ शस्त्र वज्र में अदृश्य भाव से प्रवेश करूँगा। इसलिए तुम लोग शीघ्र जाकर वृत्रासुर से इन्द्र का मेल करा दो।

तब विष्णु की आज्ञा से ऋषिगण और इन्द्र आदि सब देवता वृत्रासुर के निवासस्थान पर गये। वहाँ पहुँचकर पराक्रमी देवताओं ने देखा कि वृत्रासुर अपने तेज से प्रज्वलित होकर दसों

दिशाओं को सन्ताप पहुँचा रहा है। जान पड़ता है, मानों सूर्य और चन्द्रमा-सहित तीनों लोकों को लील लेगा। तब ऋषियों ने, इन्द्र और देवताओं के साथ, वहाँ जाकर वृत्रासुर से कहा—हे दुर्जय, इस जगत् में तुम्हारा तेज व्याप्त हो गया है। उधर बहुत दिनों से लड़ने पर भी तुम अभी तक इन्द्र को जीत नहीं सके हो। देवता, दैत्य और मनुष्य आदि सब प्रजा को तुम्हारे इस व्यर्थ के युद्ध से बड़ी हैरानी हो रही है। इस कारण अब तुम सदा के लिए इन्द्र से मेल कर लो। इससे तुम सुखपूर्वक स्वर्गलोक के भोग प्राप्त कर सकोगे।

२० तब महातेजस्वी वृत्र ने ऋषियों को प्रणाम करके कहा—हे तपस्वियो, हे गन्धर्वो! तुम सबने जो कहा सो मैंने सुन लिया। अब मैं जो कहता हूँ, सो सुनो। हे देवताओ, दो तेजस्वी पुरुषों में मित्रता कैसे हो सकती है? इसी कारण इन्द्र से मेरी मित्रता होना सम्भव नहीं।

ऋषियों ने कहा—एक बार सज्जनों का सङ्ग कर ही लेना चाहिए; उसके बाद जो होना है वह तो होगा ही। सत्सङ्ग का मौक़ा हाथ से न जाने देना चाहिए। इसी कारण सत्सङ्ग एक प्रार्थनीय वस्तु है। सज्जनों का सङ्ग अर्थात् मित्रता दृढ़ होती है। धीर पुरुष आर्थिक कष्ट के समय उसे ही धन समझते हैं। सज्जनों का समागम एक अमूल्य और प्रयोजनीय पदार्थ है। इसी लिए धीर पुरुष को चाहिए कि सज्जन से द्रोह और उसकी हिंसा करने की इच्छा अपने मन में न रक्खे। इन्द्र सज्जन हैं और महात्मा पुरुषों के लिए आश्रयरूप हैं। इसके सिवा वे सत्यवादी, प्रशंसनीय, धर्मज्ञ और सूक्ष्मदर्शी भी हैं। इसलिए तुम विश्वास करके सदा के लिए उनसे मित्रता कर लो। सोच-विचार मत करो।

ऋषियों के यों कहने पर तेजस्वी वृत्रासुर ने कहा—हे तपस्वियो, इसमें सन्देह नहीं कि आप मेरे पूजनीय हैं। अच्छा, मैं जो कुछ कहता हूँ उसे देवता लोग मान लें तो मैं उनके साथ मित्रता कर सकता हूँ। देखिए, इन्द्र और सब देवता मुझे सूखे या गीले पदार्थ से, लोहे के शस्त्र या लकड़ी से, पत्थर से, किसी अस्त्र से, दिन को या रात को न मार सकें। इस शर्त
३० पर मैं इन्द्र से सन्धि करने को राजी हूँ।

ऋषियों ने देवताओं की ओर से सब स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सन्धि हो जाने पर वृत्रासुर बहुत प्रसन्न हुआ। इन्द्र भी बहुत प्रसन्न हुए और चुपके-चुपके चौकन्ने रहकर वृत्रासुर के मारने का उपाय सोचने लगे। घबराये हुए इन्द्र सदा वृत्रासुर के मारने का मौक़ा ढूँढ़ा करते थे। एक दिन उन्होंने अपने शत्रु वृत्रासुर को समुद्र के किनारे देखा। वह सन्ध्याकाल का बड़ा भयङ्कर मुहूर्त था। भगवान् इन्द्र ने वृत्रासुर के वरदान का ख़याल करके सोचा कि यह रौद्र सन्ध्याकाल है, जिसकी गिनती न तो दिन में है और न रात में। मेरे सब राज्य को हर लेनेवाला वृत्रासुर घोर शत्रु है। उसे चाहे जिस तरह से मार डालना ही मेरे लिए भला है। यही इसे मारने का ठीक समय है। जो मैं महाकाय महाबली वृत्रासुर को इस समय धोखा

देकर न मारूँगा तो फिर मेरा कल्याण दुर्लभ हो जायगा। इन्द्र यों सोचकर विष्णु का ध्यान करने लगे। इसी समय उन्हें समुद्र के जल में पहाड़ सा ऊँचा फेना देख पड़ा। इन्द्र ने कहा कि बस, सब ठीक हो गया। यह फेना न तो सूखा है, न गीला है और न यह शस्त्र ही है। यह फेना मैं वृत्रासुर को मारूँगा और वह उसी दम मर जायगा। यह सोच-कर इन्द्र ने वज्र के साथ वह फेना खींच-कर वृत्रासुर को मारा। उस फेने-सहित वज्र के भीतर प्रवेश करके विष्णु ने वृत्रा-सुर को मार डाला।

वृत्रासुर के मरने पर दिशाएँ प्रका-शित हो उठीं। सुख पहुँचानेवाली ठण्डी हवा चलने लगी। त्रिलोकी की प्रजा प्रसन्न हो उठी। तब देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, ४०
नाग और ऋषिगण इन्द्र की स्तुति करने लगे। सब प्राणियों ने इन्द्र को प्रणाम किया; इन्द्र ने भी उन्हें धीरज दिया। देवताओं-सहित इन्द्र, शत्रु को मारकर, बहुत प्रसन्न हुए। फिर धर्मज्ञ इन्द्र ने त्रिभुवन में श्रेष्ठ विष्णु की पूजा की। महाराज! सब देवताओं के लिए भयङ्कर, महापराक्रमी वृत्रासुर के मरने पर इन्द्र को ब्रह्महत्या के पाप ने धर दबाया। इससे वे बहुत चिन्तित हुए। एक तो पहले त्रिशिरा के मारने से ब्रह्महत्या लगी ही थी, दूसरे अब वृत्रासुर को भी मारने से दूसरी ब्रह्महत्या सताने लगी। ब्रह्महत्या से पीड़ित इन्द्र अचेत से होकर सब लोकों के बाहर जाकर जल में छिप रहे और तड़पते हुए साँप की तरह वहीं रहने लगे। ब्रह्महत्या के डर से इन्द्र जब लापता हो गये तब सारी पृथ्वी उजड़ गई, वन सूख गये, हरे-भरे वृक्षों का नाम भी न रह गया। नदियों का बहना बन्द हो गया और सरोवर सूखने लगे। वर्षा न होने से सब प्राणी व्याकुल हो उठे। देवता और ऋषि डर गये। चारों ओर अराजकता छा गई, घोर उपद्रव होने लगे। तब देवता लोग डरकर सोचने लगे कि इस समय हमारा राजा कौन हो। स्वर्ग में देवता और ऋषि राजा
के बिना पीड़ित थे; परन्तु कोई उनका राजा बनने के लिए तैयार न होता था। ५०

ग्यारहवाँ अध्याय

राजा नहुष को इन्द्रपद मिलना और उनका इन्द्राणी को अपने घर बुलाना

शल्य कहते हैं—हे युधिष्ठिर, इसके बाद देवताओं ने निश्चय किया कि श्रीमान् नहुष को अपना राजा बनाना चाहिए; क्योंकि वे तेजस्वी, यशस्वी और धार्मिक भी हैं। यह निश्चय करके देवता लोग राजा नहुष के पास गये। उनसे उन्होंने अपना राजा बनने के लिए प्रार्थना की। नहुष ने देवताओं, ऋषियों और पितरों से अपने भले की इच्छा से कहा—मैं दुर्बल हूँ, मुझमें आप लोगों का पालन करने की शक्ति नहीं है। इसलिए आप लोग किसी और इन्द्र के समान बली पुरुष को खोज लीजिए।

देवताओं और ऋषियों ने कहा—महाराज, हम तुम्हें अपने तप का बल देते हैं, उससे तुम स्वर्ग-राज्य की रक्षा करो। हमको आपस में ही परस्पर बड़ा डर है। स्वर्ग-राज्य में अपना अभिषेक कराकर तुम हमारे राजा बनो और हमारा डर दूर करो। हम तुमको यह शक्ति देते हैं कि देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, ऋषि, राक्षस, पितृगण, भूतगण आदि में से जो कोई सामने आवेगा उसके तेज और बल को तुम देखते ही हर लोगे। तुम बड़े बलवान् बन जाओगे। अब तुम कृपा करके धर्मपालन करते हुए त्रिभुवन के राजा बनो और त्रिभुवन में ब्राह्मणों, ऋषियों और देवताओं की रक्षा करो।

शल्य कहते हैं—देवताओं के कहने से नहुष ने दुर्लभ देव-राज्य स्वीकार कर लिया। वे
१० धर्म के अनुसार सब लोकों के स्वामी हो गये। सदा के धर्मात्मा राजा नहुष स्वर्ग में कामात्मा बन गये। देवराज नहुष अप्सराओं और देवकन्याओं के साथ नन्दन आदि देवताओं के बाग़ों में, कैलास, हिमवान्, मन्दराचल, श्वेतपर्वत, सह्य, महेन्द्र, मलय आदि पहाड़ों पर, तथा समुद्रों और नदियों के किनारे जाकर अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते थे। वे सुनने में मनोहर दिव्य कथाएँ, सब तरह के बाजे और मधुर गीत सदा सुना करते थे। किसी समय हँसी-दिल्लगी से अपना मनोरञ्जन करते थे। नारद ऋषि, विश्वावसु आदि गन्धर्वों और अप्सराओं के झुण्ड सदा उनकी सेवा में लगे रहते थे। वसन्त आदि छः ऋतुएँ सदा साक्षात् रूप से उनकी सेवा किया करती थीं। मन्द, सुगन्ध, शीतल हवा सदा क्रीड़ा के समय चला करती थी।

इस प्रकार क्रीड़ा और कामभोग में लगे हुए दूषित-चित्त नहुष ने एक दिन इन्द्र की प्यारी सुन्दरी शची को देख लिया। उसको देखकर नहुष [का चित्त चलायमान हो उठा। उन्हों] ने अपने सभासदों से कहा—मैं देवलोक और मनुष्यलोक का एकमात्र राजा इन्द्र हूँ; फिर इन्द्राणी क्यों नहीं मेरे पास आती है? मैं आज्ञा देता हूँ कि इसी दम शची मेरे घर आवें।

यह आज्ञा सुनकर इन्द्राणी बहुत ही घबरा गईं। उन्होंने बृहस्पति से कहा—ब्रह्मन्, मैं आपकी
२० शरण में आई हूँ; नहुष से मेरी रक्षा कीजिए। मैं इन्द्र की स्त्री और सुखभोग के योग्य हूँ।

आप कह चुके हैं कि मैं विधवा नहीं हो सकती; मैं एक को पत्नी और पतिव्रता हूँ। भगवन्, आपका कहना झूठ नहीं हो सकता। आप अपनी बात को इस समय, मेरा सतीत्व बचाकर, सत्य कीजिए।

तब बृहस्पति ने डरी हुई इन्द्राणी से कहा—देवी, मैं जो तुमसे कह चुका हूँ सो अवश्य सत्य होगा। तुम्हें शीघ्र ही यहाँ आये हुए इन्द्र के दर्शन होंगे। नहुष से मत डरो। मैं सच कहता हूँ, शीघ्र ही इन्द्र से तुमको मिला दूँगा। महाराज, उधर जब नहुष को यह ख़बर मिली कि इन्द्राणी आङ्गि-
रस बृहस्पति के शरण में गई हैं तब उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। २६

बारहवाँ अध्याय

इन्द्राणी का नहुष के पास जाना

शल्य कहते हैं कि देवताओं और ऋषियों ने नहुष का क्रोध बढ़ता देखकर नम्रता के साथ उनसे कहा—देवराज, क्रोध के वेग को शान्त कीजिए। आपको कुपित देखकर असुर, गन्धर्व, किन्नर, नाग आदि सब जगत् के जीव डर गये हैं। हे देवेन्द्र, क्रोध को शान्त कीजिए। आप सरीखे महानुभाव क्रोध नहीं करते। शची देवी पराई स्त्री हैं, इसलिए प्रसन्न होकर पर-स्त्री-गमन के पाप-कर्म से अपने मन को हटा लीजिए। आपका भला हो। आप देवराज हैं; धर्म के साथ प्रजा का पालन कीजिए।

नहुष कामान्ध हो रहे थे; उन्होंने देवताओं के समझाने पर ध्यान ही न दिया। उन्होंने देवताओं से कहा—इन्द्र ने जब यशस्विनी ऋषि-पत्नी अहल्या को, उनके पति के जीते जी, दूषित किया था तब तुमने उन्हें क्यों नहीं रोका? इन्द्र पहले बहुत से निन्दित काम कर चुके हैं। उन्होंने जब विश्वरूप-वध आदि अधर्म और वृत्र-वध आदि छल के काम किये, तब तुमने उन्हें क्यों नहीं रोका? इसलिए देवी इन्द्राणी मेरे पास आवें। इसी में उनका परम हित और तुम्हारा भला होगा।

देवताओं ने कहा—देवराज, प्रसन्न होकर क्रोध को रोकिए। प्रसन्न हूजिए हम आपकी इच्छा के अनुसार इन्द्राणी को आपके पास ले आवेंगे। शल्य कहते हैं कि नहुष से यों कहकर सब ऋषि और देवता लोग बृहस्पति के पास, इन्द्राणी से नहुष की अशुभ आज्ञा का हाल कहने के लिए, गये।
वहाँ जाकर उन्होंने बृहस्पति से कहा—गुरुजी, हम जानते हैं कि इन्द्राणी ने आकर आपका आश्रय १०
लिया है और आप भी उन्हें अभयदान कर चुके हैं। इस समय हम सब देवता, गन्धर्व और ऋषि आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप नहुष को इन्द्राणी दे दीजिए। महातेजस्वी देवराज नहुष इन्द्र से भी बढ़कर हैं। इसलिए सुन्दरी शची देवी उन्हें पति-रूप से स्वीकार कर लें।

देवताओं के यों कहने पर इन्द्राणी ज़ोर-ज़ोर से रोने-चिल्लाने लगीं। इन्द्राणी ने बृहस्पति से कहा—ब्रह्मन्, मैं नहुष को अपना पति नहीं बनाना चाहती। इस महाभय से मुझ शरणागत की रक्षा कीजिए। बृहस्पति ने कहा—इन्द्राणी, मेरा यह पक्का नियम है कि मैं शरणागत का त्याग नहीं करता।

फिर तुम तो धर्म को जाननेवाली और पतिव्रता हो; तुम्हें कैसे छोड़ सकता हूँ ? हे देवताओ, मैंने धर्म की बातें सुन रक्खी हैं। मैं सच्चरित्र और धर्म की शिक्षा को जाननेवाला ब्राह्मण होकर कभी यह कुकर्म नहीं करूँगा। तुम लोग लौट जाओ, मैं इन्द्राणी को नहीं दूँगा। पहले किसी समय भगवान् ब्रह्मा ने शरणागत के त्याग का दोष दिखाते हुए जो कहा है सो सुनो। जो मनुष्य भयभीत शरणागत को उसके शत्रु के हाथ सौंप देता है उसके राज्य में समय पर वर्षा नहीं होती और अन्न पैदा होने के समय अंकुर ही नहीं निकलते। वह जब कभी अपनी रक्षा के लिए आश्रय ढूँढ़ता है तब कोई उसे आश्रय नहीं देता। कमज़ोर दिल के आदमी का अन्न आदि खाना-पीना सब व्यर्थ है; वह स्वर्गलोक से भ्रष्ट हो जाता है और उसकी सब चेष्टाएँ नष्ट हो जाती हैं। जो कोई डरे हुए शरणागत को छोड़ देता है, उसके दिये हुए हव्य को देवता लोग नहीं ग्रहण करते। जो डरे हुए शरणागत को उसके शत्रु
२० के हाथ में सौंप देता है उस पुरुष की सन्तान अकाल में ही मर जाती है, उसके पितर सदा भूखे रहते हैं और उस पर इन्द्र सहित सब देवता वज्र-प्रहार करते हैं। ब्रह्मा की कही इस व्यवस्था को मैं जानता हूँ, इसलिए इन्द्र की प्रसिद्ध प्रिया शची को नहुष के पास न ले जाने दूँगा। हे देवताओ, तुम वही करो जिसमें शची का और मेरा भी हित हो।

शल्य कहते हैं कि तब देवताओं और गन्धर्वों ने देवगुरु से कहा—हे बृहस्पति, आप ही सलाह करके बताइए, किस तरह सबका भला हो सकता है। बृहस्पति ने कहा—देवी इन्द्राणी नहुष के पास जाकर उनसे, उनकी आज्ञा मानने के लिए, मुहलत माँगें। इससे इन्द्राणी का और हमारा भी हित होगा। हे देवताओं, समय का कोई ठीक नहीं; देर होने पर अनेक विघ्न हो सकते हैं। समय ही बुरे समय को टाल देगा। इस समय तुम्हारे वरदान से राजा नहुष गर्वित और बलवान् है। [परन्तु आगे चलकर क्या होगा, सो कोई नहीं जानता। इसलिए खुल्लम-खुल्ला विरोध न करके इस समय टाल देना ही बुद्धिमानी का काम होगा।]

हे युधिष्ठिर, बृहस्पति की यह सलाह सुनकर देवता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—ब्रह्मन्, आपने यह अच्छा उपाय बताया; इससे सब देवताओं का कल्याण होगा। अब इन्द्राणी को नहुष के पास चलने के लिए राज़ी करना चाहिए। इसके बाद अग्नि आदि सब देवता, लोकों के हित की इच्छा से, इन्द्राणी से कहने लगे—देवी, तुमने इस जगत् को धारण कर रक्खा है। तुम पतिव्रता और सत्यवादिनी हो। इस समय तुम नहुष के पास चली चलो। तुम्हारे बारे में बुरा विचार रखनेवाला नहुष
३० अपने पाप से आप ही नष्ट हो जायगा फिर इन्द्र को देव-राज्य मिल जायगा।

देवताओं के यों निश्चय करने पर, अपना काम निकालने के लिए, देवी लज्जित सी होकर क्रोध के मारे घोर रूप धारण किये हुए नहुष के पास गई। सुन्दर रूप और उत्तम अवस्थावाली इन्द्राणी
३२ को देखकर कामान्ध दूषित-हृदय नहुष बहुत ख़ुश हुए।

महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखा देते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २०) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् १।) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को १) में प्रति अङ्क दिया जाता है। ध्यान रहे कि डाकखर्च स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(२) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६), दो आना प्रति अङ्क के हिसाब से रजिस्ट्री खर्च सहित १३॥) या ६॥।) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे, केवल उन्हीं सज्जनों को डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा। महाभारत की प्रतियाँ राह में गुम न हो जायँ और ग्राहकों की सेवा में वे सुरक्षित रूप में पहुँच जायँ, इसी लिए रजिस्ट्री द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) उसके प्रत्येक खंड के लिए अलग से बहुत सुन्दर जिल्दें भी सुनहले नाम के साथ तैयार कराई जाती हैं। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ।॥) रहता है परन्तु स्थायी ग्राहकों को वे ॥) ही में मिलती हैं। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहता है।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें तो कृपा कर अपना ग्राहक-नम्बर जो कि पता की स्लिप के साथ छपा रहता है और पूरा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हज़ारों ग्राहकों में से किसी एक का नाम ढूँढ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कार्रवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

(६) जिन ग्राहकों को अपना पता सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा पते में कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय को पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय अपना पुराना और नया दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए। जिससे उचित संशोधन करने में कोई दिक़्क़त न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने हलके के डाकखाने से उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि नया आर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रक्खें कि लिखावट साफ़ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़ साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पूछ-ताछ करने की ज़रूरत न हो। "हम परिचित ग्राहक हैं" यह सोच कर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो 'कूपन' पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनीआर्डरफ़ार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्रव्यवहार का पता—

मैनेजर महाभारत विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

शुभ संवाद ! लाभ की सूचना !!

महाभारत-मीमांसा

कम मूल्य में

राव बहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, एल्-एल० बी०, मराठी और अँगरेज़ी के नामी लेखक हैं। यह ग्रन्थ आप ही का लिखा हुआ है। इसमें १८ प्रकरण हैं और उनमें महाभारत के कर्ता (प्रणेता), महाभारत-ग्रन्थ का हाल, क्या भारतीय युद्ध काल्पनिक है ?, भारतीय युद्ध का समय, इतिहास किनका है ?, वर्ण-व्यवस्था—सामाजिक और राजकीय परिस्थिति, व्यवहार और उद्योग-धन्धे, आदि शीर्षक देकर पूरे महाभारत ग्रन्थ की समस्याओं पर विशद रूप से विचार किया गया है।

काशी के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् श्रीयुत बाबू भगवानदासजी एम० ए० की राय में महाभारत को पढ़ने से पहले इस मीमांसा को पढ़ लेना आवश्यक है। आप इस मीमांसा को महाभारत की कुञ्जी समझते हैं। इसी से समझिए कि ग्रन्थ किस-कोटि का है। इसका हिन्दी-अनुवाद प्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय पण्डित माधवरावजी सप्रे, बी० ए०, का किया हुआ है। पुस्तक में बड़े आकार के ४०० से ऊपर पृष्ठ हैं। साथ में एक उपयोगी नकशा भी दिया हुआ है जिससे ज्ञात हो कि महाभारत-काल में भारत के किस प्रदेश का क्या नाम था।

हमारे यहाँ महाभारत के ग्राहकों के पत्र प्रायः आया करते हैं जिनमें स्थल-विशेष की शंकाएँ पूछी जाती हैं। उन्हें समयानुसार यथामति उत्तर दिया जाता है। किन्तु अब ऐसी शंकाओं का समाधान घर बैठे कर लेने के लिए हमने इस महाभारत-मीमांसा ग्रन्थ को पाठकों के पास पहुँचाने की व्यवस्था का संकल्प कर लिया है। पाठकों के पास यदि यह ग्रन्थ रहेगा और वे इसे पहले से पढ़ लेंगे तो उनके लिए महाभारत की बहुत सी समस्याएँ सरल हो जायँगी। इस मीमांसा का अध्ययन कर लेने से उन्हें महाभारत के पढ़ने का आनन्द इस समय की अपेक्षा अधिक मिलने लगेगा। इसलिए महाभारत के स्थायी ग्राहक यदि इसे मँगाना चाहें तो इस सूचना को पढ़ कर शीघ्र मँगा लें। उनके सुभीते के लिए हमने इस ४) के ग्रंथ को केवल २।।) में देने का निश्चय कर लिया है। पत्र में अपना पूरा पता-ठिकाना और महाभारत का ग्राहक-नंबर अवश्य होना चाहिए। **समय बीत जाने पर** महाभारत-मीमांसा **रिआयती मूल्य में न मिल सकेगी।** प्रतियाँ हमारे पास अधिक नहीं हैं।

मैनेजर बुकडिपो—**इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।**